

# यजुर्वेद संहिता

[सरल हिन्दी भावार्थ सहित]

\*

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्



## अपने आराध्य के चरणों में

परम पूज्य गुरुदेव ने जो गुस्तर भार कंधों पर डाला, उन्हें अपने केशों का आज के परिशिष्ट में बुद्धिसंगत एवं विज्ञानसम्मत प्रतिपादन सर्वथा दुःसाध्य कार्य था। लोगों के पास योग्यता रहती होगी, जिससे वे बड़े-बड़े कार्य सम्भव कर पाते होंगे, पर मुझ अकिञ्चन के लिए तो यह सीमावर्ती ही क्या कुछ कम था कि अपने आराध्य के चरणों पर स्वयं को सर्वतोभावेन समर्पित करने का सन्तोष प्राप्त हुआ। होंठ कौन स गीत निकालेगे, भला बाँसुरी को क्या पता? कौन स राग आलापित होगा - यह पता कसक को हो सकता है, सितार बेचारा उसे क्या समझे?

केशों के भाष्य जैसे कठिन कार्य में बेरी स्थिति ऐसे ही ब्रह्म यंत्र की रही। यदि गायन सुन्दर हो, तो श्रेष्ठ उर्ध्व को मिलना चाहिए, जिन्होंने इनका भाष्यनुवाद प्रारम्भ (सन् १९६० ई०) में किया और दुबारा करने का आदेश मुझे दिया। कलम बेरी हो सकती है, पर चलाई उन्होंने ही। अक्षर भरे हो सकते हैं, पर भावामिव्यक्ति एक मात्र उर्ध्व की है।

आज यह सुरभिप्त पुष्प अपने उर्ध्व आराध्य गुरुदेव-आचार्य जी के चरणों में समर्पित कर स्वयं को कृत-कृत्य हुआ अनुभव करती हूँ।

जिन मनीषियों के ग्रन्थ हमने इस अवधि में भेजे, उनसे कुछ दिज्ञा बोध मिला, उनका तथा जिन्होंने इस गुस्तर कार्य के संकल्पन से प्रकाशन तक में सहयोग दिया, उनका मैं विशेष रूप से आभार मानती हूँ। आशा करती हूँ कि इस सृजन से अपनी संस्कृति और इस महान् देश की विराट् बौद्धिक, आत्मिक तथा आध्यात्मिक सम्पदा नैस्त्वान्त होगी।

ॐ

शतपथ ब्राह्मण (१०.३.५.१-२) में 'यजुः' को स्पष्ट करते हुए उसे 'यत् + जूः' का संयोग कहा है। 'यत्' का अर्थ होता है—'गतिशील' तथा 'जूः' का अर्थ होता है— आकाश। सृष्टि के निर्माण से पूर्व 'जूः' आकाश रूप में सर्वत्र एक ही चेतन तत्त्व फैला हुआ था। चेतना में संकल्प डगरा तथा आकाश में सूक्ष्म कण (सब एटॉमिक पार्टिकल्स) उत्पन्न हुए। यह गतिशील थे, इसलिए 'यत्' कहे गये। इसे (आकाशात् वायुः) आकाश से वायु की उत्पत्ति कह सकते हैं। इन प्रवहमान सूक्ष्म कणों में गति के कारण सूक्ष्म विद्युत् विभव (फीबिलइलेक्ट्रिक पोटेंशियल) उत्पन्न हुआ। इस विद्युत् ऊर्जा को ही 'अग्नि' की उत्पत्ति (वायोः अग्निः) कहा जा सकता है। इन तीनों (जू - आकाश, यत् - सूक्ष्म प्रवहमान कण तथा उस गति से उत्पन्न विद्युत् विभव) के संयोग से ही परमाणुओं की रचना हुई। केन्द्रक में धन विद्युत् विभव युक्त सूक्ष्म कण (न्यूक्लियस में प्रोटॉन्स) तथा उनके आस-पास के आकाश को घेरते हुए गतिशील ऋण विभव युक्त सूक्ष्म कण (इलेक्ट्रॉन्स); यही है विभिन्न पदार्थों के परमाणुओं की संरचना। इन्हीं का अनुपात बदल जाने से पदार्थ बदल जाते हैं।

'यत्' और 'जूः' के संयोग से पंचभूतात्मक जगत् की सृष्टि के इस प्रकरण से यह स्पष्ट होता है कि यह प्रक्रिया सृष्टि निर्माण के ब्रह्मीय चक्र की ही द्योतक है।

\*\*\*

# अनुक्रमणिका

क्र०	अध्याय	पृष्ठ सं० से	क्र०	अध्याय	पृष्ठ सं० से तक
क.	संकेत लिखरण	८	ख.	उपविहित	
ख.	भूमिका	९-२२	२१.	अध्याय एकविंश	२१.१-२१.११
ग.	पूर्वविज्ञप्ति		२२.	" द्वाविंश	२२.१-२२.७
१.	अध्याय प्रथम	१.१-१.८	२३.	" त्रयोविंश	२३.१-२३.१०
२.	" द्वितीय	२.१-२.७	२४.	" चतुर्विंश	२४.१-२४.७
३.	" तृतीय	३.१-३.१०	२५.	" पञ्चविंश	२५.१-२५.९
४.	" चतुर्थ	४.१-४.८	२६.	" षट्त्रिंश	२६.१-२६.४
५.	" षष्ठ्यम	५.१-५.१०	२७.	" सप्तविंश	२७.१-२७.६
६.	" अष्ट	६.१-६.७	२८.	" अष्टाविंश	२८.१-२८.८
७.	" नवम	७.१-७.१०	२९.	" एकोनविंश	२९.१-२९.१०
८.	" दशम	८.१-८.१३	३०.	" विंश	३०.१-३०.५
९.	" एकादश	९.१-९.८	३१.	" एकविंश	३१.१-३१.३
१०.	" द्वादश	१०.१-१०.७	३२.	" द्वाविंश	३२.१-३२.३
११.	" त्रयोदश	११.१-११.१४	३३.	" त्रयोविंश	३३.१-३३.१४
१२.	" चतुर्दश	१२.१-१२.१७	३४.	" चतुर्विंश	३४.१-३४.९
१३.	" पञ्चदश	१३.१-१३.११	३५.	" पञ्चविंश	३५.१-३५.३
१४.	" षट्त्रिंश	१४.१-१४.८	३६.	" षट्त्रिंश	३६.१-३६.४
१५.	" अष्टाविंश	१५.१-१५.१३	३७.	" सप्तविंश	३७.१-३७.४
१६.	" एकोनविंश	१६.१-१६.११	३८.	" अष्टाविंश	३८.१-३८.५
१७.	" द्वाविंश	१७.१-१७.१६	३९.	" एकोनविंश	३९.१-३९.३
१८.	" त्रयोदश	१८.१-१८.१३	४०.	" चतुर्विंश	४०.१-४०.३
१९.	" चतुर्दश	१९.१-१९.१५	क.	परिशिष्ट	
२०.	" पञ्चदश	२०.१-२०.१३	१.	रुचिषो का संक्षिप्त परिचय	१.१-१.२०
			२.	देवताओं का संक्षिप्त परिचय	२.१-२.१०
			३.	सन्धों का संक्षिप्त परिचय	३.१-३.६
			४.	वर्णन व्यक्ति, पदार्थ, मात्र-परिचय	४.१-४.११
			५.	वर्णानुक्रम-सूची	४१९-४३२

## संकेत - विवरण

अ०	= अष्टाष्टकी
अथर्व०	= अथर्ववेद
आप० परि०	= आपस्तम्ब परिभाषा
आश्व० श्री०	= आश्वलायन श्रौतसूत्र
आश्व० गृ०	= आश्वलायन गृह्यसूत्र
उ० भा०	= उषट् भाष्य
ऋ०	= ऋग्वेद
ऐत० आर०	= ऐतरेय आरण्यक
ऐत० ब्रा०	= ऐतरेय ब्राह्मण
क० भा०	= कर्क भाष्य
कपि० क० सं०	= कपिलसंहिता कठ संहिता
काठ० सं०	= काठक संहिता
का० श्री०	= कात्यायन श्रौतसूत्र
का० सं०	= काण्व संहिता
कौषी० ब्रा०	= कौषीठिक ब्राह्मण
गा० र० उ०	= गायत्री रहस्य उपनिषद्
गो० ब्रा०	= गोपब्राह्मण
जैमि० उ० ब्रा०	= जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण
जैमि० ब्रा०	= जैमिनीय ब्राह्मण
ता० म० बी०	= ताण्ड्य महाब्राह्मण
तैत्ति० आ०	= तैत्तिरीय आरण्यक
तैत्ति० ब्रा०	= तैत्तिरीय ब्राह्मण
तैत्ति० सं०	= तैत्तिरीय संहिता
दे० प०	= देववाजिक पद्धति
नारा० वृ०	= नारायण वृत्ति
नि०	= निरुक्त
नि० दु०	= निरुक्त दुर्ग वृत्ति

पृ०	= पृष्ठ
बृह०	= बृहदेवता
बृह० उप०	= बृहदारण्यक उपनिषद्
बौ० शु०	= बौधायन शुक्ल सूत्र
बौ० श्री०	= बौधायन श्रौतसूत्र
ब्रह्म० पु०	= ब्रह्माण्ड पुराण
भ० पु०	= भविष्य पुराण
म० ब्रा०	= मन्त्र ब्राह्मण
म० भा०	= महाभाष्य
महा० शा०	= महाभारत सान्नि पर्व
महो० भा०	= महोदर भाष्य (यजुर्वेद)
मैत्र० उ०	= मैत्रायणी उपनिषद्
मैत्र० सं०	= मैत्रायणी संहिता
यजु०	= यजुर्वेद (शुक्ल)
य० सं०	= यज्ञ सरस्वती
या०	= याचस्पत्यम्
वाच० सं०	= वाचस्पतेयि संहिता
वे० र० पू०	= वेद रहस्य पूर्वाह्न
वै० य० अ०	= वैदिक यन्त्रालय अजमेर
रु० क०	= रुद्रकरपट्टम्
रुद्र० ब्रा०	= रुद्रपत्र ब्राह्मण
शं० श्री०	= शंखायन श्रौतसूत्र
श्री० को०	= श्रौतकोश
सर्व०	= सर्वानुक्रमसूत्र (यजुर्वेद)
सप्त०	= सप्तवेद
सा० भा०	= सारवण भाष्य
हरि० ब्रा०	= हरि स्वामी भाष्य

# भूमिका

'वेद' दीर्घकाल तक भारतीय जन-जीवन के अंग रहे हैं। आज यह समझा जाता है कि भारतीय जन-जीवन भी वेद विज्ञान से बहुत दूर आ गया है। किन्तु 'यजुर्वेद' वेद का एक ऐसा प्रधान है, जो आज भी जन-जीवन में अपना स्थान किसी न किसी रूप में बनाये हुए है। वेद-संस्कृति के अनुयायी पश्चिमी सभ्यता से कितने भी प्रभावित क्यों न हो गये हों, जन्म से लेकर विवाह एवं अन्त्येष्टि तक संस्कारपरक कर्मकाण्डों से उनका सम्बन्ध छोड़-छुट बना ही रहता है। संस्कारों एवं पञ्चीय कर्मकाण्डों के अधिकांश मंत्र यजुर्वेद के ही हैं। उनकी मंत्र शक्ति एवं त्रेलोक्यों का सम्पर्क भारतीय जन-जीवन के साथ निरन्तर बना ही हुआ है।

## यजुः - यज्ञार्थक

यजुर्वेद के मंत्रों को 'यजुः' (यजुः) कहते हैं। ऋग्वेद एवं सामवेद के मंत्र पद्यात्मक हैं, यजुर्वेद के मंत्र उन मन्त्रों से मुक्त हैं। 'गद्यारूपको यजुः' के अनुसार वे गद्यपरक हैं। अन्य ठीक के अनुसार 'अनिष्ठाक्षरावसानो यजुः' अर्थात् जिनमें अक्षरों की संख्या निर्धारित नहीं है, वे 'यजुः' हैं। यह निर्धारण मंत्रों की रचना को लेकर किये गये हैं। यों यजुर्वेद में भी यही संख्या में पद्यात्मक छन्दों में मन्त्र हैं। ऋग्वेद के लगभग ६६३ मंत्र गद्यात्मक यजुर्वेद में हैं। भले ही उन्हें परम्परा के अनुसार गद्यात्मक शैली में बोला जाता हो।

यजुर्वेद को 'यज्ञ' से सम्बन्धित माना जाता है। 'पाणिनि' ने 'यज्ञ' की व्युत्पत्ति 'यज्' धातु से की है। ब्राह्मण ग्रन्थों में 'यजुः' को यज् धातु से सम्बद्ध कहा गया है। इस प्रकार 'यजुः' 'यज्' तथा 'यज्ञ' तीनों एक दूसरे के पर्याय हो जाते हैं। जैसे—

यजिष्ठं तु यजुर्वेदं तेन यजमयुक्तम्।

यजनात् स यजुर्वेद इति श्रुतिविनिश्चयः ॥

(यजुः पु० २.१८२२)

अर्थात् यजुर्वेद में जो कुछ भी प्रतिपादित है, उसी से यज्ञ का यजन किया गया। यज्ञों के यजन के कारण ही उसे यजुर्वेद नाम दिया गया है, ऐसा साक्ष

का निश्चय है। इसी तथ्य की पुष्टि निरुक्तकार ने 'यजुर्वेदो' कथन से की है (नि० ७.१२)। 'यजुर्भिर्पयति' (काठ० सं० २.७.१) 'यजुस्तत्पाद' (यज्ञात्) अजायत (काठ० सं० १.०.२१) 'यज्ञो ह वै नापैतच्छयुरिति' (शत० ब्रा० ४.६.७.१३) इत्यादि श्रुतिवचनों से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि यज्ञ अथवा यजन को केवल लौकिक अभिहोत्रपरक कर्मकाण्ड तक ही सीमित नहीं माना जा सकता। पाणिनि ने 'यज्' धातु का अर्थ देवपूजन, संगतिकरण एवं दान किया है। इस आधार पर अपने से उत्कृष्ट चेतन सत्ता के प्रति श्रद्धा का विकास एवं उसकी अधिष्ठापना, उस दिव्य अनुज्ञासून में संगठित होकर कर्म का अनुष्ठान तथा इस प्रकार प्राप्त विभूतियों को कार्यात्मकारी प्रयोजनों के लिए समर्पित करना वह सब क्रियाएँ यज्ञ के अन्तर्गत आ जाती हैं। वेदोक्त यज्ञ को ऐसे ही व्यापक सन्दर्भ में लिया जाना चाहिए। 'यज्ञ' को व्यापक अर्थ में लेने के सन्दर्भ में बुराने, नवे, सनातनी, आर्यसमाजी सभी विद्वान् एक मत हैं। गौतमजी ने भी 'सङ्ख्यज्ञः यज्ञः सृष्ट्या' (३.१०) कहकर यज्ञ के व्यापक भाव को ही उभारा है।

## यज्ञ की मुख्य धाराएँ

यज्ञ की मुख्य दो धाराएँ कही जा सकती हैं—

(१) यज्ञ का यह सनातन रूप, जो अनादि काल से अबाध गति से चल रहा है, उससे (क) विश्व की सृष्टि हुई और (ख) उसी के अन्तर्गत सृष्टि का पोषण-परिवर्तन चक्र चल रहा है। (२) यज्ञ का जौकिक रूप, जो संबन्धपूर्वक किया जाता है। उसके अन्तर्गत (क) अग्निहोत्रादि विविध यजन-कर्मकाण्ड आते हैं तथा (ख) लोकव्यवहार में जीवन यज्ञ के रूप में जो अनिवार्यतः प्रयुक्त होता है। इस लौकिक यज्ञीय प्रक्रिया का मूल सूत्र है—अपने अधिकार क्षेत्र को श्रेष्ठतम वस्तु को देवकार्यों अथवा लोकमंगल के लिए समर्पित कर देना। मीमांसा आदि शास्त्रों ने यज्ञ के लौकिक कर्मकाण्ड को ही विशेष रूप से प्रकाश दिया है, किन्तु वेद तो यज्ञ की सनातन, सृजनत्मक एवं पोषणपरक धारा से ओतप्रोत हैं।

पुरुष सूक्त में तो विराट् यज्ञ पुरुष से ही सारी सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है। ऋक्, यजु, साम आदि भी उसी यज्ञ से प्रकट हुए हैं—

तस्माद् यज्ञात्सर्ववृत्तः ऽ ऋक् सामानि जज्ञिरे ।

छन्दा—सि जज्ञिरे तस्माद् यजुः तस्मादजायत ॥

(अ० १०.१०.१, यजु० ३१.४)

अर्थात् 'उस सर्ववृत्त यज्ञ से ऋकाओं एवं साम आदि की उत्पत्ति हुई। उसी से छन्द आदि तथा 'यजुः' भी उत्पन्न हुए।' यह सर्ववृत्त यज्ञ जैसे-जैसे विकसित होता है, वैसे-वैसे सृष्टि का विकास भी होता जाता है। पुरुष सूक्त के अनुसार जो हो चुका है (यद् भूतं) तथा जो होने वाला है (यत् भविष्यति), वह सब यह विराट् पुरुष ही है (पुरुष एव इदं सर्वं)। सृष्टि के पोषण-संचालन के लिए भी उसी विराट् सत्ता का यजन किया जाता है। यह विराट् यज्ञ प्रकृति में चलता ही रहता है—

कपुस्त्रेण हविषा देवा यजन्मन्त्रतः ।

वसन्तो ऽस्थासीद्वायं प्रीथ्य ऽ इन्द्रः शरद् हविः ।

(यजु० ३१.१४)

जब देवगणों ने उस विराट् चेतना से यजन किया, तो (उस यज्ञ में) वसन्त ऋतु आज्य के रूप में, प्रीथ्य ऋतु ईधन के रूप में तथा शरद् ऋतु हवि के

रूप में प्रयुक्त हुए। वेद में यज्ञ के विराट् स्वरूप के दर्शन बहुत स्पष्टता से स्थान-स्थान पर होते ही रहते हैं। लौकिक सन्दर्भ में भी सास्रकारों ने यज्ञ को दिव्य अनुशासन में किये गये श्रेष्ठ कर्म की संज्ञा दी है। 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' (श्रेष्ठतम कर्म ही यज्ञ है) उक्ति से यह बात स्पष्ट होता है।

मनुस्मृति के अनुसार वेदाध्ययन-ज्ञानविस्तार ब्रह्मयज्ञ है, तर्पण पितृयज्ञ है, होमादि कर्म देवयज्ञ है, बलिर्वैश्वदि कर्म भूतयज्ञ है तथा अतिथि आदि को तृप्त करना मनुष्य यज्ञ है।

यज्ञ चातु के अनुसार 'देवयजनं उच्चतम आदत्तं के लिए 'संगतिकरण' (सहयोगात्मक प्रवृत्ति के साथ) एवं दान (अपने अधिकार की प्रिय वस्तु को समर्पित करना) यज्ञ है। इस दृष्टि से निर्धारित अथवा स्वीकृत श्रेष्ठ कर्तव्यों को भी यज्ञ ही कहा जाता है। यह बात विभिन्न ग्रन्थों में जगह-जगह बहुत स्पष्टता से मिल जाते हैं; जैसे—

आरम्भयज्ञः श्राद्धाय हविर्यज्ञा विष्टः स्मृतः ।

परिवारयज्ञः शुक्राय जपयज्ञ द्विजास्तथा ॥

(यजु० ब्र० ३१.११)

अर्थात् श्राद्धों के लिए पराक्रम-उद्योग करना यज्ञ है। होम आदि (अन्नादि साधनों से यजन) करना वैश्यो का यज्ञ है। शूद्रों का यज्ञ श्रेष्ठ सेवा कर्त्य है तथा ब्राह्मणों के लिए जप आदि (आत्म चेतना को परमात्म चेतना से युक्त करने वाले) कर्म यज्ञ हैं।

जहाँ अग्निहोत्रपरक यज्ञ की बात आती है, उसे भी अग्नि में सामग्री डाल देने जैसी छोटी क्रिया तक ही सीमित नहीं माना जा सकता। उसके साथ भी प्रवृत्तियों के शोधन, परिवारण के सन्तुलन तथा श्रेष्ठ सामाजिक परम्पराओं के विस्तार जैसे श्रेष्ठ लक्ष्य जोड़कर रखे जाते हैं। ब्रह्मीय कर्मकाण्ड के साथ श्रेष्ठ धारणाओं, विचारणाओं एवं प्रेरणाप्रवाहों को जोड़कर रखना अनिवार्य है। इन्हीं सब बातों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए मीमांसा दर्शन के अष्टम पाद के सूत्र ९.१०.११ में स्पष्ट कहा गया है कि यज्ञ केवल धन का खर्च कर देने से ही सिद्ध नहीं होता, उसके लिए जप आदि करना भी आवश्यक है।



विद्वानों का मत है कि विधिवत् किये गये यजन कार्य से प्रकृति के संतुलन चक्र (इकोलॉजिकल साइकिल) को सहयोग मिलता है। इसी दृष्टि से वेद में यजन कार्य का महत्त्व बतलाते हुए कहा गया है— 'इवं वेदि परोक्षन्तः पृथिव्याः अवं यज्ञो भुवन्स्य नाभिः' (यजु० २३.६२) अर्थात् यह यज्ञ वेदिका पृथ्वी का अन्तिम छोर है और यह यज्ञ इस भुवन की नाभि-केन्द्र स्थल है। यज्ञ वेदी पृथ्वी का

अन्तिम छोर कैसे है? अन्तिम छोर तक पहुँचना पुरुषार्थ की उत्कृष्टता का स्रोतक है। पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ यज्ञानुष्ठान है, यह भाव है। ब्रह्माण्ड का संचालन यज्ञीय प्रक्रिया से हो रहा है, इसलिए यज्ञ को उसकी नाभि (यज्ञो भुवन्स्य नाभिः) कहा गया है। यजुर्वेद के मंत्रों का सम्बन्ध यज्ञ से जोड़ते समय यज्ञ के इन्हीं व्यापक सन्दर्भों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

## यजुः के अन्य सन्दर्भ

शतपथ ब्राह्मण (१०.३.५.१-२) में यजुः का दूसरा भाव स्पष्ट करते हुए उसे 'यत् + जू' का संयोग कहा गया है। यत् का अर्थ होता है-गतिशील तथा जू का अर्थ होता है-आकाश। इस सन्दर्भ से 'यजुः' का अर्थ होता है, आकाश में विचरण करने वाला-गतिशील। यह भी सूत्ररूप में सृष्टि के विकास के यज्ञीय क्रम का ही संकेत है। सृष्टि के निर्माण से पूर्व जू आकाश रूप में सर्वत्र एक ही चेतन तत्व फैला हुआ था। चेतना में संकल्प उभरा तथा आकाश में सूक्ष्म कण (सब एटॉमिक पार्टिकल्स) उत्पन्न हुए। यह गतिशील थे, इसलिए 'यत्' कहे गये। भारतीय वेदविज्ञान में अदृश्य, सूक्ष्म प्रवहमान तत्व को वायु कहा है।

अस्तु, उक्त प्रक्रिया को 'आकाशात् वायुः' आकाश से वायु की उत्पत्ति कह सकते हैं। इन प्रवहमान सूक्ष्म कणों में गति के कारण सूक्ष्म विद्युत् विभव (फीबिल इलेक्ट्रिक पोटीशियल) उत्पन्न हुआ। इस विद्युत् ऊर्जा को ही 'अग्नि' की उत्पत्ति कहा जा सकता

है। 'वायोः अग्निः' के अनुसार वायु से अग्नि का विकास हुआ। इन तीनों (जू-आकाश, यत्-सूक्ष्म प्रवहमान कण तथा उस गति से उत्पन्न विद्युत् विभव) के संयोग से ही परमाणुओं की रचना हुई। केन्द्रक में धन विद्युत् विभवयुक्त सूक्ष्मकण (न्यूक्लियस में प्रोटॉन्स) तथा उनके आसपास के आकाश को घेरते हुए गतिशील ऋण विभवयुक्त सूक्ष्मकण (इलेक्ट्रॉन्स) यही है विभिन्न पदार्थों के परमाणुओं की संरचना। इन्हीं का अनुचल बदल जाने से पदार्थ बदल जाते हैं।

विश्व ब्रह्माण्ड में पदार्थ के निर्माण की उक्त प्रक्रिया विज्ञान सम्मत भी है। 'यत्' (गतिमान्) और 'जू' (स्मिर-आकाश) के संयोग से पंच भूतत्मक जगत् की सृष्टि के इस प्रकरण से भी यह स्पष्ट होता है कि यह प्रक्रिया सृष्टि निर्माण के यज्ञीय चक्र की ही सीढ़ी है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार भी यजुः मंत्रों को ब्रह्माण्डव्यापी यज्ञीय प्रक्रिया से सम्बद्ध माना जाना उचित है।

## यजुर्वेद की परम्परा एवं शाखाएँ

वेद को 'श्रुति' कहा जाता है। दिव्य ज्ञान का यह प्रवाह गुरु के श्रोमुख से सुनकर शिष्यों द्वारा विस्तार पाता रहा। महर्षि वेदव्यास ने उसे चार भागों में संपादित करके व्यवस्थित किया। उस क्रम में ऋग्वेद—पैत को, यजुर्वेद—वैशम्पयन को, सामवेद—जैमिनि को तथा अथर्ववेद—सुमन्तु को सौंपा गया। उक्त विषय ऋग्वेद की भूमिका में विस्तार से दिया गया है। यजुर्वेद की शाखाओं का विस्तार महर्षि वैशम्पयन के शिष्यों के द्वारा होता रहा। इन शाखाओं की संख्या तो बहुत बढ़ती जाती है।

किन्तु अभी तक उनके प्राभाषिक सूत्र प्राप्त नहीं हो सके हैं।

महाभाष्यकार पतंजलि के कथन 'एकस्तम्भपर्युशाखा' के अनुसार यजुर्वेद की १०१ शाखाएँ हैं। चरकव्यूह परिशिष्ट में यह संख्या ८६ कही गयी है। इनका बोझ-बहुत उल्लेख पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के यजुर्वेद की भूमिका में मिलता है, किन्तु अलग-अलग चरणव्यूहों में इनकी संख्या भिन्न-भिन्न मिलती है। इतिहास ग्रन्थ भी इस सन्दर्भ में मौन हैं, इसलिए उक्त शाखाओं का निर्धारण अभी



शोध का ही विषय कहा जा सकता है। सामाजिक रूप से उपलब्ध छह शाखाओं का संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

यजुर्वेदाध्यायी परम्परा में दो सम्प्रदाय\* प्रमुखतया परिलक्षित होते हैं— (१) ब्रह्म सम्प्रदाय अथवा कृष्ण यजुर्वेद (२) आदित्य सम्प्रदाय अथवा शुक्ल यजुर्वेद।

(१) ब्रह्म सम्प्रदाय में 'वेद' के अन्तर्गत बन्ध और ब्राह्मण दोनों को एक साथ स्थान दिया जाता है— 'बन्ध ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' (आप० परि० ३१)। यज्ञ तथा ब्राह्मण भाग का एकत्र मिश्रण ही 'कृष्णत्व' का मुख्य आधार है। 'सर मोनियर विलियम' ने भी अपने प्रसिद्ध कोष ग्रन्थ ( संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी) में लिखा है कि 'कृष्ण यजुर्वेद' ब्राह्मणभाग से मिश्रित होने से 'कृष्ण' कहा जाता है। शतपथ ब्राह्मण में 'यज्ञ' को कृष्ण की संज्ञा प्रदान की गई है और 'कृष्ण यजुर्वेद' मुख्यतः यज्ञीय विधान प्रस्तुत करता है, कटाचित्त इसे कारण इसे 'कृष्ण-यजुर्वेद' का अधिधान प्राप्त हुआ— यज्ञो हि कृष्णः। स य स यज्ञः। तत्कृष्णाग्निम्। ( शत० ब्रा० ३.२.१.२८ — यज्ञ ही कृष्ण है। यज्ञ कृष्णाग्नि है।) इस प्रकार हम देखते हैं कि यज्ञों के साथ ही साथ तन्निर्णायक ब्राह्मणों का

निरासे सम्मिश्रण पाया जाता है, वह 'कृष्ण यजुर्वेद' कहा जाता है।

(२) आदित्य सम्प्रदाय के अन्तर्गत शुक्ल यजुर्वेद की गणना की जाती है। शतपथ ब्राह्मण में इस सम्बन्ध में लिखा है— आदित्यानीमानि शुक्लानि यजुर्वि वाक्सनेयेन वाजसनेयेनाख्यायते (१४.१.५.३३) अर्थात् वे आदित्य-यजुः—शुक्ल-यजुः के नाम से प्रसिद्ध तथा वाक्सनेय वाजसनेय के द्वारा आख्यात हैं। इस 'यजुः' में दर्शपूर्णमासादि अनुष्ठानों के लिए केवल यज्ञों का ही संकलन है।

यही यज्ञों का विशुद्ध तथा अमिश्रित रूप ही 'शुक्ल यजुः' के 'शुक्लत्व' का मुख्य हेतु है। शुक्ल यजुर्वेद को वाक्सनेय-संहिता भी कहा जाता है। 'वाक्' अन्न को कहते हैं और 'सनि' दान को।

इस प्रकार अन्न का दान करने के स्वभाव वाले महर्षि की सन्तान होने के कारण 'वाक्सनेय' को ही 'वाक्सनेय' कहा जाता है और इनके द्वारा आख्यात होने से 'वाक्सनेय-संहिता' नाम पड़ना स्वाभाविक है— (वाक्सनानस्य सन्निर्दानं यस्य स वाक्सनिसत्प्राप्त्यः कश्चिन्नमर्षिर् तदपार्थ वाक्सनेयो वाक्सनेयः, तेन प्रोक्तानि यजुर्वि तन्नाम्ना व्यवहियते)।

## कृष्णयजुर्वेद की शाखाएँ—संहिताएँ

वर्तमान में इस शाखा की ४ संहिताएँ ही उपलब्ध हैं—(१) तैत्तिरीय (२) मैत्रायण (३) कठ और (४) कपिष्ठल कठ।

(१) तैत्तिरीय संहिता—यह शाखा अपने में परिपूर्ण कही जा सकती है; क्योंकि इस शाखा के संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, श्रौतसूत्र तथा गृह्यसूत्र आदि सभी ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। महाराष्ट्र

का कुछ हिस्सा तथा आन्ध्र-प्रविड़ का बहुसं भाग इसी का अनुयायी है। सबसे बड़ी बात तो यह कि वेदों के एक मात्र सर्वाधिकायी धाम्यकार आचार्य सायन इसी शाखा के अनुयायी थे और बड़ी कारण का कि उन्होंने सर्वप्रथम तैत्तिरीय संहिता पर ही अपना वैदिकपूर्ण भाष्य लिखा है। इनसे पूर्व का इस संहिता पर केवल एक ही भाष्य सुना जाता है, वह है भट्ट

\* (क) शुक्ल यजुर्वेद केवल यज्ञ निर्वाह, यजुः प्रत्यय ब्रह्मणे विहितम्, कृष्णयजुर्वेदप्रत्ययसु तस्य विधेयो यज्यन्वाचनेन सौद तद् यथावद्व्यवहारको ब्रह्मण्यवधेर्वि विवक्षितः। तन्मेव यजुर्वेदं यजुर्वेदं शुक्लं कृष्णं वेदः। (भूमिका-शुक्ल-यजुर्वेद-संहिता-प्रथम संस्करण १९७१ मोतीलाल नमरसिंहाजी)

(ख) इस सम्बन्ध में एक प्राचीन आख्यान प्रसिद्ध है। मुक्त वैशम्पयन के नाम से प्रसिद्ध वाक्सनेय ने स्वकीय यजुर्वेद का रक्षण कर लिया और मुक्त के आदेश से अन्य ऋषियों ने तैत्तिरीय का रक्षण करके उस यज्ञ यजुर्वेद को अन्न कर लिया। पुनः स्वर्ग को प्रप्त करके, उनके ही अनुष्ठान से केवी वाक्सनेय ने शुक्ल-यजुर्वेद की उत्पत्ति की। (कार० सं० को सा० भा० भूमिका श्लोक ६-१२)

शास्त्र मित्र ( ११वीं शती) कृत । 'ज्ञान-वज्र' नामक यह भाष्य भी पर्याप्त 'गुरु-गम्भीर' है । तैत्तिरीय संहिता में ७ काण्ड, ४४ ब्रह्माण्ड तथा ६३१ अनुवाक हैं, जिसका वर्णविषय यज्ञीय कर्मकाण्ड ( चैरोदाश, याजमान, वाजपेय, राजसूय इत्यादि नामा यामानुष्मन्) का विस्तृत वर्णन है ।

(९) वैश्वामनी संहिता—यह संहिता वर्तमान में सर्वप्रथम जर्मनी से डा० ओदेर के सौजन्य से प्रकाश में आई है, बाद में स्वाध्याय मण्डल, जीन्ध (सतारा) से सन् १९४१ में श्री सातवलेकर जी ने प्रकाशित की है । इसके वर्ण विषय भी तैत्तिरीय संहिता जैसे-दर्शपूर्णवास, आधान, पुनराधान, चतुर्धास्य, वाजपेय क्राम्येष्टि, राजसूय, अग्निर्धिति, सौत्रामणी इत्यादि हैं । चूंकि यह संहिता कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध है, इसलिए इस संहिता के मन्त्र तथा ब्राह्मण तैत्तिरीय तथा काठक संहिता में भी उपलब्ध होते हैं ।

(१०) काठ संहिता—पुराणों में काठक लोगों को 'मध्यप्रदेशीय या माध्यम' कहा गया है, जिससे उनका मध्यप्रदेशीय होना सिद्ध होता है । महर्षि पञ्चजलि ने इस संहिता के गाँव-गाँव में प्रचलित होने का उल्लेख अपने महाभाष्य में किया है- 'ब्रह्मे-ब्रह्मे काठक कालापकं च प्रोच्यते ।' (म० भा० ४.३.१०१) परन्तु वर्तमान में इस संहिता के अध्येताओं की संख्या नगण्य ही है । इस संहिता में ५ काण्ड हैं, जिनके नाम हैं- इतिमिका, मध्यमिका, ओरेमिका, वाज्मानुवाक्या तथा अश्वमेधाधनुवचन । इन छण्डों के उपलब्धों को 'स्थानक' कहा जाता है, जो वैदिक साहित्य में अन्यत्र अनुपलब्ध हैं । काठसंहिता में स्थानक ४०, अनुवाचन १३, अनुवाक ८४३, मन्त्र ३०९१ तथा मन्त्र ब्राह्मण

की संयुक्त संख्या १८ हजार है । इनके वर्ण विषय भी अन्यो (कृष्णयजुर्वेद की अन्य संहिताओं) की तरह हो दर्शपूर्णवास, अग्निष्टोत्र, अग्निहोत्र, आधान, निरुद्ध पशुबन्ध, वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध इत्यादि हैं ।

(४) कपिष्ठल कठ संहिता—महर्षि पाणिनि के सूत्र—कपिष्ठलो गोत्रे (८.३.९१) तथा निरुद्ध टीका-कार दुर्गाचर्य के 'अहं च कपिष्ठलो वासिष्ठः' (दुर्गा-वृत्ति ४.४) कथनानुसार 'कपिष्ठल' किसी ऋषि का नाम सिद्ध होता है; परन्तु कतिपय विद्वानों की गवेषणा इसे 'स्थान' मानने के पक्ष में है । उनके अनुसार 'कपिष्ठल' ही आज कुठलेत्र का सरस्वती नदी के पूर्वी तट पर विद्यमान 'कैवल' नामक स्थान है, इसका उल्लेख 'काशिका' (८.३.९१) तथा पराहमिहिरकृत 'बृहत्संहिता' (१४.४) में भी प्राप्त होता है । इस संहिता की कोई भी सम्पूर्ण प्रति आज उपलब्ध नहीं है । इसकी एक अचूरी प्रति 'भारतसेय संस्कृत विश्वविद्यालय' के पुस्तकालय 'सरस्वती कवन' में सुरक्षित है । यह संहिता क्राम्येद के स्थान अष्टक तथा अध्यायों में विविक्त है । इसमें कुल ६ अष्टक और ४८ अध्यायों का उल्लेख मिलता है; किन्तु उपलब्ध प्रति में प्रथम अष्टक के ८ अध्याय के अतिरिक्त कोई भी अष्टक पूर्ण नहीं है, सभी में कुछ न कुछ अध्याय गायब हैं । फिर भी यह अपूर्ण ग्रन्थ भी इस (कृष्ण यजुर्वेद) शाखा का महत्वपूर्ण ग्रन्थ कहा जा सकता है । इस संहिता का कर्कशविषय तथा सौत्री कठसंहिता के ही स्थान है ।

कृष्ण यजुर्वेद की शाखाओं का विस्तृत विवेचन-ज्ञातज्ञात्यों जीों दि कृष्णयजुर्वेद पुराणम् (ज०-२, पृ० २३५-२५३) में डा० मंगासागर राय ने प्रस्तुत किया है ।

## शुक्ल यजुर्वेद की शाखाएँ-संहिताएँ

शुक्ल यजुर्वेद की शाखाओं की दो ही प्रधान संहिताएँ वर्तमान में उपलब्ध होती हैं- (१) माध्यन्दिन संहिता (२) काण्व संहिता ।

(१) माध्यन्दिन संहिता—यह शाखा उत्तर भारत में विशेष रूप से प्रतिष्ठित हुई । महर्षि वैशम्पायन से यजुर्वेद का अध्ययन महर्षि वाङ्मत्स्वय आदि ने किया । शुक्ल यजुर्वेद महर्षि वाङ्मत्स्वय से महर्षि यध्यन्दिन ने अधिगत किया । इसी कारण यजुर्वेद का अपरनाम 'माध्यन्दिन-संहिता' भी है ।

कदापि महर्षि वाङ्मत्स्वय के एकधिक शिष्यों ने 'यजुष' को आत्मसात् किया; परन्तु इसमें विशिष्टता प्राप्त की । माध्यन्दिन ने तथा उस ज्ञान को विशेष रूप से स्वर्तित भी किया, इसलिए कालान्तर में वह 'माध्यन्दिन-संहिता' कहलाई (कदापि वाङ्मत्स्वयेन बहुष्ट शिष्येभ्यः उपदिष्टः तथापि ईश्वरकृपया यध्यन्दिनसम्बन्धितत्वा लोके ब्रह्मवर्ते-माही० भा० कजु० बुभिका) । आजकल ज्ञान उपलब्ध होने वाला यजुर्वेद 'माध्यन्दिन संहिता' ही है, अर्थात् इस संहिता

की ही यजुर्वेद का पर्याय मानना चाहिए। यह संहिता दो भागों में प्रविभक्त है (१) पूर्वविशति (२) उत्तरविशति। पूर्वविशति ऋग प्रथम से विशति अध्याय पर्यन्त है। प्रत्येक अध्याय में कण्डिकाएँ हैं और प्रत्येक कण्डिका कुछ मन्त्रों से मिलकर बनी है। जन-सामान्य कण्डिका की ही मन्त्र समझते हैं, परन्तु एक कण्डिका कई भागों में वागादि अनुष्ठान करने में प्रयुक्त होने से कई मन्त्रों वाली होती है। पूर्वविशति में कुल १२१९ कण्डिकाएँ और मन्त्र संख्या २५८५ है। उत्तरविशति भाग एकविंशति से चत्वारिंश अध्याय पर्यन्त है। इसमें भी प्रत्येक अध्यायों में कुछ कण्डिकाएँ और प्रत्येक कण्डिका कुछ मन्त्रों का समुच्चय है। इस प्रकार उत्तरविशति भाग ७६४ कण्डिकाओं और १४०३ मन्त्रों से युक्त है।

सम्पूर्ण याध्यान्दिन संहिता में ४० अध्याय, १९७५ मन्त्र हैं। इसका वर्ण्य विषय यज्ञीय कर्मकाण्ड के लिए मन्त्र प्रस्तुत करना है। कुल यजुर्वेद में कर्मकाण्ड और मन्त्र दोनों हैं, इसमें कर्मकाण्ड विद्यापक साहाय्य प्राप्त नहीं है, केवल विशुद्ध मन्त्रभाग ही है, परन्तु इन मन्त्रों का उपयोग यज्ञीय कर्मकाण्डो-दर्शपूर्णमास, आग्न्याचन, वृष निर्माण, वाजपेय, राजसूय, ठक्का सम्भरण, शतशुक्र, चित्पारोहण, यमोर्ध्वरा, मीनमन्त्र, अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध, पितृमेध, प्रजापति, महावीर सम्भरण इत्यादि के लिए होता है। इसका अन्तिम ४०वाँ अध्याय विशुद्ध ज्ञान-परक है, उसका नाम 'ईशकेनकठप्रश्नमुद्र्याद्व्ययतिसिद्धिः' है। इसे अर्चि ठक्कनन्द होने का गौरव प्राप्त है—

ईशकेनकठप्रश्नमुद्र्याद्व्ययतिसिद्धिः ।

ऐतरेयं च छन्दोभ्यं बृहदारण्यकं दत्तम् ॥

इसी संहिता के ३४वें अध्याय के छह मन्त्र भी अर्चिन्द की कोटि में माने गये हैं, उन्हें 'शिव संकन्धोर्ध्वनन्द' की संज्ञा प्राप्त हुई है।

(२) **काण्व संहिता**— इस संहिता का प्रचलन वर्तमान में महाराष्ट्र प्रान्त में ही देखा जाता है; परन्तु प्राचीनकाल में इस शाखा का प्रचार क्षेत्र उत्तर भारत ही था। इस शाखा के प्रमुख आचार्य महर्षि काण्व रहे हैं। उनका आश्रम 'मासिनी' नदी के तीरे पर स्थित था। यह स्थान उत्तरप्रदेश के बिजनौर जिले में है। 'मासिनी' नदी आजकल 'मन्तर' के नाम से एक सपुष्पक नदी के रूप में विद्यमान है। महर्षि काण्व का सम्पूर्ण उपलब्ध महाभारत (आदि० ६३१८) तथा अभिज्ञान शकुन्तलम् (कालिदास) में प्राप्त होता है।

इस शाखा का उत्तर भारत से सम्बन्ध होने का एक प्रमाण आन्तरिक भी है। इसी संहिता के ११वें अध्याय के ११वें मन्त्र में कुछ तथा पाञ्चालदेशीय ठक्का का नामोन्मुख पाया जाता है—  
एव च कुरवो रज्ज एव पञ्चालो रज्जः । इससे भी इस शाखा के उत्तर-भारत में प्रचलित होने का प्रमाण मिल जाता है।

'काण्व संहिता' मद्रास के 'आनन्दवन' नामक नगर से प्रचलित हुई है। इसमें भी ४० अध्याय हैं, साथ ही ३२८ अनुष्ठान तथा २०८६ मन्त्र हैं। इसकी मात्र संख्या याध्यान्दिन संहिता से ११९ अधिक है। इस संहिता के वर्ण्य विषय भी याध्यान्दिन संहिता के समान ही है। कुल यजुर्वेद की शाखाओं का विशुद्ध वर्णन ३० गणसागर लिखित 'शाखात् ओक हि द्वादष्ट यजुर्वेद ब्राह्मण' नामक ग्रन्थ में (पृ० १-५० ६-१७) में उपलब्ध होता है।

## प्रस्तुत प्रयास के सन्दर्भ में

यजुर्वेद के मन्त्रों के अर्थ प्राचीन आचार्यों ने यज्ञीय कर्मकाण्ड के सन्दर्भ में किये हैं। यजुर्वेद (शुक्ल यजुर्वेद) पर प्राचीन आचार्यों में 'तस्य' (१०४३ ईसवी के आस-पास) तथा बह्वेधर (१५८८ ई० के लगभग) के काण्व प्रमुख रूप से उपलब्ध हैं। यजुर्वेद (याध्यान्दिन संहिता) पर आचार्य उषट का भाष्य उपलब्ध होने से आचार्य सायण (१३२५-१३८७ ई०) ने इस पर लेखनी की

तत्त्वज्ञान। इन आचार्यों ने अपने भाष्यों का आधार यज्ञीय कर्मकाण्ड की ही प्रमुख रूप से किया है। कहीं-कहीं शिक्षित सकेत यह के विरुद्ध सन्दर्भों की ओर भी हुए हैं। किन्तु मुख्यतः कात्यायन श्रौतसूत्र के सन्दर्भ देते हुए यज्ञीय कर्मकाण्ड ही उनका प्रमुख आधार रहा है।

उनके आचार्यों द्वारा प्रतिपादित कर्मकाण्ड परक अर्थों में अनेक प्रसंग अत्यन्त विवादास्पद हैं।

अश्वमेध प्रकरण के अन्तर्गत अश्वमेध प्रकरण तथा अश्व छेदन, अंगों की आहुतियों आदि के प्रसंग विद्वानों को वेद की कृतकत्व एवं गौरव के अनुरूप नहीं लगते।

आचार्य ठाकुर और महीधर ने कड़मत्त्व में यज्ञ-पक्षियों के बांधे जाने के प्रसंग में यह टिप्पणी की है कि उन्हें यज्ञ में कड़मने के लिए गहरे गड़ यज्ञ के रूप में छोड़ देने के लिए तय्यक जाता है— केन्द्रारण्य सर्वोऽस्मिन्मृगानां न तु हिंस्यते (यजु० २४.४० उ०. यही० ५०)। यह क्रिया कृषकोत्सर्ग (विश्व समुद्र की ओर छोड़ने) जैसी कोई क्रिया रही हो, तो किसी को उस पर क्या आपत्ति हो सकती है।

अश्व के अंगों की आहुति प्रसंग में उन्होंने लिखा है कि आज्ञा (यज्ञ) में अंगों की शक्तिशाली की अन्वेषण करके आहुतियों की जाएँ— आज्ञायाऽन्वेष्यन्ति कृत्वा आज्ञायाऽन्वेष्यन्ति परिकल्पन्तः, आज्ञायाऽन्वेष्यन्ति शक्तिशालीगणक्यं यज्ञात्कृत्वा शक्तिशालीगणक्यं (यजु० २५.१ यही० ५०)। इस प्रकार यज्ञ के अन्तर (हिंसाहीन कर्म) होनेके भाव की रक्षा की है किन्तु अन्वेषण के इन सब प्रकारों के बाद भी मृगकर्म केवल एवं अश्वमेध प्रकरण जैसे १५ गों के सन्दर्भ में कोई उचित समाधान मिला नहीं पड़ता।

५० श्रीपाद दामोदर सातवसेकर एवं आर्य समाज के वेदज्ञ विद्वानों ने कर्त्तव्य श्रम करके यज्ञवेद के मंत्रों के आध्यात्मिक अर्थ खोज दिये हैं। इस प्रकार ठीक विवादोत्पन्न प्रसंगों से उसे बचा लिया है। अध्यात्मियों को एक नयी दृष्टि भी इससे मिली है किन्तु यह अर्थ यज्ञीय कर्मकाण्ड से बिलकुल हटकर होने के कारण 'यज्ञ' के 'यज्ञीय' होने के साथ ही नृत्ति नहीं होती। यज्ञपरक व्याख्याएँ खोजने के लिए पूर्व आचार्यों के ही नाम देखने पड़ते हैं, जो विवादोत्पन्न प्रसंगों से मुक्त नहीं हैं।

इसके लिए उक्त सम्प्रदायों के आचार्यों को भी दोष नहीं दिया जा सकता। सर्वविदित है कि यज्ञान् बुद्ध के आधिभाव के समय तक वैदिक कर्मकाण्डों में

यज्ञ हिंसा आदि अनेक विकृतियों प्रवेश कर गयी थीं। उनके साथ अनेक सामाग्री तंत्र के प्रयोग जुड़ गये थे। समाज का उन विकृतियों से मुक्ति दिलाने के लिए ही वेन तोषकरा एवं यज्ञान् बुद्ध ने इस समय प्रचलित यज्ञ का विरोध किया था। उनका प्रभाव से वह परिपाटी सुप्त-शाय हो गयी थी।

यज्ञान् बुद्ध लगभग ५०० वर्ष ईसा पूर्व हुए थे। आचार्य उग्र ईसा के लगभग १००० वर्ष बाद तथा यज्ञधर लगभग १५०० वर्ष बाद हुए। उनके कर्म से कम १५०० से २००० वर्ष पूर्व सुप्त परिपाटी को खोजना था। जो सूत्र, ब्रह्मा वा कुरु-परम्पराओं में मिले होंगे, उनमें बुद्धकाल के समय किसी सामाग्री तंत्र परम्पराओं का मिश्रण भी अवश्य रहा होगा। सर्वनाम्ने समुत्पन्ने अर्द्ध स्वयंति पंडित (सर्वनाम की स्थिति में आधा बंधा लेने) की दृष्टि से उन्होंने जो कुछ किया वह आध्वन्यीय एवं वन्दनीय ही कहा जा सकता है किन्तु वर्तमान सन्दर्भ में यज्ञवेद के यज्ञीय परिपाटी कृत अर्थ की आवश्यकता को मथारा नहीं जा सकता।

इस पाक्ष में उक्त असमञ्जस का समाधान निम्नार्थों का विचार प्रभाव किया गया है। अर्ध अथ कर्म कराना चाहते हैं, तो दृष्टि भी प्रदान करते हैं। स्पष्ट है कि वेद ने 'यज्ञ' को सदैव व्यापक अर्थों में ही प्रयुक्त किया है। सृष्टि सृजन यज्ञ, सृष्टि पोषण यज्ञ, ब्रह्मण्यो का जीवन यज्ञ, कर्मयज्ञ एवं यज्ञीय कर्मकाण्ड, सभी उनकी दृष्टि में रहते हैं। उनके कथन कभी एक यज्ञ पर, कभी अन्य यज्ञ पर तथा कभी बहुअर्थक होकर एक साथ अनेक प्रसंगों पर घटित होते हैं। किसी सीमित सन्दर्भ के प्रति पूर्ववादी होकर उन्हें सारी अर्थों में निर्बंधित नहीं किया जा सकता। अतः खुले हृदय और परस्पर के साथ पत्रों की स्वाभाविक धाराओं के अनुरूप अर्थ करने पर ही वे सटीक बैठते हैं। यही नहीं कुछ ऐसे उपयोगी सूत्रों को भी प्रकट कर देते हैं, जिन्हें जैन-समग्र आदि के मानस के लिए नितान्त आवश्यक है।

## समुचित अर्थ के लिए स्मरणीय सूत्र

मंत्रार्थ करते समय कहीं 'यज्ञ' के विभिन्न रूपों को ध्यान में रखना आवश्यक होता है, कहीं मंत्र से सम्बद्ध

अर्थ, देवता एवं छन्द की प्रकृति को भी जानना आवश्यक होता है। कहा गया है— 'अग्नि, देवता, छन्द

आदि को जाने बिना जो भी वेदाध्ययन, अध्यापन आदि करता है, वह निरतिशय पाप का भारी होता है। इसके विपरीत जो ऋषि, देवता, छन्दार्द्रि को विधिवत् जानकारी के साथ स्वाध्याय-अध्यापन आदि करता है, वह सफल मनोरथ होता है, साथ ही यदि अर्थबोधपूर्वक अध्ययन-निर्वाह करता है, तो अधिक सफल-सफलतर प्रयत्नवाला होता है- एतान्यविद्विषा बोधीतेऽनुवृते-तस्य ब्रह्मनिर्वीर्य- कर्तृकम् भवत्यथ विज्ञापैतानि बोधीते-तस्य वीर्यवद्वत् बोधीति- तस्य वीर्यवत्तर भवति- ( कात्यायन प्रणीत सर्वा० ११)। यही तत्त्व बृहदेकताकार महर्षि शौनके ने इस प्रकार व्यक्त किया है, अविद्विषा ऋषि छन्दो ईवर्तं योगमेव च। बोधध्यायधेऽज्योदुषि पापीपाञ्चान्ये तु स्तः (बृह० ८.२३२)।

उक्त कथन का भाव बड़ा विवेक-सम्पन्न है। ऋषि, देवता एवं छन्दों के नाम रट लेने या न रटने से उसका उद्देश्य स्पष्ट नहीं होता। कुछ विचार करने से उसका भाव स्पष्ट हो जाता है।

ऋषि— किसी कथन का वास्तविक भाव धक्ता के व्यक्तित्व को जाने बिना निकालना कठिन है। सामान्य दृष्टि से 'मो कम जौन कुटिल खल कापी' कहने वाला निश्चित रूप से कोई अधम व्यक्ति ही लगेगा, किन्तु उक्त कथन कहने वाले 'संत सूरदास' हैं, यह बात स्पष्ट होते ही उक्त कथन को गहन आत्मचिंतन युक्त आध्यात्मिक संदर्भ में ले लिया जायेगा।

अस्तु, ऋषि के व्यक्तित्व और दृष्टि को ध्यान में रखकर ही उनके कथन का अर्थ किया जाना उचित है।

देवता— ऋषि किसी छोटी सी क्रिया का छोटे से उपकरण के पीछे सन्निहित किसी दिव्य केतन शक्ति की सक्रियता देखने हैं। उस देवशक्ति के सम्बन्ध में कोई अवधारणा न होने पर उस कथन का सही फल पकड़ में नहीं आ सकता। 'सोमेनादित्य कमिन्' (सोम से आदित्य की शक्ति मिलती है) इस कथन से यदि सोम को सोमवत्सनी का रस भर मान लिया जाय, तो कैसे काम चलेगा? यही सोम के दिव्य प्रकृति का वह स्वरूप स्पष्ट होना चाहिए, जो सूर्य को करोड़ों वर्षों से ऊर्जा का अविरल स्रोत बनाये हुए है।

अस्तु, वस्तुओं अथवा क्रियाओं से सम्बद्ध देव प्रवाहों की अवधारणा के बिना भी ठीक-ठीक अर्थ नहीं निकाले जा सकते।

छन्द— अभीष्ट भावों को व्यक्त करने वाले शब्दों को किसी विशेष अनुशासन में बाँध देने से छन्द बनते हैं। संस्कृत बड़ी समर्थ भाषा है, उसमें एक शब्द के लिए अनेक शब्द तथा एक शब्द के अनेक अर्थ उपलब्ध हैं, छन्द में मात्राओं की मर्यादा के अनुरूप शब्दों का चयन किया जाता है। उससे चित्र मात्राओं वाला दूसरा समानार्थक शब्द वहाँ नहीं रखा जा सकता, किन्तु यदि वह शब्द अनेकार्थक है, तो भी छन्दकार के भाव के अनुरूप ही उसका अर्थ वहाँ लेना होगा।

छन्द स्वयं में शब्दों के स्थान बहुत बार बदलने पड़ते हैं, अन्त में यदि उन्हें इधर से उधर रख दिया जाए, तो भाव बदल जाता है। जो छन्द की मर्यादा नहीं समझते, वे अन्वय के साथ न्याय कर पाएँ, यह कठिन है। फिर छन्द का सम्बन्ध उच्चारण एवं स्वर विज्ञान से भी है। मंत्र प्रयोग में उसके भाव के अनुरूप ही उच्चारण का ढंग अथवा धाड़ के स्वर रखने चाहिए, एक ही कथन 'हम तो बन्द हो गये' बड़ापरक, प्रसन्नता परक अथवा व्यंग्य परक ढंग से बोला जा सकता है। इसलिए मंत्रों के सार्वक प्रयोग में छन्द की मर्यादा का ज्ञान होना भी आवश्यक होता है।

ऋषि, देवता एवं छन्दों के निर्धारण का प्रकरण तो अलग से दिया जा रहा है, यहाँ तो मन्त्रार्थ के सन्दर्भ में ही उनका उल्लेख किया गया है।

इस मन्त्रार्थ में उक्त सभी बिन्दुओं को ध्यान में रखकर मंत्र के सहज, स्वाभाविक, जन-मुलभ अर्थ किये गये हैं; वे वज्रतीय प्रक्रिया से दूर भी नहीं हैं, किन्तु उन्हें केवल कर्मकाण्ड या केवल अध्यात्म की सीमा में बाँधे रखने का ही पूर्वाग्रह न रखने से वे सहज प्रवाह में बह सकते हैं। इतना अवश्य है कि कुछ शब्दों-सम्बोधनों के अर्थ प्रचलित परम्परा से हटकर किये गये हैं, किन्तु वे अर्थ शास्त्र-सम्मत भी हैं तथा वज्रवेद को मूल धर्मशास्त्रों तथा वेद की गरिमा के अनुरूप भी हैं। अध्वयन करने वालों को इस सन्दर्भ में असमंजस का क्षम्य न करना पड़े, इसलिए कुछ उदाहरण समीक्षा सहित प्रस्तुत किये जाते हैं।

## कुछ महत्वपूर्ण शब्दों की समीक्षा

सीकिक सन्दर्भ में संज्ञाओं, सम्बोधनों का अधिकांश उपयोग व्यक्तिपरक अथवा जातिपरक होता है, जैसे 'इन्द्र' से किसी व्यक्ति अथवा देवता के रूप एवं 'मौ' या 'अब' से जाति विशेष के वस्तुओं के नाम का बोध होता है। किन्तु वेद का क्रम इससे भिन्न है। वहाँ संज्ञाएँ गुणवाचक या भाववाचक अर्थों में प्रयुक्त होती हैं। व्यक्ति या जातिवाचक अर्थ उनके लिये तो जा सकते हैं; किन्तु वे अर्थ वेद मान्य के स्वाभाविक प्रवाह में स्थापित नहीं हो पाते।

यजुर्वेद में जगह-जगह देवज्ञाओं, मौ, अब, कभी, आज, अबि, इहका आदि सम्बोधन प्रयुक्त होते हैं। ये सभी अनेकार्थक शब्द हैं तथा इनके यदि गुण या भावपरक अर्थ लिये जाएँ, व्यक्ति या वस्तुपरक अर्थों का पूर्वाग्रह न रहता जाएँ तो वेदमन्त्रों के अर्थ अधिक स्वाभाविक और नैतिकमय बन सकते हैं। कुछ समीक्षात्मक उदाहरणों से यह तथ्य सुविधापूर्वक समझा जा सकता है।

देवता— आज की धारणा यह है कि इन्द्र, यम, विष्णु, रुद्र आदि कोई सूक्ष्म देहवाली देवता हैं। पौराणिक सन्दर्भ में ये माने जाएँ तो ठीक भी हैं, किन्तु वेद में तो उन्हें विशिष्ट शक्तिधराओं—दिव्य प्रकृतियों के रूप में लिया गया है।

कोई प्रतिभाशास्त्री व्यक्तिपरक सम्बोधन, कार्य क्षेत्र में डाक्टर या वकील तथा खेल के मैदान में खिलाड़ी या कैप्टन के सम्बोधन में बहुतका जा सकता है। एक ही व्यक्ति के लिए अलग-अलग सम्बोधन गानन नहीं कहे जा सकते। इसी प्रकार वेद में एक ही शक्ति धारा को विभिन्न भूमिकाओं में विभिन्न देवपरक सम्बोधनों से सम्बोधित किया जाता है। जैसे सूर्य को कहीं इन्द्र (सौरमण्डल को बाँधकर रखने वाले), कहीं वृष (पोषण देने वाले), कहीं रुद्र (तेज से रुतक देने वाले) कहा जाता है, तो कोई भी सम्बोधन अनर्थक नहीं कहा जावेगा।

अग्नि को अनेक स्थानों पर 'अतवेदा' (उत्पन्न करने के विशेषज्ञ), कहीं वृष (पोषण देने वाले), कहीं यम (अनुशासन बनाने वाले) कहा गया है। सभी सम्बोधन मुक्तिसंगत हैं।

देवताओं को आज की विभिन्न धाराओं के रूप में माना गया है— जो सन्दर्भ विशेष में विशिष्ट भूमिका में प्रवृत्त देखे जाते हैं— आज ही देवता

मनुजान्तः (मनोजान्तः मनोकृष्ट) (तै० सं० ६.१.४५ बरत० सं० २३५) आज ही देवगण हैं, (जो) मन से उत्पन्न और उसी से संयुक्त हैं। आज ही देवता विष्णुवासे हि इत्था विष्णु इष्टानि (शत० जा० ७.१.१२४)। 'आय' ही विष्णु देव है; क्योंकि यही (आय) सब कृष्टियों को प्रेरित करते हैं। आज ही देवता रुद्रिगोदर (शत० जा० ६.७.२३)। यम देने वाले देव वे आय हैं। आज ही मरीचिपतः। तन्मेव प्रीणयति (बरत० सं० २७१) आज ही तेजस् की रक्षा करने वाले हैं (और) उनको ही वसन्तत (सर्पुष्टि) प्रदान करते हैं। तन्मेव देवता अन्नमर्दन्ति। अग्निदेवता आज (शत० जा० १०.१.४१२) आज के माध्यम से देवगण अन्न प्राप्त करते हैं। 'अग्नि' देवों के आय हैं। आज ही देवता स्वर्ग लोकमायन् (जै० जा० २.३.१) आज के द्वारा ही देवगण स्वर्ग में पहुँचे। आज ही देवता स्वर्ग लोकमायन् (जै० जा० २.३.१६) आज ही सविता है ऐन्द्र। आज ही देवता आज (तै० सं० ६.३.११२) देवता के रूप में आय ही इन्द्र हैं। आज ही यज्ञ सन्ततः (मैत्रा० सं० ४.६.२) आज के द्वारा ही सतत यज्ञ चलता रहता है। तन्मेव आज देवता (शत० जा० ७.५.१.२१) इत्थन्तः आज ही देव है। आज ही रुद्रः (जै० उप० ४.१.१६) आज ही रुद्र हैं। आज ही सायना देवता (शत० जा० १०.२.२३) आज ही साध्य देव है। आज ही रुद्र (शत० जा० १६.६.१०.२) आज ही आज (व्याख्यक शक्ति) है।

वेद में बड़ीय उपकरणों को भी देवपरक संज्ञा दी है। उपकरणों में निहित विशेषता के रूप में वे एक विशिष्ट चेतन शक्ति के दर्शन करते हैं। यही चेतन शक्ति उन्हें अनेक स्थानों पर संव्याप्त दिखाती है, अतः वे उस देव शक्ति की महिमा व्यक्त करने लगते हैं। जैसे 'इष्टका' का सीधा अर्थ है—ईंट; किन्तु वेद की दृष्टि में 'इष्टका' किसी भी निर्माण की इकाई है। तत् बन्दितात् सममयसामात् इष्टका (शत० जा० ६.१.२.२२)। चूँकि यह इष्ट (चेतन या कर्तार) से बनी है, इसलिए इष्टका है। अन्न से शरीर बनता है, इसलिए 'अन्न' या 'इष्टका' (तै० सं० ५.६.२.५) अन्न इष्टका है। वर्ष के निर्माण में दिनरात्रि इष्टका रूप हैं, अक्षररात्रि वाऽइष्टका (शत० जा० ९.१.२.१८) इत्यादि।

इसी प्रकार 'युव' 'वयस्वति देव' 'उपशम यज' आदि सभी में देव शक्तियों को समर्पित देखकर उनके वेद में देवपरक सम्बोधन देने वाले हैं। यज्ञों के एतद् भाव समझने के लिए ऋषियों की उक्त महत् दृष्टि को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। गौ, अग्न, अग्नि आदि पशुपरक सम्बोधन के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार विचार करना होता है। जैसे—

गौ— वेद में गौ सम्बोधन दोषण उदाहरण दिव्य शक्तियों के लिए प्रयुक्त हुआ है। पशु रूप में 'गौ' पर भी वह परिचायक यज्ञी प्रकार लागू होती है। किन्तु वेद के गौपरक सम्बोधन को व्यापक अर्थों में ही लेना होगा। जैसे—इमे लोका गौ (सत० ब्रा० ६.५.२१४) वे लोक गौ को उल्लेख हैं। अन्तरिक्ष गौ (ऐत० ब्रा० ५.१५) अन्तरिक्ष को गौ कहा गया है। गावो वा आदित्य (ऐत० ब्रा० ५.१७) गौ ही आदित्य है। अग्नौ गौ (तै० ब्रा० ३.१.८.३) अग्न ही गौ है। यज्ञो वै गौ (तै० ब्रा० ३.१.८.३) यज्ञ ही गौ है। प्राणो हि गौ (सत० ब्रा० ५.३.४.२५) प्राण ही गौ है। वैश्वदेवी वै गौ (गा० ब्रा० २.३.१२) वैश्वदेवी (सम्पूर्ण देवी शक्तियों की पुञ्ज) गौ है। आग्नेयो वै गौ (सत० ब्रा० ५.५.२१९) अग्नि से उद्भूत (यज्ञीय ऊर्जा) ही गौ है।

यजु० १३.४९ में अग्नि प्रार्थना करते हैं "हे अग्ने। सकृदो जगतीं जगतीं से लोकों के मध्य पृथ (वेजस) को सन्निहित करने वाली परम व्योम में स्थित आदित्य रूप इस 'गौ' को आप अग्नि न पहुँचाएँ।" स्पष्ट है कि परम व्योम में स्थित अग्नि के द्वारा ही दिव्य पोषण देने वाली 'गौ' कोई पशु नहीं। प्रकृति की पोषण क्षमता ही कही जा सकती है। अग्नि कहते हैं कि अग्नि (ऊ० १) के ऐसे प्रयोग न हो, जिससे प्रकृति की पोषण क्षमता पर बुरा असर पड़े। अस्तु वेद में गौ सम्बोधन का अर्थ, प्रयोग विशेष के अनुरूप ही किया जाना अपेक्षित है।

अग्न— अग्न सम्बोधन तैत्तिरीय सन्दर्भ में थोड़े के लिए प्रयुक्त होता है। किन्तु मुख्य कवच मंत्र के रूप में उसका अर्थ होता है 'अग्नौ अग्नौ' (टीब प्रति वासा) 'अग्नौ अग्नौ' (संघटन से सर्वत्र संचरित होने वाला) अग्न 'अग्नौ अग्नौ' (बहुआकार करने वाला होने से अग्न संज्ञा दी जाती है) आदि

इस परिभाषा के अनुसार वेद में किरणों को, अग्नि को, सूर्य को, यहाँ तक कि ईश्वर को भी अग्न को मंत्रा दी है। देखें— 'सौम्यो वा अग्न' (गो० ब्रा० २.३.१९) सूर्य का सूर्यात् (तेज) अर्थ है। 'अग्निर्वा अग्न' अग्नि अर्थ है (सत० ब्रा० ३.६.२५) 'अग्नौ न देव अग्न' (सत० ३.२.७.१४) अग्न (अग्नि) देवों का वाहन है। अग्नि को इन्द्रवाहन कहते हैं। 'असी वा आदित्योऽग्न' (तै० ब्रा० ३.१.२३.२) वह आदित्य अग्न है। 'अग्नौ वा ईश्वरो वा अग्न' (गा० ब्रा० १.३.३.५) इसे संस्तर में संचरित होने के कारण ईश्वर भी अग्न है।

बृहदारण्यक उपनिषद् (२.१.१) में कहा गया है— 'उग्न' यज्ञ सम्बन्धी अग्न का शिरोधार्य है। सूर्य तेज है वायु पाथ है, वैश्वानर अग्नि उसका खूला हुआ मुख है और सवासर यज्ञीय अग्न की आत्मा है। तुम्हें उसका पृष्ठ भाग है, अन्तरिक्ष उदर है, पृथिवी पैर रखने का स्थान है, दिशाएँ चारों भाग हैं, अवांतर दिशाएँ पततिर्वा हैं, ऊपर अग्न है, मास और अर्द्धमास पथ (संस्थान) हैं, दिन और रात्रि प्रतिष्ठा (पादा) हैं, यज्ञ अस्त्वर्वा है, आकाश (आकाशस्थ मेघ) पाथ है — उसका बर्णाई लेना विजली का चमकना है और तनीर हित्वा मेघ का गर्जन है —। इस उपनिषद् कथन से क्या अर्थ? नामक कोई पशु हो सकता है? विशिष्ट रूप से वह अग्न सम्बोधन किसी पशु के लिए नहीं, सूर्य के तेज का यज्ञीय ऊर्जा के लिए ही हो सकता है। इसी प्रकार 'अग्नौ लोको यज्ञो अग्नौ वेतो' — (यजु० २.३.६.२) 'वह सोम वर्षा करने वाले अग्न का वेत' (वेद) है। इस उक्ति में अग्न सूर्य वा मेघ को ही कहा जा सकता है।

थोड़े के लिए प्रयुक्त अन्य सम्बोधन भी वेद में हैं, किन्तु वे सभी मुख्य कवच मंत्र के रूप में व्यापक अर्थों में ही प्रयुक्त होते हैं। जैसे—अर्वा वा अर्वन् का अर्थ होता है, बचल। 'वाजी' का अर्थ होता है—वीर्यवान्। 'अत्थ' का अर्थ होता है—अधिकतम कर देने वाला, लोभ करने वाला। यह सभी सम्बोधन अग्नि के लिए भी प्रयुक्त होते हैं। अग्निर्वा अर्वा (तै० ब्रा० १.३.६.४) अग्नि ही 'अर्वा' है, से वह भाव स्पष्ट होता है।

इसी प्रकार 'अज' बकरा न होकर 'वाक् वा अज' (सत० ब्रा० ५.५.२.२१) वाणी अर्थ है।



‘आग्नेयो वा अजः’ शत० ब्रा० ६.४.४.१५)  
अग्नि से उत्पन्न (धूम आदि) अज है।

अवि भेद को भी कहते हैं और रखन क्षमता को भी। शत० ब्रा० ६.१.२.३३ में कहा गया है कि यह पृथ्वी अवि है, क्योंकि यह प्रजाओं की रक्षा करता है। यजु० १३.४४ में कवि कहते हैं— “हं अग्निदेव उत्तम आकाशं यं स्थापितं विभिन्नं रूपं का निर्माण करने वाली वरुण की गांधी रूप उच्च व्याम से उत्पन्न असंख्य की रक्षा करने वाला” इस महत्त्वमयी ‘अवि’ का हिंसित न का “ स्पष्ट है कि उक्त अवि भेद

नाभक पशु नहीं हो सकती। इसे पृथ्वी की रक्षा करने वाले आयनास्फियर (अथवा मण्डल) अथवा पर्यावरण की सुरक्षा की प्राकृतिक व्यवस्था कहना अधिक युक्तिसंगत लगता है।

इस प्रकार वेद की दृष्टि से अनेक सम्बोधनों जम्हों के अर्थ इस भाषानुवाद में इसी दृष्टि से किये गये हैं। जहाँ इस प्रकार ठीक से हटकर अर्थ किये गये हैं, वहाँ यथासंभव सन्धिपठ टिप्पणियाँ देकर उन्हें स्पष्ट करने का प्रयास भी किया गया है।

## यजुर्वेद में मेघ प्रकरण

‘वेद मे मेघ’ शब्द ‘यज्ञ’ का पर्याय है। निष्पद् मे यज्ञ के १५ नाम दिये गये हैं। उनमें ‘अध्वर’ तथा ‘मेघ’ भी सम्मिलित हैं। ‘अध्वर’ का शाब्दिक अर्थ किया जाए तो होता है ‘ध्वरति वयकर्मा’ यं ध्वरः इति अध्वरः’ अर्थात् हिंसा का निषेध करने वाला कर्म। ‘मेघ’ शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए धातुकोश में लिखा है— ‘मेघ-मेघा, हिंसनयोः संगमे च’ अर्थात् मेघ शब्द का उपयोग तीन संदर्भों में किया जा सकता है। (१) मेघ-संघर्षन (२) हिंसा (३) संगम संगतिकरण, एकीकरण, संगठन अस्तु यज्ञ जब अध्वर है तो इस प्रकार में ‘मेघ’ का अर्थ हिंसा तो हो ही नहीं सकता ‘मेघ-संघर्षन एवं संगतिकरण’ के संदर्भ में ही लिया जाना उचित है।

यह सर्वमान्य है कि वेदों का चार भागों में संपादन ‘वेदव्यास’ जी ने किया। ये यज्ञ में हिंसा का निषेध करते हुए स्पष्ट लिखते हैं:

सुरामस्या मधुमांसपासवं कसरीदनम्।  
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नेतद् वेदेषु कल्पितम्॥

(म्हा. म्हा. २५५.१)

मधु, मन्त्राली, पशुओं का मांस, द्विजातियों का बलिदान आदि धूर्तों द्वारा यज्ञ में प्रवर्तित हुआ। वेदों में इस प्रकार का विधान नहीं है। अस्तु, मेघ का हिंसापरक अर्थ करने का आग्रह किसी भी विवेकमाल को नहीं करना चाहिए। यज्ञ जैसी पारम्परिक प्रक्रिया को इस लाञ्छन से मुक्त हो रखना उचित है।

यजुर्वेद तो यज्ञपरक कहा ही गया है। दर्शनपूर्णपास, स्वेय, यज्ञ, अग्निहोत्र, धाजपेय, राजसूय, सौत्रजपनी आदि यज्ञों में यजुर्मन्त्रों का विनियोजन होता है। ‘मेघ’ सम्बोधन सहित जिन यज्ञों का प्रकरण उसमें है, वे हैं- अश्वमेध (अध्याय २२ से २५ एवं २९) पुरुषमेघ (अ० ३०) सर्वमेघ (अ० ३२) तथा पितृमेघ (अ० ३५) आदि इनमें भी ‘मेघ’ का हिंसापरक अर्थ सिद्ध नहीं होता। यदि मेघ का अर्थ वध हो तो ‘पितृमेघ’ कैसे संभव है। पितरों के तो शरीर पहले ही समाप्त हो चुकते हैं। सर्वमेघ में अत्मा की परमात्मा में समर्पित करके भूतल प्राप्त करने को सर्वमेघ कहा गया है। पुरुषमेघ में आदर्श समाज व्यवस्था के अन्तर्गत किस प्रकार के व्यक्ति को कहीं नियोजित किया जाए, इसका वर्णन है।

बन्तीसवें अध्याय में ‘आलभन’ शब्द का प्रयोग हुआ है। मेघ की तरह आलभन शब्द का भी एक अर्थ वध होता है, किन्तु उसके मान्य अर्थ ज्ञान करना, जोड़ना आदि भी हैं। अस्तु, अध्वर वधरहित यज्ञ कर्म में उसके भी हिंसापरक अर्थ का आग्रह नहीं किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में सनातनी, आर्यसमाजी सभी धाराओं के विद्वान् एक मत हो चुके हैं कि ‘मेघ’ और ‘आलभन’ का हिंसा परक अर्थ यज्ञीय संदर्भ में तो नहीं हो लिया जाना चाहिए।

## विश्वदित प्रसंगों से मुक्ति

उक्त संदर्भों से स्पष्ट हो जाता है कि यज्ञ में हिंसापरक प्रक्रियाएँ कभी प्रविष्ट हो नहीं हो सकती हैं और हैं अन्यथा वेद, यज्ञ में हिंसा के प्रयुक्त नहीं हैं। आधुनिक यज्ञीय प्रक्रिया के अन्तर्गत कुछ यज्ञ के जो हिंसापरक अथवा अशुभ अर्थ किये गये हैं वे वेद की मूल भावना के साथ मेल नहीं खाते, यह तथ्य आगे कुछ उदाहरणों से स्पष्ट हो जायेगा।

अभ्यवेद अन्वेषण से यज्ञ समग्र है कि अभ्यवेद वास्तव में शुद्ध-सांत्विक आध्यात्मिक प्रयोग ही है। सतपथ ब्राह्मण १३.३.१४ के अनुसार पहला अभ्यवेद प्रयोग यज्ञार्थी ने किया था। अपने कामना पूर्ति के लिए ये इच्छुक हुए। उन्होंने अभ्यवेद देखा। उससे यज्ञ करने में उनकी कामना पूर्ण हुई।

पूर्व पृष्ठों पर स्पष्ट किया जा चुका है कि अभ्यवेद का अर्थ है— सर्वत्र संचरित होने में सक्षम तथा 'वेद' का अर्थ वेदा संग्रह समर्थकत्व है। यज्ञार्थी ने सर्वत्र संचरित दिव्य वेदा को देख, उसे सुनिश्चय से स्वीकारा, तो सुनिश्चय का क्रम चल पड़ा। यज्ञार्थी की कामना पूरी हुई। 'वीर्य का अभ्यवेद' के अनुसार मनुष्य का पुरुषार्थ अभ्यवेद है, उसे दिव्य वेदा में संज्ञास्थित करने से 'अभ्यवेद' होता है। यह प्रयोग जब विराट् स्तर पर - राष्ट्रीय स्तर पर किया जाता है, तब भादश राष्ट्र बनता है। इसीलिए 'राष्ट्र का अभ्यवेद' (राष्ट्र अभ्यवेद है) कहा गया है। 'सूर्य का अभ्यवेद' 'अभ्यवेदः यज्ञात्मकः' के अनुसार सूर्य एवं चन्द्र भी अभ्यवेद हैं। आज के भौतिक विज्ञान ने भी यह स्वीकार कर लिया है कि सूर्य एवं चन्द्रमा की परिस्थितियों से मनुष्यों की कार्यक्षमता तथा उसकी क्रियाओं पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। उक्त अवसरों पर अभ्यवेद मानवी पुरुषार्थ को दिव्य चेतना में संज्ञास्थित करने की एक सूक्ष्म वैज्ञानिक प्रक्रिया है। उसके अन्तर्गत विविध यज्ञीय प्रयोग किये जाते हैं।

'अभ्यवेद' की परम्परागत प्रक्रियाओं में 'सूचीवेद' प्रक्रिया की भी विकासमय माना जाता है। उसमें सोने, चाँदी, ताँबे आदि की मलमल से रानियों द्वारा अभ्यवेद शरीर को वेदो देने की क्रिया दर्शाई गयी है। महीधर भाष्य में २३ वे अध्याय के ३३वें मंत्र के अन्तर्गत यह विवेचन दिया गया है, किन्तु

यजुर्वेद के उक्त मंत्र की सीमा अर्थ केवल इतना है कि गायत्री, त्रिष्टुप्, ऊर्ध्वदि छन्द तुम्हें सूचिकाओं द्वारा शक्ति पहुँचाएँ।

आगे समाज की परम्परा में इस मंत्र का अर्थ कुछ इस प्रकार किया गया है— 'जो विद्वान् गायत्री आदि छन्दों के अर्थ को ठीक से बताकर मनुष्यों के अज्ञान अन्धकारों को दूर करते हैं, वे सृष्टि से सिद्ध करने वाले को तरह सबका कल्याण करते हैं।

महीधर भाष्य के आधार पर मृत अभ्यवेद शरीर को मनुष्यों में छन्द का उक्त ज्ञानि पहुँचाने की बात विवेक बाध रही लगती। आर्य समाज पद्धति की उक्त व्याख्या यज्ञीय कर्मकाण्ड में इतरा तो है ही, सूची प्रयोग को बसना दूसरे आर्यों का जा रहा है, ऐसा समझ है। इस अवसरों में उक्त मंत्र का स्पष्टीकरण इस प्रकार दिया गया है— बड़े यज्ञ बड़े कुण्डों में प्रांत में यज्ञ का निष्पन्न है कि समिधाएँ किनार-किनार लगायी जाती हैं। तब आहुतियों बीच में स्थापित की जाती है। उन आहुतियों का एक पिण्ड हो बन जाता है। उसे बाँटा दो नहीं जाया, किन्तु उसे आग्नि में पूरी तरह पच अवस्था बना चाहिए। इसके लिए उस पिण्ड को मलमलों से छेदा जाना उचित है। इसकी मयी ओषधियों के चूड़ का साथ पूरी तरह प्राप्त करने के लिए रानियाँ उक्त पिण्ड को मलमलों से छेदें तथा मयूरी आदि वेदोक्त छन्दों से उस पिण्ड को स्मित करें, तो बात पूर्ण समग्र लगती है। उक्त मंत्र में तो अभ्यवेद का नाम भी नहीं है, ब्राह्मण ग्रंथों ने उस यज्ञ पिण्ड को 'मय' कहा तो 'यज्ञ' या 'अग्नि' की अभ्यवेद की संज्ञा देना स्वयं सम्मत ही है। अग्निवेद कटाक्ष' (शत० भा० ६, १, ३, २२)। सोऽग्निरेव भूत्वा प्रथमः प्रजिमाय (भो० भा० २, ४, ११)। अग्रे ह वाऽ एव (अग्निः) भूत्वा देवेभ्यो यज्ञं वहति (शत० भा० १, ४, १, ३०)।

इस प्रकार एक उदाहरण अस्तीत्य प्रकरण का देखें— यजु० २३ २५ में यज्ञ के बाधा के प्रति कहा गया है— 'यज्ञं च ते चित्रं च तेऽ एव वृक्षस्य कीदृशः'। इसका सीधा अर्थ होता है कि तुम्हारे माता और पिता वृक्ष पर चढ़कर क्रोध कर रहे हैं। महीधर भाष्य में 'वृक्ष' का अर्थ कष्ट से बने पलंग के अग्रभाग पर करके माता-पिता की काम क्रीड़ा का संकेत किया गया।

हैं वृक्षाग्र की पलंग और क्रीड़ा को कामक्रीड़ा कहना एक प्रकार की जबरदस्ती हो है। उक्त मन्त्र के आध्यात्मिक अर्थ (दयानन्द भाष्य) यज्ञोप क्लृप्त से दूर हट जाते हैं।

इस भाषा में इसका समाधान इस प्रकार किया गया है- 'वृक्षाग्र' का अर्थ संस्कार वृक्ष के ऊपरी भाग पर किया जाय तो यज्ञ-चिता और मातृ-काशो (मंत्र शक्ति) की क्रीड़ा चल रही है। वृक्षाग्र से काष्ठ

हो लेना है, तो काष्ठ-समिधाओं के अग्रभाग पर पिता अग्निदेव तथा माता रुवि की क्रीड़ा चल रही है। यह भाव वेद की गरिमा तथा यज्ञोप परिपाटी दोनों की रक्षा करता है।

इसी प्रकार सभी प्रसंगों में वेद-मंत्रों के स्वाभाविक यज्ञोप अर्थ ऋषियों के अनुग्रह से संभव हुए हैं। वैज्ञानिक टिप्पणियाँ भी स्थान-स्थान पर प्रस्तुत की गयी हैं।

## ऋषि, देवता, छन्दादि का नियारण

वेद के अध्ययन क्रम में ऋषि, देवता एवं छन्दादि का महत्व पहले वर्णित किया जा चुका है। नियारण प्रक्रिया पर यहाँ प्रकाश डाला जा रहा है। यजुर्वेद के सन्दर्भ में यह कार्य कुछ अधिक प्रम साध्य है—

**ऋषि**— ऋषि का तात्पर्य स्पष्ट करते हुए आचार्य सायण ने लिखा है कि मन्त्र के प्रवक्ता को ऋषि कहा जाता है— 'यस्य वाक्यं स ऋषिः' (ऋ० १० १० सा० भा०)। यजुर्वेद के सन्दर्भ में जब ऋषियों के सम्बन्ध में विचार किया जाता है, तो यहाँ ऋषियों के तीन रूप परिलक्षित होते हैं—

१ प्रथम तो इस वेद के आदिब्रह्म-अमरहो 'ऋषि विवस्वान्' हैं, जैसा कि 'यजुः सर्वा०' में उल्लिखित है— 'इवेत्यादि संह ब्राह्मणा विवस्वान् अयश्वात्' (पृ० १)। यह वेद ज्ञान 'सूर्य' के द्वारा क्रमशः याज्ञवल्क्य आदि के माध्यम से पृथ्वी पर प्रसरित हुआ—यह सर्वविदित तथ्य है।

२ दूसरे स्तर पर इस वेद के ये ऋषि हैं जो 'दर्शपूर्णमास' आदि प्रकरण विशेष के सामूहिक ऋषि के रूप में प्रसिद्ध हैं जो प्रायः देवस्तर के हैं। इसका उल्लेख सर्वा० सू० में इस प्रकार है— 'कष्ट प्रतिकर्म-विभागेन ब्राह्मणानुसारेण ऋण्यो वेदितव्यः। ( सर्वा० पृ० १)। यहाँ देवस्तर के ऋषियों के दो अपवाद भी हैं— ( i ) याज्ञवल्क्य ( ii ) दध्यक्ष आथर्वण।

३ तीसरे स्तर में वे सभी ऋषि आते हैं, जिन्होंने वेदमन्त्रों का देवों की स्तुति-प्रार्थना आदि रूपों में प्रयोग किया है—सिद्धि प्राप्त की है। इन्हें वैयक्तिक स्तर का यथावसर सम्बद्ध ऋषि रूप में मान्यता प्राप्त है।

प्रस्तुत यजुर्वेद संहिता में अन्तिम एक स्तर अर्थात् वैयक्तिक स्तर के ऋषियों का उल्लेख प्रत्येक अध्याय के समापन पर कर दिया गया है। प्रथम और द्वितीय स्तर के ऋषियों की सूची इस प्रकार है—

**प्रथम स्तर**— अध्याय १ से अध्याय ४० अर्थात् सम्पूर्ण शुक्ल यजुर्वेद के ऋषि विवस्वान् हैं।

**द्वितीय स्तर**—

प्रकरण —	अध्याय- क्रमिका —	ऋषि नाम
दर्शपूर्णमास	११-२२८	परमेष्ठी प्रजापति या देवगण प्रजापति
पितृयज्ञ	२२९-२३४	प्रजापति
अग्न्याधेय	३१-३८	प्रजापति, देवगण, अग्नि या गंधर्वा
अग्निहोत्र	३९-३९०	प्रजापति
यज्ञमन्त्रादि-	३९१-३३६	देवगण
उपस्थान		
आगतोपस्थान	३३७-३४३	अदित्य
चातुर्मास्य	३४४-३६३	प्रजापति
अग्निष्टोम	४१-८३२	प्रजापति
सत्रोपस्थान	८५१-८५३	देवगण
नैमित्तिक	८५४-८६३	संस्पृष्ट
यज्ञपेय	९१-९३४	बृहस्पति-इन्द्र
राजसूय	९३५ १० ३०	वरुण
चरकसंज्ञामन्त्र	१० ३१-१० ३४	अश्विनोकुम्भर
अग्निवयन	११ अ० १८ अ०	प्रजापति या साध्यगण
सौत्रमण्य	१९ अ० २१ अ०	प्रजापति
एवं २८ वीं अ०	अश्विनोकुमार सरस्वती	

अश्वमेध	२२ अ०-२५ अ०	ब्रजापति
एवं २९ वीं अ०		
आग्निकोऽध्याय	२७ वीं अ०	ब्रजापति
पुरुषमेध	३० अ०-३१ अ०	अरायणपुरुष
सर्वमेध	३२ वीं अ०	ब्रह्म स्वयम्भू
अनारभ्याधीत ३५५-३४५८	आदित्य-यज्ञवल्क्य	
पित्र्योऽध्याय	३५ वीं अ०	आदित्य अश्वि देवव्रज
श्रवर्गाग्निकाष्ठ	३६ वीं अ०	दध्यङ् आश्वर्वज
मेधापनिषत्		
महावीर सम्भरण-	३७ वीं अ०	दध्यङ् आश्वर्वज
शोक्षणादि		
महावीर निरूपणे-	३८ वीं अ०	दध्यङ् आश्वर्वज
घर्मघृहोहनम्		
प्रवार्यै घर्मघेदे-	३९ वीं अ०	दध्यङ् आश्वर्वज
प्रार्थित		
ईशावास्योपनिषद्	४० वीं अ०	दध्यङ् आश्वर्वज

**देवता—** मंत्र द्रष्टा ऋषियों ने अपने स्वधातुक्त मन्त्रों में जिसकी स्तुति की है जिसका वर्णन किया है, वे उस मंत्र के देवता कहे जाते हैं— का तेनेक्यले (ऋषिणोक्त्यले) सा देवता। (क० १०१० ख० भा०) इस परिप्रेक्ष्य में जब यजुर्वेद के मन्त्रों के देवता-निर्धारण पर विचार किया जाता है, तो कम से कम दो विचारधाराएँ सामने उपस्थित होती हैं। एक सनातन धारा है, जिसने यजुर्वेद को अक्षय्येभ्यो वल्लिक् सन्दर्भ में माना और व्याख्यायित किया है। दूसरी धारा अति विचारशीलों की है, जिसने यजुर्वेद को अदृश समाज-व्यवस्था का सूत्रधार माना और उसी परिप्रेक्ष्य में व्याख्यायित किया है। यही कारण है कि दोनों विचारधाराओं के कारण दो प्रकार के देवताओं का निर्धारण उपलब्ध संहिताओं में दिखाई पड़ता है। इस दिशा में पर्याप्त अध्ययन-शोध की आवश्यकता है। यहाँ औचित्य को कसौटी पर समीक्षित सिद्ध होने वाले तथ्य को ही स्वीकार किया गया है और उसी का प्रतिपादन किया गया है।

यजुर्वेद के प्रतिमन्त्र देवताओं की सूची प्रत्येक अध्याय के समाप्ति पर दिये गये 'ऋषि, देवता, छन्द-विवरण' में दी गई है और उसी का अक्षरादिक्रम से संक्षिप्त परिचय परिशिष्ट-२ में दिया गया है।

**छन्द—** छन्दों के निर्धारण में पर्याप्त कठिनाइयाँ सामने आती हैं। छन्दों के निर्धारण की जो सूचियाँ यज्ञ-वेद उपलब्ध हैं, उनमें मन्त्रों के जो छन्द निर्धारित हैं, वे छन्दों के व्याकरणपरक निर्धारणों से अनेक स्थानों पर मेल नहीं खाते। हो सकता है, पूर्व आचार्यों ने पहले यजुष् मन्त्रों के छन्दों के कुछ और सूत्र निर्धारित किये हों ? बाद में व्याकरणों द्वारा निर्धारित सूत्रों से उनकी समीक्षा में संशय पाया हो।

इस अंतर को दृष्टि से यह प्रकरण पर्याप्त शोधपरक अध्ययन-निर्धारण की अपेक्षा रखता है। इस पाठ्य के साथ परम्परा एवं किंवदंती का संयोग करते हुए छन्दों की सूचियाँ परिश्रमपूर्वक बनायी गयी हैं। जिन्हें अध्यक्षों के अन्त में स्थान दिया गया है। इस निर्धारण में (क) कात्यायन प्रणीत यजुः सर्वानुक्रम सूत्र (ख) सैदक यज्ञालय, अजमेर (संवत् २००७) की यजुर्वेद संहिता एवं (ग) निर्मल सागर प्रेस बम्बई (सन् १९२९) की शुक्ल यजुर्वेद संहिता की सहारा प्रमुख रूप से लिया गया है।

यज्ञ प्रकरण होने से इसमें एक परिशिष्ट घड़ीय ऋषि (अदाभ्य, अग्नि, अन्तर्धानकट, उपवेश आदि) ऋषि (आज्य, इध्म, इष्टक, आसन्दी आदि) तथा व्यक्तियों (अश्वर्यु, उदगाता, होता आदि) के परिचय का अतिरिक्त जोड़ा गया है और उससे सम्बद्ध चित्र भी यज्ञ-सम्बन्ध दिये गये हैं।

आशा है, सूचीपाठक इस यजुर्वेद का स्वाध्याय, अर्थात् मनोयोगपूर्वक करेंगे और इसकी उस गहराई तक पहुँचेंगे, जिसको ध्यान में रखकर वह प्रयास किया गया है, तो निःसन्देह उन्हें एक नयी दृष्टि के साथ ऋषि भी प्राप्त होगा।

— भगवती देवी शर्मा

वाजसनेयि-माध्यन्दिन-शुक्ल  
यजुर्वेद - संहिता

\* \* \*

## ॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

१. ॥ॐ॥ इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्व देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽ  
आप्यायध्वमग्न्या ऽ इन्द्राय भागं प्रजावतीरनपीवा ऽ अयक्ष्मा मा व स्तेनऽ ईशत  
माघश ऽ सो घृवाऽ अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि ॥१॥

ये कण्डिकाएँ यज्ञकर्म में सम्बन्धित हैं, यज्ञ के लक्ष्मणे-उपलक्ष्मणे तथा वाजसनेयिओं दोनों पर वर्तित होती हैं। प्रस्तुत कण्डिका में पशुपाल गण्डान को कर्त्तव्य तथा उसे जन्म करने, बन्धने को पशु से उत्पन्न करने, पशु को शरीरिका धारण एवं जन्मा को सम्पन्न करने में स्थापित धारण आदि क्रियाएँ सम्पन्न करने का विधान है -

हे यज्ञ साधनो ! अन्न की प्राप्ति के लिए सवितरदेव आपको आगे बढ़ाएँ। सृजनकर्त्ता परमात्मा आपको तेजस्वी बनने के लिए प्रेरित करें। आप सभी प्राण स्वरूप हो, सृजनकर्त्ता परमेश्वर श्रेष्ठ कर्म करने के लिए आपको आगे बढ़ाएँ। आपकी शक्तियाँ विनाशक न हों, अपितु उपनिर्णायक हों। इन्द्र (देव-प्रवृत्तियों) के लिए अपने उत्पादन का एक हिस्सा प्रदान करो। सुसंतति युक्त एवं आरोग्य-सम्पन्न बनकर क्षय आदि रोगों से छुटकारा पाओ। चोरी करने वाले आपके निर्धारक न बनें। दुष्ट पुरुष के संरक्षण में न रहो। मातृभूमि के रक्षक का उत्तर-उत्तरा में स्थिर बनकर निवास करो। सज्जनों की संख्या में वृद्धि करो तथा याजकों के पशु धन की रक्षा करो ॥१॥

२. वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिम्बनो धर्मोऽसि विश्वया ऽ असि। परमेण  
थान्ना दृ ऽ हस्य मा ह्यार्मा ते यज्ञपतिर्ह्यर्षीत् ॥२॥

प्रस्तुत कण्डिका दर्भ (पवित्रप्रतिष्ठा देवता), दुग्ध पशु एवं उत्तम पशु को सम्बोधित करती है -

हे यज्ञ साधनो ! आप (अपने यज्ञादि कर्मों से) वस्तुओं को पवित्र करने के माध्यम हो, सुलोक और पृथ्वी (के संतुलन कर्त्ता) हो। आप ही ज्ञानों की उन्मूलक हो, सबके धारक हो। महान् शक्तियों को धारण कर प्रगतिशील बनें, इन्हें बिखरने मत दो। आप से सम्बन्धित यज्ञपति (सेवा का दायित्व सँभालने वाले) भी कुदित न बनें ॥२॥

३. वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्। देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः  
पवित्रेण शतधारेण सुप्ता कामघुक्षः ॥३॥

प्रस्तुत कण्डिका में गोकुल स्त्री हवि को शुद्ध करने की क्रिया का विधान है -

आप ( दर्भमय पवित्र वसु ) सैकड़ों-सहस्रों धाराओं वाले ( वस्तुओं को ) पवित्र करने वाले साधन हो । सबको पवित्र करने वाले सविता, अपनी सैकड़ों धाराओं से ( वस्तुओं को पवित्र करने वाले साधनों से ) तुम्हें पवित्र बनाएँ । हे मनुष्य ! तुम और किस (कर्मका) को पूर्ति चाहते हो ? अर्थात् किस कामधेनु को दुहन चाहते हो ? ॥३॥

[इस ऋषि ऋषि में सर्वज्ञता केवल अपने को अतिरिक्त से पृथ्वी पर लक्ष्यों धाराओं में प्रवाहित होते देखने हैं । यज्ञ की प्रशिक्षा को इतने विराट् दर्शन से जड़ना चाहते हैं ।]

४. सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधात्याः । इन्द्रस्य त्वा भागश्च सोमेनातनन्धि विष्णो हव्यश्च रक्ष ॥४॥

प्रसन्न कणिकार पूर्वोक्त यज्ञ के उत्तर में दोहनकर्त्ता पुण्य, दुग्ध लब्ध हवि एवं पोषणकर्त्ता विष्णु को सम्बोधित है—  
हे मनुष्य ! पूर्ण आयुष्य, कर्तृत्वशक्ति एवं धारक शक्ति (रूप में तीन कामधेनु) आपके पास हैं । इनसे प्राप्त (दुग्ध) पोषण-क्षमताओं में से हम (अध्वर्यू) इन्द्र के हिस्से में स्वाम को पितृकर उसे स्थिर करते हैं । पोषणकर्त्ता (विष्णु) इन हव्य पदार्थों को सुरक्षित रखे ॥४॥

५. अग्ने व्रतपते व्रतं वरिष्यामि तच्छुकेयं तन्मे राध्यताम् । इदमहमनुतात्सत्यमुपैमि ॥

प्रसन्न कणिकार में कर्म के अनुष्ठान की प्रशिक्षा की गई है—  
हे व्रतों के पालनकर्त्ता, तेजस्वी अग्निदेव ! हम व्रतशील बनने में समर्थ हों । हमारा, असत्य को त्यागकर साधमार्ग पर चलने का व्रत पूरा हो ॥५॥

६. कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति । कर्मणे वां वेवाय वाम् ॥

प्रसन्न कणिकार उन्नीत (यज्ञकर्म द्वारा किनेल ज्विनि से लगे गये) कर्म कार्य करने वाले यज्ञ को सम्बोधित है—  
(प्रश्न) हे यज्ञ साधन ! तुम्हें किसने नियुक्त किया है ? कितालाए नियुक्त किया है ? (उत्तर) उसने (आज्ञा में) तुम दोनों (स्वल्प-निर्बल) को (यज्ञादि) कर्म करने के लिए नियुक्त किया है । (उत्तर कर्मों से) दिव्य स्थान में संस्थापित होने के लिए नियुक्त (प्रवृत्त) किया है ॥६॥

७. प्रत्युष्टश्च रक्षः प्रत्युष्टाऽ अरातयो निष्टुप्तश्च रक्षो निष्टुप्ताऽ अरातयः । उर्वन्तरिक्षमन्वेषि ॥७॥

प्रसन्न कणिकार के साथ कामधेनियों को उर्वर में लक्ष्य निक्षेपार्थक्य करने का विधान है—  
यज्ञ ऊर्जा के प्रभाव से, सम्बन्धित उपकरणों में सर्वत्रित राक्षस एवं स्रवण (विकार) जल भुन चुके हैं सताने वाले (विकार) झुलम कर जल चुके हैं । अतः अन्तरिक्ष में (यज्ञार्थ) वे यज्ञीय साधन बिना किसी रुकावट के प्रवेश करते हैं ॥७॥

८. धूरसि धूर्त्तं धूर्त्तन्तं धूर्त्तं तं योऽस्मान्धूर्त्तति तं धूर्त्तं यं वयं धूर्त्तामः । देवानामसि बह्निमतश्च सस्निमतं पप्रितमं जुष्टमं देवहूतमम् ॥८॥

यज्ञ कणिकार यज्ञ के संरक्षण करने वाले यज्ञ 'अग्नि' एवं सर्व-व्यापक 'अग्नि' दोनों पर प्रकट होती है । अग्नि के अतिरिक्त का असाध दूर करने के लिए 'लक्ष्य-धूर' के स्थान को क्षिप्त का विधान है—

आप अपनी विध्वंसकारी शक्ति से दुष्टों एवं हिंसकों का विनाश करें । जो अनेक लोगों को कष्ट पहुँचाता है, उस हतियार को नष्ट करें । जिस दुरात्म को सभी नष्ट करना चाहते हैं, उसे नष्ट करें । (हे शकट-देवशक्तियों तक हवि पहुँचाने वाले यज्ञाग्ने !) आप देवों शक्तियों के कहकर, बलवर्द्धक, पूर्णता तक पहुँचाने वाले, सेवन-योग्य तथा देवगणों को आमंत्रित करने वाले हैं ॥८॥

१. अहुतमसि हविर्धानं द॒धं हस्य मा ह्वामा ते यज्ञपतिर्हवीर्वात् । विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु  
वाताघापहतं रक्षो यच्छन्तां पञ्च ॥९॥

प्रस्तुत कविका में शब्दों का ब्युत्पत्ति हवि को देखना, कृष्ण आदि को निवारण तथा हवि प्रदान करने आदि क्रियाओं का विधान है—

आप देवशक्तियों को धारण करने के दृढ़ और श्रद्धावान् पात्र (माध्वय) हैं । आप और आपके यज्ञ संचालक कुटिल न बनें । पोषक विष्णुदेव हो आप पर आरुढ़ रहे । विशाल वायुपंडस में विचरणा करते हुए वायु-सेवन (प्राण संवर्द्धन) करें । राक्षसों वृत्तियों दूर करने के बाद चैंचों (अंगुलिमां) अथवा पंचविध शक्तियों-कर्मशक्ति, ज्ञानशक्ति, मनःशक्ति, बुद्धिशक्ति और आत्मशक्ति) ईश्वरीय प्रयोजनों में लगे ॥९॥

१०. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेभ्यिनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । अग्नये जुष्टं  
गृह्णाम्यग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि ॥१०॥

प्रस्तुत कविका में हवि प्रदान करने की क्रिया का विधान है—

सृजनकर्ता परमात्मा द्वारा रचों गई सृष्टि में, (पशुनां) अर्धशत कम्पराओं की बाहुओं तथा पूषादेव के हाथों से तुझे (साधक के हविष्यान्न को) ग्रहण करता हूँ । अग्नि को जो शिव लग, इस (अध्वर्यु) वही (हविष्यान्न) स्वीकार करते हैं । अग्नि तथा सोम के लिए प्रिय वदार्थ ही ग्रहण करते हैं ॥१०॥

११. घृताघ त्वा नारासये स्वरभिविख्येवं द॒धं हन्तां दुर्धाः पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि ।  
पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्याऽउषस्थेभ्ये हव्यं रक्ष ॥११॥

इस कविका में 'जीति-त्रेय' का विचार, पूर्वोक्त हो या पृथ्वी का दर्शन, शब्द से जाना, अन्तरिक्ष में हवि स्वात्म आदि क्रियाओं का विधान है—

आपको अनुदारता के लिए नहीं, उन्नति के लिए नियमित किया है । हमे आत्मा में निश्चिन्त ज्योति दिखलाई दे । इस पृथ्वी पर सज्जनता का बाहुल्य हो । समस्त भुवण्डल में बिना किसी बाधा के विचरण कर सकें । हे आदिति पुत्र अग्निदेव । पृथ्वी को भूमि (यज्ञस्थल) में स्थापित इस हविष्यान्न की आप रक्षा करें ॥११॥

[\* पञ्च कृष्य को पृथ्वी की भूमि कहा गया है (यज्ञो वे भुवन्मन्त्रः कै० ३.९.५५) । नाभि से ही नर्वस्य किन्तु को पेरना मिलता है । पृथ्वी पर निम्न प्रकृति बल (इन्द्रोत्पत्तिवर्धन शक्ति) का संकुलन पृथिवी प्रकृति से ही होता है ।]

१२. पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।  
देवीरापो अग्नेगुवो अग्नेषुको प्रऽ इममस्य यज्ञं नयताग्ने यज्ञपतिं रक्ष सुधातुं यज्ञपतिं  
देवयुषम् ॥१२॥

इस कविका में पवित्र-क्षेत्र का विचार, कृष्ण को पवित्र करने का उसे अग्निदेव-सूरी का शिष्ट करने का विधान है—

यज्ञार्थ प्रयुक्त आप दोनों (कुशलाण्ड्यं या साधनी) को पवित्रकर्ता कव्य एवं सूर्य-रश्मियों से दोषरहित तथा पवित्र किया जाता है । हे दिव्य वस्तु-समूह । आप अग्रगामी एवं पवित्रत्व प्रदान करने वालों में श्रेष्ठ हैं । यज्ञकर्ता को आगे बढ़ाएँ और भलीप्रकार यज्ञ को संचालने वाले पवित्र को, देवशक्तियों से युक्त करें ॥१२॥

१३. युष्मा इन्द्रोऽपूणीत वज्रतूर्ये यूपमिन्द्रमवृणीष्वं वज्रतूर्ये प्रोक्षितः स्थ । अग्नये त्वा जुष्टं  
प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । दैव्याय कर्मणे शुन्यध्वं देवधज्यायै यदोशुद्धाः  
पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्यामि ॥१३॥

इस कविका पृथिवी संश्रयों का अंत विधान के पूर्व जल को संश्रयित करने, अशुद्धों तथा हवि को पवित्र करने के लिए है



हे जल ! इन्द्रदेव ने वृत्र ( विकारों ) को मृदु करते समय आपको मदद ली थी और आपने सहयोग दिया था । अग्नि तथा सोम के शिव आपको इस शुद्ध करते हैं । आप शुद्ध हो ( हे वज्र उपकरणों ! ) अशुद्धता के कारण आप प्रादुर्भाव नहीं हैं, अतः यज्ञीय कर्म तथा देवों की पूजा के लिए इस आपको पवित्र बनाते हैं ॥१३॥

[\* जल 'तप्त' तत्व है, असुर वृत्तियों (कुसृष्ट) का विनाश नहीं हो सकता है, जब केवल वृत्तियों में रस आए । तप्त तत्व के जोषन के बिना असुर वृत्तियाँ नष्ट नहीं होंगी । इसलिए यह तत्व जल का चक्षुष्य अस्तित्व है ।]

१४. शर्मास्यवधूतः रक्षोवधूताऽ अरातयो दित्यास्त्वगसि प्रति त्वादित्येवन्तु । अद्विरसि वानस्पत्यो प्रावासि पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेन्तु ॥१४॥

यह वयिष्ठा कुम्भारिण (आसन) और अरातयो से सम्बन्धित है । इसके द्वारा मृन्मूर्ध आकाश करने एवं उस पर अनुष्ठान करने की क्रिया सम्पन्न होती है —

इस सुखकारक आसन (आधार) से राधम (दम) एवं अनन्त वृत्ति वाले प्रत्यक्ष गये हैं । यह पृथ्वी का आवरण है । यह पृथ्वी द्वारा स्थापित हो, आप वनस्पतिवा से निर्मित गांव के पत्थर की तरह दृढ़ हो, पृथ्वी का आवरण (आधार) आपको प्राप्त हो ॥१४॥

१५. अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णामि बृहद्प्रावासि वानस्पत्यः सऽ इदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व । हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ॥१५॥

प्रस्तुत वयिष्ठा द्वारा अक्षरी में हविष् करने, कुटरे, मूल्य करने करने अति क्रियाओं को सम्पन्न करने का विधान है— (हविष्मात्र के प्रति कथन) आपको कर्मों (पत्रों) के क्षम विसर्जित होने वाला शरीर अग्नि का वाद्य आवरण है (गृह्ण के प्रति) सुदृढ़ पत्थर के समान वनस्पतियों से निर्मित देवों वृत्तियों को कोर्ति बढ़ाने के उद्देश्य से इस आपको ग्रहण करते हैं । अतः देव प्रवीजन के लिए इस अविष्यत्र को उत्तम ढंग से पवित्र बनाकर हमें प्रदान करें हे हविष्मात्र को ग्रहण करने वाले (मूल्य) आप पत्थर ॥१५॥

१६. कुक्कुटोसि मधुजिह्वऽ इषमूर्जमावद त्वया वयः संघातः संघातं जेष्य सर्ववृद्धमसि प्रति त्वा सर्ववृद्धं वेन्तु परापूतः रक्षः परापूताऽ अरातयोपहतः रक्षो वायुर्वो विविन्क्तु देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृष्णात्वच्छिद्रेण पाणिना ॥१६॥

यह वयिष्ठा शम्भा (यज्ञ उपकरण) , शूर्प (यज्ञ उपकरण) एवं हविष्मात्र को लक्ष्य करने करी गये हैं । इसके द्वारा हविष्मात्र को कुटरे-साध करने की क्रिया का विधान है—

हे शम्भे ! आप कुक्कुट (मदुर) अमुरों को खोजकर मारने वाले) और (देवताओं के प्रति मधुर वाणी बोलनेवाले होने से) मधुजिह्व हैं । आप अन्न एवं वस्तु प्रत्यक्ष ध्वनि करें । आपके सहयोग से हम संघात (संघर्ष) में पशुओं पर विजय प्राप्त करें । (हे शूर्प और हविष्मात्र ! ) आप वर्षा से (प्रतिवर्ष) बढ़ने वाले हैं । (शूर्प जिस सरकण्डे की सीक से बनता है वह वज्र हविष्मात्र रूप वनस्पतियों वर्षा से बढ़ती है ।) वर्षा को बढ़ाने वाला (यज्ञ) आप को स्वीकारे । राक्षसी एवं अनुदात तन्त्र हटा टिए मर है—बह हो गये हैं, अब वायु आपको शुद्ध करे और सविता देवता (जिसमें से गिर न सके, ऐसे) स्वर्णिम हव्यो से आपको चारण करें ॥१६॥

[अग्नि ने वृद्ध-वस्तुपाद के अनुकरण एवं विकास में कबू, आप तथा उदात (सूर्य रश्मि) के सहयोग की वस्तु कृत करने ही जान ली थी, जिसे वस्तुपति विज्ञानी फोटोसिम्बलिस की क्रिया करने है ।]

१७. धृष्टिरस्यपाम्ने अग्निमापादं जहि निष्कृत्वा दः सेधा देवयजं वह । ध्रुवमसि पृथिवीं दृष्टं ह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि धातुव्यस्य वधाय ॥१७॥

यह वयिष्ठा उपलेख (अविष्यत्र करने वाला विज्ञान काट पत्ता) एवं अग्नि के प्रति है । इसके साथ उपलेख-पत्र धारण करने एवं अग्नि वयिष्ठा-अग्नि के अन्तों का अन्न करने की क्रिया करने है—

हे उपवस ! आप दृढ़ हैं । कच्चे पटाई को पकाने वाली (ताँकिक) अग्नि और कांस जलाने वाली (चिताग्नि) का निषेध करें और देवपूजन योग्य गृहपत्य अग्नि को धारण करें । यज्ञाम्ने । आप पृथ्वी को दृढ़ करके कपाल (पात्र) में स्थिर रहें । ब्राह्मणों (ज्ञानो जनों), क्षत्रियों (शौर्यवानों) एवं सज्जनों (तेजस्वी नागरिकों) का हित करने वाले आपको, हम शत्रु (पापवृत्तियों) के विनाश के लिए धारण करते हैं ॥१७॥

१८. अग्ने ब्रह्म गृध्णीष्व धरुणमस्यन्तरिक्षं दृ दृं ह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । धर्ममसि दिवं दृ दृं ह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । विम्बाभ्यस्त्वाशाम्यऽ उपदधामि धितः स्योर्ध्वचितो भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम् ॥१८॥

इस कविकार द्वारा गर्वकर्म अग्नि को स्तुति करने एवं उसके कर्तव्यों (कर्मों) में स्वयं की क्रिया सम्पन्न होती है — ज्ञानो जनों, शौर्यवानों तथा धनवान् जाति को स्तुति में महत्ता को ज्ञान का हित करने वाले हे आग्नेदेव ! आप ज्ञान को धारण करने वाले (धारक) हैं । धूम्रोत् तथा अन्तरिक्ष को दृढ़ करके, बलशाली (सामर्थ्यपुक्त) को ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा सजातियों को आप केन्द्र देने वाले हैं । अतः आपको अपने निकट स्थापन करते हैं (कपालों के प्रांति) भृगु और अंगिरस के तप (रूप अग्नि) से तेजस्वी बनकर हमें ऊर्ध्वगामी चेतना प्रदान करें ॥

१९. शर्मस्यवधूतं दृं रक्षोवधूता अरातयो दित्यास्त्वर्गसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु । धिवणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्नेषु दिवः स्कम्भनीरसि धिवणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु ॥

यहाँ यज्ञार्थ मृगवर्ग, उस पर स्तुति करीबकरीब तैयार करने वाले शिवकर्म एवं दोनों के बीच में स्थित जग (लोहे का घेरा) को स्तुति करने की क्रिया सम्पन्न करने का विधान है —

इस सूत्रकारक आधार मृगवर्ग से राक्षस एवं अनुदार कुंज वाले इटाने गये हैं । यह पृथ्वी का आवरण है । यह पृथ्वी द्वारा स्वीकृत हो । आप धर्म से उत्पन्न हुई कर्मशक्ति (यज्ञीय पदार्थ तैयार करने वाली) हैं । पृथ्वी के आवरण अपने आधार से परिचित रहे । किस तरह अन्तरिक्ष ने द्यौलोक को धारण किया है, उसी प्रकार शिवालय को धारण करने वाली आप उसे (शिवालय को) अपने (संभालें) । आप उस पर्वतपुत्री को कर्मशक्ति देने वाली हैं ॥१९॥

[उक्त वर्णन-कृतार्थ, इस पर स्थित शिवकर्म एवं दोनों के बीच में स्थित 'जग' के अन्त का घेरा जग-राक्षस की स्थिति का परिचायक है - मृगवर्ग पृथ्वी, शिवकर्म सुकर्म तथा बीच की जग का घेरा जग अन्तरिक्ष का छेदक है ॥

२०. धान्यमसि भिनुहि देवान् प्रणाय त्वोदानाय त्वा ख्यानाय त्वा । दीर्घामनु प्रसितिमायुषे वा देवो यः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृष्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोसि ॥२०॥

प्रसूत कविकार में शिव का कपाल रखने, शिव (मित्रे हुए राक्षसों) को मृगवर्ग का निराने तथा अपने कृत कर्मों की क्रिया सम्पन्न करने का विधान है —

हे हविष्मन् ! आप देवगणों को तुह करें । प्राण उदान् ज्ञान आदि प्राणों के संवर्धन एवं पात्रता से (मृगवर्ग के ऊपर) आपको धारण करते हैं । आप पृथ्वी के 'पशु' (दूध-पौ की तरह पोषक) हैं । सविता देव आपको छिद्ररहित स्वर्णमय हाथों (निर्दोष—सुन्दरले किरणों) से धारण करें ॥२०॥

२१. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेभ्यनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । सं कपामि समापऽओषधीभिः समोषमयो रसेन । सऽं रेवतीर्जगतीभिः पृथ्वन्ताऽंसं मधुमतीर्मधुमतीभिः पृथ्वन्ताम् ॥२१॥

यह का- १ वं सेवन योग्य ओषधीयों के प्रति है । इसके साथ कविज जल में मिले जाकरों को छलने तथा आग्नीष द्वारा उपसर्गमें न करने की शिक्षा सम्पन्न होती है -

सविता द्वारा उत्पन्न प्रकाश में आसनादेव (रोग निवारक देव शक्तियों) की बाहुओं एवं पोषणकर्त्ता (पूषा) देव शक्तियों के हाथों से अपमन्त्र विस्तार दिख जाता है । आसविष्य की जल प्राप्त हो, वे रस से पुष्ट हो गुण सम्पन्न ओषधियों प्रवहमान जल से मिले । अधुरता युक्त तन्त्र परस्पर मिल जाएँ ॥२१॥

२२ जनयन्तौ त्वा संयौमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वा घर्मोसि विश्वायुरुगुप्रधाऽउरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथतामग्निष्टे त्वत्वं मा हि ॥ सोदेवस्त्वा सविता अययतु वर्षिष्ठेधि नाके ॥

यह अधिका पुरोहित के प्रति है । इसके साथ पुरोहित को कथन की शिक्षा सम्पन्न करने का विधान है—

राजका में उत्पादक क्षमता और पूर्णवृक्ष की वाटिक के लिए, ऋ (जल और जिस हुए पायल की) संयुक्त करते हैं । यह प्रयोग अग्नि के लिए अग्नि-साध के लिए है । (४ प्रांदाश) । आप विस्तार क्षमता से युक्त हो, विस्तृत बने, जिससे यज्ञ-कर्त्ताओं के यज्ञ का विस्तार हो । अग्नि-रदन आपकी क्षति न पहुँचाएँ । सवितादेव आपको देवलोक की अग्नि से परिपक्व करे (पकाएँ) ॥२२॥

२३ मा घेर्मा सविद्व्याऽ अतापेरुर्यज्ञोतापेरुर्यजमानस्य प्रजा धूयात् त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा ॥२३॥

यह अधिका यज्ञ में कटने वाले पुरोहित को यज्ञकर्त्ताओं के प्रति सम्मान से प्रकट है—

अयधीत मत होओ, पीछे मत हटो । द्वित (गोन), द्वित (टां) अथवा एकत (एक) किसी के लिए भी किया गया यह कर्म क्लेश रहित होता है । यज्ञकर्त्ताओं की प्रजा (सर्वज्ञ—आज्ञित जन) क्लेश रहित हो ॥ २३ ॥

[त्रित-अर्चान् अथर्व, धन्यम् एक एक अथर्व पृथ्वी, अर्चोऽह एक कुशेक । द्वित अर्चान् अथर्व एवं धन्यम् अथर्व पृथ्वी एवं अर्चोऽह । एक अर्चान् अथर्व अथर्व अथर्व अथर्व अथर्व अथर्व]

२४ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूषो इस्ताध्याम् । आददेऽश्वरक्तं देवेभ्यऽ इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतोऽधः ॥२४॥

(हे स्यम्) । सर्वकर्त्ता परमात्मा की सृष्टि में आसनीदेवों की बाहुओं तथा पूषादेव के हाथों से अर्थात् देवों को पुष्ट करने वाले यज्ञ कर्म के निमित्त हम आपको बारण करते हैं । आप इन्द्र (अश्वस्वारक देव सत्ता) के दाहिने हाथ (की तरफ सम्भ्रमित) हैं । इन्द्रो विकारों को जल देने वाले अन्वाधिक प्रकाशमान, तीक्ष्ण-तेजयुक्त अग्नि को प्रदीप्त करने वाले वायु के सम्मान आपकी क्षमता है । आप यज्ञ में बाधा पहुँचाने वालों को नष्ट करने में समर्थ हैं ।

२५ पृथिवि देवयजन्मोषध्यास्ते धूलं मा हि ॥ सिषं वजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्या ॥ शतेन पाशैर्योऽस्मान्देहि वं च वयं द्विष्यस्तमतो मा भौक् ॥

यज्ञ केरी या कुण्ड के 'वृ-संज्ञा' के तटों में यह अधिका है—

हे पृथिवि ! आप पर देवों के लिए हवन किया जा रहा है । (पृथिवि के उपचार की प्रक्रिया में) आप पर उगने वाली ओषधियों के मूल को हमारे द्वारा खति न पहुँचे (निकलने नहीं) हे भूतिके । आप गौओं के निवास स्थान में जाएँ । दुलोक आप पर वषेष्ट वर्षा करें । हे सर्वकर्त्ता सवितादेव ! जो दुष्ट हम सभी को कष्ट पहुँचाता है, जिससे सभी द्वेष करते हैं, उसे विजित पृथिवी में अपने सैकड़ों बन्धकों से बाँच दें, उसे कष्ट मुक्त न करें ॥२५॥

२६ अपारहं पृथिव्यै देवयजनाद्विजसं वजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्या ॥ शतेन पाशैर्योऽस्मान्देहि वं च वयं द्विष्यस्तमतो मा भौक् । अररो दिवं मा पतो व्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् वजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्या ॥ शतेन पाशैर्योऽस्मान्देहि वं च वयं द्विष्यस्तमतो मा भौक् ॥२६॥

यह कण्डिका विभिन्न दिशाओं के 'वृ-उपकार' रूप का स्वेद करती है -

हमने दुष्ट अरु को यहाँ से निष्कासित कर दिया है । हे विस्वर्षित चिट्ठी ! तुम गौओं के निवास स्थान पर जाओ सुलोक आष पर वर्षा करो । हे सर्वकर्ता देव । अन्न द्रव्य करने वालों को सैकड़ों फंटों से बंध दें, ताकि वे कभी छूट न पाएँ ॥२६॥

[ अरु का आधिक्य उर्ध्व - ३७३, अन्न वेद, कोई राजस - "अन्नं कम्पयुम्" ]

२७. गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि । सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुषदा चास्यूर्जस्वती चासि पयस्वती च ॥२७॥

प्रसूत कण्डिका द्वारा यज्ञोक्ती पर स्वयं पत्र से ३ रेखाएँ खींचने की क्रिया सम्पन्न होती है -

हे यज्ञ वेदिके । हम गायत्री छन्द, त्रिष्टुप् छन्द एवं जागती छन्द वाले वंशों से आपको प्राप्त करते (बनाते) हैं । आप कस्याजकपरिणी, आम्न्ददायिनी, चंचक-खाद्य एवं पय से वृत्त, बैठने के लिए श्रेष्ठ स्थान देने वाली और सुन्दर वृ-भाग हैं ॥२७॥

२८. पुरा क्रूरस्य विसृपो विरक्षिन्नदादाय पृथिवीं जीवदानुम् । यामैर्यश्नन्मसि स्वधाभिस्तामु धीरासो अनुदिश्य यजन्ते । प्रोक्षणीरासादय त्रिषतो वधोसि ॥२८॥

इस कण्डिका द्वारा समूची को मुक्त करने, छेड़नी पत्र को स्पर्श करने एवं स्वयं पत्र को स्पर्श करने की क्रिया सम्पन्न होती है -

हे विधो (विज्ञानवेत्ता ईश्वर) । और पुरुष क्रूर मुष्टों के लिए अपना सर्वस्व होम । इसके पहले ही विवेकवान् उन (शक्ति-साधनों) को यज्ञ के लिए प्रयुक्त करते हैं । करने से स्वधा (स्वयं कारण करने में समर्थ) शक्तियों के माध्यम से भूमि की चन्द्रमा की ओर प्रेरित करते हैं । हे विज्ञानवेत्ता साधको ! पवित्र करने वाले यज्ञपात्र (प्रोक्षणी आदि) को समीप रखो (यज्ञ उपकरणों को स्थल करके करते हैं) । तुम द्रव्यकर्ताओं (वर्तियों) के विनाशक हो ।

[ १. प्राचीन अलङ्कार है कि देवताएँ सत्त्व के पूर्व देखो वे पृथ्वी का रस प्राप्त करती हैं । २. यह अलङ्कार पृथ्वी के अन्न से चन्द्रमा की अर्धली की वैज्ञानिक अन्वय (पृथ्वी का अन्न चन्द्रमा) से अनुपम है । ]

२९. प्रत्युष्टं रक्ष प्रत्युष्टाऽ अरातयो निष्टुप्तं रक्षो निष्टुप्ताऽ अरातयः । अनिशितोसि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्प्राज्मि । प्रत्युष्टं रक्ष प्रत्युष्टाऽ अरातयो निष्टुप्तं— रक्षो निष्टुप्ताऽ अरातयः । अनिशितासि सपत्नक्षिद्वाजिनो त्वा वाजेध्यायै सम्प्राज्मि ॥

इस कण्डिका द्वारा तुम एवं पृथ्वी को जोड़ने अर्थात् यज्ञ से निष्कासित करने की क्रिया सम्पन्न होती है -

राससी एवं अनुदार वृत्ति करते अलङ्कार-रक्ष हो गये हैं । अतः हम (सात्विकगुण) व्यापक क्षेत्र में यज्ञार्थ प्रविष्ट होते हैं । तुम पैसे न होने पर भी ऋषु का नाश करने में समर्थ हो । तुम अन्न देने में (यज्ञ के माध्यम से) समर्थ हो । तुम्हें अन्न-बल प्राप्ति के लिए पवित्र करते हैं ॥२९॥

३०. अदित्यै रास्नासि विष्णोर्वेधोस्यूर्जे त्वादब्धेन त्वा चक्षुषावपश्यामि । अग्नेर्जिह्वासि सुहृद्वेधो धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे ॥३०॥

इस कण्डिका में जो जो तन्त्रे हुए करार करे -

तुम पृथ्वी के रस (सारतन्त्र) हो । तुम अग्नि की जिह्वा (अग्नि में तपते उठने वाले) हो । हमारे प्रत्येक यज्ञ में तथा घर-घर में देवों का आवाहन करने वाले बनो । तुम सर्वव्यापी परमात्म के निवास स्थल हो । हम अपत्यक दृष्टि से अन्न और वल की प्राप्ति के लिए तुम्हें देखते हैं ॥३०॥

३१. सवितुः प्रसवऽऽत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । सवितुर्वः प्रसवऽऽत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । तेजोसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि प्रियं देवानामनामृष्टं देवयजनमसि ॥३१॥

इस कण्डिका के द्वारा आज्य एवं प्रोक्लये-वाक के जल के प्रवेदन की क्रिया सम्पन्न होती है —

हम याजक सवितादेव की श्रणा में, तेजस्वी सूर्य रश्मिर्वा के माध्यम से, तुम्हें शुद्ध करते हैं । तुम तेजस्वरूप हो, प्रकाशरूप हो, अमृतरूप हो, दिव्य आकाम हो तथा किसी दस्त्र में न रहने वाले देवताओं के प्रिय, यज्ञ के साधनरूप हो ३१ ॥

### — ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि — परमेष्ठि प्रजापति अथवा देवगण प्रजापति १ २७, २९ ३१ । अमरांस २८ ।

देवता — शाखा, वायु, इन्द्र १ । वायु, उक्ता २ । वायु, पथ प्रश्न ३ । गौ, इन्द्र, पथ ४ । अग्नि ५ १८ । प्रजापति, सुक्, सूर्य ६ । राक्षस, बह्म राक्षसपातो ७ । वृ (वृआ), अन (प्रजवायु) ८ । अन (प्रजवायु) । हवि, रक्ष (राक्षस) ९ । सविता, त्रिगोक्त देवता १० । हवि, सूर्य, बृह ११ । त्रिगोक्त, आपः (जल) १२ । आपः, त्रिगोक्त, पात्र समूह १३ । कृष्णाजिन, राक्षस, उत्सृजल १४ । हवि, भुसन्, वाक्, पत्नी १५ । वाक्, सूर्य, हवि, राक्षस, तण्डुल (चावल) १६ । उपवेष्ट, अग्नि, कपाल १७ । अग्नि १८ । कृष्णाजिन, दूषत्, तण्डुल, उपल १९ । हवि, आज्य २० । सविता, हवि, आपः (जल) २१ । हवि, आज्य, पुरोडाश २२ । पुरोडाश, त्रित, द्वित, एकत २३ । सविता, स्पृश २४ । वेदिका, पुरीष (पूरक), सविता २५ । असुर, वेदिका २६ । विष्णु, वेदिका २७ । चन्द्रमा, ईश (निर्देव), आधिचारिक २८ । राक्षस, सुव, सुक् २९ । वेदका (वृआ) बांधने को रस्सी, आज्य ३० । आपः, आज्य ३१ ।

छन्द — स्वराट् बृहती, बाह्यी उष्णिक् १ । स्वराट् आची त्रिष्टुप् २ । पुरिक् जगती ३ । अनुष्टुप् ४ । आची त्रिष्टुप् ५ । आची पंक्ति ६ । प्राजापत्या जगती ७ । निवृत् अतिजगती ८ । निवृत् त्रिष्टुप् ९ । पुरिक् बृहती १० । स्वराट् जगती ११ १४ । पुरिक् अत्यष्टि १२ । निवृत् उष्णिक्, पुरिक् आची गायत्री, पुरिक् उष्णिक् १३ । निवृत् जगती, वाजुषी पंक्ति १५ । स्वराट् बाह्यी त्रिष्टुप्, विराट् गायत्री १६ । निवृत् बाह्यी पंक्ति १७ । बाह्यी उष्णिक्, आची त्रिष्टुप्, आची पंक्ति १८ । निवृत् बह्यी त्रिष्टुप् १९ । विराट् बाह्यी त्रिष्टुप् २०, २५ । गायत्री, निवृत् पंक्ति २१ । पुरिक् त्रिष्टुप्, गायत्री २२ । बृहती २३ । स्वराट् बाह्यी पंक्ति २४ । स्वराट् बाह्यी पंक्ति, पुरिक् बाह्यी पंक्ति २६ । बाह्यी त्रिष्टुप् २७ । विराट् बाह्यी पंक्ति २८ । त्रिष्टुप्, त्रिष्टुप् २९ । निवृत् जगती, ३० जगती अनुष्टुप् ३१ ।

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥



## ॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

३२. कृष्णोऽस्याखरेष्टोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि बर्हिरसि  
सुगन्ध्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥१॥

यही उपकरणों एवं सामनों को संशोधित करने का कर्म है—

हे यज्ञीय कर्म में प्रयुक्त होने वाले स्तुतिमन्त्रों आदि यज्ञ के निर्गत हय आपको पवित्र करते हैं हे यज्ञवेदिके  
यज्ञ कर्म की सफलता के लिए आपको पवित्र करने हैं । सुचाआ (यज्ञ पात्र) के प्रयोग की प्रेरणा देने वाले आधार  
रूप हे बर्हि (कुशाओ) हम आपको पवित्र करते हैं ॥१॥

३३. अदित्यै व्युन्दनमसि विष्णोः स्तुपोऽस्यूर्णम्भदसं त्वा स्तुणामि स्वासस्थां देवेभ्यो  
भुवपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानां पतये स्वाहा ॥२॥

प्रस्तुत कथिष्ठा द्वारा प्रेरणा से बने ऊप को कुजओं की उद् या उन्नति की क्रिया सम्यक् होती है—

हे यज्ञावेश्य जल (यज्ञ पृथ्वी तथा विविध और्ध्वगुण युक्त पदार्थों को आप सींचने वाले हैं हे स्तुप  
आकार (पुले की तरह बंधी) कुशाओ ! देवों के लिए ऊप जैसे कोमल आसन रूप में आपको फैलाते हैं हे  
यज्ञको आप पृथ्वी के, सब लोकों के तथा प्राणिमात्र के कलनकर्ता के लिए सर्वस्व समर्पण करें ॥२॥

३४. गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिह  
ऽईदितः । इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिह  
ऽईदितः । मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधतां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य  
परिधिरस्यग्निरिह ऽईदितः ॥३॥

इस कथिष्ठा में यज्ञ कुण्ड एवं यज्ञस्थल की तीन परिधियों को तक्ष्य करने का कर्म है—

संसार के अनिष्ट-निवारण के लिए (यज्ञार्थ) अग्नि को स्तुति करते हैं (प्रथम परिधि) आप याज्ञकों की  
सुरक्षा करने वाली हैं, विश्वावसु गंधर्व आपको चारों ओर से रक्षालें । (दूसरी परिधि) आप याज्ञकों की रक्षक,  
इन्द्रदेव की दाहिनी भुजा हैं (तीसरी परिधि) हे यज्ञपानों की रक्षक ! मित्रावरुण (सूर्य एवं वायु) धर्मपूर्वक उत्तम  
साधनों से आपको धारण करें ॥३॥

३५. वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥४॥

भूत-भविष्य के ज्ञाता हे क्रान्तदर्शी अग्निदेव ! ऐश्वर्य प्राप्ति की कामना करने वाले तेजस्वी, महान् याज्ञक  
यज्ञ में आपको प्रज्वलित करते हैं ॥४॥

३६. समिदसि सूर्यस्त्वा पुरस्तात् पातु कस्याश्चिदभिज्ञस्त्यै । सवितुर्बाहू स्थाऽ ऊर्णम्भदसं  
त्वा स्तुणामि स्वासस्थं देवेभ्यऽ आत्वा वसवो रुद्राऽ आदित्याः सदन्तु ॥५॥

इस कथिष्ठा में समिदाओं एवं कुजओं को संशोधित करने का कर्म है—

हे समिध आप अग्नि को प्रदीप्त करने वाली हैं । सविता देवता आपकी रक्षा करें ( सूर्य रश्मियाँ से  
कीटाणु रहित करें ) हे वृणयुगल ( कुशाद्वय ) । आप दोनों सविता देवता की भुजाएँ हो ऊप के बने  
कोमल आसन के रूप में देवताओं के सुखपूर्वक बैठने के लिए आपको फैलाते हैं । वसुगण भरद्गुण तथा रुद्रगण  
आपके ऊपर स्थापित हों ॥५॥

३७. घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियं ॥ सदऽ आसीद घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना  
सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियं ॥ सदऽ आसीद घृताच्यसि धुक् नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रिय  
॥ सदऽ आसीद प्रियेण धाम्ना प्रियं ॥ सदऽ आसीद । धुक् असदन्तस्य योनौ ता विष्णो  
पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञर्पतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ॥६॥

यह कण्डिका जुहु उपभृत्, धुक् तथा विष्णु को संबोधित करती है—

(जुहू के प्रति) आपका नाम जुहु है । आप अपने प्रिय घृत से पूर्ण होकर-घृत देने वाली होकर इस यज्ञ-स्थल में स्थापित हों । (उपभृत् के प्रति) आपका नाम उपभृत् है । आप घृत से युक्त होकर अपने प्रिय यज्ञस्थल पर स्थापित हों । (धुक् के प्रति) आपका नाम धुक् है । आप अपने प्रिय घृत द्वारा सिंचित होकर यज्ञ-स्थल पर स्थापित हों । हे यज्ञस्थल पर प्रतिष्ठित विष्णुदेव ! आप यज्ञ-स्थल पर स्थापित सभी साधनों, उपकरणों, यज्ञकर्ताओं एवं हमारी (यज्ञ संचालकों की) रक्षा करें ॥६॥

३८. अग्ने वाजजिह्वाजं त्वा सरिष्यन् वज्रजितं ॥ सम्मार्जिम् । नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः  
सुयमे मे भूयास्तम् ॥७॥

अन्न प्रदान करने वाले हे अग्निदेव । अन्न प्रप्ति के माध्यम तथा पुरुषाओं आपका शोधन करते हैं । देवों एवं पितरों को अन्न देकर (सन्नायता प्राप्ति हेतु) नमन करते हैं । आप हमारे लिए सहायक सिद्ध हों ॥७॥

३९. अस्कन्नमद्य देवेभ्यऽआज्यं ॥ सन्निधासमर्द्धघ्ना विष्णो मा त्वायकमिषं  
वसुमतीमग्ने ते दद्यायामुपस्येवं विष्णोः स्थानमसीतऽ इन्द्रो वीर्यमकुणोदूर्ध्वोऽध्वर  
ऽआस्थान् ॥८॥

हे यज्ञाने यज्ञस्थल को हम अपने पैरों से अपवित्र नहीं करेंगे । देवों को समर्पित करने के लिए आज हम पवित्र घृत लाये हैं । हे अग्निदेव ' इन्द्रदेव ने अपने पराक्रम से यज्ञ को उन्नत किया था । यज्ञस्थल में स्थित, अन्न प्रदान करने वाले (हम वाजकगण) आपके सन्निध्य में सर्वदा रहें ॥८॥

४०. अग्ने वेहोत्रं वेदूत्यमवतां त्वां द्यावापृथिवी अव त्वं द्यावापृथिवी स्थिष्टकृदेवेभ्यऽ इन्द्र  
ऽआज्येन हविषा भूत्स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः ॥९॥

हे अग्निदेव हवन कार्य की विधि-व्यवस्था को आप कल्ले भाँति जानते हैं । आप ही देवी-शक्तियों तक हवि-भाग पहुँचाते हैं । ध्रुलोक तथा पृथ्वीलोक की आप रक्षा करें । देवों सहित इन्द्र हमारे घृतरूपी हवि से सन्तुष्ट हों । ज्योति से ज्योति का एकीकरण हो ॥९॥

[यज्ञीय ऊर्जा का पृथ्वी और अन्तरिक्ष का सन्तुलन बनाने और सन्तुलित प्रकृति इस यज्ञीय ऊर्जा का को सुरक्षित रखे— यह भाव है ]

४१. मयीदमिन्द्रऽ इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो वधवान् सचन्ताम् । अस्माकं ॥ सन्त्वाशिषः  
सत्या नः सन्त्वाशिष उद्यमहता पृथिवी मातोपमां पृथिवी माता ह्यता-  
यग्निराग्नीध्रात्स्वाहा ॥१०॥

हे इन्द्रदेव ' हमारी मनोकामनाएँ पूरी हों, हम सभी ऐश्वर्यों से युक्त हों । हम पराक्रमी हों । हमारी इच्छाएँ सत्य फल वाली हों । यह माता के समान पृथ्वी, जिसको हमने स्तुति की है, हमें यज्ञाग्नि प्रदीप्त करने वाला होने से (अग्नि सदृश) तेजस्वी बनाकर (लोकाहित के लिए) समर्पित होने की अनुमति दे ॥१०॥



४२. उपहृतो द्यौषितोप मां द्यौषिता ह्ययतामभिसम्नीक्षात्स्वाहा । देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । प्रतिगृह्णाप्यग्नेष्ट्वास्येन प्राश्नामि ॥११॥

द्युलोक के पासनकर्ता सवितादेव की हमने (अध्वर्यु ने) स्तुति की है । अतः द्युलोक के प्रभु यज्ञावशेष को ग्रहण करने की अनुमति दें । अग्नि की अनुकूलता से हम यज्ञावशेष को ग्रहण करते हैं । यह आहुति रूप (यज्ञावशेष) उन्नति करने वाला हो । सवितु देव की शरण से, अश्विनो कुमारों की बाहुओं तथा पूषादेव के दोनों हाथों की मदद से इस यज्ञावशेष (अन्न) को हम ग्रहण करते हैं । अग्नि के मुख से (अग्नि द्वारा वायुभूत हुए हविष्यान्न को) हम ग्रहण करते हैं ॥११॥

(विज्ञान यह मानने लगा है कि कपनूत इन्द्रण तथा कपनूत पंचक तत्त्व हमारे शरीर में प्रविष्ट होकर हमें प्रसाधित करते हैं ।)

४३. एतन्ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे । तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं तेन धामव ॥१२॥

हे सृष्टिकर्ता सवितादेव । यज्ञधानगण आपके निर्मित यह यज्ञानुष्ठान कर रहे हैं । अतः आप इस यज्ञ की, राजमान की तथा हमारी (यज्ञ-संचालकों की) रक्षा करें ॥१२॥

४४. मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिः । यज्ञं सभिम् दधातु । विश्वे देवास उग्रह मादधन्तामोऽभ्यतिष्ठ ॥१३॥

हे सवितादेव ! आपका वेगवान् मन आस्य (भूत) का संघन करे । बृहस्पतिदेव इस यज्ञ को, अनिष्टरहित करके इसका विस्तार करें इसे धारण करें । सभी देवी शक्तिपूर्व प्रतिष्ठित होकर आनन्दित हों-संतुष्ट हों । (सविता देव की ओर से कथन) तवाभ्यु प्रतिष्ठित हो ॥१३॥

४५. एवा ते अग्ने समितया वर्षस्य वा च प्यायस्य । वर्षिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि । अग्ने वाजजिह्वाजं त्वा ससुवाधं स वाजजितं धं सम्मार्जिम् ॥१४॥

हे अग्निदेव ! आपको प्रज्वलित करने के लिए यह समिका है । हम (वाजक) आपको प्रदीप्त करते हुए स्वयं भी समृद्धि की कामना करते हैं । हे अन्न के उत्पादक अग्निदेव ! हम आपका मार्जन (जलाभिक्षिप्त) करते हैं ॥१४॥

४६. अग्नीषोमयोरुज्जितिमनूज्जेधं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि । अग्नीषोमौ तमपनुदतां योस्मान्देहि धं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि । इन्द्राग्न्योरुज्जितिमनूज्जेधं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि । इन्द्राग्नी तमपनुदतां योस्मान्देहि धं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि ॥१५॥

(यज्ञ से प्राप्त पोषण रूप) अन्न से प्रेरित होकर हम वैसी ही विजय प्राप्त करने के लिए तत्पर हुए हैं, वैसी विजय सोम और अग्निदेव ने प्राप्त की है । जो हमसे द्वेष रखते हैं एवं जिनसे हम सभी द्वेष रखते हैं, उन्हें अग्नि और सोम दूर हटा दें । अन्न से प्रेरित हुए हम वैसी ही विजय के लिए तत्पर हैं, वैसी विजय इन्द्र और अग्निदेवों ने प्राप्त की है । जो हमसे द्वेष करने वाले हैं तथा जिनसे हम द्वेष करते हैं, उन्हें इन्द्र एवं अग्निदेव दूर हटा दें । हम हविष्यान्न को प्रेरणा से शत्रुओं को दूर करते हैं ॥१५॥

४७. वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्वा संजानाथां द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम् । व्यन्तु वयोक्तं धं रिहाणा मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो दृष्टिमावह । चक्षुष्या ऽ अग्नेसि चक्षुर्मे पाहि ॥१६॥

तीन परिधियाँ क्रमशः वसु को, रुद्र को और आदित्य को समर्पित की जाती हैं। इस उष्य को द्युलोक और पृथ्वीलोक की शक्तियाँ जानें। मित्रवरुण वर्षा से उनकी रक्षा करें। धृतराष्ट्र हव्य का स्वाद लेते हुए पक्षी (यज्ञीय ऊर्जा) मरुतों का अनुगमन करते हुए स्वाधीन किष्कि में परिवर्तित होकर द्युलोक में पहुँचें वहाँ से वर्षा लेकर आएँ। हे यज्ञाम्ने ! आप नेत्रों के रसक हैं हमारे नेत्रों की रक्षा करें ॥१६॥

(यज्ञीय ऊर्जा से प्रकृति का (इन्द्रोर्जाव्यय-संकेत) के संतुल्य का संकेत इस चर में है।)

४८. यं परिधिं पुर्यधत्वाऽ अग्ने देव पणिभिर्गुह्यमानः । तं त एतमनु जोषं भराभ्येष  
नेत्स्वदपचेतयाताऽ अग्नेः प्रियं पाशोपीतम् ॥१७॥

हे अग्निदेव आपके द्वारा 'पणि' नामक शत्रुओं (दस्यु व्यापारियों) से बचाव के लिए जो परिधि चारों ओर बनायी गयी है, उसे आपके अनुकूल बनाते हैं, ताकि यह परिधि आपसे दूर न हो। यह प्रिय हविष्यान् आपको प्राप्त हो ॥१७॥

[\* नेत्स्वदपचेतयाता ( वै०यो०३० ) ॥

४९. स ऽं स्रवभागा स्येषा बृहन्तः प्रस्तरेष्टाः परिवेयाह्व देवाः । इमां वाचमनि विश्वे  
गृणन्तऽ आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयस्व ऽं स्वाहा वाद् ॥१८॥

हे विश्वदेवागण, आप अपनी परिधि (मर्यादा) के अन्तर्ग में रहे। अपने आसन पर ही मधुर रसमय अन्न-भाग को ग्रहण करके पुष्ट बनें और आनन्दित हो। आप इस घोषणा के अनुरूप कार्य करें ॥१८॥

५०. घृताक्षी स्यो धुर्यो पातऽसुप्ने स्वः सुप्ने वा क्षतम् । यज्ञं नमस्व त उठप च यज्ञस्य  
शिवे संतिष्ठस्व त्विहे मे संतिष्ठस्व ॥१९॥

यह उम्पिका जू, उम्पा, उम्पा वादक का चलोटी को लपट करने वाली गयी है—

(हे जुहू तथा उपभूतः) आप दोनों घृत से पूर्ण हों। (हे शकटवाहकः) आप घृता में नियुक्त (जुहू और उपभूत) को घृत से युक्त हुए लोगों की रक्षा करें। हे यज्ञोदके ! वह हविष्यान् आपके समीप लाया गया है आप सुख स्वरूप हैं। अतः यज्ञार्थ हमारे इष्ट के रूप में इसे सुख प्रदान करते हुए स्थापित हों ॥१९॥

५१. अग्नेदध्यायोशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुराग्र्या  
अविषं नः पितुं कृणु । सुषदा योनौ स्वाहा वाढमन्ये संवेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै  
यशोभगिन्यै स्वाहा ॥२०॥

हे तेजस्वी आयुष्य (प्रखर बन्धन रहने का गुण) प्रदान करनेवाले व्यापक अग्ने ! शत्रु के शस्त्र से तथा उसके जाल से हमारा रक्षा करें, हमें विनाश से बचाएँ। हम विप्लव भोजन से बचाएँ हमारे अन्न को पवित्र करें अपने निवास (घर) में सुख और आनन्द से रहने का हमारा मार्ग प्रशस्त करें—यह हमारी प्रार्थना है। हमारे सान्निध्य में रहने वाले आप (अग्नि) के लिए यह आहुति समर्पित है। यज्ञभगिनी (वाणी) सरस्वती के लिए यह आहुति समर्पित है ॥२०॥

५२. वेदोसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोभयस्तेन मद्वां वेदो भूयः । देवा गातुविदो गातुं  
वित्वा गातुमित । मनसस्पतऽ इमं देव यज्ञं स्वाहा वाते वाः ॥२१॥

हे वेद ! आप ज्ञान स्वरूप हैं। देखें को ज्ञानवान् बनने की भूँति हमें भी ज्ञान प्रदान करें। हे मार्गदर्शक देवगणो ! सन्मार्ग को समझकर सत्यमार्ग पर अग्ररूढ़ हों। हे मन के परिपातक प्रभो ! यह यज्ञ आपको समर्पित करते हैं। आप इसे वायु के माध्यम से विस्तार प्रदान करें ॥२१॥

५३. संबर्हिरेह्वस्ताऽऽ हविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभिः सम्पर्हन्ति । समिन्द्रो विश्वदेवेष्विह्वस्तां दिव्यं नभो गच्छतु यत् स्वाहा ॥२२॥

यह कण्डिका यज्ञ के समय प्रयुक्त कुशलों का घृत से मिश्रित करने का विधान प्रस्तुत करती है—

हे इन्द्रदेव इस कुश समूह को यज्ञार्थ लावे गये घृत से युक्त कर समर्पित करते हैं । इन्हें आदित्यों, वसुओं, भरतों तथा सभी देवगणों के साथ दिव्य आकाश में स्पर्षित करें ॥२२॥

५४. कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति । पोषाय रक्षसां भागोसि ॥२३॥

यह कण्डिका यज्ञ से कबे हुए पदार्थों के लिए है—

तुम्हें किसने छोड़ा है ? तुम्हें उसने (आज्ञा ने) छोड़ा है । तुम्हें किस हेतु छोड़ा गया है ? तुम्हें उनके (याजकों और उनके परिवारों के) लिए छोड़ा गया है । (जो अर्वासाह वदार्थ बिखर गया है) वह राक्षसों के भाग रूप में त्यागा गया है ॥२३॥

(ईशोपनिषद् (अध्याय १० १) में 'येन यजमानं वृज्जीक' - यजमान वृज्जीक छोड़े कबे पदार्थों का धोना करने का निर्देश दिया गया है । इस कण्डिका से यही अर्थ स्पष्ट किया गया है ॥

५५. सं वर्षसा पयसा सं तनूभिर्गन्महि मनसा स ऽऽ शिवेन । त्वष्टा सुदग्नो विदधातु रायोनुमार्ह तन्वो यद्विलिष्टम् ॥२४॥

हमारे शरीर तेजस्विता (वर्चस्) एवं (पयसा) धोयक तत्वों से युक्त हो । हमारे मन शिवत्व से युक्त हों । हमारे मन शिवत्व से युक्त हों । हमारे मन शिवत्व से युक्त हों । हमारे मन शिवत्व से युक्त हों ॥२४॥

५६. दिवि विष्णुर्व्यक्र ऽऽ स्त जागतेन छन्दसा ततो निर्भक्तो वोस्मान्नेष्टि यं च वर्षं द्विष्योन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्र ऽऽ स्त प्रैष्टुमेन छन्दसा ततो निर्भक्तो वोस्मान्नेष्टि यं च वर्षं द्विष्यः पृथिव्या विष्णुर्व्यक्र ऽऽ स्त नायत्रेण छन्दसा ततो निर्भक्तो वोस्मान्नेष्टि यं च वर्षं द्विष्योस्मादन्नादस्यै प्रतिष्ठाया ऽअग्न्य स्वः सं ज्योतिषाभूम ॥२५॥

विष्णु (पोषण के देवता-यज्ञ) ने जगती छन्द से ध्रुवोक्त च, त्रिष्टुप् छन्द से अन्तरिक्ष लोक में तथा गायत्री छन्द से पृथ्वी पर विचारक्रमण (परिभ्रमण) किया है । इस कारण जो हम सबसे द्वेष करता है और जिससे हम सभी द्वेष करते हैं उसे ध्रुवोक्त, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी से सम्पात कर दिया गया है । हविष्यान् के स्थान से— पूजा स्थल से ऐसे शत्रुओं को हटा दिया गया है । इस प्रकार स्वर्गलोक को प्राप्त कर हम तेजस्वी बन गये हैं ॥२५॥

५७. स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वचोदा ऽ असि वचो मे देहि । सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥२६॥

हे मधिता देवता ! आप तेजस्वरूप हैं स्वयं सिद्ध समर्थ हैं । श्रेष्ठ तेज की रश्मियों वाले हैं । अतः हमें भी तेजस्वी बनाएँ । हम सूर्य के आवर्तन ( संचार / परिक्रमण ) के अनुरूप स्वयं भी आवर्तन (व्यवहार/परिक्रमा) करते हैं ॥२६॥

५८. अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वय्यग्नेहं गृहपतिना भूयासर्धसुगृहपतिस्त्वं मयाग्ने गृहपतिना भूयाः । अस्थूरि पाँ गाहृपत्यानि सन्तु शत ऽऽहिमाः सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥२७॥

हे गृहपति अग्ने ! आपके गृहपालक रूप के मार्गस्थ में हम श्रेष्ठ गृहस्वामी बनें । गृहस्वामी की स्तुति से आप उत्तम गृहपालक बनें । हे अस्मिन्नेष्टि ! हम दास्यन्वजीवन का निर्वाह करते हुए सौ वर्ष तक यज्ञकर्म करते रहे । हम सूर्य के द्वारा स्थापित अनुशामनों का अनुगमन करें ॥२७॥

५९. अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेराधी दमहं यऽएवास्मि सोस्मि ॥२८॥

हे व्रतों के पालक अग्निदेव ! हमने जो नियमों का पालन किया है, उससे हम सामर्थ्यवान् बने हैं। हमारे यज्ञकर्म को आपने सिद्ध किया है। यज्ञीय कर्म करते समय हमारी जो चरनाएँ थीं, वही अब भी हैं ॥२८॥

६०. अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृभ्यो स्वाहा । अपहनाऽ असुरा रक्षार्थसि  
वेदिषद् ॥२९॥

पितरों तक कव्य (पितरों का हव्य) पहुँचाने वाले अग्निदेव के लिए यह आहुति समर्पित है। पितरों के सहचर सोमदेव के लिए यह आहुति अर्पित है। कलशार्चन में विद्यमान असुरी शक्तिकों नष्ट हो गई हैं ॥२९॥

६१. ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाऽ असुराः सन्तः स्वयथा चरन्ति । परापुरो निपुरो ये  
भरन्त्यग्निर्होस्लोकात्प्रणुदात्यस्मात् ॥३०॥

(हे कव्यवाहनाग्नि देवता ! ) जो आसुरी शक्तिकों पितरों को मर्षित अन्न का सेवन करने के लिए अनेक रूप बदलकर सूक्ष्म या सूक्ष्मरूप से आती और नीच कर्म करती हैं, उन्हें इस पवित्र स्थान से दूर करें ॥३०॥

६२. अत्र पितरो मादयस्व यथाभागमावृषायस्वम् । अभीमदन्त पितरो यथाभाग-  
मावृषायिषत ॥३१॥

हे पितृगण ! जैसे बैल, इच्छित अन्नभाग प्राप्त कर तृप्त होता एवं पुष्ट होता है, वैसे ही आप अपना कव्य भाग प्राप्तकर जलित हों, हर्षित-आनन्दित हों ॥३१॥

६३. नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः  
स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो धौ  
गृहान्तः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मैतहः पितरो वासऽ आधत्त ॥३२॥

हे पितृगण ! आपके रसरूप (वसन्त), शुष्कता रूप (जीष्म), जीवन रूप (वशी), अन्न रूप (शरट्) पोषणरूप (हेमन्त) तथा उत्साह रूप (शिशिर ऋतुओं) को अभ्यस्त है। हे पितरों ! हमारे पास जो कुछ भी है, वस्त्रादि सहित वह सभी समर्पित करते हैं। आप हमें पुत्र-पौत्रादि से युक्त गृह प्रदान करें ॥३२॥

६४. आभत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्त्रजम् । यथेह पुरुषोसत् ॥३३॥

हे पितृगण ! पुष्टिकर पदार्थों से बने शरीर वाले (इस) सुन्दर बालक का पोषण करें, ताकि वह इस पृथ्वी पर वीर पुरुष बन सके ॥३३॥

६५. ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् । स्वयां स्व तर्पयत मे पितृन् ॥३४॥

हे जलसमूह ! अन्न, घृत, दूध तथा फूलों-फल्लों में आप रस रूप में विद्यमान हैं। अतः अमृत के समान सेवनीय तथा धारक शक्ति बढ़ाने वाले हैं, इसलिए हमारे पितृगणों को तृप्त करें ॥३४॥

## — ऋषि, देवता, छन्द-विवरण —

ऋषि— परमेश्वरी प्रजापति अथवा देवगण प्रजापति १३, १४, १५, २० । विशाखसु ४-१० । विशाखसु, बृहस्पति आंगिरस ११ । बृहस्पति आंगिरस १२, १३ । परमेश्वरी प्रजापति, ऋषि १६ । देवस १७ । सोमसुक्त १८ । परमेश्वरी प्रजापति, शूर्य, यवगण, कृषि, उदात्तगण, जनान्तर्गण १९ । परमेश्वरी प्रजापति, मनसस्पति २१ । मनसस्पति २२-२८ । प्रजापति २९-३४ ।

देवता— इध्म, सिंगोक्त १ । आग् (जल, प्रसर, वेदिक, अग्नि २ । परिधि (येखला) ३ । अग्नि ४, १४, १७, २८ । अग्नि, सिंगोक्त, विद्युत्, प्रसर ५ । भुक् उपभूक्, भुक्, इवि, विष्णु ६ । अग्नि, देवगण, पितर, सुची ७ । सुची, विष्णु, अग्नि, इन्द्र ८ । इन्द्र, अग्नि ९ । अग्नि, सिंगोक्त, पृथिवी १० । छी, सविता, वासिष्ठ ११ । विद्युदेव १२, १३, १८ । अग्नि-सोम, इन्द्राग्नी अग्नि, सिंगोक्त १५ । परिधि (येखला), प्रसर, अग्नि १६ । सुची, कृष्ण १९ । गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, सिंगोक्त २० । वेद, यज्ञ २१ । सिंगोक्त २२ । प्रजापति, रत्नस २३ । त्वहा २४ । विष्णु, भाग, भूमि, देवगण, आहवनीय २५ । सूर्य २६ । गार्हपत्य, सूर्य २७ । देवगण, असुर २९ । कल्पवृक्ष अग्नि ३० । पितर ३१, ३३ । सिंगोक्त, पितर ३२ । आग् (जल) ३४ ।

छन्द— निवृत् पंक्ति १ । स्वराद् जगती २ । भुरिक् आर्ची त्रिष्टुप्, भुरिक् आर्ची पंक्ति, पंक्ति ३ । निवृत् गायत्री ४, २३ । निवृत् ब्राह्मी बृहती ५ । ब्राह्मी त्रिष्टुप्, निवृत् त्रिष्टुप् ६ । बृहती ७, ३१ । विराद् ब्राह्मी पंक्ति ८ । जगती ९ । भुरिक् ब्राह्मी पंक्ति १० । ब्राह्मी बृहती ११ । भुरिक् बृहती १२ । विराद् जगती १३ । अनुष्टुप्, भुरिक् आर्ची गायत्री १४ । ब्राह्मी बृहती, निवृत् अर्धजगती १५ । भुरिक् आर्ची पंक्ति, भुरिक् त्रिष्टुप् १६ । निवृत् जगती १७ । स्वराद् त्रिष्टुप् १८ । भुरिक् पंक्ति १९, ३० । भुरिक् ब्राह्मी त्रिष्टुप् २० । भुरिक् ब्राह्मी बृहती २१ । विराद् त्रिष्टुप् २२, २४ । निवृत् बृहती २३ । निवृत् आर्ची पंक्ति, आर्ची पंक्ति, भुरिक् जगती २५ । छण्डिक् २६ । निवृत् पंक्ति, गायत्री २७ । भुरिक् छण्डिक् २८, ३४ । स्वराद् आर्ची अनुष्टुप् २९ । ब्राह्मी बृहती, स्वराद् बृहती ३२ ।

## ॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥



# ॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

६६. समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आग्निं हव्या जुहोतन ॥१॥

( हे ऋत्विजो ' आप घृतसिक्त ) समिध से (यज्ञ में) अग्नि को प्रज्वलित करें घृत की आहुति प्रदान करके, सब कुछ आत्मसात् करने वाले अग्निदेव को प्रदोष करें । इसके बाद अग्नि में हवि द्रव्य की आहुतियां प्रदान करें ॥१॥

६७. सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीक्ष्णं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥२॥

( हे ऋत्विजो ! ) प्रोक्ष, पल्ले धीमति प्रज्वलित, जाज्वल्यमान, सर्वज्ञ (जातवेद) देदीप्यमान यज्ञाग्नि में शुद्ध पिघले हुए घृत की आहुतियां प्रदान करें ॥२॥

६८. नै त्वा समिद्धिरङ्गिरो घृतेन दर्शयामासि । बृहच्छोचा यविष्य ॥३॥

हे (ज्वालाओं से) प्रदोष अग्निदेव ! हम आपको घृत (और उससे सिक्त) समिधाओं से उद्दीप्त करते हैं हे नित्य तृष्ण (तेजस्वी) अग्निदेव ! (घृत आहुति प्राप्त होने के बाद) आप ऊँचो उठने वाली ज्वालाओं के माध्यम से प्रकाशयुक्त हो ॥३॥

६९. उप स्वाग्ने हविष्मतीर्घृताजीर्यन्तु हव्यत । जुषस्व समिधो मम ॥४॥

हे अग्निदेव ! आपको हवि-द्रव्य और घृत-सिक्त समिध की प्राप्ति (निरन्तर) हो । हे दीपिमान् अग्नि देव ! आप हमारे द्वारा समर्पित समिधों को स्विकार करें ॥४॥

७०. भूर्भुवः स्वर्गोऽस्मि भूम्ना पृथिवीव वरिष्णा । तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमप्रादमप्राद्यापादधे ॥५॥

( हे अग्निदेव ! ) आप भू (पृथिवीलोक में अग्निरूप), भुवः (अन्तरिक्षलोक में विद्युतरूप) एवं स्वः (दुलोक में सूर्यरूप) में सर्वत्र विद्यमान हैं । देवताओं के निर्मित यज्ञ सम्पादन के लिए उत्तम स्थान प्रदान करने वाली हे पृथिवि ! हम देवों को हवि प्रदान करने के लिए आपके ऊपर बनी हुई यज्ञ-वेदी पर अग्निदेव को प्रतिष्ठित करते हैं (इस अग्निस्थापन के द्वारा) हम (पुत्र-पौत्रादि तथा इष्ट-मित्रों से वृत्त लेकर) दुलोक के समान सुविस्तृत तथा (यश, गौरव, ऐश्वर्यादि से) पृथिवी के सम्मान महिमाकम् हो ॥५॥

[अग्नि, विद्युत् तथा सूर्य यक्षल में लक्ष्यता ऊर्जा की एकत्रिकता को चित्रन की भाँसे मणा है ॥

७१. आयं गौः पृश्निरकम्पीदसदन् मानरं पुरः । पितरं च प्रथन्त्वः ॥६॥

( त्रिलोक में ) विचरण करने वाले (सप्त-धौलां) विविध प्रकार की ज्वालाओं से प्रकाशित, अग्निदेव मेघ-समूह एवं अन्तरिक्ष लोक में विद्युतरूप से प्रतिष्ठित हो गये हैं । ऋक्षी मन्त्र के नाम (यज्ञवेदी में) यज्ञाग्नि रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं । इसके बाद (यज्ञरूप) ये अग्निदेव (ज्जलताओं के द्वारा सूर्य किरण के माध्यम से) दुलोक पिता के पास पहुँच गये हैं ॥६॥

७२. अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपान्ती । व्यख्यन् महिषो दिवम् ॥७॥

इस अग्नि का प्रकाशित तेज (वायुरूप) प्राण और अपान वायु के माध्यम से सम्पूर्ण प्राणियों में गतिशील रहता है । अत्यधिक सामर्थ्यशाली अग्निदेव (सूर्य के माध्यम से) दुलोक की ओ-नोई-न करते हैं

७३. त्रिंशद्वाहम विराजति वाक् पतङ्गस्य धीयते । प्रति वस्तोरह शुभिः ॥८॥

(निरन्तर मानवीय व्यवहार के लिए) यह वाणी (अहोरात्र के बीस पुरतः का पास के तीस दिन रूपी) तीस स्थानों पर सुनोभित होती है । सामान्य (व्यवहार के) दिन और विशेष (यज्ञीय अवसर के) दिनों में भी (स्तुति रूपी) ज्योति से (गार्हपत्य, आहुवर्चस् आदि) अग्नि के लिए (स्त्रोत्र रूपी) वाणी प्रयोग में लायी जाती है ॥ ८ ॥

७४. अग्निज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा । अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा । ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥९॥

अग्नि तेज है तथा तेज अग्नि है, हम तेजस्वी अग्नि में हवि देते हैं । सूर्य ज्योति है एवं ज्योति सूर्य है, हम ज्योतिरूपी अग्नि में आहुति देते हैं । अग्नि वर्चस् है और ज्योति वर्चस् है, हम वर्चस् रूपी अग्नि में हवन करते हैं । सूर्य ब्रह्म तेज का रूप है तथा ब्रह्मवर्चस् सूर्यरूप है, हम उसमें हवि प्रदान करते हैं । ज्योति ही सूर्य है और सूर्य ही ज्योति है, हम उसमें (इस मंत्र से) आहुति समर्पित करते हैं ॥ ९ ॥

७५. सजृद्धेन सवित्रा सजु रान्येन्द्रकन्या । जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा । सजृद्धेन सवित्रा सजुरुवसेन्द्रकन्या । जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥१०॥

सविता देवता एवं इन्द्रयुक्त रात्रि के साथ रहने कसे अग्निदेव इस आहुति को ग्रहण करें । सवितादेव के साथ इन्द्रयुक्त उषा से जुड़े हुए सूर्यदेव को यह आहुति समर्पित है ॥ १० ॥

७६. उपप्रपन्तो अश्वरं यन्त्रं बोधे घान्नये । आरे अस्मे च शुण्वते ॥११॥

यज्ञ के समीप उपस्थित होते हुए (जीवन में यज्ञीय सिद्धान्तों का समवेष्टन करते हुए) हम सुदूर स्थान से भी कथन (भाव) को सुनने वाले अग्निदेव के विधित स्तुति मंत्र समर्पित करते हैं ॥ ११ ॥

(युष्मन् का अर्थ है, हमारे लक्ष्यों का काम करने का । यही पशु (अग्नि वर्चस्) से अग्नि (अर्जुन-वत्) के प्रचलित होने का लक्ष्य प्रकट किया गया है ।)

७७. अग्निर्मूर्धा दिवः ककुपतिः पृथिव्या ऽअयम् । अथांशरेतांशं सि जिन्वति ॥१२॥

यह अग्निदेव । (आदित्यरूप में) पुरालोक के स्वीरूप सर्वोच्च धाम में विद्यमान होकर जीवन का संचार करके, धरती का पालन करते हुए, उस में जीवनीशक्ति का संचार करते हैं ॥ १२ ॥

(और ऊर्जा से पृथ्वी का जीवन संचार के वैज्ञानिक काम का अभिप्राय इस वाक्य में है ।)

७८. उषा वाभिन्द्राग्नी आहुवध्या उषा रायसः सह मादयध्वै । उषा दाताराविषांशं रयीणामुषा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥१३॥

हे इन्द्राग्नी हम आप दोनों का (यज्ञ में) आवाहन करते हैं । आप को (हविष्याग्ररूपी) धन प्रदान करके प्रसन्न करते हैं । आप अन्न एवं धन प्रदान करने वाले हैं । हम अन्न एवं धन-प्राप्ति के लिए आप दोनों को यज्ञ में आवाहित करते हैं ॥ १३ ॥

७९. अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः । तं जानन्नमऽ आरोहाथा नो वर्धया रधिष् ॥१४॥

यह अन्न गार्हपत्याग्नि से उत्पन्न हुए अहोरात्रिक अग्नि के विभव में है । हे अग्निदेव । समयानुसार (अन्नः यध्याह्नः सन्ने) उषा (गार्हपत्य) अग्नि को अपना जनक मानते हुए पुनः प्रदीप्त होने के लिए यज्ञ कर्तव्य के अन्त में उषा (गार्हपत्य अग्नि) में आप पुनः प्रविष्ट हो जाएँ । तदनन्तर पुनः यज्ञ करने के लिए आप हमें समृद्ध करें ॥ १४ ॥



८०. अयमिह प्रथमो याचि घातमिहोत्त यजिष्ठो अध्वरेष्वीडधः । यमघ्नवानो भृगवो  
विरुधुर्वनेषु चित्रं विष्मं विज्ञेदिज्ञे ॥१५॥

बह (आहवनीय) अग्नि देकों का आवाहन करने वाले, श्रेष्ठ यज्ञ करने वाले तथा सोमयागादि में ऋत्विजों द्वारा स्तुत्य अग्न्यावाहन करने वाले पुरोहितों द्वारा यज्ञ में स्थापित की गयी है । सर्वव्यापी और विलक्षण अग्नि को यजमानों के उपकार के लिए अपन्नम् आदि भृगुवंशीय मुनियों ने जंगलों में प्रज्वलित किया है ॥१५॥

[० अ० ५.६.१ के अनुसार यह यज्ञ कुजों के साथ अग्निमान् हुआ है । मुद्रिन् ने इन को कुजों की स्तुति पायी है ।]

८१. अस्य प्रत्नामनु घृतं शुक्रं दुदुह्ये अहुवः । एवः सहस्रसामुषिम् ॥१६॥

चिरन्तन काम से उत्पन्न इस अग्नि की दक्षिण का अनुसरण करके, संकोचरहित ऋत्विजों ने दुग्ध, दधि, घृत तथा इवि आदि के द्वारा हजारों यज्ञों को सम्पन्न करने वाले ऋत्विजों के सम्पन्न गौ से दुग्ध का दोहन किया है ॥  
[यौं ऋत्विजम् अग्नि से काम उत्पन्नकृत दुग्ध (दोहनी वस्तुओं) के प्रवर्धित होने का उत्पन्नकारीक वर्धन है ॥]

८२. तनूपाऽअग्नेसि तन्वं मे पाद्मायुर्दाऽअग्नेस्वायुर्मे देहि वचोऽाऽअग्नेसि वचो मे देहि ।  
अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्मऽआयुज ॥१७॥

हे अग्निदेव ! आप स्वभाव से ही होताओं के शरीर के रक्षक हैं । अतएव आप हमारे शरीर का पालन करें । हे अग्निदेव ! आप आयु-दाता हैं, इसलिए आप हमें आयु प्रदान करें । हे अग्निदेव ! आप वैदिक अनुष्ठान से प्राप्त तेज को प्रदान करने वाले हैं, आतः हमें वर्चस् प्रदान करें तथा हे अग्निदेव ! हमारे शरीर के अङ्गों की अपूर्णता को दूरकर आप हमें सर्वाङ्ग सम्पन्न करें ॥१७॥

८३. इन्वानास्त्वा शतं हिमा घुमन्तं समिधीमहि । ययस्वन्तो ययस्कृतं सहस्वन्तः  
सहस्कृतम् । अग्ने सपत्नदम्पनपदव्यासो अदाध्यम् । चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय ॥

इस ऋत्विज का पूर्वार्ध अग्नि देवता के लिए एक कर्त्तव्य और देवता के लिए है—

दीप्तिमान्, धन-सम्पन्न, अविशक्त, किसी के द्वारा न दबाये जाने वाले हे अग्निदेव ! आपकी कृपा से आयुष्मान्, शक्ति-सम्पन्न, किसी से भी दमित न किये जाने वाले, हम याज्ञकगण आपको प्रदीप्त करके, सौ वर्ष तक जाज्वल्यमान रहेंगे । हे रात्रि देवि ! हम याज्ञकगण वस्तुमान प्रसिद्धि के लिए आपके निकट रहें ॥१८॥

८४. सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्चसानवाः सपुषीणां स्तुतेन । सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा  
सं वर्चसा सं प्रजया सः रायस्योषेण पिषीय ॥१९॥

इस यज्ञ के साथ अग्निमान् किया जाता है—

हे अग्निदेव ! आप सूर्य की तेजस्विता के साथ ऋत्विजों के अनेक स्तोत्रों के साथ तथा प्रिय अहृतियों (प्रियधाम) के साथ युक्त होते हैं । उसी प्रकार हम भी आपकी कृपा, दीर्घायु, विजय तथा ऐश्वर्ययुक्त तेज, पुत्रादि तथा धन-धान्यादि पोषण से युक्त हों ॥१९॥

८५. अन्वस्थान्धो वो भक्षीय महस्य मध्ये वो भक्षीयोर्जस्योर्जं वो भक्षीय रायस्योषस्य  
रायस्योषं वो भक्षीय ॥२०॥

यह ऋत्विज का ऊर्ध्व, तल-ऊर्ध्व अर्द्ध में निश्चयन पेशक कुजों को 'वो' के साथ इस प्रस्तुत कर रही है—

(हे गौओं ! ) आप अन्नरूप हैं । आपकी कृपा से हम (दुग्ध) घृतादि रूप (पोषक) अन्न का सेवन करें । आप पूज्य हैं । हम आप से पूज्यत्व अर्थात् त्रिसिद्धि प्राप्त करें । आप वरस्वरूप हैं । हम आपकी कृपा से वसयुक्त हों । आप धन-पुष्टिरूप हैं । हम आपकी कृपा से (धन-वस्तुआदि) पोषण प्राप्त करें ॥२०॥

८६. रेवती रमध्वमस्मिन्योनावस्मिन् गोष्ठेस्मिंस्लोकेस्मिन् क्षवे । इहैव स्त मापगात् ॥२१॥

गव्य जब स्वयं कम से घुमने के लिए छोड़ी जाती है उस समय यज्ञपत्र कम-ऊँचा करने हुए पंख फड़ करता है —

(हे घनवती गौओ ! ) आप अग्निहोत्र के समय यज्ञस्थल पर मौनपूर्वक रहें । दुग्ध दुहने के पूर्व आप गीशाता में संचरण करें । सर्वदा यजमान के दहि-पथ में ही आप अवस्थित रहें । रात्रि में आप यजमान के घर में सुखपूर्वक निवास करें । आप यज्ञपत्र के घर में ही रहे । दूर न जाएँ ॥२१॥

८७. सः॒ ध्रु॒व॒ इति॑सि॒ वि॒श्वरूप॑र्ज्यामावि॒ज्ञ गौ॑पत्येन । उप॒ त्वाग्ने॑ दिवेदिवे दोषावस्तर्द्धिया॒ धयम् । नमो॑ भरन्तऽ एमसि ॥२२॥

हे गौ ! आप शुक्ल-कृष्ण आदि अनेक रूपों से युक्त होती हुई दुग्ध आदि (हवि-द्रव्य) प्रदान करके यज्ञ-कार्य से संयुक्त हैं । आप दुग्धादि के (रस के) द्वारा ब्रह्म प्रदान करने वाली होकर यज्ञपत्र में गोस्वामित्व भाव से प्रतिष्ठित हो । रात्रि-दिन (सर्वदा) वास करने वाली हे (गार्हपत्य) अग्निदेव ! प्रत्येक दिन हम यज्ञपत्र श्रद्धाभाव से नमन करते हुए आप के पास आते हैं ॥२२॥

८८. राजन्तमच्चराणां गोपामृतस्य दीर्दिविम् । वर्धमानं॑ स्ये दये ॥२३॥

दीर्घिमान् यज्ञों के रक्षक, सत्य वचन रूप वत को आलोकित करने वाले, यज्ञ-स्थल में वृद्धि को प्राप्त करते हुए हम गृहस्थ लोग स्तुतिपूर्वक आपके निकट आते हैं ॥२३॥

८९. स नः पितेव सूनवेग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥२४॥

हे गार्हपत्य अग्ने ! जिस प्रकार पुत्र के लिए पिता बिना किसी बाधा के सहज प्राप्य होता है, उसी प्रकार आप भी (हम यजमानों के लिए) बाधरहित होकर सुखपूर्वक प्राप्य हों । आप हमारे कल्याण के लिए सदा हमारे निकट रहें ॥२४॥

९०. अग्ने त्वं नो अन्तमऽ उत प्राता शिवो धवा वसुध्वः । वसुरग्निर्वसुमवाऽ अन्ध्या नक्षि॒ शुभन्तम॑ च॒ रयि॑ दाः ॥२५॥

हे गार्हपत्य अग्ने ! आप हमारे लिए समीपवर्ती, वासनकर्ता, शान्त तथा पुत्रादि से युक्त घर प्रदान करने वाले हैं । लोगो को निवास प्रदान करने वाले, साहचर्यीय आदि विविध रूपों में गमनशील, धन एवं कीर्ति प्रदान करने वाले, आप हमारे यज्ञ स्थान को प्राप्य हो तथा हमें प्रकटीय धन-ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२५॥

९१. तन्त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः । स नो बोधि सुधी हवमुरुभ्या॒ णो अघायतः॑ समस्मात् ॥२६॥

हे सर्वाधिक कान्तिमान् तथा सभी को प्रकाशित करने वाले अग्निदेव ! हम सुख प्राप्ति एवं अपने मित्रों के कल्याण की कामना करते हैं । आप हमें अपना सेवक समझकर हमारी प्रार्थना सुनें एवं सभी दुष्ट शत्रुओं से हमारी रक्षा करें ॥२६॥

९२. इहऽ एहादितऽ एहि काम्याऽस्त । मयि चः कामधरजं भूयात् ॥२७॥

यह धर्मावस्था भी (गव्य एवं अन्न कदा) को प्राप्त करने वाली नहीं है —

हे इन्द्र रूपी गौ ! आप इन्द्र और ऋतु के सम्मान हमारे यज्ञ स्थल पर आएँ । हे अदितिरूपी मौ ! आप अदिति और अदित्य के सम्मान हमारे यज्ञ स्थल में आगमन करें । हे अचीह गौ ! आप वहीं आएँ एवं हमारे मनोरथ पूर्ण करें ॥२७॥

९३. सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीयन्तं यऽ औशिजः ॥२८॥

हे ब्रह्मणस्पते (सम्पूर्ण ज्ञान के अविषय प्रभु) ! सोम का सेवन करने वाले यजमान को, आप श्रेष्ठ तेजस्विता से युक्त करें । जिस प्रकार दीर्घतया ऋषि एवं ऋषिभ्यः के पुत्र कक्षीयन् को आपने सोमयागयुक्त एवं स्तुत्य बना दिया था, उसी प्रकार हमें भी (धनादि प्रदान करके) धन्य बनाइए ॥२८॥

। ऋग्वेद में ऋषि ऋषिभ्यः ऋषि दीर्घतया कक्षीयन् यजमान ठहरे से हमें कक्षीयन् ऋषि अपनी प्रतिभा से प्रतिष्ठित हुए हैं; यानु केवर ने इन्हें 'कक्षीय' कहा है, ब्रह्मण नहीं ॥

९४. यो रेवान्यो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्द्धनः । स नः सिवक्तु यस्तुरः ॥२९॥

साधन सम्पन्न व्याधियों के विनाशक, ऐश्वर्य-दाता, पुष्टिवर्धक तथा अविनाश्य कार्य सम्पन्न करने वाले हे ब्रह्मणस्पते ! कृपापूर्वक आप हमारे सर्विकट रहें ॥२९॥

९५. या नः शब्धं सो अररुवो धूर्तिः प्रणष्ट मर्त्यस्य । रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥३०॥

हे ब्रह्मणस्पते ! यज्ञ न करने वाले तथा अग्निह-विनाश करने वाले दुष्ट शत्रुओं का हिसक दूषभाव हम पर न पड़े आप हमारी रक्षा करें ॥३०॥

९६. महि त्रीणामवोस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्थम् । दुराधर्वं वरुणस्य ॥३१॥

मित्र (आत्मा) अर्धमर् (हृदय) तथा वरुण देवताओं का तेजस्वी अमोघ संरक्षण हमें प्राप्त हो ॥३१॥

९७. नहि तेवाममा चन नाध्वसु वारणेभु । ईशे रिपुरघशब्धं सः ॥३२॥

(मित्र, अर्धमर् तथा वरुण से संरक्षित यजमान को) पर, नयन-मार्ग अथवा अन्य दुर्गम स्थल में पापी शत्रु अभिभूत करने में सक्षम नहीं होता ॥३२॥

९८. ते हि पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥३३॥

अदिति पुत्र ( मित्र, अर्धमर् और वरुण ) मनुष्य को अक्षय ज्योति प्रदान करते हैं, जो दीर्घ जीवन का आधार है ॥३३॥

९९. कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र स्रष्टसि दाशुषे । उपोपेभु ममवन् भूयऽ इभु ते दानं देवस्य पृथ्यते ॥३४॥

हे इन्द्रदेव आप हिसक नहीं हैं । आप हविर्दान करने वाले यजमान की धनदान द्वारा सेवा करने वाले हैं हे ऐश्वर्य युक्त इन्द्रदेव ! आपका प्रचुर मात्रा में दिया गया दान शीघ्र ही यजमान को प्राप्त होता है ॥३४॥

१००. तत्सविनुर्वीर्यं धर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥३५॥

सम्पूर्ण जगत् के जन्मदाता सविता (सूर्य) देवता की उत्कृष्ट ज्योति का हम ध्यान करते हैं जो (तेज सभी सत्कर्मों को सम्पन्न करने के लिए) हमारी बुद्धि को प्रेरित करता है ॥३५॥

(सूर्य जो सम्पूर्ण जगत् का जन्मदाता सविता-सूर्य आत्मा जन्मसम्पन्न (१०० १ ११५.२) अविषयों ने न केवल सूर्य में फलार्थ की पूर्णतः दिखाई है, जैसा कि वैज्ञानिकों ने भी माना है, अर्जुन रामे नृप-सुत्र नामक को सूर्य भगवान् से ही प्राप्त हुए हैं - ऐरा (आध्यात्मिक दृष्टि से) समुद्र का एक किण्व है ॥

१०१. परि ते दृढघो रथोस्मार् अम्नोतु विम्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ॥३६॥

किसी से प्रभावित न होने वाला आपका वह रथ जिससे आप (लोकाहित हेतु) दान देने वालों की रक्षा करते हैं, हम सबकी चारों ओर से (चतुर्दिक्) रक्षा करें ॥३६॥

१०२. धूर्ध्रुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्वाँः सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः । नर्यं प्रजां मे पाहि  
शँः स्य पशून्मे पाद्वधर्यं पितृ मे पाहि ॥३७॥

गन्धर्व और त्वष्टि इष्टि के लिए अग्नि स्वयं स्वयं भिन्न भिन्न करता है —

हे सच्चिदानन्द प्रभो ! (अग्निदेव हम) श्रेष्ठ प्रजाओं (सन्तानों) से, श्रेष्ठ वीरों से तथा पुष्टिकारक अन्नदि  
से सम्पन्न हो, हे मानव हितैषी ! हमारी सन्तानों की रक्षा करें । हे प्रजासन्धी ! हमारे पशुओं (सहयोगियों)  
की रक्षा करें तथा हे गतियान् ! हमारे (पोषणकर्ता) अन्न की रक्षा करें ॥३७॥

१०३. आ गन्म विश्ववेदसमस्यर्धं वसुवित्तमम् । अग्ने सप्ताहभिः शुम्भमभिः  
सहऽआ यच्छस्व ॥३८॥

आहवनीय अग्नि की स्थापना का वक्त है —

हे दीपितमान् आहवनीय अग्निदेव ! अन्न सर्वत्र और यजमान के निमित्त सर्वाधिक सम्पत्ति धारण करने  
वाले हैं, हम आपके पास आ रहे हैं । (हे अग्नि देवता !) हमें बल और ऐश्वर्य प्रदान करें ॥३८॥

१०४. अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः । अग्ने गृहपतेभिः शुम्भमभिः सह  
आ यच्छस्व ॥३९॥

गार्हपत्य अग्नि का व्यवसायिक वक्त है —

यह सामने अवस्थित अग्निदेव गृहपति हैं, पुत्र-पौत्रादि प्रजाओं को (अनुग्रहपूर्वक) धन-धान्य देने वाले हैं  
हे अग्ने ! आप हमें शक्ति एवं वैभव प्रदान करें ॥३९॥

१०५. अयमग्निः पुरीषो रयिमान् पुष्टिवर्धनः । अग्ने पुरीष्याभिः शुम्भमभिः सहऽआ यच्छस्व ॥

दक्षिणाग्नि का व्यवसायिक वक्त है —

पशुओं आदि से संवन्धित यह दक्षिणाग्नि है । यह अग्नि ऐश्वर्य और समृद्धिवर्धक है । हे पृथ्वी स्थानीय  
दक्षिणाग्नि ! आप हमें शक्ति और सम्पदा प्रदान करें ॥४०॥

१०६. गृहा मा विभीत मा वेपथ्व्यूजं विप्रतऽ एभसि । ऊर्ध्वं विप्रहः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि  
मनसा मोदमानः ॥४१॥

प्रवेश से वापस जाने पर प्रसन्न मन होने के समय बीच-बीच का वक्त करता है, जिसका वह प्रथम वक्त है —

हे घर भयभीत मत हो । (शत्रु के भय से) प्रकम्पित मत हो । हम शक्तियुक्त (सहायता) आपके पास  
आते हैं । हम आज सम्पन्न, श्रेष्ठ बुद्धि से युक्त, दुःख रहित तथा हर्षित होते हुए (आप में) प्रविष्ट होते हैं ॥४१॥

१०७. येधामध्येति प्रवसन्त्येषु सौमनसो बहूः । गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥४२॥

गृह प्रवेश के समय बोला जाने वाला दूसरा वक्त —

देशान्तर गमन के समय, जिसके विषय में निरन्तर सोचा करते थे, जो हमें अत्यधिक प्रिय था, ऐसे उस अपने  
घर को (अपनी उपस्थिति से) प्रसन्न कर रहे हैं । घर के अविच्छिन्नदेव ज्ञानवान् हैं, वे हमारे इस भाव को ग्रहण करें ॥

१०८. उपहूताऽ इह गावऽ उपहूताऽ अजावयः । अघो अन्नस्य कीलालऽ उपहूतो गृहेषु  
नः । क्षेमाय नः शान्त्यै प्रपद्ये शिवँ ह्यग्न्यँ ह्यंयोः शंयोः ॥४३॥

गृह प्रवेश के समय बोला जाने वाला तीसरा वक्त —

हमारे घरों में गाय एवं बैल, भेड़ एवं ककरियाँ सुखपूर्वक रहने के लिए सम्मानपूर्वक आवाहित की गयी  
हैं । घर की समृद्धि के लिए अन्न-रस का अग्राहक किया गया है । कल्याण के लिए तथा सभी अनिष्टों के शमन  
के लिए हम घरों को प्राप्त करते हैं, जिससे लौकिक एवं परलौकिक सुख की प्राप्ति हो ॥४३॥



११५. देहि मे ददामि ते नि मे देहि नि ते दधे । निहारं च हरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा ॥५०॥

सन्तमेय र्व के ओदन की द्वितीय उद्धृति का मंत्र है -

(इन्द्रदेव कहते हैं हे यजमान !) आप हमें सर्वप्रथम हवि प्रदान करें । तत्पश्चात् हम आपको उपयुक्त-अपेक्षित फल प्रदान करेंगे । आप (यजमान) निश्चितरूप से हवि प्रदान करें, हम आपको निश्चितरूप से अभीष्ट फल प्रदान करेंगे ( यजमान कहता है - हे इन्द्रदेव ! ) हम आपके लिए निश्चितरूप से हवि प्रदान करते हैं । आप हमें उसका प्रतिफल अवश्य प्रदान करें ॥५०॥

[इस प्रकार दो बार इन्द्र और यजमान की कर्मा कर्मों का ओदन पूरा सिद्धांत के प्रति अन्तर और चाल का प्रदर्शन है ।]

११६. अक्षप्रमीमदन्त इव प्रियाऽअधूषत । अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठथा मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥५१॥

(पितृ यज्ञ में हमारे द्वारा समर्पित हवि को पितरों के) सेवन कर लिए (विभक्ती सूचना) सर्वयुक्त पितरों ने शिर हिलाकर दी है । स्वयं दीप्तिमान् येषां चोक्तानां ने नखेन मनों से स्तुति शारम्भ कर दी है । हे इन्द्रदेव आप 'हरी' नामक अपने दोनों अश्वों को रथ में निकोजित करें । (क्योंकि अभीष्ट पितरों की तृप्ति के लिए आपको शीघ्र ही आना है ।) ॥५१॥

११७. सुसन्दृशं त्वा वयं मधवन्दिषीमहि । प्र नूनं पूर्णबन्धुर स्तुतो यासि वशीर अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥५२॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! हम सभी प्राणियों के प्रति अनुग्रह दृष्टि रखने वाले आपकी अर्चना करते हैं स्तुत्य स्तोताओं को देने वाले धन से परिपूर्ण रथ वाले, कर्मनायक यजमानों के पास आप शीघ्र ही आते हैं हे इन्द्रदेव आप 'हरी' नामक दोनों अश्वों को रथ में निकोजित करें ॥५२॥

११८. मनो न्वाह्वामहे नाराशंसं सेन स्तोमेन । पितृणां च मन्यभिः ॥५३॥

वीर पुरुषों की प्रशंसा करने वाले मंत्रों से (गाथा नाराशंसो) तथा पितरों के तर्पण करने वाले स्तोत्रों से, (पितृ यज्ञ का अनुष्ठान करने के लिए) पितृस्तोक में गये हुए मन को हम स्तुति ही यहाँ बुलाते हैं ॥५३॥

[यह विभिन्न प्रयोजनों में विद्यमान होता है, जो एक स्थान पर अन्वहित-स्मरण करने से ही मात्र एवं यज्ञ में जाति आती है, यहाँ इसी लक्ष्य पर ध्यान दिलाया गया है ।]

११९. आ नऽ एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाव जीवसे । ज्योक् च सूर्य दशो ॥५४॥

(यज्ञरूप) सत्कर्म के लिए, कर्मों में दक्षता के लिए तथा चिरकाल तक सूर्यदेव का अवलोकन करने के लिए मेरा मन पुनः पुनः (पितृलोक से वापस) आकर (यज्ञकर्म में) संलग्न हो ॥५४॥

१२०. पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः । जीव व्रातं सचेमहि ॥५५॥

हे पितरों ! आपकी अनुज्ञा से देव-पुरुष हमारे मन को पुनः प्रेरित करें, जिससे हम पुत्र, पशु आदि समूहों की सेवा कर सकें ॥५५॥

१२१. वयं सं सोम व्रते तव मनस्तनुषु विप्रतः । प्रजाकन्तः सचेमहि ॥५६॥

हे सोम (प्रेषण प्रदान करने वाले) पितर ! हम (कर्मों) आपके (प्रसन्नतादायी) कर्मों-व्रतों में संलग्न रहते हुए, आपके शरीर (स्वरूप के ध्यान) में चित्त को लगाये हुए, अपने प्रजाजनों सहित जीवित (ध्यातियों, पशुओं आदि) सदस्यों की सेवा करते रहें ॥५६॥

१२२. एष ते रुद्र भागः सह स्वस्वाम्बिकया तं जुषस्य स्वाहैष ते रुद्र भागऽ आखुस्ते पशुः॥

हे रुद्रदेव ! यह (पुरोडाश का) भाग आपके लिए समर्पित है, इसे अपनी वहिन अम्बिका\* के साथ सेवन करें। यह आपके पशु चूहे को दिये गया भाग भी आपका है ॥५७॥

[\*अम्बिका का रुद्र की बहिन होने की प्रामाण्यता है - 'अम्बिका इति सत्यं तस्या तत्पत्न्यैव सङ्गमम्'। (स्तोत्र भा० २.६.२.९) रुद्र के पशु को दान करने अपने पशुओं को रुद्र का भक्त बनाई समर्पित है।]

१२३. अथ रुद्रमदीमहाय देवं त्र्यम्बकम् । यथा नो वस्यसस्कराद्या नः श्रेयसस्कराद्या नो व्यवसाययात् ॥५८॥

हे तीन नेत्र वाले (त्रिकतदशी) रुद्र (दुष्टों का दमन करने वाले) देव ! आपको अर्पित करने के बाद हम (प्रसाद रूप में) अन्न ग्रहण करते हैं, तर्किक हमें श्रेष्ठ आवास व्यवसाय में सफलता एवं श्रेय की प्राप्ति हो ॥५८॥

१२४. भेषजमसि भेषजं गवेभ्याव पुरुषाय भेषजम् । सुखं भेषाय मेघी ॥५९॥

हे रुद्रदेव ! आप कष्ट निवारण करने वाली औषधि के सम्बन्ध सम्पूर्ण आपदाओं को दूर करने वाले हैं। अतएव हमारे अन्न एवं पुरुषों (पारिवारिक जनों) के लिए सर्व व्याधियों को विकित्ता करने वाली औषधि हमें प्रदान करें। हमारे भेड़ आदि पशुओं को आप सुखी करें ॥५९॥

१२५. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामृतः ॥६०॥

तीनों दृष्टियों ( आधिभौतिक आधिदैविक तथा आध्यात्मिक ) से युक्त रुद्रदेव की उपासना हम करते हैं। वे देव जीवन में सुगन्धि (सदाशयता) एवं पुष्टि (समर्थता) अथवा (पतिवेदनम्) संरक्षक सत्ता का प्रत्यक्ष बोध कराने वाले हैं। जिस प्रकार फल हुआ फल स्वयं इष्टस्य से अलग हो जाता है, उसी प्रकार हम मृत्यु भय से मुक्त हों, किन्तु अमृतत्व से दूर न हों; सब ही वही (नयबन्धन) से मुक्त हो जाएँ, वहाँ (स्वर्गीय आनन्द) से नहीं ॥६०॥

१२६. एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मुखवतोतीहि । अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासाऽ अहिर्ध्रं सन्नः शिवोतीहि ॥६१॥

हे रुद्रदेव ! आप अपने भेष इषि अंस को साथ लेकर (विरोधियों के न रहने से) धनुष की प्रत्यक्षा को शिथिल करके, (सम्पूर्ण क्षणियों को भय से बचाने के लिए) पिनाक नामक धनुष को बलों से ढँककर, अपने निवास स्थान मूजवान् पर्वत के उस पार चले जाएँ। हे रुद्रदेव ! आप चर्माम्बर धारण किए हुए, कष्ट न देते हुए, कल्याणकारक होकर (हमारी पूजा से संतुष्ट होने के कारण क्रोध रहित होकर) पर्वत को लाँचकर चले जाएँ ॥६१॥

[ मुखवान् जिसके अंग नाम 'मुखवान्' तथा 'मुखवत' हैं, किन्तु यह एक पर्वत जिसका है, जो रुद्र देवता का निवास स्थान बना जाता है - मुखवाग्राम बहिर्जु पर्वतो रुद्रस्य वासस्थानम् (तन्त्र २.६.१ महीनर काव्य) । मूजवा इसी पर्वतश्रेणी से 'सोमस्त' की प्राप्ति होती थी, तथा सोम का अन्य नाम चैवत्यो (अग्नेद १०.३५.१) भी है।]

१२७. त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यदेवेषु त्र्यायुषं तत्रो अस्तु त्र्यायुषम् ॥

जो जमदग्नि की ( बाल्य, यौवन और वृद्ध ) त्रिविध आयु ( तेजस्वी जीवन ) है, जो कश्यप की तीन अवस्थाओं वाली आयु है तथा जो देवताओं की तीन अवस्थाओं वाली आयु है। उस (तेजस्वी) त्रिविध आयु को हम भी प्राप्त करें ॥६२॥

१२८. शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः ।

नि वर्तयाम्यायुषेन्नाद्याय प्रजननाय शयस्योन्माय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥६३॥

यह ये यजमान के मुक्कन के सत्य (यह कहे जगत्सत्य को सत्य कहे) इस कविष्टका का प्रयोग किया जाता है — आप (शुभ या उत्तुरा) नाम से ही शिव-कल्पावधारी हैं, स्वयं बारम्बार सत्य आपके पिता हैं । हम आपको नमन करते हैं, हमें पीड़ित न करें । हथि आबु, घोषक अजर्दि, सुसज्जित, ऐश्वर्य वृद्धि, उत्तम प्रजा एवं श्रेष्ठ वीर्य लाभ के लिए विशिष्ट संदर्भ में (मुण्डन-कृत्य में) प्रयास करते हैं ॥६३॥

### — ऋषि, देवता, छन्द-विवरण —

ऋषि — विरूप आगिरस १ । वसुधुत २ । भारद्वाज ३-५, १३ । सार्वरात्री ६-८ । प्रजापति, तत्वा, जीवल-वैलकि ९ । प्रजापति १०, ४४, ४५ । देवगन्ध, मोक्ष गङ्गान्न ११ । विरूप १२ । देवप्रवा—देववात भारत १४ । वायुदेव १५, ३६ । अयत्सर १६, १७ । अयत्सर, ऋषिगण १८ । ऋषिगण १९, २१ । ऋषिगण, मधुच्छन्दा वैशामित्र २२-२४ । बन्धु, सुबन्धु २५ । श्रुतबन्धु, विप्रबन्धु २६ । बन्धु आदि २७ । ब्रह्मणस्पति अथवा मेधातिथि २८-३० । सत्वपति वारुणी ३१-३३ । मधुच्छन्दा ३४ । विशामित्र ३५ । आसुरि आदित्य ३७ । आदित्य ३८-४० । रज्यु कार्दमपत्य ४१-४३ । अयत्सर ४६-४८ । आर्जुनाथ ४९-५० । गोतम ५१, ५२ । बन्धु ५३-५९ । बसिष्ठ ६०, ६१ । नारायण ६२, ६३ ।

देवता — अग्नि १-४, ६-८, ११, १२, १४, १५, १७, १९, २३-२६, ३६, ४७ । अग्नि, वायु, सूर्य, यजमान आशीर्वाद ५ । लिगोक्त ९, १० । इन्द्राग्नी १३ । नैऋति अग्नि अथवा ऋषि १६ । अग्नि, रात्रि १८ । गौ २०, २१, २७ । गौ, अग्नि २२ । ब्रह्मणस्पति २८-३० । आदित्य ३१-३३ । इन्द्र ३४, ४९-५२ । सविता ३५ । अग्नि, गार्हपत्य, अहवनीय, दक्षिणग्नि ३७ । आहवनीय ३८ । गार्हपत्य ३९ । अन्वाहार्यपजन ४० । वास्तु ४१-४३ । मरुद्गण ४४, ४५ । इन्द्र-मरुद्गण ४६ । वज्र ४८ । वन ५३-५५ । सोम ५६ । रुद्र ५७-६१ । यजमान आशीर्वाद ६२ । शुभ, लिगोक्त ६३ ।

छन्द — गायत्री १-२, ४, ८, १६, २९, ४४, ५६ । निचृत् ऋक्त्री ३, ६, ११, १२, ३०, ३२, ३५, ३६, ५५ । दैवी बृहती, निचृत् बृहती ५ । पंक्ति, यानुषी पंक्ति ९ । गायत्री, भुरिक् ऋक्त्री १० । विराट् त्रिष्टुप् १३, निचृत् अनुष्टुप् १४, ४० । भुरिक् त्रिष्टुप् १५ । त्रिष्टुप् १७ । निचृत् ऋक्त्री पंक्ति १८ । जगती १९ । भुरिक् बृहती २०, २५, ३९ । अष्ठीक् २१, ६२ । भुरिक् आसुरी ऋक्त्री, गायत्री २२ । विराट् गायत्री ७, २३, २४, २७, २८, ३१, ३३, ५४ । स्वराट् बृहती २६ । पथ्या बृहती ३४ । ब्राह्मी उष्णीक् ३७ । अनुष्टुप् ३८, ४२, ४९, ५७ । आर्षी पंक्ति ४१ । भुरिक् जगती ४३, ६३ । स्वराट् अनुष्टुप् ४५ । भुरिक् पंक्ति ४६ । विराट् अनुष्टुप् ४७ । ब्राह्मी अनुष्टुप् ४८ । भुरिक् अनुष्टुप् ५० । विराट् पंक्ति ५१, ५२, ५८ । अतिपाद निचृत् ऋक्त्री ५३ । स्वराट् गायत्री ५९ । विराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् ६० । पंक्ति ६१ ।

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥



## ॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

१२९. एदमगन्म देवयजनं पृथिव्या यत्र देवासो अजुषन्तविश्वे । ऋक्सामाध्या २३  
सन्तरन्तो यजुर्भी रायस्पोषेण समिधा पदेम । इमाऽ आपः शम्भु मे सन्तु देवीरोषधे त्रायस्व  
स्वाधिते मेन २३ हि २३ सीः ॥१॥

जिस यज्ञमयल पर सभी देवगण अन्विता होते हैं, उस उत्कृष्ट भूमि पर हम यज्ञमानगण एकत्रित हुए हैं । ऋक् तथा सामरूपी मंत्रों से यज्ञ को पूर्ण करते हुए हम एवं अन्न से हम तृप्त होते हैं । यह (दिव्य) जल हमारे लिए सुख-स्वरूप हो । हे दिव्य गुणयुक्त ओषधे ! आप हमारी रक्षा करें । हे शम्भु ! आप इस (यज्ञमान अथवा ओषधि) की हिसा न करें ॥१॥

१३०. आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्यः पुनन्तु । विम्व २३ हि रिप्रं प्रवहन्ति  
देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि । दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवा २३ शग्मां परि दधे  
भद्रं वर्णं पुष्पन् ॥२॥

यह अधिष्ठाता पवित्रजल की तप एवं वह परिधान शौच-तप को सम्बोधित कर रही है -

(जगत् निर्माण में सहाय) हे माता के सम्मान जल ! हमें आप पवित्र करें । घृत (घरित) से पवित्र जल हमें यज्ञ के योग्य पवित्र बनाए । तेजयुक्त होता हुआ जल हमारे सभी पक्षों का निवारण करे । शुद्ध स्नान और पवित्र आचमन के उपरान्त हम जल से बाहर आते हैं । (हे शौच यज्ञ ! ) आप दीक्षणीयेष्टि\* तथा उपसर्दिष्टि\*\* के देवताओं के लिए शरीर के समान शिव हैं । कोमल होने के कारण सुखकर, मंगल करने वाली कान्ति से युक्त (श्रेष्ठ रंगवाले) परिधान को हम (यज्ञमान) धारण करते हैं ॥२॥

[\* यज्ञमान की दीक्षा के समय यह इष्टि (यज्ञ) की जाती है - 'दीक्षा प्रवेष्ट्या इष्टिः । इत्येव 'अन्वयैज्य' पुरोहता या पण होता है । \*\* उपसर्ग में हमें जल उपसर्गशुद्ध अनुष्ठान में इस इष्टि का विधान है । इत्येव अग्नि, सोम और विष्णु प्रथम देवता होते हैं ।]

१३१. महीनां पयोसि वर्चोदाऽ असि वर्चो मे देहि । वृषस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दाऽ  
असि चक्षुर्मे देहि ॥३॥

प्रसूत कश्चिदा मे स्तनीना तप अंजन को सम्बोधित किया गया है -

(हे नवीन ! ) आप गौओं के दुध से निर्मित हैं । आप क्षत्रिप्रद हैं । अतः हमें कान्ति प्रदान करें । (हे अंजन ! ) आप वृष की कनीनिका (आँख की पुतली) हैं । आप दृष्टि प्रदान करने वाले हैं । अतएव हमें दृष्टि शक्ति-दर्शनशक्ति प्रदान करें ॥३॥

१३२. चित्पतिर्मा पुनातु वाक्पतिर्मा पुनातु देवो मा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य  
रश्मिभिः । तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम् ॥४॥

ज्ञान के अधिपति (मनोदेवता) हमें शुद्ध करें ! वाणी के स्वामी हमारी वाणी पवित्र करें । छिद्रों (दोषों) से रहित पवित्र सविता देवता हमें शोधित करें । हे पवित्रपते । शोधित पवित्री (पवित्रता के साधन) के द्वारा यज्ञमान का अभीष्ट पूर्ण हो । सोमभाग अनुष्ठान की वाचना से हम पवित्र होना चाहते हैं, हमें यज्ञानुष्ठान की सामर्थ्य प्राप्त हो ॥४॥

१३३. आ वो देवासऽईमहे वामं प्रयत्यध्वरे । आ वो देवासऽआशिषो यज्ञियासो हवामहे ।

हे देवगण ! यज्ञ के प्रारम्भ होने पर हम यज्ञफल की कामना से आपको आवाहन करते हैं । हे देवगण हम यज्ञ के आशीर्वाद रूपी फल की प्राप्ति के लिए आपको कुलते हैं ॥१५॥

१३४. स्वाहा यज्ञे मनसः स्वाहोरोरन्तरिक्षात्स्वाहा द्यावापृथिवीभ्या ॥ स्वाहा वातादारभे स्वाहा ॥६॥

हम अन्तःकरण (पूर्ण मनोयोग) से यज्ञ अनुष्ठान करते हैं । विस्तर्त अन्तरिक्ष के लिए यज्ञ करते हैं । द्युलोक और पृथ्वीलोक के लिए हम यज्ञ कार्य करते हैं । सभी कर्मों के प्रेरक वायुदेव को कृपा से हम यज्ञ प्रारम्भ करते हैं ।

१३५. आकूतै प्रयुजेग्नये स्वाहा मेधायै मनसेग्नये स्वाहा दीक्षायै तपसेग्नये स्वाहा सरस्वतयै पुण्येग्नये स्वाहा । आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुवो द्यावापृथिवी उरो अन्तरिक्ष । बृहस्पतये इविषा विधेम स्वाहा ॥७॥

यज्ञ करने के मार्मिक समुत्प्रेष के प्रेरक अग्निदेव के लिए यह आहुति है । यज्ञ धारण की शक्ति-मेधा तथा मन के उत्प्रेरक अग्निदेव को यह आहुति समर्पित है । दीक्षा एवं तप की सिद्धि के लिए अग्निदेव को यह आहुति दी जाती है । मनोच्चारण की शक्ति युक्त सरस्वती (वाणी) तथा वाक् इन्द्रिय का पोषण करने वाले पूषादेव को प्रेरणा देने वाले अग्निदेव को यह आहुति दी जा रही है । हे द्युलोक एवं पृथ्वीलोक हे अति विस्तृत अन्तरिक्ष द्युतिमान् विशाल, संसार के सुख की कामना करने वाले हे अरु । वेष्ट ज्ञान की प्राप्ति के लिए हम इन्द्रियान् समर्पित करते हैं । यह आहुति बृहस्पति देव के लिए समर्पित है ॥७॥

१३६. विश्वो देवस्य नेतुर्गतो वुरीत सधमम् । विश्वो रायऽइषुष्यति शुम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥८॥

सभी मनुष्यों को कर्मफल देने वाले, दानदि गुणयुक्त सविता देवता की मित्रता प्राप्त करने की हम प्रार्थना करती हैं । प्रजापालन के लिए द्युतिमान् (वसुदेव) वैभव की हम कामना करते हैं । सभी मनुष्यों के वन-प्राप्ति के निमित्त हम सविता देवता की प्रार्थना करते हैं । इसी निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥८॥

१३७. अग्रसामयोः शिष्ये स्थस्ते वामारभे ते मा पातमास्व यज्ञस्योद्वः । शर्मासि शर्म मे यच्छ नमस्ते अस्तु मा मा हि ॥ सीः ॥९॥

यज्ञकर्म में अग्र कर्मिका के द्वारा कर्मार्थक (कृष्ण) स्थापित करने का विधान किया गया है —  
हे शिष्य रूपात्मक ऋक् और साम के अधिकृता देवताओ ! हम आपको स्पर्श करते हैं । आप उत्तम ऋचाओं के उच्चारण काल तक हमारी रक्षा करें । हे शिष्यपते ! आप हमारे शरणदाता हैं, अतएव हमें आश्रय दें । (ऋक् सामरूप) आप को नमस्कार है । आप यज्ञधाम को कह न दें ॥९॥

१३८. कर्गस्याङ्गिरस्यूर्णप्रदा कर्जं मयि धेहि । सोमस्य नीकिरसि विष्णोः शर्मासि शर्म यजमानस्येन्द्रस्य योनिरसि सुसस्याः कृषीस्कृषि । उच्छृयस्व वनस्पतऽऊर्ध्वो मा पाहा ॥ हसऽ आस्य यज्ञस्योद्वः ॥१०॥

यह कर्मिका यह मेखला तथा उससे सम्बन्धित उद्गम्यों को सम्बोधित कर रही है —  
(यज्ञ मेखला के प्रति) हे अंगों को शक्ति देने वाली ! आप इसे बल प्रदान करें । हे सोम प्रिय मेखला ! आप हमारे लिए नीवी (दोनों सिरों को जोड़ने वाली) प्रश्नी रूप हो । (वसु के प्रति) आप विष्णु (यज्ञ) के लिए मुखदायी माध्यम हो । आप वाजको के लिए मुखदायक करें । (कृष्ण-विषाण से छोड़ी धूमि के प्रति) आप इन्द्रदेव

की योनि (शक्ति की उत्पन्न करने वाली) हैं, कृषि को हरा-भरा बनाएँ, हे वनस्पति से उत्पन्न दण्ड । आप उन्नत होकर यज्ञ समाप्ति तक हमें पापों से बचाएँ ॥१०॥

१३९. सतं कण्ठाम्निर्ब्रह्माभिर्यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञियः । दैवीं धियं मनामहे  
सुमुडीकामभिष्टये सर्वोषां यज्ञवाहसः सुतोर्धा नोऽअसदृशे । ये देवा मनोजाता  
मनोयुजो दक्षकृतवस्ते नोवन्तु ते न चान्तु तेभ्यः स्वाहा ॥११॥

हे परिचारक गण ! (दुग्ध दोहन-वदिरूप का निवाम) सत का आचरण करो । (श्रौत) अग्नि ब्रह्म (वेदरूप) है । यह अग्नि यज्ञ (का साधनभूत) है । (खादिर, चीक्स आदि) वनस्पतिर्यं यज्ञ योग्य हैं । यज्ञ की सिद्धि के लिए, देवताओं को सत्यकर प्रदान की गई, सुख के लिए तेज को धारण करने वाली, यज्ञ का निर्वाह करने वाली, यज्ञ-अनुष्ठान विषयक बुद्धि को हम खचक करते हैं । सुस्पष्ट बुद्धि हमारे अधीन रहे । दर्शन-व्रणणादि रूप इच्छा से उत्पन्न मन से संयुक्त, कुशल सकल्य वाले देवगण, यज्ञ से विच्छेद का निवारण करके हमारी रक्षा करें । प्राणरूप देवताओं के लिए वह (दुग्ध आहुति) समर्पित है ॥११॥

१४०. क्षात्राः पीता भवत युथमापो अस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः । ताऽअस्यध्यमयक्ष्वाऽ  
अनमीवाऽअनागसः स्वदन्तु देवीरमृताऽऽक्रतावृषः ॥१२॥

हे जल ! दुग्धरूप में हमारे द्वारा सेवन किये गये आप, शीघ्र ही पच जाएँ । पिये जाने के बाद हमारे पेट में आप सुखकारी हों । ये जल राजरोग से रहित, सामान्य बाधों को दूर करने वाले, अपराधों को दूर करने वाले, यज्ञों में सहायक, अमृतस्वरूप दिव्य गुण से युक्त हमारे लिए स्वादिष्ट हों । ॥१२॥

१४१. इयं ते यज्ञिया तनूरपो मुख्यामि न प्रजाम् । अः होमुचः स्वाहाकृताः पृथिवीमाविशत  
पृथिव्या सम्भव ॥१३॥

यज्ञ स्वतः पर विकारयुक्त जल (पृथ्वी) के विकार्य के लिए खुले छोटे किये जाते हैं । इस स्वर्ग में प्रार्थना है—  
(हे यज्ञपुरुष ! ) हे पृथ्वीमातः । आपको यज्ञ-योग्य शरीर है, (यज्ञ करने योग्य स्थान है ।) हम इस स्थान (गर्भ) में विकारयुक्त जल का परित्याग करते हैं, प्रवा के लिए उपयोगी रस का त्याग नहीं करते । यह प्रक्रिया पाप विमोचक है । स्वाहारूप में स्वीकार करने योग्य जल विकारयुक्त होने पर त्याग्य हो जाता है । यह (विकारयुक्त जल) पृथ्वी में प्रविष्ट होकर भूमिज के साथ एकत्रित हो जाए ॥१३॥

१४२. अग्ने त्वः सु जागृहि वयः सु मन्दिषीमहि । रक्षा नोऽअप्रयुच्छन् प्रबुधे नः  
पुनस्कर्षि ॥१४॥

हे अग्निदेव ! आप भली-भाँति प्रबुद्ध (प्रज्वलित) रहें । इस यज्ञपानगण निद्रा का आनन्द लेंगे । आप सतत हमारी रक्षा करें । हे अग्ने ! आप हमें पुनः ज्ञान करके कर्मशील बनाएँ ॥१४॥

१४३. पुनर्मनः पुनरायुर्मऽआगन् पुनः प्राणाः पुनरात्मा चऽआगन् पुनश्छक्षुः पुनः श्रोत्रं  
मऽआगन् । मैधानरो अदध्यस्तनूपाऽअग्निर्नः पातु दुरितादवघात् ॥१५॥

(सृष्टि काल में निश्चेतन यज्ञपान का) मन (प्रबुद्धावस्था में) पुनः शरीर में आ गया । (सृष्टि काल में गह-प्राय मेरी) आयु पुनः प्राप्त हो गई है । इसी प्रकार ज्ञान, आत्मा, ज्ञु, कान आदि इन्द्रियाँ (प्रबुद्धावस्था में) कार्यशील होकर पुनः प्राप्त हो गई हैं । इस प्रकार सम्पूर्ण इन्द्रियों के क्रियाशील हो जाने पर सम्पूर्ण विश्व के कल्याणकर, दबाये न जा सकने वाले, शरीर को सुरक्षित रखने वाले हे अग्निदेव । भूजित पापों (पापकर्म एवं पापकर्मों के दुष्प्रभावों) से आप हमारी रक्षा करें ॥१५॥

१४४. त्वमग्ने व्रतपाऽ असि देवऽआ मर्त्येषां त्वं यज्ञेष्वीर्यः । रास्वेयत्सोमा धूयो भर देवो नः सविता वसोर्दाता वस्वदात् ॥१६॥

हे दीपिमान् अग्निदेव ! आप सम्पूर्ण प्राणियों के सर्वों के वासस्कर्ता हैं । आपकी यज्ञों में अम्वर्चना की जाती है । हे सोम ! आप हमें इतना (जीविकोप कर्त्तने पर क्या) धन तो प्रदान करें (ही) । पुनः और भी अधिक धन से हमें पूर्ण करें (जिससे लोकपोषणों का कार्य किये जा सकें) । ऐश्वर्य देने वाले सविता देवता ने हमें पहले भी प्रचुर धन प्रदान किया है ॥१६॥

१४५. एषा ते शुक्र तनूरेतद्भूर्वस्तवा सम्भव धाजं यच्छ । जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे ॥

हे शुभ्रवर्ण अग्निदेव ! यह (मृतरूप) आपको देह और (स्वर्णरूप) आपको यह तेज है । आपका स्वरूप और तेजस् एकाकार होकर आकाश में व्याप्त हो । मन के द्वारा कारण की गयी (मंजरूप कणी) योगवान् होकर विष्णु (यज्ञ) को गृह करने वाली हो ॥१७॥

१४६. तस्यासौ सत्यसवसः प्रसवे तन्वो यन्ममशीव स्वाहा शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्रदेवमसि ॥१८॥

सत्य स्वरूप अम के कृपापात्र हम स्नेह आपके शरीर के निष्कमन्त्र को प्राप्त करें । वह आज अमूर्ति आपके लिए है । हे हिरण्य देवता ! आप दीपिमान् (शुक्र) हैं । आप वर्णित करने वाले हैं । आप विनाशरहित हैं । आप सम्पूर्ण देवताओं की सम्प्रतिष्ठित शक्ति से युक्त हैं ॥१८॥

१४७. क्रिदसि मनासि वीरसि दक्षिणासि क्षत्रियासि यज्ञियास्यदितिरस्युभयतः शीर्ष्णी । सा नः सुप्राची सुप्रतीच्येभि मित्रस्तथा यदि वस्नीतां पूषाध्वनस्यात्विन्द्रायाध्वक्षाय ॥१९॥

( हे सोमक्रयणी नौ रूप वाली ) आप धित, मन और बुद्धि (की प्रतिनिधि रूप) हैं आप देने योग्य द्रव्य रूप श्रेष्ठ दक्षिणा हैं । ( कर्म से ) आप क्षत्रिय शक्ति हैं । आप यज्ञ में (मंजरूप में) प्रयुक्त होने योग्य हैं । आप अक्षयिष्ठ वा देवमता (अदिति) हैं । आप (कटु और मधुर कणीरूप) दो सिर धारि हैं । आप आगे बढ़ने और पीछे हटने में सहयोग देने वाले हैं । (यज्ञ से बड़ा न करने देने के लिए) मित्र (मित्रवत्) आपके दाहिने पैर में (स्नेह का) बन्धन डाल दें । (देवों के) अध्वय इन्द्रदेव को आनन्दित करने के लिए पूषादेवता (यज्ञ) मार्ग की रक्षा करें ॥१९॥

१४८. अनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु धाता सगर्भानु सखा सयूष्मः । सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमं रुद्रस्त्वा वर्तयतु स्वसि सोमसखा पुनरेहि ॥२०॥

यज्ञ के लिए सोम के आहरण में संलग्न आपको, आपकी माता, पिता, सहोदा भ्रातृ, साथ-साथ रहने वाले मित्र अनुमति प्रदान करें । हे (वाक्) देवि । इन्द्रदेव के लिए स्नेह प्राप्त करने के लिए आप प्रस्थान करें । सोम ग्रहण करने के उपरान्त आपको रुद्रदेव हम स्नेहों की ओर ले आएँ । आप स्नेह के साथ हमारा वस्त्रापन करते हुए पुनः यहाँ आएँ ॥२०॥

१४९. वस्यस्यदितिरस्यादित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि । बृहस्पतिर्वा सुमे रम्णातु रुद्रो वसुभिरा चके ॥२१॥

हे सोमक्रयणी गौ (वाणी) ! आप वसु देव-माता अदिति, रुद्रस अदित्य, गृधरह रुद्र और चन्द्ररूप हैं । बृहस्पति आपको हर्षातिरेक प्रदान करें । रुद्र, वसु मन्त्रों के साथ आपको रक्षा करें ॥२१॥

१५०. अदित्यास्त्वा मूर्द्धन्नाजिधर्मि देवयजने पृथिव्याऽ इडायास्पदममि घृतवत् स्वाहा ।  
अस्मे रमस्वास्मे ते बन्धुस्त्वे रायो मे रायो मा वयं रायस्योवेण वियौष्य तोतो रायः ॥

सम्पूर्ण पृथ्वी में श्रेष्ठ स्थान स्वरूप देवों के बचन स्थान (वज्रशाला) में (हे वाक् देवि ! ) आपको घृताहुति प्रदान करते हैं । आप पृथ्वी की अधिपति देवी हैं । हमारी इस घृताहुति से आप सन्तुष्ट हों । आप ऐश्वर्यवान् हैं, हमें अपना बन्धु समझकर बन्धु-भजन से पृष्ट करें । हमें इससे वंचित न करें ॥२२॥

१५१. सम्मुख्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोरुचक्षसा । मा मऽआयुः प्रमोषीमोऽअहं तव वीरं  
विदेय तव देवि सन्दृशि ॥२३॥

(हे सोमकन्यगी देवि ! ) दीक्षितस्त्री दक्षिणयोर्म्य विस्तीर्ण दर्शन युक्त आपके द्वारा विवेकपूर्वक हमें देखा गया है । पत्नीसहित हमारी आयु को आप क्षीण न करें । आपकी आयु को हम नष्ट न करें । आपकी कृपा-दृष्टि में रहते हुए हम पराक्रमी पुरुष प्राप्त करें ॥२३॥

[विवेकपूर्वक बोली गयी पत्नी पतिना होने के कारण ही प्रत्यक्षीय हो जाती है । पत्नी की आयु क्षीण न हो, इसीलिए सत्यक विवेकपूर्ण वाणी ही बोली ]

१५२. एष ते गायत्री भागऽ इति मे सोमाय ब्रूतादेव ते त्रैहृषो भागऽ इति मे सोमाय ब्रूतादेव  
ते जागतो भागऽ इति मे सोमाय ब्रूताच्छन्दोनामानाऽ साग्राज्यं गच्छेति मे सोमाय  
ब्रूतादास्माकोसि शुक्रस्ते ग्रष्टो विक्षितस्त्वा वि चिन्वन्तु ॥२४॥

हे सोम ! यह सामने दृष्टिपूर्वक होने वाला आगका भाग गायत्री छन्द का है । यह आपका त्रैहृष छन्द का भाग है, यह आपका जननी सम्बन्धो छन्द का भाग है । (इस प्रकार ब्रजमान के अभिप्राय को अध्वर्यु सोम के लिए कहें ! ) आप उष्मिक् आदि छन्दों के अभिपति हो जाएँ । हमारे इस अभिप्राय को आप सोम को सूचित करें । हे दिव्य सोम ! क्रयकूप में आने पर भी आपसे हफ्ता अपनत्व है । शुक्र आदि ग्रह आपके ही ( अनुशासन में ) हैं । विवेकपूर्वक आपका बचन करने वाले, तत्व और अतत्व का निर्णय करके (मात्र श्रेष्ठ भक्त को ही) ग्रहण करें ॥२४॥

१५३. अभि त्वं देवऽ सवितारमोक्ष्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवऽ रत्नधामभि प्रियं  
मतिं कविम् । ऊर्ष्या भस्यामतिर्ष्या ऽ अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरभिमीत सुक्रतुः कृपा  
स्वः । प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वानुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणिहि ॥२५॥

बुल्लोक और पृथ्वीलोक के मध्य विद्यमान, वेदाओं, सत्य-त्रैलोक्य, रत्नचोक्क, सभी प्राणिमयों द्वारा चाहे जाने वाले, स्मरण करने योग्य, नवीन तत्वों का सप्रशस्त्यकर करने वाले, ऊर्ष्य-मुख लेकर आकाश में विद्यमान, सभी को प्रकाशित करने वाले, अपनी दीप्ति से स्वयं को प्रकर्षित होने वाले, स्वर्ण निर्मित आभरण से युक्त हाथ वाले, सत्संकल्प से स्वर्गरचना में समर्थ सविज्ञदेवता की हम अर्चना करते हैं । हे सोम ! प्रजाओं के उपकार के लिए हम आपको स्थिर करते हैं । हे सोम ! जिस सेने में आपको अनुसरण करती हुई प्रजाएँ जीवन धारण करें आप भी प्रजाओं का अनुगमन करते हुए शासक हैं (अर्थात् परस्पर एक दूसरे का अनुगमन करते हुए जीवन धारण करें ! )

१५४. शुक्रं त्वा शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन । सग्ये ते गौरस्ये ते चन्द्राणि  
तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्णः परमेष्ठ पशुना क्रीयसे सहस्रपोषं पुषेधम् ॥२६॥

चन्द्रमा के समान आह्लादक, अमृतस्वरूप हे सोम ! दीक्षितान् आपको हम चमकते हुए सोने से क्रय करते हैं । हे सोम विक्रेता ! सोम मूल्य के बदले आपको बेची गयी गौ, पुरु-ब्रजमान के पास वापस आ जाए । आपको दिया गया देदीप्यमान स्वर्ण हमारे पास वापस आ जाए । (हे अवे ! ) तुम तत्त्वस्वियों की पुण्य देह हो तथा सभी

देवताओं को प्रिय, प्रजापति का शरीर हो । हे सोम ! इस श्रेष्ठ वस्तुधन से तुम्हारा कृप्य करते हैं । अतएव आप हजारों पुत्र-पौत्रों को पोषित करने योग्य सम्पत्तियों में वृद्धि करें ॥२६॥

[अर्धनीति कहती है कि कन का प्रवृत्त स्वे नही । 'स्वर्गं स्वैकान् अम्' का अर्थ यही है कि पुरुषार्थ से प्रेरित कन का प्रवृत्तमान हो ॥

१५५. मित्रो न ऽ एहि सुमित्रधऽइन्द्रस्योरुमा विश दक्षिणमुशनुशन्तः॥ स्योनः स्योनम् ।  
स्थान भ्राजाङ्गारे बम्भारे हस्त सुहस्त कृञ्जानवेते चः सोमकृयणास्तान्नक्षस्वम् मा वो दधन् ॥

हे प्रिय सखा सोमदेव । मित्रों का पोषण करने वाले आप हमारी ओर आईं । आप सुखदायक होते हुए मङ्गलदायक दाहिनी जंघा में प्रवेश करें । ध्यान करने वाले, सुशोभित रहने वाले, पाप के शत्रु, विश्व के पोषणकर्ता, सर्वदा प्रसन्न रहने वाले, श्रेष्ठ हाथों वाले, शक्तिशाली ज्ञानियों के जीवनदाता, सोम की रक्षा करने वाले हे सप्त विशिष्ट देवगण । सोम-कृय के लिए स्वर्गदि आपके समक्ष रखे गये हैं, साथ ही बहुतसूत्र पदार्थों का रक्षण करें । आपको कोई कह न पहुँचाए ॥२७॥

१५६. परि माग्ने दुश्चरिताद्वाधस्या मा सुचरिते यज । उदायुषा स्वायुषोदस्वायमूर्ताऽनु ॥

हे अग्निदेव ! आप हमें कन से पूर्णतः बचाएँ । साथ सदाचाररूपी पुरुष को (व्यक्तित्व को) हम यजमानों में प्रतिष्ठित करें । वज्रादि करते हुए उत्कृष्ट अन्न से योग्यदि देवताओं को आयु का अनुसरण करते हुए, सोम की प्राप्तिरूप अमरत्व प्राप्त होने से हम उत्कृष्ट हो गये हैं ॥२८॥

१५७. प्रति पन्थामपवाहि स्वस्तिगामनेहसम् । येन विद्याः परि द्विषो घृणक्ति चिन्दते वसु ॥

(मार्ग के प्रति कथन) कल्याणकारी, गमन करने योग्य, पाप या अन्धकाररूपी बाधाओं से रहित मार्ग को हम प्राप्त करें; जिससे जाते हुए पथिकों (वज्रमनों) के चोर आदि सभी शत्रुओं का निवारण हो जाता है एवं उन्हें सम्पदाओं को प्राप्ति होती है ॥२९॥

१५८. अदित्यास्त्वगस्यदित्यै सद आसीद । अस्तम्यादद्यां पृथगो अन्तरिक्षमभिमीत  
वरिमाणं पृथिव्याः । आसीदद्विषा भुवनानि सप्ताद्विद्येतानि वरुणस्य व्रतानि ॥३०॥

(मृत्युर्ध्व आसन के प्रति कथन) हे कृष्णवर्जिन ! आज सम्पूर्ण पृथ्वी के चर्यस्वरूप है । आप पृथ्वी के श्रेष्ठ भाग यज्ञवेदी पर आसीन हों । शक्ति-सम्पन्न वरुणदेव, सुलोक और अन्तरिक्षलोक को स्थिर कर देते हैं । ये पृथ्वी के परिमाण को माप लेते हैं । भली-भाँति सुशोभित होते हुए (सम्राट्) वरुणदेव सम्पूर्ण भुवनों को परिव्याप्त कर प्रतिष्ठित हैं । यही उनके निश्चित कार्य हैं ॥३०॥

१५९. वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाज्रमर्वत्सु पयऽवस्त्रिधासु । इत्सु कर्तुं वरुणो विक्ष्वग्निं  
दिवि सूर्यमदधात् सोममद्रौ ॥३१॥

वरुणदेव ने वन में वृक्षों के ऊपरी भाग पर (मूर्त पदार्थों के अभाव में) वाज्ररश्मि को विस्तृत किया । अश्वों या मनुष्यों में वीर्य (पराक्रम) की वृद्धि की । वृक्षों में दुग्ध को प्रतिष्ठित किया । हृदय में संकल्पशक्ति युक्त मन को, प्राणियों में (पाचन के लिए) जठराग्नि को, सुलोक में सूर्यदेव को तत्र कर्षित पर सोमवल्ली को स्थापित किया ।

१६०. सूर्यस्य चक्षुरारोह्यन्मेरुक्षः कनौनकम् । यत्रैतशोधिरीयसे घ्राजमानो विपश्चिता ॥

हे शानयुक्त तेजस्वी ! आप अश्व (चिरणों) की पीति संचरित हों, सूर्य और अग्नि के प्रकाश की तरह लोगों की आँखों की पुतली पर (दृष्टि पर) आरोहीत हों ॥३२॥

१६१. उन्वावेतं भूर्धाही भुज्येथायनम् अवीरहणी ब्रह्मचोदनौ । स्वास्ति यजमानस्य गृहान्  
गच्छतम् ॥३३॥

हे (सूर्य और अग्निरूप) वेत्से ! (आप सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को पोषण देने वाली साधियों से भरी हुई) गद्दी का भार वहन करने में सक्षम, उत्साहित होने के कारण (कष्ट लेने पर भी) अत्रुपत न करने वाले, बीरों को कष्ट न देने वाले, ब्राह्मणों को यज्ञ-कार्य के निमित्त प्रेरित करने वाले हैं । आप आकर स्वयं ही रथ में जुड़ जाएँ, (पोषण कृत्य में संलग्न हो जाएँ), इस प्रकार आप दोनों कल्याण करने हेतु यजमान के घरों को ओर गमन करें ॥३३॥

[यजुष इमा प्रयत्नीना अग्नि उवा प्रयत्नी इत्युत्तरं सूर्यः यज्ञो यज्ञं के लिये है, जो पृथि की पक्षी छींके में समर्थ है ।]

१६२. भद्रो मेसि प्रध्यवस्व भुवस्पते विद्वान्यभि कामानि । भा स्वा परिपरिणो विदन् मा  
स्वा परिपन्थिनो विदन् मा त्वा वृका अपायवो विदन् । ज्येनो भूत्वा परापत यजमानस्य  
गृहान् गच्छ तन्नी सः३४ स्कृतम् ॥३४॥

हे साधियों के चालक सोम ! यजमानों का आप उपकार करने वाले हैं । आप (यजमान-पत्नी, यज्ञशाला, इति आदि) सभी स्थानों को तस्व कर तीव्र रीति से गमन करें । आप सर्वत्र विचारण करने वाले तत्त्वों के ज्ञान के विषय न हों । यज्ञ-विरोधी तनु आपको जान न सके । पक्षी बँहिये अवका दुर्जन आपको न जानें । बाण पक्षी के समान शीघ्रगम्य आप दूर चले जाएँ । आप यजमान के घरों को प्राप्त करें । वहाँ (यजमानों के घरों में) सभी यज्ञीय उपकरणों से युक्त, उपयुक्त स्थान (यज्ञशालाएँ) हैं ॥३४॥

१६३. नमो मित्रस्य वरुणस्य वक्षसे भद्रो देवाय तदुतः सपर्यत । दूरेदृशे देवजाताय केतवे  
दिवस्प्राय सूर्याय शः३५सत ॥३५॥

हे सूर्यरूपी सोम । संसार के कल्याण के लिए अपनी किरणों से सम्पूर्ण विश्व को देखने वाले (मित्र तथा वरुण), तेज से वक्षशित, दूर दक्ष में रहने वाले, साधियों के द्वारा देखे गये, परमात्म से उत्पन्न, प्रज्ञारूप, धुलोक के पुत्र के समान प्रिय (या दिन के कालक) सूर्यदेव को नमस्कार है । (हे अतिथि) १) सूर्यरूप ब्रह्म के निमित्त आप यज्ञ करें तथा सूर्य को प्रसन्न करने के लिए स्तोत्र-व्रत करें ॥३५॥

१६४. वरुणस्योत्तम्यनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्त्री वरुणस्यऋतसदन्यसि  
वरुणस्यऋतसदनमसि वरुणस्यऋतसदनमासीद ॥३६॥

हे काष्ठ उपकरण । आप वरुणरूपी स्त्रोम की उन्नति करने वाले हैं । हे तम्ये ! आप वरुणदेव की गति को स्थिर करें । (उदुम्बर काष्ठ निर्मित हे आसन्दी) १) आप यज्ञ में वरुण (फणी नौचे हुए सोम) के आसन स्वरूप हैं । आसन्दी पर बिछे हुए हे कृष्णान्नि ! आप वरुणरूपी स्त्रोम के यज्ञ स्थान हैं । वक्ष में नौचे हुए वरुण (रूपी हे सोम । यज्ञ) के आसन स्वरूप इस कृष्णान्नि पर सुखपूर्वक आसन ग्रहण करें ॥३६॥

१६५. या ते धामानि इविषा यजन्ति ता ते विद्या परिभूरस्तु यज्ञम् । गयस्कानः प्रतरणः  
सुवीरोऽवीरह्य प्र चरा सोम दुर्यान् ॥३७॥

हे सोम ! सवनादि क्रियाओं द्वारा आपके रथ को चलाकरके वायव्यपक्ष यज्ञपुरुष का पूजन करते हैं आपके वे सब (यज्ञस्वरा) आपको प्राप्त हों । हे घरों का विरक्षर करने वाले, यज्ञदि सत्त्वों को (पूर्ण करके) फिर लगाने वाले अथवा विपत्तियों से चर लगाने वाले, बीरों के कालक, कायरों के विनाशक ! आप हमारे यज्ञों में प्रस्तुत हों (पहुँचें) ॥३७॥

## —ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— प्रजापति १-७ । स्वस्त्य आशेव ८-९ । अंबिरस् १०-१५ । वत्स १६-३४ । अभितप्त्य सूर्य ३५-३६ । गोतम ३७ ।

देवता— देवयजन, कुरातरुष, धुर १ । आम् (जल) वास २ । न्यसीत, मञ्जन ३ । प्रजापति, सविता ४ । आशीर्वाद ५ । यज्ञ ६ । अग्नि, लिङ्गेत् ७ । सविता ८ । कृष्णजिन ९, ३२ । मेखला, नीदि, वास, कृष्णविजय, दण्ड १० । यज्ञ, भी, वाक्, अण-उदान, वाधु, श्रेष्ठ, अग्नि, मित्रवरुण, आदित्य, विभेदेवा ११ । आपः (जल) १२ । लोष्ट, मृष १३ । अग्नि १४-१५, २८ । अग्नि, सोम १६ । हिरण्य, आम्, वाक् १७ । वाक्, हिरण्य १८ । वाक्, रुपा गौ १९-२१ । आम्, लिङ्गेत् २२ । पत्नी, आशीर्वाद २३ । लिङ्गेत्, सोम २४ । सविता, सोम २५ । सोम, लिङ्गेत्, अम्बा २६ । सोम, विष्ण्व नम २७ । पन्था २९ । कृष्णजिन, सोम, वरुण ३० । वरुण ३१, ३६ । अनहुत् ३३ । सोम ३४, ३७ । सूर्य ३५ ।

छन्द— विराट् बाह्यी जगती १ । स्वराट् बाह्यी त्रिष्टुप् २ । स्वराट् अनुष्टुप् ३ । निवृत् बाह्यी पंक्ति ४, १९ । निवृत् आशी अनुष्टुप् ५, ६, २९, ३२ । पंक्ति, आशी बृहती ७ । आशी अनुष्टुप् ८ । आशी पंक्ति ९ । निवृत् आशी जगती, साम्नी त्रिष्टुप् १० । स्वराट् बाह्यी अनुष्टुप्, आशी उज्जिक् ११ । पुरिक् बाह्यी अनुष्टुप् १२ । पुरिक् आशी बृहती १३ । स्वराट् आशी उज्जिक् १४ । बाह्यी बृहती १५ । पुरिक् आशी पंक्ति १६ । आशी त्रिष्टुप् १७ । स्वराट् आशी बृहती १८ । साम्नी जगती, पुरिक् आशी उज्जिक् २० । विराट् आशी बृहती २१ । बाह्यी पंक्ति २२ । अस्तार पंक्ति २३ । बाह्यी जगती, कजुषी पंक्ति २४ । पुरिक् सक्वरी, पुरिक् गक्वरी २५ । पुरिक् बाह्यी पंक्ति २६, २७ । साम्नी बृहती, साम्नी उज्जिक् २८ । स्वराट् कजुषी त्रिष्टुप्, आशी त्रिष्टुप् ३० । विराट् आशी त्रिष्टुप् ३१ । निवृत् आशी गायत्री, कजुषी जगती ३३ । पुरिक् आशी गायत्री, पुरिक् आशी बृहती, विराट् आशी अनुष्टुप् ३४ । निवृत् आशी जगती ३५ । विराट् बाह्यी बृहती ३६ । निवृत् आशी त्रिष्टुप् ३७ ।

## ॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥





## ॥ अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

१६६. अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वातिथेरातिथ्यमसि विष्णवे  
त्वा श्येनाय त्वा सोमभूते विष्णवे त्वामये त्वा रायस्योषदे विष्णवे त्वा ॥१॥

हे सोम । आप अग्नि की शक्ति ऊर्जा प्रदान करने वाले अग्निरूप हैं । आप दिव्य पोषक रस के रूप में हैं , आप यज्ञ में आए अतिथियों का यथोचित सत्कार करने वाले हैं । आप सोम लाने वाले श्येन= के समान हैं । धन-ऐश्वर्य प्रदान कर सम्पूर्ण जगत् के पोषक अग्नि एवं विष्णुदेवता को तृप्ति के लिए हम आपको ग्रहण करते हैं ॥१॥

[= येशों में 'श्येन' बहुत शक्तिशाली है । अथर्ववेद में दूध तक खड़े के इसे 'न-मज्जन्' (मनुष्यों पर दृष्टि रखने वाला) कहा गया है । यह स्वर्ग से सोम को पृथ्वी पर लाने के लिए विशेष प्रसिद्ध है ।]

१६७. अग्नेर्जनित्रमसि वृषणौ स्वः उर्वश्यस्यायुरसि पुरुरवाऽअसि । गायत्रेण त्वा  
छन्दसा मन्थामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा मन्थामि जागतेन त्वा छन्दसा मन्थामि ॥२॥

हे शक्ति ! आप अग्नि उत्पादन के आधार हैं । हे कुशलो ! आप (अग्नि उत्पन्न करने में सक्षम होने के कारण) वीर्य स्वरूप हैं । अग्नि को उत्पन्न करने में सक्षम, नीचे की शक्ति 'उर्वश्ये' के समान तथा ऊपर की शक्ति 'पुरुरवा' के समान सबका ध्यान आकर्षित करने वाले हैं । हे यज्ञ में विद्यमान घृत आप अग्नि को आवृष्टि प्रदान करने वाले अर्थात् देर तक प्रज्वलित रखने वाले हैं । हे अग्निदेव । आपको प्रकट करने के लिए गायत्री, त्रिष्टुप् तथा जगती छन्दों के साथ मन्थन करते हैं ॥२॥

१६८. भवतं न समनसौ सचेतसादरेपसौ । मा यज्ञं हिंसिहं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ  
शिवौ भवतमद्य नः ॥३॥

एकाग्र मन वाले, सद्भावयुक्त एवं श्रद्धादरहित हे अग्निदेव । हमारे कर्पराशों पर क्रुद्ध न होते हुए, आप हमारे यज्ञ को नष्ट न होने दें । यजमानों का भी नष्ट न होने दें । उनकी रक्षा करें । आज का दिन हम सबके लिए कल्याणप्रद तथा शुभ हो ॥३॥

१६९. अग्नावग्निर्हरति प्रविष्टः ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपावा । स नः स्योनः सुयजा यजेह  
देवेभ्यो हव्यं हि सदमप्रयुक्तं त्वाहा ॥४॥

वेदज्ञाता ऋषियों के पुत्र स्वरूप हे ऋत्विग्गण ! प्रकटवाण दिव्य भवे शक्तों से यजमान के रक्षक वे आहवनीय अग्निदेव यज्ञ कुण्ड में प्रतिष्ठित होकर इवन का सेवन करते हैं । हे अग्निदेव । आप यजमानों के लिए कल्याणकर होते हुए इस श्रेष्ठ यज्ञ में हम लोगों द्वारा प्रदान की गई आहुतियों को, अतलस्वरहित होकर (प्रज्वलित रहकर) ग्रहण करें तथा इन्द्रादि देवताओं तक पहुंचाएं ॥४॥

१७०. आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि तनूनचे ज्ञाक्वराय शक्वन्ऽओजिष्ठाय ।  
अनाष्टृष्टमस्यनाष्टृष्व देवानामोजोऽनभिज्ञस्त्यभिज्ञस्तिपाऽ अनभिज्ञस्त्यमज्जसा  
सत्यमुपगेष हिं स्थिते मा धाः ॥५॥

सर्वत्र गमन करने वाले, सर्वज्याये, सभी को पीत्र के समान द्रव्य, सर्वकार्य सम्पादन में सक्षम, बलशाली है आज्ञा । हम आपको यज्ञ कार्य के लिए स्वीकार करते हैं । आप किसी से तिरस्कार न होने वाले, किसी का तिरस्कार न करने वाले अग्नि आदि देवों के ओम् स्वरूप, निर्द्वन्द्व कार्य से रक्षा करने वाले तथा प्रशंसा के योग्य हैं । अतएव हे शरीर-रक्षक आज्ञा ! सरल तथा श्रेष्ठ कार्य पर से चलने वाले आप यज्ञकार्य में हमें स्थापित करें ॥

१७१. अग्ने व्रतपास्त्ये व्रतपः वा तव तनूरियश्च सा मयि वो नम तनूरेषा सा त्वयि । सह नी व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षा दीक्षाप्रतिर्मन्यतामनु तपस्तपस्पतिः ॥६॥

हे व्रत पास्तन मे अवगम्य अग्ने ! आप हमारे वर्तमान व्रत का पालन करने वाले हैं । व्रतपालक आपको जो शरीर है, वह हमसे एकीकृत हो । हे व्रतपते ! व्रत कार्य के द्वारा अग्नि और ब्रह्मज्ञान सम्पन्नरूप से आदर के पात्र हों । दीक्षा का पालन करने वाला स्वयं हमारी दीक्षा का अनुकूलन करें, अर्थात् दीक्षित शक्ति और दीक्षा दाता में परस्पर सौहार्द बढ़े । तपस्य का अभिर्चन (पुरु) तथा तपश्चर्चा करने वाला (सिन्धु) दोनों सम्मान प्राप्त वाले हों ॥६॥

१७२. अहं शूरश्च शूरे देव सोमाध्यायतामिन्द्रायैकधनविदे । आ तुभ्यमिन्द्रः ध्यायतामा त्वमिन्द्राय ध्यायस्व । आध्याययास्मान्सखीन्सन्ध्या मेवया स्वरित ते देव सोम सुत्पामशीय । एहा रायः त्रेवे घनाय ऋतमृतवादिभ्यो नमो छावापृथिवीध्याम् ॥७॥

हे सोमदेव ! सोमकस्त्री के सम्पूर्ण अथवा कल्पान् इन्द्र के लिए प्रोक्तकर होते हुए वृद्धि को प्राप्त करें आपको पीने से इन्द्रदेव वृद्धि को प्राप्त करें । हे सोम ! आप भी इन्द्रदेव के लिए रहें । अथ विष प्रद्विजों को धन प्रदायक-शक्ति से अभिवृद्धि को प्राप्त करें । हे सोमदेव ! आपको कल्पक हो । आपको कुप्य ते हम सोम-सवन कार्य को शीघ्र ही सम्पन्न करें । आपकी अनुकम्प से हम धन प्राप्त करें । सत्यवादी अग्निदेव के होता को सत्यफल की प्राप्ति हो । छावा-पृथिवी ( में अतिरिक्त देवशक्तियों ) को हम नमस्कार करते हैं ॥७॥

१७३. या ते अग्नेऽधःशया तनूर्वर्षिष्ठ गङ्गरेष्ठा । उग्रं वचो अपावधीत्सेषं वचो अपावधीत्स्वाहा । या ते अग्ने रजःशया तनूर्वर्षिष्ठ गङ्गरेष्ठा । उग्रं वचो अपावधीत्सेषं वचो अपावधीत्स्वाहा । या ते अग्ने हरिशया तनूर्वर्षिष्ठ गङ्गरेष्ठा । उग्रं वचो अपावधीत्सेषं वचो अपावधीत्स्वाहा ॥८॥

हे अग्निदेव ! जो आपको लौहमय रजतमय तथा स्वर्णमय शरीर है, वह देवताओं की मनोकामना को पूर्ण करने वाला, असुरों को दुर्गम स्थानवासी कुष्ठों से अन्तर्निहित करने वाला, राक्षसों के कठोर शब्दों को नष्ट करने वाला तथा देवताओं के विभिन्न आरोप-अकारोपपूर्वक उच्चारण किये गये कथन को पूर्णतया प्रभावहीन कर देने वाला है । इस प्रकार के महिमाशाली शरीरधारी आपके लिए यह आहुति प्रदान की जा रही है ॥८॥

१७४. तप्तायनी मेसि कितायनी मेऽम्यवतान्वा जघितादकतान्वा ख्यधितात् । विदेदग्निर्नभो नामान्ने अङ्गिरऽ आयुना नाम्नेहि योऽस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामान्ने अङ्गिरऽ आयुना नाम्नेहि यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेनाष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामान्ने अङ्गिरऽ आयुना नाम्नेहि यस्तृतीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेनाष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे । अनु त्वा देवधीतये ॥

हे पृथ्वीदेवि ! आप 'तप्तवर्णी' ऊर्ध्व प्रदान करने वाली और 'कितावर्णी' धन प्रदान करने वाली हैं । दीनता से हमें बचाएँ । हे देवि ! (सन्म की हुई मृत्तिका) 'नभ' नाम वाली अग्नि (अंतरिक्ष में संव्याप्त अग्नि) आपको जाने (आपकी ओर उन्मुख हो ) । हे अङ्गिरस ! (अंगो में संव्याप्त अग्नि) आप आयुष्य के रूप में इस स्थान पर पधारें । आप दृश्यमानरूप में पृथ्वी पर निवास करने वाले हैं । आपको जो अतिरिक्त अग्नि का स्वीकार है,

उसी रूप में हम आपको वहाँ स्थापित करते हैं। हे 'नम' नाम से जाने जाने वाले अग्निदेव ! आप जिस उद्देश्य से द्वितीय स्थान में हैं, उसी उद्देश्य से दूसरी बार पृथ्वी पर नष्ट होने वाले यज्ञीयरूप में आपको स्थापित करते हैं। जिस कारण आप तृतीय स्थान में अवस्थित हैं, उस नष्ट होने वाले यज्ञीयरूप में आपको इस स्थान पर स्थापित करते हैं। हे मृत्तिके ! देवताओं के निमित्त (उत्तर वेदिक के लिए) आपको स्थापित करते हैं ॥९॥

१७५. सिं॒हसि सपत्नसा॒ग्नी देवेभ्यः॑ क॒त्प्यस्य॑ सिं॒हसि सपत्नसा॒ग्नी देवेभ्यः॑ शु॒न्यस्व॑  
सिं॒हसि सपत्नसा॒ग्नी देवेभ्यः॑ शु॒न्यस्व॑ ॥९०॥

सिंहनी के समान शत्रुओं का नाश करने वाली हे उत्तर वेदिके ! आप अपनी सामर्थ्य से देवों का हित करने में समर्थ हैं। शत्रुओं का नाश करने वाली सिंहनी रूप, आप देवताओं के हित में शक्तिता को प्राप्त हो। आप शत्रु-विनाशिनी सिंहनी हैं, शुद्ध होकर देवों के पक्ष में कार्य करें तथा उन्हें प्रसन्न करें ॥९०॥

१७६. इन्द्र॒घोष॑स्त्वा वसु॒भिः पुरस्ता॑त्पातु प्रचे॒तास्त्वा रु॒द्रैः पश्चा॑त्पातु भ॒नोज॑वास्त्वा  
पितृ॒भिर्दक्षि॑णतः पातु वि॒श्वकर्मा॑ त्वादित्यैरुत्तर॒तः पा॒त्विदम॑हं तप॒मं वा॒र्षहि॑र्षा य॒ज्ञाभिः॑ सृ॒जामि॑ ॥

हे उत्तरवेदि ! अहं वसुओं के साथ इन्द्रदेव पूर्व दिशा से आपकी रक्षा करें। ग्यारह रुद्रों सहित वरुण देवता पश्चिम की ओर से आपकी रक्षा करें। पितरों सहित पद्म देवता दक्षिण दिशा से आपकी रक्षा करें। द्वादश आदित्यों सहित विश्वदेवा उत्तर दिशा की ओर से आपको रक्षा करें। आपकी रक्षा के लिए प्रोक्षण किये गये जल को हम वेदी के बाहर की ओर स्थापित करते हैं ॥९१॥

१७७. सिं॒हसि॑ स्वाहा सिं॒हसि॑ स्वादित्यव॒न्ति स्वाहा॑ सिं॒हसि॑ ब्रा॒ह्म॒वनिः क्षत्र॑वनिः स्वाहा  
सिं॒हसि॑ सु॒प्रजा॑वनी रा॒जस्यो॑व॒न्ति स्वाहा॑ सिं॒हसि॑ वा॒ह दे॒वान् य॒ज्ञभा॑नाय स्वाहा  
भूतेभ्य॑स्त्वा ॥९२॥

हे उत्तरवेदि ! आप सिंहनी रूप हैं। सिंहनी रूप आपको वह आहुति समर्पित है। आप सिंहनी रूप हैं। आप अदित्य की प्रसन्न करने वाली हैं। वह आहुति आप को दी जा रही है। आप सिंहनी रूप हैं। आप ब्राह्मण एवं क्षत्रियों को हर्षित करने वाली हैं। इस रूप वाली आपको अहुति प्रदान की जाती है। आप सिंहनी रूप हैं। आप पुत्र, पौत्र तथा स्वर्णादि वन-कन्य को देने वाली हैं। वह आहुति आपके लिए है। आप सिंहनी रूप हैं। वर्तमान के उपकार के लिए देवताओं का अभिवादन करने वाली हैं। प्राणिमात्र के कल्याण हेतु यह आहुति आपको समर्पित करते हैं ॥९२॥

१७८. ध्रु॒वोसि॑ पृथि॒वीं दृ॒ष्टं ह॑ ध्रु॒वसि॑दस्यन्तरि॒क्षं दृ॒ष्टं हा॒व्युत॑क्षिदसि दि॒वं दृ॒ष्टं हा॒ग्नेः  
पु॒रीष॑मसि ॥९३॥

हे मध्यम परिधि ! आप स्थिर हैं। अतः पृथ्वी को आप दृढ़ करें। हे दक्षिण परिधि ! आप अन्तरिक्ष में स्थिर यज्ञ में निवास करने वाली हैं, अतएव आप अन्तरिक्ष को पुष्ट करें। हे उत्तर परिधि ! आप घुलोक रूप हैं, अतः घुलोक को स्थिर करें। हे गुग्गुलु आदि सुगन्धित द्रव्य समूह ! आप अग्नि को पूर्ण करने वाले हैं ॥९३॥

१७९. यु॒ञ्जते॑ मनऽ॒त यु॒ञ्जते॑ धियो॒ विप्र॑ विप्रस्य बृ॒हतो॑ विप॒श्चितः॑ । वि हो॒त्रा दधे॑  
य॒पुना॑विदेकऽ॒ इ॒न्यद्दी॑ दे॒वस्य॑ स॒वितुः॑ परि॒ष्टुतिः॑ स्वाहा ॥९४॥

यहान्, सर्वज्ञ, वेदों का रक्षक भीति अघ्नयन करने वाले ऋत्विग्मन्, सांसारिक विषयों से मन को हटाकर यज्ञ कार्य की पूर्णता के विषय में विचार करने लगे हैं। सम्पूर्ण ऋषियों के सखीभूत, प्रेरण देने वाले, सर्वदा श्रेष्ठ स्तुतियों से प्रशंसित सवितादेवता को अनुकूल करने के लिए यह आहुति प्रदान की जाती है ॥९४॥

१८०. इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूहमस्य पा ६३ सुरे स्वाहा ॥१५॥

हे विष्णुदेव ! आप अपने सर्वव्यापी त्रयम पद पृथ्वी में, द्वितीय पद अन्तरिक्ष में तथा तृतीय पद धुलोक में स्थापित करते हैं । प्रत्येक ऊर्ध्व इनके पद-रज में अन्तर्हित है । इन सर्वव्यापी विष्णुदेव को यह आहुति दी जाती है ॥१५॥

[ यहाँ विष्णु द्वारा तीन पदों में समूर्ण ब्रह्मण्ड का मेरे का आकाशिक वर्णन है । विष्णु केवल करने वाले हैं, वह भी केवलकर्ता हैं, इतिरिक्त 'यतो वे विष्णुः' कहा गया है । इस केवल त्रय के तीन वर्णन वि-आकाश पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं धुलोक में संभव है । ]

१८१. इरावती धेनुमती हि धूतः सुयवसिनी वनवे दशस्या । व्यस्कध्ना रोहसी विष्णवेते दाधर्यं पृथिवीमभितो वयुस्तैः स्वाहा ॥१६॥

हे पृथ्वी एवं धुलोक ! आप, ऐश्वर्य के लिए कृषि सम्पत्ति से युक्त अनेकों गौओं को देने वाले, यवादि जेष्ठ जलों को देने वाले तथा विवेकपूर्ण पुरुषों के लिए यज्ञ-साधनों को प्रदान करने वाले हैं । हे विष्णुदेव ! आपने धुलोक एवं पृथ्वीलोक का विष्णुत्व करके उसे स्थिर कर दिया है । आपने पृथ्वीलोक को तेजस्वी किरणों से परिष्कृत कर लिया है । आपके लिए हम यह आहुति समर्पित करते हैं ॥१६॥

१८२. देवश्रुतौ देवेष्वा घोषतं प्राची त्रेतमध्वरं कल्पयन्ती ऊर्ध्वं यज्ञं नयतं मा जिह्वरतम् । स्वं गोष्ठमा वदतं देवा दुयं आयुर्मा निर्वादिहृत् त्रया मा निर्वादिहृमत्र रमेष्वा वर्धन् पृथिव्याः ॥१७॥

इस गद्य के साथ इतिरिक्त-शब्द का एक उदाहरण करने में हमें का विधान है—  
हे देवश्रुत (दिव्य विद्वानों में निपुण) आप दोनों देव सच में यह घोषित करें कि वे देवगण यज्ञ को पूर्ण दिशा (पूर्व निर्धारित अनन्त अनुशासन) की ओर अवसर करें, यज्ञ को ऊर्ध्वगति प्रदान करें, नीचे न गिरने दें । आप दोनों देवस्वाम्य में स्थित गौरवस्व में कहें कि वे देवगण जब तक आयु है, तब-तक यज्ञकर्ता को एवं यज्ञों को विन्दित न होने दें । पृथ्वी के इस रहने योग्य, समशीतोष्ण प्रदेश (यज्ञ क्षेत्र) में आरम्भपूर्वक वास करें ॥१७॥  
[देवस्वाम्य स्थित गौरवस्व का अर्थ है—देवश्रुतों द्वारा स्थापित केवल ब्रह्मण्ड तत्त्व ।]

१८३. विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रबोधं च वार्षिधानि विभमे रजाः ३३सि । यो अस्कभायदुतरः सधर्यं विचक्रमणसोधोरुनायो विष्णवे त्वा ॥१८॥

ओ पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा धुलोक को बनाने वाले हैं, जो देवताओं के निवास स्थान धुलोक को स्थिर कर देते हैं, जो तीन विशाल पद-क्रमों में तीनों लोकों में विचरण करने वाले हैं (अथवा सप्तर में अग्नि, वायु तथा सूर्यरूप में विद्यमान रहने वाले हैं) —ऐसे विष्णुदेव के वीरतापूर्ण कार्यों का हम वर्णन करते हैं (हे काष्ठ ! इस सकट के अभिमानी देवता) विष्णुदेव की प्रसन्नता के लिए हम तुम्हें स्थापित करते हैं ॥१८॥

१८४. दिवो वा विष्णोऽ उत वा पृथिव्या महो वा विष्णोऽ उरोरन्तरिक्षात् । तथा हि हस्ता वसुना पूणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्याद्विष्णवे त्वा ॥१९॥

हे विष्णुदेव ! धुलोक का पृथ्वी-लोक से अथवा अत्यधिक विस्तृत अन्तरिक्षलोक से उपलब्ध किये गये धन से, आप अपने दोनों हाथों को परिपूर्ण करें । इसके बाद दाहिने हाथ से तथा बायें हाथ से बहुमूल्य एवं प्रचुर ऐश्वर्य हमें प्रदान करें । (हे काष्ठ ! विष्णुदेव की प्रसन्नता के लिए हम तुम्हें स्थापित करते हैं ॥१९॥

१८५. प्र तद्विष्णुः स्वतते वीर्येण मृणो न पीप्सु कुचरो गिरिष्ठः । वस्योरुमु त्रिषु विक्रमणेष्वाधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥२०॥

सिंह के सदृश भयानक (यत्स्यादि अवतारों द्वारा) पृथ्वी पर विचरण करने वाले तथा पर्वतवासी-सर्वव्यापी भगवान् विष्णु अपने पौरुष के कारण स्तुत हैं । जिन विष्णु के तीन विस्तार कटकों (पृथ्वी, द्युलोक, अन्तरिक्ष) के आश्रय में सम्पूर्ण लोक रिक्त हो जाते हैं, उन विष्णुदेव की यही स्तुति की जा रही है ॥२०॥

१८६. विष्णो रराटमसि विष्णोः इन्धो स्यो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्धुवोसि ।  
वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥२१॥

इस पंक्त के साथ प्रथम अष्टावक्र का विधान है—

कुल के समूह को स्थान देने वाले हैं आपस । आप (विष्णुरूप मण्डप के) ललट हैं । हे वास्तव के दोनों भाग ! आप विष्णुरूप मण्डप के कटकों के संबंधस्थ हैं । हे मृत । विष्णुरूप आप लोकों को आपस बनाने वाले हैं । हे रज्जु यन्त्रि ! विष्णुरूप आप लोकों को स्थिर करने वाली हैं । हे सर्वविध मण्डप ! आप सर्वव्यापक विष्णु से संबन्धित हैं । अतएव हम विष्णुदेव की प्रसन्नता के लिए आपका स्पर्श करते हैं ॥२१॥

१८७. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूजो हस्ताभ्याम् । आ ददे नार्थसी  
दमहंरक्षसां ग्रीवा अपिकृन्तामि । बृहन्नसि बृहद्वा बृहतीमिन्द्राय चार्चयद् ॥२२॥

हे अग्नि देवता ! हम सवितृदेवक के विधान होने पर भी अश्विनदेवों की बाहुओं से तथा पूजा देवता के हाथों से आपको स्वीकार करते हैं । आप हमारी सहायक हैं । गुप्त भाड़ने के लिए खनन करते हुए हम पशु के विघ्नकारक राक्षसों के गर्तों को काटते हैं । हे उपरक (नामक गर्त) ! आप प्रज्ञान हैं, आप अधिक ध्यान करने वाले हैं । अतएव आप इन्द्र को सहायक उनके निर्मित स्तोत्रों का पठ करें ॥२२॥

[ लोकपाल के अतिरिक्त प्रथम में कुछ विशेष कथन का प्रयोग करने वाले प्रभु, जिसे आज तक ईश्वर के विनाई करते ईश्वर दिए गए हैं, केवल अतिरिक्तों में का लिए होते हैं ।]

१८८. रक्षोहृणं बलगहनं वैष्णवीमिदमहं तं बलगमुत्किरामि च मे निह्यो यममात्यो  
निचखानेदमहं तं बलगमुत्किरामि च मे समानो यमसमानो निचखानेदमहं तं  
बलगमुत्किरामि च मे सन्नन्वुर्यमसन्नन्वुर्निचखानेदमहं तं बलगमुत्किरामि च मे सजातो  
यमसजातो निचखानोत्कृत्वा किरामि ॥२३॥

इस पंक्त के साथ प्रथम का अष्टावक्र का विधान है—

राक्षसों का विनाश करने वाली, जिस के गुप्त प्रयोगों को नष्ट करनेवाली वैष्णवी (पोषण देने में समर्थ) बृहद् वेदवाणी बोले । हमारे अग्नि के लिए अमृतक (परमार्थ दाता) अग्नि द्वारा गुप्तरूप से स्थापित गूढ़-घातक प्रयोग को हम उखाड़ कर बाहर फेंकते हैं । जिस अग्निहवारी गुप्त प्रयोग को हमारे सन्तान या असमान (कम की अधिक सामर्थ्यवान्) ने छिपा कर रखा हो, उसे हम उखाड़ कर दूर फेंकते हैं । जो अग्निहवारी प्रयोग छुपपूर्वक हमारे बन्धुओं या अन्ध-बन्धुओं ने स्थापित किये हों, उन्हें हम उखाड़ कर दूर हटाते हैं । जिस गुप्त प्रयोग को हमारे सजातीय अथवा विजातीय लोगों ने अग्नि के लिए स्थापित किया हो, उसे हम खेदकर दूर हटाते हैं । इस प्रकार की गयी घातक गुप्त क्रियाओं को हम निर्मूल कर दें ॥२३॥

१८९. स्वराहसि सपत्न्या सत्रराहस्यभिमातिहा जनराहसि रक्षोहा सर्वराहस्यमिन्द्रा ॥२४॥

प्रत्यक्ष पर करने वाले अष्ट (गुप्त) को स्थान करने की शक्ति के विधान की भी अतिरिक्त के साथ इस पंक्त का प्रयोग होता है । अष्टावक्र से अग्नि के विधान की भी प्रयोग करने का पंक्त का प्रयोग है ।

हे गर्त ! आप प्रकाशवान् होने से (अंधकाररूप) सत्रों को नष्ट करने वाले हैं । आप सब के पूरे सत्र तक रहने वाले हैं और आप अभिमानियों के विनाशक हैं । आप श्रेष्ठ लोगों में सुप्रतिष्ठित होने के कारण राक्षसों को नष्ट करने वाले हैं । आप सबको प्रकाशित करने वाले हैं तथा अभिमानों के विनाशक हैं ॥२४॥

१९०. रक्षोहणो वो वलगहन् प्रोक्षामि वैष्णवान् रक्षोहणो वो वलगहनो वनयामि वैष्णवान्  
रक्षोहणो वो वलगहनो वस्तुणामि वैष्णवान् रक्षोहणो वां वलगहनाऽ उप दधामि वैष्णवी  
रक्षोहणो वां वलगहनो पर्युहामि वैष्णवी वैष्णवमसि वैष्णवा स्व ॥२५॥

राक्षसों एवं अभिचार-साधनों का विनाश करने वाले विष्णुदेवता से सम्बन्धित भर्तृ का हम प्रोक्षण करते हैं ।  
राक्षस एवं अभिचार-साधनों के विनाशक विष्णुदेवता से अधिकृत गत को हम बचे हुए जल से छिड़ककर  
कुल-आस्तारण (बटाई) को बिखारते हैं । राक्षसों एवं अभिचार-साधनों के हन्ता विष्णुदेवता से युक्त गधु को  
कुलास्तारण से ढकते हैं । राक्षसों एवं उनके अभिचार के कार्यों का नाश करने वाले विष्णुदेवता से सम्बन्धित  
दोनों गधु के ऊपर एक-एक कलक (बटाई) रखते हैं । राक्षसों एवं उनके अभिचार मंत्रों का विनाश करने वाले,  
विष्णु से सम्बन्धित गधु को करों ओर से मिट्टी से ढकते हैं । हे राक्षसो ! आप बरगलक विष्णु के साथ जुड़ जाए ॥

१९१. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽग्निर्बाहुभ्यां पूजो हस्ताभ्याम् । आददे  
नार्यसीदमहं-रक्षसां ग्रीवाऽ अपिकृन्तामि । यवोसि यवयास्मद्देवो यवयारातीर्दिवे  
त्वान्तरिक्षाय त्वा पृथिवी त्वा सुन्वन्तीत्सोकाः पितृवदनाः पितृवदनमसि ॥२६॥

हे अग्नि (ये अग्निप्रेत देवसत्ता) । हम सवित्त से प्रीति अग्निदेवों की भुजाओं से तथा पुधादेव के हाथों  
से आपको स्वीकार करते हैं । आप हमारे अनुकूल हो । गधु खाने के रूप में हम अब राक्षसों को गर्दन काटते  
हैं । उनका विनाश करते हैं । हे यव । (पृथक् करने के लक्षण से यव) दुर्भाग्य से तथा गधुओं के अमृत से आप  
इमें अलग करें । हे उदुम्बर गधु की साखे । (अयस्कण) धूलों को हर्षित करने के लिए (मध्यभाग) अन्तरिक्षलोक  
को प्रसन्न करने के लिए तथा (मूलभाग) पृथिवी को प्रसन्न करने के लिए हम आपको प्रोक्षण करते हैं । हे यव ।  
हम जल से पितरों का निवास स्थान गूढ़ हो । हे कुल । आप पितरों के आवास स्थान हैं ॥ २६ ॥

[ ' मिट्टी में गधु खोदने के लक्षण में लक्ष्य करने वाले कलक उदुम्बर ॥

१९२. उदिवत्स स्तभानान्तरिक्षं पुन दृष्टव्यं पृथिव्यां धृतानस्त्वा मारुतो भिनोतु  
मिश्रावरुणो ब्रूवेण धर्मणा । ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्योचवनि पर्युहामि ब्रह्म दृष्टं इ  
क्षत्रं दृष्टं हायुदृष्टं इ प्रजां दृष्टं इ ॥२७॥

हे उदुम्बर (गुलर की लकड़ी) साखे । आप धूलों को ऊँचा उठा दें तथा अन्तरिक्ष को सम्प्राप्त करें । पृथ्वी  
को भी स्थिर करें । हे उदुम्बर साखे । दीपितम् मरुत् और वायु तथा मिश्रवरुण आपको स्थिर करने के लिए  
गधु में खानते हैं । हे साखे । ब्रह्मण, अग्नि तथा वैश्वो द्वारा स्तुत्य आपके चारों ओर हम मिट्टी डालते हैं । हे  
उदुम्बर साखे । हम आपको स्थिर करते हैं । आप भी कलक, अग्नि, राय (वन) तथा पुत्रादि को सुस्थिर करें ॥२७॥

१९३. सुवासि सुवोयं वज्रमानोस्मिन्नयत्ने व्रजया पशुभिर्मुयात् । धृतेन छात्वापृथिवी  
पुयैवामिन्द्रस्य छदिरसि विजृज्जनस्य छाया ॥२८॥

हे उदुम्बर साखे । आप स्थिर हो । वज्रमान भी अपने पर में पुत्र तथा पशुओं से पूर्ण होता हुआ स्थिर हो ।  
हम धृत आहुति से आप धूलों और पृथ्वी को सम्प्राप्त करें । हे वृक्ष निर्मित छपर । आप इन्द्र से जुड़ गये हैं,  
अतः आप सभी लोगों के छाया स्वरूप हैं ॥२८॥

१९४. परि त्वा गिर्यो गिरऽ इया भवन्तु विजृज्जतः । वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! प्रेष्ठ वृद्ध पुरुष, जिनों का लोभ से स्तुत्य करने वाले वज्रमान तथा स्तोत्ररूपी रास वाली  
स्तुतियों आपको सभी ओर से प्रसन्न हों । आप हमारी सेवा से प्रसन्न हो ॥२९॥

१९५. इन्द्रस्य स्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवोसि । ऐन्द्रमसि वैश्वदेवमसि ॥३०॥

हे रज्जु ! आप इन्द्रदेव का सम्बन्ध जोड़ने के सीवन रूप हैं । हे तन्त्रि ! आप इन्द्रदेव से संयुक्त होकर स्थिर हों । हे सद्यो (गृह या यज्ञशाला) यच्छप ! अब इन्द्र आपके अग्निघनी देवत्व हैं । हे आग्नीष ! आप इन्द्रदेव से सम्बन्धित हो गये हैं । सभी देवत्वओं से सम्बन्धित हो जाएँ ॥३०॥

१९६. विभूरसि प्रवाहणो वह्निरसि इव्यवाहनः । क्षात्रोसि प्रचेतास्तुथोसि विश्ववेदाः ॥

हे आग्नीध्रय विषय (प्रधान वेदिदे) ! आप में प्रज्वलित हुई अग्नि अन्य वेदियों पर पहुँचाई जाती है । अतः वह व्यापक अग्नि विविध रूपों में जाने जाते हैं । हे होतृविषय ! आप में प्रकट हुई अग्नि यज्ञ को वहन करती है तथा देवों के लिए प्रदान की गयी हवि को धारण करने से इव्यवाहन है । हे मिश्रवरुणविषय ! आपमें प्रकट हुई अग्नि सब कर्तृविष होने से 'स्वात्र' एवं विद्यारों का संपन्न करने से 'वरुण' है । हे ब्राह्मणर्क्षसि विषय ! आप ब्रह्मस्वरूप और सभी को ज्ञान देने वाले हैं ॥३१॥

१९७. उशिगसि कविरङ्गारिरसि बभ्रारिरवस्यूरसि दुवस्वाञ्हुन्म्यूरसि घार्जालीधः सम्राडसि कृशानुः परिच्छोसि पवमानो नभोसि प्रतक्वा मृष्टोसि हव्यसूदनऽ अन्नधामसि स्वर्ज्योतिः ॥३२॥

हे पौतृविषय ! आप कामना के योग्य तथा नूतन क्रियाओं का दर्शन करने वाले हैं । हे नेष्टृविषय ! आप पापनाशक और पोषणकर्ता हैं । हे अन्नस्वाकर्षण ! आप अन्न की कामना करने वाले तथा हविषयुक्त हैं । हे होशदिविषय (दिशिण दिशा में स्थित) आप शुद्ध और धीमत् करने वाले हैं । हे उत्तर वेदी में विद्यमान आहवनीय ! आप अनेक आह्नियों को धारण करने के कारण सन्नद्ध तथा वदधारी-कृत पवमान के पास जाने के कारण आप कृशानु हैं । हे बह्विषयमान देश ! आप ऋत्विजों से घिरे हुए तथा पवन हैं । हे जाल्पा ! छोटते समय ऊपर ठठथे जाने के कारण आप अवकाश रूप तथा प्रदक्षिणा के निर्मित ऋत्विजों द्वारा गमन करने के कारण आप 'प्रतक्वा' (प्रदक्षिणं लक्ष्मि गच्छन्ति ऋत्विजो यज्ञं स प्रतक्वा) हैं । हे साधिव ! आप शुद्ध तथा हवि को पकाने वाले हैं । हे उदुम्बर शाखे ! आप सामगन्त के स्थान तथा स्पर्श से प्रकाशित सूर्य ज्योति हैं ॥३२॥

१९८. समुद्रोसि विश्वव्यचाऽ अजोस्येकपादहिरसि बुभ्यो वागस्यैन्द्रमसि सदोस्युतस्य द्वारौ मा मा सन्तापमध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वास्ति मेस्मिन्यधि देवयाने भूयात् ॥३३॥

(हे ब्रह्मसन् ! आप समुद्र के समान अनेक ज्ञानवान् सत्-अस्तु सर्वों के ज्ञाता हैं । (हे प्राचीन यज्ञशाला के द्वार की लकड़ी के अग्रभाग ! आप यज्ञस्थल पर जाने वाले तथा सम्पूर्ण प्राणियों को एक पैर के नीचे अनुशासित करने वाले हैं । (हे प्राज्ज्ञित ! आप नये स्थान पर रखे जाने पर भी यह न होने वाले तथा सर्वप्रथम स्थापित होने के कारण (सर्वज्ञतया) मूल अग्नि हैं । (हे सद्यो यच्छप ! आप क्षीररूप हैं, इन्द्रदेवता से संयुक्त हैं तथा उनके गृह के रूप में हैं । (हे सद्यो यच्छप द्वार की दोनों स्तम्भों ! आप यज्ञद्वार पर स्थापित हैं । बार-बार जाने जाने से दुःखी न हों । (हे मार्गरक्षक सूर्य ! मार्ग के पथ में स्थित आप मेरी अभिवृद्धि करें । देव-प्राप्ति मार्ग या (यज्ञ-पथ) पर चलते हुए हम कल्याण को प्राप्त करें ॥३३॥

[ = यज्ञशाला में स्थित 'क्षीरस्तम्भ' के क्षीरी भाग में स्थित नूतन यज्ञस्थल को प्रज्ज्ञित यज्ञशाला है - यही ० पं० ]

१९९. मित्रस्य मा धक्षुवेक्षध्वमन्तः सगराः सगरास्य समरेण नाम्ना रौद्रेणानीकेन घात माभ्ययः पिपृत माभ्ययो गोपायत मा नमो वोस्तु मा मा हि तं सिष्ट ॥३४॥

हे ऋत्विज् ! आपकी हम आँखों पर मङ्गलनकी दृष्टि हो । हे अग्निदेव ! आप गम रहित तथा विषय गम-सहित स्तुतियों के प्रति समान भव रहें । हे अग्निदेव ! आप चक्कर सेना से हमारी रक्षा करें । हे अग्निदेव ! हमें धन-धान्य से पूर्ण कर दें तथा हमारी रक्षा करें । हम आपको नमस्कार करते हैं । आप हमारी हिंसा न करें, अर्थात् हमारे वज्र निर्विघ्न सम्पन्न करायें ॥३४॥

२००. ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानां च समित् । त्वं च सोम तनूकन्दो देवो ध्यान्यकृतेभ्यः उरु यन्तासि वत्स्यं च स्वाहा जुवाणो अमृताज्यस्य वेतु स्वाहा ॥३५॥

हे आन्व ! आप अनेक आहुतियों से युक्त होने के कारण विश्वरूप प्रकाश से युक्त तथा सभी देवताओं की समिधा के समान हैं । आप प्रवरणों सम्पन्न जुहू में रहें हुए सोम से सत्रुओं का नश करने वाले हैं । आप हमारे विरोधियों द्वारा खिये गये अन्न असत् वस्तुओं के विनाशक हैं । आप सत्रुओं से सुरक्षित स्थान पर हमें ले जाने वाले हैं । आप ही हमारे कल हैं । सोम को ले जाने के लिए यह आहुति आपको दी जा रही है । हे सोम ! प्रसन्न होते हुए आप अन्न का सेवन करें— यह आहुति आपको समर्पित है ॥३५॥

२०१. अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्निष्ठानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुरागमेनो धूमिष्ठां ते नम उक्तिं विशेषम् ॥३६॥

दिव्य गुणों से युक्त हे अग्निदेव ! आप सम्पूर्ण कार्यों (कर्म) को जानते हुए हम यात्रकों को वज्र फल प्राप्त करने के लिए सम्मार्ग पर ले चलें । हमको कुटिल आवरण करने वाले सत्रुओं तथा पापों से मुक्त करें । हम आपके लिए स्तोत्र एवं नमस्कारों का विष्मन करते हैं ॥३६॥

२०२. अयं नो अग्निर्वरिषस्कृणोत्वयं मूषः पुरः शतु प्रमिन्दन् । अयं वाज्राज्ययतु वाज्रासातावयं शत्रूञ्जयतु जर्हषाणः स्वाहा ॥३७॥

यह अग्नि हम लोगों को श्रेष्ठ धन प्रदान करे । वह अग्नि सत्रुओं का विनाश करती हुई हमारे समक्ष आए । यह अग्नि, अन्न की कर्मणा करने वाले यजमानों को, सत्रुओं से प्राप्त धन प्रदान करती हुई विजयी हो । यह अग्नि, सत्रुओं को प्रसन्नतापूर्वक खीते तथा हमारे द्वारा समर्पित आहुतियों को ग्रहण करे ॥३७॥

२०३. उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि । घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥३८॥

हे सर्वव्यापी आहवनीय अग्निदेव ! आप अपने पराक्रम से सत्रुओं को परास्त करें । हमारे निवास के लिए हमें प्रचुर क्षमता से सम्पन्न करें । हे घृताहुति से वृद्धिप्राप्त अग्निदेव ! वज्र में आप घृत का सेवन करें तथा वज्रमान की अत्यधिक वृद्धि करें ॥३८॥

२०४. देव सवितरेण ते सोमस्तं रक्षस्व न त्वा दधन् । एतत्त्वं देव सोम देवो देवोऽरुपागाः इदमहं मनुष्यान्सह रायस्योषेण स्वाहा निर्वरुणस्य पाशान्मुच्ये ॥३९॥

हे सवितदेवता ! यह सोम आपको प्रदान किया जा रहा है । आप इसकी रक्षा करें । हे सोम की रक्षा करने वाले ! आपको राक्षस पीड़ित न करें । हे सोमदेव ! आप देवत्व को प्राप्त कर देवताओं से अधिष्ठित हो गये हैं । हम और हमसे सम्बद्ध सभी व्यक्ति पशु आदि वनों को प्राप्त हों । ऋद्धम से निकलकर इस सोम आहुति के द्वारा हम वरुणदेवता के वश से मुक्त हो गये हैं ॥३९॥

२०५. अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा वा तव तनूर्मव्यभूदेवा सा त्वयि यो मम तनूस्त्वव्यभूदिष्यं च सा मयि । यथावयं नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिरमं च स्तानु तपस्तपस्पतिः ॥४०॥



इस यंत्र द्वारा आहवनीय अग्नि में सयिककर्म किया जाता है।

हे अग्निदेव ! आप व्रतपालक हैं । अतएव आप हमारे व्रत की रक्षा करें । व्रतकाल में हमारा शरीर आप से संयुक्त हो जाए तथा आपका जो शरीर है, वह हमसे अन्येकृत हो जाए । (अर्थात् परस्पर विभेद न रहे, तादात्म्य स्थापित हो जाए ।) हे व्रतपालक, अन्नगन्ध अग्निदेव ! हमारे श्रेष्ठ कर्मों का यथोचित सम्पादन करें । दीक्षाफलक अग्नि ने हमारी दीक्षा को स्वीकार कर लिया है । तप-फलक अग्नि हमारी उपस्था को स्वीकार करें । ॥४०॥

२०६. उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि । घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ।

हे आहवनीय (विष्णुरूप विश्वम्पाय) अग्नि । सत्तुओं के प्रति आज्ञा हमें पौरुष-युक्त करें, हमारे आवास को आप विशाल कर दें । हे घृत से प्रज्वलित अग्नि । आपकी ज्वालाओं का मूलकारण घृत ही है । हे अग्नि ! आप यजमानों को अपार वैभव प्रदान करें । वह आहुति आपको कस्मिन्-चित्ति समर्पित की जाती है । ॥४१॥

२०७. अत्यन्यार अर्गा नान्यार उपागामर्वाक् त्वा शरेभ्योविदं परोवरेभ्यः । तं त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वादययज्यायै जुषन्तं विष्णावे त्वा । ओषधे प्रायस्व स्वधिते मेनश्च हि श्च सीः । ॥४२॥

हे यूप वृक्ष ! जो यूप विर्माण में उपयोगी है, हम उन वृक्षों को ही प्राप्त करें । यूप कार्य में अनुपयोगी वृक्षों को हम प्राप्त न करें । दूर स्थित और पास में स्थित वृक्षों में हमने आपको निकट ही प्राप्त कर लिया है । हे वनपालक, दीप्यमान वृक्ष ! देवताओं के यज्ञकार्य के लिए हम आपको सेवा करते हैं । देव कार्य के लिए देवता भी आपको सेवन करें । हे यूप वृक्ष ! हम यज्ञ के लिए भी छिड़कते हैं । हे ओषधे ! कुम्हाड़े से इसकी रक्षा करें हे परशु ! इस यूप को आप हिंसित न करें । ॥४२॥

२०८. हां मा लेखीरन्नरिक्षं मा हिंशसीः पुषिष्या सम्पद्य । अयश्च हि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय । अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्गो वि रोह सहस्रवल्गा वि वयश्च रुहेम । ॥४३॥

हे यूप वृक्ष ! आप सुलोक को हिंसित न करें, अन्तरिक्ष को भी हिंसित न करें, अपितु आप पृथ्वी के साथ मिल जाएँ (अर्थात् बंटकर पृथ्वी पर गिर पड़े) । हे कटे हुए पेड़ ! अति तेज वह कुल्हाड़ा आपके सौभाग्य के लिए है । आप यज्ञ के लिए यूप रूप हो जाएँ, अर्थात् यज्ञ में यूप के रूप में आपको प्रयोग हो । हे देव वनस्पति ! अभी तक आप मात्र कष्ट थे । अब आज यज्ञ-यूप के रूप में प्रयुक्त होने के कारण अनेकों अंकुरों से युक्त होते हुए विशिष्ट जीवन को प्राप्त करें । हम सावककर्म भी पुनः-पुनः से वृक्ष की शाखाओं के रूप में वंश वृद्धि को प्राप्त करें । ॥४३॥

## —अग्नि, देवता, छन्द-विवरण—

अग्नि— गेह्य १-१३ । स्वयम्भुव १४ । मेघविधि १५ । बसिष्ठ १६-१७ । दीर्घतम्य औतस्य १८-२८ ।

मधुच्छन्दा २९-३४ । मधुच्छन्दा, अमु चर्मव ३५ । समस्त्य ३६-४३ ।

देवता— विष्णु १, १५-१६, २८-२९, २५, ३८, ४१ । शक्रस्य, दर्षतृण्य, सिंगोक्त, अग्नि २ । निर्यध्य-आहवनीय अग्नि ३-४ । अमु अज्य ५ । अग्नि ६, ८, ३६-३७, ४० । सोम, सिंगोक्त ७ । पृथिवी, अग्नि, सिंगोक्त ९ । वेदिका १० । उत्तरवेदिका अष्ट (जस) ११ । चक्र, सूक् १२ । परिधि (मेखला), गुल्गुत्वादि संपादा १३ । सविता १४ । मधुचुरी, इतिर्वा १७ । सविता, अग्नि, राक्षसधर्मी, उपरव २२ । उपरव, सिंगोक्त २३ । उपरव २४ । सविता, अग्नि, चक्र औदुम्बर, फिर २६ । औदुम्बरी २७ । औदुम्बरी, छाक-पृथिवी, इन्द्र २८ । इन्द्र २९ । इन्द्र, विचेदेका ३० । विष्णव-अग्नि ३१ । विष्णव अग्नि, आहवनीय, बहिष्कृत्यमान देश, काष्काल, सामिन्, औदुम्बरी ३२ । ब्रह्मासन, राक्षसद्वार, कञ्जिन्न, सट्, द्रम, मूर्ध ३३ । अतिवर्ग्य, विष्णु ३४ । विचेदेका सोम, अप्तु ३५ । सविता, सोम, सिंगोक्त ३९ । वनस्पति, कुसुमस्य, परसु ४२ । वनस्पति ४३ ।

छन्द— स्वराट् बाह्यी वृहती १, ३४ । आषीं नवमी आषीं त्रिष्टुप् २ । आषीं पंक्ति ३ । आषीं त्रिष्टुप् ४ । आषीं अज्यम्, पुरिक् आषीं पंक्ति ५ । विराट् अह्यी पंक्ति ६ । आषीं वृहती, आषीं जगती ७ । विराट् आषीं वृहती, निवृत् आषीं वृहती ८ । पुरिक् आषीं नवमी, पुरिक् बाह्यी वृहती, निवृत् अह्यी जगती, काजुषी अनुष्टुप् ९ । बाह्यी अज्यम् १० । निवृत् अह्यी त्रिष्टुप् ११, ४० । पुरिक् अह्यी पंक्ति १२ । पुरिक् आषीं अनुष्टुप् १३, २४, ३८, ४१ । स्वराट् आषीं जगती १४ । पुरिक् आषीं नवमी १५ । स्वराट् आषीं त्रिष्टुप् १६, १८ । स्वराट् बाह्यी त्रिष्टुप् १७, ३२ । निवृत् आषीं जगती १९ । विराट् आषीं त्रिष्टुप् २० । पुरिक् आषीं पंक्ति २१ । साम्नी पंक्ति, पुरिक् आषीं वृहती २२ । काजुषी वृहती, पुरिक् अष्ट, स्वराट् अह्यी अज्यम् २३ । बाह्यी वृहती, आषीं पंक्ति २४ । निवृत् आषीं पंक्ति, निवृत् आषीं त्रिष्टुप् २६ । अह्यी जगती २७ । आषीं जगती २८ । अनुष्टुप् २९ । आषीं अज्यम् ३० । विराट् आषीं अनुष्टुप् ३१ । अह्यी पंक्ति ३३ । अतिवर्ग्य ३५ । निवृत् आषीं त्रिष्टुप् ३६ । पुरिक् आषीं त्रिष्टुप् ३७ । साम्नी वृहती, निवृत् आषीं पंक्ति ३९ । पुरिक् अज्यम् ४२ । बाह्यी त्रिष्टुप् ४३ ।

## ॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥



## ॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

२०९. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेष्टिनोर्बाहुभ्यां पूष्णे हस्ताभ्याम् । आ ददे नार्यसी दमह  
ॐ रक्षसां ग्रीवाऽअपि कुन्तामि । यवोसि क्वयास्मद् द्वेषो यवयारातीर्दिवे त्वान्तरिक्षाय  
त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्वन्तांल्लोकाः पितृवदनः पितृवदनमसि ॥१॥

एक कर्मकाण्ड अर्थात् इस कर्म का अर्थ करने, पुनः का किन्ना करने, कुन लब्धित करने के रूप में प्रयुक्त होती है—

हे यज्ञसाधनो ! आप नेतृत्व की उभयता से सम्पन्न हैं । हम आपके सविता द्वारा प्रेरित अश्विनी कुमारों (आरोग्य दाता) की बाहों एवं पूम् (घोषकर्म) के हाथों से ग्रहण करते हैं । हम आपके माध्यम से राक्षसी शक्तियों की ग्रीवा (पर्वस्वत) पर प्रहार करते हैं । अथ हमारे शत्रुओं को दूर इटारें । हम बुलोक-अंतरिक्ष एवं पृथ्वी के हित की दृष्टि से आपको शुद्ध करते हैं । अथ पिता की तरह कस्तक एवं प्रजाओं के आश्रय हैं ॥१॥

२१०. अग्नेणीरसि स्वावेशऽ उन्नेतृणामेतस्य विनादधि त्वा स्वास्यसि देवस्त्वा सविता  
मध्वान्तु सुपिण्यस्नाध्यस्त्वीषधीभ्यः । क्षामप्रेणास्पृक्षऽ आन्तरिक्षं मध्वेनाप्राः  
पृथिवीमुपरेणाद् ॐ हीः ॥२॥

(हे यज्ञसाधनो ! यज्ञों में) प्रथम प्रयुक्त किये जाने वाले आप अथवा महान् दायित्व समझकर समग्र का नेतृत्व करने वाले सभी लोगो को सम्मार्ग पर चलाने । यज्ञ के अभिषेकत सविता देवता आपको मधुर एवं श्रेष्ठ फलदायक ओषधीय वृक्षों से विभूषित करें । आप अपनी सदायज्ञता से बुलोक का स्पर्श करें, तद्विचरों से अन्तरिक्ष को भर दें तथा सत्कर्मों से पृथ्वी को शुद्ध बनाएँ ॥२॥

२११. या ते क्षामान्युष्मसि गमध्वै यत्र गावो धूरिशृङ्गाऽ अयास्तः । अत्राह तदुत्सायस्य  
विष्णोः परमं पदमव धारि धूरि । बह्वर्चनि त्वा क्षप्रवनि रायस्योषवनि पर्युह्यमि । बह्व  
दृष्टः ह क्षत्रं दृष्टं हायुर्दृष्टं प्रजां दृष्टं ह ॥३॥

(हे यज्ञीय संसाधनो ! ) जो सूर्य-उष्मिणों से प्रकाशित है, सर्वव्यापक सम्माननीय भगवान् विष्णु का जो परम भाग है, हम आपको ऐसे उत्तम स्थान में पहुँचाने की इच्छा करते हैं । हम आपको ज्ञातृ, धर्मिय एवं वैश्य आदि वर्णों में यज्ञ-योग्य उचित रीति से कल-वैश्व का वितरण करने वाला मानते हैं । अतः आप ब्रह्मविष्णुओं को सद्गान की सम्पदा, धर्मियों को पौरुष-पराक्रम एवं वैश्वों को वन-ऐश्वर्य प्रदान करें, प्रजा की आयु और उसकी संख्या में वृद्धि करें ॥३॥

२१२. विष्णोः कर्माणि पश्यन्त यतो ज्ञानानि पश्यन्ते । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥४॥

हे यज्ञको ! सर्वव्यापक भगवान् विष्णु के सृष्टि संकलन सम्बन्धी कर्मों को (प्रजनन, पोषण एवं परिवर्तन की प्रक्रिया को) ध्यान से देखें । इसमें अनेकानेक निष्कान्-अनुशासनों का दर्शन किया जा सकता है । अस्मत् के योग्य मित्र उस परमात्म के अनुकूल बनकर रहें (अर्थात् ईश्वरीय अनुशासनों का चालन करें) ॥४॥

२१३. तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरवः । दिवीक चक्षुराततम् ॥५॥

ज्ञानैव विद्ययापी भगवान् विष्णु के सर्वोच्च पद को, बुलोक में परिष्कार दिव्यप्रकाश की पॉलि देखते हैं (अर्थात् उस परमात्म को स्थापकता का अनुभव करते हैं) ॥५॥

२१४. धरिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां परीमं यजमानं ॐ- रायो मनुष्याणाम् । दिक् सूनुरस्येव ते पृथिव्याल्लोकऽ आरण्यस्ते वशः ॥६॥

यहाँ वंश से स्वर्णिम पूर में कुल से कभी रखी जाँचने का विधान है -

हे सर्वव्यापी (यज्ञदेव ! ) ज्ञानोजनों का समूह आपको सूर्य के दिव्य प्रकाश की प्राप्ति, कण-कण में सम्पन्न हुआ अनुभव करता है । समस्त पृथ्वी, वन एवं पशुओं में आपका ही विस्तार है ; आप याजकों को (सत्कर्मरत श्रेष्ठ मानवों को) चारों ओर से परापर वैषम्य प्रदान करें ॥६॥

२१५. उपावीरस्युष देवान्दैवीर्विशः प्रागुरुशिजो वहितमान् । देव त्वष्टृर्वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम् ॥७॥

हे त्वष्टादेव ! आप समीप में आए हुआ की रक्षा करने वाले हैं । श्रेष्ठ गुणों से युक्त प्रजा, दिव्य गुणसम्पन्न, तेजस्वी, समर्थ विद्वानों को प्राप्त हों । आप साधनों का स्तुत्ययोग करें । ये हव्य पदार्थ आपको सन्तुष्ट करें ॥७॥

२१६. रेवती रमध्वं बृहस्पते वारवा वसुनि । ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन प्रतिमुञ्चामि घर्षा मानुषः ॥८॥

विद्वान् पुरुषों (यज्ञाचार्यों) द्वारा श्रेष्ठ यज्ञ में श्रेष्ठ हवि (दुग्ध एवं घृत के रूप में) प्रदान करने के लिए जिन पशुओं को बाँधा गया था, वे दुष्कार पशु मुक्त किये जाते हैं । वे दुग्धार्द्र ऐश्वर्य प्रदान करते हुए आनन्द से रहें । (इस यज्ञीय प्रक्रिया से) मनुष्य समर्थ बने ॥८॥

२१७. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेक्षिनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं मिथुनज्मि । अन्नस्यस्वाँवधीभ्योनु त्वा याता मन्यस्तापनु पितानु याता सगर्भ्योनु सखा सयूध्यः । अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥९॥

(हे यज्ञ के साधनो ! ) सवितादेव की क्रेष्ण से अक्षिनीकुमारों और पूषा के हाथों से हम आपको ग्रहण करते हैं, ओषधियों एवं जल की सहायता से मुक्त करते हैं तथा सोम और अग्नि की वृष्टि के लिए यज्ञ जैसे श्रेष्ठ कार्य में नियोजित करते हैं । इस हेतु आपके माता-पिता, भाई और मित्र अनुमति प्रदान करें ॥९॥

२१८. अषां पेशरस्थापो देवीः स्वदन्तु स्वातं चित्सदेवहविः । सन्ते प्राणो यातेन गच्छतां ॐ समङ्गानि यजत्रैः सं यज्ञपतिराशिषा ॥१०॥

हे पशु (यज्ञ से जुड़े जीव) ! आप जल की रक्षा करने वाले हैं । दिव्य गुणों वाले जल एवं हविष्वात्रों से सदैव युक्त रहें । देवताओं के आशीर्वाद से आपका जीवन पूर्णतया यज्ञकार्यों में नियोजित रहे । प्राण, शुद्ध वायु के साथ सज्ज रहें तथा आप यज्ञीय अनुशासनों के पालनकर्ता बनें ॥१०॥

२१९. घृतेनात्की पर्शुस्त्रायेथा ॐ रेवति यजमाने प्रियं वाऽ आ विश । उरोरन्तरिक्षात्सज्जुर्देवेन यातेनास्य हविषस्तमना यज सम्पस्य तन्वा भव । वषो वषीथसि यज्ञे यज्ञपतिं वाः स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥११॥

हे (यज्ञ साधनो) स्वरुतास ! आप घृतार्द्र पदार्थ देने वाले पशुओं (भैरवों) की रक्षा करें । अन्तरिक्ष से सबकी रक्षा करने वाले दिव्य प्राण की प्राप्ति, ऐश्वर्यशाली याजक के शरीर के लिए अनुकूल तथा प्रिय बनकर रहते हुए, उसकी रक्षा करें । (हे याजक ! ) सर्व सुख प्रदायक इस महान् यज्ञ में श्रेष्ठ हविष्वात्रों से आहुतियाँ प्रदान करें । देवों के सम्मान में समर्पण करते हुए यज्ञीय अनुशासनों के पालनकर्ता बनें ॥११॥

[\* स्वतः = यज्ञसाधन या पशु और स्वतः = याजक या पशु ]

२२०. माहिर्भूर्मा पृदाकुर्नमस्तऽ आतानानर्वा प्रेहि । धृतस्य कुल्याऽ उप ऋतस्य  
पथ्याऽ अनु ॥१२॥

सत्कर्मों से सुख का विस्तार करने करते हैं यज्ञ के साधनभूत । (स्वक आदि उपकरण) सर्प आदि हिसक प्राणियों की भीति आप क्रोधी और आत्मासक्त न हों । हे यज्ञक । निर्वाचरूप से प्रवाहित जलधारा की भीति आप शाश्वत सत्य के मार्ग पर चले, हम आकाश सम्पन्न करते हैं ॥१२॥

२२१. देवीरायः शुद्धा वोढ्वन् सुपरिविष्टा देवेषु सुपरिविष्टा ययं परितेष्टारो भूयास्म ॥

जल जैसे सरस दिव्य गुण से सम्पन्न स्थानविक रूप से शुद्ध है देवियों आप देवताओं की तृप्ति के लिए, उत्तम पात्र में स्थित हविष्यान्न को ग्रहण करें । देवताओं को आहुतियाँ देते हुए हम भी इस देव-कार्य में संलग्न होते हैं ॥१३॥

२२२. वाचं ते शुन्वामि प्राणं ते शुन्वामि जक्षुस्ते शुन्वामि ओत्रं ते शुन्वामि नाभिं ते  
शुन्वामि येदं ते शुन्वामि पायुं ते शुन्वामि चरित्रांस्ते शुन्वामि ॥१४॥

हे वाचक । हम आपके प्राण, वाणी, दृष्टि, ओत्र, नाभि, जननेन्द्रिय, मुद्रा आदि को सुद्ध करते हैं । इस प्रकार आपके बरित्र का शोधन कर उसे यज्ञमूलक बनाते हैं ॥१४॥

२२३. घनस्तऽ आप्यायतां वाक्तऽ आप्यायतां प्राणस्तऽ आप्यायतां जक्षुस्तऽ  
आप्यायतां ओत्रं तऽ आप्यायताम् । यस्ते क्रूरं यदास्थितं ततऽ आप्यायतां निष्प्रायतां  
ततो शुभ्यतु जगहोभ्यः । ओषधे प्रायस्व स्वाधिते यैनं हि हंसीः ॥१५॥

हे वाचक । आपके मन, वाणी और प्राण उत्कर्ष को प्राप्त करें । आपके नेत्र एवं कर्ण कल्याणकारी शक्तियों से संयुक्त रहें (यज्ञीय पशुओं के प्रति) आपकी क्रूरता शान्त हो तथा जो स्वभाव की स्थिरता है, बात दृढ़ता को प्राप्त हो । आपके समस्त आचरण सदैव सुखदायी हों । हे ओषधे । इनको रक्ष कर और इन्हें नष्ट होने से बचाएँ ॥

२२४. रक्षसां भागोसि निरस्तन् रक्षऽ इदमहं रक्षोभि तिष्ठामीदमहं रक्षोव बाध  
इदमहं रक्षोवमं तमो नयामि । धृतेन द्वावापृथिवी प्रोर्णुवाधा बायो मे  
स्तोकानामभिराज्यस्य वेतु स्वाहा स्वाहाकुले ऊर्ध्वनभसं मास्तं गच्छतम् ॥१६॥

हे परित्यक्त तुण ! तुम (दुष्टकर्मी) विनाशक तत्वों के सहपात्री हो । इसलिए तुम्हें (यज्ञ से) दूर करते हैं दुष्ट स्वभाव वाले तुम्हें तिरस्कृत करते हुए प्रतिबन्धित कर फटन-गर्त में पहुँचाते हैं । व्यवहार के सूक्ष्मतम पक्ष को जानने वाले, हे वाचक । आपके द्वारा दिये जाने वाले अर्घ्य के जल से पृथ्वी और ध्रुलोक परिपूर्ण हों । आपके द्वारा समर्पित धृत आदि हविष्यान्न अग्नि को प्राप्त हो तथा वायुभूत होकर आकाश में भर जाएँ ॥१६॥

२२५. इदमायः प्र वहेतावद्यं च मलं च यत् । यज्यापिदुद्रोहानृतं यज्य शेषे अग्नीरुणम् ।  
आपो मा तस्मादेनसः पयमानः मुञ्चतु ॥१७॥

हे जलदेवता । आप जिस प्रकार शरीरस्थ मलों को दूर करते हैं, उसी प्रकार वाचक के, जो भी ईर्ष्या, द्वेष, असत्यभाव, मिथ्यादोषारोपण आदि निन्दनीय कर्म हैं, (आप) उन सब दोषों को दूर करें । जल एवं वायु अपने प्रवह से पवित्र करते, हमें यज्ञीय प्रयोजन के अनुरूप बनाएँ ॥१७॥

२२६. सन्ते मनो मनसा सं प्राणः प्राणेन वच्छताम् । रेहस्यमिष्ट्वा शीणात्वापस्त्वा  
समरिणन्वातस्य त्वा घ्राज्यै पूजो रथं ह्य ऊष्मणो व्यधिक्षत् प्रयुतं द्वेष्टः ॥१८॥

हे याज्ञिक ! आपके मन विराट् मनस्वत्त्व तथा प्राण दिव्यप्राण से युक्त हों । (हे अन्नरिति) आप आस्यादन योग्य हैं । आपको अग्नि प्रीयुक्त करें । आप जल से युक्त रहें; वायु की गति एवं सूर्य की प्रचण्ड ऊर्जा से परिपक्वता प्राप्त हो । इस प्रकार तुम्हारे निष्कम रह कर दिए जाएँ ॥१८॥

२२७. घृतं घृतपावान् पिबत वसं वसापावान् पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा । दिशः प्रदिशऽआदिशो विदिशऽवदिशो दिग्भ्यः स्वाहा ॥१९॥

घृत एवं वसा का सेवन करने वाले पुरुषों, आप इसका उपभोग करें । हे वस ! (वन-कन्य-साधनादि) आप अन्तरिक्ष के लिए हवि के रूप में हों (स्तेर्यहित में) हम आहुति देते हैं । (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण) सभी दिशाओं (आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ईशान्य) सभी ठण्डिशाओं, जल-पीछे, ऊपर-नीचे एवं तनु को दिशा में अर्थात् सभी दिशाओं को हम आहुति प्रदान करते हैं ॥१९॥

२२८. ऐन्द्र प्राणो अङ्गे अङ्गे निदीष्मदैन्द्र उदानो अङ्गे अङ्गे निधीतः । देव त्वहर्भूरि ते सऽसमेतु सलक्ष्मा यद्विषुरूपं भवाति । देवता यन्तम्यसे सखायोनु त्वा माता पितरो मदन्तु ॥२०॥

हे त्वाहादेवता ! प्राण और उदान के रूप में इन्द्र की स्तुति, अन्न-जलमयों की सुरक्षा करती है । आप समस्त विषमताओं को दूर करें (यज्ञ के लिए उपयुक्त) स्वरूपप्रदान करें । देवता का अनुगमन करने वाले आपके मित्र, सहयोगी एवं माता-पिता आपके इस श्रेष्ठ कार्य का अनुमोदन करें, प्रतिकूल न हों ॥२०॥

२२९. समुद्रं गच्छ स्वाहान्तरिक्षं गच्छ स्वाहा देवऽसि सवितारं गच्छ स्वाहा मित्रारुणौ गच्छ स्वाहाहोरात्रे गच्छ स्वाहा छन्दाऽसि गच्छ स्वाहा सावापृथिवी गच्छ स्वाहा यज्ञं गच्छ स्वाहा सोमं गच्छ स्वाहा दिव्यं नभो गच्छ स्वाहाग्निं वैश्वानरं गच्छ स्वाहा मनो मे हार्दि यच्छ दिवं ते भूपो गच्छतु स्वर्ग्योतिः पृथिवीं भस्मनापूज स्वाहा ॥२१॥

(याज्ञिकों की साधनाओं से परिपुष्ट और समर्पित) हे त्वहि ! आप स्वस्त्य, सुख और कारगरूप में सिन्धु पर्यन्त पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं घुलोक तक अपना विस्तार करें । (आप) इस जन्तु के उत्पन्नक सवितारदेवता, मित्र, वरुण, सोम, वैश्वानर अग्नि, दिन, रात्रि, छन्दी यज्ञरिति समस्त देवर्त्तक्यों को कृति प्रदान करें । अपने धृष्ट अर्थात् वायुभूत ऊर्जा से घुलोक को प्रकाश से अन्तरिक्ष को एवं जल से पृथ्वी को परिपूर्ण करें । हमारे अन्तःकरण को सत्कर्म के लिए दिव्य प्रेरणाएँ प्रदान करें ॥२१॥

२३०. माऽपो मौषधीर्हिऽसीर्षाम्ने वान्मो राजैस्ततो वरुण नो मुञ्च । यदाहुरग्न्याऽइति वरुणोति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च । सुमित्रिया नऽआपऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् हेष्टि यं य क्वं द्विष्टः ॥२२॥

यज्ञ के साधनभूत हे सत्ताके ! आप ओषधियों एवं जल को यज्ञस्थान सुरक्षित रहने दें, उन्हें नष्ट मत होने दें हे वरुणदेव । आपका प्रकण्ड हमारे लिए मित्र की भाँति सुखदायी हो । हम गौ आदि न मरने योग्य की हिंसा न करके पापमुक्त रहें । जिन दुराचरियों के प्रति हम सज्ज का कण रखते हैं या जो हमसे द्वेष करते हैं, उनके साथ आप (जल और ओषधियों) कटोरक का व्यवहार करें, अर्थात् उन्हें नष्ट करें ॥२२॥

२३१. हविष्मतीरिमाऽ आपोहविष्मार् अ विवासति । हविष्मान् देवो अच्यरो हविष्मार् अस्तु सूर्यः ॥२३॥

हे (वसतीवरी) जल ! आग निरन्तर श्रेष्ठ जल उस आदि उत्पन्न करते हुए यज्ञ करें । यज्ञ सदैव श्रेष्ठ हवियों से युक्त रहकर सदगुणों का विस्तार करने लगे हों । सूर्यदेव भी यवजन्म को पुण्यफल प्रदान करने के लिए हवि स्वीकार करें ॥२३॥

२३२. अग्नेर्वोषन्नगृहस्व सदसि सादयामीन्द्राम्योर्भागधेयी स्व मित्रावरुणयोर्भागधेयी स्व विश्वेषां देवानां भागधेयी स्व । अधूर्याऽथ सूर्ये चाभिर्वा सूर्यः सह । ता नो हिन्यन्त्वध्वरम् ॥२४॥

हे वसतीवरी = जल ! वो इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण आदि सब देवताओं तक उनका हवि भाग पहुँचाने वाली यज्ञाग्नि है, उस सुदृढ़ आश्रयस्थल अग्नि के पास हम आपको पहुँचाते हैं । सूर्य की किरणों द्वारा वाष्पीकृत जो जल, सूर्य के पास बहुत दिनों तक सुरक्षित रहता है, वह हमारे यज्ञ को सफल बनाए ॥२४॥

[= सोमयज्ञ में प्रयुक्त होने वाला, यही से तन्मय यज्ञ-धर्म का उत्पन्न हुआ था ]

२३३. इदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा । ऊर्ध्वमिममध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यच्छ ॥

(हे सोम ! ) मन, अन्तःकरण, सूर्य एवं चतुर्लोक की कृति के लिए आप इस यज्ञ को सफल बनाएँ (ऊँचा उठाएँ) और होताओं को देवताओं के दिव्य लोक तक पहुँचाएँ (अर्थात् उनके जीवन को देवत्व से पर दें) ॥२५॥

२३४. सोम राजन् विश्वास्त्वं प्रजाऽऽपावरोह विश्वास्त्वां प्रजाऽऽपावरोहन्तु । शृणोत्वग्निः समिधा हव्यं मे शृण्वन्वापो विश्वास्तु देवीः । श्रोता प्रावाणो विदुषो न यज्ञ ईः शृणोतु देवः सविता हव्यं मे स्वाहा ॥२६॥

हे सोम ! सभी यज्ञक आपके प्रति अनुकूल व्यवहार करें तथा आप पिता की चींति सभी पर अनुग्रह करे प्रज्वलित अग्नि, दिव्य जल, ज्ञानीजन एवं जगत् के उत्पन्नक सविता देवता हमारी स्तुतियों को ध्यान से सुने । इस निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥२६॥

२३५. देवीरापो अथा नपाद्यो वऽ ऊर्मिर्हविष्वऽ इन्द्रियावान् मदन्तामः । तं देवेभ्यो देवत्रा वत् शुक्रेभ्यो देवां भाग स्व स्वाहा ॥२७॥

हे दिव्य जल ! आप में जो लहर के समान उठाने वाले (न गिरने देने वाले), हवन करने योग्य, इन्द्रिय-शक्ति को बढ़ाने वाले तथा आनन्द बढ़ाने वाले प्रवाह हैं, उसे देवताओं, विद्वानों तथा प्राक्-पर्जन्य के रूप में वीर्य की रक्षा करने वालों के लिए समर्पित करें । इसमें आकाश भी एक भाग सुनिश्चित है ॥२७॥

२३६. कार्विरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्याऽ उन्नयामि । समापो अद्भिरग्नयः समोषधीभिरोषधीः ॥२८॥

(हे यज्ञार्थ प्रयुक्त जल ! ) समुद्र पर्यन्त भूमि की उर्वरता के लिए आप को ऊपर उठाते हैं । (सूर्य-रश्मियों द्वारा वाष्प में परिवर्तित जल ऊपर पहुँचता है) । प्राक्-पर्जन्य के सञ्चर करके हुए जल से ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं । इस कृषि-कर्म के रूप में लोक-हितार्थ निरन्तर यज्ञ को प्रशिक्षण चलती रहती है ॥२८॥

२३७. यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु र्वं जुनः । स यन्ता शृण्वतीरिषः स्वाहा ॥२९॥

हे अग्निदेव ! जिन याजकों के समीप आप हविष्यान्न ग्रहण करने पहुँचते हैं, आपकी ही प्रेरणा से यज्ञ करने वाले वे, धन-धान्यरूपसे वैभव प्राप्त करते हैं ॥२९॥

२३८. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेष्टिनोर्बाहुभ्यां पूजो हस्ताभ्याम् । आ ददे रावासि गभीरमिभमध्वरं कृधीन्द्राय सुभूतमम् । उतमेन पविनोर्जस्यन्तं मधुमन्तं पयस्वन्तं निशाभ्या स्थ देवश्रुतस्तर्पयत मा मनो मे ॥३०॥

हे यज्ञसाधनो ! हम यज्ञकर्मण आपको सूर्योदय काल में अश्विनीकुमारों एवं पूषा देवता के हाथों से ( यज्ञ के लिए ) ग्रहण करते हैं । आप इच्छाओं की पूर्ति करने वाले हैं । इन्द्रदेव की सन्तुष्टि के लिए इस विशाल यज्ञ को शक्ति-सामर्थ्य, मधुर रस एवं चोखे कटावों से परिपूर्ण करें । हव्य को पत्नी-प्रीति ग्रहण करने वाले आप हमें सन्तुष्ट करें ॥३०॥

२३९. मनो मे तर्पयत वाचं मे तर्पयत प्राणं मे तर्पयत चक्षुर्मे तर्पयत श्रोत्रं मे तर्पयतात्मानं मे तर्पयत प्रजां मे तर्पयत पशून्मे तर्पयत वनान्ये तर्पयत गणा मे मा वितुषन् ॥३१॥

यज्ञार्थ ग्रहण किये गये हे जलसमूह ! आप अपने दिव्य मूर्तियों से हमारे मन, वाणी एवं प्राणों को तृप्त करें । आप हमारे नेत्र, कर्ण एवं आत्मा को तृप्ति प्रदान करें, हमारी संतानों, सेवकों एवं पास्तु पशुओं को तृप्त करें हमारे सहयोगी आपके अभाव में कभी भी तृप्ति न हों ॥३१॥

२४०. इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रयतऽ इन्द्राय त्वादित्ययतऽ इन्द्राय त्वाभिमातिष्णे । इयेनाथ त्वा सोमभूतेभ्यस्ते त्वा रायस्योषदे ॥३२॥

हे सोम ! सूर्य के समान तेजस्वी, ऋतुओं को चौड़ा पहुँचते हुए उनका नाश करने वाले, सोमरस पीने के लिए बाज़ पक्षी की प्रीति झपटने वाले तथा ऐक्यपरिचालकों में अग्रगण्य इन्द्रदेव की तृप्ति के लिए आपको स्वीकार करते हैं ॥३२॥

२४१. यत्ते सोम दिवि ज्योतिर्यत्पृथिव्या यदुरावन्तरिक्षे । तेनास्मै यजमानाधोरु राये कृध्यधि दात्रे बोधः ॥३३॥

पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक तक फैले हुए हे दिव्य सोम ! आप लोकहित के लिए सत्कर्मरत यज्ञक की सहायता करें ॥३३॥

२४२. क्षात्रा स्य वृत्रनुरो राघोगूर्ताऽ अमृतस्य पत्नीः । ता देवीर्देवत्रेभं यज्ञं नयतोपहृताः सोमस्य पिबत ॥३४॥

हे सोम ( रूपी अमृत ) का पालन ( संरक्षण ) करने वाली देवशक्तियों ! आप कल्याणकारी हैं, वृत्ररूप विकारों का नाश करके सोम का चोखन करने वाली तथा धन प्रदायक हैं । आप इस यज्ञ का नेतृत्व करें तथा सोम रस का पान करें ॥३४॥

२४३. मा धेर्मा सं विक्त्वाऽ ऊर्जं धत्स्व विषणो वोह्वी सती वीडयेधामूर्जं दधाधाम् । पाप्मा हतो न सोमः ॥३५॥

हे सोम ! रस निकालते समय पत्कर की चोट से आप भयभीत एवं विचलित न हों । कन्दमा की प्रीति आनन्द प्रदान करने वाले, आकाश और पृथ्वी के सम्मान शक्ति-समर्थत्वान् आप सबके दोषों को दूर करें ॥३५॥

२४४. प्रागपागुदगधराकसर्वतस्या दिशऽ आ वावन्तु । अम्ब निष्पर समरीर्विदाम् ॥३६॥

हे सोम ! आप पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आदि सभी दिश्वत्ओं से अपने अंशों को प्राप्त करके यज्ञशाला में आएँ । हे माता ( धरित्री-अपने अंशों से ) सोम को पूर्णता प्रदान करें । इस यज्ञ को सभी भस्वी प्रीति जानें ॥३६॥



२४५. त्वमङ्ग प्रशस्तं सिधो देवः शविष्ठ मर्त्यम् । न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्दितेन्द्र ब्रवीमि  
ते कचः ॥३७॥

ऐश्वर्यशाली, महान् पराक्रमी, धनवान् हे इन्द्रदेव । आप अपने दिव्यगुणों से राजक की प्रशंसा करने वाले हैं । आपसे अधिक सुखदाता, कल्याणकारी कोई दूसरा नहीं है — ऐसा हम आपके (आधासन) घचन के आधार पर ही कह रहे हैं ॥३७॥

### — ऋषि, देवता, छन्द-विवरण —

ऋषि— अंगस्तप १-२ । दीर्घतमा ३ । मेघार्तिघ ४-२८ । मधुच्छन्दा २९-३६ । गीतम ३७

देवता— सविता १ ३१ (उष्णिक् छन्दानुसार सविता देवता) । शकल्य यूप चचास २ । यूप ३ । विष्णु ४-५ । यूप, स्वरु ६ । वृण, लिगोक्त ७ । लिगोक्त, पशु ८ । सविता, अग्नि-सोम, पशु ९ । पशु, आपः (जल) १० । स्वरु-शश, वाक् वृण, देववज्र ११ । रम्भ, वज्र १२ । आपः (जल), आसीर्वाद १३ । पशु १४ । पशु, सुख, वृण, अंसि १५ । राक्षस, ज्ञाना-पृथ्वी, वायु, अग्नि, ज्ञाना-अपव्य १६ । आपः (जल), पचमान १७ । हृदय, वसा, द्वेप १८ । विष्णुदेवा, दिसा १९ । ज्ञान, त्वष्टा २० । सम्भ्र, आदि लिगोक्त, स्वरु २१ । हृदय-शूल, वज्र, आपः २२ । अप् आदि-लिगोक्त २३ । आपः (जल) २४, २७ । सोम २५, ३२-३३, ३६ । सोम, अग्नि आदि लिगोक्त २६ । अज्य, आपः (जल) २८ । अग्नि २९ । सविता, ज्ञान, आपः (जल) ३० । निमाम्या ३४ । सोम, ज्ञाना-पृथ्वी ३५ । इन्द्र ३७ ।

छन्द — निचृत् पंक्ति, आसुती उष्णिक्, भुरिक् आषी उष्णिक् १ । निचृत् गायत्री, स्वरु पंक्ति २ । आषी उष्णिक्, साम्नी त्रिष्टुप्, स्वरु प्राजापत्य जगती ३ । निचृत् आषी गायत्री ४ । आषी गायत्री ५ । आषी उष्णिक्, भुरिक् साम्नी बृहती ६ । निचृत् आषी बृहती ७ । प्राजापत्या अनुष्टुप्, भुरिक् प्राजापत्या बृहती ८ । प्राजापत्या बृहती, निचृत् अतिजगती ९ । प्राजापत्या बृहती, भुरिक् आषी गायत्री १० । स्वरु प्राजापत्या बृहती, भुरिक् आषी उष्णिक्, निचृत् गायत्री ११ । भुरिक् प्राजापत्या अनुष्टुप्, साम्नी उष्णिक् १२ । निचृत् आषी अनुष्टुप् १३, २३, २८ । भुरिक् आषी जगती १४ । स्वरु भृति १५ । निचृत् आषी त्रिष्टुप् २७ । इदो ब्राह्मी उष्णिक् १६ । निचृत् ब्राह्मी अनुष्टुप् १७ । प्राजापत्या अनुष्टुप्, आषी पंक्ति, दैवो पंक्ति १८ । ब्राह्मी अनुष्टुप् १९ । ब्राह्मी त्रिष्टुप् २० । याचुषी उष्णिक्, स्वरु उत्कृष्टि २१ । ब्राह्मी स्वरु उष्णिक्, निचृत् अनुष्टुप् २२ । आषी त्रिष्टुप्, त्रिपाद गायत्री २४ । आषी विराट् अनुष्टुप् २५ । भुरिक् गायत्री, आषी त्रिष्टुप् २६ । भुरिक् आषी गायत्री २९ । स्वरु आषी पंक्ति, भुरिक् आषी पंक्ति ३० । विराट् ब्राह्मी-जगती ३१ । पंचपदा न्योतिष्मती जगती ३२ । भुरिक् आषी बृहती ३३ । स्वरु आषी पञ्चबृहती ३४ । भुरिक् आषी अनुष्टुप् ३५, ३७ । पुरोष्णिक् ३६ ।

॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥

## ॥अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

२४६. वाचस्पतये पवस्व वृष्णोऽथ ऽं शुभ्यां गमस्तिपूतः । देवो देवेभ्यः पवस्व  
येषां भागोसि ॥१॥

सभी प्रकार के सुखों को प्रदान करने वाले, उत्तम गुणों से सम्पन्न हे दिव्य सोम !सूर्य रश्मियों के माध्यम से वाचस्पति आदि देवों को तृप्ति के लिए आप पवित्रता को प्राप्त हों । आप विन देवों के अंश हैं, उन्हें सन्तुष्ट करें ।

२४७. मधुमतीर्न ऽइषस्कृषि यत्ते सोमादाभ्यं नाम आणुवि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा  
स्वाहोर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥२॥

कभी नष्ट न होने वाले हे दिव्य सोम !अपने हमारे आहार को मधुर रस आदि तत्वों से युक्त कर दें । आपके जाग्रत स्वरूप के लिए हम यह आहुति समर्पित करते हैं । यह आहुति अनन्त अन्तरिक्ष में विस्तार प्राप्त करे ॥२॥

२४८. स्वाङ्कृतोसि विश्वेभ्य ऽ इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्वाहु स्वाहा त्वा  
सुधव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यो देवाऽं शो यस्मै त्वेडे तत्सत्यमुपरिष्णुता भङ्गेन  
हतोऽसौ फट् प्राणाय त्वा ध्यानाय त्वा ॥३॥

हे सुधव (श्रेष्ठ जन्म वाले) ! पृथ्वी एवं सुलोक में रहने वाले, सभी प्राणियों और इन्द्रियों के कल्याण के लिए आप स्वप्रकाशित हुए हैं । पवित्र मन वाले हे उष्णतु (एक पात्र) । आपको सूर्य देवता के लिए एवं किरणों के समान प्रकाशित देवमानवों की तृप्ति के लिए नियुक्त किया जा रहा है । हे तेजस्वी देव ! आप मर्यादा का उल्लंघन करने वाले दुराचारियों का शीघ्र नश्ट करें । अपने सत्यचरण से ही आप वन्दनीय हैं । प्राण और ध्यान द्वारा शरीर संचालन की तरह यज्ञ के लिए आपको नियुक्त किया जा रहा है ॥३॥

२४९. उपयामगृहीतोस्यन्तर्यच्छमयवन् पाहि सोमम् । ठरुथ्य राय ऽएवो यजस्व ॥४॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! यज्ञ के लिए नियमनुसार ग्रहण किये गये इस कलशमय सोमरस को आप स्वीकार करें और उपयाम (अनामह) पात्र में स्वागृहीत सोम की रक्षा करें । सन्तुष्टों से रक्षा करते हुए याजकों को अपार धन-वैभव प्रदान करें ॥४॥

२५०. अन्तस्ते द्यावापृथिवी दद्याम्यन्तर्दद्याम्युर्वन्तरिक्षम् । सजूदेविभिरवतैः परैश्चान्तर्यामि  
मधवन् मादयस्व ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! पृथ्वी, सुलोक और अनन्त अन्तरिक्ष में आपको ही विस्तार है । आप अपने चरस (स्वर्ग) में रहने वाले देवताओं एवं दूर रहने वाले राजकों को समस्त रूप से आनन्द प्रदान करें ॥५॥

२५१. स्वाङ्कृतोसि विश्वेभ्य ऽ इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्वाहु स्वाहा त्वा  
सुधव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्य ऽउदानाय त्वा ॥६॥

हे सुधव (श्रेष्ठ जन्म वाले) ! पृथ्वी एवं सुलोक में रहने वाले, सभी प्राणियों और इन्द्रियों के कल्याण के लिए आप स्वप्रकाशित हुए हैं । पवित्र मन वाले हे उष्णतु (पात्र) । आपको सूर्य देवता के लिए एवं किरणों के समान प्रकाशित देवमानवों की तृप्ति के लिए नियुक्त किया जा रहा है । (हे अन्तर्यामि नमः) उदान देवता द्वारा शरीर संचालन की तरह यज्ञ के लिए आपको नियुक्त किया जा रहा है ॥६॥

२५२. आ वायो भूय शुचिषा ऽव्य नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार । उपो ते अन्यो मल्लमयामि  
यस्य देव दधिषे पूर्वपेयं वायसे त्वा ॥१७॥

पवित्रता का विस्तार करने वाले हे वायुदेव ! आप अनन्त गुणों के आश्रय हैं । हमारे जीवन को सद्गुणों से विभूषित करें । आपका तृप्तिदायक श्रेष्ठ आहार 'सोमरस' आपको समर्पित करते हैं, जिसका आपने पहले भी पान किया है । हे सोम ! वायुदेवता के लिए आपको ग्रहण करते हैं ॥१७॥

२५३. इन्द्रवायु इमे सुता व्य प्रयोभिरानतम् । इन्द्रो वामुशान्ति हि । उपयामगृहीतोसि  
वायव ऽइन्द्रवायुभ्यां त्वैष ते योनिः सजोषोभ्यां त्वा ॥१८॥

हे इन्द्रदेव और वायुदेव ! तृप्तिदायक श्रेष्ठ पेय सोम, आप दोनों के लिए समर्पित है इसे प्राप्त करें । (हे सोम ! वायुदेव और इन्द्रदेव के लिए आप निर्विघ्नपूर्वक तैयार किये गये हैं ।) उन्हीं की प्रसन्नता के लिए ही हम आपको ग्रहण करते हैं ॥१८॥

२५४. अयं वा मित्रावरुणा सुतः सोम ऽ ऋतावृधा । ममेदिह भुतश्च हवम् ।  
उपयामगृहीतोऽसि मित्रावरुणाभ्यां त्वा ॥१९॥

सत्य का विस्तार करने वाले हे मित्र और वरुणदेव ! आप दोनों की तृप्ति के लिए सोमरस प्रस्तुत है यज्ञशाला में पचारे, हम आपका आकलन करते हैं । हे सोम ! उषवास पात्र में इन्द्र और वरुणदेव के लिए आपको नियमानुसार तैयार किया गया है, उन्हीं के निमित्त आपको समर्पित करते हैं ॥१९॥

२५५. राया ययश्च ससवाश्च सो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः । तां धेनुं मित्रावरुणा  
धुवं नो विश्वाहा धनयनपस्फुरनीयेष ते योनिर्ऋतायुभ्यां त्वा ॥२०॥

हे मित्र और वरुणदेव ! धनयन न करने वाली श्रेष्ठ गौ इमे (गावों को) प्रदान करें । जिसके होने से सम्पत्तिवान् होकर, हम उसी प्रकार आनन्द प्राप्त करें जिस प्रकार गौएँ अन्नहार फल या देवता हवि पाकर प्रसन्न होती हैं । सत्य एवं यज्ञ की वृद्धि के लिए (आप दोनों) यज्ञशाला में सुनिश्चित आसन पर विराजें ॥२०॥

२५६. या वा कशा मधुमत्पशिनः सूनतावती । तथा यज्ञं मिमिक्षतम् ।  
उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वा ॥२१॥

हे अश्विनीकुमारों ! सत्य एवं मधुरता से युक्त अपनी उत्कृष्ट कर्मा से हमारे इस यज्ञ को अभिविंचित करें हे उपांशु ! मधुरता के लिए विशिष्ट अश्विनीकुमारों के निमित्त आपको नियमानुसार ग्रहण किया गया है । आप यज्ञशाला में अपने सुनिश्चित आसन पर बैठें ॥२१॥

२५७. तं प्रत्यया पूर्वया विश्ववेमया ज्येष्ठतासि बर्हिषदश्च स्वर्धिदम् । प्रतीधीनं वृजनं  
दोहसे धुनिमाशुं जयन्तमनु वासु र्वर्षसे । उपयामगृहीतोसि शण्डाय त्वैष ते योनिर्वीरतां  
पाण्डपमृष्टः शण्डो देवास्त्वा शुकपाः प्रणयन्त्वनामृष्टासि ॥२२॥

शेषक तत्वों से युक्त, तृप्तिदायक सोमरस को, पुनः पुनः चोकर, यज्ञशाला में सर्वोच्च आसन पर विराजमान होने वाले, हे इन्द्रदेव ! आप मनुष्यों को धनयोज करने वाले, प्राचीन ऋषियों की भाँति याज्ञिकों की वांछित वैभवं के रूप में यज्ञ का फल प्रदान करने वाले हैं, इस आपको वन्दन करते हैं । हे उपांशु ग्रह ! आप नियमानुसार देवताओं के निमित्त ग्रहण किये गये हैं । आप अपने सुनिश्चित आसन पर बैठें । सोमरस पीने वाले देवता आपको प्राप्त कर, कर्माओं की शक्ति-समर्पण बढ़ाएँ ॥२२॥

२५८. सुवीरो वीरान् प्रजनयन् परीह्यधि रायस्योषेण यजमानम् । सञ्जग्मानो दिवा पृथिव्या शुक्रः शुक्रशोचिषा निरस्तः शक्रः शुक्रस्याधिष्ठानमसि ॥१३॥

सूर्य के समान अपनी तेजस्विता से पृथ्वी और सुलेक को प्रकाशित करने वाले हे ग्रह । आप वाजकों में पराक्रम की वृद्धि करते हुए, उन्हें अपार वैभव प्रदान करें । आप दुष्टता को दूर करने वाले तथा कल्याणकारी पराक्रम को आश्रय देकर बढ़ाने वाले हैं ॥१३॥

२५९. अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्योषस्य ददितारः स्याम । सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः ॥१४॥

अनन्त शक्ति सम्पन्न एवं अक्षय ऐश्वर्यकम् हे सोमदेव ! आपके अनुग्रह से हम यज्ञकर्म सदैव देवताओं के निमित्त हवि देने वाले हों, अर्थात् सत्कर्मरत रहें । विश्वमानव द्वारा वरण करने योग्य यह पहली सर्वोत्कृष्ट संस्कृति है । संस्कारित सोमदेव, वरुण, मित्र तथा अग्नि देवों में प्रथमी हैं ॥१४॥

२६०. स प्रथमो बृहस्पतिश्छिकित्वांस्तस्या ऽइन्द्राय सुतमा जुहोत स्वाहा । तुम्यन्तु होत्रा मन्थो याः स्विष्टा याः सुग्रीताः सुहुता यत्स्वाहाया इम्यीत् ॥१५॥

सर्वश्रेष्ठ विद्वान्, मेधावी इन्द्रदेव के निमित्त सोमरस समर्पित करें । होतागम्य उन्हें मधुर हविष्मन्ना देकर सन्तुष्ट करें । जो बांछित आहार से (सोमरस पीकर) तृप्त होने वाले देवता हैं, वे यज्ञाग्नि के पास पहुँचें ॥१५॥

२६१. अथ वेनश्चोदयत्पुंश्चिगर्घा ज्योतिर्जरायु रजसो विमाने । इममपार्थः सङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति । उपयामगृहीतोसि मर्काय स्वा ॥१६॥

परम तेजस्वी देव, अन्तरिक्ष से उस को जेरित कर वर्षा के रूप में उपलब्ध कराते हैं । जलरूप में प्राप्त अनुदान को, पुत्र जन्म की भाँति सुखद जानकर विद्वज्जन विभिन्न स्तोत्रों से सूर्यदेवकी वन्दना करते हैं । हे सोमदेव 'मर्क' नामक असुर (जक्रपुत्र) के निमित्त (विनष्ट करने के लिए) आपको नियमानुसार ग्रहण किया गया है ॥१६॥

[\* यहाँ देवताओं के पुरोहित के रूप में 'वृक्षर्षि' का नाम प्रसिद्ध है, यही असुरों के पुरोहित के रूप में 'मर्क' के नाम 'मर्क' का नाम भी प्रसिद्ध है । (तै० सं० ६.४.१०.१) ]

२६२. मनो न येषु हवनेषु तिग्मे विष्टः शक्या वनुधो द्रवन्ता । आ यः शर्याभिस्तुविनुम्णो ऽ अस्याश्रीणीतादिशं गमस्तावेव ते योनिः प्रजः पाहापमृष्टो मर्को देवास्त्वा मन्थिषाः प्रणयन्त्वनापृष्टासि ॥१७॥

सदैव सत्कर्म करने वाले ज्ञानीजन जिन सोमकाण्डों में मनोयोगपूर्वक पाव लेते हैं, उनमें मिलने वाले सोमरस को पौष्टिक आहार की भाँति ग्रहण करते हैं । हे मन्थिग्रह ! सत्रुओं का मर्दन करते हुए संतान सहित वाजकों की सुरक्षा का दायित्व वहन करें । आप निर्धन होकर देवताओं को प्राप्त करें ॥१७॥

[\* यहाँ वे मन्थि के अर्थ में मन्थि का प्रयोग हुआ है (अग्नेय १/२८/४) ]

२६३. सुप्रजः प्रजः प्रजनयन् परीह्यधि रायस्योषेण यजमानम् । सञ्जग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्को मन्थिनोधिष्ठानमसि ॥१८॥

हे मन्थिग्रह ! श्रेष्ठ सन्तति वाले आप वाजकों को महान् ऐश्वर्य प्रदान करते हुए सत्कर्म में नियोजित करें । आप सूर्य और पृथ्वी की भाँति, विचररहित शक्यों के जीवन को सद्गुणों से प्रकाशित करें । महान् दुःखदायी-असुर आपकी तेजस्विता के प्रभाव से पलायन करें ॥१८॥



२६९. मूर्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतऽ आ जातमग्निम् । कविंश्च सम्राज-  
मतिथिं जनानामासन्नापात्रं जनवन्त देवः ॥२४॥

आकाश के मूर्दां भाग में प्रकाशित, तेजस्वी मूर्ध की भाँति पृथ्वी पर प्रतिष्ठित-शान्त, विश्व के आश्रय, विद्यालङ्कार, मूर्धन्व, तेजस्वी, श्रेष्ठ गुणों से प्रकाशित, सम्पन्ननोब अतिथिरूप वज्राग्नि को याजकों ने अरणियों द्वारा प्रकट किया ॥२४॥

२७०. उपयामगृहीतोसि ध्रुवोसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमोऽध्वुतान्नामध्वुत- क्षितमऽएव  
ते योनिर्वैश्वानराय त्वा । ध्रुवं ध्रुवेण मनसा वाक्च सोममवनयामि । अथा नऽ इन्द्र  
इष्टिशोसपत्नः सधनसस्करत् ॥२५॥

नियमपूर्वक ग्रहण किये गये हे सोमदेव ! अपने स्थान से कभी विचलित न होने वाले, स्थिर रहने वालों में अग्रगण्य, आप स्थिर निवास वाले 'ध्रुव' नाम से निरुपगत हैं । स्थिर चित्त वाले हम याजक, आपको कल्याणकारी देवताओं की सन्तुष्टि के लिए, यज्ञस्थल में स्थापित करते हैं । इन्द्रदेव तनुओं का विनाश करते हुए हमारी सन्तानों को सद्बुद्धि प्रदान करें ॥२५॥

२७१. यस्ते इन्द्रः स्कन्दति यस्तेऽअर्धं शुर्वावच्युतो विषगायोरुपस्थात् । अध्वर्योर्वा परि  
वाक् पवित्रात् ते जुहोमि मनसा वषट्कृतं स्वाहा देवानामुत्क्रमणमसि ॥२६॥

देवों को सर्वोच्च पद प्रदान करने वाले हे सोमदेव ! आपके रस का जो अंश पत्थरों द्वारा कुचलते, निचोड़ते, छानते एवं पात्र में डालते समय पृथ्वी पर गिर जाता है का ओ अव्यय के पास लेब रहता है, उस सबको संकल्प शक्ति द्वारा एकत्रित कर अग्नि को समर्पित करते हैं, आप देवसत्त्वों को ऊर्ध्वगति देने वाले के समान हैं २६

२७२. प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वोदानाय मे वर्चोदा  
वर्चसे पवस्व वाचे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व कतूदक्षाभ्या मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व श्रोत्राय  
मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व जशुभ्या मे वर्चोदसौ वर्चसे पवेधाम् ॥२७॥

सोम को कारण करने वाले काले पक्ष को लक्ष्य करने वाले काले काले—

हे पात्र आप दिव्य प्रकाश को कारण करने वाले वर्चस्वी हैं । हमारे आज वायु, उदान वायु एवं ध्यान वायु को तेज प्रदान करें । हे देव ! आप हमारे मन, कानों एवं कर्म में तेजस्वित्व की स्थापना का उपाय करें । तेजस्वित्ता प्रदान करने वालों में आपनी हे देव ! हमारे नेत्रों एवं कर्णों के को दिव्यशक्ति से सम्पन्न बनाएँ ॥२७॥

२७३. आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वायुषे मे वर्चोदा वर्चसे  
पवस्व विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोदसौ वर्चसे पवेधाम् ॥२८॥

हे वर्चस् (तेजस्वित्ता) प्रदान करने वाले ! हमारी आत्मा में वर्चस् जाग्रत् करें, हमारे ओज में वर्चस् जाग्रत् करें, हमारे आयुष्य में वर्चस् जाग्रत् करें । हे तेजस्वी मह (उपकरण) ! पृथ्वी के समस्त प्राणिमों एवं प्रजाओं को तेज प्रदान करने की कृपा करें ॥२८॥

२७४. कोसि कतमोसि कस्यासि को नामासि । वस्य ते नामामन्महि यं त्वा  
सोमेनातीतुपाम । धूर्धुकः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याथः सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ॥

इस अधिष्ठान में ऋषिों का अन्त्य इतिहास प्रकट होता है । सोम पात्र के रूप में यज्ञस्थल पर स्थापित होकर कल्याण को वे धूर्धुक स्व में करते निष्कलन का प्रतिष्ठा— प्रतिर्जन करने हैं । इस विश्व का सोम (पोषक तत्व) से पर्याप्त रूप से यज्ञ का जोड़ रहे हैं—

हे सोम पात्र ! आप खौन हैं ? किससे सम्बन्धित हैं ? किस काम में आपका क्या नाम है ? आपका परिचय क्या है ? जिसे जानकर हम आपको सोमरस से परिपूर्ण कर सकें । पृथ्वी, अन्तरिक्ष और घुलोक में, अग्नि, वायु एवं सूर्य के रूप में व्याप्त (हे देव ! ) आप हमें वीर, पराक्रमी एवं वैश्व सम्पन्न सन्तानें प्रदान करें ॥२९॥

२७५. उपयामगृहीतोसि मध्वे त्वोपयामगृहीतोसि माधवाय त्वोपयामगृहीतोसि शुक्राय त्वोपयामगृहीतोसि शुचये त्वोपयामगृहीतोसि नभसे त्वोपयामगृहीतोसि नभस्याय त्वोपयामगृहीतोसीवे त्वोपयामगृहीतोस्यूर्जे त्वोपयामगृहीतोसि सहसे त्वोपयामगृहीतोसि सहस्याय त्वोपयामगृहीतोसि तपसे त्वोपयामगृहीतोसि तपस्याय त्वोपयामगृहीतोस्य ऽं हसस्यतये त्वा ॥३०॥

इस कविचत्वार्य में १२ मासों तथा सैद्धों पुरुषोत्तम नाम को ऋग्वेद के रूप में स्तुति करके उनकी तृप्ति-पुष्टि के लिए सोम को वाहना करने नियोजित करने का संकल्प किया गया है

हे ऋतुग्रह ! आप नियमानुसार ग्रहण किये गये हैं । हम आपको वैश्व, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन एवं चतुर्विंशत्य आदि (तेरह) मासों की संतुष्टि के निमित्त प्रार्थनाओं के अनुरूप नियुक्त करते हैं ॥३०॥

२७६. इन्द्राग्नीऽआ गतं सुतं गीर्धर्नभो वरेण्यम् । अस्य पालं धियेषिता । उपयामगृहीतोसीन्द्राग्निभ्यां त्वैव ते योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा ॥३१॥

पात्र में ग्रहण किये गये हे सोम ! इन्द्र और अग्निदेव की तृप्ति तथा प्रसन्नता के निमित्त, आप अपने इस (यज्ञशाला में) सुनिश्चित आसन पर स्थिर हो । हे इन्द्रदेव ! हे अग्निदेव ! याज्ञको की उत्तम वाणियों द्वारा की गई स्तुतियों से प्रसन्न होकर, सोमपान के लिए यज्ञशाला में पक्षी और अपना भाग ग्रहण करें ॥३१॥

२७७. आ घा येऽअग्निमिन्धते स्तृणान्ति बर्हिरानुषक् । येवामिन्द्रो घृवा सखा । उपयामगृहीतोस्यग्नीन्द्राभ्यां त्वैव ते योनिरग्नीन्द्राभ्यां त्वा ॥३२॥

इन्द्र और अग्निदेव की संतुष्टि के लिए विधिपूर्वक कथन किये गये, हे सोम ग्रह ! यज्ञशाला में आपका यह स्थान सुनिश्चित है, आसन ग्रहण करें । तेजस्वी इन्द्रदेव जिनके मित्र हैं, जो समिधाओं से अग्नि को प्रदीप्त कर आहुतियों प्रदान करते हैं, हे कलशस्थ सोम ! उन (याज्ञको) के यज्ञ को स्वीकृत सफल बनाएँ ॥३२॥

२७८. ओमासक्षर्षणीघृतो विश्वे देवासऽआगत । दाक्षार्धसो दाशुवः सुतम् । उपयामगृहीतोसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएव ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥३३॥

याज्ञकों का पोषण एवं उनकी रक्षा करने वाले हे विश्वदेव (विश्व सञ्जसक देवताओं) सभकों के अवाहन पर आप सोमपान करने के लिए यज्ञशाला में आएँ । हे ग्रह (सोमरस पुरित पात्र) ! विश्वदेवों की तृप्ति के लिये आप नियमानुसार ग्रहण (तैयार) किये गये हैं । यह आपका सुनिश्चित स्थान है । समस्त देवताओं की संतुष्टि के लिये आप यहाँ स्थिर हों ॥३३॥

२७९. विश्वे देवासऽआगत शृणुता म इमं हवम् । इदं बर्हिर्निषीदत । उपयामगृहीतोसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएव ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥३४॥

हमारी स्तुतियों से प्रसन्न हुए हे विश्वदेव ! हमारे अवाहन पर आप यज्ञशाला में आएँ और यह पवित्र आसन ग्रहण करें । हे ग्रह (पात्र) ! आपको सभी देवताओं की तृप्ति तथा प्रसन्नता के लिए ग्रहण किया गया है । यह आपका निश्चित स्थान है । हम आपको देवताओं की प्रसन्नता के लिए यहाँ स्थापित करते हैं ॥३४॥

२८०. इन्द्र मरुत्वऽइह पाहि सोमं यथा शायतिऽअपिबः सुतस्य । तव प्रणीतो तव शूर शर्मणा विवासन्ति कवचः सुयज्ञः । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥३५॥

मरुद्गणों के साथ निवास करने वाले हे इन्द्र ! नीतिवान्, दूरदर्शी, सत्कर्मरत, नैतिक याज्ञक आपकी उपासना कर रहे हैं । सर्वात्म्य के यज्ञ में पिये गये सोमरस की भाँति इस यज्ञ में पधारों और सोम पीकर तृप्त हों हे ग्रह (पात्र में स्थित सोम) । मरुतों सहित इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए आपको विधिपूर्वक तैयार (ग्रहण) किया गया है । यह आपका स्थान है, मरुत्वान् इन्द्र की तृप्त के लिए यहाँ स्थिर हों ॥३५॥

[०३०१.१२२.७ में सर्वात्म्य अर्चनों का कर्तृ कवच-यज्ञ है । यज्ञो मा० ४.१५.२ और जै० मा० ३.१२०-१२२ में सर्वात्म्य की वक्ता अग्नी है । वैश्वीय अग्निवत् यज्ञमा० ४.५.१, ४.६.१ में सर्वात्म्य एक यज्ञकर्ता के रूप में प्रस्तुत हुए हैं ।]

२८१. मरुत्वन्तं वृषभं वायुधानमकवारिं दिव्यं३ शासमिन्द्रम् । विश्वासाहमवसे नूतनायोय३ सहोदामिह त३ इवेम । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते । उपयामगृहीतोसि मरुता त्वौजसे ॥३६॥

साधकगण अपनी रक्षा के निमित्त, दिव्यशक्ति से सम्पन्न ऐश्वर्य एवं बराक्रम प्रदान करने वाले, जल की वर्षा करने वाले इन्द्रदेव का मरुद्गणों के साथ आवाहन करते हैं । हे ग्रह (पात्र) । आपको मरुद्गणों सहित इन्द्रदेव की तृप्ति के लिए नियमानुसार ग्रहण किया गया है । यह आपका मूल स्थान है, मरुतों को नल एवं प्रसन्नता प्रदान करने के लिए आपको यहाँ स्थापित करते हैं ॥३६॥

२८२. सजोषाऽइन्द्र सगणो मरुजिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् । जहि शत्रूँऽरप मृधो नुदस्वाधाभयं कृणुहि विश्वो नः । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥३७॥

वृत्र नामक राक्षस को मारने वाले हे इन्द्रदेव । मरुद्गणों सहित आप इस यज्ञ में पधारों तथा सोमरस पीकर मनुष्य हों । आप हमारे सन्तुओं को दूर कर उन्हें गृह करके हमें निर्भयता प्रदान करें । हे ग्रह (पात्र) आप इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए नियमानुसार ग्रहण किये गये हैं । यहाँ आपको विहित स्थान है । मरुतों सहित इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए आपको स्थापित करते हैं ॥३७॥

२८३. मरुत्वौँऽइन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुध्वं मदाय । आसिञ्चस्व जठरे भव्यऽकर्मि त्वं३शजसि प्रतिपत्सुतानाम् । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥३८॥

जल की वर्षा द्वारा याज्ञकों को धन-काम्य प्रदान करने वाले हे मरुत्वान् इन्द्रदेव । अपनी प्रसन्नता के लिए तृप्तिदायक सोम का जल करें और दुराचारियों से मुक्त करें । इस पोषक मधुर सोमरस को पेट भरकर पिएँ । विधिपूर्वक तैयार किये गये सोमरस के अन्न स्वाग्ने है । हे ग्रह (पात्र) । मरुतों सहित इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए आपको ग्रहण किया गया है । यह आपका आश्रय स्थल है, यहाँ आपको स्थापित करते हैं ॥३८॥

२८४. महौँऽइन्द्रो नूददा चर्षणिप्राऽउत द्विर्हर्षऽअग्निः सहोधिः । अस्मद्भयवाक्ये वीर्याधोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् । उपयामगृहीतोसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ।

अद्वितीय शौर्यवान्, यज्ञों का विस्तार करने वाले हे इन्द्र । प्रजा की मनोकामनाएँ पूर्ण करने वाले राजा की भाँति, आप याज्ञकों को ऐश्वर्य प्रदान कर, उनको इच्छाएँ पूर्ण करें । याज्ञकों द्वारा सम्पन्नित हे इन्द्र ! आप उन्हें



बलवान् बनाये । हे ग्रह ! नियमपूर्वक ग्रहण किये गये आपको महान् इन्द्रदेव की तृप्ति तथा प्रसन्नता के लिए नियुक्त करते हैं । यही आपके स्थान है ॥३९॥

२८५. महौ२ऽइन्द्रो य ऽओजसा पर्जन्यो वृष्टिर्मा२ ऽइव । स्तोमैर्वत्सस्य वायुभे ।  
व्ययामगृहीतोसि महेन्द्राय त्वैव ते योनिमहिन्द्राय त्वम् ॥४०॥

जल के रूप में प्राण पर्जन्य को वर्षा करने वाले, विप्रलब्ध येषों के समान, हे महान् तेजस्वी इन्द्रदेव ! आप सायको की स्तुति से प्रसन्न होकर भूखों की वर्षा करते हैं । हे माहेन्द्र ग्रह (इन्द्र के विभिन्न नियुक्त सोम फल) । नियमानुसार सत्प्राण में ग्रहण किये गये आपको महान् इन्द्रदेव की तृप्ति के लिए नियुक्त करते हैं, यही स्थान आपके लिए सुनिश्चित है ॥४०॥

२८६. उदु त्वं जातयेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृष्टो विश्वाय सूर्यं च स्वाहा ॥४१॥

बराबर जगत् को अपनी दिव्य शक्तियों से प्रकाशित करने वाले ओ सूर्यदेव प्राणिप्राण को पदार्थों का ज्ञान कराने के लिए ऊपर से अपनी किरणों को बिखेरते हैं, उन्हीं के लिए यह आहुति समर्पित है ॥४१॥

२८७. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्वाम्नेः । आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं  
च सूर्यं ऽआत्मा जगतस्तस्थुश्च स्वाहा ॥४२॥

मित्र, वरुण और अग्नि आदि देवताओं के नेत्ररूप स्वरूप और जगत् के आत्मारूप को सूर्यदेव अपनी दिव्य (प्रकाश) किरणों से पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक को तेजस्विक्रम प्रदान करते हैं; उन्हीं देव के लिए यह आहुति समर्पित है ॥४२॥

२८८. अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्थान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।  
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ॥४३॥

प्रगति के सभी मार्गों (विधियों) को जानने वाले हे अग्निदेव ! आप ऐश्वर्य को कामना करने वाले (हम) यात्रकों को श्रेष्ठ मार्ग पर ले चले । सत्कर्म में बाधक बाध-वृत्तियों को हमसे दूर करें । हम नम्रतापूर्वक स्तुति करते हुए आपको हवि प्रदान कर रहे हैं ॥४३॥

२८९. अयं नोऽअग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मूकः पुरऽएतु प्रभिन्दन् । अयं वाजाम्बयतु  
वाजसातावय च शत्रूञ्जयतु नर्हपाणः स्वाहा ॥४४॥

यह अग्निदेव, हमारे शत्रुओं को युद्ध के मैदान में विभ्र-विभ्र करके, उन्हें भ्रास्त करते हुए, उनके द्वारा (शत्रुओं द्वारा) जमा किया गया धन-धन्य हमें प्रदान करें । शत्रुओं को पराजित करने वाले अग्निदेव के लिए यह आहुति समर्पित करते हैं ॥४४॥

२९०. रूपेण वो रूपमभ्यागां तुभ्यो यो विष्णवेदा विभजतु । ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा  
वि स्यः पश्य व्यन्तरिक्षं यतस्य सदस्यैः ॥४५॥

हे दक्षिणे (ग्रहणपूर्वक यज्ञकर्ताओं के लिए समर्पित भस्मदि) ! भस्म-बौति हम आपके स्वरूप को जान चुके हैं, सर्वद्वेष प्रजापति आपको ऋतुओं के लिए विधिपूर्वक वितरित करें । आपको प्राप्त कर हम सत्यमार्ग के अनुगामी बनें तथा सूर्यदेव निरुप-प्रकार अन्तः अन्तरिक्ष का अवलोकन करने में समर्थ हैं, उसी प्रकार हम भी दूरदृष्टि से युक्त हैं ॥४५॥

[मित्र ऋतु सूर्यदेव सारे विश्व को दृष्टि में रखकर ऊर्ध्व का निराला करते हैं, वैसी ही दूरदृष्टि के साथ दक्षिण में प्रजापति का उपदेश करणालासरी प्रवेदन में निराला बना रहते हैं ।]

२९१. ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयं सुधातुदक्षिणम् । अस्मद्भाता देवत्रा गच्छत प्रदातारमाविशत ॥४६॥

मन्त्रद्रष्टा, ऐश्वर्यशाली, दिव्यगुण सम्पन्न पिता और पितामह बासे (दीर्घजीवी) प्रसिद्ध ऋषि एवं ब्राह्मणों से हम युक्त हैं, उनके पास सम्पूर्ण दक्षिणा एकत्र हो । हे दक्षिणे ! आप ऋषियों के पास पहुँचकर देवत्राओं को सन्तुष्ट करें तथा दानदाता याजकों को अर्घीष्ट फल प्रदान करें ॥४६॥

[ऐसे प्राप्तिपक्ष वर्जित्य जो स्वयं की अभिरुचि अनुसार करते हैं तथा विन्मदी पूर्ण पीढ़ियों की स्नेहिल के लिए ही तर्पण्य रही हो, उन्हीं के पास दक्षिणा का मन लक्षित होकर, तुम्हारे तक पहुँचकर लक्षक करने जाने का निर्देश दिया गया है ॥

२९२. अग्नये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोमृत्त्वमशीयायुर्दात्र ऽएधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे रुद्राय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोमृत्त्वमशीय प्राणो दात्रऽएधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे बृहस्पतये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोमृत्त्वमशीय त्वग्दात्रऽएधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे धमाय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोमृत्त्वमशीय हयो दात्रऽएधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥४७॥

हे दक्षिणे अग्नि, रुद्र, बृहस्पति और यम आदि विभिन्न देवताक्तियों की अनुकम्प्य के रूप में आप वरुणदेवता द्वारा हमें प्राप्त हों । आपको प्रत्येक करके हम स्वस्थ रहे एक दीर्घ जीवन प्राप्त करें । अथ दान दाताओं को धन-धान्य से परिपूर्ण सुख, ऐश्वर्य एवं दीर्घायु प्रदान करें ॥४७॥

[दक्षिण पिताके अनुष्ठ से प्राप्त हो, उन्हीं के अनुष्ठ उत्तरा उत्तरेय विन्म अन्य नहीं है । देवताका दक्षि (अग्नि), अनीति दत्त (रुद्र), ज्ञान विज्ञान (बृहस्पति) एवं अनुष्ठानों की स्वरूप (यम) के मिलित ही दक्षिणा का नियोजन हो । दत्त देव (ज्ञान के देवता) के द्वारा दक्षि का अर्पण्य दत्त के अनुष्ठ का प्राप्त होना है ॥

२९३. कोदात्कस्मा ऽ अदात्कामोदात्कमायादात् । कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतसे ॥४८॥

कौन (दक्षिणा) देता है ? किसके लिए (दक्षिणा) देता है ? कामनाई ही दान देने के लिए प्रेरित करती है, कामनाओं को ही दान दिया जाता है तथा कामनाई ही दान लेती है । यहाँ कामनाई ही सब कुछ है ॥४८॥

[जैसी कामनाई होती, वैसा कार्य होगा, इसीलए दान करने तथा उसके प्रत्यक्ष के विस्तार के लिए यही कामनाई ही अभीष्ट है ॥

## —अग्नि, देवता, छन्द-विवरण—

अग्नि— शैलम् १-६ । शिल्पम् ७ । यजुषाम् ८, ३३ । कृतम् ९, ३४ । प्रसदस्व १० । मेघतिथि ११ । अक्षरान्नर कामम् १२-१५ । वेन १६-१८ चन्द्रोप १९-२३ । पराङ्म २४-२५, ३९ । देवता २६-३० । विष्णुविद् ३१, ३५-३८ । विरोध ३२ । कस ४० । प्रसन्नम् ४१ । कुत्त आभिरस ४२-४५-४८ । अमस्त्य ४३-४४ ।

देवता—काम १ । सिन्धो, सोम २ । अक्षतु, देवम्, सोमम्, वा, उषसु, सवन ३ । इन्द्र ४ । मघवा ५ । उषसु, देवम्, वा ६ । यजु ७ । इन्द्र-यजु ८ । विष्णुम् ९-१० । अश्विनीकुमार ११ । विष्णुदेव १२, १९, २१, ३३-३४ । शुक्र, आभिरस, सप्त १३ । सोम इन्द्र १४ । इन्द्र, सिन्धो १५ । वेन १६ । सोम, आभिरस, शुक्र-यजु, दक्षिणोत्तरवेदिक-सोम १७ । यजु, आभिरस, सप्त १८ । आभिरस, सिन्धो २० । वा, सिन्धो २२-२३, ३० । वैश्वम् २४ । यजु इन्द्र २५ । सोम, कामम् २६ । उषसुसवन आदि सिन्धो २७ । आभिरस आदि सिन्धो २८ । प्रसन्नम् २९ । इन्द्र, अग्नि ३१ । अग्नि-इन्द्र ३२ । इन्द्रायतु ३५-३८ । यजेन्द्र ३९-४० । सूर्य ४१-४२ । अग्नि ४३-४४ । दक्षिण ४५ । सिन्धो ४६-४८ ।

छन्द—निवृत्त आर्षी अनुष्टुप् १ । निवृत्त आर्षी पङ्क्ति २ । विराट् सप्तमी यजुषी ३ । आर्षी उष्णिक् ४, ४८ । आर्षी पङ्क्ति ५ । पुरिक्, त्रिष्टुप् ६ । निवृत्त जगती ७ । आर्षी मावती आर्षी स्वरट् मावती ८ । आर्षी मावती आसुरी मावती ९ । सप्तमी वृहती १० । सप्तमी उष्णिक् ११ । निवृत्त आर्षी जगती पङ्क्ति १२ । निवृत्त आर्षी त्रिष्टुप् अजापत्या मावती १३ । विराट् जगती १४ । निवृत्त सप्तमी अनुष्टुप् १५ । निवृत्त आर्षी त्रिष्टुप् साम्नी मावती १६ । स्वरट् सप्तमी त्रिष्टुप् १७ । निवृत्त त्रिष्टुप्, अजापत्या मावती १८ । पुरिक् आर्षी पङ्क्ति १९ । निवृत्त आर्षी जगती २० । स्वरट् सप्तमी त्रिष्टुप् यजुषी जगती २१ । विराट् सप्तमी त्रिष्टुप् २२ । अनुष्टुप्, अजापत्या अनुष्टुप् स्वरट् साम्नी अनुष्टुप्, पुरिक् आर्षी मावती, पुरिक् साम्नी अनुष्टुप् २३ । आर्षी त्रिष्टुप् २४, ३१ । यजुषी अनुष्टुप्, (दो) विराट् आर्षी वृहती २५ । स्वरट् सप्तमी वृहती २६ । (तीन) आसुरी अनुष्टुप्, (दो) आसुरी उष्णिक्, साम्नी मावती, आसुरी मावती २७ । सप्तमी वृहती २८ । आर्षी पङ्क्ति, पुरिक् साम्नी पङ्क्ति २९ । (छ) साम्नी मावती, (कार) आसुरी अनुष्टुप्, (दो) यजुषी पङ्क्ति, आसुरी उष्णिक् ३० । आर्षी मावती, आर्षी उष्णिक् ३२ । आर्षी मावती, निवृत्त आर्षी उष्णिक् ३३, ३४ । आर्षी त्रिष्टुप्, विराट् आर्षी पङ्क्ति ३५ । विराट् आर्षी त्रिष्टुप्, विराट् आर्षी पङ्क्ति, साम्नी उष्णिक् ३६ । निवृत्त आर्षी त्रिष्टुप्, विराट् आर्षी पङ्क्ति ३७, ३८ । पुरिक् पङ्क्ति, साम्नी त्रिष्टुप् ३९ । आर्षी मावती, विराट् आर्षी मावती ४० । पुरिक् आर्षी मावती ४१ । पुरिक् आर्षी त्रिष्टुप् ४२-४४, ४६ । विराट् जगती ४५ । पुरिक् अजापत्या जगती, स्वरट् अजापत्या जगती, निवृत्त आर्षी जगती, विराट् आर्षी जगती ४७ ।

## ॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥



## ॥ अथाष्टमोऽध्यायः ॥

२९४. उपयामगृहीतोस्यादित्येभ्यस्त्वा । विष्णवे ऽ उरुगायैव ते सोमस्त ऽ रक्षस्व मा  
त्वा दधन् ॥१॥

हे सोम ! आप उपयाम-पत्र में ग्रहण करने योग्य हैं । आदित्यों के सद्गुण वैजस्यता के लिए आपको हम  
ग्रहण करते हैं । यवान् मतोर्ग्रे से सुशोभित हे विष्णो ! वह सोमरस आप के अति समर्पित है । आप इस सोमरस  
को रक्षित करें । शत्रु आपका दमन न करने पाएँ ॥१॥

२९५. कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सञ्जसि दाशुषे । व्योपेभु मध्वन् मूयऽ इधु ते दानन्देवस्य  
पृच्यतऽ आदित्येभ्यस्त्वा ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! आप हिसक शक्ति से सर्वथा रहित हैं । यजमान द्वारा प्रदत्त हविष्य को अति निकट के स्थान  
से ग्रहण करते हैं । हे श्रेष्ठ ऐश्वर्यसम्पन्न इन्द्रदेव ! कनक द्वारा प्रदत्त हवि के अतिदमन स्वरूप आपको दान सम्पन्नता  
बढ़ाने वाला होता है । हे इन्द्रदेव ! हम आदित्यों के स्नेह भाव के लिए आपकी स्तुति करते हैं ॥२॥

२९६. कदा चन प्र मुच्छस्युषे नि पासि जन्मनी । तुरीयादित्य सवनं तऽ  
इन्द्रियमातस्थामृतन्दिव्यादित्येभ्यस्त्वा ॥३॥

हे आदित्य ! आप आस्तस्य प्रमदादि से सर्वथा रहित हैं । आप देवों एवं मानवों-दोनों को ही श्रेष्ठ रीति  
से संरक्षित करते हैं । आपकी जो शक्ति-सम्पत्ति, कल-कृप से रहित, अविनाशी और दिव्य आनन्दप्रद है, वह सूर्य  
मण्डल में स्थापित है । हे आदित्यप्रभ (पात्र) ! हम आदित्य देव की प्रसन्नता हेतु आपको ग्रहण करते हैं ॥३॥

२९७. यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भक्ता मृद्वन्तः । आ खोर्वाखी  
सुमतिर्वयुत्यादंरुहोऽश्रिणा वरिवोक्तिरासदादित्येभ्यस्त्वा ॥४॥

देवताओं के सुख के निमित्त यह यज्ञ है, अतएव हे आदित्यगण ! आप हम सबके लिए  
कल्याणकारी हैं । आपकी शुभ संकल्पयुक्त मति हमें उपलब्ध हो । क्षपात्माओं की जो बुद्धि धनोपाजिन में  
संलग्न है, वह भी हमारे अनुकूल हो (यज्ञोय भाव उनके भी ज्ञान) । हे सोम ! आदित्यों की प्रसन्नता के लिए हम  
आपको ग्रहण करते हैं ॥४॥

२९८. विवस्वत्रादित्यैव ते सोमपीथस्तस्मिन् मत्स्य । प्रदस्यै नरो वचसे दध्मातन यदाशीर्दा  
दध्मती वाममम्युतः । पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वथा विन्वाहारपऽ एधते गृहे ॥५॥

हे आदित्य ! आप अज्ञानरूपी अन्धकार के विनाश के निमित्त कारण हैं । पात्र में स्थित सोमरस आपके  
सेवन योग्य है । इससे (सोमरस सेवन से) आप सब प्रकार से प्रसन्नचित रहें । हे पुरुषार्थी मनुष्यो ! तुम अपनी  
वाणी में सुसंस्कारिता को धारण करो । जब गृहस्थाश्रम में दध्मती धर्माचरण का निर्वाह करते हैं, तभी  
पावन-सुसंस्कारवान् पुत्र उत्पन्न होते हैं और नित्य हो समृद्धि को प्राप्त होकर, वे दुष्कर्मों और ऋणादि से निवृत्त  
रहते हुए श्रेष्ठ गृह में निवस करते हैं ॥५॥

२९९. वाममन्त्रः सवितर्वायमु श्वो दिवे दिवे वाममस्माभ्य ऽं सावीः । वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेया भिया वामभाजः स्याम ॥६॥

हे सर्व उत्पादक सवितादेव ! आज हमारे लिए श्रेष्ठ सुखों को प्रदान करे और अगला दिवस भी श्रेष्ठ सुख प्रदायक हो । इस प्रकार प्रतिदिन उत्तम सुखों को प्रदान करे । हे दिव्यशक्ति सम्पन्न देव ! हम निर्मित ही श्रेष्ठ-वैभव सम्पन्न गृह में निवास करने वाले, श्रेष्ठ बुद्धि से, सभी श्रेष्ठ सुखों का उपभोग करने में समर्थ हों ॥६॥

३००. उपयामगृहीतोसि सावित्रोसि चनोषाक्षनोषाऽ असि चनो मयि धेहि । जिन्य यज्ञं विन्य यज्ञार्तिं भगाय देवाव त्वा सवित्रे ॥७॥

हे सोम ! आप उपयाम-पत्र में सेकन करने योग्य हैं । आप सवितादेव से सम्बन्धित अन्न को संवर्द्धित करने में समर्थ हैं । अतः हमें अन्न प्रदान करें । आप यज्ञ और यज्ञार्ति को पूर्णतः प्रदान करें । हम सम्पूर्ण वैभवादि से युक्त, सर्वश्रेष्ठ सवितादेव के लिए आपको ब्रह्मण करते हैं ॥७॥

३०१. उपयामगृहीतोसि सुशर्मोसि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नमः । विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽ एव ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥८॥

हे सोम ! आप श्रेष्ठ विद्यमानुत्तम से सम्बद्ध हैं, श्रेष्ठ सुखप्रद गृह से युक्त हैं अति महत्वपूर्ण कर्तव्य के निर्वाह में लक्ष्म हैं, ऐसे आपको हमारा नमन है । जगत् सुजेता और बहुसेवक-मुक्तसम्पन्न प्रजापति के लिए यह अन्न अर्पित है । हम आपको विश्वेदेवों की प्रशंसा के लिए स्तुति करते हैं ॥८॥

३०२. उपयामगृहीतोसि बृहस्पतिसुतस्य देव सोम तऽ इन्द्रोरिन्द्रियावतः पत्नीवतो प्रहोऽ ऋध्यासम् । अहं परस्तादहमवस्ताद्यद्वनारिक्षं तदु मे पिताभूत् । अहं१३ सूर्यमुभयतो ददर्शाहं देवानां परमं गुह्य यत् ॥९॥

हे दिव्य सोम ! आप उपयाम-पत्र ( मर्वादापूर्वक रहने वाले सुभाषों ) में ग्रहण करने योग्य हैं । अतएव ब्रह्मनिष्ठ क्रियाओं द्वारा प्रेरित हुए आपको एवं मधुरतः प्रधान शक्ति को ब्रह्म ( प्रहपात्रों ) को हम धर्मपत्नी के साथ समृद्ध करते हैं । हम अन्तरिक्ष होकर उच्च स्थान और भूमि पर विस्तार पाएँ । अन्तरिक्ष, पिता के मदुरा हमारा बालक है । हम सूर्य के दोनों ओर (पटवर्क-परक स्फुल्लक तथा चेतना-परक सूक्ष्मपत्र) से दर्शन करें और सर्वोत्कृष्ट जो हृदयकर्म गुह्य अत्यन्त गोपनीय है अथवा वेदज्ञों के हृदय में जो परम तत्त्व-ज्ञान है, उसका भी हम दर्शन करने में सक्षम हों ॥९॥

३०३. अम्या३३ पत्नीवन्सजूर्देवेन त्यष्टुः सोमं पिब स्वाहा । प्रजापतिर्वृषासि रेतोधा रेतो मयि धेहि प्रजापतेस्ते वृष्णो रेतोवसो रेतोवामशीय ॥१०॥

हे अग्ने ! त्वष्टादेव के समान आप सफलोक्त प्रेमपूर्वक सोमपान करें, ये अहुतिर्हीन आपके प्रति समर्पित हैं हे उद्गाता ! आप तेजस्वी वीर्य को धारण करने में और संतान-वत्सल में सक्षम हैं, अतः हममें वीर्य (पराक्रम) की स्थापना करें । ऐसे गुणों से युक्त आपके सान्निध्य से हम शक्तियन्त्र अति पराक्रमशाली सुसंतति से युक्त हों ॥१०॥

३०४. उपयामगृहीतोसि हरिरसि हरियोजनो हरिभ्यः त्वा । हर्योर्ध्वाना स्थ सहसोमा ऽङ्गनाथ ॥११॥

हे सोम ! आप उपयाम-पत्र में ग्रहणीय हैं । आप हरितकर्मों रसरूप हैं ; ऋग्वेद और सामवेद की स्तुति हेतु आपको धारण करते हैं । आपको इन्द्र के रथ के दोनों अश्वों के लिए नियोजित करते हैं । हे सोम से युक्त धान्य ! आप इन्द्रदेव के दोनों हर्षाश्व ( हरितकर्मों अश्वों ) के लिए ब्रह्मण करने योग्य हैं ॥११॥

३०५. यस्ते अश्वसनिर्धक्षो वो नोसनिस्तस्य तऽ इष्टयजुष स्तुतस्तोमस्य  
शस्तोकथस्योपहृतस्योपहृतो भक्ष्यामि ॥१२॥

हे सोमसिक्त धान्य यजुर्वेद के मंत्रों से जिसकी कायका की गयी है अरु मंत्रों से स्तुत्य तथा साम के स्तोत्रों द्वारा संबर्द्धित आपका सेवन अन्नों और गौओं को भी प्रेरणा देने में समर्थ है । आपके सेवन से प्राप्त होने वाले अभीष्ट फल की इच्छा से युक्त तप आपका स्मर सेवन करते हैं ॥१२॥

३०६. देवकृतस्यैनसोवयजनमसि मनुष्यकृतस्यैनसोवयजनमसि पितृकृतस्यैनसो-  
वयजनमस्यात्मकृतस्यैनसोवयजनमस्येनसऽ एनसोवयजनमसि । यत्त्वाहमेनो  
विह्विश्रकार यत्त्वाविह्विस्तस्य सर्वस्यैनसोवयजनमसि ॥१३॥

(यज्ञ शोकल्प को सम्पूर्णित करते हुए कहते हैं ।) आप देवताओं के प्रति (यज्ञादि कर्मों की उपेक्षा के कारण) हुए पापों को दूर करने वाले हैं । मनुष्यों के प्रति ईर्ष्या, द्वेष, निन्दति स्वभावगत दोषों के कारण हुए पापों को हटाने वाले हैं । पितृजनों के प्रति (आट-तर्पण आदि कर्मों में रूढ़ित) हमारे पापों का समन करने वाले हैं, आत्मा के प्रति आत्मघाती (आत्मा की अकाय को दबाकर हुए) पापों से मुक्त करने वाले हैं । आप प्रथम अपराध तथा दूसरे अपराधजन्य पापों का निवारण करने वाले हैं । जो जान बुझकर और नसामग्रीवक अपराध कर्म हमसे हुए हैं, उन सभी पापों का निवारण करने में आप सक्षम हैं, अतः हमें सम्पूर्ण पापों से विमुक्त करें ॥१३॥

३०७. सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्यहि मनसा सऽं शिवेन । त्वष्टा सुदशो विदधातु  
रायोनुमार्ह तन्वो यज्ञिलिष्टम् ॥१४॥

हम सब ब्रह्मतेज से सम्पन्न, दुग्धदि रत्नों से परिपूर्ण, अन्न शरीर और शिवसंकल्पकारी मन से सदा युक्त रहें । श्रेष्ठ दान-प्रदाता त्वष्टादेव हमें ऐश्वर्य प्रदान करें तथा हमारे शरीर में जो कमी है उसे भी दूर करें ॥१४॥

३०८. समिन्द्र णो मनसा नेचि गोभिः सऽं सूरिभिर्धवन्सऽं स्वस्था । सं ब्रह्मणा देवकृतं  
यदस्ति सं देवानां सुमती यज्ञियानां स्वाहा ॥१५॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव हमें श्रेष्ठ मन, गन्ध आदि पशुओं और ज्ञानेजनों तथा श्रेष्ठ कल्याणकारी भावनाओं से युक्त करें । ज्ञान से प्रेरित दिव्य धनका द्वारा जो श्रेष्ठ कर्म सम्पन्नित होते हैं, उनसे हमें जोहें जो सत्कर्म हमें देवताओं के अनुग्रह प्रदान करते हैं, वे यज्ञरूप श्रेष्ठ कर्म, श्रेष्ठ मति के साथ आपके निमित्त समर्पित हों ॥१५॥

३०९. सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्यहि मनसा सऽं शिवेन । त्वष्टा सुदशो विदधातु  
रायोनुमार्ह तन्वो यज्ञिलिष्टम् ॥१६॥

हम सब लोग सदैव ब्रह्मवर्चस, अन्न, सुदृढ़ शरीरों और जुष संकल्पकारी पवित्र मन से युक्त रहें । श्रेष्ठ पदार्थों के दाता, सर्वश्रेष्ठ परमात्मा हमें सम्पूर्ण ऐश्वर्य-सम्पदा प्रदान करें और हमारे शरीर में जो विकार हैं, वे सभी दूर हों ॥१६॥

३१०. माता रातिः सवितेदं जुचन्तां प्रजापतिर्निधिषा देवो अग्निः । त्वष्टा विष्णुः प्रजया  
सऽंरराणा यजमानाय द्विषा दधात स्वाहा ॥१७॥

दानशील माता (विधाता), सर्वोत्पादक समिन्ध, प्रज के जलक-प्रजापति, देदीप्यमान अग्निदेव, त्वष्टादेव और सर्वव्यापक विष्णुदेव—वे सभी देवगण हमारी आहुति को स्वीकार करें । वे सभी देवता यजमान की सुसंतति से प्रसन्न होकर, उन्हें प्रदुर धन, साधनादि प्रदान करें । हमारी यह आहुति उत्तम रीति से ग्रहण करें ॥१७॥

३११. सुगा वो देवाः सदानाऽ अकर्म वऽ अश्रममेदं सवनं जुषाणाः । भरमाणा वहमाना  
हवींश्च ध्यस्मे धत्त वसवो वसूनि स्वाहा ॥१८॥

हे देवताओं ! यज्ञ का सेवन करने के लिए आप जो कर्तव्य करते हैं, इसलिए वे स्वान आपके लिए सुगम  
कर दिए गये हैं । हे सबके अश्रम दाता देवगण ! आप ऋषियों का उपशेख करते हुए और उनको कहन करते  
हुए हमें ऐश्वर्य प्रदान करें — वे आहुतियाँ आपके प्रति समर्पित हैं ॥१८॥

३१२. योऽर आबहऽ उशतो देव देवांस्तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्ये । जक्षित्वा शंसः पथिष्व  
श्च सख विष्वेसु धर्मं च स्वरातिष्ठतान् स्वाहा ॥१९॥

हे अग्निदेव ! हविष्याद्य की कायदा करने वाले जिस देवताओं को अपने आमंत्रित किया है, उन सभी  
देवताओं को यथास्थान प्रेरित करें । हे देवगण ! हविष्य को ग्रहण करत हुए सोम पीकर तृप्त हुए आप इस यज्ञ  
के पूर्ण होने पर प्राणरक्षक वायुमण्डल का सूर्यमण्डल में आश्रित हो, वे आहुतियाँ आपके प्रति समर्पित हैं ॥१९॥

[\* यज्ञीय कर्म से तृप्ति प्राप्त के अनुकूलन में देवताओं की प्रार्थना है ।]

३१३. वयश्च हि त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्नग्ने होतारमवृणीमहीह । ऋष्यगवाऽ  
ऋष्यगुताशमिष्ठाः प्रजानन् यज्ञमुपयाहि विद्वान्स्वाहा ॥२०॥

हे अग्निदेव ! इस स्थल पर, जिस यज्ञ के निमित्त हमने आपको बुलवा एवं चारण किया, उस यज्ञ को  
संघर्षित करते हुए आपने विधिपूर्वक उसे सम्पादित किया । ज्ञान सम्पन्न - आप यज्ञ को पूर्ण हुआ जानकर अपने  
स्वान को प्रस्थान करें और इस आहुति को भस्ते प्रकाश स्वीकार करें ॥२०॥

[\* यज्ञीय केवल यज्ञीय पदार्थ नहीं है, निष्कार (इष्टित्वेक) युक्त वस्तु भी है ।]

३१४. देवा गातुकिदो गातुं कित्वा गातुमित । मनसस्पतऽ इमं देव यज्ञं च स्वाहा वाते धाः ॥

यज्ञीय कर्मों के ज्ञाता हे देवगण ! आप हमारे यज्ञ में पधारें तथा यज्ञ से संतुष्ट होकर अपने-अपने मन्त्र  
स्वान के लिए प्रस्थान करें । हे मन के अधिपति देव ! इस यज्ञ को श्रेष्ठ ओषधियों से परिपूर्ण करें और वायु  
का शीघ्र करें — यह आहुति आपके प्रति समर्पित है ॥२१॥

३१५. यज्ञं यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ स्वां धीनि गच्छ स्वाहा । एष ते यज्ञो यज्ञपते  
सहसूक्तवाकः सर्ववीरसो जुवस्व स्वाहा ॥२२॥

हे यज्ञदेव ! आप यज्ञ को प्राप्त करें (प्रकृति का संकुलन करने वाले यज्ञीय तंत्र को प्रभावित-पुष्ट करें) और  
यज्ञ को सम्पन्न करने वाले याज्ञक के पास जाएँ । आप अपने आश्रय स्वान की ओर जाएँ । यह आहुति श्रेष्ठ  
रीति से स्वीकार करें । हे यजमान ! आपका यह यज्ञ श्रेष्ठ श्रुति यज्ञों और अनेक वीर पुरुषों से सर्वांगपूर्ण है ।  
आप इसे श्रेष्ठ विधि से स्वाहाकार करके सम्पन्न करें ॥२२॥

३१६. माहिर्धूर्मा पृदाकुः । उरुश्च हि राजा वरुणस्तुकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ । अपदे  
पादा प्रतिधातवेकरुतापक्ता हृदयाविचक्षित् । नपो वरुणायाक्षिप्तो वरुणस्य पाशः ॥

अवृणु स्वान के तन्त्र मेकलदि को एक ओर रखे हुए यज्ञ करा है —

सप के समान दुष्ट या अवगर् के समान हिरक न कर्त । वरुणदेव (जो सबके द्वारा वरण करने योग्य है  
अथवा जो सबका वरण कर लेते हैं, ऐसे ईश्वर) ने सूर्यमन के लिए विस्तृत मार्ग निर्धारित किया है । जहाँ पैर  
भी ठहर न सके, वे ऐसे अन्तरिक्ष स्थान पर जो चतुर्ण के लिए मार्ग विनिर्मित कर देते हैं और वे हृदय की पीड़ा  
का निवारण करने वाले हैं । दुष्टों का दमन करने वाले 'राज' से युक्त वरुणदेवता को नमस्कार है ॥२३॥

[ अग्निकोष परिलक्ष्य वे किं सूर्य अग्नि नक्षत्रों के लिए भी जिन विस्ती ठोस आकार के सुनिश्चित एवं ईश्वर ने कल्पना है, जिस पर वे प्रतिबिम्ब रहते हैं । ]

३१७. अग्नेरनीकमपऽ आ विदेशापां न्यात् प्रतिरक्षन्नसूर्यम् । दमेदमे समिधं चक्षुष्यमे प्रति ते जिह्वा घृतमुध्वरण्यत् स्वाहा ॥२४॥

हे अग्निदेव ! जिस को नीचे न गिरने देने वाली अपनी क्षमता को जिस में प्रविष्ट करें \* । अत्येक यज्ञस्थल को विनकारी असुरता से संरक्षित करते हुए समिधओं को ग्रहण करें । हे अग्निदेव ! आपकी ज्वालाकपी जिह्वा घृत चारण करने के लिए प्रेरित हो । यह आहुति अच्छे प्रकार से स्वीकार हो ॥२४॥

[ \* जल स्वभाव से नीचे की ओर जाता है, ऊर्ध्व ओर ऊपर जाता रहने में स्वर्ग है । ]

३१८. समुद्रे ते हृदयमप्यन्तः सं त्वा विशन्त्योषधीरुतापः । यज्ञस्थ त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम यत् स्वाहा ॥२५॥

हे सोम ! आपका हृदय समुद्र के भीतरे जल में स्थित है । हम आपको इसमें स्थापित करते हैं । आपके प्रति ओषधियाँ और जल, प्रवहमान रहें । हे यज्ञपालक ! हम आपको श्रेष्ठ यज्ञ में वैदिक मंत्रोच्चारण के साथ नमस्कार करते हुए, आहुति समर्पित करते हैं ॥२५॥

३१९. देवीरापऽ एव खो गर्भस्त ऽ सुप्रीत ऽ सुभृतं विभृत । देव सोमैव ते लोकास्तस्मिंश्च च वक्ष्य परि च वक्ष्य ॥२६॥

हे दिव्यगुणसम्पन्न जलसमूह ! यह सोमका आपका उत्पत्ति-स्थान है । उसे श्रेष्ठ विधि से और स्नेहपूर्वक पोषित करते हुए ग्रहण करें । हे दिव्य सोम ! आपका आश्रय स्थान जल है, उसी में वास करके सुखी रहें तथा हमारे दुःखों का निवारण करके, हमें सुरक्षित करें ॥२६॥

३२०. अवभृथ निक्षुम्पुण निचेरुसि निक्षुम्पुणः । अथ देवैर्देवकृतमेनोयासिबमथ मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराणो देव रिचस्माहि । देवानां ऽ समिदसि ॥२७॥

हे अवभृथ नामक स्नानयज्ञ ! आप शीघ्रगम्यी हैं, निरंतर प्रवहमान हैं, लेकिन अब अतिमन्द गति से प्रवाहित हों । देवों के प्रति हमसे जो पाप हुए हैं, उन्हें अपने जल में विसर्जित कर दिया है । मनुष्यों के प्रति हुए पापों को भी जल में विसर्जित कर दिया है । अनेक कष्टदायी शत्रुओं से आप हमारी सुरक्षा करें । आपके आश्रय से हम सभी पापों से मुक्त रहें । देवत्व-संवर्द्धक हमारी भावना जाग्रद हो ॥२७॥

३२१. एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह । यथायं वायुरेजति यथा समुद्रऽ एजति । एवायं दशमास्यो अहज्जरायुणा सह ॥२८॥

दस मास की पूर्णता पर गर्भ जरायु के साथ उसी प्रकार बलायमान हो, जिस प्रकार यह वायु प्रक्षुब्ध होती है और समुद्र की लहरें कम्पायमान होती हैं । यह दस मास का पूर्ण गर्भ जरायुसहित उदर से बाहर आए ॥

३२२. यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी । अङ्गन्यहुता यस्य तं मात्रा समजीगमऽ स्वाहा ॥२९॥

हे श्रेष्ठ नारी प्रकृति ! आपका गर्भ यज्ञीय जन्मन से प्रेरित है । आपका गर्भस्थान स्वर्ग के समान पवित्र है । जिसके सभी अवयव अखण्डित, अकटित और श्रेष्ठ हैं, उस पुत्र को मात्रा द्वारा आपसे मिलते हैं । प्रकृति की प्रजनन प्रक्रिया के लिए यह आहुति समर्पित है ॥२९॥



३२३. पुरुदस्मो विषुरूपऽ इन्दुरन्तर्माहिमानमानञ्च धीरः । एकपदीं द्विपदीं त्रिपदीं  
चतुष्पदीमष्टापदीं भुवनानु प्रथन्ता ॐ स्वाहा ॥३०॥

दानशील, अनेक रूप वाला, धीर, मेधावी वर्ण अपनी महत्ता को प्रकट करे । गर्भ को अपने वज्र में — नियंत्रण में रखने वाली एक पदवाली (नवकृष्ण), दो पद वाली (प्रकृति एवं पुरुषकृष्ण), तीन पद वाली (त्रि आयात्री, त्रिगुणात्मक), चार पद वाली (वर्ण, अर्थ, काय, चेत्य चार पुरुषार्थयुक्त), अठार पद वाली (चार वर्ण एवं चार आश्रय युक्त) शक्ति को भुवनों में (यज्ञ के माध्यम से) विस्तार प्राप्त हो, इसके लिए वह आहुति समर्पित है ॥३०॥

३२४. मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो जनः ॥३१॥

दिव्य लोक के वासी, विशिष्ट तेजस्विता सम्पन्न हे मरुद्गण । आपके द्वारा जिस यजमान के यज्ञस्थल में सोमपान किया जाता है, निश्चित ही वे चिरन्तन चरन्त आपके द्वारा संरक्षित रहते हैं ॥३१॥

३२५. मही धौः पृथिवी च नऽ इमं यज्ञं विमिक्षताम् । पिपृतां नो घरीमधिः ॥३२॥

महान् सुलोक और पृथ्वीलोक, स्वर्ग-रत्नादि, धन-धान्यो से परिपूर्ण वैभव द्वारा हमारे इस श्रेष्ठ कर्मरूपी यज्ञ को सम्पन्न करे तथा उसे संरक्षित करे ॥३२॥

३२६. आ तिष्ठ वृत्रहन्तं युक्ता ते ब्रह्मणा इरी । अर्वाचीनं सु ते मनो प्राया कृणोतु  
घन्मुना । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा वोढशिनऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा वोढशिनः ॥३३॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्र ! आपके हरितवर्ण के दोने अश्व संकेत पात्र से चरने वाले हैं, अतः आप अश्वयुक्त रात्र में विराजमान हों । सोम के अभिव्यक्त से उत्पन्न शब्द आपके चित्त को वज्राभिमुख करे । हे सोम ! आप उपयाम-पात्र में ग्रहण करने योग्य हैं, अतः सोलह कलाओं से परिपूर्ण परम वैभवशाली इन्द्रदेव के लिए आपकी प्रार्थना करते हैं । हे ग्रह (पात्र) ! यह अश्वका अश्वत्रय स्थान है, सोलह कलाओं से युक्त इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए आपको प्रदण करते हैं ॥३३॥

३२७. बुध्वा हि केशिना इरी वृषणा कक्ष्यात् । अथा नऽ इन्द्र सोमपा गिरामुपभृतिं  
धर । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा वोढशिनऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा वोढशिनः ॥३४॥

हे सोमरस-गृहीता इन्द्रदेव ! आप अपने केशयुक्त, रत्नलवान्, गन्तव्य तक ले जाने वाले दोने घोड़ों को रात्र में निबोधित करें । तत्पश्चात् सोमपान से तृप्त होकर हमारे द्वारा की गई प्रार्थनाएं सुने । हे सोम ! आप उपयाम-पात्र में ग्रहण करने योग्य हैं, अतः सोलह कलाओं से परिपूर्ण परम वैभवशाली इन्द्रदेव के लिए आपकी प्रार्थना करते हैं । हे ग्रह (पात्र) ! यह अश्वका अश्वत्रय स्थान है, सोलह कलाओं से युक्त इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए आपको प्रदण करते हैं ॥३४॥

३२८. इन्द्रमिद्धरी वहतोप्रतिष्ठाश्वसम् । ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मनुषाणाम् ।  
उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा वोढशिनऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा वोढशिनः ॥३५॥

सोम पीने वाले शत्रुविनाशक हे इन्द्रदेव ! कर्त्तव्य तक पहुँचाने वाले जीव गतिमान् दोनों अश्व आपको अश्वियों की श्रेष्ठ स्तुतियों और मनुष्य कजमानों के यज्ञ में ले जाते हैं । हे सोम ! आप उपयाम-पात्र में ग्रहण करने योग्य हैं, आपका वह आश्रय स्थल है । अतः सोलह कलाओं से युक्त इन्द्र की प्रसन्नता हेतु आपको प्रदण करते हैं ॥३५॥

३२९. यस्मात्प्र जातः घरो अन्यो अस्ति यऽ आत्विश भुवनानि विन्वा । प्रथापतिः प्रजया  
संरक्षराणस्त्रीणि ज्योतीं चि सचते स वोढशी ॥३६॥

जिन परमात्मा से उत्पन्न अन्य कोई नहीं है जो सम्पूर्ण लोकों में संव्याप्त है, वे प्रजापासक, सोलह कलाओं से अपनी प्रजा में रमण करते हैं । वे तीनों अश्वों (सूर्य, विष्णु, अग्नि) को अपने भीतर समाहित किए हुए हैं ।

३३०. इन्द्रश्च सम्राट् वरुणश्च राजा तौ ते यक्षं चक्रतुरात्रऽ एतम् । तयोरहमनु यक्षं यक्षयामि  
वाम्देवी जुषाणा सोमस्य तुष्यतु सह प्राणेन स्वाहा ॥३०॥

हे ग्रह (पात्र) ! जम्बू के अधिपति इन्द्रदेव और वरुणदेव दोनों सर्वप्रथम आपके इस सोम पदार्थ का सेवन करते हैं। तत्पश्चात् हम उस सोम को ग्रहण करते हैं। सरस्वती प्राण के साथ संयुक्त होकर कृषि को प्रयत्न करें, इस हेतु यह आहुति समर्पित है ॥३०॥

३३१. अग्ने पचस्व स्वपाऽ अग्ने वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयि भवि योजम् ।  
उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चसऽ एव ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे । अग्ने  
वर्चस्विन्वर्चस्वीस्त्वं देवेष्वसि वर्चस्वान्मं मनुष्येषु भूयासम् ॥३१॥

उत्तम कर्म करने में कुशल है अग्निदेव ! हमें तेजस्विता, पराक्रम एवं अन्तर वैभवं सम्पन्न करना चाहिये। हे सोम ! आप उपयाम-पात्र में गृहीत हों। अन्नगणों तेजस्विता के लिए हम आपको प्रार्थन करते हैं। आपका यह आग्रह है। हे तेजवान् अग्निदेव ! अन्न देव-शक्तियों के बीच में अति तेजस्वी हैं। अतः आपकी कुशल हो हम मनुष्यों में तेजस्विता का संक्षर हो ॥३१॥

३३२. ठलिष्ठप्रोजसा सह पीत्वी शिष्रे अवेपथः । सोऽपमिन्न यन् सुतम् ।  
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वाजसऽ एव ते योनिरिन्द्राय त्वाजसे । इन्द्रोऽजिष्ठोऽजिष्ठस्त्वं  
देवेष्वस्योजिष्ठोऽमनुष्येषु भूयासम् ॥३२॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! अन्न अपने पराक्रम से प्रगति करते हुए पत्र में स्थापित सोमस का पान करें तथा अपने हनु (ठोड़ी) और नासिका को सम्पन्न कर इसप्रकार व्यक्त करें। हे सोम ! आप उपयाम-पात्र में गृहीत हों। आपका यही स्थान है। सेवक में उपस्थित हुए हम सबकर्मों ओजस्वी पराक्रम के लिए आपको प्रार्थन करते हैं। सभी देवों में अजयी है शक्तिशाली इन्द्रदेव ! अन्न की भाँति हम भी मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ पराक्रमशाली हों ॥

३३३. अहमस्य केतवो वि रश्मयो अर्चन् अनु । प्राजन्तो अग्नये यथा ।  
उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा प्राजायैव ते योनिः सूर्याय त्वा प्राजाय । सूर्यं प्राजिष्ठं  
प्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि प्राजिष्ठोऽमनुष्येषु भूयासम् ॥३३॥

सूर्य रश्मियों की भाँति सभी मनुष्यों को विशेष रूप से दृष्टिगोचर होने वाली 'अग्नि' सर्वप्रथम प्रकटित है। हे अतिमात्र प्रह (पात्र) ! आप नियमपूर्वक पत्र में ग्रहण किये गये हैं। हम आपको तेजस्वी सूर्यदेव के निमित्त प्रार्थन करते हैं। आपका यह आग्रह-स्थान है। ज्योतिर्मान् तेजस्वी सूर्यदेव की प्रसन्नता के लिए आपको स्थापित करते हैं। हे तेजस्वी सूर्यदेव ! देवताओं में सर्वोत्कृष्ट आपकी भाँति हम भी मनुष्यों में वेदीप्यमान हों ॥३३॥

३३४. ऋतु त्वं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृजे विष्वाय सूर्यम् ।  
उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा प्राजायैव ते योनिः सूर्याय त्वा प्राजाय ॥३४॥

ये ज्योतिर्मयी रश्मियों सम्पूर्ण अग्निवत् के अन्न सूर्य को एव समस्त विश्व को दृष्टि प्रदान करने के लिए विशेष प्रकाशित होती हैं। हे ग्रह ! अन्न उपयाम-पात्र में गृहीत हो, हम आपको ज्योतिर्मान् सूर्य के लिए समर्पित करते हैं। हे ग्रह ! आपका यह आग्रह-स्थान है। तेजस्वी सूर्यदेव के निमित्त हम आपको स्थापित करते हैं ॥३४॥

३३५. आजिष्ठं कस्तुर्भी यज्ञं यज्ञं विदमन्ति यज्ञः । पुनर्यज्ञं विदमन्ति यज्ञः यज्ञं यज्ञं  
युक्तोरुधारा पचस्वती पुनर्भी विदमन्ति यज्ञः ॥३५॥

हे मज्जिमाधवी तौ ! आप इस कल्पित (यज्ञ से उत्पन्न) योजनबुद्ध मण्डल को संधे (वायु के माध्यम से ग्रहण करें), इसके सोमादि पोषक तत्व आपके अन्दर प्रविष्ट हों । उस ऊर्जा को पुनः सहस्रों पोषक धाराओं द्वारा हमें प्रदान करें । हमें यमस्वती (दुष्कर नौओं के पोषक-ऊतहों) एवं ऐश्वर्य आदि को पुनः-पुनः प्राप्ति हो ॥४२॥

[योजन प्रत्यक्ष होने के कारण वेदों ने कुम्भी, जड़ों एवं सूर्य किरणों को यज्ञ में यज्ञकर सम्मेलित किया है । उक्त कल्पिका या ऊर्जा इसी संदर्भ में स्पष्ट होता है ।]

३३६. इहे रनो हव्ये काव्ये चन्ने ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विभ्रुति । एता ते अज्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ॥४३॥

विभिन्न दैवी गुणों से सुशोभित हे येनू ! आप सब के द्वारा वंशोत्तरीय, रमणीय, यज्ञ के लिए उपयोगी, दुष्ट भी देने वाली, दैवी गुणों को बढ़ाने वाली, दुष्ट का प्रच्छेद देने वाली, मूर्ध्निधात्री, सुप्रसिद्ध और वध न करने योग्य हैं । इस प्रकार हमारे द्वारा अत्यधिकृत आप देवताओं के प्रति समर्पित इस श्रेष्ठ यज्ञ के प्रति देवताओं से कहें, जिससे वे हमारे निवेदन को स्वीकार करें ॥४३॥

३३७. वि नऽ इन्द्र मृषो जहि नीचा यच्छ पुतन्यतः । यो अस्मिन् अभिदासत्यधरं गमया तमः । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा विमुधऽ एव ते योनिरिन्द्राय त्वा विमुधे ॥४४॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे रिपुओं को पराजित करें । रणक्षेत्र में हमारे शत्रुओं को परास्त करें जो हमें अपने अधीन रखना चाहते हैं, उनका जीवन घोर अन्धकारमय हो । हे प्रह ! आप उपयाम-पात्र में ग्रहण किये गये हैं । आपको शत्रु-संहारक इन्द्रदेव के लिए ग्रहण करते हैं । आपको यह स्थान है, आपको यहाँ विशिष्ट रण-कौशल दिखाने वाले इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए स्थित करते हैं ॥४४॥

३३८. वाचस्पतिं विश्वकर्माणभूतये मनोजुषं वाजे अवा हुवेम । स नो विश्वानि हवनानि जोषहिः स्वशम्भूरवसे सायुकर्मा । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मणऽ एव ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे ॥४५॥

जो महाधत्री वाचस्पति मन के सदृश चतुर्भुज सर्वश्रेष्ठ कर्मों के निर्माता है । इस यज्ञ के निमित्त हम उनका (इन्द्रदेव का) आवाहन करते हैं । उत्तम कर्म करने वाले, सबके हितकारक से हमारे इतिव्याप्त को स्वीकार करें हे प्रह ! आप उपयाम-पात्र में ग्रहण किए गए हैं, यह आपका अश्वक-स्थल है । हम आपको विश्वकर्मा इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए समर्पित करते हैं ॥४५॥

३३९. विश्वकर्मन् इविषा वर्धनेन व्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यात् । तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मणऽ एव ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे ॥४६॥

सम्पूर्ण उत्तम कर्मों को सम्पन्न करने वाले हे विश्वकर्मा देव ! आप वृद्धि करने वाले इतिव्याप्तरूप साधनों से यजमान की रक्षा करने वाले हैं । ऋषियों के ज्ञान से प्रेरित साधक, आपको गमन करते हैं । आप विशेष आदरपूर्वक आवाहन करने योग्य हैं, इसीलिए आपको सभी प्रणम करते हैं । हे श्रेष्ठ ! आप उपयाम-पात्र में ग्रहण करने योग्य हैं । आपको विश्वकर्मा इन्द्रदेव की प्रसन्नता हेतु अर्पण करते हैं । यह आपका स्थान है, अतः आपको विश्वकर्मा इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए प्रतिष्ठित करते हैं ॥४६॥

३४०. उपयामगृहीतोऽयमनये त्वा मायत्रच्छन्दसं गृह्णामीन्द्राय त्वा त्रिष्टुच्छन्दसं गृह्णामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जगच्छन्दसं गृह्णाम्यनुष्टुपोभिमतः ॥४७॥

(अदाध्यपत्र में ग्रहण करते) हे सोम । आप उपवास-पत्र में ग्रहण करने योग्य हैं । यजत्री छन्द से धारण करने योग्य आपको हम अग्निदेव के निमित्त ग्रहण करते हैं । त्रिष्टुप् छन्द से धारण करने योग्य आपको इन्द्रदेव की प्रसन्नता हेतु स्वीकार करते हैं तथा जगती छन्द से आपको सर्वदेव-समूह के लिए धारण करते हैं । (हे अदाध्यपत्र में स्थित सोम ।) अनुष्टुप् छन्द से बट्टकाली से हम आपको स्तुति करते हैं ॥४३॥

॥४१॥ घेशीनां त्वा पयसा धूनोमि कुकूननानां त्वा पयसा धूनोमि भन्दनानां त्वा पयसा धूनोमि भदिन्नमानां त्वा पयसा धूनोमि पयुनानां त्वा पयसा धूनोमि शुक्रं त्वा शुक्रऽआ धूनोम्यहो क्रवे सूर्यस्य रश्मिषु ॥४८॥

हे सोम । येषों में सन्निहित जल की वृष्टि हेतु आपको कम्पवन्मन करते हैं । संसार के लिए कल्याणकारी ध्वनि करने वाले येषों के अन्दर जो जल है, उसकी वृष्टि हेतु आपको कम्पित करते हैं । अत्यन्त आनन्ददायक येषों के भीतर जो जल है, उसके वर्णन के निमित्त आपको कम्पित करते हैं । अर्थात् संतुष्टिप्रद, येषों के अन्दर जो जल है, उसकी वृष्टि के निमित्त आपको कम्पित करते हैं । जो येष अमृत कपी जल से रसपूर्ण हैं, उनकी वृष्टि के निमित्त आपको कम्पवन्मन करते हैं । शक्ति-सम्पन्न रश्मि — ऐसे आपको रश्मि जल के निमित्त कम्पित करते हैं तथा आपको दिवसरूप सूर्यदेव की किरणों के निमित्त कम्पित करते हैं ॥४८॥

॥४२॥ ऋकुषध्वङ्ग्यं युषधस्य रोचते बृहच्छुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः सोमः सोमस्य पुरोगाः । यत्ते सोमादाध्यं नाम जागृमि तस्मै त्वा बृहणामि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा ॥४९॥

हे सोम । कल्याण-तेजस्वी आपका महान् स्वरूप सूर्य के समान प्रकाशित होकर है । महान् आदित्य सोम के आगे चलने वाले हैं, वह सोम ही सोम के अग्रगामी हैं । हे सोम । आप ज्ञान को प्राप्त न होने वाले, जीवन तथा आयु हैं । इसके लिए हम आपको ग्रहण करते हैं । श्रेष्ठ कर्म में संलग्न हम आपको अहति समर्पित करते हैं ॥४९॥

॥४३॥ उजिक् त्वं देव सोमाम्नेः प्रियं पाषोपीहि वली त्वं देव सोमेन्द्रस्य प्रियं पाषोपीह्यस्मत्सखा त्वं देव सोम विश्वेषां देवानां प्रियं पाषोपीहि ॥५०॥

हे दिव्यगुणों से सम्पन्न सोम । आप दीक्षिमान् अग्नि के विश्व आकाररूप में उन्हें प्राप्त करें । हे देव सोम । आप जितेन्द्रिय इन्द्र के विश्व रूप में उन्हें प्राप्त करें । हे देवसोम । आप हमारे विश्व होकर सम्पूर्ण देव-समूह के विश्व मार्ग का अनुसरण करें अर्थात् प्रेरण करते हुए सबको सन्तुष्ट करें ॥५०॥

॥४४॥ इह रतिरिह रमणमिह क्षतिरिह स्वप्रतिः स्वाहा । उपसृजन् वरुणं मात्रे वरुणो भातरं वयन् । रायस्पोषमस्यासु दीधरत् स्वाहा ॥५१॥

हे गौत्रो । आपको बज्रों के प्रति प्रीति रहे । इससे संतुष्ट रहकर आनन्दपूर्वक काम करें । यह अहति आपको समर्पित है । जगत् को धारण करने वाले दिव्य अग्निदेव धरती पर स्थूल अग्नि को प्रकट करें तथा वाणीकरण द्वारा करती वह जल सुखकर कण-वर्जन के साथ वृष्टि करें । हमें पुत्र-पौत्रों के साथ अपार वैभव प्रदान करें । यह अहति आपको समर्पित है ॥५१॥

॥४५॥ सत्रस्य ऋद्धिरस्यमन्त्र ज्योतिरमृताऽअभूव । दिवं पृथिव्याऽअभ्यास्तुहामाविदाम देवानस्वज्योतिः ॥५२॥

हे सोम । आप यज्ञ की सर्गिष्टि को बढ़ाने वाले हैं । हम यजमान आपके सहयोग से सूर्यरूप ज्योति से ज्योतिष्ठ होकर अपरत्व को प्राप्त करें तथा हम भूस्तेक से दिक्स्तेक में आरोहण करें । हम देवों के ज्योतिर्गम्य स्वर्गलोक को देखने में समर्थ हों ॥५२॥

३४६. युवं तमिन्द्रापर्यता पुरोयुधा सो नः पृतन्यादथ तं तमिद्धतं वस्त्रेण तं तमिद्धतम् । दूरे  
क्षताय छन्त्सह्रहं यदि नक्षत् । अस्माकं जत्रयपरि जूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः ।  
भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाधि स्थाम सुवीरा वीरैः सुपोषाः पोषैः ॥५३॥

युद्ध-क्षेत्र में आगे बढ़कर पराक्रम दिखाने वाले हे इन्द्रापर्यत देवो । आप दोनों युद्ध करने वाले वस्त्रेण सत्रु  
को अपने तोहण सत्र के प्रहार से वस्त्रेण पहुँचाएँ । हे सोम ! जत्रुओं द्वारा बारों ओर से घिर जाने पर, हमें उनसे  
मुक्त कराएँ । पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग तीनों लोकों में स्वप्ता हे देव । आपके अनुग्रह से हम सभी याजक श्रेष्ठ,  
वीर-पराक्रमी सन्तानों से युक्त होकर अन्ध-वैधव्य से स्वच्छान्वित हों ॥५३॥

३४७. परमेष्ठ्यधिधीतः प्रजापतिर्वाधि व्याहृतायाधन्वो अच्छेतः । सविता सन्या  
विश्वकर्मा दीक्षायां पूषा सोमकृयम्याधिनः ॥५४॥

(हे याजको ! ) हे यज्ञ में प्रयुक्त 'परमेष्ठी' नाम वाले 'सोम' । आप के लिए, (विघ्नों की उपस्थिति पर)  
"परमेष्ठिने स्वाहा" मंत्र से आज्याहुति दी जाए । स्मृति किये जाने पर प्रजापति नाम वाले सोम के लिए (विघ्नों  
की उपस्थिति पर) "प्रजापतये स्वाहा" मंत्र से आज्याहुति दें । सोम के अभियुक्त होने पर 'अन्धजन्म' होने से  
(यज्ञमान किसी विघ्नोपस्थिति पर) "अन्धसे स्वाहा" मंत्र से आज्याहुति अर्पित करें । सोम के फेवक-संरक्षक  
सोम 'सविता' नाम होने पर ( किसी विघ्नोपस्थिति में ) "सवित्रे स्वाहा" मन्त्रोच्चारण से आज्याहुति दें । दीक्षा  
में सोम का विश्वकर्मा नाम होने से (विघ्नोपस्थिति पर) "विश्वकर्मासे स्वाहा" मंत्र से आज्याहुति अर्पित करें  
आरोग्यवर्द्धक किरणों को लाने वाले सोम के पूषा नाम होने पर "पूषसे स्वाहा" मंत्र से आज्याहुति दी जाए ॥५४॥

३४८. इन्द्रश्च मरुतश्च क्रयायोपोत्थितोसुरः पच्यमानो मित्रः ऋतो विष्णुः शिपिविहऽ  
करावासन्नो विष्णुर्नरन्धिकः ॥५५॥

खुरोदने के लिए तत्पर होने पर सोम का इन्द्रदेव और मरुदेव नाम होने से (अविघ्नोपस्थिति पर)  
"इन्द्राय मरुतश्च स्वाहा" मंत्र से आज्याहुति दें । खुरोदने समय 'असुर' नाम वाले सोम के लिए (अविघ्न  
उपस्थिति होने पर) "असुराय स्वाहा" मंत्र से आज्याहुति दें । पृथक् देकर अथ किन्ना हुआ सोम 'मित्र' नाम होने  
से (विघ्न आने पर) "मित्राय स्वाहा" मंत्र से आज्याहुति दें । वज्रकन की मोद में उपलब्ध सोम 'विष्णु' नामधारी  
होने पर (किसी विघ्न निवारण हेतु) "विष्णवे शिपिविहऽ स्वाहा" मंत्र से आज्याहुति अर्पित करें । राकट पर  
रखकर ले जाया आ रहा सोम, विष्णु नाम से जाना जाता है । (कोई विघ्न आने पर) "विष्णवे नरन्धिकाय स्वाहा"  
मंत्र से आज्याहुति प्रदान करें ॥५५॥

३४९. प्रोह्यमाणः सोमऽ आनतो वरुणऽ आसन्ध्यामासन्नोमिराप्नीहऽ इन्द्रो हविर्धने  
धर्वोपावहियमाणः ॥५६॥

गाड़ी द्वारा आने वाला सोम 'सोम' नाम से ही जाना जाता है, उसे (किसी विघ्नोपस्थिति पर) "सोमाय स्वाहा"  
मंत्र से आज्याहुति अर्पित करें । चौको पर सुरक्षित सोम 'वरुण' नाम होने पर (किसी विघ्नोपस्थिति की स्थिति में)  
"वरुणाय स्वाहा" मंत्र से आज्याहुति दें । आन्ध्र में सर्जित हो सोम 'अग्नि' नाम होने पर (विघ्नोपस्थिति पर)  
"अग्नये स्वाहा" मंत्र से आज्याहुति अर्पित करें । इक्षिक्त्र के रूप वाला सोम 'इन्द्र' नाम से जाना जाता है ।  
उसे ( किसी विघ्नोपस्थिति में ) "इन्द्राय स्वाहा" मंत्र से आज्याहुति दें । अक्षिक्त्र के लिए प्रयुक्त सोम 'अथर्व'  
नाम होने पर (किसी विघ्नोपस्थिति पर) "अथर्वाय स्वाहा" से आज्याहुति दें ॥५६॥

३५०. विश्वे देवाऽ अथ शृणु न्युप्तो विष्णुराप्नीतपाऽ आन्याधन्वो वनः सूचमानो विष्णुः  
सन्धियमाणो वायुः पूयमानः शुक्रः वृतः शुक्रः क्षीरजीर्णवी सक्तुजीः ॥५७॥

जागों में स्थापित करके रखा। यज्ञ सोम 'विश्वेदेव' नाम होने पर (किसी विष्णु के आगमन पर) 'विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा' से घृताहुति अर्पित करें। उपासकों का संरक्षक सोम 'विष्णु' नाम होने से (किसी विष्णु के आगमन पर) 'विष्णवे आसीतपाय स्वाहा' से घृताहुति दें। अभिषेक को प्राप्त होने काल सोम 'यम' नाम से जाना जाता है, उसे (विष्णोपस्थिति पर) 'यमाय स्वाहा' से घृताहुति दें। अभिषेक सोम 'विष्णु' नाम वाला होता है, उसे (विष्णोपस्थिति पर) 'विष्णवे स्वाहा' से घृताहुति दें। स्तुतिकरण क्रिया में सोम 'सवु' संज्ञक होने पर (किसी विष्णोपस्थित होने पर) 'सवसे स्वाहा' से घृताहुति दें। स्तुति किया जाने वाला पवित्र सोम 'शुक्र' नाम होने पर (यदि विष्णु आए तो) 'शुक्राय स्वाहा' मंत्र से घृताहुति दें। पवित्र हुआ सोम दुग्ध में मिश्रित होने पर 'शुक्र' संज्ञक ही है, ऐसी स्थिति में (विष्णोपस्थिति में) 'शुक्राय स्वाहा' मंत्र से ही आज्याहुति दें। सतू में मिश्रण युक्त सोम 'मन्वी' नाम होने पर (विष्णोपस्थिति पर) 'मन्विने स्वाहा' मन्त्र से आज्याहुति दें ॥५७॥

३५१. विश्वे देवाक्षमसेचूरीतोसुहोभायोद्यतो रुद्रो ह्यमानो वातोभ्यावृत्तो नृचक्षाः  
प्रतिख्यातो भक्षो भक्ष्यमाणः पितरो नाराज्ञस्तथा साः ॥५८॥

यज्ञ के लिए 'यमस' यज्ञ में स्थित सोम 'विश्वेदेव' के नाम वाला होने पर (विष्णु की उपस्थिति में) 'विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा' मंत्र से आज्याहुति दें। यह यज्ञ के लिए प्रयुक्त सोम 'असु' नाम होने पर (विष्णु शान्ति के लिए) 'असवे स्वाहा' मन्त्र से घृताहुति अर्पित करें। हवि के रूप में प्रयुक्त सोम 'रुद्र' नामवाला होने पर (विष्णु शान्ति के लिए) 'रुद्राय स्वाहा' से आज्याहुति दें। अवशेष हविरूप सोम भक्षणार्थ लाया गया 'वात' नाम वाला है, उसे (विष्णु शान्ति के लिए) 'वाताय स्वाहा' मन्त्र से घृताहुति दें। हे ब्रह्मन्। यज्ञ में बचे हुए सोम को ग्रहण करें, इस प्रकार प्रार्थनाकृत सोम 'नृचक्ष' संज्ञक है, उसे (विष्णु शान्ति के लिए) 'नृचक्षसे स्वाहा' से आज्याहुति दें। पान किया जाता हुआ सोम 'भक्षक' संज्ञक है, उसे (विष्णु के निवारणार्थ) 'भक्षाय स्वाहा' से घृताहुति दें। भक्षण पश्चात् सोम 'नाराजस' पितर संज्ञक है (कई विष्णु आने पर) उसे 'विश्वेभ्यो नाराजसेभ्यः स्वाहा' मंत्र से घृताहुति अर्पित करें ॥५८॥

३५२. सन्नः सिन्धुरवभूयायोद्यतः समुद्रोध्यवह्रियमाणः सलिलः प्रप्लुतो ययोरोजसा  
स्कभिता रजास्तसि दीर्घोभर्वीरतमा ज्विष्ठा । य पत्येते अप्रतीता सहोभिर्विष्णु  
अगन्वरुणा पूर्वहृती ॥५९॥

अभ्युष (यज्ञोपरान्त पवित्र स्नान) के लिए प्रयुक्त सोम 'सिन्धु' नाम से जाना जाता है। उस समय (विष्णु उपस्थित होने पर निवारण हेतु) 'सिन्धवे स्वाहा' से आज्याहुति दें। ऋजोष कुम्भ में जल के ऊपर रखा हुआ सोम 'समुद्र' संज्ञक है, उसे (विष्णोपस्थिति पर) 'समुद्राय स्वाहा' से घृताहुति दें। ऋजोष कुम्भ के जल में व्याप्त सोम 'सलिल' संज्ञक है, उसे (विष्णु उपस्थिति के निवारणार्थ) 'सन्निताय स्वाहा' इससे घृताहुति दें। जिन विष्णु और वरुण के पराक्रम से ब्रह्माण्ड के घटक अपने-अपने स्थान पर स्थित हैं, जो अपने पराक्रम से अत्यन्त बलशाली हैं तथा जो अपनी सामर्थ्य-शक्ति से अद्वितीय हैं वे सत्रुओं को परास्त करते हैं, उनके लिए यज्ञ में प्रथम आहुति अर्पित की जाती है, वह मंगलकरी आहुति उनके लिए समर्पित है ॥५९॥

३५३. देवान्दिवमगन्यज्ञस्ततो वा इविजमह मनुष्यान्तरिक्षमगन्यज्ञस्ततो वा इविजमह  
पितृन्पृथिवीमन्यज्ञस्ततो वा इविजमह यं कं च लोकमन्यज्ञस्ततो मे भद्रमभूत् ॥६०॥

जो यज्ञ देवताओं और दिव्यस्तोक में कहा, उस दिव्य यज्ञ के फल, दैवी अनुदान के रूप में, विशिष्ट ऐश्वर्य हमें प्राप्त हो। जो यज्ञ अन्तरिक्ष को प्राप्त हुआ, उससे श्रेष्ठ यज्ञ हमें प्राप्त हो। जो यज्ञ पितरों और पृथ्वी को प्राप्त हुआ, उससे हमें वैश्व की प्राप्ति हो तथा वह यज्ञ जिस-किसी लोक में भी गया हो उससे हमारा मंगल हो ॥६०॥

३५४. चतुस्त्रिंशत्सन्तवो ये वितन्निरे यऽ इमं यज्ञं स्वधया ददन्ते । तेषां छिन्नं सम्भवेत्तद्वयमि स्वाहा धर्मो अध्येतु देवान् ॥६१॥

यज्ञों को संवर्द्धित करने वाले प्रकलवि आदि चौतीस देवता यज्ञ का विस्तार करते हैं तब त्रेष्ठ-धेयक पदार्थ याजकों को प्रदान करते हैं । यज्ञ विस्तारक देवताओं से त्रेष्ठ वैधव्य को हम यज्ञ-कार्य में ही नियोजित करते हैं । देवताओं के लिए समर्पित यह आहुति उनके आनन्द को बढ़ाने वाली सिद्ध हो ॥६१॥

[१ इन्द्र, १ अश्विनी और १ अश्वि के साथ ८ यज्ञ, ११ का और ११ अश्वि-कुल ३४ देवता यज्ञ के विस्तारक होते हैं।]

३५५. यज्ञस्य दोहो विततः पुरुजो सो अहवा दिवमन्याततान् । स यज्ञं मुक्ष्य महि मे प्रजायां रायस्पोषं विम्वमायुरशीय स्वाहा ॥६२॥

यज्ञ का फल विविध प्रकार से विस्तृत होकर आठों दिशाओं में अर्थात् अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो । यह यज्ञ-पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग में विस्तृत होकर हमें धन, सन्तान आदि अन्तर वैधव्य प्रदान करे । इस प्रक्रिया से हम सम्पूर्ण आयु को प्राप्त करें—इसके निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥६२॥

३५६. आ पयस्व हिरण्यवदम्वयत्सोम वीरकत् । वाजं गोमन्तमा धर स्वाहा ॥६३॥

हे सोम ! आप इस वृक्ष-स्तम्भ को पवित्र करें । इसे स्वर्ण, अश्व, गौ और अजादि ऐश्वर्य-सम्पदा प्रदान करें—यह आहुति आपके प्रति समर्पित है ॥६३॥



## —ऋषि, देवता, छन्द-विचरण—

**ऋषि**—कुलस आगिरस १-३ । कुलस ४, ५ । बरहस्पति ६-१३ । मनसस्पति १४, १६, २१ । अग्नि १५, १७-२०, २२ । मेधातिथि २३ । शुनः शेष २३ । शुनः शेष २४-२६, २८-३० । अगस्त्य, शुनः शेष २७ । गोतम ३१, ३३, ३५ । मेधातिथि ३२ । मधुच्छन्दा ३४ । विश्वान् ३६-३७ । वैश्वानस ३८ । कुरुस्तुति ३९ । प्रत्यक्ष ४० । देवगण ४१, ४७-५२ । कुसुमविन्दु ४२, ४३ । शतस जायमान ४४-४६ । परच्छेष ५३ । वसिष्ठ ५४-६२ । नैधुवि कश्यप ६३ ।

**देवता**—सोम, विष्णु १ । आदित्य २-४ । आदित्य आशीर्वाद ५ । सविता ६, ७ । विश्वेदेवा ८, १५ । सोम, प्रजापति रूप आत्म ९ । अग्नि, प्रजापति १० । ऋतसाध, काम ११ । पशुधेय इत्य १२ । अग्नि १३, १९, २०, २४, ३८ । त्वष्टा १४, १६ । धात्र आदि १७ । देवगण १८ । वात २१ । यज्ञ, यज्ञपति २२ । रज्जु, वरुण २३ । सोम २५, ४८-५० । ६३ । अन्नः (जलो, सोम २६ । यज्ञ, अग्नि २७ । गर्भ २८, ३० । यज्ञा २९ । मरुद्गण ३१ । धात्र-पृथिवी ३२ । इन्द्र ३३, ३६, ३९, ४४ । इन्द्र-वरुण अथवा वेदशी ३७ । सूर्य ४०, ४१ । गौ ४२, ४३ । विश्वकर्मा ४५ । इन्द्र, विश्वकर्मा ४६ । अश्विन ४७ । वसु, अग्नि ५१ । वज्रपत्न्यभात-स्तुति ५२ । इन्द्रावर्षत्, इन्द्र ५३ । प्रजापति आदि ५४ । इन्द्रादि ५५ । वरुणादि ५६ । विश्वेदेवा आदि ५७, ५८ । सिन्धु आदि, विष्णु-वरुण ५९ । आशीर्वाद सिन्धेय ६० । गर्भ ६१ । यज्ञ ६२ ।

छन्द— आर्चो पंक्ति १ । भुरिक् पंक्ति २ । निचृत् आर्चो पंक्ति ३ । निचृत् जगती ४ । प्राजापत्या अनुष्टुप्  
 निचृत् आर्चो जगती ५ । निचृत् आर्चो त्रिष्टुप् ६ । विराट् ब्राह्मी अनुष्टुप् ७ । प्राजापत्या गायत्री, निचृत् आर्चो बृहती  
 ८ । प्राजापत्या गायत्री, आर्चो उष्णिक्, स्वराट् आर्चो पंक्ति ९ । विराट् ब्राह्मी बृहती १०, ४७ । निचृत् आर्चो अनुष्टुप्  
 ११ । आर्चो पंक्ति १२, ४३, ५५ । सप्तमी उष्णिक्, (दो) निचृत् साम्नी उष्णिक्, निचृत् साम्नी अनुष्टुप्, भुरिक्  
 प्राजापत्या गायत्री, निचृत् आर्चो उष्णिक् १३ । विराट् आर्चो त्रिष्टुप् १४, १६ । भुरिक् आर्चो त्रिष्टुप् १५, १९,  
 ३६ । स्वराट् आर्चो त्रिष्टुप् १७, २०, ६२ । आर्चो त्रिष्टुप् १८, २४ । स्वराट् आर्चो उष्णिक् २१ । भुरिक् साम्नी  
 बृहती, विराट् आर्चो बृहती २२ । याजुषी उष्णिक्, निचृत् आर्चो त्रिष्टुप्, आसुरी गायत्री २३ । भुरिक् आर्चो पंक्ति  
 २५ । स्वराट् आर्चो बृहती २६ । भुरिक् प्राजापत्या अनुष्टुप्, स्वराट् आर्चो बृहती २७ । (दो) भुरिक् साम्नी उष्णिक्,  
 प्राजापत्या अनुष्टुप् २८ । भुरिक् आर्चो अनुष्टुप् २९ । आर्चो जगती ३० । आर्चो गायत्री ३१, ३२ । आर्चो अनुष्टुप्,  
 आर्चो उष्णिक् ३३ । विराट् आर्चो अनुष्टुप्, आर्चो उष्णिक् ३४, ३५ । सप्तमी त्रिष्टुप्, विराट् आर्चो त्रिष्टुप् ३७ ।  
 भुरिक् त्रिषाद् गायत्री, स्वराट् आर्चो अनुष्टुप्, भुरिक् आर्चो अनुष्टुप् ३८ । (दो) आर्चो गायत्री, आर्चो उष्णिक्  
 ३९ । (दो) आर्चो गायत्री, स्वराट् आर्चो गायत्री ४० । निचृत् आर्चो गायत्री, स्वराट् आर्चो गायत्री ४१ । स्वराट् ब्राह्मी  
 उष्णिक् ४२ । निचृत् अनुष्टुप्, स्वराट् आर्चो गायत्री ४४ । भुरिक् आर्चो त्रिष्टुप्, विराट् आर्चो अनुष्टुप् ४५ । निचृत्  
 आर्चो त्रिष्टुप्, विराट् आर्चो अनुष्टुप् ४६ । कनूषी पंक्ति, (दो) याजुषी जगती, साम्नी बृहती ४८ । विराट् प्राजापत्या  
 जगती, निचृत् आर्चो उष्णिक् ४९ । भुरिक् आर्चो जगती ५०, ५१ । निचृत् आर्चो बृहती ५२ । आर्चो अनुष्टुप्,  
 आसुरी उष्णिक्, प्राजापत्या बृहती, विराट् प्राजापत्या पंक्ति ५३ । निचृत् ब्राह्मी उष्णिक् ५४ । आर्चो बृहती ५६ ।  
 निचृत् ब्राह्मी बृहती ५७ । भुरिक् आर्चो जगती ५८ । निचृत् जगती, विराट् आर्चो गायत्री ५९ । स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप्  
 ६० । ब्राह्मी उष्णिक् ६१ । स्वराट् आर्चो गायत्री ६३ ।

## ॥ इति अष्टमोऽध्यायः ॥





# ॥ अथ नवमोऽध्यायः ॥

३५७. देव सवितः प्रसुत यज्ञं प्रसुत यज्ञपतिं भगवत् । दिव्यो बन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु  
वाचस्पतिर्वाजं नः स्वदतु स्वाहा ॥१॥

हे तेजस्वी सविता देव ! इस यज्ञ को उत्तम विधि से पूर्ण करें । यज्ञमान को वन-धान्य के लाभ के लिए प्रेरित करें । अन्न को पवित्र करने वाली दिव्य विद्यों से हमारा अन्न को पवित्र बनाएँ और वाचस्पतिदेव हमारी अन्नरूप आहुति को ग्रहण करें ॥१॥

३५८. ध्रुवसदं त्वा नृषदं मनःसदमुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय  
त्वा जुष्टतमम् । अप्सुषदं त्वा द्युतसदं व्योमसदमुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष  
ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । पृथिविसदं त्वान्तरिक्षसदं दिविसदं देवसदं  
नाकसदमुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥२॥

(हे सोमदेव ! ) आप सबसे अधिक योग्य नेतृत्व करने वालों के फलस्वरूप पानय-प्रमुदाय के मन में रमने वाले, स्थिररूप से प्रतिष्ठित इन्द्रदेव के आग्रह-स्थान हैं । इन्द्रदेव के योग्य जानकर आपको ब्रह्मण करते हैं । आप सबसे उपयाम-पात्र में स्थापित हों । इसी प्रकार अन्यत्रों में आकाश में तथा वृत्त में तेजस्वीरूप में विराजमान इन्द्रदेव के योग्य जानकर हम आपको ब्रह्मण करते हैं । आप दिव्य उपयाम-पात्र में स्थापित हों । इसी तरह पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक, ज्ञानीजनों तथा दुःखों में रहित रूप में इन्द्रदेव के योग्य जानकर आपको ब्रह्मण करते हैं । यह आपका आश्रय स्थान है । आप तीसरे उपयाम-पात्र में भी स्थापित हों ॥२॥

३५९. अपा ३१ रसमुद्वयस ३१ सूर्ये सन ३१ समाहितम् । अपा ३१ रसस्य यो रसस्तं वो  
गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥

हे सोम ! प्रकाश (सूर्य) में रहनेवाले, सब प्रकार से क्षरण करने योग्य उत्त के सार के भी सार कल्याणकारी रूप (अन्नादि द्रव्य को) हम इन्द्रदेव तथा अन्य के लिए उत्तम उपयाम-पात्र में स्थापित करते हैं । यह आपका स्थान है । सबसे प्रिय लगने वाले, हम आपको इन्द्रदेव के लिए ग्रहण करते हैं । ३ ॥

३६०. महा ऽ ऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्राश्च यतिश्च । तेषां विशिप्रियाणां वोहमिषमूर्जं ३१  
समग्रभमुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । सम्भूची  
स्थः सं मा भद्रेण पृक्तं विपुची स्त्रो वि मा पाप्मना पृक्तम् ॥४॥

हे महो (सोमरस एवं आसव के पात्रों) आप योधावियों को श्रेष्ठ यति प्रदान करते हैं । हम वाजकों के निमित्त (आपके अन्दर) उक्त रसों को ठीक प्रकार से स्थापित करते हैं । हे वाचवें मह (पात्र) ! आप नियमानुसार स्थापित किये गये हैं । इन्द्रादि देवताओं की प्रसन्नता के लिए हम आपको ब्रह्मण करते हैं । यह अन्नरूप आवास है । आप दोनों साथ रहकर हमें कल्याण एवं सुख प्रदान करें और अलग रहकर आपों से हमें बचाएँ ॥४॥

३६१. इन्द्रस्य यज्ञोसि वाजसास्त्वयस्य वाजसं सेत् । वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदिति  
नाम वक्षसा करामहे । वस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेज तस्या नो देवः सविता धर्मः ३१  
साविषत् ॥५॥

यज्ञजला में द्रव्यजल पड़ाने वाले तब की स्वास्य के साथ यह पत्र कोच जला है । यदि पृथ्वी को अन्न प्रदान करने वाले तब को संवेष्टित करते प्रतीत होते हैं—

आप इन्द्र के यज्ञ के समान अमोघ हैं । आप अन्न युक्त हैं, इसे (यज्ञ या याज्ञक को) आपसे अन्न प्राप्त हो । हम अपनी वाणी ( मंत्रों ) से माता अदिति के सम्पन्न घरती याता को अन्नोदि प्राप्ति के लिए निश्चित रूप से प्रेरित करते हैं । यह समस्त विश्व जिनके प्रभाव क्षेत्र में स्थित है, वे खविता हमारे लिए धर्म को गतिशील बनाएँ ॥५॥

३६२. अयस्वन्तरमृतमप्सु मेवजमयामुत प्रशस्तिष्वम्बा भवत वाजिनः । देवीरापो यो य ऊर्जमिः प्रतूर्तिः ककुन्मान् वाजसास्तेनायं वाजधं सेत् ॥६॥

जल के अन्तः स्थल में अमृत तथा पुष्टिकारक ओषधियाँ हैं । अन्न (गतिशील पशु अथवा प्रकृति के पोषक प्रवाह), अमृत और ओषधिरूपी जल का पान कर जलवान् हों । हे जलसमूह ! आपको ऊँची तथा वेगवान् तरंगों हमारे लिए अन्नप्रदायक बनें ॥६॥

३६३. वातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविधं शतिः । ते अग्नेश्वरयुञ्जंस्ते अस्मिञ्जवमादधुः ॥७॥

वायु, मन, गंधर्व, पृथ्वी को धारण करने वाले सप्तइस नक्षत्र अदि पहले से ही अपने साथ अन्न (तीव्र गति) को जोड़े हुए हैं । वे इस यज्ञ को गतिशील बनाएँ ॥७॥

[सप्तइस नक्षत्रों की संयुक्त सम्कारण शक्ति (यूपयुज्य जीयेतेऽन्ना) वे ही पृथ्वी को सम रखा है । पतिशील (कनु, मन, नक्षत्रादि) की शक्ति से वह यज्ञ अनुप्राणित हो-ऐक्य प्राप्त है ।]

३६४. वातरधं ह्यो भव वाजिन्पुज्यमानऽ इन्द्रस्येव दक्षिणः शिवैधि । पुञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदसऽ आ ते त्वह्ना पत्सु जवं दधातु ॥८॥

हे वाजिन् (अग्नि) । रथ में जुड़ जाने पर अन्न वायु के सम्पन्न वेग वाले बनें । दक्षिण भाग में रहकर इन्द्रदेव की शोषा बढ़ाएँ । मेधावी बृहद्गण आपकों रथ में नियोजित करें और त्वह्नादेव आपके पैरों को वेगवान् बनाएँ ॥८॥

३६५. जवो यस्ते वाजिन्निहितो गुहा यः श्येने परीतो अचरच्च घाते । तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन वाजजिच्च भव समने च पारयिष्णुः । वाजिनो वाजजितो वाज धं सरिष्यन्तो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत ॥९॥

हे बलशाली ! जो आपकी गति हृदय में, श्येन पक्षी में तथा वायु में है, उस बल से बलशाली होते हुए हमें युद्ध में विजयी बनाएँ । युद्ध में शत्रुओं को पराजित कर हमारा संकट दूर करें । हे अन्न विवेता । बलशाली (अग्नि) अन्न प्राप्ति की कामना से बृहस्पति के चरु भाग को सूँघें (सुखान्त को प्राप्त करें) ॥९॥

३६६. देवस्याहधं सवितुः सवे सत्यसवसो बृहस्पतेस्तमं नाकधं रुहेयम् । देवस्याहधं सवितुः सवे सत्यसवसऽइन्द्रस्योत्तमं नाकधं रुहेयम् । देवस्याहधं सवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेस्तमं नाकमरुहम् । देवस्याहधं सवितुः सवे सत्यप्रसवसऽइन्द्रस्योत्तमं नाकमरुहम् ॥१०॥

सत्य मार्ग पर चलने की प्रेरणा देने वाले सवितु देव के अनुशासन में रहकर हम (याज्ञकगण) बृहस्पतिदेव के श्रेष्ठ तथा इन्द्रदेव के उत्कृष्ट स्वर्ग में आरोहण करें । सत्य और सत्य से युक्त सभी सुखों के दाता सविता देवता की प्रेरणा से हम (याज्ञकगण) बृहस्पतिदेव एवं इन्द्रदेव के उत्कृष्ट स्वर्ग में (यज्ञ में) आरुढ़ हुए ॥१०॥

३६७. बृहस्पते वाजं जय बृहस्पतये वाचं वदत बृहस्पतिं वाजं जापयत । इन्द्र वाजं जयेन्द्राय वाचं वदतेन्द्रं वाजं जापयत ॥११॥

दुर्दृष्टियों के कान्ध को लज्जित करने पक्ष के निश्चित उच्चारित स्तुति-मन्त्रों का प्रयोग करते-करते आपको प्रेरित करने का संकेत इन मंत्रों में है—

हे बृहस्पते ! आज विजय प्राप्त करें । (हे सज्जनों !) बृहस्पतिदेव के लिए स्तुतियाँ बोलो, बृहस्पतिदेव को विजयी बनाओ । हे इन्द्रदेव ! आज विजय प्राप्त करें, (हे सज्जनों !) इन्द्रदेव के लिए स्तुतियों का गायन करो, इन्द्रदेव को विजयी बनाओ ॥११॥

३६८. एवा यः सा सत्या संवागभूद्यथा बृहस्पतिं वाजमजीजपताजीजपत बृहस्पतिं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम् । एवा यः स सत्या संवागभूद्यथेनं वाजमजीजपताजीजपतेनं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम् ॥१२॥

(हे दुन्दुभिवादक अथवा स्वर प्रयोगकर्ता !) एक साथ स्वर बिताकर ऐसी वाणी निकालो, जिससे बृहस्पतिदेव को युद्ध में विजय प्राप्त हो । हे वनों (समूहों) के स्वामी ! अपने सैनिकों, घोड़ों और रथों को (संग्राम के लिए) छोड़ दो, जिससे इन्द्रदेव को विजय प्राप्त हो सके । विजय प्राप्ति के बाद हे सेनाध्यक्ष ! अपने सैनिकों, घोड़ों और रथों को (आराम के लिए) पुनः कर दो ॥१२॥

३६९. देवस्याहुर्धं सवितुः सवे सस्यप्रसवसो बृहस्पतेर्वाजजितो वाजं जेषम् । वाजिनो वाजजितो ध्वनं स्कध्नुवन्तो योजना भिमानः काष्ठां मकहत ॥१३॥

सबको प्रेरणा देने वाले, सबको हर्षित करने वाले, सत्य के प्रेरक (साधितादेव तथा) बृहस्पतिदेव के अनुस्रवण में रहकर युद्ध में विजयी हो । लक्ष्मण में इसे विजय दिलाने वाले वेणवान् हे अजो ! शत्रु के मार्ग को रोकते हुए गाँव के लक्ष कोसों (दूर) को लक्षित हुए हमें स्वर्ग पर पहुँचाओ ॥१३॥

३७०. एष स्व वाजी क्षिपणिं तुरप्यति जीवायां बद्धो अपिकक्षऽ आसनि । क्रतुं दधिक्राऽ अनु स धं सनिष्यदस्य बाधकृत् धं स्यन्वापनीफणत् स्वाहा ॥१४॥

यह अथ, घोड़ा, बन्ध (जीन रखने का तन्त्र) और युद्ध में (लक्ष्मण के कथ में) बंधा हुआ, यज्ञ के उद्देश्य से मार्ग की सभी बाधाओं को दूर कर, रुद्ध रुद्ध करता हुआ आगे बढ़ता है । उस पर बैठा और जीवता से शत्रुओं पर लक्ष से वार करता है, इस उद्देश्य से यह आहुति समर्पित है ॥१४॥

३७१. वत स्मास्य ब्रवतस्तुरप्यतः पर्जन्यं वेरनुवाति प्रगर्धिनः । इधेनस्येव व्रजतो अङ्गुसं परि दधिक्राव्याः सहोर्जा तरिन्नतः स्वाहा ॥१५॥

जो पराक्रम के साथ बल वाले तौर के सम्मान से बहान्, अथ के समान अत्यन्त जीवता से सत्यवाणी बोलते हुए चलता है, वही शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकता है । यह आहुति इस हेतु अर्पित है ॥१५॥

३७२. शं नो भवन्तु वाजिनो ह्येषु देवताता पितद्रवः स्वर्काः । जम्पयन्तो हि वृकं रक्षां सि सनेम्यस्मद्ययवप्रभीवाः ॥१६॥

(यज्ञ में-युद्ध में) वाजिन् (कलशाली घोड़े, अग्नि) हमारे लिए कल्याणकारी हों और दैवी कार्य में यज्ञाहुतियों द्वारा और भी सुसज्जित हों । वे शत्रु की सर्व के समान कुटिलता वाले, बेहिये के सम्मान पीछे से आक्रमण करने वाले, विजयकारी दुष्ट पुरुषों (प्रवृत्तियों) को हमसे दूर करें ॥१६॥

३७३. ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं मिष्ये शृण्वन्तु वाजिनो पितद्रवः । सहस्वसा मेघसाता सनिष्यवो महो ये धनं सपिषेषु जधिरे ॥१७॥

प्रसिद्ध याज्ञिक, अश्वों पर सवारी करने वाले, कलशान्, असाधन-वर्ति वाले और हमारे शत्रुओं को सुनें । हजारों को हार करने वाले, यज्ञ के अविच्छेद, (अविच्छेदकत्वों की) आर्पण करने वाले और लोग (जीवन-संग्राम में) महान् ऐश्वर्यशाली बनते हैं ॥१७॥

३७४. वाजे-वाजेऽवत वाजिनो नो बनेषु विप्राऽऽमृताऽऽकृतज्ञाः । अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥१८॥

हे बलशाली अश्वो (यज्ञाग्नि) ! मधुर रस के पान से तृप्त होकर देवयान मार्ग से आगे बढ़ो । मेघावी, दीर्घजीवी एवं सुत्य मार्ग में जाने वाले आप हमें अन्नार्द्ध धन-धान्य से कृप्य करके, हमारा पालन करें ॥१८॥

३७५. आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादेमे छात्रापृथिवी विष्वरूपे । आ मा गन्तां पितरा मातरा चा मा सोमो अमृतत्वेन मम्यात् । वाजिनो वाजजितो वाजः ससृवाथ सो बृहस्पतेर्भागिमवजिघृत निभुजानाः ॥१९॥

माता-पिता के रूप में, विश्वरूप छात्रापृथिवी हमारी रक्षा के लिए आएँ । हमें अन्न उत्पन्न का ज्ञान मिले, अमृतभाव के साथ सोम प्राप्त हो । हे बलवान् ! बृहस्पतिदेव के अन्न भाग को पवित्र चित्त होकर प्राप्त करो ॥१९॥

३७६. आपये स्वाहा स्वापये स्वाहापिजाय स्वाहा कृतये स्वाहा वसवे स्वाहाहर्षतये स्वाहाह्ये मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनः शिनाय स्वाहा विनः शिनऽआन्थायनाय स्वाहान्थाय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा ॥२०॥

देवत्व की प्राप्ति के लिए । मुखों को उत्तम श्रुति के लिए । बार-बार जन्म लेने वाले देवताओं के लिए, यज्ञ रूप परमात्मा के लिए । प्रजापति के लिए । दिन के स्वामी के लिए । सुन्दर दिवस के लिए, अविनाशी सुन्दर दिन के लिए, अन्त तक पहुँचाने वाले अविनाशी के लिए । भुवन को भोग के लिए, सम्पूर्ण भुवन के पति के लिए, अधिपति आदि सभी के लिए । ये आहुतियाँ समर्पित की जा रही हैं । सभी देव शक्तियाँ उन्हें स्वीकारें ॥२०॥

३७७. आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां ओम् यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । प्रजापतेः प्रजाऽअधूम स्वर्देवाऽअगन्तामृताऽअधूम ॥२१॥

यज्ञ से हम दीर्घायु हो, हमारे प्राण की वृद्धि हो, नेत्रों की ज्योति बढ़े, श्रवण-इन्द्रियाँ समर्थ हों, हमारी पीठ का बल बढ़े, हमारे यज्ञ का विस्तार हो । हम सभी ईश्वर की सन्तान बनकर रहें । हम सभी मेधावी बन कर दिव्य सुख को प्राप्त करें और अमृततत्त्व प्राप्त करने में समर्थ हों ॥२१॥

३७८. अस्मे वोऽअस्तिचन्द्रियमस्मे नृष्णामुत क्रनुरस्मे वर्चासि सन्तु वः । नभो मात्रे पृथिव्यै नभो मात्रे पृथिव्याऽइयं ते राडचन्तासि यमनो सुयोसि यरुणः । कृष्वै त्वा क्षेमाय त्वा रव्यै त्वा पोषाय त्वा ॥२२॥

हे दिशाओं ! तुम्हारा सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धन, कार्य करने की सम्मर्थ तथा तेज हमें प्राप्त हो । माता पृथ्वी के लिए आदरसहित हमारा नमस्कार है । हे मातृभूमे ! आप संकल्प करने वाली हैं तथा आपकी ही शासन शक्ति है । आप ही हर प्रकार की व्यवस्था बनाने वाली तथा स्थिर अक्षयदाता हैं । आपको कृषि कार्य के लिए । जगत् के कल्याण के लिए, देश में ऐश्वर्य वृद्धि के लिए, प्रजावत्सल तथा अपने खेम-खेम के लिए हम स्वीकारते हैं ॥२२॥

३७९. वाजस्येम प्रसवः सुषुवेऽन्ने सोमः राजानपोषधीष्वाप्सु । ताऽअस्मर्थ्य मधुमतीर्धन्तु वधः राष्ट्रे जागृणाय पुरोहिताः स्वाहा ॥२३॥

सोम समक दीप्तिमान् पदार्थ को अन्न उत्पन्नकर्ता प्रजापति ने सबसे पहले ओषधि और जल के मध्य उत्पन्न किया । हमारे लिए यह सोम मधुर रस से युक्त हो । हम पुरोहितरूप अपने राट्ट में जाग्रत् (जीवन्त) रहें । इसके लिए यह आहुति समर्पित है (तक़्त हम अपने राट्ट को भी प्रगतिशील और जीवन्त रख सकें ) ॥२३॥

३८०. वाजस्येमां प्रसवः शिश्रिवे दिवमिमा च विश्वा भुवनानि सप्ताद् । अदित्सन्तं  
दापयति प्रजानन्तस नो रयिः सर्ववीरं नियच्छतु स्वाहा ॥२४॥

अन्न के उत्पादक प्रजापति ने सम्पूर्ण भुवनो सहित सुलेक को अन्नप्र दिय है। वे प्रजापति अह्नि देने के लिए हमारी बुद्धि को प्रेरित करें और सुसन्तति सहित ऐश्वर्य प्रदान करें इसके लिए यह आहुति समर्पित है ॥२४॥

३८१. वाजस्य नु प्रसवऽ आबभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः । सनेमि राजा परिचाति  
विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्धयमानो अस्मे स्वाहा ॥२५॥

अन्न के उत्पादक प्रजापति ने सब ओर से सम्पूर्ण भुवन को उत्पन्न किया और वे सनातन सर्वज्ञाता प्रजापति हमारे लिए प्रजा पशुधन तथा समस्त ऐश्वर्य की बुद्धि करते हुए, सबसे ऊपर के स्थान में निवास करते हैं। यह आहुति उन (प्रजापति) के लिए समर्पित है ॥२५॥

३८२. सोमः राजानमवसेमिमन्वारधामहे । आदित्यान्विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च  
बृहस्पतिं स्वाहा ॥२६॥

हमारे पालन के लिए जिस प्रजापति ने राजा, सोम, अग्नि, वारह आदित्य, विष्णु, सूर्य, ब्रह्मा और बृहस्पति देव को उत्पन्न किया है उस प्रजापति का हम स्तवन करते हैं, यह आहुति उन (प्रजापति) के लिए समर्पित है ॥२६॥

३८३. अर्धमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय । वाचं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च  
माजिनं स्वाहा ॥२७॥

हे परमारमन् (आप अर्धमा, बृहस्पति, इन्द्र, मणो की अभिष्टाओं देवीसरस्वती, विष्णु, सवितादेव एवं बलवान् देवगणों को दान करने के लिए प्रेरित करें—यह आहुति आपके लिए समर्पित की जा रही है ॥२७॥

३८४. अग्ने अच्छा वदेह नः प्रति नः सुपना भव । प्र नो यच्छ सहस्रजित्वं हि वनदाऽ  
असि स्वाहा ॥२८॥

हे अग्निदेव आप हमारे प्रति अच्छा मन (श्रेष्ठ भाव) रखकर इस यज्ञ में हमें हितकारी उपदेश करें। अकेले ही सहस्रों योद्धाओं की जीतने वाले हे अग्निदेव। बुद्धि आप ऐश्वर्यदाता हैं। इसलिए हमें भी धन-धान्य से पूर्ण करें—हमारी यह आहुति आपके लिए समर्पित है ॥२८॥

३८५. प्र नो यच्छत्यर्यमा प्र पूषा प्र बृहस्पतिः । प्र वाग्देवी ददातु नः स्वाहा ॥२९॥

अर्यमा, पूषादेवता तथा वाग्मी की अभिष्टाओं देवी सरस्वती हमारे लिए अपोष्ट दान प्रदान करें हमारी यह आहुति आपके लिए समर्पित है ॥२९॥

३८६. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेन्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । सरस्वत्यै वाचो  
यन्तुर्यन्त्रिये दधामि बृहस्पतेर्त्वा साप्ताज्येनाधिषिञ्चाम्यसौ ॥३०॥

सबको उत्पन्न करने वाले सक्ति देवता की सृष्टि में सरस्वती की वाणी की— प्रेरणा से अश्विनदेवों की भुजाओं तथा पूषादेवता के हाथों से आपको (यज्ञीय ऊर्ध्व को) धारण करते हैं और सुव्यवस्था बनाने वाले बृहस्पतिदेव के श्रेष्ठ नियंत्रण में इस सप्ताज्य के संचालक के रूप में आपको स्थापित करते हैं ॥३०॥

३८७. अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयतमुज्जेषमश्विनौ द्व्यक्षरेण द्विषदो मनुष्यानुदजयतां  
तानुज्जेषं विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रींस्त्र्योक्तानुदजयतानुज्जेषः सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः  
पशूनुदजयतानुज्जेषम् ॥३१॥

अग्निदेव ने 'एकाक्षर (दैवी गायत्री) के प्रभाव से उत्कृष्ट प्राण पर विजय प्राप्त की । हम भी उस एकाक्षर के प्रभाव से प्राण पर विजय प्राप्त करें । दो अक्षर (दैवी उर्वारिक) वाले छन्द के प्रभाव से अश्विनीकुमारों ने दो पैरों वाले मनुष्यों पर विजय प्राप्त की, हम भी इसके प्रभाव से मनुष्यों पर विजय प्राप्त करें । तीन अक्षर (दैवी अनुष्टुप) वाले छन्द के प्रभाव से विष्णुदेव ने लोकों लोकों पर विजय प्राप्त की, हम भी इसके प्रभाव से दोनों लोकों पर विजय प्राप्त करें । चार अक्षर (दैवी बृहती) के मंत्र के प्रभाव से सोम ने चार पैर वाले पशुओं पर विजय प्राप्त की, हम भी उसके प्रभाव से पशुओं पर विजय प्राप्त करें ॥३१॥

[आध्यात्मिक संदर्भ में अग्नि (देवता) को एक-अक्षर वाले छन्द अर्वाक्य कहकर प्राणों को अनुसर्जित किया जाता है; अश्विनीकुमारों (सोम के देवता) ने दो अक्षर वाले छन्द और उर्वारिक कहकर दो अनुसर्जित प्राण विष्णु (अष्टाष्टक) ने मृत्यु, विधुत एवं अर्वाक्य तीन छन्दों के द्वारा लोकों से लोकों को अनुसर्जित किया, प्राण (चतुष्टक) ने पशुओं (पञ्च ऋजुओं) को द्विज चतुष्टक द्वारा अनुसर्जित किया — ऐसा मान लिया जाने चाहिए ।]

३८८. पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिशः ५ उदजयताऽ उज्जेवथ सविता षडक्षरेण षड्भुजमुदजयतानुज्जेव मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान् पशुमुदजयस्तामुज्जेव बृहस्पतिरष्टाक्षरेण नापत्रीमुदजयतामुज्जेवम् ॥३२॥

पाँच अक्षर (दैवी पङ्क्ति) के छन्द के प्रभाव से पूषा देवता ने पाँच दिशाओं पर विजय प्राप्त की, हम भी उन दिशाओं पर विजय प्राप्त करें । षड् अक्षर (दैवी त्रिष्टुप) के छन्द के प्रभाव से सविता देवता ने छः ऋजुओं पर विजय प्राप्त की, हम भी उसके प्रभाव से छः ऋजुओं पर विजय प्राप्त करें । सप्त अक्षर (दैवी जगती) के मंत्र के प्रभाव से मरुत देवता ने सात ग्राम्य नगरों (सात प्रकार के दूध देने वाले) पशुओं पर विजय प्राप्त की, हम भी उसके प्रभाव से इन पर विजय प्राप्त करें । अष्टाक्षर (दैवी अर्धजगती) मंत्र के प्रभाव से बृहस्पति देव ने गायत्री को सिद्ध किया, हम भी उसके प्रभाव से नापत्री को सिद्ध कर सकें ॥३२॥

[पूषा (चतुष्टक करने वाले) देवताओं ने पाँच दिशाओं में प्रचलित पाँच प्राणों को पेरकर किया; अर्वाक्य को वह उर्वारिकों से पुनः बना गया है, षड् ऋजुओं को उन्होंने चतुष्टककृत अर्वाक्य, पाण्य के, सात लोकों में सात-सात ऋजु (४९ ऋजु) छोड़े गये हैं, उन्होंने सप्त प्राणों-समुद्रों-लोकों के ऋजुओं (उन्को षड् ऋजुओं) को अनुसर्जित किया; नापत्री छन्द में अष्ट-अष्ट ऋजुओं के तीन चरण होते हैं, ऋजु सङ्गणित ने अष्ट अक्षरों में नापत्री सिद्ध पर अर्वाक्य प्राप्त किया— यह मान लीजिये ।]

३८९. मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृतथः स्तोममुदजयतमुज्जेव वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयतामुज्जेवमिन्द्रः ५ एकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयतामुज्जेव विश्वेदेवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयस्तामुज्जेवम् ॥३३॥

नवाक्षर (दैवी शकन्वरी) छन्द के प्रभाव से मित्र देवता ने त्रिवृत (ज्ञान, कर्म और भक्ति) स्तोम पर से विजय प्राप्त की । हम भी उसके प्रभाव से इन पर विजय प्राप्त करें । दशअक्षर (दैवी अतिशकन्वरी) छन्द के प्रभाव से वरुण देवता ने विराट् पर विजय प्राप्त की, हम भी उसके प्रभाव से विराट् पर विजय प्राप्त करें । एकादश अक्षर (दैवी अष्टि) के प्रभाव से इन्द्रदेव ने त्रिष्टुभ स्तोमों पर विजय प्राप्त की, हम भी उसके प्रभाव से विजय प्राप्त करें । बारह अक्षर (दैवी अत्यष्टि) के मंत्र के प्रभाव से विश्वदेवों ने जगती स्तोमों पर विजय प्राप्त की, हम भी उसके प्रभाव से उन पर विजय प्राप्त करें ॥३३॥

[मित्राचारकर्मक देवता ने नौ छन्दों में अर्वाक्य की अर्वाक्य कृत्यों से त्रिवृत (कर्म, विज्ञान एवं धर्म क्षेत्र) को अनुसर्जित किया; वरुण (लोकों को आकर्षित करने वाले) देव ने पञ्च प्राणों एवं षड् कुलों से विराट् को अनुसर्जित किया । त्रिष्टुभ छन्द में ग्यारह-ग्यारह ऋजुओं के छह चरण होते हैं, इन्द्र (सप्तमन सप्त) ने ग्यारह ऋजुओं से त्रिष्टुभ (त्रिष्टुभ) को अनुसर्जित किया, अत्यष्टि छन्द में बारह-बारह ऋजुओं के छह चरण होते हैं, विश्वदेव ने बारह अर्वाक्यकृत अर्वाक्य (राजिनी) से जगती को अनुसर्जित किया — यह मान लिया है ।]

३९०. वसवश्चतुर्दशाक्षरेण त्रयोदशस्थं स्तोममुदजयंस्तमुज्जेवम् । रुद्रश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशस्थं स्तोममुदजयंस्तमुज्जेवमादित्याः पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदशस्थं स्तोममुदजयं-स्तमुज्जेवमादितिः षोडशाक्षरेण षोडशस्थं स्तोममुदजयंस्तमुज्जेवम् प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशस्थं स्तोममुदजयंस्तमुज्जेवम् ॥३४॥

हेरह अक्षर वाले छन्द (दैवी वृत्ति) के प्रभाव से षमुओं ने त्रयोदश (नव द्वार वक्ता चार अन्तःकरण) स्तोम को जीता, हम भी उसके प्रभाव से विजय प्राप्त करें । षोडश अक्षर (दैवी अतिवृत्ति) छन्द के प्रभाव से रुद्रों ने चौदह रत्नों पर विजय प्राप्त की, हम भी उसके प्रभाव से विजय प्राप्त करें । पन्द्रह अक्षर (आसुरी गायत्री) के छन्द के प्रभाव से आदित्यों ने पञ्चदश (चार वेद, चार उपवेद, छः वेदाङ्ग तथा चार कुमलता) स्तोम पर विजय प्राप्त की, हम भी उसके प्रभाव से विजयी हों । सोमस्य अक्षर (प्राजपत्या अनुष्टुप्) के छन्द के प्रभाव से अदिति देवमाता ने षोडश (१६ कला समूह) स्तोम पर विजय प्राप्त की हम भी उसके प्रभाव से इन पर विजय प्राप्त करें । सप्तदश अक्षर (विभुत् अर्चनी गायत्री) के मंत्र के प्रभाव से प्रजापति ने सप्तदश (चार वर्ष, चार आश्रम, चार कर्म, चार पुण्यार्थ तथा अपनी मति) स्तोम पर विजय प्राप्त की, हम भी उसके प्रभाव से इन पर विजय करें ॥३४॥

३९१. एष ते निरङ्गो भागस्तं जुवस्व स्वाहाग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरः सद्भ्यः स्वाहा । यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा मिश्रावरुणनेत्रेभ्यो वा मरुत्त्रेभ्यो वा हे भ्यः उत्तरासद्भ्यः स्वाहा सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्यः ऽऽपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यः स्वाहा ॥३५॥

हे पृथिवी ! यह भाग अच्छा है, इसे स्नेहपूर्वक स्वीकार करें । पूर्व दिशा में विराजमान अग्निदेवता के निमित्त, दक्षिण दिशा में विराजमान यम देवता के निमित्त, पश्चिम दिशा में विराजमान विश्वदेवता के निमित्त, उत्तर दिशा में विराजमान मिश्रावरुण या मरुत् देवता के निमित्त तथा ऊपरी भाग अन्तरिक्ष और ध्रुव लोक में विराजमान हवि भोजी सोम के निमित्त सभी देवताओं की प्रसन्नता के लिए, ये आहुतियाँ समर्पित हैं । सभी देवशक्तियों स्नेहपूर्वक इन आहुतियों को स्वीकारें ॥३५॥

३९२. ये देवाऽअग्निनेत्राः पुरःसद्भ्यः स्वाहा ये देवा यमनेत्रा दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा ये देवा विश्वदेवनेत्राः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा ये देवा मिश्रावरुणनेत्रा वा मरुत्त्रेत्रा वा उत्तरासद्भ्यः स्वाहा ये देवाः सोमनेत्राऽऽपरिसद्भ्यो दुवस्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा ॥३६॥

पूर्व में स्थित ये देवता, जिनका नेत्रत्व करने वाले अग्निदेव हैं, दक्षिण दिशा में स्थित ये देवता, जिनका नेत्रत्व यम करते हैं, पश्चिम में स्थित ये देवता जिनका नेत्रत्व विश्वदेवता करने हैं, उत्तर में स्थित ये देवता, जिनका नेत्रत्व मिश्रावरुण या मरुत् करते हैं, ध्रुव लोक में स्थित ये देवता जिनका नेत्रत्व हवि स्वीकार करने वाले सोम करते हैं, (उन सभी) के निमित्त ये श्रेष्ठ आहुतियाँ समर्पित की जा रहें हैं ॥३६॥

३९३. अग्ने सहस्र पृतनाऽअभिमातीरपास्य । दुष्टरस्तरज्जरीर्वचोषा यज्ञवाहसि ॥३७॥

हे अग्निदेव ! आज शत्रु सेना को पराजित कर उनका संहर करें । हे अजेय अग्निदेव ! शत्रुओं का नश कर यज्ञ करने वाले यजमान को सज्जन प्रदान कर देवस्वी बनाएँ ॥३७॥

३९४. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेभ्यनोर्बाहुभ्यां पूज्जो हस्ताभ्याम् । उपाथं शोर्वीर्येण जुहोमि हतं रक्षः स्वाहा रक्षसां त्वा ययायावधिष्य रक्षोवधिष्मामुमसौ हतः ॥३८॥

संसार को उत्पन्न करने वाले सवितादेव की स्मृति में अन्नचान् शक्तियों की सामर्थ्य से अश्विनीकुमारों की भुजाओं तथा पूषादेवता के दोनों हाथों से सन्तुओं के संहार के लिए आपको (उपशु को) वह उत्तम आहुति समर्पित करते हैं । जिस प्रकार आपने सन्तुओं का नष्ट किया, उसी तरह हम लोग भी दुष्टों का विनाश करें । जैसे यह राक्षस नष्ट हुआ, उसी प्रकार हम भी इन ( सन्तुओं—विचारों ) को नष्ट करें ॥३८॥

३९५. सविता त्वा सवानाथः सुसतामग्निर्गृहपतीनाथः सोमो वनस्पतीनाम् । बृहस्पतिर्वाचऽ  
इन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम् ॥३९॥

हे याजक ! सवितादेव वज्र कर्म के लिए तुम्हें प्रेरित करें । अग्निदेव गृहपतियों को प्रेरित करें । सोमदेव तुम्हारे लिए वनस्पति रूपी ओषधियों प्रदान करें । मेघ शक्ति के लिए बृहस्पतिदेव, बड़प्पन के लिए इन्द्रदेव, पशुधन के लिए रुद्रदेव, सत्य व्यवहार के लिए मित्रदेव तथा धर्म धर्म में चलने के लिए वरुणदेव प्रेरित करें ॥

३९६. इमं देवाऽ असपत्न्यं सुवर्षं यद्वते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते  
जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इममपुष्य पुत्रमपुष्यै पुत्रमस्यै विशऽ एष वोमी राजा  
सोमोस्माकं ब्राह्मणानाथः राजा ॥४०॥

हे देवगण ! महान् क्षात्रवत् के सम्पादन के लिए महान् राजवत् के लिए श्रेष्ठ जनराज्य के लिए, इन्द्रदेव के सम्पन्न हर प्रकार से विभूतिवान् बनने के लिए, सन्तुओं से रक्षित, अमृक पित्त के पुत्र, अमृक माता के पुत्र को प्रजा के पासन के लिए अभिषिक्त करें । हे अमृक प्रजाजने ! आप सभी के लिए तथा हम जानीजनों के लिए भी यह राजा वन्द के समान आह्लादक है ॥४०॥

### —ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— बृहस्पति, इन्द्र १-२३ । सविताय कामदेव्य १४, १५ । वसिष्ठ १६, १८, २५ । नाभानेदिष्ठ १७ । तापस २६-३४ । वरुण, देवगण ३५ । देवगण ३६ । देववक्त्र-देववात चरत ३७-४० ।

देवता— सविता १ । इन्द्र २ । रस ३ । सिंगोक्त (मह, सोममह, सुराग्रह) ४ । रथ, पृथिवी, सविता ५ । अश्व ६, १४-१८ । अश्वस्तुति १८ । अश्वस्तुति, अश्व ९ । सिङ्गेक्त १०-१२ । सिंगोक्त, अश्व १३ । प्रजापति, अश्व १९ । प्रजापति २०, २३-२५ । प्रजापति, वज्रध्वज २९ । दिशः, पृथिवी, असन्दी, सुन्धन् २२ । विश्वदेवा २६ । अर्यमा आदि २७, २९ । अग्नि २८, ३७ । सविता, सुन्धन् ३० । अग्नि आदि ३१ । पूषा आदि ३२ । मित्र आदि ३३ । वसु आदि ३४ । पृथिवी, देवगण ३५ । देवगण ३६ । सविता, राक्षसपती ३८ । यजमान ३९, ४० ।

छन्द— स्वराट् आशी त्रिष्टुप् १ । आशी पंक्ति, विकृति २ । निचृत् अति सकयरी ३ । भुरिक् कृति ४, २० । भुरिक् अति ५ । भुरिक् जगती ६ । अजिक् ७ । त्रिष्टुप् ८ । ष्वि ९ । विराट् उत्कृति १० । जगती ११, १४-१५, १७, २४, ३० । स्वराट् अतिवृत्ति १२ । निचृत् अतिजगती १३ । भुरिक् पंक्ति १६ । निचृत् त्रिष्टुप् १८ । निचृत् वृत्ति १९ । अत्यति २१ । निचृत् अत्यति २२ । स्वराट् त्रिष्टुप् २३, २५ । अनुष्टुप् २६ । स्वराट् अनुष्टुप् २७ । भुरिक् अनुष्टुप् २८ । भुरिक् आशी नयत्री २९ । स्वराट् अतिवृत्ति ३१ । कृति ३२, ३३ । निचृत् जगती, निचृत् वृत्ति ३४ । विराट् उत्कृति ३५ । विकृति ३६ । निचृत् अनुष्टुप् ३७ । भुरिक् बाह्यी बृहती ३८ । अतिजगती ३९ । स्वराट् बाह्यी त्रिष्टुप् ४० ।

॥ इति नवमोऽध्यायः ॥





## ॥ अथ दशमोऽध्यायः ॥

३९७. अपो देवा मधुमतीरगुग्मभूर्जस्वती राजस्वक्षितान्तः । याभिर्मित्रावरुणावध्यधि-  
कृत्याभिरिन्द्रमनयप्रत्यरातीः ॥१॥

देवताओं ने मधुर स्वाद वाले, विभिन्न जन्म-रस से युक्त, राजाओं के द्वारा भी सेवनीय, विवेक प्रदान करने वाले जल को ग्रहण किया । जिस जल से देवताओं का मित्रवरुणों ने अभिवेक किया और जिससे शत्रुओं को नष्ट करने वाले इन्द्रदेव का देवताओं ने राज्यअभिवेक किया, उस जल को हम ग्रहण करते हैं ॥१॥

३९८. वृष्याऽ ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृष्याऽ ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्यै देहि  
वृषसेनोसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृषसेनोसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्यै देहि ॥२॥

(हे कलकल ध्वनि करनेवाली पाराओं !) आप बलवान् पुरुष को उच्च पद पर पहुँचाने तथा राष्ट्र प्रदान करने में समर्थ हैं । इसके लिए आपको आहुति समर्पित है । आप सुखवर्धक राष्ट्र प्रदान करने वाले हैं, अतः राज्य देने में समर्थ होकर, राजपद प्रदान करें । आपके लिए यह आहुति समर्पित है । आप राज्य देने में समर्थ हैं । अतः बलवान् सेना से युक्त (यजमान को) राज्य प्रदान करें ॥२॥

३९९. अर्धेत स्व राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहाअर्धेत स्व राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्यै दत्ताजस्वती स्व  
राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहाअर्धेत स्व राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्यै दत्तापः परिवाहिणी स्व राष्ट्रदा  
राष्ट्रं मे दत्त स्वाहापः परिवाहिणी स्व राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्यै दत्तापां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे  
देहि स्वाहापां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्यै देशपां गर्भोसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहापां  
गर्भोसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्यै देहि ॥३॥

हे जलसमूह ! आप अर्धोपाजन करने वाले हैं अतः हमें राष्ट्र प्रदान करें । इसके लिए यह आहुति समर्पित है । आप ऐश्वर्य के बल से समर्थमान हैं, ओजस्वी और पराक्रमी हैं तथा राष्ट्र देने में समर्थ हैं, इसके लिए यह आहुति समर्पित है । आप महान् बल तथा उत्तम सेनाओं से युक्त हैं, अतः राष्ट्र देने में समर्थ हैं, इसके लिए यह आहुति समर्पित है । आप हर प्रकार की सेना से युक्त, राष्ट्र देने में समर्थ हैं, अतः हमें राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए यह आहुति समर्पित है । आप समस्त जल के बालक, रक्षक तथा उन्हें अपने अधीन रखने में समर्थ हैं, अतः योग्य पुरुष को राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए यह आहुति समर्पित है ॥३॥

४००. सूर्यत्वचस स्व राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यत्वचस स्व राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्यै दत्त  
सूर्यवर्चस स्व राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यवर्चस स्व राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्यै दत्त मान्दा स्व  
राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा मान्दा स्व राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्यै दत्त सजक्षित स्व राष्ट्रदा राष्ट्रं मे  
दत्त स्वाहा सजक्षित स्व राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्यै दत्त वाशा स्व राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा वाशा  
स्व राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्यै दत्त शक्विष्ठा स्व राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शक्विष्ठा स्व राष्ट्रदा  
राष्ट्रममुष्यै दत्त शक्वरी स्व राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शक्वरी स्व राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्यै दत्त  
जनभृत स्व राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा जनभृत स्व राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्यै दत्त विश्वभृत स्व राष्ट्रदा  
राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा विश्वभृत स्व राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्यै दत्तापः स्वरान्न स्व राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्यै  
दत्त । मधुमतीर्मधुमतीभिः वृष्यैर्ना महि क्षत्र क्षत्रियाव वन्वानाऽ अनाधृष्टाः सीदत  
सहोजसो महि क्षत्र क्षत्रियाव दधतीः ॥४॥

हे जल समूह ! आप सूर्य की किरणों से उत्पन्न हैं, स्वयं प्रकाशित होकर सबको तेज प्रदान करने वाले हैं । आप राष्ट्र प्रदान करने में समर्थ हैं, हम राष्ट्र प्रदान करें । आप सूर्य के समान तेजस्वी हैं, (अतः प्रभाव में) सूर्य के समान ही हैं, आप राष्ट्र प्रदान करने वाले हैं, इसलिए हमें राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए यह आहुति समर्पित है । आप मनुष्यों को आनन्द देने वाले होकर राष्ट्र प्रदान करने में समर्थ हैं, इसलिए उस सुखदाता व्यक्ति को राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए यह आहुति समर्पित है । आप मन्त्रों के जलनकर्ता तथा रक्षक होकर राष्ट्र प्रदान करने में समर्थ हैं, इसलिए रक्षक पुरुष को राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए यह आहुति समर्पित है । आप कामनाओं की पूर्ति करनेवाले होकर राष्ट्र प्रदान करने में समर्थ हैं, इसलिए कामधेयिक को राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए यह आहुति समर्पित है । आप अत्यन्त बलशाली एवं शक्त प्रदायी होते हुए राष्ट्र प्रदाता हैं, अतः हमें राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए यह आहुति समर्पित है । आप प्रजा की सामर्थ्य प्रदान करने वाले तथा सामर्थ्ययुक्त राष्ट्र प्रदान करने वाले हैं, अतः सामर्थ्यवान् व्यक्ति को राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए यह आहुति समर्पित है । आप श्रेष्ठ पुरुषों का पोषण एवं उनकी धारण करने वाले हैं, अतः श्रेष्ठ गुणों से युक्त हमें राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए यह आहुति समर्पित है । आप समस्त विश्व के पोषणकर्ता तथा धारणकर्ता हैं, अतः पोषण करने वाले तथा धारण करनेवाले पुरुष को राष्ट्र प्रदान करें । आप सभी विद्वान् एवं कर्मों के ज्ञाता तथा इन गुणों से युक्त राष्ट्र प्रदान करने में समर्थ हैं, अतः ऐसे धर्मज्ञ पुरुष को राष्ट्र प्रदान करें, इसके लिए यह आहुति समर्पित है । हे मधुर रस वाले जलकणों मोक्षप्रद जल समूह सहित महान् शक्तिशाली होने वाले पराक्रमी यज्ञधन के लिए अपने रसों से अभिषिक्त करते हुए राष्ट्र प्रदान करें । हे जलकणों ! राक्षसों से न डरने वाले वसु को आप इस आदर (रक्षक) में स्थापित करते हुए इस स्थान पर प्रतिष्ठा दी ॥४॥

४०१. सोमस्य त्विचिरसि तवेव मे त्विचिर्भूयात् । अम्ये स्वाहा सोमाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा बृहस्पतये स्वाहेन्द्राय स्वाहा घोषाय स्वाहा भूलोकाय स्वाहा धैश्याय स्वाहा भगाय स्वाहार्यम्भो स्वाहा ॥५॥

अग्नि, सोम, सविता, सरस्वती, पूषा, बृहस्पति, इन्द्र, श्रेष्ठ उदपोष, श्रेष्ठकाव्य, ऐश्वर्य, अर्यमादेवता तथा पुण्य-पाप के विभाग करने वाले देवों के निमित्त ये आहुतियाँ दी जाती हैं । जैसे आप ऐश्वर्य के प्रकाशक हैं, उसी प्रकार हम भी आपके समान कान्तिमान् हों ॥५॥

४०२. पवित्रे स्थो वैष्वात्मौ सविनुर्यः प्रसवऽऽपुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । अनिघृष्टमसि वाचो बन्धुस्तपोजः सोमस्य दात्रमसि स्वाहा राजस्यः ॥६॥

हे कुशद्वय ! इस यज्ञ में आप दोनों को पवित्रकारक के रूप में निरंतर उत्तम रीति से पवित्र करते हैं आप दोनों पवित्र रहें । जिस प्रकार सूर्य रश्मियों से जल पवित्र होकर ऊपर जाता है, उसी तरह हम आप दोनों को उन्नत करें । हे जलसमूह ! आप बह पापधारण में रहित हैं । श्रेष्ठ वाणी द्वारा एक दूसरे से भाता के समान रहें, तपः शक्ति से राज्य का श्रेष्ठ देने में आप समर्थ हैं, अतः राज्य का ऐश्वर्य प्रदान करें । इसके लिए यह आहुति समर्पित है ॥६॥

४०३. सधमादो ह्युग्निनीरायऽऽस्ताऽऽनतघृहाऽऽपस्यो वसानाः । पस्त्यासु चक्रे वरुणः सधस्थमपाधैः शिशुर्मातृतमास्कन्तः ॥७॥

(अभिषेक के लिए पात्रों में स्थापित) यह जल आनन्ददायी, तेजस्वी, उत्तमकर्मा तथा पराजित न होने वाला है । यह आकाश (धर) की तरह निवास प्रदान करने वाला धारण करने वाला तथा शक्त की तरह पोषण देने वाला है । शिशुरूप यज्ञमान आदरसहित इसे स्थापित करते हैं ॥७॥

४०४. क्षत्रस्योत्थमसि क्षत्रस्य जराय्वसि क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसीन्द्रस्य  
वार्ध्रध्नमसि मित्रस्यासि वरुणस्यासि त्वयायं वृत्रं वधेत् । द्वांसि रुजांसि क्षुपांसि पातैनं  
प्राञ्चं पातैनं प्रत्यञ्चं पातैनं तिर्यञ्चं दिग्यः पात ॥८॥

यह पंथ वह से उत्पन्न किया जाकरान के प्रति तथा वह से प्रकृत अकार्यों को नष्ट करने वाला पंथ है—

आप क्षत्रवत् के लिए उन्म (गर्भ पोषक वस्तु) एवं जरायु (गर्भ रक्षक झिल्ली) की तरह हैं । आप उसके उत्पादक स्थल तथा केन्द्र भी हैं । (धनुष की तरह) आप इन्द्र (यजमान) के ऋतुओं का नष्ट करने वाले हैं । मित्र और वरुण (धनुष की दोनों कोटि की तरह) साथ रहकर ऋतुओं का विनाश करें । (आप बाणों की तरह) ऋतुओं को चीरने वाले, उन्हें पीड़ा पहुँचाने वाले तथा चरमकृत करने वाले हैं । आप (बाणों या वीरों की तरह) इस क्षेत्र के यजमान की) पूर्व दिशा से, पश्चिम दिशा से, उत्तर दिशा से और सभी दिशाओं से रक्षा करें ॥८॥

४०५. आविर्मर्या आवित्तो अग्निर्गृहपतिरावित्तः इन्द्रो वृद्धध्रुवाऽ आवित्तौ मित्रावरुणौ  
धृतव्रतावावित्तः पूषा विश्ववेदाऽ आवित्ते छाषापुथिषी विश्वशम्भुवा-  
वाविनादिनिरुशर्मा ॥९॥

समस्त मानव समुदाय इसका (मुख्य जातावन का) संरक्षण करें । इसे गृहपालक अग्निदेव, यशस्वी इन्द्रदेव, व्रतधारी मित्र एवं वरुणदेव, सर्वज्ञाता पूषादेव, सचस्त विश्व का कल्पाव करने वाले पृथ्वीलोक तथा दुलोक, सुखस्वरूप देवमाता (अदिति) भी जानें (रक्षक करें) ॥९॥

४०६. अवेष्टा दन्दशूकाः प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु रघन्तरथं साम त्रिवृत्स्तोमो वसन्तऽ  
ऋतुर्ब्रह्म ब्रविणम् ॥१०॥

काटने वाले (मनुष्य को पीड़ा पहुँचाने वाले सर्पादि अथवा बड़ विरोधी तत्व, विनष्ट हुए । आप पूर्व दिशा की ओर बढ़ें । गायत्री छन्द रघन्तर साम, त्रिवृत् स्तोम, वसन्त ऋतु तथा ज्ञानरूप धन (ब्रह्म ब्रविण) आपकी रक्षा करें ॥१०॥

४०७. दक्षिणामारोह त्रिष्टुप् त्वावतु बृहत्साम पञ्चदश स्तोमो ग्रीष्मऽ ऋतुः क्षत्रं ब्रविणम् ॥

आप दक्षिण दिशा की ओर बढ़ें । त्रिष्टुप् छन्द बृहत् साम पञ्चदश स्तोम, ग्रीष्म ऋतु और पुष्कार्णवी धन आपकी रक्षा करें ॥११॥

४०८. प्रतीचीमारोह जगती त्वावतु वैरूप्यं साम सप्तदश स्तोमो वर्षा ऋतुर्विद्धं ब्रविणम् ॥

आप पश्चिम दिशा की ओर बढ़ें । जगती छन्द वैरूप्य साम सप्तदश स्तोम, वर्षा ऋतु तथा पोषणकारी धन आपकी रक्षा करें ॥१२॥

४०९. उदीचीमारोहानुष्टुप् त्वावतु वैराज्यं सप्तैकविंश स्तोमः शरदृतुः फलं ब्रविणम् ॥

आप उत्तर दिशा की ओर बढ़ें । अनुष्टुप् छन्द वैराज्य साम, एकविंश स्तोम, शरद ऋतु और फलदायी ऐश्वर्य आपकी रक्षा करें ॥१३॥

४१०. ऊर्ध्वामारोह पङ्क्तिस्त्वावतु जाम्बवतैर्वते सामनी त्रिणवप्रयस्त्रिंशौ स्तोमौ  
हेमन्तशिशिरावतु खर्चो ब्रविणं प्रत्यस्तां नमुचेः शिरः ॥१४॥

आप ऊपर की ओर बढ़ें । पङ्क्ति छन्द जाम्बवत और ईश्वर साम, त्रिष्व और त्र्यसिंश नामक दोनों स्तोम, हेमन्त और शिशिर दोनों ऋतुएं तथा तेजस्वरूप धन आपकी रक्षा करें । अनाचार में संलग्न प्रवृत्तियों - व्यक्तियों ( नमुचे ) को नष्ट कर दिया जाए ॥१४॥

४११. सोमस्य त्विविरसि तवेव मे त्विविर्भूवात् । मृत्योः पाह्योजोसि सहोस्यमृतमसि ॥

आप ऐश्वर्य के प्रकाशक, पराक्रमी, कलशस्त्रों तथा जन्म-मरण से मुक्त हैं ! आपके ही समान हम प्रकाशवान्, कलशाली एवं पराक्रमी हों । हमारी मृत्यु से रक्षा करें ॥१५॥

४१२. हिरण्यरूपाऽ उषसो विरोकऽ उषाविन्द्राऽ उदिषः सूर्यश्च । आरोहतं वरुण मित्र गतं तत्क्षक्षामादिति दिति च मित्रोसि वरुणोसि ॥१६॥

हे मित्र ! हे वरुण ! आप दोनों स्वर्ण के समान तेजस्वी, राजा की तरह ऐश्वर्ययुक्त तथा उषाओं को प्रकाशित करते हुए सूर्य-चन्द्र की तरह उदित होते हैं ! अतः आप दोनों रथ पर आरुढ़ होकर विभंगदित स्ववस्था को संगठित करने का उपदेश करें । हे मित्र ! आप सुखस्वरूप हैं । हे वरुण ! आप बाधाओं का निवारण करने वाले हैं ॥१६॥

४१३. सोमस्य त्वा ह्यग्नेनाभिषिञ्चाम्यग्नेर्धाजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेण । क्षत्राणां क्षत्रपतिरेष्यति दिद्युन् पाहि ॥१७॥

(हे यजमान ! ) आपको चन्द्रमा की कर्त्तृता से, अग्नि के तेज से तथा इन्द्रदेव के बल से हम अभिषिक्त करते हैं । आप सौर्यशान् क्षत्रियों के क्षत्रपति बने और हविर् पशुवाने वाली शक्तियों से प्रजा की रक्षा करें ॥१७॥

४१४. इमे देवाऽ असपत्न्यं सुवर्चं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽ एव वोमी राजा सोमोस्माकं ब्राह्मणानां च राजा ॥१८॥

हे देवो ! महान् क्षत्रबल के सम्पादन के लिए श्रेष्ठ राज्यवृद्ध के लिए, महान् जनराज्य के लिए, इन्द्रदेव के समान ऐश्वर्यशाली बनने के लिए शत्रुहीन, अमुक्त पित्त के पुत्र, अमुक्त म्लत के पुत्र को प्रजापालन के लिए अभिषिक्त करें । हे प्रजाजने ! यह आप लोगों को उत्कर्षस्त करने वाला राजा है और ये सोम हम ब्राह्मणों के राजा हैं ॥१८॥

४१५. प्र पर्वतस्य वृषभस्य पृष्ठास्त्रावक्षरन्ति स्वामिवऽ इयानाः । ताऽ आववृत्र-भयरागुदक्ताऽ अहिं बुभ्यमनु रीयमाणाः । विष्णोर्विक्रमणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि विष्णोः क्रान्तमसि ॥१९॥

अभिषेक के समय श्रेष्ठ राजा की पीठ से सिंचन करनेवाली जल-धाराएँ इस प्रकार बहती हैं, जैसे पर्वत के पृष्ठ भाग से जलधाराएँ बहती हैं । ये जलधाराएँ जैसे पर्वत के नीचे बहती हुई पर्वत को घेरती हैं, इसी प्रकार ये ऐश्वर्यवान् को घेर कर बहती हैं । यज्ञ पृष्णो ( प्रथम चरण में ) विष्णु (वामन अवतार) अथवा यज्ञ के द्वारा जीता गया है । अन्तरिक्ष ( द्वितीय चरण में ) विष्णु के द्वारा जीता गया है । स्वर्लोक (तीसरे चरण में) विष्णु के द्वारा जीता गया है (अभिषिक्त राजा को भी ऐसा ही पराक्रमी एवं बलवान्) ॥१९॥

४१६. प्रजापते न स्वदेतान्यन्यो विन्वा रूपाणि परि ता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्त्वयममुष्य पितामावस्य पिता वयं स्वाम पतयो रयीणां स्वाम । रुद्र यत्ते क्रिवि परं नाम तस्मिन्नुतमस्यमेष्टमसि स्वाहा ॥२०॥

हे प्रजापालक ! इस संसार में आपके अतिरिक्त और कोई दुमरा स्वामी नहीं है । हम जिस कामना से आपके निमित्त यज्ञ करते हैं, वह पूर्ण हो । यह अमुक्त का पिता है और इसका पिता यह अमुक्त है । ( आप सभी के पिता हैं ) । धर्माचरण और उत्तम व्यवस्था से हम ऐश्वर्यवान् बने, इस हेतु यह आहुति समर्पित है । हे घर-घर में पूज्य आदरणीय रुद्रदेव ! आपका जो कल्याणकारी और प्रत्यक्षकारी (अमुरता के संहरक) स्वरूप है, उसके लिए यह आहुति समर्पित है ॥२०॥

४२३. नि वसाद घृतस्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साप्ताज्याय सुक्रतुः ॥२७॥

(यह यजमान) व्रत (वशीय जीवन्) को चारण किये हुए, अग्निष्टु निवारण में तत्पर, श्रेष्ठ संकल्पों से युक्त होकर साप्ताज्य की प्राप्ति के लिए प्रजा के बीच अधिकारों के रूप में (आसन पर) प्रतिष्ठित हो गया है ॥२७॥

४२४. अभिभूरस्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्तो बह्वीस्त्वं बह्यासि सवितासि सत्यप्रसवो वरुणोसि सत्यौजाऽ इन्द्रोसि विशोऽज रुद्रोसि सुशेवः । बहुकार श्रेयस्कर भूयस्करेन्द्रस्य वज्रोसि तेन मे रघ्व ॥२८॥

(हे अक्ष अथवा यजमान !) आप शत्रुओं को पराजित करने वाले हैं । पाँचों दिशाएँ आपके लिए कल्याणकारी हों । हे महान् शक्तिमान् ! आप सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी हैं । आप सत्यवर्च से ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं । आप सत्यबल वाले वरुणदेव हैं । आप प्रजा के सहयोग से पराक्रमी बने इन्द्रदेव हैं । आप सेवा करने योग्य रुद्रदेव हैं, आप बहुत प्रकार के कार्य करने में समर्थ हैं, कल्याणकारी हैं, ऐश्वर्यवान् हैं । (सर्व के प्रति) आप इन्द्रदेव के वर हैं, हमारे यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२८॥

४२५. अग्निः पशुधर्मणस्पतिर्नुवाणो अग्निः पशुधर्मणस्पतिराज्यस्य चेतु स्वाहा । स्वाहाकृताः सूर्यस्य रश्मिभिर्वतस्यश्च सजातानां पथ्यमेष्टयाय ॥२९॥

महान् पशुधर्मयुक्त, धर्मपालक, सबके अग्रणी, तेजस्वी अग्निदेव हमारी (आज्य) आहुति स्वीकार करें (हे अक्षो ! ) आहुति प्राप्त करके आप सूर्य- रश्मियों से बलशाली होकर स्वधर्मवान् राजाओं के मध्य (इस यजमान को) सर्वश्रेष्ठ बनाने का प्रयास करें ॥२९॥

४२६. सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्टा रुचैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रेणास्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसाग्निना तेजसा सोमेन राजा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूतः प्र सर्षामि ॥

शुभ कर्मों के उत्पादक सवितादेव के दिव्यगुण से, वाणीरूपी सरस्वती से, प्रजापति के रूप से, पशुधन से युक्त पूषादेव से, वेद ज्ञान से युक्त बृहस्पतिदेव से, राजारूप इन्द्रदेव से, पराक्रमयुक्त वरुणदेव से, तेजस्वी अग्निदेव से, राजा स्वरूप सोमदेव से और वाक्स्पर्शकर्ता विष्णुदेव ( इन दस देवों ) से प्रेरित होकर हम देवत्व के मार्ग पर बढ़ते हैं ॥३०॥

४२७. अश्विभ्यां पच्यस्य सरस्वत्यै पच्यस्केन्द्राय सुत्राणो पच्यस्य । वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्कसोमो अनिसृतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥३१॥

इस कविचक्र में हज्जार के प्रति कहा गया है—

आप अश्विनीकुमारों के निमित्त, देवी सरस्वती के निमित्त एवं (इन्द्रादि) देवशक्तियों को नियोजित करने वाले इन्द्रदेव के निमित्त परिपक्व हो । वायु द्वारा पवित्र हुए इन्द्रदेव से जुड़े हुए, उनके मित्र ऐश्वर्यशाली अभिषुत सोमदेव का अवतरण हो रहा है ( उसे चारण करें ) ॥३१॥

४२८. कुविदङ्गं यवमन्तो यदं जिह्मया दान्त्यनुपूर्वं वियूय । इहेहेषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमऽ उक्तिं यजन्ति । व्यवापगृहीतोस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राणो ॥

हे सोम- प्रजाओं की रक्षा की कामना से आपको ज्ञानवान्, ऐश्वर्ययुक्त अश्विनीकुमारों, देवी सरस्वती तथा इन्द्रदेव के लिए हम उपयाम पात्र में ग्रहण करते हैं । जिस प्रकार बौं की खेतों करने वाले कृषक जी को समाला कर काटते हैं एवं सुरक्षित रखते हैं, उन्हें प्रकार देवताओं के प्रिय होम्, दुष्टों का दमन करके उत्तम पुरुषों के कथनानुसार श्रेष्ठजनों को पोषण प्रदान कर उनकी रक्षा करें ॥३२॥

४२९. युव॑ऽऽ सुरामम॑श्विना नमु॑चावासुरे सचा । वि॑षिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्म॑स्वायतम्

हे अश्विनो कुमारो ! नमुचि नामक असुर (के अश्विघ्न) ने स्थित रमणीय रस (सोम) धली प्रकार प्राप्त करके पान करते हुए, आप दोनों शुभकर्मों के फलक इन्द्रदेव के रखक बनें ॥३३॥

४३०. पुत्र॑मिव पितराव॑श्विनोभेन्द्राव॑बुः काव्यैर्द॑ऽऽ सनाधिः । यत्सुराम॑ व्यपिबः शधी॑भिः सरस्वती॑ त्वा मघव॑भ्रमिष्णक् ॥३४॥

हे इन्द्रदेव राक्षसों के संसर्ग में रहे काव्यों ( फलक छन्द क्रमों ) से अशुद्ध सोम का पान कर (स्वयं को संकट में झलकर) अश्विनो कुमारों ने आपकी रक्षा उसी प्रकार की, जैसे पिता पुत्र की रक्षा करता है । आपने नमुचि का वध करके जब प्रसन्नता प्रदान करनेवाले सोम का पान किया, तब देखो सरस्वती भी आपके अनुकूल हुई ॥३४॥

### — ऋचि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋचि— देवभक्त और देववाक्य चारत १-२१ । संवरण प्रजापति २२-२३ । वामदेव २४-२६ । शुक्र शेष २७-३० । अश्विनो कुमार ३१ । सुबोधि ब्रह्मवत ३२-३४ ।

देवता— आपः (जल) १ । सिंगोत २, ३ । तिङ्गेत, आपः (जल) ४, ६ । चर्म, अग्नि आदि ५ । वरुण ७, २७ । तार्थ, पाण्ड्य, अधीवास, उष्णेष, धनु, बाहु इष्ट ८ । प्रजापति, अग्नि आदि ९ । मृत्युनाशन, यजमान १० । यजमान ११-१३, १८ । यजमान असुर १४ । चर्म, वस्त्र १५ । मित्रावरुण १६ । सुन्वन् १७ । आपः (जल), यजमान १९ । प्रजापति, रुद्र २० । रक्षादि सिंगोत २१ । इन्द्र २२ । अग्नि आदि, भूमि २३ । सूर्य २४ । सतमानद्वय, साक्षा, बाहु २५ । आसन्दी, अधीवास, सुन्वन् २६ । मध, मधक, यजमान, वक्तादि सिंगोत, स्फ्य २८ । अग्नि, मध २९ । सविता आदि ३० । मुरा, स्वेम ३१ । ओम ३२ । अश्विनो कुमार-सरस्वती-इन्द्र ३३, ३४ ।

छन्द— निचृत् आधी त्रिष्टुप् १ । स्वराट् नाह्नी पंक्ति २ । अचकृति, निचृत् जगती ३ । जगती, स्वराट् पंक्ति, स्वराट् संकृति, पुरिक् आकृति, पुरिक् त्रिष्टुप् ४ । स्वराट् कृति ५ । स्वराट् नाह्नी बृहती ६ । विराट् आधी त्रिष्टुप् ७, २२ । कृति ८ । पुरिक् अष्टि ९ । विराट् आधी पंक्ति १० । आधी पंक्ति ११, १६ । निचृत् आधी अनुष्टुप् १२ । पुरिक् जगती १४ । विराट् आधी पंक्ति १५ । स्वराट् आधी जगती १६, २९ । आधी पंक्ति १७ । स्वराट् नाह्नी त्रिष्टुप् १८ । विराट् नाह्नी त्रिष्टुप् १९ । पुरिक् अतिष्ठति २० । पुरिक् नाह्नी बृहती २१ । जगती २३ । पुरिक् आधी जगती २४ । आधी जगती २५ । पुरिक् अनुष्टुप् २६ । पिपीलिकामध्या विराट् गायत्री २७ । विराट् कृति २८ । पुरिक् नाह्नी त्रिष्टुप् ३० । आधी त्रिष्टुप् ३१ । निचृत् नाह्नी त्रिष्टुप् ३२ । निचृत् अनुष्टुप् ३३ । पुरिक् पंक्ति ३४ ।

॥ इति दशमोऽध्यायः ॥

# ॥ अथ एकादशोऽध्यायः ॥

४३१. युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः । अग्नेज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या ऽअध्याभरत ॥

सवितादेव (सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर अपनी संकल्प शक्ति से) सृष्टि रचना के समय प्रारम्भ में मनस्तत्त्व एवं धी (बुद्धि अथवा धारणशक्ति) का विकास करके, अग्नि से ज्योति जाग्रत् करके उनसे भूगण्डल को भर देते हैं ॥१॥

[पदार्थ विज्ञान से प्रभावित दार्शनिक ज्ञान में यह कहने लगे थे कि पहले पदार्थ बन्ध, तब धीरे-धीरे उसमें ज्ञान का विकास हुआ, किन्तु अनुपूर्वज्ञान के कह का है कि पहले ज्ञान का विकास हुआ। इसे अब वैज्ञानिक वैज्ञानिक तथा दार्शनिक भी स्वीकार करते लगे हैं ॥]

४३२. युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे । स्वर्गाय शक्त्या ॥२॥

सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर (सवितादेवता) द्वारा निर्दिष्ट विश्व में हम अपने मनस् तत्त्व को परमात्म तत्त्व से युक्त (सगा) करके, पारलौकिक आनन्द की शक्ति के लिए उस ज्योति को अपने अन्दर समाहित करते हैं ॥२॥

४३३. युक्त्वाय सविता देवान्स्वर्वतो धिया दिवम् । बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्र सुधाति तान् ॥३॥

सर्व प्रकाशक सवितादेव, मुख्यस्वरूप तथा अलोक-विस्तारक सूर्य आदि देवों को अपनी प्रेरकशक्ति द्वारा तेजस्विता से आपूरित कर देते हैं । सर्वश्रेष्ठ रूप में वही सवितादेव व्यापक प्रकाश को समस्त विश्व में फैलाने के लिए सूर्य आदि देवों को प्रकाश सम्पत्ति से ओत-प्रोत कर देते हैं ॥३॥

४३४. युञ्जते मन ऽ ज्ञा युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः । वि होत्रा दधे वपुनाविदेक ऽ इन्मही देवस्य सवितुः परिहृतिः ॥४॥

विशिष्ट ज्ञानसम्पन्न कृतिज्ञ, यजमान के यज्ञ (अग्निचर्चा) को पूर्णरूपेण सफल बनाने के लिए अपने मन और बुद्धि को अभीष्ट कार्य में पूरी उत्प्रेरणा के साथ निवेशित करते हैं । एक मात्र ब्रह्म (परमात्म-चेतना) ही समस्त विज्ञान (कर्मा ) का ज्ञाता है, (और सम्पूर्ण विश्व का सृजेता) एवं धारणकर्ता है । उन (स्वयंके प्रकाशक) सविता देवता की स्तुति महिमामयी है ॥४॥

४३५. युजे वा ब्रह्म पूर्वा नभोधिर्वि श्लोक ऽ एतु पथ्येव सुरेः । मृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा ऽ आ ये वामानि दिव्यानि तस्युः ॥५॥

हे यजमान दम्पती आप दोनों के निमित्त हम (अध्वर्यु) अन्नदि हविष्य द्वारा श्रेष्ठ ज्ञान से सम्पन्न इस सर्वश्रेष्ठ यज्ञ को सम्पादित करते हैं, जिसकी आहुतिर्ही, जिस प्रकार दोनों लोकों (इह लोक एवं परलोक) में पहुँचती है; उसी प्रकार यजमान के श्लोक (कव्यपूरित मन्त्र) भी दोनों लोकों में पहुँचें और उसे दिव्य लोक में निवास करने वाले अमर ऋषि, प्रजापति के पुत्र, सभी देव भी सुनें (स्वीकार करें और यजमान को अभीष्ट फल प्रदान करें) ॥

४३६. यस्य प्रयाणमन्वन्त्य ऽ इन्द्रयुदेवा देवस्य महिमानमोजसा । यः पार्थिवानि विममे स ऽ एतश्चो रजा थं सि देवः सविता महित्वना ॥६॥

जिन सवितादेव के कर्म, महिम्न और साधर्म्य शक्ति का अन्य सभी देवता अनुगमन करते हैं, जो अपनी उत्पादक-क्षमता से सम्पूर्ण लोकों के रक्षक हैं, वे (श्रेष्ठ) सवितादेव अपनी सृजनशीलता से इस विश्व-ब्रह्माण्ड में सर्वत्र संव्याप्त हैं ॥६॥

४३७. देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केत नः पुनातु वाचस्पतिर्वाच नः स्वदतु ॥७॥

हे सवितादेव ! यज्ञीय कर्मों की प्रेरणा आप सभी को दें । यज्ञ कर्म सम्पादित करने वालों को ऐश्वर्य-सम्पदा से युक्त करके सत्कर्म की ओर प्रेरित करें । (हे सवितादेव ! आप) दिव्यज्ञान के संरक्षक, वाणी के अधिपति हमारे ज्ञान में पवित्रता का संचार करें और हमारी वाणी में यथारत का सम्प्रेषण करें ॥७॥

४३८. इमं नो देव सवितर्यज्ञं प्रणय देवाव्यं सस्त्रिष्विदं संप्राजितं धनजितं स्वर्जितम् । ऋचा स्तोमं समर्थय गायत्रेण रघन्तरं बृहद्वायव्रवर्तनि स्वाहा ॥८॥

हे दिव्यगुण सम्पन्न सवितादेव ! आप देवों के चेष्टक, मैत्रीभाव के विस्तारक, यज्ञीय ऊर्जा के सुनियोजक और सुख एवं समृद्धि प्रदान करने वाले हैं, (आप) हमारे इस यज्ञ को सफल बनाईं, यज्ञ को ऋग्वेद की ऋचाओं से पोषित करें, गायत्रि साम से रघन्तर साम को और उसी से बृहद् साम को भी परिपुष्ट करें श्रेष्ठ वाचना से युक्त हमारी इस आहुति को स्वीकार करें ॥८॥

४३९. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेष्टिनोर्बाहुभ्यां धृज्जो हस्ताध्याम् । आददे गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वपृथिव्याः समस्वादिग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभर त्रैहृभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥

सबके सुजेता सवितादेव की प्रेरणा से युक्त हम गायत्री छन्द के प्रभाव से अश्विनोक्तुमारों के दोनों बाहुओं से तथा पूषादेव के हाथों से (हे अग्ने ! आपकी अंगिरा के समान प्रकाश करते हैं) । आप अंगिरा के समान त्रिहृप् छन्द की प्रेरणा से पृथिवी को पोषणयुक्त ऊर्जा से परिपूर्ण करें ॥९॥

४४०. अङ्गिरसि नार्यसि त्वया ययमग्निं शकेय स्रानितुं सधस्यऽ आ । जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥१०॥

(हे अग्ने ! आप अङ्गि (मिट्टी खोदने का साधन) हैं, जरीरूप (समुरोहिता या खोदने से भीषण न होने वाली) हैं अतः आपके द्वारा हम जगती छन्द के प्रभाव से पृथिवी पर विद्यमान (यज्ञ वेदिका में स्थित) अग्नि (ऊर्जा विज्ञान) को अंगिरा के समान भली प्रकार प्रसर करने (प्रकाश करने) में सक्षम हों १० ।

४४१. हस्तऽआधाय सविता विधदधि त्रिष्विदं त्रिष्विदं । अग्नेज्योतिर्निचाव्य पृथिव्याऽ अव्याभरदानुधुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥११॥

सर्व उत्पादक सवितादेव (प्रजापति) अपने हाथ में स्वर्ण-निर्मित अङ्गि को धारण करके अंगिरा के समान अग्नि को धूमि (यज्ञ वेदी) के ऊपर प्रतिष्ठापित (ज्वलित) करें और (यजमान) अनुष्टुप् छन्द से भली प्रकार उसे पोषित करें अर्थात् प्रदीप्त करें ११ ॥

४४२. प्रतूर्तं वाजिन्ना ब्रह्म वरिष्ठामनु संकतम् । दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे तव नाभिः पृथिव्यामधि योनिरित् ॥१२॥

हे अति तीव्र ममनशील अग्नि-ऊर्जा (अग्नि) ! आपका सुत्सेक (दिव्यलोक) में प्रदुर्भाव हुआ है, अन्तरिक्ष में आपका नाभिस्थल (मध्य भाग) है तथा पृथ्वीस्थेक आपका (लगाव होने का) आश्रयस्थल है । आप पृथ्वी पर शीघ्र ही अपने उपयुक्त स्थान पर स्थापित हों ॥१२॥

४४३. मुञ्जाथाथ रासधं युवमस्मिन् सामे वृषष्वसू । अग्निं भरन्तमस्मयुम् ॥१३॥

हे वाजक और अध्वर्यु (यजमान दम्पती) ! आप दोनों (धन को वृद्धि करने वाले) हमारे लिए लाभकारी अग्नि को प्रदीप्त करने में समर्थ हैं । आप इस रासध को—छन्द एवं दीप्तियुक्त अग्नि को—यज्ञकर्म में नियोजित करें ॥१३॥



४४४. योगे-योगे तवस्तरं वाजे वाजे हुवामहे : सखाय उ इन्द्रमृतये ॥१४॥

अन्यों की अपेक्षा अति सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव को हम सभी पारस्परिक मित्रता बढ़ाने वाले प्रत्येक कार्य में अपनी सुरक्षा के निमित्त एवं प्रत्येक संघर्ष में सहयोग के लिए अन्वहित करते हैं ॥१४॥

४४५. प्रतूर्वत्रेह्यवक्रामन्नशस्ती रुद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरेहि । उर्वनारिर्क्षं वीहि स्वस्तिगव्यूतिरभयानि कण्वन् पूष्या सयुजा सह ॥१५॥

हे तीव्र गतिशील (अग्नि-तेजस) ! दुष्टों का विनाश (अन्वकार-विकार-का विनाश) करते हुए, हमें (यजमान को) सुख (प्रकाश) प्रदान करने के लिए आप पक्षार्थ ऐश करने से आपको रुद्र (दुष्टों को दण्डित करके रूताने वाले देवता) का गणपतित्व प्राप्त होगा । ( हे रासस ! ) बुध ऋत्विजः यजमानों को निर्भयता प्रदान करते हुए, पृथिवी सहित विशाल अन्तरिक्ष तक कल्याणकारी अन्न-उत्पन्न मार्ग से व्याप्त हो जाओ (पहुँच जाओ) ॥१५॥

४४६. पृथिव्याः सप्तस्थसद्गिन् पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभराग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेमोर्गिन् पुरीष्यमङ्गिरस्वद्वारिष्यामः ॥१६॥

हे अग्ने (यज्ञ उपकरणों) आप धरती पर सभी का पालन-पोषण करने वाले, सर्व समर्थ, तेजस्वी, ( ज्ञेयता की दिशा में ) आग्रणी रहने वाली के पोषक, अग्निदेव को यहाँ साहें, जो पोषण की सामर्थ्य से युक्त हैं, सङ्ग-विनाशक तथा नेतृत्व कुशलता से युक्त हैं । हम विशिष्ट पोषण-धमता सम्पन्न, अङ्गिरा के समान तेजस्वी इन अग्निदेव को अपने यज्ञस्थल में प्रतिष्ठित करेंगे ॥१६॥

४४७. अन्वग्निरुत्तसामप्रमख्यदन्वहानि प्रथम्ये जातवेदाः । अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवी आततन्व ॥१७॥

अग्नि यहाँ सर्व प्रकाशक, लोकपाल और ऊर्ज को- अग्नि को अपनी दिव्य दृष्टि से देख रहे हैं । उसी के प्रभाव का वर्णन हमने कुछ पंक्तों में किया तक है । उसी का सूर्य-प्रकाश-रूपकबी कण्वर निर्गुण यज्ञिय प्रवेशनों के लिए स्तुति की छान प्रीति किया जा रहा है-

पहले से ही विद्यमान वे अग्निदेव उक्त काल से पहले ही दिन को प्रवर्जित करते हैं । वही सूर्य की बहुत सारी किरणों को भी प्रकाशित करते हैं । हम उन लोक-सहा अग्निदेव को ध्रुलोक और पृथ्वीलोक में क्रमबद्ध रूप से संचरित होता हुआ अनुभव करते हैं ॥१७॥

४४८. आगत्य वाज्यदधानं सर्वा मृधो विभुनुते । अग्निं सप्तस्थे महति चक्षुषा नि चिकीषते ॥१८॥

वह वाजी (बलवान् एवं द्रुतगामी चेतना-युक्त ऊर्जा) मार्ग पर संचरित होकर बुद्ध ( तमस के विनाश के रूप में ) क्षेत्र को कैपाता हुआ चलता है । वह स्थिर दृष्टि से यज्ञमि का निरोधक करता है ॥१८॥

[यहाँ यज्ञिय ऊर्जा के साथ दिव्य ऊर्जा के संयोग का संकेत है ।]

४४९. आक्रम्य वाजिन् पृथिवीमग्निमिच्छ रुत्वा त्वम् । भूम्या वृत्वाय नो ब्रूहि यतः खनेम तं वयम् ॥१९॥

हे वाजिन् ! आप पृथ्वी पर ठीक ऋति से संचरित होकर 'अग्नि' की खोज करें । भूमिगत को खोज कर हमें ( वह स्थल ) बताएं, जहाँ से हम उसे (अग्नि को अर्थात् ऊर्जा उत्पन्न करने वाले पदार्थों को) खोद कर ले आएँ ॥१९॥

[यहाँ ऊर्जा-उत्पन्न में प्रयुक्त होने वाले खनिजों की खोज का संकेत है ।]

४५७. त्वमग्ने क्षुभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भस्त्वमङ्गमनस्यरि । त्वं वनेष्यस्त्वमोषधी-  
भ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचि ॥२७॥

प्राणिमात्र की रक्षा करने वाले हे अग्निदेव ! आप पावनपुलों से युक्त जीव अंशकार को तत्काल दूर करने वाले, प्रतिदिन प्रदीप्त होते हैं । आप जल से ( बहवर्गस्वरूप में ), पावन घर्षण से ( चिनगारी रूप में ), बालों के घर्षण से ( दावानलरूप में ), ओषधियों से ( तेजस्विक ज्वलनशील रूप में ) उत्पन्न होने वाले हैं तथा यज्ञ के निमित्त प्रज्वलित अग्निरूप में वज्रध्वजों के चरों में प्रदीप्त होते हैं ॥२७॥

४५८. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽग्निर्बाहुभ्यां पूजो हस्ताभ्याम् । पृथिव्याः सद्यस्या- दग्निं  
पुरीष्यमङ्गिरस्वत्स्त्वनामि । ज्योतिष्मन्तं त्वाम्ने सुप्रतीकमजस्रेण धानुना दीक्षतम् । शिवं  
प्रजाभ्योऽहिं ३३ सन्तं पृथिव्याः सद्यस्यादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वत्स्त्वनाम् ॥२८॥

हम सर्वप्रकाशक सवितादेव के अनुरक्तसम ये अग्निदेवों की भुजाओं एवं पूजादेव के हाथों से सर्वत्र विचरित अग्निदेव को, भूमि के ऊपरी भाग से, अंगिरा के समान प्रकट करते हैं । हे अग्निदेव ! ज्योतिष्मत् रूप, श्रेष्ठ शौर्ययुक्त, अनवरत उज्ज्वल, देदीप्यमान, प्रज्वलनों के कल्याण के लिए शत्रुतरूप, अनिष्ट निवारक, ऐश्वर्य-प्रदायक, आपको भूमि के अन्दर भाग से अंगिरस् की तरह हम शपथ करते हैं ॥२८॥

४५९. अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः चिन्वमानम् । वर्धमानो यहाँ२ आ च पुष्करे  
दिवो माप्रया वरिष्णा प्रथस्य ॥२९॥

इस सब का पर्याप्तान् अग्नेय सब के लिए कल्याण करी वनस्पतियों के उत्पन्न स्थिति करते हुए किया जाता रहा है । इसने सब स्थितों को वे अर्धित कृत्य से चिन्वित सब को लक्ष्य करते करी करते हैं—

आप जल के पृष्ठ (आधार) हैं, अग्नि के उत्पन्नकर्ता हैं । आप समुद्र को बढ़ाते हैं, स्वर्ग सब ओर विस्तार को प्राप्त हुए, महान् जल में भली प्रकार संव्यक्त हैं । पुनर्देव की तेजोभिता एवं पृथ्वी की विशालता के अनुरूप आप विस्तार पाएँ ॥२९॥

४६०. हर्म च स्थो वर्ध च स्थोऽच्छिद्रे बहुले उषे । अथस्वती सं वसाथां भूतमग्निं  
पुरीष्यम् ॥३०॥

इस सब अग्नेय सब का अग्नेय उत्पन्न स्थिति करते हुए किया जाता रहा है । उत्पन्न कल्याण-का करी वनस्पतियों सब भूमि वर्ध के रहने के । इनको स्थापित करते हुए अग्नि प्रज्वलितों एवं वनस्पतियों को लक्ष्य करते करते हैं—

आप दोनों क्षतिरहित, अतिव्यक्त और साधकों के हितधी एवं सुखदायक हैं । सुरक्षा कवच के समान रक्षा करने वाले, आप दोनों पोषक अग्निदेव के संवर्द्धक बनकर रहें ॥३०॥

४६१. सं वसाथा ३३स्वर्विदा समीची उरसा त्वना । अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती  
ज्योतिष्मन्तमजस्रमिह ॥३१॥

आप दोनों समानरूप से सकल तेजस्विक से युक्त अग्निदेव को अपने उदर में प्रज्वलित रहें । दिव्यलोक के आधारभूत अग्निदेव को अपने हृदय में सदैव धारण करें ॥३१॥

४६२. पुरीष्योसि विश्वभरा ऽ अर्धर्वा त्वा प्रजमो निरमन्वदग्ने । त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा  
निरमन्वत । मूर्ध्नो विश्वस्य वायतः ॥३२॥

अखिल विश्व का धारण-पोषण एवं कल्याण करने वाले हे अग्निदेव ! सर्वप्रथम अर्धर्वा अग्नि ने आपको शरीर प्रकार मंथन द्वारा उत्पन्न किया । हे अग्निदेव ! अग्नि अर्धर्वा ने पुष्कर (विस्तृत आकाश) में मंथन द्वारा आपको प्रकट किया और सम्मानपूर्वक उच्च स्थान पर स्थापित किया ॥३२॥

४६३. तमु त्वा दध्यङ्गुविः पुत्रऽ ईशे अवर्तयत् । वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥३३॥

हे अग्ने ! 'अवर्त' के पुत्र 'दध्यङ्गु विः' ने जनु विध्वंसक और जनुओं के किले तोड़ने में सक्षम जानकर आपको प्रकट किया ॥३३॥

[विष्णोयक पद्यों में संश्लिष्ट अग्नि (ऊर्जा) का सर्वोत्कर्ष है ।]

४६४. तमु त्वा पाश्वो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् । घनञ्जय शंरणोरणे ॥३४॥

समार्गगामी और शक्तिमान् हे अग्निदेव ! सप्तुओं के विनाशक और कत्येक वृद्ध में विजय प्राप्त करने वाले आपको हम प्रज्वलित करते हैं ॥३४॥

४६५. सीद होतः स्वऽ उ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञं शंसुकृतस्य धोनौ । देवासीर्देवान्गुविषा यज्ञास्मग्ने बृहज्जमाने यथे साः ॥३५॥

हे होतारूप अग्निदेव ! सब कर्मों के ज्ञाता आप अपने प्रतिष्ठित स्थान को सुरोभित करें और श्रेष्ठ कर्मरूपी यज्ञ को सम्पन्न करें । देवों की तरह तृप्त करने वाले हे अग्ने ! आप यज्ञकों द्वारा प्रदत्त आहुति से देवताओं को अन्नान्दित करते हुए, उन्हें (यज्ञकों को) घन-काय्य एवं दीर्घायु प्रदान करें ॥३५॥

४६६. नि होता होतृवदने विदानस्वेवो दीदिवार असदत्सुदक्षः । अदध्यक्तप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥३६॥

देवावाहुक, कार्यकुशल, तेजस्वितयुक्त, प्रतिशील, अति तीक्ष्ण, मेधा-सम्पन्न, श्रेष्ठ स्थान के निवासी, सहस्रों के पोषणकर्ता और अतिपावन अग्निदेव अपनी तेजोस्विका को प्रकट करते हुए यज्ञवेदी पर सुरोभित होते हैं ॥

४६७. स शंसिदस्व महार असि शोचस्व देववीतमः । वि धूममग्ने अरुधं मिथेभ्य सुज प्रशस्त दर्शितम् ॥३७॥

यज्ञीय गुणों से युक्त प्रशंसनीय हे अग्ने ! आप देवताओं के स्नेह-पत्र और महान् गुणों के प्रेरक हैं, यहाँ उपयुक्त स्थान पर पधारें और प्रज्वलित हो तब पृत की आहुति द्वारा दर्शन-योग्य एवं तेजस्वी होते हुए सयन धूम को विसर्जित करें ॥३७॥

४६८. अपो देवीरुपसुज मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाप्यः । तासायास्थानादुज्जिह्वतामोषधयः सुपिप्पलाः ॥३८॥

हे यज्ञाग्ने ! मधुर, सिग्ध, रसरूप ( प्राण वर्धनयुक्त ) जल को उत्पन्न करें, जो (वृष्टि द्वारा) धात्री को सिंचित करें । उससे उत्पन्न हुई प्लवक, ओषधियाँ काजक के द्रव्य (नाश का रोग विशेष) को रोकने में समर्थ हों ॥३८॥

४६९. सरो वायुर्मातरिष्ठा दभातूतानाया हृदयं यद्विकस्तम् । यो देवानां अरसि प्राणयेन कस्मै देव ययइस्तु तुभ्यम् ॥३९॥

ऊर्ध्वमुख (यज्ञकुण्ड) से युक्त हे पृथिवी ! आपको जो विशाल हृदय है, आप उस को मातृवत् प्रणशक्ति की संचारक वायु, जल एवं वनस्पतियों से पूर्ण करें । हे वायुदेव ! आप दिव्य प्राण-ऊर्जा के साथ संचरित होते हैं, अतः वह पृथिवी आपके निमित्त कल्याणप्रद हो ॥३९॥

[अग्निदेव से प्रेरणा प्राप्त करने के कारण पृथ्वी को ऊर्ध्वमुख कहा गया है । सब ही यह भी जानें कि वायु पृथ्वी को प्रणवर्धित दे और पृथ्वी वायु को प्रदूषित न करने का दायित्व निभानी पकाने रखे ।]



४५०. सौस्ते पृष्ठं पृथिवी सद्यस्थमात्मान्तरिक्षं समुद्रो योनिः । विख्याय चक्षुषा त्वमभि तिष्ठ पृतन्यतः ॥२०॥

हे वाजिन् ! ध्रुवोक्त में अत्यन्त कृष्ट नाम है, पृथ्वी पर आपके पैर हैं और अन्तरिक्ष में आपकी जीवात्मा है । जब आपके लिए योनिकथ (अप्सु योनिर्वा अन्ध—जल में बंदकर्मिण्य में विद्यमान रहने वाला) है आप अपनी दृष्टि से खोजकर राक्षसों (सृष्टिकर्ता में नाचक निचरो) को (उक्त सभी स्थानों पर) आक्रमण करके नष्ट करें ॥२०॥

४५१. उत्क्राम महते सौधगायास्मादास्थानाद् द्रविणोदा वाजिन् । वयं ह्यस्याम सुमती पृथिव्या ऽ अग्निं स्वनन्ता ऽ उपस्थे अस्याः ॥२१॥

हे अग्निरूप वाजिन् ! आप इस कष्टमय से वन और सौधगय प्रदान करने के लिए ऊपर उठें पृथ्वी के ऊपरी भाग में इस अग्नि पर आधारित शोध कार्य (यज्ञादि) करते हुए हम सद्बुद्धि में स्थित हों ॥२१॥

४५२. उदकमीद् द्रविणोदा वाज्यर्वाकः सुलोकं ह्यसुकृतं पृथिव्याम् । ततः स्त्रेमे सुप्रतीकमग्निं ह्यस्वो रुद्राणा अग्निं नाकपुत्रयम् ॥२२॥

यह अर्वा (बज्रस), समुद्रिदात अन्ध (अग्नि) पृथ्वी को स्वीकृत हुआ अर्वा है । हमने श्रेष्ठ लोकों को पुण्यवान् बनाया है, इसलिए श्रेष्ठ लोकों में आरोहण की कामना से हम (यज्ञक) सुन्दर मुखवाले (देव मुख) अग्निदेव को, छोड़ने का (आग्रह करने का) प्रयोग सर्वोत्तम सुख की प्राप्ति के लिए करते हैं ॥२२॥

[इसका तात्पर्य भूतर्पण में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अग्नि पृथ्वी पर अर्वा के वैदिकीय तत्त्वों की खोज से भी लिया जा सकता है ॥]

४५३. आ त्वा जिघर्षि मनसा धृतेन प्रतिक्षिपन्तं भुवनानि विद्या । पृथुं तिरक्षा वयसा बृहन्तं व्यधिष्ठमग्नौ रभसं दृशानम् ॥२३॥

दिव्य प्रकाश के रूप में अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त, तिरछी ज्योति से फैलने वाले, दीर्घकाल तक व्यापक-विस्तार करने वाले हे अग्ने ! अन्धादि आहुतियों से सर्वत्रस्तस्ते और प्रत्यक्षतः दृश्यमान आपको योग्य मन से पृथु द्वारा (बल हेतु) प्रज्वलित करते हैं ॥२३॥

४५४. आ विद्यातः प्रत्यञ्चं जिघर्ष्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत । मर्यत्रीः स्पृहयूर्णो अग्निर्नाभिमुग्ने तन्वा जर्धुराणः ॥२४॥

हे अग्ने ! सभी जगत् पूर्णरूप से संख्याय आपको हम पृथाहुति से प्रज्वलित करते हैं । आप नष्ट न होने वाली ज्वालाओं से, इस प्रदत्त आहुति को ब्रह्मण करें । मनुष्यों के लिए अत्यधिक उपयोगी, सुनहरे वर्ण से सुशोभित, वायु की दिशा में इधर-उधर गतिशील, हितकरक अग्निदेव कदापि त्याज्य नहीं, अपितु सर्वथा माहा है ॥२४॥

४५५. परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्त्यक्रमीत् । दयद्भन्तानि दाशुषे ॥२५॥

त्रिकालदर्शी, अज्ञों के अधिपति अग्निदेव, हकिशता यजमान को रत्न-सम्पदा देते हुए, सभी प्रकार की सम्पत्तियाँ चारों ओर से प्रदान करते हैं ॥२५॥

४५६. परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं द्येऽसहस्य भीमहि । धृषद्वर्णं दिवे-दिवे हन्तारं भङ्गुरायताम् ॥२६॥

हे शक्तिशाली अग्निदेव ! विभिन्न स्वरूपों से युक्त, ज्ञानवान्, सामर्थ्यशाली और प्रतिदिन दुष्टों के संहारक, आपके सभी गुण हमारे लिए कारण करने योग्य हैं । सम्मान करते हुए हम आपको वन्दना करते हैं ॥२६॥

४७०. सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरुणमासदत्तः । वासो अग्ने विश्वरूपं दंस त्वमस्य विभावसो ॥४०॥

हे अग्निदेव ! आप तेजयुक्त ज्वालाओं से विभिन्न प्रज्वलित होकर श्रेष्ठ सुखप्रद वर वेदिका को सुशोभित करें । हे कान्तिमान् अग्ने ! आप अपनी विशिष्ट आवाज से वस्त्रों की भाँति वगड़ के पत्नी प्रकार धारण करें, अर्थात् पृथिवी का आवरण नक्कर उसकी सुरक्षा करें ॥४०॥

४७१. ऋ तिष्ठ स्वध्वरावा मे देव्या मिथा । दूजे च भासा बृहता सुशुक्लनिराम्ने याहि सुशस्तिभिः ॥४१॥

हे उत्कृष्ट यज्ञ सम्पादक अग्ने ! आप ज्ञात हो देंगे गन्धों तथा श्रेष्ठ बुद्धि से हमारा उत्तम संरक्षण करें और अपनी दिव्य प्रकाश रश्मियों (सद्गुणों) से स्तुति करने वाले प्राणियों के जीवन को भर दें ॥४१॥

४७२. ऊर्ध्वं ऽ ऊ बु ण ऽ ऊतवे तिष्ठा देवो न सयिता । ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता घदञ्जिभिर्वापिर्द्विर्विह्वयामहे ॥४२॥

हे अग्निदेव ! सर्वोत्पादक सधितादेवता जिस प्रकार मन्त्रीय से हम सबको रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप भी ऊँचे उठकर अन्न आदि पोषक पदार्थ देकर हमारे जीवन को रक्षा करें । मन्त्रोच्चारणपूर्वक हवि प्रदान करने वाले वाजक आप के प्रज्वलित स्वरूप का आवाहन करते हैं ॥४२॥

४७३. स जातो गर्धो असि रोदस्योरग्ने धारुर्विभृत ऽओषधीषु । धिक्कः शिशुः परि तप्ताधं स्मत्कून्त्र मातृभ्यो अभि कनिक्रदद्भ्यः ॥४३॥

हे अग्निदेव ! आप अत्यन्त मकरम ओषधियों को पोषण देने वाली शक्ति से युक्त विलक्षण वर्ण की ज्वालाओं से सुशोभित । निम्न नवीनरूप में होने से शिशु रूप, स्वर्ग और पृथ्वी के मध्य उत्पन्न होने से गर्भरूप हैं । आप अधिकार को तिरोहित करते हुए मातृस्वरूप ओषधियों-वनस्पतियों के समीप से सम्प्राप्तमान होते हुए तीव्रता से गमन (चिचरण) करें ॥४३॥

४७४. स्मिरो भव वीह्यङ्ग ऽ आशुर्धव वाज्यवन् । पृकुर्धव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः ॥४४॥

पदार्थ के प्रति गमनशील हे अर्कन् । (चंचल यज्ञग्नि) आप सुस्विर, सुदृढ़ और वेगयुक्त होकर शक्तिशाली बनें तथा सस्यको सहन करने वाले आप विशद- (सम जगद् संख्याप्य) अग्नि को सुख देने वाले बने ॥४४॥

[प्रकृति का संकुलन करने वाले, विह्व (ज्वलन्) प्रकृतिकरण ऊर्ध्व पक्ष को दक्ष से उत्पन्न ऊर्ध्व के वायव्य से सहयोग मिलता है, इसलिए उसे विह्व अग्नि को सुख देने वाला कहा गया है ।]

४७५. शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्तथमङ्घ्रिः । मा सावापुषिषी अभि शोचीर्मान्तरिक्षं मा वनस्पतीन् ॥४५॥

हे अग्नि, (अंगों में संख्याप्य अग्नि) । आप वनस्पतियों एवं सभी प्राणियों के लिए भंगलकारी हों । आप स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और वनस्पतियों आदि किसी को भी संतुष्ट न करें । (मनुष्य आदि प्राणी एवं प्रकृति को असन्तुलित करने वाला पुरुषार्थ न करें) ॥४५॥

४७६. प्रीतु वाजी कनिक्रदन्नान्द्रासभ्यः पत्वा । धरभ्रग्निं पुरीषं मा पासायुक् पुरा । वृषाग्निं वृषणं धरभ्रपां गर्भं दंसमुद्रिवम् । अग्न ऽआ याहि वीतये ॥४६॥

यह वाजी (गतिशील यज्ञीय ऊर्जा) अग्नि (धर्मों) के साथ आगे प्रस्थान करे, यह तेजस्वी (रासध) शब्द करता हुआ आगे बढ़े । यह (आप) अग्नि को धारण करके, ध्वेय से पहलवे न रुके । अतिशक्ति-सम्पन्न और स्वार्थयुक्त जल के बीच यह विद्युत् को धारण करके प्रस्थान करे । हे अग्ने ! आप इन्द्र को ग्रहण करने के लिए पधारें ॥४६॥

४७७. अतः सत्यमृतं सत्यमग्निं पुरीषमग्निरस्यन्द्ररामः । ओषधयोः प्रति मोदध्वमग्निमेतं शिवमायनामभ्यस्र युष्माः । व्यस्यन् विस्त्रऽअनिराऽअमीवा निषीदन्तो अप दुर्पति जहि ॥४७॥

शाश्वत, सत्यस्वरूप, अविनाशी अग्निदेव को अग्नि के समान ही हम परिपुष्ट करते हैं । हे सभस्त ओषधि स्वरूप हवियों ! आप मंगलमय यज्ञकुण्ड में स्थित अग्निदेव को समर्पित होकर अन्न-प्रदान करें । हे अग्निदेव आप वहीं उपस्थित रहकर हमें सभी शरीरिक कष्टों एवं मानसिक संतापों से आरोग्य-साध प्रदान करें तब हमारे दुर्भिक्षजन्य कुविचारों को समाप्त करें ॥४७॥

[यहाँ यज्ञीय ऊर्जा को विशिष्टाकारक अन्वेष (प्राप्ति) का संकेत है ।]

४७८. ओषधयोः प्रति गुष्णीत पुष्पवतीः सुषिष्यन्तः । अयं यो गर्भऽऽरतिव्यः प्रत्यं सस्यमासदत् ॥४८॥

हे ओषधियों ! आप पुष्पयुक्त और उत्तम फलों से युक्त होकर यज्ञीय अग्नि (ऊर्जा) को ग्रहण करें । यह अग्नि गर्भरूप में ऋतु के अनुरूप उत्पन्न होती है । यह वही अन्वेष समय से ही स्थित है ॥४८॥

४७९. वि पाजसा पृथुना शोशुचानो वायस्य द्विषो रक्षसो अमीवाः । सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहं संहवस्य प्रणीतौ ॥४९॥

हे श्रेष्ठ बल से दंष्ट्रीयमान अग्ने ! आप दुष्टधर्मियों, राक्षसी वृत्तियों और सभस्त मानसिक विकारों को समाप्त करें । हमें श्रेष्ठ कल्याणकारी महायज्ञ के निधन (अग्नि के कार्य में) संलग्न करें, जिससे हम आन्तरिक प्रसन्नता की प्राप्ति हो ॥४९॥

४८०. आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता नऽऊर्जे दक्षातन । महे रणाप चक्षसे ॥५०॥

हे जलसमूह आप मुख के मूल स्रोत हैं । अतः आप पराक्रम से युक्त, उत्तम, दर्शनीय कार्य करने के लिए हमें परिपुष्ट करें ॥५०॥

४८१. यो कः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । वशीरीरिद मातरः ॥५१॥

हे जलसमूह ! आपका जो सबसे कल्याणकारक रस यहाँ विद्यमान है, उस रस के पान में हमें वैसे ही सम्पत्ति करें, जैसे वातसत्य-स्नेह से युक्त माताएं अपने सिरुओं को कल्याणकारी दुग्धरस से पुष्ट करती हैं ॥५१॥

४८२. तस्माऽअरं गमाम यो यस्य क्षयाय जिव्यध । आपो जनयथा च नः ॥५२॥

हे जलसमूह ! आपका वह कल्याणकारी रस पर्याप्त रूप में हमें उपलब्ध हो, जिस रस द्वारा आप सम्पूर्ण विश्व को तृप्त करते हैं और जिसके कारण आप हमारे उत्पत्ति के निमित्त भूत हैं, ऐसे जनोपयोगी अपने गुणों से हमें अधिपूरित करें ॥५२॥

४८३. मित्रः सऽसृज्य पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा सह । सुजातं जातवेदसमयक्ष्माय त्वा सऽसृजामि प्रजापत्यः ॥५३॥

जिस प्रकार परमेश्वर सूर्यदेव के द्वारा अन्तरिक्ष और भूमि को प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार हम भी श्रेष्ठ गुणों से युक्त जातवेदस अग्नि को प्रजाओं के आरोग्य-त्वन हेतु प्रज्वलित करते हैं ॥५३॥

४८४. रुद्रः स ऽसृज्य पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधरे । तेषां भानुरजस्रः ऽ इच्छुको देवेषु रोषते ॥५४॥

रुद्र देवों ने भूलोक का सृजन किया और उसको पञ्चम तेजस्वितायुक्त सूर्यदेव से प्रकाशित किया । उन रुद्रों की पवित्र-प्रचण्ड ज्योति ही अन्य देव शक्तियों के अस्तित्व की परिचायक हैं ॥५४॥

४८५. स ऽंशुष्टां वसुधी रुद्रैर्धरैः कर्मभ्यां मृदम् । हस्ताभ्यां मृद्रीं कृत्वा सिनीवासी कृणोतु ताम् ॥५५॥

अमावस्या की अधिष्ठात्री देवी सिनीवासी वैश्वानर वसुओं और रुद्रगणों द्वारा तैयार की गई मृत्तिका को हाथों से मृदु (नरम) बनाकर, उससे उपयोगी मिट्टी के पात्र विनिर्मित करें ॥५५॥

४८६. सिनीवासी सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा । सा तुभ्यमदिते महोखा दद्यात् हस्तयोः ॥५६॥

हे पूजनीय देवमाता ! शोषनीय केशों, उत्तम आकृषणों से सुशोभित और सुन्दर अंगों से युक्त चन्द्र के समान सुन्दर देवी सिनीवासी, आपके लिए अपने दोनों हाथों में (पुरोडाश पढ़ने का) पाकपात्र 'उखा' को धारण करें ॥५६॥

४८७. उखां कृणोतु शक्या बाहुभ्यामदितिर्धिया । माता पुत्रं यथोपस्थे साम्नि बिभर्तु गर्भं ऽआ । मखास्य शिरोऽसि ॥५७॥

अपनी शक्ति-सामर्थ्य द्वारा अदिति देवी सृष्टिपूर्वक दोनों हाथों से पाकपात्र को धारण करें और वह उखा पात्र उत्तम रीति से अपने बीच में अग्नि को धारण करे, जिस प्रकार वह अपनी गोद में पुत्र को धारण करती है । हे पाकपात्र ! आप वह के प्रमुख पात्र हैं ॥५७॥

४८८. वसवस्त्वा कृण्वन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद्भुवासि पृथिव्यसि धारया मयि प्रजा ऽंशरायस्पोषं गौपत्य ऽं सुवीर्यं ऽं सजातान्यजमानाद्य दित्यास्त्वा कृण्वन्तु ग्रीहमेन छन्दसाङ्गिरस्वद्भुवास्यन्तरिक्षमसि धारया मयि प्रजा ऽंशरायस्पोषं गौपत्य ऽं सुवीर्यं ऽं सजातान्यजमानाद्यादित्यास्त्वा कृण्वन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद्भुवासि क्षौरसि धारया मयि प्रजा ऽंशरायस्पोषं गौपत्य ऽं सुवीर्यं ऽं सजातान्यजमानाद्य विष्णे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुहमेन छन्दसाङ्गिरस्वद्भुवासि दिशोसि धारया मयि प्रजा ऽंशरायस्पोषं गौपत्य ऽं सुवीर्यं ऽं सजातान्यजमानाद्य ॥५८॥

एक कविचन्द्र 'उखा' को सम्बोधित कर रही है—

(हे उखे !) वसुगण, गायत्री छन्द की सामर्थ्य से अंगिरा के समान आपको विनिर्मित करें । आप सुदृढ़ होकर पृथ्वीस्वरूप हैं, हम याजकों के लिए सन्तान, धन, पुष्टि, गौओं का स्वामित्व, श्रेष्ठ पराक्रम, सजातीय बांधवों का यथोचित सौहार्द धारण कराएँ । (हे उखे !) रुद्रगण विष्टुप् छन्द के प्रभाव से अंगिरा की तरह आपको धारण करें, आप सुदृढ़ होकर अन्तरिक्ष तुल्य हैं । हमारे लिए सन्तान धन, पुष्टि, गौओं का स्वामित्व, श्रेष्ठ पराक्रम, सजातीय बांधवों का यथोचित सौहार्द प्राप्त कराएँ । (हे उखे !) अदित्यगण जगती छन्द की सामर्थ्य से अंगिरा के समान आपको विनिर्मित करें, आप सुदृढ़ होकर भूलोकरूप हैं, हमारे लिए (याजकों के लिए) सन्तान, धन, पुष्टि, गौओं का स्वामित्व, श्रेष्ठ पराक्रम, सजातीय बांधवों का यथोचित सौहार्द धारण कराएँ । (हे उखे !) विष्णुदेवा अनुष्टुप् छन्द के प्रभाव से आपको अंगिरा के सदृश बनाएँ, आप दृढतमक होकर दिशस्वरूप हैं, हम याजकों के लिए सन्तान, धन, पुष्टि, श्रेष्ठ पराक्रम, गौरव, श्रेष्ठ सौहार्द, सजातीय बांधवों का यथोचित सौहार्द प्रदान करें ॥५८॥



४८९. अदित्यै रास्नास्यदितिष्टे विलं वृष्णातु । कृत्वाय स महीमुखां वृष्मवीं योनिमन्ये ।  
पुत्रेभ्यः प्रायच्छददितिः अययानिति ॥५९॥

उक्त पत्र में रेखाकृत कसे हुए चक्र ज्ञात है—

हे रेखे ! आप देवमाता के प्रभाव से इस उक्त (पत्रकला) की कक्षा (मेखला) के भ्रम में हैं । हे उखे ! देवजनने आपके मध्य के हिस्से को धारण करें । देखें अर्थात् इस पृथ्वीकक्षी मिट्टी से अग्नि की आधारभूत उखा विनिर्मित करें और अपने देव पुत्रों को (इसे) पकाने के लिए कटान करें ॥५९॥

४९०. वसवस्त्वा वृषयन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद्ब्राह्मस्वा वृषयन्तु प्रैष्टुधेन  
छन्दसाङ्गिरस्वदादित्यास्त्वा वृषयन्तु जानतो न छन्दसाङ्गिरस्वङ्गिष्वे त्वा देवा वैश्वानरा  
वृषयन्त्वानुष्टुधेन छन्दसाङ्गिरस्वदिन्द्रस्त्वा वृषयन्तु वरुणस्त्वा वृषयन्तु विष्णुस्त्वा  
वृषयन्तु ॥६०॥

उक्त चक्रिका की उक्त-पत्र से सम्बन्ध है—

( हे उखे ! ) गायत्री छन्द के चक्षुष्य से वसुगण अंगिरा के सदस आप को (सूर्य की धूप) ताप दें । रुद्रगण, त्रिहृष छन्द के प्रभाव से अंगिरा के समान आपको सूर्य की वर्षा से तपार्थ, आदित्यगण जगती छन्द के स्तोत्रों से अंगिरा के समान धूप में संस्कारित करें तथा सबके कल्याणकारी विशदेवा अनुष्टुप् छन्द से अंगिरावत् आपको धूप दिखाकर सुझाएँ । इस प्रकार इन्द्रदेव, वरुणदेव और विष्णुदेव सभी आपको ताप देकर सुझाएँ— तैयार करें ॥६०॥

४९१. अदितिह्वा देवी विश्वदेव्यावती पृथिव्याः सद्यस्वे अङ्गिरस्वात् खनत्ववट देवानां त्वा  
पत्नीर्देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सद्यस्वे अङ्गिरस्वद्भयतूखे धिवणास्त्वा  
देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सद्यस्वे अङ्गिरस्वद्भीन्वतापूखे वसुप्रीह्वा  
देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सद्यस्वे अङ्गिरस्वद्वृषयन्तूखे म्नास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः  
पृथिव्याः सद्यस्वे अङ्गिरस्वत्पचन्तूखे जनयस्वाच्छिन्नपत्रा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः  
सद्यस्वे अङ्गिरस्वत्पचन्तूखे ॥६१॥

उक्त-पत्र को चक्रों के रूप में कड़ा कटा है—

हे अवट (गर्त) ! सम्पूर्ण दैवी गुणों की अधिपति, देव वृत्तियों की पोषक, देवमाता धूमि के ठन्वस्थ भाग में अंगिरा सदस आपको खनन करें । हे उखे ! देखें की शक्तियों सम्पन्न दैवी गुणों सहित दीप्तिमान् पृथ्वी के ऊपरी भाग में अंगिरा के समान आपको स्पर्शित करें । हे उखे ! सम्पूर्ण देवों की अधिपति—स्तुत्य, सुमति सम्पन्न, दैवी गुणों से युक्त पृथ्वी के ऊपर अंगिरा के तुल्य आपको प्रवर्तित करें । हे उखे ! समस्त देवगुणों से युक्त ओहोरात्र की निर्मात्री धूमि के ऊपर अंगिरा तुल्य आपको पकाएँ । हे उखे ! सभी शक्तियों की पोषक देवी, पृथ्वी के ऊपर अंगिरा के समान आपको पकाएँ । हे उखे ! अनवरत गतिशील देवशक्तियों सम्पूर्ण दैवीगुणों सहित पृथ्वी के ऊपर अंगिरा की तरह आपको परिपक्व करें ॥६१॥

४९२. मित्रस्य चर्चणीयतोऽखो देवस्य सानसि । धुमं मित्रमवस्तमम् ॥६२॥

मनुष्यों को पोषण देने वाली शक्ति से प्रकाशवान्, मित्रदेवता के ज्ञान, आश्चर्यजनक पदार्थों से युक्त ऐश्वर्य को हम धारण करें ॥६२॥

४९३. देवस्त्वा सवितोऽपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुमातुरुत शनत्वा । अव्ययमाना  
पृथिव्यामाशा दिशः ५आपूय ॥६३॥

(हे उछे !) सर्वोत्पादक स्रक्तादेवता अपने उत्तम पुत्रों ( श्रुतों ) एवं अंगुलियों अर्थात् दिव्य किरणों से, अपनी स्रग्मर्थ एवं बुद्धिकौशल के बल पर आपको प्रकटित करें । आप दुःखरहित होकर भूलोक में अपनी शुभाकांक्षाओं और उच्च उद्देश्यों को प्राप्त करें ॥६३॥

४९४. उत्थाय बृहती धवोदु तिष्ठ शुवा स्वम् । मित्रैतां तउठस्त्रां परिदाम्यभित्वा ऽ एषा मा भेदि ॥६४॥

(हे उछे !) आप पाक-गर्त से निकलकर विशालता को प्राप्त हों और स्वाभित्ति प्राप्त कर अपने कार्य को सम्पादित करें । हे मित्र देवता । इस पाक-घर को क्षतिग्रस्त होने के भय से आपके संरक्षण में सौंपते हैं । यह विछिन्नित न हो, बली प्रकार से कार्य सम्पन्न करे ॥६४॥

४९५. वसवस्त्वाध्वन्दन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वदुशस्त्वाध्वन्दन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वदादित्वास्त्वाध्वन्दन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद्विष्णे त्वा देवा वैश्वानरा ऽआध्वन्दन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥६५॥

(हे उछे !) गायत्री छन्द के स्तोत्रों से वसुन्ध्व, त्रिष्टुप् छन्द से रुद्रन्ध्व, जगती छन्द के प्रभाव से अदित्यन्ध्व और अनुष्टुप् छन्द की सामर्थ्य से विष्टेन्ध्व (कृत्स्नाणकारी देवताओं की सानूतिक शक्ति) अंगिरा के सम्मन आपको अभिषिक्त करें ॥६५॥

४९६. आकूतिमग्निं प्रयुज धंस्वाहा मनो मेधामग्निं प्रयुज धं स्वाहा चित्तं विज्ञातमग्निं प्रयुज धंस्वाहा वाचो विशुतिमग्निं प्रयुज धं स्वाहा प्रजापतये मनवे स्वाहाभनवे वैश्वानराय स्वाहा ॥६६॥

पञ्चरूपी सत्कर्म के प्रेरक अग्निदेव के निमित्त यह आहुति समर्पित करते हैं मन और सद्बुद्धि को प्रेरण प्रदान करने वाले अग्निदेव को यह आहुति देते हैं । चित्त और विज्ञापज्ञान को प्रेरित करने वाले अग्निदेव को यह अभ्युक्ति प्रदान करते हैं । वाणी और विशिष्ट विद्याओं के प्रेरक अग्निदेव को यह आहुति देते हैं । यन्त्रनार-प्रवर्तक प्रजापालक मनुष्य अग्निदेव के निमित्त यह आहुति प्रदान करते हैं । संसार के कृत्स्नाणकारी अग्निदेव के निमित्त यह आहुति देते हैं ॥६६॥

४९७. विशो देवस्य नेतुर्मतो वुरीत सख्यम् । विशो रावऽ इषुष्यति शुष्मं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥६७॥

सभी मनुष्य इस जगत् का संचालन करने वाले परमेश्वर की मित्रता को स्वीकार करें । दिव्यज्ञान एवं सांसारिक वैयव की कामना से उस परमपिता की तेजस्विता को चालन करें, उसके लिए हमारी यह आहुति समर्पित है ॥६७॥

४९८. मा सु भित्वा मा सु रिषोऽम्ब धृष्णु वीरयस्व सु । अग्निस्त्रेदं करिष्यथ ॥६८॥

(हे उछे !) आप कभी क्षतिग्रस्त न हों, कभी नष्ट न हों, दृढतापूर्वक श्रेष्ठ-वराक्रमी-शूर की भाँति कर्तव्यों को पूरा करें । अग्निदेव और आप दोनों ही इस कार्य को सम्पादित करें ॥६८॥

४९९. दृ धं हस्य देवि पृथिवि स्वस्त्य ऽआसुरी माया स्वधधा कृतासि । जुष्टं देवेभ्य ऽ इदमस्तु हव्यमरिष्टा त्वमुदिहि यज्ञे अस्मिन् ॥६९॥

हे पृथिवीदेवि । आसुरी मन्त्र की भाँति रूप बदलने में समर्थ आपने कल्याण धाकन से युक्त होकर उद्या का रूप धारण किया है श्रेष्ठ रीति से सुदृढ़ होकर रहें । (हे उछे !) यह हविष्यान्न देवशक्तियों के लिए अनन्दप्रद हो । आप यज्ञ की समाप्ति तक यज्ञशक्त्य में ही ठहरा रहें ॥६९॥

५००. इवक्रः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेभ्यः । सहसस्सुत्रो अद्भुतः ॥७०॥

वृक्ष की समिधाएँ जो जिनका प्रमुख आहार है तथा वृत्त, प्रधान पेय, ऐसे अति प्राचीन, देवशक्तियों को आमंत्रण देने वाले तथा न्त अश्वेन के साथ अग्नि-मंथन द्वारा प्रकट होने वाले अग्निदेव, इस यज्ञ को सफल करें ॥७०॥

५०१. परमस्याऽअधि संवतोऽवरोर अभ्यातर । यत्राहमस्मि तौर अव ॥७१॥

हे अग्निदेव ! विरोधी सेना के साथ संघर्ष कर रहे हमारे सभी आस-पास के (निकटस्थ) सैनिकों का संरक्षण करें और जहाँ हम खड़े हैं, वहाँ सुरक्षा-व्यवस्था सुदृढ़ करें ॥७१॥

५०२. परमस्याः पराधतो रोहिदस्य ऽ इहा गहि । पुरीष्यः पुरुप्रियोप्ने त्वं तरा मृषः ॥७२॥

रोहित नामक अश्व (तदीयपत्न्य सूर्य की अश्व) से युक्त हे अग्निदेव ! वैभवशाली एवं अत्यन्त लोकप्रिय आप दूरवर्ती स्थान से भी यहाँ फटारफट कर और सम्पत्तियों में रिपुओं का संहार करके हमारे यज्ञ कार्य को सफल बनाएँ ॥७२॥

५०३. यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारुणि दम्भसि । सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व चविष्ठस्य ॥७३॥

हे सामर्थवान् अग्निदेव ! जो भी समिधाएँ आपके निर्मित सर्पित की जाएँ, वे सभी आपको घृताहुति के समान ही (स्नेहयुक्त) परमप्रिय हों, उन सभी को प्रसन्नता के साथ ग्रहण करें ॥७३॥

५०४. यदन्पुणजिह्विका धनुषो अतिसर्पति । सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व चविष्ठस्य ॥७४॥

हे तरुण अग्निदेव ! घृण जिस काष्ठ को चट कर निकल है, सीमक जिस काष्ठ को खा जाती है, ऐसे काष्ठ की समिधाएँ आपको घृतवत् प्रिय हों, उनका भी आप प्रेक्षपूर्वक सेवन करें ॥७४॥

५०५. अहरहरप्रयाव धरन्तोद्यायेव तिष्ठते घासमस्मै । राघस्योषेण समिधा मदन्तोग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम ॥७५॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार अधशाता में रहने वाले अश्व को नित्य घास देते हैं, वैसे ही आपके आश्रय में रहने वाले हम राजकु, भद्र के आहार ( समिधाओं ) को एकाग्रित करते हुए नित्य हविष्याग्न प्रदान करते हुए धन-वैभव प्राप्त कर, प्रसन्न हों, कभी दुःखी न हों ॥७५॥

५०६. नाभा पृथिव्याः समिधाने अग्नौ राघस्योषाव बृहते हवामहे । इरम्मदं बृहदुक्थं यजत्रं जेतारमग्निं पृतनासु सासहिम् ॥७६॥

पृथ्वी की नाभि के समान यज्ञकुण्ड में क्रीडते होने की स्थिति में, हविष्याग्न से संतुष्टि को प्राप्त करने वाले, अति प्रशंसनीय यज्ञाग्नि का हम आवाहन करते हैं । जत्रुओं को तिरस्कृत कर युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले अग्निदेव से हम महान् धन ऐश्वर्य प्राप्ति की कामना करते हैं ॥७६॥

५०७. याः सेना ऽ अभीत्वरोराध्याभिनीरुगणा ऽ उत । ये स्तेना ये च तस्करास्तांस्ते अग्नेपि दद्याम्यास्ये ॥७७॥

हे अग्ने ! आक्रमण के लिए तैयार जत्रुओं से सुसज्जित विरोधियों की सेना को, चोर तथा डाकुओं को आपके प्रज्वलित मुख में झोंकते हैं, अर्थात् अपनी प्रचण्ड तेजस्विता से विरोधी तत्वों का विनाश करते हैं ॥७७॥

५०८. दंष्ट्राध्यां मलिम्लूज्जम्भ्यैस्तस्करैर उत । हनुष्या ऽंस्तेनान् पगवस्तांस्त्वं खाद  
सुखादितान् ॥३८॥

हे ऐश्वर्यशाली अग्निदेव ! आप दुष्कर्म में संलग्न दुष्टों को अपनी दाढ़ों से, दंष्ट्रों को दाँतों से और चोर कर्मियों को छोड़ी से संक्रुष्ट करें । आतंकित करने वालों को समूल नष्ट कर दें, अर्थात् सभी दुष्कर्मियों से छुटकारा दिलाएँ, जिससे सभी निर्धन होकर सत्कर्म करें ॥३८॥

५०९. ये जनेषु मलिम्लूज्ज स्तेनासस्तस्करा वने । वे कक्षेष्वधायवस्तांस्ते दधामि जम्भयोः ॥

हे जग्ने ! जो मनुष्यों में हीन आचरण करने वाले और चोर हैं, जो निर्जन वन-प्रदेश में घूमने वाले तस्कर हैं और घने स्थानों पर मनुष्यों के अज्ञपतक हैं, उन सबों को आपकी दाढ़ों कक्षी प्रच्छन्न अवस्थ में डालते हैं ॥३९॥

५१०. यो अस्मभ्यमरातीयाच्छ नो ह्येषो वनः । निन्दाद्यो अस्मान्निष्प्राज्य सर्वं तं  
यस्मसा कुरु ॥४०॥

हे अग्निदेव जो मनुष्य हम से शत्रुवत् व्यवहार करे और जो पुरुष हमसे ईर्ष्या करे, जो हमारे निन्दक हों तथा जो हमारी निर्णयक्ष में बाधक करें, उन सबों को नष्ट कर डाले (अर्थात् ऐसे दुर्गुणों को समूल समाप्त कर दें) ॥४०॥

५११. स ऽंशितं मे ब्रह्म स ऽंशितं वीर्यं बलम् । स ऽंशितं क्षत्रं जिष्णु यस्याहमस्मि  
पुरोहितः ॥४१॥

हे अपने आपके प्रभाव से हमारा और जिसके हृष पुरोहित है, उस सज्जमान का प्रशंसनीय ब्रह्म (ज्ञान), प्रशंसनीय तेजस्विता तथा प्रशंसनीय विजयशील क्षत्र कल विकसित हो ॥४१॥

५१२. उदेषां बाहु अतिरमुह्यो अथो बलम् । क्षिणोमि ब्रह्मणाऽमिप्रानुन्नयामि  
स्वार् अहम् ॥४२॥

हे अग्निदेव ! दुष्कर्मियों के सदुत्थल की अपेक्षा हमारा पराक्रम बल्वर हो, उनके तेज की अपेक्षा हमारा बाहुतेज श्रेष्ठ हो । ज्ञान की तेजस्विता से विरोधियों का सम्पन्न हो, हम स्वयंनों को ऊँचा उठाते हैं ॥४२॥

[समस्तजिह्व सुव्यवस्था के लिए आवश्यक है कि समस्त स्वेन दुर्गुणों की अपेक्षा अधिक तेजस्वी होकर रहे]

५१३. अन्नपतेन्नस्य नो देह्यनमीयस्य शृचिषाः । प्रप्र दातारं तारिष उऊर्जं नो भेहि  
द्विपदे चतुष्पदे ॥४३॥

अन्न के स्वामी हे अग्निदेव ! आप हमारे लिए असुरोन्मूलक तथा चोचनयुक्त अन्न प्रदान करें । दानशील मनुष्यों की भली-भाँति पोषित करें । हमारे पुत्र-पौत्रादि और पशुओं के लिए भी शक्तिवर्द्धक अन्न प्रदान करें ॥४३॥

## — ऋषि, देवता, छन्द-विवरण —

**ऋषि—** ऋजुपति अथवा सप्तर्षि सविता १-८ । ऋजुपति अथवा सप्तर्षि ९ ११ । ऋषिनेदिष्ठ १२, ७५-८३ । कुत्रि १३ । शुक्ल होर १४-१६ । पुरोषस १७ । यजुष्य १८-२२ । मृत्सम्पद २३, २४, २७-३१, ३६ । सोमक २५ । पापु २६ । मृत्सम्पद, चरदाय ३२ । चरदाय ३३, ३४ । देवश्रवा और देवकात ३५ । प्रस्कण्य ३७ । सिन्धुद्वीप ३८-४०, ५०-६१ । विश्वकर्मा ४१ । कण्व ४२ । श्रित ४३-४८ । उत्तमैल कात्य ४९ । विश्वामित्र ६२-६६ । स्वस्त्य आश्रय ६७-६९ । सोमहृति ७० । विरूप आनिरस ७१ । आरुणि ७२ । अम्पदग्नि ७३, ७४ ।

**देवता—** सविता १-११, ६३, ६७ । अश्व १२, १५, १८-२२, ४३ । ऋषि १३ । अश्व १४, ४५ । अग्नि १६, १७, २३-२७, ३२-३७, ४०-४२, ४९, ७०-८३ । अश्वि २८ । पुष्करपर्ण २९ । कुम्भजिन, पुष्करपर्ण ३०, ३१ । आपः (कल) ३८, ५०-५२ । पृथिवी, वायु ३९ । रासय ४४ । सिन्धो, अग्नि ४६ । अग्नि, ओषधियाँ ४७ । ओषधियाँ ४८ । मित्र ५३, ६२ । रुद्रमय ५४ । सिन्धोवस्ती ५५, ५६ । अदिति, मृत पिण्ड ५७ । उखा सिन्धो ५८, ६०, ६५ । रासय, उखा, अदिति ५९ । अम्पद, उखा ६१ । उखा, मित्र ६४ । अग्नि आदि ६६ । उखा, अग्नि ६८ । उखा ६९ ।

**छन्द—** विराट् आषी अनुष्टुप् १, ३० । विराट् संकुम्भी जगती २ । निवृत् अनुष्टुप् ३, १८, १९, ३१, ७३, ७९ । जगती ४ । निवृत् जगती उष्णिक् ५ । निवृत् आषी जगती ६ । आषी त्रिष्टुप् ७, २३, ५९ । भुरिक् जगती ८ । भुरिक् अतिसजगती ९ । भुरिक् अनुष्टुप् १०, ४०, ४१, ४८, ७७ । भुरिक् आषी पंक्ति ११ । आसार पंक्ति १२ । तावरी १३, १४, ५०-५२, ६८ । आषी जगती १५ । विराट् त्रिष्टुप् १६ । निवृत् आषी त्रिष्टुप् १७, २२ । निवृत् आषी जगती २०, ३७ । आषी पंक्ति २१, २४ । निवृत् जगती २५, ३३, ३४, ६२ । अनुष्टुप् २६, ५४, ६४, ६७, ८० । पंक्ति २७ । ऋषि २८ । स्वराट् पंक्ति २९ । त्रिष्टुप् ३२, ३६, ४९, ६९ । निवृत् त्रिष्टुप् ३५ । न्यकुम्भरिणी बृहती ३८ । विराट् त्रिष्टुप् ३९, ४३, ७५ । उपरिहृत् बृहती ४२, ५३, ८३ । विराट् अनुष्टुप् ४४, ५५, ५६, ७४, ८२ । विराट् पञ्चमृहती ४५ । जगती बृहती ४६ । विराट् जगती त्रिष्टुप् ४७, ६६ । भुरिक् बृहती ५७, ६३ । विराट् अधिकृति, अधिकृति ५८ । स्वराट् संकुम्भी ६० । भुरिक् कृति, निवृत् ऋषि ६१ । भुरिक् कृति ६५ । विराट् गायत्री ७०, ७१ । भुरिक् उष्णिक् ७२, ७८ । स्वराट् आषी त्रिष्टुप् ७६ । निवृत् आषी पंक्ति ८१ ।

## ॥ इति एकादशोऽध्यायः ॥



## ॥ अथ द्वादशोऽध्यायः ॥

५१४. दशानो रुक्मऽ उर्व्या व्यद्यौद दुर्धर्षमायुः श्रिये रुक्मानः । अग्निरमृतो  
अथवद्वयोर्धियेदेनं सौरजनयत्सुरेतः ॥१॥

सब पदार्थों को प्रकाशित करने करते, तेजस्वी मूर्खद्वय इस लोक में सहज दर्शनीय हैं तथा विभिन्न प्रकार से धन-ऐश्वर्य को बढ़ाते हुए शोभायमान होते हैं । उन्हीं प्रकार वे अग्निदेव श्रेष्ठ शक्ति-सम्पन्न अमृतस्वरूप, दुःख नाशक, आयुष्म के संवर्धक हैं । देवताओं द्वारा इन्हें प्रकट किया गया है ॥१॥

५१५. नक्तोवासा समनसा विरूपे वापयेते शिशुमेकं दं सप्तौचो । द्वावाक्षामा रुक्मो  
अन्तर्विधाति देवाऽ अग्निं वारवन्निविणोदः ॥२॥

जिस प्रकार माता-पिता (विपरीत स्वभाव से युक्त होने पर भी) एक चित्त होकर चारस्परिक सहयोग से बालक का पोषण करते हैं, उसी प्रकार रात्रि-दिवस मन्त्रों एक समान एक चित्त होकर अग्निरूपो शिशु को प्रातः सायं हविर् द्वारा पोषित करते हैं, जिससे वे दिव्यलोक और भू-लोक के भीतर मूर्खद्वय के समान मुसोपित होते हैं— ऐसे अग्निदेव को ऐश्वर्य-प्रदायक शक्तियों ने धारण किया है ॥२॥

५१६. विद्या कृपाणि प्रति मुञ्चते कृत्तिः प्रासावीद्वद्व द्विपदे चतुष्पदे । वि नाकमख्य-  
त्सविता वरेण्योनु प्रयाणमुषसो वि राजति ॥३॥

वरणीय, प्रियास्पर्शों, सवितदेव उपाकृत के कट विशेष प्रकार से बिखेरते हैं, जिससे सभी पदार्थ अपने स्वस्य स्वरूपों को धारण करते हैं । मनुष्यों के साथ सभी प्राणियों को कल्याणकारी मार्ग में प्रवृत्त करते हैं ॥३॥

५१७. सुपर्णोसि गरुड्योस्त्रिपुते शिरो गायत्री चक्षुर्बृहन्नन्तरे पक्षौ । स्तोमऽ आत्मा  
छन्दा दंस्वङ्गानि यजू दं वि नाय । साम ते तनून्नाम्देव्यं यज्ञाध्वजिषं पुच्छं विष्म्यः  
रुपाः । सुपर्णोसि गरुड्यान्दिषं गच्छ स्वः पतः ॥४॥

कर्ण्यगामी, महान् हे अग्निदेव ! आप सुन्दर पक्षों से युक्त गरुड के सदृश गतिशील हो । त्रिवृत् स्तोम आपके शिर और गायत्री छन्द आपके नेत्र हैं । दो पक्ष के रूप में बृहत् और रबन्तर साम हैं, यज्ञ आपकी अन्तरात्मा, सभी छन्द आपके शरीर के अंग और यजु आपका स्नायु है । आपदेव नामक स्नायु आपकी देह, यज्ञाध्वजिष नामक साम आपकी पूँछ और विष्म्य स्थित अग्नि आपके खुर-रुख हैं । हे अग्ने ! आप गरुड की भाँति दिव्यलोक की ओर प्रस्थान करें और स्वर्गलोक को प्राप्त करें ॥४॥

५१८. विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा गायत्री छन्दऽ आरोह पृथिवीमनु विक्रमस्व विष्णोः  
क्रमोस्यभिमातिहा त्रैष्टुभं छन्दऽ आरोहन्तरिक्षमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोस्यरातीयतो  
हन्ता जागतं छन्दऽ आरोह दिवमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोसि शत्रूयतो हन्तानुष्टुभं  
छन्दऽ आरोह दिशोनु विक्रमस्व ॥५॥

हे अग्ने ! आप सर्वव्यापक विष्णुदेव के समुसंहारक कार्यक्रम में गायत्री छन्द के प्रभाव से भूलोक में, त्रिष्टुप् छन्द पर आरोहित होकर अन्तरिक्ष में, ब्रह्मती छन्द पर आरोहित होकर स्वर्गलोक में और अनुष्टुप् छन्द के प्रभाव से सभी दिशाओं में अपना विशेष पराक्रम प्रदर्शित करें और सभी लोकों की दुष्प्रवृत्तियों को समाप्त करें ॥५॥

५१९. अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुषः समञ्जन् । सद्यो जज्ञानो वि  
हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥६॥

हे अग्ने ! आप आकाश में पेशों के मध्य विद्युत् के रूप में चमकते एवं भजना करते हुए पृथ्वी को गुंजायमान करते हैं । प्राण-पर्जन्य के रूप में वृक्ष-वनस्पतियों को अंकुरित करते हैं । शीघ्र उत्पन्न और प्रज्वलित होकर सभी को प्रकाशित करते हैं । पृथ्वी और पुस्तोक के मध्य विद्युत् के रूप में मुशोभित होने वाले आप मृत्यु हैं ॥६॥

[प्रकृति में विभिन्न रूपों में संसार ऊर्जा का स्पष्ट असेख्य धर्म विद्यमान है ।]

५२०. अग्नेध्यावर्तिप्रभि या निवर्त्तस्वायुषा वर्धसा प्रजयस्य वनेन । सन्या येधया रध्या  
पोषेण ॥७॥

सम्मुख प्रकाशित होने वाले हे अग्निदेव ! आप दीर्घायुष्य, तेज, सन्तान, श्रेष्ठ बुद्धि, स्वर्णादि आभूषण तथा शारीरिक पोषण आदि के रूप में अभीष्ट लाभ प्रदान करते हुए हमारे लिए अनुकूल हों ॥७॥

५२१. अग्ने अङ्गिरः शतं ते सन्वायुतः सहस्रं तऽ उपायुतः । अद्या पोषस्य पोषेण पुनर्नो  
नष्टमाकृषि पुनर्नो रधिमाकृषि ॥८॥

हे अङ्गिरावत् दीप्तिमान् अग्ने ! आप सैकड़ों बार हमारे आवाहन पर आएँ आपका यहाँ से विसर्जन भी सहस्रों बार (अनेकों बार) हो । आप पोषण करने करने धन को बढ़ाते हुए हमारे छोये हुए धन को पुनः उपलब्ध कराएँ एवं हमें पुनः वैभवशाली बनाएँ ॥८॥

५२२. पुनरूर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्नः इवायुषा पुनर्नः पाद्म एऽ हस्तः ॥९॥

हे अग्निदेव ! आप अपनी प्रकर ऊर्जा के साथ पुनः यहाँ उपस्थित हों । अन्न और आयुष्य के संबर्द्धन हेतु पुनः आएँ और आकर पापकृत्यों से हमें मुक्ति दिलाएँ ॥९॥

५२३. सह रध्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वपन्या विश्वतस्परी ॥१०॥

हे अग्निदेव ! आप धन के साथ आपस आएँ और संसार के उपकोश के लिए श्रेष्ठ-पवित्र बलघात से ओषधियों, वनस्पतियों आदि सभी को अभिषिक्त करें ॥१०॥

५२४. आ त्वाहार्चमन्तरभूर्धुवस्तिष्ठाविचाचस्ति । विशस्त्वा सर्वा वाक्छन्तु मा  
त्वद्वाष्ट्रमधिप्रशत् ॥११॥

हे अग्ने ! सम्मानपूर्वक आपको लेकर आएँ हैं, आप ठेका के मध्य भाग में विचलित हुए बिना स्थिरतापूर्वक उपस्थित रहें । सभी प्रजाएँ आपकी कामना करें, हमारा यह आपके तेजस्विकतायुक्त गुणों से कभी रहित न हो ॥

५२५. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदकाधर्मं वि मध्यय एऽ अघाय । अद्या वयमादिस्थ वते  
तवानागसो अदितये स्याम ॥१२॥

हे वरुणदेव ! आप तीनों तप रूपी वस्त्र से हमें मुक्त करें । आचिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक पाश हमसे दूर हों तथा मध्य एवं नीचे के बंधन हमसे अलग करें । हे सर्व पुत्र ! पापों से रहित होकर आपके कर्मफल-सिद्धांत में अनुशासित हम दयनीय स्थिति में न रहें ॥१२॥

५२६. अग्रे बृहन्नुषसामूध्यो अस्माभिर्जगन्वान् तमसो ज्योतिषागात् । अग्निर्मानुना  
रुशता स्वङ्गऽ आ जातो विश्वा सन्तान्यस्रः ॥१३॥

महिमायुक्त अग्निदेव उषा के पहले झकट हुए, रात्रिको अँधेरे को दूर करके दिन के प्रकाश के साथ यहाँ उपस्थित हुए हैं । अपनी ज्वालाओं से सुसंश्लिप्त होते हुए सम्पूर्ण धुवनो को अपने तेज से प्रकाशित करते हैं ॥१३॥

५२७. इ॒ष्टं सः शुचिबद्धसुरन्तरिक्षसद्भोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद्  
व्योमसदब्जा गोजा ऽ ऋतजा ऽ अद्रिजा ऽ ऋतं बृहत् ॥१४॥

सब में चैतन्य-स्वरूप, पवित्रता में विद्यमान रहने वाले, अन्तरिक्ष में वायु के रूप में, सभी के आश्रयभूत, ब्रह्मवेदी में देवताओं के वाहक, वज्रजाला में वास करने वाले, सबके पूज्य, अतिथि, प्राणाग्नि के रूप में सभी मनुष्यों में, अक्राश में विद्युत् रूप में स्थित, जल में बड़वाग्नि रूप में, भूमि में ज्वालामुखी फूटने के रूप में, सत्य-ज्ञान से सम्पन्न, पत्थरों में चिनगारीरूप में उत्पन्न होने वाले ऐसे सर्वत्र व्यापक अग्निदेव की महिमा प्रशंसीय है ॥१४॥

५२८. सीद त्वं मातुरस्या ऽ उपस्थे विद्यान्यग्ने ययुनानि विद्वान् । यैनां तपसा  
मार्चिवाधि शोचीरन्तरस्या ऽं शुक्रज्योतिर्विभाहि ॥१५॥

हे अग्ने ! सम्पूर्ण क्षमों के जन से युक्त आप उत्तमकी फल की गोद में स्थित हों । इसे अपनी ताप ऊर्जा से संतप्तन होने दें । ज्वाला से दग्धन करें । इसके बीच में स्थित आप अपनी सीतल ज्योति से प्रकाशित हों ॥१५॥

[ताप और प्रकाश को आपन-आपन करने में अनुचित विद्वान् को बहुत बार में सज्जन मिले, तब वे सम्पूर्ण लोक ज्योति का प्रकाश केवल में ही करते थे ॥

५२९. अन्तरग्ने रुक्मा त्वमुखायाः सद्ने स्ये । तस्यास्त्व ऽं हरसा तपज्जातवेदः शिवो भवः ।

हे अग्निदेव ! आप अपनी चमक से इस उषा के पक्ष में अपने आवास स्थल पर ही प्रज्वलित हों । सर्वज्ञाता अग्ने ! आप ज्वाला से तेजस्वी होते हुए उमरु (उषा का) हर प्रकार से हित करें ॥१६॥

५३०. शिवो भूत्वा मह्यमग्ने अयो सीद शिवस्थम् । शिवः कृत्वा दिशः सर्वाः स्व  
योनिमिहासद् ॥१७॥

हे अग्ने ! आप हमारे लिए हितकारी होकर बड़ी शक्ति से विराजमान हों । सम्पूर्ण दिशाओं को कल्याण भाव से युक्त करें तथा उषा (चमकने के फल) की गोद में (अपने निर्धारित आवास स्थल पर) स्थापित हों ॥१७॥

५३१. दिवस्परि प्रथमं अजे अम्विरस्पद् द्वितीयं परि जातवेदः । तृतीयमयसु नमणा  
ऽअजसमिन्धानऽ एनं जरते स्वाधीः ॥१८॥

जातवेद अग्निदेव सर्वप्रथम दुल्लोक में सूर्यरूप में उत्पन्न हुए, द्वितीय भूतल में यज्ञाग्नि के रूप में प्रादुर्भूत हुए, तृतीय जल में बड़वाग्निरूप में उत्पन्न हुए, त्रेष्ठ बुद्धि सम्पन्न वज्रघन प्रज्वलित होने पर ऐसे अग्निदेव की प्रार्थना करते हैं ॥१८॥

५३२. विद्या ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्या ते भय विभृता पुरुत्रा । विद्या ते नाम परमं  
गुहा यद्विद्या तमुत्सं यतऽ आजमन्व ॥१९॥

हे अग्ने ! आपके जो सूर्य, अग्नि और बड़वा तीन देव हैं, उन्हें हम जानते हैं । मार्हपत्य, आहवनीय, अन्वाहार्य-पचन, आग्नीधीय आदि आपके सभी स्थानों को भी हम जानते हैं । आपका जो मंत्र-स्थित गुप्त नाम है, उसके भी हम ज्ञाता हैं और आपके विद्युत् रूप में चमकने वाले अस्मत् से उत्पन्न होने वाले स्थान को भी हम जानते हैं ॥१९॥

५३३. समुद्रे त्वा नमणा ऽ अप्यन्तर्नृचक्षा ऽ ईषे दिवो अमन् ऽ कथन् । तृतीये त्वा  
रजसि तस्थिवा ऽं समपामुपस्थे महिषा अवर्धन् ॥२०॥



हे अग्निदेव ! मनस्वी जड़ों ने अक्षय्य समुद्र से बड़बुद के रूप में, तेजस्वी प्रजापति ने अन्तरिक्ष के मेघों के बीच विद्युत् रूप में तथा तीसरे सुलोके में तेजस्वी सूर्य के रूप में प्रकट किया । जल में विद्यमान अक्षय्य महान् इच्छा शक्ति-सम्पन्नो ने बढ़ाया ॥२०॥

[संक्षिप्तरीति से इस जल से अर्धविकृत की प्रक्रिया का प्रसिद्ध उदाहरण यहाँ में है ॥]

५३४. अक्रन्ददग्निः स्तनघ्निक इवैः क्षाम्य रेरिहृदीरुहः सभञ्जन् । सद्यो जज्ञानो वि  
हीमिहो अस्त्वदा रोदसी धानुना धात्यन्तः ॥२१॥

सुलोके में मेघों के समान नर्जनशील होकर अग्निदेव पृथ्वी को आलोकित करते हैं । वृक्ष-वनस्पतियों को अंकुरित करते हुए सब में संव्याप्त होते हैं । शीघ्र प्रकट होकर अपनी तेजस्विता द्वारा सुलोक और धूलोक के मध्य में प्रकाशमान होते हैं ॥२१॥

[यह विद्यमान-सम्पन्न है कि मेघों में विद्युत् चक्रे से आग्नेय नैऋत के अर्धविकृत करने वाले चक्रेन करते हैं । इस पत्र में इसी प्रक्रिया का संकेत है ॥]

५३५. श्रीणामुदारो अरुणो रयीणां मनीषाणां इर्षयः सोमगोपः । वसुः सनुः सहस्रो  
अप्सु राजा वि धात्यस्य ऽ उवसाभिधान् ॥२२॥

ऐश्वर्य के प्रदाता, धन के धारणकर्ता, इच्छाओं को परिपूर्ण करने वाले, सोम के संरक्षक, सबके आश्रय, वसपूर्वक अरुण से उत्पन्न होने के कारण जल के पुत्ररूप, जल में विद्युत् रूप, उवाकल के पश्चात् सूर्य के रूप में चमकने वाले अग्निदेव विशेष रूप से सुरक्षित होते हैं ॥२२॥

५३६. विद्यस्य केतुर्धुवनस्य गर्भः ऽ आ रोदसी अपुणाज्जायमानः । वीर्यं विदग्निमधिनात्  
परायज्जना यदग्निमयज्जना पठ्य ॥२३॥

विद्य की पताका के रूप में ये अग्निदेव सभी लोकों में प्रदोष होकर सुलोक और धूलोको को तेजस्विता से अभिभूरित करते हैं । सर्वत्र वर्तमान, अति सुदृढ़ कटखत को भी विदीर्ण कर देते हैं, ऐसे अग्निदेव के निमित्त पंचजन (सम्पूर्ण समाज अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा निम्न) संयुक्त रूप से यज्ञ सम्पन्न करते हैं ॥२३॥

५३७. उशिकपावको अरतिः सुमेधा मर्त्येष्वग्निरमृतो नि धायि । इयर्तिं धूममरुधं  
भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा क्षामिनक्षन् ॥२४॥

कभी समाप्त न होने वाली शोच से युक्त, पवित्रप्रदायक, दुष्टों के संहारक, मेघा-सम्पन्न अग्निदेव, मनुष्यों में स्थापित किये गये हैं । ये अग्निदेव ज्ञानि रहित धूम को उत्तर भेजते हैं और प्राण-पर्वन्त वर्षा के रूप में पोषण प्रदान करते हैं । साथ ही अपनी पावन कृति से सुलोके में संयुक्त होते हैं ॥२४॥

५३८. दृशानो रुक्मः ऽ उवर्षा व्यद्यौर्धुर्मर्षमायुः भ्रिये रुवानः । अग्निरमृतो  
अभवद्वयोधिर्यदिनं द्यौरजनयत्सुरेताः ॥२५॥

प्रत्यक्ष दिखने वाले स्वयं प्रकाशित अग्निदेव, अर्धियों को शोचवर्धन करते हुए, पृथ्वी के साथ सब वस्तुओं को आलोकित करते हैं । याज्ञिकों द्वारा पुरोडास आदि से देदीप्यमान अविनाशी अग्निदेव को देवताओं ने लोक-कल्याण के लिए प्रकट किया (अर्थात् अग्नि का उपयोग विध्वंसक कर्मों में करना देव-अनुज्ञान का उल्लंघन है ॥) ॥२५॥

५३९. वस्ते अहं कृण्वद्भद्रशोचेपुं देव धृतवन्तमग्ने । प्र तं नय प्रतरं वस्यो अक्काभि  
सुम्नं देवभक्तं धविष्ठ ॥२६॥

लोक हितकारी दिव्यगुण सम्पन्न हे अग्निदेव ! आज जो यजमान आपको घृत-सिक्त पुरोडाश समर्पित करते हैं, उन याजकों को सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित करें । हे शक्ति-सम्पन्न अग्निदेव ! देवताओं के लिए उपलब्ध होने वाले श्रेष्ठ सुखों को भी प्रदान करें ॥२६॥

५४०. आ तं यज सौम्यसेधमन् ऽ उक्च ऽ उक्च ऽ आ यज शस्यमाने । प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवात्पुञ्जातेन भिन्ददुज्जनिस्त्वै ॥२७॥

हे अग्निदेव ! आप यजमान को श्रेष्ठ यज्ञ कर्म में प्रतिष्ठित करें, प्रत्येक प्रतापित यज्ञानुष्ठान के अवसर पर उसके लिए अनुकूल बनें । उपासक यजमान सूर्यदेव एवं आपके प्रति-पात्र हो तथा पुत्र-पौत्रादि सभी संतानों के सुख से समृद्ध हों ॥२७॥

५४१. त्वामग्ने यजमाना ऽ अनु यून विश्व वसु दधिरे कार्याणि । त्वया सह द्विणिमिच्छमाना यज गोमन्तमुशित्वो विवसुः ॥२८॥

हे अग्निदेव ! अनेक यजमान आपकी सेवा में संलग्न हैं । प्रतिदिन उपलब्ध वैषक-ऐश्वर्य को धारण करते हैं तथा आपके साथ की आज्ञाकार करते हुए येकको उन यज्ञ के पुण्य कर्मों से— दिव्य प्रकारा किरणों से— मुक्त देवलोक को जाते हैं ॥२८॥

५४२. अस्ताव्यमिर्नरा ऽ सुशोको वैश्वानर ऽ अविष्टि सोमगोपः । अहूषे छावापृथिवी हुवेम देवा यज रथिमस्मे सुवीरम् ॥२९॥

अठारहवर्ष में सभी मनुष्यों के शुभशिवल और सोमरक्षक अग्निदेव की प्रशंसा द्वारा वन्दना की जाती है । परस्पर द्वेष-भाव से रहित भूमि और सुलोक के अधिभक्त देवशक्तियों का हम आकाहन करते हैं । हे देवों ! हमें बलवान् पुत्रों के साथ अपार धन सम्पदा प्रदान करें ॥२९॥

५४३. समिधाम्नि दुवस्थत धृतैर्बोध्यतातिभिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥३०॥

हे ऋत्विजो ! आप समिधाओं द्वारा अग्निदेव को प्रसन्न करें, ऋत्विगिरूप अग्निदेव को घृताहुतियों द्वारा प्रदीप्त करें तथा इस प्रदीप्त अग्नि में हवन-सम्पत्तियों की आहुतिर्पण प्रदान करें ॥३०॥

५४४. इदु त्वा विश्वे देवा ऽ अग्ने यरन्तु धितिभिः । स नो भव शिंशस्व ऽ सुप्रतीको विभावसुः ॥३१॥

हे अग्निदेव ! आपको सभी देवत्व-सम्पत्तक शक्तियों, श्रेष्ठ वृत्तियों द्वारा परिपोषित करें । आप श्रेष्ठ ज्वालाओं से सुशोभित और प्रचुर वैभव से युक्त लेकर हमारे स्थिर सभी प्रकार से कल्याणकारी सिद्ध हों ॥३१॥

५४५. प्रेदस्ने ज्योतिष्मान् याहि शिवेभिरर्चिभिष्ट्वम् । बृहद्भिर्भानुभिर्भासन्मा हिंस्ती सीस्तन्वा प्रजाः ॥३२॥

हे अग्निदेव ! आप कल्याणकारी तेजस्वी ज्वालाओं से युक्त होकर कहीं पदार्पण करें और व्यापक रश्मियों से प्रकाशित होकर हमारी सन्तानों को प्रत्येक विपत्ति से बचाएँ ॥३२॥

५४६. अक्रन्ददग्निः स्तनयमिव द्यौः क्षामा रेरिहृदीरुक् समञ्जन् । सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भास्यन्ते ॥३३॥

आकाश में पेघों की तरह गर्जन कर, कृष्ण-वनस्पतियों को अंकुरित करते हुए अग्निदेव अपनी ज्वालाओं से पृथ्वी को प्रकाश-युक्त करते हैं । सौम्य हो प्रकट होकर अग्ने विद्युत् किरणों द्वारा पृथ्वी और धुलोक को प्रकाशित करते हैं ॥३३॥

५४७. प्र प्रायमग्निर्मरुतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्वाः । अग्निं यः पूरुं पृतनासु तस्थौ दीदाय दैव्यो अतिथिः शिवो न ॥३४॥

हविष्य प्रदान करने वाले वाजक के आमन्त्रण को स्वीकार कर देवों के अतिथि, अग्निदेव अति तेजस्वी होकर सूर्य के समान ही प्रकाश बिखेरते हैं । जो बृहद् क्षेत्र में दुष्कृति कृषी राक्षसों के समक्ष उपस्थित होते हैं और हमारे लिए कल्याणकारी भावों से युक्त होकर प्रगल्भ होते हैं ॥३४॥

५४८. आपो देवीः प्रतिगृष्णीत भस्मैतत्स्योने कृशुश्च ॐ सुरधा ऽ उ लोके । तस्यै नमन्तां जनयः सुपत्नीमतिव पुत्रं विभृताप्येनत् ॥३५॥

हे दिव्यतायुक्त वससमूह ! आप भस्म को ग्रहण करके उपयुक्त श्रेष्ठ सुगन्धित स्थान पर रहें श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न स्त्रियाँ जैसे पति के सम्मुख किनप्रकारपूर्वक सूकती हैं, वैसे ही अग्निदेव के सम्मुख आप होंगे । इस भस्म को अपने में उसी प्रकार धारण करें, जैसे माता द्वारा शिशु को खेद में धारण किया जाता है ॥३५॥

५४९. अप्स्यग्ने सधिष्टव सौबधीरनु रुष्यसे । गर्भे सञ्जायसे पुनः ॥३६॥

हे भस्मरूप अग्निदेव ! आप जल में बड़वाग्निरूप में स्थित हैं । सम्यो आदि ओर्ध्वधियों में विद्यमान रहते हैं और भरणि-धन्वन से बार-बार आप प्रकट होते हैं ॥३६॥

५५०. गर्भो अस्मोबधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् । गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भो अपामसि ।

हे अग्निदेव ! आप ओर्ध्वधियों, वनस्पतियों, सम्पूर्ण प्राणियों और जल के गर्भ में समायें हुए, हैं अर्थात् (उन सबकी) उत्पत्ति के कारण हैं ॥३७॥

५५१. प्रसद्य भस्मना योनिमप्यष्ट पृथिवीभग्ने । सद्यः सृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान् पुनरा सद्यः ॥३८॥

हे अग्निदेव ! आप भस्मरूप से पृथ्वी और जल में स्थापित हैं । मातृरूप जल से अभिषिक्त होकर तेजस्विता से परिपूर्ण हुए यज्ञ में दुबारा उपस्थित होते हैं ॥३८॥

५५२. पुनरासद्यः सदनमप्यष्ट पृथिवीभग्ने । शेषे मातुर्यक्षोपस्येन्तरस्यां शिवतमः ॥३९॥

हे अग्निदेव ! अति मंगलमय आप जल और भूमि के स्वाम को प्राप्त करते हैं । शय्यात् माता की गोद में सोते हुए बालक की पींति उल्ला के गर्भस्थल में (भक्ष्य भक्षण में) विक्राम करते हैं ॥३९॥

५५३. पुनरूर्जां निवर्त्तस्व पुनरग्नः ऽ इषायुषा । पुनर्नः पाह्य ॐ हस्तः ॥४०॥

हे अग्निदेव ! आप सामर्थ्य-शक्ति के साथ पुनः पश्चरें । दीर्घायुष्य के लिए पोषकतत्वों के साथ पुनः यज्ञस्थल में आएँ एवं यहाँ आकर हमें पापवृत्तियों से बचाई ॥४०॥

५५४. सह रथ्या निवर्त्तस्वाम्ने धिन्वस्व धारया । विश्वपन्था विश्वतस्परि ॥४१॥

हे अग्ने ! अपने अपार वैभव के साथ यहाँ पुनः पश्चरें और सभी प्राणियों के लिए कल्याणकारी वृष्टिरूप जलधारा से सम्पूर्ण संसार को अभिषिक्त करें ॥४१॥

५५५. बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ म ॐ द्विष्टस्व त्रभूतस्व स्वभाक् । पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति चन्द्रारुहे तन्वं चन्दे अग्ने ॥४२॥

उत्तम तृणरूप, वैभक्त-सम्पन्न है अग्निदेव ! आज हमारे अधिष्ठातृत्व को-कोर किये गये विवेदन को अर्थ जानें । कोई आपके निन्दक हैं, तो कोई प्रशंसक करने करते हैं, संकिन हम स्तोत्र-भाव से युक्त आपके प्रशंसित रूप की सदैव वन्दन करते हैं ॥४२॥

५५६. स धोमि सूरिर्मधवा वसुपते वसुदावन् । युयोध्यस्मद् देवा ऽऽ सि विश्वकर्मणे स्वाहा ॥४३॥

हे घनाधिपति, दाता, अग्निदेव ! आज ज्ञानवान् और वैभक्त-सम्पन्न हैं, अतः हमारे अधिष्ठातृत्व को समझे और इसे जानकर हमारे अनिष्टों का निवारण करें । विश्व के समस्त क्रियाकलापों को श्रेष्ठ विधिपूर्वक सम्पादित करने वाले, आपके निमित्त हमारे आहुतियाँ समर्पित हैं ॥४३॥

५५७. पुनस्त्वादित्या रुद्रा यस्य सयिन्वता पुनर्ब्रह्माणो वसुनीध यज्ञैः । घृतेन त्वं तन्वं धर्षयस्य सत्पन्ः सन्तु यजमानस्य कार्याः ॥४४॥

हे अग्निदेव ! ऐश्वर्य के निमित्त अदित्याण्य, रुद्राण्य और वसुधाम्य आपको पुनः प्रज्वलित करें, याजकगण यज्ञकर्म हेतु पुनः आपको प्रदीप करें, आज आम्बुहुतियों द्वारा अपनी ज्योतिरूपी देह को संवर्धित करें । आपके संवर्धन से याजकों को अभीष्ट लाभ प्राप्त हो ॥४४॥

५५८. अपेत धीम वि च सर्पतातो येन स्व पुराणा ये च नूतनाः । अदाद्यमोवसानं पृथिव्या ऽ अक्रान्तिम पितरो लोकमस्मै ॥४५॥

हे यमदूत ! आप पुराने व नये जैसी भी स्थिति में हों, इस यज्ञस्थल से दूर चले जाएँ । यह स्थान (यन्त्र) यजमान के लिए समर्पण द्वारा निर्धारित किया गया है, अतः आप इस स्थान को छोड़कर आगे न बढ़ जाएँ ॥४५॥

५५९. संज्ञानमसि कामधरणं मयि ते कामधरणं धूयात् । अग्नेर्धस्मास्यग्नेः पुरीषमसि धित स्व परिधित ऽ ऊर्ध्वचितः प्रथमम् ॥४६॥

हे ठहरे ! आप यज्ञीय कर्म द्वारा उदात्त ज्ञान को सम्पादित करती हैं । अतएव आपके ज्ञानार्जन की सामर्थ्य-शक्ति हमें भी उपलब्ध हो, आप अग्निदेव के चरमरूप (ऊर्ध्व चरम) हैं, अतः अग्निदेव के ही स्वरूप हैं आप पृथ्वी पर फैलने से सभी जगह संव्यक्त हैं, अतः इस माहंगन्त अग्नि के स्थान को ग्रहण करें ॥४६॥

५६०. अयं ऽऽ सो अग्निर्यस्मिन्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वाक्शानः । सहस्त्रियं वाजमत्यं न सप्ति ऽऽ ससवान्सन्स्तूपसे जातवेदः ॥४७॥

इच्छेयुक्त इन्द्रदेव ने सहस्रों के उपयोग में अपने योग्य अमृतदायक और तृप्तिप्रद सोमरस को जिस माध्यम से उदर में धारण किया, वह माध्यम, ये अग्निदेव ही हैं । हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! इस प्रकार सोमयुक्त आहुतियाँ ग्रहण करते हुए आप प्रतियोगी की स्तुतियाँ प्राप्त करते हैं ॥४७॥

[ अग्नि के माध्यम से ही देव अग्निको वह आहुतियों पहुँचती हैं । केवल अपने बने चीहक पदों को उदरान्ति ही शरीरिक ऊर्जा के रूप में स्वीकृत करती है । ]

५६१. अग्ने यत्ते दिवि वर्धः पृथिव्यां यदोवधीष्यस्वा यजत्र । येनान्तरिक्षमुर्धतितन्व त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥४८॥

हे यज्ञाग्नि ! आपको जिस ज्योति ने स्वर्गलोक को, पृथ्वी पर त्वंरूप से ओषधियों को और जल में विद्युत् रूप से अतिव्यापक अन्तरिक्ष लोक को संव्यक्त किया है, सर्वत्र गतिमान्, जगत् प्रकाशक आपका वह दिव्यतन्त्र मनुष्यों के सभी अच्छे-बुरे कर्मों को देखने वाला है ॥४८॥

५६२. अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगमस्यच्छा देवाँः ऊचिवे विष्ण्या ये । या रोचने परस्तात् सूर्यस्य याच्छावस्तादुपतिष्ठन्तः ॥५९॥

हे अग्निदेव । आप दिव्यलोक के अपृतस्फुषी जल को उत्तमरीति से छारण करते हैं । बुद्धि के प्रेरक जो ज्ञानस्वरूप देव हैं, उनके समक्ष भी आप नतिर्गमित होते हैं । प्रकाशकान् सूर्यमण्डल में स्थित, सूर्य से आगे (परे) जो जल है तथा जो जल इसके नीचे है, उस समस्त जल में आप विराजमान हैं ॥५९॥

५६३. पुरीष्वासो अग्नयः प्रावणोभिः सजोषसः । जुषन्तां यज्ञमद्भुतो नभीयाऽ इषो महीः ॥

प्रजापालक, समान विचारशीलों में प्रीतिवृत्त, द्रोह भावना से रहित, ये अग्नियों इस यज्ञ में आरोग्यप्रद वनौषधियों से युक्त हविष्यान्न को पर्याप्त मात्रा में ग्रहण करें ॥५०॥

५६४. इडामग्ने पुरुदंष्टं स दंष्टं सनिं गोः शशतय दंष्टं हवमानाय साधः । स्यान्नः सुनुस्तनयो विजावाम्ने सा ते सुमतिर्भुत्वस्ये ॥५१॥

हे अग्निदेव । विषिष्ट वज्रीय काष्ठों को सिद्ध करने वाले अन्न एवं गौओं (उनमें प्राप्त दूध, दधि, घृतदि) को दान रूप में स्वीकार करें । हे अग्निदेव ! वाजक्यों को सुन्दर सन्तति, धन-धान्य प्रदान करने वाली आपकी श्रेष्ठ बुद्धि हमारे लिए कल्याणकारी हो ॥५१॥

५६५. अयं ते योनिर्भुत्वियो यतो जातो अरोचयः । तं जानन्नग्नऽ आ रोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥५२॥

हे अग्निदेव । ऋतु विशेष में सिद्ध हुए सार्धकन्ध अग्नि आपके उत्कर्षित स्थान हैं आप जिस गार्हपत्य से उत्पन्न होकर प्रकाशित होते हैं, उसे जानकर अपने स्थान पर अरोहण करें, तत्पश्चात् हमारे वैभवं बढ़ा दें ॥

५६६. चिदसि तथा देवतयाङ्गिरस्वद् भुवा सीद । परिचिदसि तथा देवतयाङ्गिरस्वद् भुवा सीद ॥५३॥

हे इष्टके ! आप सुखसाधनों को संमृहीत करने वाली हैं । वाक्देवता द्वारा प्राणों के संचार के समान ही आप निर्धारित स्थान पर विराजित हो । हे इष्टके ! आप सभी ओर से अपने स्थान पर विराजित हैं । हे इष्टके ! आप सभी ओर से साधनों को एकत्र करने वाली होकर वाणी के देवता द्वारा अंगों में संचरित प्राण के समान ही उपयुक्त स्थान पर विराजमान हो ॥५३॥

५६७. लोकं पुण छिद्रं पुणायो सीद ध्रुवा त्वम् । इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् धोनावसीषदन् ॥५४॥

हे इष्टके ! आप गार्हपत्य के चयन स्थल में रिक्त स्थान को पूर्ण कर छिद्र को भर दें तथा वहाँ सुदृढ़तापूर्वक स्थापित हों । इन्द्रदेव, अग्निदेव और बृहस्पतिदेव ने यह स्थान आपके लिए नियुक्त किया है ॥५४॥

[चक्रकुण्ड निर्माण के समय ईंटों को निर्धारित स्थान पर उत्पन्न गीति से रखने का-चित् निर्माण का संकेत है ।]

५६८. ताऽ अस्य सुददोहसः सोम दंष्टं श्रीणन्ति पृथ्वयः । जन्मन्देवानां विशस्विष्या रोचने दिवः ॥५५॥

देवलोक में स्थित विविध (ऋण-पर्जन्य आदि शक्तिस्वरूप) अन्न से युक्त वे प्रख्यात जल प्रवाह देवताओं के उदयकाल (संवत्सर) में स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथ्वी तीनों ताकों में इस यज्ञ से सम्बन्धित सोम को श्रेष्ठ विधि से परिपूर्ण करते हैं ॥५५॥

५६९. इन्द्रं विश्वा ऽ अवीवृधन्तसमुद्रव्यचसं गिरः । रथीतम ऽ रथीनां वाजाना  
 ऽ सत्यतिं पतिम् ॥५६॥

सभी ज्ञान सम्पन्न वाणियों अर्थात् ऋक्, यजु, साम तथा अथर्व ऋषि स्तुतियों, स्वर्ग के समान विस्तृत सभी  
 रथियों की अपेक्षा पहारकी तथा ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव का मुण्डन करते हुए उनकी महिमा को बढ़ाती हैं ॥५६॥

५७०. समितं ऽ सङ्कल्पेष्वा ऽ संप्रियौ रोहिष्णु सुमनस्यमानौ । इषमूर्जमभि संवसानौ । ।

हे अग्ने आप आपसी प्रीति-फलन के प्रेरक स्वर्णिम कान्ति से युक्त तथा पारस्परिक सामूहिक विचारधारा  
 के प्रेरक हों । (अन्नभृतादि) हविष्यन्त्र को स्वीकार करें । हमारे अनुकूल होकर वज्ररूप श्रेष्ठ कार्य को सफल बनाएँ ॥

५७१. सं वां मना ऽ सि सं स्रुत समु चित्तान्याकरम् । अग्ने पुरीष्याधिषा भव त्वं न  
 ऽ इषमूर्जं यजमानाय धेहि ॥५७॥

हे अग्ने ! हम आपके कार्यों, धिक्कारों एवं फलनओं को संयुक्त करते हैं । हे पुरीष्य अग्ने आप हमारे  
 अधीश्वर हैं, अतएव पोषणशक्ति से युक्त अन्न यजमान के कल्याण हेतु प्रदान करें ॥५७॥

५७२. अग्ने त्वं पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिर्माँर असि । शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्व  
 घोनिभिहासदः ॥५८॥

सबका कल्याण करने वाले वैश्वज्ञानी हे अग्निदेव । आप सभी प्राणियों का पोषण करते हैं । हमारे लिए  
 सम्पूर्ण दिशाओं को मंगलकारी बनते हुए वहाँ अपने स्थान में प्रतिष्ठित हों ॥५८॥

५७३. भवतप्रः सधनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञं ऽ हि ऽ सिधुं मा यज्ञपतिं  
 जातवेदसौ शिवा भवतमद्य नः ॥५९॥

हे जातवेदस् अग्निदेव (यज्ञाग्नि और प्रकृतिगत ऊर्जा चक्र में संव्याप्त अग्निदेव) । आप हमारे अभीष्ट  
 सिद्धि के लिए समान विचारों वाले, सम्पन्न आस्थाओं वाले तथा प्रज्वादि दोषों से रहित हों । हमारे यज्ञ को नष्ट  
 न होने दें । वज्र सम्पादन करने वाले यजमान का अविष्ट न होने दें । आप हमारे लिए ऐसे समय में हर प्रकार से  
 मंगलकारी हों ॥५९॥

५७४. मातेव पुत्रं पुष्टिवी पुरीष्यमग्निं ऽ स्वे योनावघारुजा । तां विश्वेदेवैर्जस्तुभिः  
 संविदानः प्रजापतिर्विश्वकर्मा वि मुञ्चतु ॥६०॥

पृथ्वी (मृत्तिका) द्वारा विनिर्मित उल्ला प्राणियों का कल्याण करने वाली अग्नि को अपने बीच उसी  
 प्रकार धारण करती है, जिस प्रकार माता द्वारा गर्भस्थ शिशु को धारण किया जाता है । समस्त देवताओं  
 और ऋतुओं द्वारा (इस महान् कार्य के लिए) ऐक्य भाव से प्रेरित उल्ला को सृष्टि-सृजेता प्रजापति (विश्वकर्मा)  
 पाश से विमुक्त करें ॥६०॥

५७५. असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य । अन्यमस्मदिच्छ सा तऽ  
 इत्या नमो देवि निर्रुते तुभ्यमस्तु ॥६१॥

हे दुष्ट-दलन में समर्थ शक्ति (निर्रुते) । आप यज्ञों से रहित और दानादि धर्मकृत्यों से रहित पुरुषों के पास  
 जाएँ (उन्हें अपने निबन्धन में लें) । आपकी ऐसी ही कामना हो । हे देवि ! आपके लिए हमारा नम्र है ॥६१॥

५७६. नमः सु ते निर्रुते लिग्भतेजोऽयस्मभं विचृता बन्धमेतम् । यमेन त्वं यम्या  
 संविदानोत्तमे नाके अचि रोहयैनम् ॥६२॥

हे निर्रति ! तौक्ष्ण तेवस्वितावुक्त आपकी शक्ति को नमस्कार है । आप लोहे के समान सुदृढ़ जन्म-मरण रूप पाश से हमें मुक्त करें और अग्नि तथा भूमि के साथ पतैव्य को ज्ञात करने वाले इस यजमान को श्रेष्ठ स्वर्गलोक में विराजित करें ॥६३॥

५७७. वस्यासौ घोरऽ आसञ्जुहोम्येषां बन्धानामवसर्जनाय । यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्रतिं त्वाहं परिवेद विव्रतः ॥६४॥

हे क्रूररुपा निर्रति ! इन यजमानों के बन्धनरूपी पाप कृत्यों के नाश हेतु आपके मुख में आहुति समर्पित करते हैं । सामान्य ज्ञान से मुक्त बनूँ यह आपकी "हे भूमि" ऐसा संबंधन करते हैं, परन्तु हम आपको सब प्रकार से पापमुक्त करने वाली ही मानते हैं ॥६४॥

५७८. यं ते देवी निर्रतिरावबन्ध पाशं प्रीक्षास्वदिवृत्यम् । तं ते विष्णाम्यायुषो न मध्यादद्यैतं पितुमद्भिः प्रसूतः । नमो भूत्यै येदं चकार ॥६५॥

(हे यजमान ! ) आप देवी ने आपको बर्धन में जिस सुदृढ़ पाश को बाँधा था, उसे अग्नि के बीच निर्रति की प्रसन्नता से अभी हटाते हैं । पाश-विच्छेदन के बाद इस चोपक अन्न को ग्रहण करें । जिसकी कृपा से यह कृत्य सम्पन्न हुआ, उस ऐश्वर्यमयीदेवी को हमारा नमन है ॥६५॥

५७९. निवेशनः सङ्गमनो वसूनां विश्वा रूपाधिवष्टे शचीभिः । देवऽ इव सविता सत्यधर्मैर्न्द्रो न तस्यौ समरे पथीनाम् ॥६६॥

यजमान को उसके आवास पर स्थिर करने वाले धर्मियों के प्रदाता, सत्यधर्म के पालनकर्ता यह अग्निदेव अपने कर्मों से अपने सभी रूपों को प्रकट करते हैं । सवितादेव के सदृश प्रकाशित होकर इन्द्रदेव की तरह ही वे संग्राम में स्थिर रहते हैं ॥६६॥

५८०. सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् । धीरा देवेषु सुमनसा ॥६७॥

मेधावान्, सूक्ष्मदर्शी, अग्नि-विद्या के ज्ञानकार, हस्ते को वृषभों के साथ देवों की प्रसन्नता के लिए नियोजित करते हैं । सबके कल्याण हेतु इस एक बैलों की जोड़ियों (कवयों) का विस्तार करते हैं ॥६७॥

५८१. युनक्त सीरा वि युगा तनुष्व कृते योनौ वपतेह बीजम् । गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीयऽ इत्सुष्यः पक्वमेयात् ॥६८॥

हे कृषक जनो ! हलादि की व्यवस्थित करके बैलों के कंधे पर जुए को रखो तथा खेत की जुताई करो तैयार किये गये खेत में बीजों का वपन करो और कृषि विज्ञान के अन्तर्गत फसलों की अनेक प्रजातियाँ श्रेष्ठ विधि से तैयार करो । ऐसे जोत ही करने-योग्य पके हुए अन्न हमारे लिए उपलब्ध हो ॥६८॥

५८२. शुनं शं सु फाला वि कृबन्तु भूमिंशं शुनं कीनाशाऽ अधि यन्तु वाहैः । शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिष्यताऽ ओषधीः कर्तनास्मे ॥६९॥

हल के नीचे लम्बी हुई लोहे से विनिर्मित श्रेष्ठ धातु खेत को बलीप्रच्छार से जोते और किसान लोग बैलों के पीछे-पीछे अन्न के साथ जाएँ । हे वसुदेव और सुर्वदेव ! आप दोनों हविष्य से प्रसन्न होकर पृथ्वी को जल से सींचकर इन ओषधियों को श्रेष्ठ फलों से युक्त करें ॥६९॥

५८३. घृतेन सीता मधुना समंज्यतां विश्वेदेवैरनुमता मरुद्भिः । ऊर्जस्वती पयसा पिब्यमानास्मान्सीते पयसाभ्याववृत्त्व ॥७०॥

समस्त देवताओं और मरुद्गणों द्वारा स्वीकृत इत की फल मयूर घृतादि रसों से अभिषिक्त हो । हे हल की फल ! आप अन्नवती होकर दुग्ध-घी से दिग्गजों को परिपूर्ण करती हुई, दुग्धादि पौष्टिक पदार्थ हमारे लिए प्रदान करें ॥७०॥

**५८४. लाङ्गलं पवीरवत्सुजेव च सोमपित्सरुः । तदुद्वपति नामधिं प्रफर्ष्य च पीवरीं प्रस्थावद्वधवाहणम् ॥७१॥**

पृथ्वी को खोदने वाले सोमरक्षक, ये फलभुक्त हल श्रेष्ठ कल्पात्मकरी है । (कृषि उत्पादन से) भेड़, भकरी, पुष्ट शरीर की गायें और रघवाहक वेगवान् उत्तम घोड़े आदि प्रदान करते हैं ॥७१॥

**५८५. कामं कामदुषे बुक्ष्य मित्राय वरुणाय च । इन्द्रायान्ध्रियां पूषो प्रजाप्यऽ ओषधीभ्यः ॥७२॥**

समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले हे हल ! आप मित्र, वरुण, इन्द्र, अश्विनीकुमारों एवं पूषा आदि देवताओं तथा समस्त प्रजाओं के लिए उपयोगी-श्रेष्ठ ओषधीयाँ और अथोष्ट भांगक-रक्षायी उपसम्पन्न कराएँ ॥७२॥

**५८६. विमुच्यध्वमध्या देवयानाऽ अग्न्य तवसस्यारमस्य । ज्योतिरापाम ॥७३॥**

कृषि उत्तम द्वारा देवत्व धर्म पर ले जाने वाले हे धनुष्य ! वध न किये जाने वाले वृषभ आदि से संसार की सूत्रध्वस्या के निमित्त आप कृषि-कार्य का सम्पन्न करने । आपको कृपा से हय शुभा-पिपास स्वरूप दुग्धों से विमुक्त हों और ज्योतिरूप यज्ञकर्मों को प्राप्त करें ॥७३॥

**५८७. सजूरधो अयसोभिः सजूरुषाऽ अरुणीभिः । सजोषसावक्षिना दधं सोभिः सजूरुः सूरऽ एतशेन सजूर्वेक्षानरऽ इक्ष्या धृतेन स्वाहा ॥७४॥**

मास-दियस आदि अयसों से प्रीति करने वाले वज्र प्रदाता संवत्सर के लिए, अरुण रश्मियों से प्रीति करने वाली उषा के लिए, चिकित्सकीय कर्मों से प्रीति करने वाले अश्विनीकुमारों के लिए, अन्न से प्रीति करने वाले सूर्यदेव तथा घृतादि हविष्य से प्रीति करने वाले अग्निदेव के निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥७४॥

**५८८. याऽ ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा । मनी नु बभूणामहयं ततं वामाभि सप्त च ॥७५॥**

सृष्टि के प्रारम्भ में जो ओषधियाँ देवताओं द्वारा वसन्त, वर्षा, शरत् इन तीन ऋतुओं में उत्पन्न हुई हैं, पककर पीत वर्ण से युक्त उन सैकड़ों ओषधियों और जीति-व्यादि सप्त धान्यों की सामर्थ्य का ज्ञान हमें है ॥७५॥

**५८९. शतं वो अम्ब वामानि सहस्रमुत वो रुहः । अथा शतक्रत्वो यूयमिमे मे अगदं कृत ॥७६॥**

हे मातृवत् पोषण-गुण-सम्पन्न ओषधियों ! आप सभी के सैकड़ों नाम हैं और सहस्रों अङ्कुर हैं । सैकड़ों कर्मों को सिद्ध करने वाली हे ओषधियों ! आप सभी हमारे इस वज्रमय को आरोग्य प्रदान करें ॥

**५९०. ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः । अस्त्राऽ इव सजित्वरीर्वीरुहः पारधिष्यः ॥७७॥**

हे ओषधियों ! आप वेगवान् घोड़े के समान हों अनेक प्रकार की सजुक्त् व्याधियों को तेजी से नष्ट करने वाली हों । पुष्पों से युक्त तथा फलोत्पादित गुणों से सम्पन्न हमारे लिए अन्नन्दप्रद हों ॥७७॥

**५९१. ओषधीरिति मातरस्तत्रो देवीरुपं भुवे । सनेयमधं गां वासऽ आत्मानं तव पूरुष ॥**



हे ओषधियो ! आप माता के समान फलन-शक्ति से युक्त, दिव्यगुणों से सम्पन्न हैं, ऐसे गुणों की हम प्रशंसा करते हैं । इसे आप स्वीकार करें । हे वज्रपुङ्गव ! आप से प्राप्त मान्, छोड़े, वस्त्र और रोम रहित देह के सुखों का हम उपयोग करें ॥७८॥

**५९२. अश्रुत्वे वो निषदनं वर्णो वो वसतिष्कृता । गोपात्रऽ इत्किंलासन्न यत्सनवधं पूरुषम् ॥७९॥**

हे ओषधियो ! आपका स्नान पीपल काष्ठ द्वारा विनिर्मित उपपूत और मुच पत्र में है । पल्लशपत्र से विनिर्मित जूहू में आपने स्नान बनाया है । हे अश्रुति में प्रयुक्त ओषधियो ! आप वायुभूत होकर आकाश का सेवन करें, तत्पश्चात् प्राण-पर्जन्य वर्षा के द्वारा वज्रध्वज को अन्नदि से सम्पन्न करें ॥७९॥

**५९३. यज्ञौषधीः समग्मत राजानः समिताविध । विश्वः स ऽ उच्यते धिवग्रक्षोहामीवचातनः ॥**

हे ओषधियो ! अपने ऋषिरूपी रोग का विजय पाने हेतु आप उसी प्रकार रोगी के समीप जाती हैं, जिस प्रकार राजा असुरों पर विजय पाने के लिए समर भूमि में प्रस्थान करते हैं । वहाँ आपके द्वारा विजितरोग रूपी असुरों को परास्त करते हैं । ओषधि द्वारा रोगनश्वर होने से ही उन्हें कैद कड़ा जाता है ॥८०॥

**५९४. अश्रावती ऽ सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् । आवित्सि सर्वा ऽ ओषधीरस्मा ऽ अरिष्टतातये ॥८१॥**

इस यजमान के कष्टग्रस्त रोगों को दूर करने के लिए, छोड़े की तरह शक्तिशाली, सोमवज्र के लिए उपयुक्त शक्ति-सामर्थ्य युक्त पराक्रम की संवर्द्धक तथा ओजश्विद्ध की केन्द्र, ऐसी समस्त ओषधियों के दिव्य गुणों से हम धली प्रकार परिचित हैं ॥८१॥

**५९५. उच्छृङ्खा ऽ ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते । वनं ऽ सनिष्यन्तीनाभात्मानं तव पूरुष ॥८२॥**

हे यज्ञपुरुष ! आपके अग्नि रूपी शरीर के लिए इतिष के रूप में प्रयुक्त होने वाली ओषधियों से सामर्थ्य-शक्ति प्रकट होती है । जैसे गोशाला से गौएँ अरण्य की ओर जाती हैं, वैसे ही यज्ञ-पूष से ओषधियों की सामर्थ्य विस्तृत वायुमण्डल में फैल जाती है ॥८२॥

**५९६. इष्कृतिर्नाप वो मातावो यूयं ऽ स्म निष्कृतीः । सीरः पतत्रिणी स्थन यदामयति निष्कृथ ॥८३॥**

हे ओषधियो ! आप विकारों को दूर करने वाली माता की रीति 'निष्कृति' अर्थात् रोगों का निवारण करने वाली हैं । बुधाहरण करने वाले अन्न के सम्पन्न ही आप मनुष्यों में स्थित रोगों को दूर करें ॥८३॥

**५९७. अति विश्वाः परिष्ठा स्तेनऽ इव वज्रभक्तम् । ओषधीः प्राचुच्यवुर्यतिकं च तन्वो रपः ॥**

जोर द्वारा नौओं के बाड़े पर आक्रमण करने के सम्पन्न ही, अपने मुणों से सर्वत्र व्याप्त ओषधियों की रोग समूह पर आक्रमण करते हैं । शरीर के सम्पन्न विकारों को अपनी आरोग्यवर्द्धक सामर्थ्य से दूर करती हैं ॥८४॥

**५९८. वदिमा वाज्यमग्नहमोषधीर्हस्तऽ आदधे । आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥**

विशेष शक्तिपुत्र सम्पन्न इन ओषधियों को सेवन करने के लिए जब हम स्वयं में घारण करते हैं, तब राजयस्मा (टी.वी.) जैसे नश्वररोग का स्वरूप उसी प्रकार (सेवन करने से चले ही) अपने को नष्ट मानता है, जैसे वध गृह में पहुँचने से पूर्व ही वध हेतु से जाना का राह जन्मो अपने को मरा हुआ मानता है ॥८५॥

५९९. यस्यौषधीः प्रसर्पथाक्ष्मङ्गं धरुष्यन्ति । ततो यक्ष्मं वि बाधय्य ऽऽग्रो  
मध्यमशीरिव ॥८६॥

हे ओषधियो ! आप रोगी मनुष्य के अंग-अङ्ग में जब पूर्ण रूप से समाहित होती हैं, तब वीर पुरुष द्वारा शत्रु के मर्मस्थल को पीड़ित करने की तरह ही यक्ष्मदि शरीरिक रोगों को भ्रष्ट विनष्ट कर देती हैं ॥८६॥

६००. साकं यक्ष्मं प्र पत चावेण किकिदीयिना । साकं वातस्य ह्यज्या साकं नश्य  
निहाकया ॥८७॥

हे (यक्ष्म) व्याधि ! रोग नाश के लिए बिन्ने बने विवेक-सम्पन्न प्रयोग से तुम दूर हो जाओ ! पाण-वामु की प्रबल गति के साथ अवशिष्ट रोग को दूर करने की विधि द्वारा नष्ट हो जाओ ॥८७॥

६०१. अन्या वो अन्यामवत्सन्न्यान्यस्या ऽ व्यावत । ताः सर्वाः संविदाना ऽ इदं मे प्राथता  
वचः ॥८८॥

हे ओषधियो ! आप परस्पर एक दूसरे के प्रभाव में वृद्धि करें ! प्रयोग की गई एक ओषधि दूसरी के संरक्षणार्थ निकट आए ! अर्थात् पहली ओषधि के स्वरूप से अधिक लाभ रोगी को प्रदान करे ! सभी ओषधियों परस्परिक सहकार पावना का परिचय देती हुई हमारे निवेदन को स्वीकार करें ॥८८॥

६०२. याः फलिनीर्या ऽ अफला ऽ अपुष्या षष्ठ पुष्पिणीः । बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो  
मुञ्चन्वथ हस्तः ॥८९॥

फलों से युक्त, फलों से रहित, पुष्पयुक्त तथा पुष्परहित ऐसी ये सभी ओषधियाँ विशेषज्ञ, वैद्य द्वारा प्रयुक्त होती हुई हमें रोगों से मुक्ति दिलाएँ ॥८९॥

६०३. मुञ्चन्तु मा शपथ्यादधो धरुष्यादुत । अजो यमस्य  
पद्वीशात्सर्वस्माद्देवकिंस्त्रिधात् ॥९०॥

हे ओषधियो ! आप कुपथ्यजनित रोगों अथवा निन्दित कुकृत्यों से उत्पन्न जल (शरीर के विकृत-रसों) जनित रोगों, यम के नियमानुशासन के त्यागने से हुए अपकृत्यों तथा दैवी अनुशासन के न पालने से हुए अपराध जनित दुष्कर्म-जैसे सभी विकारों से हमें विमुक्त करें ॥९०॥

[समस्त विभिन्न में दैहिक रोगों के साथ-साथ आध्यात्मिक तथा आध्यात्मिक रोगों के उपशान्ति की आवश्यकता की ओर भी ध्यान आकृष्ट है ॥]

६०४. अवपतन्तीरवदन्दिष्यऽओषधयस्परि । यं जीवमभ्यवापहै न स रिष्याति पुरुषः ॥९१॥

दिव्यलोक से प्राणरूप में धरती पर आने वाली ओषधियाँ आज्ञासन देती हैं कि जिस प्राणी ने हमारा सेवन किया ( उचित ढंग से उपयोग किया), वह आरोग्य-स्थाप से कृतार्थ हुआ, वह समय से पूर्व मृत्यु को प्राप्त नहीं होता ॥९१॥

६०५. या ऽ ओषधीः सोमराज्ञीर्विद्धीः शतविचक्षणाः । तासांयसि त्वमुत्तमार्गं कामाय  
श ऽथ ब्रूदे ॥९२॥

ऐसी ओषधियाँ, जो असंख्य रोगों को विभिन्न प्रकार से निरुद्ध करने में सक्षम हैं, जिनमें सोमवल्ली विशेष गुणों से युक्त है, उन सबके बीच रहने वाली है ओषधि ! आप सर्वश्रेष्ठ गुणों से युक्त हैं । आप अशोष्ठ सुख-प्राप्ति एवं हृदय की शक्ति देने में पूर्ण सक्षम हैं ॥९२॥

६०६. याऽओषधीः सोमराज्ञीर्विद्धिताः पृथिवीमनु । बृहस्पतिप्रसूताऽअस्यै संदत्त वीर्यम् ।

विभिन्नरूपों में भरती पर विद्यमान सौम्यवर्त्ती सदृश विविध गुण-सम्पन्न विभिन्न ओषधियाँ — विशेषतः वैद्य द्वारा तैयार करके सेवनार्थ दिये जाने पर इस पुरुष को ओषधस्वी-वीर्यवान् बनाएँ ॥९३॥

**६०७. यश्चेदमुपशृण्वन्ति याज्ञ दूरं परागताः । सर्वैः संगृह्य वीर्यस्यै संदत्त वीर्यम् । ॥९४॥**

जो ओषधियाँ सम्पर्क क्षेत्र में हैं या जो इन्हारे सम्पर्क क्षेत्र से दूरस्थ (दुर्गम हिण्मल्य में) हैं ऐसी वृक्ष-तलादि विभिन्नरूपों में उगी हुई सभी ओषधियाँ, जो हमारे श्रवण सुनती हैं, कार्मिक सहयोग से इस मनुष्य को शक्ति-ओष से परिपूर्ण करें ॥९४॥

**६०८. मा वो रिक्त् खनिता यस्मै बाह्वे खनामि कः । द्विपाण्यतुष्यादस्माकं ॥  
सर्वमस्तवनामुरम् ॥९५॥**

हे ओषधियाँ ! रोमोपचार के लिए आपके मूलभाग को ग्रहण करने की आवश्यकता है, अतएव खुदाई करने वाले पुरुष खनन-दोष से सर्वथा मुक्त रहे एवं जिस रोमी के उपचार हेतु आपका खनन किया जाता है, वे भी दोग-मुक्त हों । हमारे स्त्री-पुत्रादि परिजन तथा यवादि पशु सभी आरोग्य-साध प्राप्त करें ॥९५॥

**६०९. ओषधस्तु समवदन्त सोमेन सह राजा । यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्त ॥  
पारयामसि ॥९६॥**

हे राजन् सोम ! चिकित्सा विशेषज्ञ किस रोगी के रोग को दूर करने के लिए हमारे मूल, फल, पत्रादि को ग्रहण करते हैं, उसको हम आरोग्य प्रदान करती हैं—ऐसा अपने स्वाधे सोम से ओषधियाँ कहती हैं ॥९६॥

**६१०. नाशपित्री बलासस्यार्जसऽ अर्चितामसि । अथो रक्तस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि  
नाशनी ॥९७॥**

हे ओषधे ! आप शक्ति का हास करने वाले कफरोग, यक्ष्मा और यक्ष्माला आदि रोगों के निवारण में सक्षम हैं । इस प्रकार आप असंख्य रोगों और रक्तविकार से उत्पन्न पके हुए फोड़े को दूर करने वाली हैं ॥९७॥

**६११. त्वां गन्धर्वाऽ अस्त्रुर्नैस्त्वामिन्द्रस्त्वा बृहस्पतिः । त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान्  
यक्ष्मादमुष्यत ॥९८॥**

हे ओषधे ! गन्धर्वों (ओषधि गुणों को पहचानने वाले) ने आपका खनन किया, इन्द्रदेव और बृहस्पतिदेव (परा वैभव सम्पन्न और वेदवेत्ता विद्वान्) ने आपका खनन किया, तब ओषधिपति सोम ने आपकी उपयोगिता को जानकर क्षय रोग को दूर किया ॥९८॥

**६१२. सहस्र मे अरातीः सहस्र पृतनायतः । सहस्र सर्वं पाप्मानं ॥  
सहमानास्योषधे ॥९९॥**

हे ओषधे ! आप शरीरस्थ विषाक्त तत्त्वों (रोगों) के निवारण में सक्षम हैं, अतएव सभी विकारों का समन कर । हम प्रायः रिक एक मानसिक कष्टों से मुक्ति दिलवाएँ ॥९९॥

**६१३. दीर्घायुस्तऽ ओषधे खनिता यस्मै च त्वं खनाम्यहम् । अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा  
शतवल्शा विरोहतात् ॥१००॥**

हे ओषधे ! आपके खननकर्ता त्रिरंजीवी हों, जिस रोमी के रोमोपचार हेतु आपका खनन करें, वह भी दीर्घजीवा हो तथा आप भी दीर्घायु को प्राप्त करें - असंख्य अंकुरों से युक्त हों ॥१००॥

[ यहाँ अनेक यक्ष्मक क्षम्यरोगों के उपचार के लक्षण-सूचक उनके चिकित्सा के लिए भी प्रेरित किया गया है । ]

६१४. त्वमुतमास्योषधे तव वृक्षाऽऽ उपस्तयः । उपस्तिरस्तु सोस्माकं यो अस्मार्ः  
अभिदासति ॥१०१॥

हे ओषधे ! आप श्रेष्ठ मुर्खों से युक्त हैं । समीपस्थ वृक्ष हर प्रकार से आपके लिए कल्याणकारी (उपयोगी) हैं । जो हम से ईर्ष्या-द्वेष करने वाले दुर्भाववालों से अस्ति हैं वे भी आपके प्रभाव से हमारे अनुगामी हों (हमारे श्रेष्ठ कार्य में सहयोग करें) ॥१०१॥

६१५. मा मा हि धं सीञ्जनिता ऋ पृथिव्या चो वा दिव धं सत्यधर्मा व्यानद् ।  
यज्ञाष्टन्द्रः प्रथमो जजान कस्मै देवाय इविषा विधेय ॥१०२॥

जो जमदीश्वर पृथिवी के सृजेता सत्य धर्म के फलस्वरूप दिव्यलोक के रक्षक, आदिपुरुष संसार के आह्लादक एवं जल उत्पादक हैं, उनके अनुशासन के अतिमूल्य होकर हम दुःखी न हों । हम उनके अनुशासन में रहकर उस परमेश्वर के प्रति आहुति समर्पित करते हैं ॥१०२॥

६१६. अभ्यावर्तस्व पृथिवि यजेन पयसः सह । क्वां ते अग्निरपितो अरोहत् ॥१०३॥

हे धूम्रे यज्ञानुष्ठानों के परिणामस्वरूप होने वाली ब्रह्म-वर्जित्य-वर्ण के साथ आप हमारे लिए अनुकूल बनें । ब्रह्मापत्ति की प्रेरणा से अग्निदेव आपके वृष्टकर्म पर प्रतिष्ठित हों ॥१०३॥

६१७. अग्ने यत्ते शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पुतं यच्च यज्ञियम् । तदेवेभ्यो भरायसि ॥१०४॥

हे अग्निदेव ! आपकी ज्वालास्वरूपी देह शुक्ल वर्ण के समान कर्जन्तमान् बन्द्या की किरणों के समान आह्लादक, ज्योतिस्वरूप पावन और वज्रवर्ण कर्मों के उपयुक्त है । उस ज्योतिस्वरूप प्रशंसनीय देह को हम दोनों के निमित्त हव्य समर्पित करने के लिए प्रदीप्त करते हैं ॥१०४॥

६१८. इषमूर्जमहमित आदमुतस्य योनिं महिषस्य धाराम् । आ मा गोषु विशत्वा तनूषु  
जहाभि सेदिमनिरामधीनाम् ॥१०५॥

यज्ञ की उत्पत्ति के मूल अन्न-प्राति इविष्य को महत् कर्मयामुक्त अग्निदेव के लिए उड़ीचो (उत्तर) दिशा से हम प्रार्थन करते हैं । ये सब हमारे समीप आईं और इन्हें पुष्टि एवं वधु आदि पशुओं में प्रविष्ट हों । अन्न के अभाव से उत्पन्न हुई प्राणवायु विपत्तिके का हम त्याग करते हैं ॥१०५॥

६१९. अग्ने तव ब्रवो वयो महि धाजन्ते अर्चयो विधावसो । बृहद्भानो शवसा  
वाजयुक्कथं दधसि दाशुषे कवे ॥१०६॥

देदीप्यमान, ऐश्वर्यशाली, त्रिभुक्तत्सी हे अग्निदेव ! यज्ञ की सूचना देने कला आपका धूप विस्तृत प्रकाशमान होते हुए दिव्यलोक को प्राप्त होता है । ज्ञान इविष्यका वज्रध्वन के लिए शक्ति के साथ यज्ञ के लिए उपयुक्त अन्न आदि प्रदान करते हैं ॥१०६॥

६२०. पावकवर्चाः शुक्रवर्चाऽऽ अनुस्वर्चाऽऽ उदिषार्षि भानुना । पुत्रो मातरा  
विचरन्नुपावसि पूणाक्षि रोदसी उभे ॥१०७॥

हे अग्निदेव ! आप पवित्रता प्रदान करने वाली, तन्मय, सशक्त तेजस्विता से श्रेष्ठ स्थिति को प्राप्त करते हैं । सभी ओर विचरनशील होकर संसार का संरक्षण करते हैं । जल-पिता की रक्षा करने वाले सुपुत्र की भाँति आप पृथ्वी और ध्रुलोक का पालन करते हैं ॥१०७॥

६२१. ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः । त्वे इषः  
सन्दधुर्भूरिवर्षसश्चित्रोतयो वामजातः ॥१०८॥

अन्न की रक्षा करने वाले हे अग्निदेव । यज्ञीय कर्मों द्वारा सबका कल्याण करते हुए आप उत्तम स्तोत्रों से प्रसन्नता को प्राप्त करें । अनेकानेक सुरक्षा स्त्राघनों से सुरक्षित और उत्तम कुल में जन्म लेने वाले याज्ञक्यों ने अपने हविष्यरूपी अन्न को आहुति रूप में समर्पित किया ॥१०८॥

६२२. इरज्यभ्रग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे राखो अमर्त्य । स दर्शतस्व वपुवो वि राजसि  
पुणक्षि सानसिं क्रतुम् ॥१०९॥

हे अविनाशी अग्निदेव । हविदाता यजमानों द्वारा प्रज्वलित होकर हमें प्रचुर वैभवं-सम्पदा प्रदान करें आप देखने में सुन्दर ज्वालारूपी ज्ञात्री से विशिष्ट तरह से प्रदीप्त होते हैं और हमारे शुभ-संकल्पों को परिपूर्ण करते हैं ॥१०९॥

६२३. इष्कर्तारमध्यरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राखसो महः । रातिं वामस्य सुभगा  
महीमिषं दद्यासि सानसिं रायिम् ॥११०॥

यज्ञ सृजेता, प्रेक्ष चिन्तनयुक्त हे अग्निदेव । आप यज्ञमन्त्र से हविदाता यजमान को प्रचुर धन-वैभवं, उत्तम ऐश्वर्य, अन्न तथा शश्वत आध्यात्मिक सम्पदाएं प्रदान करते हैं ॥११०॥

६२४. ज्ञप्तावानं महिषं विश्वदर्शतमस्मिं रां सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः । भुक्कर्णं रां  
सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥१११॥

हे अग्ने सत्यस्वरूप, महिषाश्व, भूस्त्रोक के लिए दर्शनीय प्रार्थना सुनकर उसको पूर्ण करने वाले, यशस्वी, दिव्यगुणों से सुसम्पन्न आपको यज्ञ कर्म के सम्पादनार्थ करते स्वागित करते हैं, तत्पश्चात् यजमान नर-नारियों स्तुति गान करते हैं ॥१११॥

६२५. आ प्यायस्व सवेतु ते विश्वतः सोम वृष्ययम् । भवा वाजस्य सङ्गधे ॥११२॥

हे सोम । चारों ओर की विस्तृत तेजस्विता आपमें प्रवेश करे । आप अपने शक्ति-शौर्य से सभी प्रकार से वृद्धि को प्राप्त करें और यज्ञादि सत्कर्मों के लिए आवश्यक अन्न प्राप्ति के साधनरूप आप हमारे पास आएँ (हमें उपलब्ध हों) ॥११२॥

६२६. सन्ते पया रां सि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ययान्यधिमातिषाहः । आप्यायमानो  
अमृताय सोम दिवि अवा रां स्युतमानि विष्व ॥११३॥

हे सोम विविध प्रकार के पोषक एवं चिकित्सक रसों से युक्त आप शक्तिवर्द्धक विविध अन्नों को प्राप्त करें दिव्य पोषक-तत्वों को क्षरण करते हुए विरकत तत्त्व वृद्धि करते हुए स्थिर रहें ॥११३॥

६२७. आप्यायस्व मदिनम सोम विश्वेधिर रां शुभिः । भवा नः सप्रथस्तमः सखा  
वधे ॥११४॥

हे अति आह्लादक सोम । अपने दिव्य गुणों को यज्ञ-गाथाओं से कर्तुर्दिक व्यापक विस्तार को प्राप्त करें तथा हमारे विक्रय के निमित्त मित्ररूप में सहयोग करें ॥११४॥

६२८. आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सयस्यात् । अग्ने त्वाङ्गमया गिरा ॥११५॥

हे अग्निदेव ! पुत्रके सट्ण यह कजमान् (सांस्कारिक) कर्मों से ध्वान को इटाकर उत्तम स्तोत्रों से आपकी वन्दना करता है ॥११५॥

६२९. तुभ्यन्ता ऽ अङ्गिरस्ताम विष्वाः सुक्षितः शुभक् । अग्ने कामाय येभिरे ॥११६॥

हे अति तेजस्वितायुक्त अग्निदेव ! मन्त्रेणाङ्गिरा कस जाने के लिए किंविध प्रकार की समस्त प्रार्थनाएँ आपके निमित्त समर्पित की जाती हैं ॥११६॥

६३०. अग्निं प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य चक्ष्यस्य । सप्ताहेको वि राजति ॥११७॥

याज्ञिकों की समस्त वर्तमान एवं भव्य आकाङ्क्षाओं को पूरा करने खासे, भस्ती भीति विराजमान अग्निदेव, अपने प्रिय आवास (यज्ञ वेदों) पर स्वयं ही सुखेभित हो रहे हैं ॥११७॥

### —अग्नि, देवता, छन्द-विवरण—

अग्नि— यत्नाडी १ ६ १० ३३, ४०, ४१ । कुत्ता २ । इन्द्राक्ष ३-५ । भुव ११ । सुनः लेप १२ । अति १३, १५-१७ । कामदेव १४ । कसको भासदन १८-२९ । विष्वाक्ष अङ्गिरस ३० । तपस ३१-३२ । वसिष्ठ ३४, ३५ । विक्रप ३६-३९, ११६, ११७ । दोषक्या ४२ । सोमार्हुत ४३-४६ । विश्वामिष ४७-५१ । ५३, ५४ । देवस्रवा और देववात भारत ५२ । प्रियमेध इन्द्र ५५ । जेता पाञ्चज्यन्तस ५६-५९ । ६१-६५ । गोतम ६० । विश्वावसु देवगन्धर्व ६६ । शुभ सौम्य ६७-६८ । कुमारहारित ६९ । ७४ । आश्विन भिषक् ७५ । ८९ । वन्धु ९०-१०१ । हिरण्यगर्भ १०२-१०५ । चक्षकर्मि १०६ । १११ । गोतम ११२-११४ । अमत्सार ११५ ।

देवता— इक्ष्वा १ । अग्नि २ । ६-११ । २३, १५-३४, ३६ । ४२, ४४ । ४७-५२, ५७-६० । १०३, १०४, १०६-१११ । ११५ । ११७ । स्मृति ३ । गङ्गा ४ । उल्ला अग्नि लिङ्गोक्त ५ । वज्र १२ । सूर्य १४ । आपः (जला) ३५, ५५ । अग्नि विष्वाकर्मा ४३ । लिङ्गोक्त बहुदेवता ४५ । उल्ला लिङ्ग परिश्रित ४६ । इहव्य ५३ । लोकपुणा लिङ्गोक्त ५४ । इन्द्र ५६, ६६ । उल्ला ६१ । निर्वाति ६२-६४ । कजमान् भुवि ६५ । सौर ६७-६८ । सीता ६९-७२ । अनहुत् ७३ । अम् आदि लिङ्गोक्त ७४ । ओषधिवर्ध ७५ । १०१ । क (प्रजापति) १०२ । आशीर्वाद १०५ । सोम ११२-११४ ।

छन्द — भुरिक् पंक्ति १ । २५ । आशीं त्रिष्टुप् २, २३ । विराट् जगती ३ । भुरिक् भुति ४ । भुरिक् उत्कृति ५ । निवृत् आशीं त्रिष्टुप् ६, १८-२२, २४, ३३, ४५, ६२, १०२ । भुरिक् आशीं अनुष्टुप् ७ । आशीं त्रिष्टुप् ८, ३४, ३५, ४७, ६१, ६४, ७० । निवृत् आशीं गायत्री ९, ४०, ११५ । निवृत् गायत्री १० । ३६ । ४१, ११२ । आशीं अनुष्टुप् ११ । विराट् आशीं त्रिष्टुप् १२, २६-२९, ४२, ६६, ६८ । भुरिक् आशीं पंक्ति १३, ४८, ४९, ५१, ६३, १०७, ११३ । भुरिक् जगती १४ । विराट् त्रिष्टुप् १५, १०५ । विराट् अनुष्टुप् १६, १७, ३१, ३२, ५४, ५५, ८२, ८४, ८७-८९, ९४, ९५, ९९ । गायत्री ३०, ६७, ११६, ११७ । भुरिक् आशीं छन्दश्च ३७ । निवृत् आशीं अनुष्टुप् ३८, ५२ । निवृत् अनुष्टुप् ३९, ५६, ७७, ८३, ८६, ९२, ९८ । १०१ । आशीं पंक्ति ४३, ५०, ७२ । स्वराट् आशीं त्रिष्टुप् ४४ । भुरिक् आशीं त्रिष्टुप् ४६ । स्वराट् अनुष्टुप् ५३ । भुरिक् छन्दश्च ५७, ५९ । भुरिक् उपरिहात् बृहती ५८ । आशीं पंक्ति ६०, ११० । आशीं जगती ६५, ७४ । त्रिष्टुप् ६९ । विराट् पंक्ति ७१ । भुरिक् आशीं गायत्री ७३ । अनुष्टुप् ७५, ७६, ७८-८१, ८५, ९१, ९६, ९७ । स्वराट् छन्दश्च ९० । विराट् आशीं अनुष्टुप् ९३ । विराट् बृहती १०० । निवृत् छन्दश्च १०३ । भुरिक् गायत्री १०४ । निवृत् पंक्ति १०६, १०८ । निवृत् आशीं पंक्ति १०९ । स्वराट् आशीं पंक्ति १११ । छन्दश्च ११४ ।

॥ इति द्वादशोऽध्यायः ॥

## ॥ अथ त्रयोदशोऽध्यायः ॥

६३१. मयि गृह्णाम्यग्रे अग्निं रायस्योवाय सुप्रजास्त्वाम सुवीर्याय । माम् देवताः सचन्ताम् ॥१॥

सर्वप्रथम हम अपार वैभव, सुसंरक्षित की प्राप्ति और श्रेष्ठ शक्ति-सम्पन्न के लिए अभिदेव को यज्ञस्थल पर स्थापित करते हैं । इस हेतु देव शक्तियों हमें सहयोग प्रदान करें ॥१॥

६३२. अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिब्यमानम् । वर्धमानो महोऽ आ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिष्णा प्रथस्व ॥२॥

पृष्ठमात्र में जल के रूप में प्रकट होने वाले कल-का जल के पान्य से वर्धमानों को संवर्धित करते हुए शक्ति करते हैं—

आप जल के पृष्ठ (जल पर उत्पन्न अथवा जल को पारण करने वाले) हैं (वनस्पति वनित काष्पदि से अग्नि की उत्पत्ति होने से) अग्नि की उत्पत्ति का कारण हैं । बढ़ने वाले समुद्र के साथ आप विस्तार पाते हैं । अंतरिक्ष की तेजस्विता और पृथ्वी की विशालता से आप विस्तार पाते हैं ॥२॥

६३३. ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्भिः सीयतः सुरुखो वेनऽ आकः । स बुध्याऽ उपमाऽ अस्य विष्ठाः सत्सह योनिमरुतसह पि वः ॥३॥

सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मरूप में परमात्म शक्ति का प्रदुर्भाव हुआ, वही शक्ति स्मरत ब्रह्माण्ड में व्यवस्था रूप में व्याप्त हुई । यही कान्तिमान् ब्रह्म (सूर्यादि) विविध रूपों में स्थित अन्तरिक्षादि विभिन्न लोकों को तथा व्यक्त जगत् एवं अव्यक्त जगत् को प्रकाशित करते हैं ॥३॥

६३४. हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाभार पृथिवीं शामुतेमां कस्मै देवाय इयिषा विधेम ॥४॥

सृष्टि के प्रारम्भ में हिरण्यगर्भ पुरुष (प्रजापति) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के एक मात्र उत्पादक और फलदाता रहे । जो सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति से पहले भी विद्यमान थे, वही स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथ्वी को पारण करने वाले हैं । हम उसी आनन्द स्वरूप प्रजापति की तृप्ति के लिए आहुति समर्पित करते हैं ॥४॥

६३५. द्रप्सस्त्वस्कन्द पृथिवीमनु छाभिमं च योनिमनु वरुच पूर्वः । समानं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥५॥

सृष्टि के प्रारम्भ से ही जो (हिरण्यगर्भ), यज्ञ के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाले, प्राण-पर्जन्य युक्त दिव्य रस 'द्रप्स' को देवताओं की तृप्ति के लिए धुतोक को, वनस्पतियों की वृद्धि के लिए पृथ्वी को तथा शरीरधारियों की प्रगति के लिए अपने मूल स्थान—यज्ञस्थल को अभिषिक्त करते हैं । तीनों लोकों में किचरण करने वाले उस द्रप्सरूप आदित्य के लिए हम सात यज्ञक इति समर्पित करते हैं ॥५॥

६३६. नमोस्तु सर्वेभ्यो ये के च पृथिवीमनु । ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्वेभ्यो नमः ॥६॥

जो भी सर्प (गमनशील स्वरूप वाले नक्षत्र-लोक अथवा जीव) पृथ्वी के प्रभाव क्षेत्र में है, अन्तरिक्ष एवं धुतोक में है, उन सभी सर्पों को हमारा नम्र है ॥६॥

६३७. याऽ इवो चातुधानानां ये वा वनस्पतींश्च रनु । ये वाकटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ।

राक्षसों द्वारा छोड़े गये गतिहीन जन्तुओं के रूप में जो सर्प हैं, जो वनस्पतियों के आश्रित रहने वाले तथा गड़ों आदि नीचे के जगहों में रहने वाले हैं, उन सभी सर्पों के प्रति हम नमन करते हैं ॥७॥

६३८. ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु । ये वामप्लु सद्सकृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ।

जो सर्पादि ज्योतिष्य घुलोक में अथवा सूर्य की किरणों में बस करते हैं, जो जल के अंदर अपना आश्रय बनाते हैं, ऐसे सभी सर्पों (जीवों) को हम नमन करते हैं ॥८॥

६३९. कृणुष्व पाजः प्रसितिं न वृध्वीं चाहि राजेवामवोर इमेन । तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्व रक्षसस्तपिष्ठैः ॥९॥

हे अग्निदेव ! आप शत्रुओं को दूर करने में सक्षम हैं । जिस प्रकार सशक्त राजा हथियों पर सवार होकर रायसी वृत्ति के शत्रुओं पर हमला करते हैं, वैसे ही आप भी हमला करें । पक्षियों को फँकने वाले, विस्तृत आकार वाले, आल के समान ही अपनी सामर्थ्य शक्ति का विस्तार करें तथा सुदृढ़ अस्त्र द्वारा दुष्टों को विविध प्रकार के कष्ट देकर प्रताड़ित करें ॥९॥

६४०. तव प्रमासऽ आशुया पतन्यनुस्पृश पृक्ता शोशुचानः । तपू धं ध्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दितो वि सुज विध्वगुल्फः ॥१०॥

आप के सम्पर्क से क्षयायमान हुतन्त्री लम्पटों से प्रकाशित होने वाले हे अग्निदेव ! आप सन्नाप के योग्य असुरों को सपटों से भस्म करें । आहुति प्रदान करने पर आप बढ़ो हुई ज्वलताओं के द्वारा असुरों का संहार करें ॥

६४१. प्रति स्पशो वि सुज तूर्णितमो भव पायुर्विशो अस्याऽ अदब्धः । यो नो दूरे अग्रशऽ सो यो अन्त्यग्ने वा किष्टे व्यधिरादधर्षीत् ॥११॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे निकटस्थ या दूरस्थ जो भी शत्रु हैं, उन दोनों प्रकार के शत्रुओं को बश में करने के लिए अतिगतिशील सैनिकों को भेजें । हमारी सन्तानों की रक्षा करें । कोई भी हमें पीड़ा न पहुँचा सके ॥११॥

६४२. उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्यमिप्रोर ओषतात्तिमहेते । यो नो अरातिऽ स मिषान धक्ते नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥१२॥

हे अग्निदेव ! आप जीवन्त होकर अपनी ज्वलताओं का विस्तार करें । उन शीघ्र ज्वालाओं के प्रभाव से शत्रुओं को पूर्णतः भस्म कर दें । हे ज्योतिष्य ! आप हमारे जो वैरी दान में नाशक हैं, उन्हें सूखे वृक्ष को भस्म करने के समान ही समूल भस्म करें ॥१२॥

६४३. ऊर्ध्वो भव प्रति विध्व्याध्वस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्त्यग्ने । अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां यामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून् । अग्नेह्वा तेजसा सादयामि ॥१३॥

हे अग्निदेव ! आप ऊर्ध्वगामी ज्वलताओं से युक्त होकर हमारे शत्रुओं का पूर्णरूपेण संहार करें । देवत्व संवर्द्धक सत्कर्मों का सम्पादन करें । असुरों के सशक्त शस्त्रों को तेजहीन करें तथा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष शत्रुओं का विनाश करें । हे सुव ! अग्नि के तेज (प्रभाव) द्वारा हम आपको प्रतिष्ठित करते हैं ॥१३॥

६४४. अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पुधिव्याऽ अयम् । अयाधं रेताधं सि जिवति ।

इन्द्रस्य त्वौजसा सादयामि ॥१४॥



जो अग्निदेव वृत्तों के ऊर्ध्व भाग के समान उत्तम है, धरती की फलन शक्ति से सम्पन्न, जल में विद्यमान पोषक तत्वों को बढ़ाते हैं। हे सुव ! इन अग्निदेव के लिए इन्द्रदेव की सम्मर्भ से आपको प्रतिष्ठित करते हैं ॥१४॥

६४५. भुवो यज्ञस्य रजस्व नेता यज्ञा न्युजिः सचसे शिवाभिः । दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्गं जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥१५॥

हे अग्निदेव ! आप जब अपनी ज्वलाओं रुची जिह्वा को प्रकट करके हव्यमान ग्रहण करते हैं, तब यज्ञ (सत्कर्म) एवं उसकी फलश्रुति रूपी जल (जल-पर्जन्य) को श्रेष्ठ करने वाले नयक होते हैं। (साथ ही आप) लोक कल्याण के लिए तीव्र गति से दिव्यलोक में सूर्य को धारण करते हैं ॥१५॥

६४६. भुवासि वरुणास्तुता विश्वकर्मणा । मा त्वा समुद्रऽदृषीन्मा सुपर्णोऽव्यधमाना पृथिवीं दृक्षुः ॥१६॥

इसमें तब अपने के चलो के साथ स्वयमातृज्ये नमक स्वयमातृज्य रज्जुवत् (घोरस) जलर विलेव की ईट को स्थापित किया जाता है। इसका निर्माण करने वाले भूय स्वर्ग को लक्ष्य करते यज्ञ यज्ञ है—

आप (पृथ्वी के रूप में) अखिल विश्व को धारण करती हैं। विश्वकर्मा द्वारा विस्तारित होकर सुदृढ़-सुस्थिर हैं। समुद्र आपको नष्ट न करे, वायु आपको अचरोक्ष न हो। आप व्यधित न होकर पृथ्वी को स्थिरता प्रदान करें ॥

६४७. प्रजापतिष्ट्वा सादयत्वर्षा पृष्ठे समुद्रस्येभन् । व्यवस्यतीं प्रधस्यतीं प्रधस्य पृथिव्यसि ॥१७॥

अपने प्रकटरूप से विस्तार करने वाली हे स्वयमातृज्ये ! आप प्रजापति द्वारा समुद्र के पृष्ठ भाग में स्थापित होकर, जल में व्यापक रूप से विस्तार को ज्ञान करें। पृथ्वी के अंश से निर्मित आप उसी की प्रतिरूप हैं ॥१७॥

६४८. भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य वर्जी । पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृक्षुः पृथिवीं मा हिंक्षुः सीः ॥१८॥

भूमि की भौति मुख देने वाली हे स्वयमातृज्ये ! आप विश्व का पालन करने के कारण देवमाता अदिति हैं। अखिल विश्व के प्राणियों का पोषण करती हैं। आप पृथ्वी पर अनुग्रह करें, भू भाग को दृढ़ता प्रदान करें तथा इसे कभी भी पीड़ित न होने दें ॥१८॥

६४९. विश्वस्मै प्राणायानाय व्यानाथोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय । अग्निष्ट्वाभि पातु मङ्गा स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तथा देवतयाङ्गिरस्वद् भुवा सीद ॥१९॥

हे स्वयमातृज्ये ! समस्त प्राण, अथान्, व्यान और उदान नामक शरीरस्थ वायु की प्रतिष्ठा के लिए और सदाचरण की रक्षा के लिए यज्ञस्थल पर आपकी स्थापना करते हैं। लोक हितकारी अग्निदेव शीतल-सुखद साधनों द्वारा आपकी रक्षा करें। उस महान् दैवी अनुकम्प से ज्ञान अङ्गिरा के समान ही दृढ़ता एवं स्थिरता प्राप्त करें ॥१९॥

६५०. काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि । एवा नो दूर्वे प्र तनु सहस्रेण शतेन स ॥

हे दूर्वा ! आप अनेक प्रन्धियों एवं कर्मस्वलों से (सभी ओर से) भली-भाँति अंकुरित होती हैं, अतः (अपने समान ही) असंख्य पुत्र-पौत्रों के रूप में हमारे वैभव को बढ़ाएँ ॥२०॥

६५१. या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि । तस्यास्ते देवीष्टके विधेम इविषा वयम् ।

हे दिव्यगुण-सम्पन्न दूर्वे ! जिन जो सैकड़ों लाखों और सहस्र अङ्कुरों से अंकुरित होती हैं। ऐसी आपके लिए हम हवि प्रदान करते हैं ॥२१॥

६५२. यास्ते अग्ने सूर्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः । ताभिर्नो अद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृषि ॥२२॥

हे अग्निदेव ! आपकी जो आग सूर्यमण्डल में स्थित किरणों के रूप में है, उन सभी रश्मियों द्वारा हमें तथा हमारे पुत्र-पौत्रादि को तेजस्वित्व प्रदान करें ॥२२॥

६५३. या वो देवाः सूर्ये रुचो मोष्यसेषु या रुचः । इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते ॥२३॥

हे इन्द्राग्नी ! हे बृहस्पते ! हे देवजने ! आगकी जो आग सूर्यमण्डल में सुशोभित है, जो पृष्टिग्रह दीप्तियों गौओ (पोषण देने में सहाय) और अद्यो (बलशाली गर्वितशाली) में स्थित है, उन समस्त दीप्तियों से सुशोभित होकर आप हमारे लिए आरोग्य और कर्मान्तर प्रदान करें ॥२३॥

६५४. विराड्ज्योतिरधारयस्वराड्ज्योतिरधारयत् । प्रजापतिर्वा सादयत् पृष्ठे पृथिव्या ज्योतिष्मतीम् । विश्वस्मै प्राणाश्वपानाय ध्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ । अग्निष्टेधिपतिस्तथा देवतायाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥२४॥

विज्योति को लक्ष्य करके बड़ा गया है—

इस अति सुशोभित विराटरूप लोक ने अग्निदेव की ज्योति को धारण किया । स्वयं ज्योतिषय दिव्य लोक ने ज्योतिरूप त्रेख को धारण किया । प्राण, अश्व, ध्यान आदि की ज्योति से प्रजापति प्रजापति आपकी पृथ्वी की गीठ पर विराजमान होकर आप सम्पूर्ण ज्योति प्रदान करें । अग्निदेव आपके अधीन हैं । इन प्रख्यात देव के साथ सुस्थिर होकर आप अगिर के समान ही तेजस्विता से सम्पन्न हों ॥२४॥

६५५. यधुश्च पाथक्श्च वासन्तिकावतू अग्नेरन्तःस्तेषोसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ऽ ओषधश्च कल्पन्तामग्नश्च पृथङ् यय ज्यैष्ठ्याय सवताः । ये अग्नयः समनसोन्तरा द्यावापृथिवी इमे । वासन्तिकावतू अभिकल्पमाना ऽ इन्द्रभिष देवा ऽ अभिसंविशन्तु तथा देवतायाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥२५॥

इस पत्र के साथ इन्द्राग्नी, ईश की वंशिका का आशीर्वाद करने की वाक्य यह है—

यधु (वैश), पाथक् (वैशाखा) दोनों (मामा) वसन्त ऋतु में सम्बन्धित हैं । ऋतुओं की तरह दोनों ईश अग्नि के आधार रूप में स्थापित रहें । (कार्य के अनुकूल) अग्नि का वृन्तय करने वाले हम पात्रकों के उत्कर्ष हेतु ये ध्रुलोक और पृथिवी लोक परस्पर सहयोग करें । जल और ओषधियाँ हम प्रश्रुता प्रदान करने वाली हो । समान व्रतशील अनेक अग्निर्था उत्कृष्टता से सहायता - कार्य करें । द्यावापृथिवी के बीच में इस समय समान मनयुक्त जो अग्निर्था हैं, वे वसन्त ऋतु का सम्पादन करती हुई, इस (यज्ञ) कर्म के आश्रित हों । जिस प्रकार सभी देवशक्तियाँ इन्द्रदेव का आश्रय ग्रहण करती हैं, वैसे प्रकार (अग्नि) देवता के साथ आप अगिर के समान सुस्थिर होकर स्थापित हों ॥२५॥

६५६. अषाढासि सहमाना सहस्वारात्नीः सहस्र पृतनायकः । सहस्रवीर्यासि सा मा जिन्व ॥

हे इष्टके ! आप स्वभाव से ऋतुओं को पराजित करने में समर्थ तथा ऋतुओं से अपराजित हो । आप ऋतुओं को पराभूत करें, संग्राम की कामना करने वाले ऋतुओं का पराभव करें । आप अत्यन्त पराक्रम से युक्त हों और हमें प्रसन्नता प्रदान करने वाली हों ॥२६॥

६५७. यधु वाता ऽ ऋतायते यधु हरन्ति सिन्धवः । पाथ्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥२७॥

यज्ञकर्म करने वालों के लिए यधु एवं नदियाँ यधुर प्रवाह पैदा करें । सभी ओषधियाँ यधुरता से सम्पन्न हों ॥

६५८. मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव ऋ रजः । मधु क्षौरस्तु नः पिता ॥२८॥

पिता की तरह पोषणकर्ता दिव्य लोक हमारे लिए माधुर्य युक्त हों, मातृवत् रक्षक पृथिवी की रज भी मधु के सम्मान आनन्दप्रद हो ॥२८॥

६५९. मधुमात्रो वनस्पतिर्मधुमांर अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो धन्वस्तु नः ॥२९॥

सम्पूर्ण वनस्पतियों हमारे लिए मधुरता (आरोग्य) प्रदायक हों । सूर्यदेव हमें अपने माधुर्य (प्राण ऊर्जा) से परिपुष्ट करें तथा गौरव भी हमारे लिए अमृत स्वरूप मधुर दुःखरस प्रदान करने में सक्षम हों ॥२९॥

६६०. अपां गम्धन्सीद मा त्वा सूर्योभ्यतापसीन्याग्निर्वैश्वानरः । अच्छिन्नपत्राः प्रजाऽ  
अनुवीक्षस्यानु त्वा दिव्या वृष्टिः सद्यताम् ॥३०॥

यह सब कृपे की सम्बोधन करता है । आनन्द भीष्म के अनुसार कृपे प्रत्यक्ष एवं प्राण का पर्याय है—  
आप जल के भीतर गहन स्थल में एवं सूर्य वनस्पति में स्थित हों, आपको वहाँ सूर्यदेव संतापित न करें । (सभी मनुष्यों के शरीरों में रहने वाली) वैश्वानर अग्नि भी आपको संतापित न कर पाए । प्रजा का आप अनवरत निरीक्षण करें तथा दिव्य वृष्टि आपका सदैव सहयोग करें ॥३०॥

६६१. त्रीनसमुद्रान्समसुपत् स्वर्गानपां पतिर्वृषभऽ इष्टकानाम् । पुरीषं वसानः सुकृतस्य  
लोके तत्र गच्छ यत्र पूर्वं परेतः ॥३१॥

( हे कूर्मरूप प्राण ! ) आप इष्टकाओं ( विश्व निर्माण में प्रयुक्त इष्टकाओं ) में शक्ति धरने में समर्थ हैं । आपने ही (भोग्य सामग्रीरूप) तीनों लोकों को और समुद्रों को संस्पर्श किया है । आप पशुओं को आच्छादित करते हुए उसी ओर प्रस्थान करें, जहाँ श्रेष्ठ कर्म करने वाले (जीव) पहले ही जा चुके हैं ॥३१॥

६६२. मही द्यौः पृथिवी च नऽ इमं यज्ञं विमिक्षताम् । पिपृता नो भरीमभिः ॥३२॥

अति विस्तारयुक्त पृथ्वी और सुलोक हमने इस यज्ञकर्म को अपने-अपने अंशों द्वारा परिपूर्ण करें तथा धरम-पोषण करने वाली सामग्रियों (सुख-साधनों) से हम सबको कृप करें ॥३२॥

६६३. विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पश्यते । इन्द्रस्य कुम्भः सखा ॥३३॥

हे मनुष्यों सर्वप्राणी परमेश्वर के सृष्टि-रक्षण कर्तन और संहारकर्म कर्मों को देखो, जिससे उन्होंने सभी व्रतयुक्त नियम-अनुशासन को विनिर्मित किया है । जीकल्पा ( इन्द्र ) के सर्वश्रेष्ठ सखा ये सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ही हैं ॥३३॥

६६४. सुवासि धरुणेतो जज्ञे प्रथममेभ्यो योनिभ्यो अधि जातयेदाः । स गायत्र्या  
त्रिष्टुभानुष्टुभा च देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥३४॥

हे ठहरो ! (अग्नि रखने वाला पात्र) आप इति की कारण ब्रह्मण से युक्त और सुस्थिर हैं । विश्व के सभी पदार्थों के ज्ञान से सम्पन्न जातवेद अग्निदेव सर्वप्रथम आपके यहाँ इन अर्पित स्मरणों में प्रादुर्भूत हुए । ये ब्रह्मात अग्निदेव अपने कर्म से, उचित ढंग से परिचित गायत्री, त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्दों के माध्यम से प्रदत्त आहुतियों द्वारा देवताओं के यहाँ हविष्यान्न को पहुँचाएँ ॥३४॥

६६५. इवे राये रमस्य सहसे धुम्नऽ ऊर्ध्वे अकल्पय । सप्ताहसि स्वरहसि सारस्वती त्वोत्सौ  
प्रायताम् ॥३५॥

हे उखे आप अन्न, घन, कल, वस्त्र, दुग्धादि रस और पुत्र-पौत्रादि प्रदान करने के निमित्त यहाँ चिरकाल पर्यन्त प्रसन्नतापूर्वक रमण करें । आप भूमि को उचित ढंग से प्रकाशित करने से सप्रसन्न हैं और स्वयं प्रकाशित होने से स्वराट् हैं । सरस्वती से सम्बन्धित मन और काष्ठी आपको फलनशक्ति से युक्त करें ॥३५॥

६६६. अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाभ्यासो देव साधकः । अरं वहन्ति मन्यवे ॥३६॥

हे दिव्य लक्षणों से युक्त अग्ने आपके जो गतिशील अन्न आपको लोभता से यज्ञार्थ ले जाने में सक्षम हैं, ऐसे अश्वों को निष्ठयपूर्वक आप रथ में नियोजित करें ॥३६॥

६६७. युक्ष्वा हि देवहूतमौर अश्वारं अग्ने रथीरिव । नि होता पूर्यः सद्ः ॥३७॥

हे अग्ने आप देवों का आवाहन करने वाले अश्वों को निष्ठय ही रथवाइक के समान लीध हो रथ में नियोजित करें सर्वप्रथम (प्राचीन) हविदात होने में आप हमारे इस यज्ञनुष्ठान — यज्ञस्थल में विराजित हों ।

६६८. सम्यक् स्रवन्ति सरितो न वेनाऽ अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः । घृतस्य घाराऽ अभि चाकशीमि हिरण्ययो सेतसो मध्ये अग्नेः ॥३८॥

उद्गम से प्रवाहित होने वाली नदियों की धारा के समान अन्तर्हृदय एवं मन से पवित्र होकर हमारे वाणियों ( यज्ञीय यन्त्रों ) के रूप में प्रवाहित होती हैं । ( हम उन्हें ) सर्वाभ्य प्रकाश-युक्त यज्ञाग्नि को प्रभावपूर्ण बनाने में भी की धाराओं की तरह (प्रभावकारी) देखते हैं ॥३८॥

६६९. ऋचे त्वा रुचे त्वा घ्रासे त्वा ज्योतिषे त्वा । अभृदिदं विम्वस्य ध्रुवनस्य चाजिनमग्नेर्वैश्वानरस्य च ॥३९॥

सत्य, ज्ञान, प्रकाश, विशिष्ट ज्ञान और तेजस्विता आदि के लिए हम आपको आश्रय ग्रहण करते हैं आपकी कृपा से इस प्राणिसमूह (आश्रित लोग) तथा सभी स्तनको में स्थित वैश्वानर (प्राणाग्नि) के वचन ( संकेतों ) को समझने में हम समर्थ हुए हैं ॥३९॥

६७०. अग्निज्योतिषा ज्योतिष्यान् रुक्मो वर्धसा वर्धस्वान् । सहस्रदाऽ असि सहस्राय त्वा ॥

हे तेजस्विन् ! आप ज्योति से प्रकाशित होने से अग्निस्वरूप हैं, तेज से तेजवान् होने से 'रुक्म' अर्थात् सुवर्ण के सदृश हैं आप ही असंख्य वैधव-सम्पत्त को प्रदान करने वाले हैं, प्रचुर ऐश्वर्य और ज्ञान के संरक्षण एवं अर्जन हेतु हम आपको तपासना करते हैं ॥७०॥

६७१. आदित्यं गर्भं पयसा समष्टिं सहस्रस्य प्रतिमां विम्वरूपम् । परि वृष्टिं हरसा माभि मयं स्याः शतायुषं कृणुहि जीयमान् ॥७१॥

देव शक्तियों के उत्पादन स्थल च पशुओं के कर्ण-क्षेपण की शक्ति से सम्पन्न हजारों स्वरूप वाले और विस्त्र-प्रकाशक अग्निदेव को दुग्धादि से आर्चिषिक्त करें तथा प्रदोष तेजस्विता से सभी रोगों को विनष्ट करें । ये (अग्निदेव) संवर्द्धित होकर यजमान को शतायु बनाएँ एवं अहङ्कार से दूर रहें ॥७१॥

६७२. वातस्य जूतिं वरुणस्य नाभिमष्टं जज्ञानथं सरिरस्य मध्ये । शिशुं नदीनाथं हरिमद्विबुधमग्ने मा हिंसेः परमे व्योमन् ॥७२॥

हे अग्निदेव ! वायु के प्रिय, कर्णदेव के नाभिरूप, जल-प्रवाहों के मध्य रहने वाले, नदियों के शिशुरूप, हरित (हरिताप या गतिमान्), विस्तृत आकाश में समर्पित, पर्वतों के मूल कारण या पर्वतों पर अपनी गति के चिह्न बना देने वाले इस अश्व (प्रकृति में संख्यापत पर्ववरण का संतुलन बनाये रखने वाले जल) को आप नष्ट न करें ॥७२॥

। जल के संयोग से ही इरीतिव्य विकसित होती है, इरीतिव्य उसे हमलाव कहा गया है। जलुपघटन के साथ पूरे जल के कारण ही अकाल नीला दिखाई देता है। पृथ्वी विषयों को बाँध कर रखने की क्षमता भी जल में है तथा अपने प्रवाह के बिना भी वह बन्ध देता है। इस प्रकार जलस्थि अथवा जले बन्धे सभी विज्ञानव्य विज्ञान-सम्पत्ति हैं ।

६७३. अजस्रमिन्दुमरुथं धुरण्युमग्निमीडे पूर्वचित्ति नमोधि । स पर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां मा हिं३सीरदिति विराजम् ॥४३॥

अविनाशी, ऐश्वर्य सम्पन्न, उत्तेजना से रहित, पूर्व ऋतियों द्वारा ग्रहण योग्य, अन्न द्वारा सबके पोषणकर्ता अग्निदेव की हम स्तुति करते हैं। वे स्वाति प्राप्त अग्निदेव अमावस्या आदि वर्षों से प्रत्येक ऋतु के अनुकूल कर्मों को सम्पादित करें तथा दुग्धादि देने में सक्षम अदिति (देवताओं की माता) के समान गौ (पोषण क्षमता से सम्पन्न प्रकृति व्यवस्था) को नष्ट न करें ॥४३॥

६७४. वरुजीं त्वहूर्यरुणस्य नाभिपवि जज्ञानांरजसः परस्मात् । मही३साहसीमसुरस्य मायामग्ने मा हिं३सीः परमे व्योमन् ॥४४॥

हे अग्निदेव ! आप उत्तम आकाश में स्थापित, विभिन्न ऋतुओं का निर्वाह करने वाली, वरुण के नाभिस्वरूप, रक्षणयोग्य, परम उच्च लोक में उत्पन्न हुई महिमामयी, असंख्यों को कल्याणकारक, प्राणियों की संरक्षक भवि को विनष्ट न करें ॥४४॥

। अथ ऋतुओं की कहते हैं और रक्षण क्षमता को भी। प्रकृति की रक्षण क्षमता (पर्यावरण) को जल के प्रवृत्त फल प्रयोगों से नष्ट न करने का संकेत है। जगृन्मिदं विद्वान् यद् वृण कर वृण है, ऋतु के ऐसे ज्ञान से है, जिससे वरुण प्रवृत्त में पर्यावरण के रक्षण क्षमता (जीवन क्षमता अति) को रक्षित किया है ।

६७५. सो अग्निरग्नेरध्यजायत शोकात्पृथिव्याऽ उत वा दिवस्पति । येन प्रजा विश्वकर्मा ज्ञान तमग्ने देहः परि ते वृणक्तु ॥४५॥

विराट् अग्नि से उत्पन्न अग्निदेव, प्रजापति के संतुष्ट (अभाव दूर करने की पीड़ा) से उत्पन्न हुए जो दिव्य लोक व पृथ्वी को स्वतेज से प्रकाशमान करते हैं। सप्त ने जिससे सृष्टि की रचना की-ऐसे हे अग्निदेव याज्ञक कभी आपके क्रोध से पीड़ित न हों ॥४५॥

६७६. चित्रं देवानामुदगादनीकं क्षक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षा३ सूर्यऽ आत्मा जगतस्तस्युषः ॥४६॥

दिव्य रश्मियों के रूप में अद्भुत शक्तियों से युक्त मित्र वरुण और अग्नि के नेत्ररूप तेजस्वी सूर्यदेव दिव्यलोक, पृथिवी और अन्तरिक्ष तीनों लोकों को प्रकाशित कर रहे हैं। वे सूर्यदेव जड़ और चेतन जगत् की आत्मा (चेतना) रूप में उदित हुए हैं ॥४६॥

। सूर्य से ही पृथिवी पर जीवन देने के कारण उन्हें जगत् की आत्मा कहा गया है ।

६७७. इमं मा हिं३ सीर्हिपादं पशु३ सहस्राक्षो मेघाय चीयमानः । मयुं पशुं मेक्षमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद । मयुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्यस्तं ते शुगृच्छतु ॥४७॥

यज्ञ हेतु प्रकट किये गये हे अग्निदेव ! आप मनुष्यों और पशुओं को पीड़ित न करें। आप हजारों नेत्रों से युक्त हों। हमारे लिए पौष्टिक अन्न एवं पशुओं को संवर्धित करें। वैषम्य को प्राप्त कर हम सुखी समृद्ध जीवन बिगें। आपका संतापकारी क्रोध, हिंसक पशुओं को एवं जिनसे हम विद्रव्य करते हैं, उन्हें ही पीड़ित करें ॥४७॥

६७८. इमं मा हिं३ सीरेकशर्फं पशुं कनिकदं वाजिनं वाजिनेषु । गौरमारण्यमनु ते दिशापि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद । गौरं ते शुगृच्छतु यं द्विष्यस्तं ते शुगृच्छतु ॥४८॥

हे अग्निदेव ! आप दिन-दिन सन्त द्वारा स्मृति को ज्वल करने वाले अतिगतिशील अश्वों को पीड़ित न करें। हानिकारक जंगली पशुओं को घेड़ित करते हुए अपने ज्वालास्वरूपी शरीर को संवर्धित करें। आपको संताप खेती को हानि पहुँचाने वाले पशुओं को और बिल्के प्रति हमारी प्रति नहीं है, उन्हें पीड़ित करें ॥४८॥

६७९ इमं च साहस्यं जलधारयुतं व्यच्यमानं सरिरस्य मध्ये । धृतं दुहानामदिति जनायाम्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् । गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तनो निषीद । गवयं ते शुगच्छतु यं हिष्मस्तं ते शुगच्छतु ॥४९॥

हे अग्निदेव ! सैकड़ों हजारों घराओं को झोत त्वेक के मध्य पो (तेजस् अथवा दूध का सारतत्व) उत्पन्न करने वाली, परमव्योम (व्यापक आकाश-अथवा श्रेष्ठ स्थान) में स्थित, वह जो अदिति (दो भागों में न बटने योग्य गाय) है इसे हिंसित न करें। जंगल में रहने वाले गवय अर्द्ध पशुओं (खेती को हानि पहुँचाने वाली नील गाय आदि) की ओर आपको निर्देशित किया जाता है। अपनी ज्वालाओं को बढ़ाते हुए आप उनके साथ रहे जिनसे हम द्वेष करते हैं, ऐसे गवय पशुओं पर आपका क्रोध प्रकट हो ॥४९॥

[ यह मंत्र द्वि-वर्णिक है—(१) कोक्य प्रान्त वर्ण्य करने 'वय' प्रति न करें, हर्न्यकारक पशुओं पर अग्नि का क्रोध प्रकट हो (२) लोको का हर्न्य करने में कोक्य प्रान्त वर्ण्य करने वाली स्मृति को अग्नि के निर्दोष प्रमाण यह न करें, अत्युत्तम पैदा करने वाले तनो त्वं ही उत्तम अर्द्ध निषीद नह ॥ ]

६८० इममूर्णां चरुणस्य नाभिं त्वया यजुनां हिपदां चतुष्पदाम् । त्वहः प्रजानां प्रथमं जनिप्रथमं मा हिंसीः परमे व्योमन् । उष्टमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तनो निषीद । उष्टं ते शुगच्छतु यं हिष्मस्तं ते शुगच्छतु ॥५०॥

वेड की उल के छत्र में संकल्प करने हुए इस वन को घेड़ने की कसबा है। पशुओं के कर्तों और एक शक्तिशाली रक्षा अस्त्र (अश्वोत्थित) है, जो इनके के रूप में उत्तीर्ण के हर्न्यकारक अस्त्रों (अश्वोत्थित) की प्रतिष्ठा में होने के कारण पशुओं की रक्षा करता है। उत्तरी रक्षा का स्थान इस वन में है—

हे अग्ने ! इस वन व्योम (विस्तृत आकाश-अथवा श्रेष्ठ स्थान) में—सृष्टि में सबसे पहले उत्पन्न, बहज (बाल) की नाभि (उत्पत्तिस्थल) रूप, त्वका की तरह चौपायों एवं दोपदों (सभी जन्तुओं) की रक्षा करने वाली, इसे ऊनयुक्त (वेड अथवा प्रकृति की रक्षण क्षमता) को आप हिंसित न करें। आपको जंगली ऊँटों की ओर निर्देशित किया जाता है। उनके भाव विस्तार फलन आप सुख करने। जिनसे हम द्वेष रखते हैं, ऐसे (वेडील-अनुपवाक क्षेत्र में रहने के इच्छुक) ऊँट आदि पशुओं पर आपका क्रोध प्रकट हो ॥५०॥

६८१ अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकास्त्यो अण्ड्यज्यन्नितारमग्रे । तेन देवा देवतामग्रमार्यस्तेन रोहमायन्नप मेध्यास्तः । शरभमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तनो निषीद । शरभं ते शुगच्छतु यं हिष्मस्तं ते शुगच्छतु ॥५१॥

यह अज (बकरा अथवा अजमा-शाश्वत नेत्र) परमेश्वर की तेजस्विता से सम्पन्न हुआ है। उसी से वह (जीव) विश्व के रज्ज्विता का साक्षात्कार करने में सक्षम हुआ है। उसी के द्वारा देवता श्रेष्ठ देवत्व के परम पद को प्राप्त करते हैं और उसी की सामर्थ्य-शक्ति से वाजकमय मय के सुख को प्राप्त करते हैं। हे अग्निदेव ! आपको हम जंगली शरभ (हिंसक पशु) की ओर प्रेरित करते हैं, आपको क्रोध शरभ अर्द्ध पशुओं की ओर हो और जिनसे हम प्रीतिरहित हैं, उन्हें आपकी ज्वालाएँ सत्पद करें ॥५१॥

६८२ त्वं यविष्ठ दाशुषो नृं पाहि शुषुषी मिः । रक्षा तोकमुत्तमना ॥५२॥

हे तरुणतम अग्निदेव ! आप हमारे द्वारा की न रही स्मृति को न्य न्यय करें। यज्ञ में आहुति देने वाले यजमानों का संरक्षण करें तथा उनके पुत्र-पौत्रादि का भी रक्षण करें ॥५२॥

यहाँ से आग की व्यवस्था इष्टका- ईंटों को स्थापित करने के संदर्भ में है। इष्टकाओं के प्राप्य से वेदत्रयपुत्र विभिन्न ऋषयों को सभी उत्पन्न स्थानों पर स्थापित करने का काम प्रकट किया गया है—

६८३. अपां त्वेमन्सादयाम्यपां त्वोकन्त्सादयाम्यपां त्वा भस्मन्त्सादयाम्यपां त्वा ज्योतिषि सादयाम्यपां त्वाकने सादयाम्यवर्षां त्वा सदने सादयामि समुद्रे त्वा सदने सादयामि सरिरे त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा क्षये सादयाम्यपां त्वा सधिषि सादयाम्यपां त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा सधस्ये सादयाम्यपां त्वा योनौ सादयाम्यपां त्वा पुरीषे सादयाम्यपां त्वा पार्थसि सादयामि । गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि जागतेन त्वा छन्दसा सादयाम्बानुष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि पाङ्क्तेन त्वा छन्दसा सादयामि ॥५३॥

हे (अपम्या नामको) इष्टके ! आपको हम अल के स्थान में प्रतिष्ठित करते हैं, आपको ओषधियों में स्थापित करते हैं, विवृत ज्योति में स्थापित करते हैं, वाणी के स्थान में स्थापित करते हैं। आपको बधु स्थान में, श्रोत्र स्थान में, दिव्यलोक में, अन्तरिक्षलोक में, समुद्र में, सिकता में एवं अन्न में स्थापित करते हैं। आपको गायत्री छन्द से, त्रिष्टुप् छन्द से, जगती छन्द से, अनुष्टुप् और ऋजु छन्द से स्थापित करते हैं, अर्थात् इन सभी स्थानों पर आपको स्थापना करते हैं ॥५३॥

६८४. अयं पुरो भुवस्तस्य प्राणो धौवायनो वसन्तः प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्री गायत्रं गायत्रादुपाधं शुरुपाधं शोस्त्रिवृत् त्रिवृतो रश्मन्तरं वसिष्ठऽ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजापत्यः ॥५४॥

हे इष्टके ! ये अग्निदेव सर्वप्रथम उत्पन्न होने से प्राणरूप में स्थित हैं। यह प्राण भुवनात्मक अग्नि से उत्पन्न होने से प्राणरूप में स्थित है। ये प्राण भुवनात्मक अग्नि से उत्पन्न होने के कारण 'धौवायन' नाम से जाने जाते हैं। इन धौवायन के निमित्त इष्टका को प्रतिष्ठित करते हैं। प्राण से उत्पन्न होने वाले वसन्त ऋतु हैं। वसन्त से गायत्री, गायत्री से गायत्र-साम, गायत्र-साम से उपाजु नामक प्राण उत्पन्न हुए। उपाजु प्राण से त्रिवृत् नामक स्तोम, त्रिवृत् स्तोम से रश्मन्तर साम उत्पन्न हुए। इन सभी के प्रवर्तक और इष्ट सभी प्राणों में प्रधान रूप से विद्यमान ऋषि वसिष्ठ हुए हैं। इन सभी देव ईश्वरों के निमित्त इष्टका प्रतिष्ठित करते हैं। हे धितिशक्ति ! प्रजापालक द्वारा गृहीत (निर्मित) आपके सहयोग से प्रजाओं के लिए आरोग्यवद् प्राण को हम ग्रहण करते हैं, अर्थात् सबके दीर्घायु की कामना करते हैं ॥५४॥

६८५. अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्माणं ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुष्मीष्मी त्रिष्टुभः स्वारधं स्वारादन्तर्यामोन्तर्यामात्पञ्चदशः पञ्चदशद् बृहद् धरद्वाजऽ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजापत्यः ॥५५॥

विश्वकर्मा नाम से प्रख्यात ये इष्टका दक्षिण-दिश में प्रस्थापित होती हैं। वायु देवता का मनन कर हम इष्टका को स्थापित करते हैं। मन उन विश्वकर्मा से उत्पन्न हुआ, मन से ग्रीष्म ऋतु उत्पन्न हुई, सूर्य के प्रखर ताप से युक्त ग्रीष्म ऋतु के मानस् तेज से त्रिष्टुप् उत्पन्न हुए, त्रिष्टुप् छन्द से स्वाम साम प्रकट हुए, स्वार साम से अन्तर्यामि ग्रह उत्पन्न हुए, अन्तर्यामि से पञ्चदश स्तोम प्रकट हुए, पञ्चदश स्तोम से बृहत्साम उत्पन्न हुए, उसके द्रष्टा और सञ्चालक स्वयं प्राण के सदृश धरद्वाज ऋषि हैं। इन समस्त दिव्यशक्ति धाराओं का मनन करते हुए हम इष्टका की स्थापना करते हैं। हे इष्टके ! प्रजापति द्वारा ग्रहण की हुई (निर्मित) आपके सहयोग से हम सब प्रजाओं के लिए मन को धारण करते हैं, अर्थात् सबके मनोबल की कामना करते हैं ॥५५॥

६८६. अयं पृथ्वादिभ्यश्चास्तस्य चक्षुर्वैश्वचसं वर्षाश्चाक्षुष्यो जगती वार्षी जगत्या ऽ  
 ऋक्समयजुस्समाचक्षुः शुक्रास्तप्तदशः सप्तदशाद्वैरूपं जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया  
 त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥५६॥

विश्वव्यास (सूर्य) नाम से प्रख्यात ये (इष्टका) पश्चिम दिशा में स्थापित होती है, इनका (सूर्य का) मनन करते हुए इष्टका को प्रतिष्ठित करते हैं। उस विश्वव्यास सूर्यदेव से नेत्र उत्पन्न हुए (परमेश्वर के चक्षुः सूर्य हैं) वर्षा ऋतु नेत्रों से प्रकट होती है, वर्षाऋतु से जगती छन्द उत्पन्न हुए (समस्त सृष्टि वर्षा ऋतु से प्रकट होती है), जगती छन्द से ऋक्-साम का प्रादुर्भाव हुआ, ऋक्साम से शुक्राक्ष की उत्पत्ति हुई, शुक्र ग्रह से सप्तदश स्तोम उत्पन्न हुए, सप्तदश स्तोम से वैरूप साम अर्थात् विविध जीवसृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ, वैरूप नानाविध जीव-जन्तुओं की रक्षा करने वाले चक्षुः सूर्य के द्रष्टा जमदग्नि ऋषि हैं। इन समस्त देवताओं का मनन करते हुए हम इष्टका की स्थापना करते हैं। हे इष्टके ! प्रजापति द्वारा गृहीत (विनिर्मित) आपके सहयोग से प्रजाओं के लिए हम नेत्र को धारण करते हैं अर्थात् सबके दूरदर्शी विवेक को कामना करते हैं ॥५६॥

६८७. इदमुपरात् स्वस्तस्य ओन्नतंसौख्यं शरच्छात्र्यनुष्टुप् शारद्वानुष्टुभः ऐह मैत्रान्मन्वी  
 मन्विन ऽएकविंशः ऽ एकविंशः शारद्वाराजं विधामिभः ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया ओन्न  
 गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥५७॥

उत्तर दिशा की ओर स्थित, स्वर्गलोक से सम्बन्धित श्रोत्र उस प्रजापति के प्रमुख सुख-साधन स्वरूप हैं। उसका मनन करके इष्टका को स्थापित करते हैं। श्रोत्र से शरद् ऋतु का प्रादुर्भाव होता है, शरद् ऋतु से अनुष्टुप् छन्द उत्पन्न हुए, अनुष्टुप् छन्द से एहसाम की उत्पत्ति हुई, एहसाम से मन्वी ग्रह उत्पन्न हुए, मन्वीग्रह से यज्ञ में एकविंश स्तोम की उत्पत्ति होती है, एकविंश स्तोम से शारदा साम का प्रादुर्भाव हुआ। इन सबके द्रष्टा ऋषि विधामिभ हैं। इन समस्त दिव्य शक्तियों का मनन करते हुए इष्टका की स्थापना करते हैं। हे इष्टके ! प्रजापति द्वारा गृहीत (विनिर्मित) आपकी सहायता से प्रजाओं के लिए हम श्रोत्र को ग्रहण करते हैं अर्थात् सबके दूरश्रवण (युगानुरूप कर्तव्यबोध) की कामना करते हैं ॥५७॥

६८८. इयमुपरि मतिस्तस्यै वाह्मात्या हेमन्तो वाच्यः पञ्क्तिर्हेमन्ती पञ्क्त्यै  
 निधनवन्निधनवत् ऽ आग्रयण ऽ आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ त्रिणवत्रयस्त्रिंशः  
 शाक्यार्थः शाक्यरैवते विश्वकर्मा ऽ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि  
 प्रजाभ्यो लोकं ताऽ इन्द्रम् ॥५८॥

सर्वोच्च भाग पर चन्द्रमारूपी मति विराजमान है। उसका मनन करते हुए इष्टका स्थापित करते हैं। उस प्रज्ञा बुद्धि से वाणी का प्रादुर्भाव हुआ, उस वाणी से हेमन्त ऋतु की उत्पत्ति हुई, हेमन्त ऋतु से (हेमन्ती) पञ्क्ति छन्द उत्पन्न हुआ, पञ्क्ति छन्द से निधनवत् साम प्रकट हुए, निधनवत् साम से आग्रयण ग्रह की उत्पत्ति हुई, आग्रयण ग्रह से त्रिणव और त्रयस्त्रिंश दोनों स्तोम उत्पन्न होते हैं, त्रिणव और त्रयस्त्रिंश दोनों स्तोमों से शाक्य और रैवत नामक साम प्रादुर्भूत होते हैं, इन सबके द्रष्टा विश्वकर्मा ऋषि हैं। इन सभी शक्तियों का मनन करते हुए इष्टका की स्थापना करते हैं। हे इष्टके ! प्रजापति द्वारा ग्रहण की हुई (विनिर्मित) आपके सहयोग से प्रजाओं के लिए वाणी को ग्रहण करते हैं अर्थात् सबके श्रेष्ठ वक्तृत्व शक्ति की कामना करते हैं। हे समस्त इष्टकाओ ! आप समस्त (छिद्रों) लोकों को सम्पूर्ण करें, आपके लिए समस्त प्रजा स्तोम मान करते हुए इन्द्रदेव का अग्रवाहन करती हैं ॥५८॥



## —ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

**ऋषि**— अवतार १ ३ । कृत्स्न २ । हिरण्यगर्भ ४ । देवत्रया ५-८ । देवा, वामदेव ९ १३ । विरूप १४, ३७-४५, ४७-५१ । त्रिकिरा १५-१९ । अग्नि २०, २१ । इन्द्राग्ने २२-२५ । सविता अथवा देवा २६ । गोतम २७-३१, ३४, ३५ । मेधातिथि ३२-३३ । भरद्वाज ३६ । कृत्स्न आभिरस ४६ । उल्लना कव्य ५२-५८ ।

**देवता**— अग्नि १, ९-१३, १५, २२, २३, ३६, ३७, ४१-४५, ४७-५२ । पुष्करपर्ण २ । आदित्य ३ ५ कः ४ । सर्पसमूह ६-८ । अग्नि इन्द्र १४ । स्वयम्भुवृक्ष १६-१९ । दूर्वा-इष्टका २०, २१ । अयंलोक, असौ लोक, विश्वज्योति २४ । ऋतु २५ । इष्टका २६, ५३ । विश्वदेव २७-२९ । कूर्म ३०, ३१ । छावा-पृथिवी ३२ । विष्णु ३३ । उवा ३४-३५ । सिन्धोत्त ३८ । हिरण्यवक्त्र ३९, ४० । सूर्य ४६ । प्रावमृत् ५४-५८ ।

**छन्द**— आशी पंक्ति १ । विराट् त्रिष्टुप् २ । निचृत् आशी त्रिष्टुप् ३, ५, १५ । आशी त्रिष्टुप् ४ । भुरिक् उष्णिक् ६ । अनुष्टुप् ७, १७, २०, २३ । निचृत् अनुष्टुप् ८, २१, २६ । भुरिक् पंक्ति ९, १० । निचृत् त्रिष्टुप् ११ ४२-४४, ४६ । भुरिक् आशी पंक्ति १२ । निचृत् आशी अतिजगती १३ । भुरिक् अनुष्टुप् १४, २२ । स्वराट् आशी अनुष्टुप् १६ । प्रस्तार पंक्ति १८ । भुरिक् अतिजगती १९ । निचृत् पंक्ति २४ । भुरिक् अतिजगती, भुरिक् बाह्वी बृहती २५ । निचृत् गायत्री २७, २९, ३३, ३६, ३७, ५२ । ऋजो २८, ३२ । आशी पंक्ति ३० । त्रिष्टुप् ३१, ३८, ४१, ४५ । भुरिक् त्रिष्टुप् ३४ । निचृत् बृहती ३५, ३९ । निचृत् उष्णिक् ४० । विराट् बाह्वी पंक्ति ४७ । निचृत् बाह्वी पंक्ति ४८ । कृति ४९ । भुरिक् कृति ५०, ५१ । भुरिक् बाह्वी पंक्ति, बाह्वी जगती, निचृत् बाह्वी पंक्ति ५३ । स्वराट् बाह्वी जगती ५४ । निचृत् अतिघृति ५५, ५६ । स्वराट् बाह्वी त्रिष्टुप् ५७ । विराट् अकृति ५८ ।

## ॥ इति त्रयोदशोऽध्यायः ॥



## ॥ अथ चतुर्दशोऽध्यायः ॥

[ इस अध्याय की २० कविकृतियों तथा चन्द्रसे उल्लास की अनेक कविकृतियाँ इच्छाओं को प्राप्त करने वाली हैं । यजमान की चेष्टिकाओं के लिए इच्छाएँ स्थापित करने हुए इनके उल्लास करने की प्रार्थना रही है; किन्तु कवियों की क्षति बढ़ी लगाने वाली है । सृष्टि संरक्षण की सभी प्रार्थना इच्छाओं को उन्होंने 'इच्छा' कहा है । इष्ट-उपेक्षण के लिए जो अभीष्ट है, वह 'इच्छा' है । अग्नि, अस्त्र, दिन-रात, प्रभुओं अदि सभी को 'इच्छा' कहा गया है । विभिन्न संदर्भ के लिए प्रार्थना लेनी जा सकती है; यहाँ पशु के भय सम्झने के लिए वह उल्लास अर्थ को आप में रखा गया आवश्यक है ।]

६८९. धुवक्षितिर्धुवयोनिर्धुवासि ध्रुवं योनिमासीद साधुवा । उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणाश्विनाश्वर्यं सादयतामिह त्वा ॥१॥

हे इष्टके ! आप स्थिर निवास, स्थिर स्वभाव और अविचलित स्वरूप से युक्त हैं । आप अग्निदेव के प्रथम ध्वज (ज्वाला) के रूप का सेवन करती हुई सुस्थिर हो और अविचलित प्रेक्ष स्थान अन्तरिक्ष को प्राप्त हों । आप देवताओं के अध्वर्यु अश्विनीकुमारों द्वारा इस उत्तम स्वस्व में प्रतिष्ठापित हों ॥१॥

६९०. कुलाचिनी घृतवती पुरन्धिः स्थोने सीद सद्ने पृथिव्याः । अधि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्तिव्या ब्रह्म पीपिहि सौभगायाश्विनाश्वर्यं सादयतामिह त्वा ॥२॥

हे इष्टके ! आप निवास-योग्य घर से युक्त होकर पौरुषिक घृतदि घटाओं से सम्पन्न बनकर पुर को धारण करने वाली पृथ्वी के सुखप्रद गृह में विराजें । रुद्र एवं वसुगण आपकी स्तुति करें । इन मंत्रों को आप अपने सौभाग्य के संवर्द्धन हेतु सुरक्षित करें । दोनों अश्विनीकुमार अध्वर्युरूप में आपको इस वज्रस्थल में विराजमान करें ॥२॥

६९१. स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानां सुप्ते बृहते रणाय । पितेवैधि सूनवऽ आ सुशेवा स्वाधेशा तन्वा सं विशस्वाश्विनाश्वर्यं सादयतामिह त्वा ॥३॥

शक्ति संरक्षक हे इष्टके ! देव शक्तियों के सुख-संवर्द्धन हेतु आप यहाँ द्वितीय चित्ति के स्थान पर स्थिर होकर सबका कल्याण करें । पुर के सुखों जीवन की कामना करने वाले पिता की नीति आप भी प्रयासरत रहें । दोनों अश्विनीकुमार आपको यहाँ प्रतिष्ठापित करें ॥३॥

६९२. पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे अधिगृणान्तु देवाः । स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे इविणावजस्वाश्विनाश्वर्यं सादयतामिह त्वा ॥४॥

पृथ्वी की प्रथम चित्ति को पूर्ण करने वाली हे इष्टके ! आप जस से उत्पन्न हैं । समस्त देवशक्तियों सभी तरफ से आपको स्तुति करें । अन्न स्तुतियों के अधिपत्य को जानते हुए हवि-रूप-घृत से तृप्त होकर यहाँ विराजमान हों । हमें पुत्र-पौत्रादि के साथ समृद्ध वैभव प्रदान करें । देवताओं के अध्वर्यु अश्विनीकुमार इस स्थान पर आपको विराजमान करें ॥४॥

६९३. अदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य धर्त्रीं विष्टम्पनीं दिशामधिपत्नीं ध्रुवनानाम् । कर्मिर्द्रप्सो अपामसि विश्वकर्मा तऽ ऋषिरश्विनाश्वर्यं सादयतामिह त्वा ॥५॥

प्राणिमात्र पर शासन करने वाली दिश्वतो को स्थिरता प्रदान करने वाली हे इष्टके ! आप अन्तरिक्ष को धारण करने में समर्थ हैं । हम आप को प्रथम चित्ति पृथ्वी के ऊपर स्थापित करते हैं । आप रस-रूपी जल की तरङ्ग के समान हैं । विश्वकर्मा आपके द्वारा कृषि है । देवों के अध्वर्यु अश्विनीकुमार आपको इस स्थान पर स्थापित करें ॥५॥

६९४. शुक्रश्च शुचिश्च वैष्णवतु अग्नेरन्तःस्नेहोसि कल्पेतां छावापृथिवी कल्पन्तामापऽ  
ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्वैष्ठ्याय सवतः । ये अग्नयः समनसोन्तरा  
छावापृथिवी इमे । वैष्णवतु अधिकल्पमानाऽ इन्द्रमिव देवाऽ अभिसंविशन्तु तथा  
देवतपाङ्गिरस्यद् भुवे सीदतम् ॥६॥

ज्येष्ठ और अश्वि पास के ज्येष्ठ ऋतु की भाँति है ऋतुस्य संज्ञे इत्यत्रो । अथ अग्निदेव के बीच  
ज्येष्ठसोमस्य के रूप में विराजमान है । इस प्रकृति करते हुए धुनोक और ज्वैष्ठ्यो वर्चन विस्तार पाएँ । जल और  
ओषधियाँ इस कार्य में अपना सहयोग करें । वतरन्म विंशत अग्निर्वा इमे प्रच्छता की ओर प्रेरित करें । प्रोष्य ऋतु  
का सम्पादन करने वाली पृथ्वी और इन्द्र के पक्ष विराजमान रहकर उम्मी प्रकाश मुर्झावत हो, जिस प्रकार  
देवताओं के साथ इन्द्रदेव होते हैं वे इसके । आप करने दिव्य दूता से अङ्गुष्ठवत् स्थिर रहें ॥६॥

६९५. सजृर्जतुभिः सजृर्विधाभिः सजृदेवैः सजृदेवैर्वयोनाधीरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्चिनाध्वर्यु  
सादयतामिह त्वा सजृर्जतुभिः सजृर्विधाभिः सजृर्वसुभिः सजृदेवैर्वयोनाधीरग्नये त्वा  
वैश्वानरायाश्चिनाध्वर्यु सादयतामिह त्वा सजृर्जतुभिः सजृर्विधाभिः सजृ रूतैः  
सजृदेवैर्वयोनाधीरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्चिनाध्वर्यु सादयतामिह त्वा सजृर्जतुभिः  
सजृर्विधाभिः सजृराहितैः सजृदेवैर्वयोनाधीरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्चिनाध्वर्यु सादयतामिह  
त्वा सजृर्जतुभिः सजृर्विधाभिः सजृर्विधैर्देवैः सजृदेवैर्वयोनाधीरग्नये त्वा  
वैश्वानरायाश्चिनाध्वर्यु सादयतामिह त्वा ॥७॥

हे इसके । ऋतुओं और जल से प्रीतिपुक्त होना चाहिए अवस्था प्राप्त करने वाले जल प्रांत इत्यादि देवों के  
साथ प्रीतिपुक्त आपको अग्निदेव की प्रसन्नता के निर्माण प्रदान करते हैं । इस ऋतु के प्रधान अध्वर्यु अश्विनीकुमार  
आपको इस द्वितीय चिति में स्थापित करें । ऋतुओं और जल से प्रीतिपुक्त धनुषों के साथ प्रीतिपुक्त ज्ञानों अहित  
देवताओं के साथ प्रेम व्यवहार से पुनः आपको अग्निदेव की प्रति हेतु प्रदान करते हैं । इस कार्य के प्रधान अध्वर्यु  
अश्विनीकुमार आपको द्वितीय चिति में स्थापित करें । ऋतुओं, जल, रुद्रों जिन ज्ञानों के साथ देवताओं से प्रीतिपुक्त  
आपको अग्निदेव की प्रीतिपुक्त प्रसन्नता हेतु प्रदान करते हैं । इस कार्य के मुख्य अध्वर्यु अश्विनीकुमार आपको  
द्वितीय चिति में स्थापित करें । ऋतुओं और जल के जिन आतिथ्यस्य के जिन एवं ज्ञानों से प्रीतिपुक्त आपको  
अग्निदेव की सन्निधि हेतु प्रदान करते हैं । इस कार्य के प्रधान अध्वर्यु अश्विदेव आपको द्वितीय चिति में विराजमान  
करें । ऋतुओं से प्रेरित, ज्ञानों से प्रीतिपुक्त समस्त देवसमूह से प्रेमपुक्त, ज्ञानों से जिन आपको अग्निदेव की  
प्रसन्नता हेतु प्रदान करते हैं । प्रधान अध्वर्यु अश्विनीकुमार आपको इस द्वितीय चिति में विराजमान करें ॥७॥

६९६. प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि ज्ञानं मे धहि चक्षुर्यऽ उर्या विभाहि श्रोत्रं मे स्नोकथ ।  
अण्डं पिन्वीषधीर्जिह्वं द्विपादय चतुष्वात् पाहि दिवो वृष्टिमेरय ॥८॥

हे इसके । आप हमारे प्राण, अपान तथा ज्ञान की रक्षा करें । आप हमारे नेत्रों को स्वच्छ दृष्टि के योग्य बनाएँ  
तथा कानों को समर्थ बनाएँ । अपने अनुष्ठान से इस पृथ्वी को सिञ्चित करें । आप श्रोत्रियों में श्रेष्ठ तत्त्व बढ़ाएँ  
, मनुष्य को सुशिक्षित करें, नगरों चतुर्ध्व की रक्षा करें तथा धुनोक से उत्पत्ति हेतु सदैव प्रेरणा दें ॥८॥

६९७. भूर्वा वयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दो विहृष्मो वयोधिपतिश्छन्दो  
विहृक्षयो वयः वरमेष्टी छन्दो वस्तो वयो विहृक्ष छन्दो वृष्यवयो विहृक्ष छन्दः पुरुषो  
वयस्तान् छन्दो व्याधो वयोनाथ छन्दः सितश्चो वयश्छन्दः पृथ्वावयो वृहती छन्दः  
ऽ उक्षा वयः ककुप् छन्दऽ ऋजो वयः सतोवृहती छन्दः ॥९॥

गायत्री-रूप से प्रजापति ब्रह्मा ने इच्छाशक्ति द्वारा मूर्धन्य ब्राह्मण की उत्पत्ति की। अनिरुक्त छन्द से संरक्षण-युक्त क्षत्रिय का सृजन किया। जगत् को फेकन देने वाले परमेश्वर ने छन्दरूप हो वैश्य की रचना की परमेष्ठी विश्वकर्मा ने शक्ति द्वारा छन्दरूप शूद्र की उत्पत्ति की। एकपद नामक छन्द से परमेश्वर ने भेड़ को उत्पन्न किया। पंक्ति छन्द के प्रभाव से मनुष्य को उत्पन्न किया। विराट् छन्द के प्रभाव से प्रजापति ने व्याघ्र पशु को पैदा किया। अतिजगती छन्द से सिंह को प्रकट किया। बृहती छन्द से चारवहक पशुओं को उत्पन्न किया। ककुप् छन्द से प्रजापति ने उष्ण जाति को पैदा किया। सतीबृहती छन्द से भालू आदि पशुओं की रचना की ॥९॥

६९८. अनङ्गान्वयः पङ्क्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दश्चविर्वयस्त्रिष्टुप् छन्दो दित्यवाङ्मयो विराट् छन्दः पञ्चाविर्वयो गायत्री छन्दस्त्रिवत्सो वयऽऽष्णिक् छन्दस्तुर्चवाङ्मयोनष्टुप् छन्दो लोकं ता इन्द्रम् ॥९०॥

हे इष्टके ! पंक्ति छन्द होकर प्रजापति ने नत्तौर्द (बैल) को उत्पन्न किया। जगती छन्द से प्रजापति ने धेनु जाति की रचना की। त्रिष्टुप् छन्द से त्रिवि जाति को उत्पत्ति की। विराट् छन्द से दित्यवाट् (भारवाहक) पशुओं की रचना की। गायत्री छन्द से प्रजापति ने पंचावि जाति को उत्पन्न किया। अष्णिक् छन्द से त्रिवत्सा (तीन बत्सर वाले) पशु को पैदा किया। अनुष्टुप् छन्द की सम्मर्थ से प्रजापति ने तुर्ववाट् जाति उत्पन्न की। हे इष्टके आप लोक को सुरक्षित करें। सभी प्राणी ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव की प्रार्थना करते हैं ॥९०॥

६९९. इन्द्राग्नी अव्यथमानामिष्टकां दृष्टं इतं युवम्। पृच्छेन द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं च विषामसे ॥९१॥

हे इन्द्राग्नि देवशक्तियो ! आप दोनों पीढ़ा रक्षित होते हुए इष्टका को स्थिर करें। आप अपने उच्च पृष्ठ भाग से पृथ्वी, अन्तरिक्ष और सुलोक को व्याप्त करते हैं ॥९१॥

७००. विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृच्छे ज्येष्ठस्वतीं प्रथमस्वतीमन्तरिक्षं चच्छान्तरिक्षं दृष्टं हान्तरिक्षं मा हि दृष्टं सीः। विश्वस्मै प्राणायामानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय। वायुष्टेष्णिपतिस्तथा देवतयाङ्गिरस्वद् द्रुवा सीद ॥९२॥

हे इष्टके प्रजापति विश्वकर्मा विस्तार युक्त करते हुए आपको अन्तरिक्ष के उच्च स्थान पर विराजमान करें। आप सम्स्त विश्व के प्राण, अपान, व्यान, उदान आदि प्राणों को प्रतिष्ठा के लिए अन्तरिक्ष को धारण करें। उस अन्तरिक्ष को सुदृढ़ करें, अन्तरिक्ष को हानि न पहुँचाएँ। वायुदेव आपको अपने अति कल्याणकारी और प्रखर तेज से रक्षित करें। उन देवताओं द्वारा ब्रह्मण की हुई आप निश्चित ही अङ्गिरावत् सुस्थिर हों ॥९२॥

७०१. राज्ञ्यसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक् सम्राडसि प्रतीची दिक् स्वराडस्युदीची दिग्धिपत्यसि बृहती दिक् ॥९३॥

हे इष्टके ! आप तेजस्विता-सम्पन्न पूर्वदिशा रूप में सुलोचिit हैं, विशिष्ट प्रकार से तेजस्वरूप आप दक्षिण दिशारूप हैं, त्रेष्ठ विधि से विराजमान आप पश्चिमदिशा हैं, स्वयं प्रकटित आप उत्तरदिशा-रूप हैं, अति संरक्षण से युक्त आप अति विस्तृत ऊर्ध्वदिशा हैं, अर्थात् आप दिग्भाओं की अधिपत्यरूप में विराजमान हैं ॥९३॥

७०२. विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृच्छे ज्योतिष्मतीम्। विश्वस्मै प्राणायामानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ। वायुष्टेष्णिपतिस्तथा देवतयाङ्गिरस्वद् द्रुवा सीद ॥९४॥

हे इष्टके । ऋ-सृजेता आपको अन्तरिक्ष के उच्च स्थान में विराजित करें । आप वायव्यों के समस्त प्राण अपना, ध्यान की प्राप्ति हेतु सम्पूर्ण ज्योतिषों को प्रदान करें । अपने अधिकृति वायुदेव की सामर्थ्य से अङ्गिरावत् इस कार्य में सुस्थिर हों ॥१४॥

७०३. नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावतू अम्नेरन्तःश्लेषोसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापः  
ऽओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सवताः । ये अग्नयः समनसोन्तरा  
द्यावापृथिवी इमे । वार्षिकावतू अधिकल्पमानाः ऽ इन्द्रमिव देवाऽअभिसंविशन्तु तथा  
देवतयाङ्गिरस्वद् द्युवे सीदतम् ॥१५॥

श्रावण और भाद्रपद मास ये दोनों वर्षा ऋतु में सम्बन्धित हैं । हे इष्टके । आप प्रकाशमान अग्निदेव के बीच ज्वलनशीलता के रूप में स्थित हैं । हमारे उत्थान हेतु वे सुभ्रोक और पृथ्वीलोक सहयोग करें, जल और ओषधियाँ हमारा सहयोग करें । एकरूप कार्य में सलग्न अग्नियों उत्कर्ष प्रदान करें । ये द्युलोक और पृथ्वी के बीच में वर्तमान जो अग्निदेव हैं, वे वर्षा सम्पत्ती ऋतु को सम्बन्धित करते हुए इस कर्म को पूर्ण करें । जिस प्रकार देवतागण इन्द्रदेव की प्रशंसा करके उनके सहयोग में स्थित रहते हैं । हे इष्टके । आप उस प्रमुख देव द्वारा अङ्गिरा के समान स्थापित हों ॥१५॥

७०४. इच्छोर्जश्च शारदावतू अम्नेरन्तःश्लेषोसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापः  
ऽओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सवताः । ये अग्नयः समनसोन्तरा  
द्यावापृथिवी इमे । शारदावतू अधिकल्पमानाः ऽ इन्द्रमिव देवाऽअभिसंविशन्तु तथा  
देवतयाङ्गिरस्वद् द्युवे सीदतम् ॥१६॥

आश्विन और कार्तिक मास शरद ऋतु के दो मास हैं । हे ऋतु - रूप इष्टकओ । आप प्रज्वलित अग्नि के बीच में दृढ़ता के निमित्त स्थापित हैं । हमारी वृद्धि के लिए पृथ्वी, द्युलोक, जल और ओषधियाँ सहयोग करें । समान विचारों वाली सभी इष्टकार्य इस यज्ञ में उसी प्रकार एकत्रित हों, जिस प्रकार इन्द्रदेव के पास समस्त देवता पहुँचते हैं । हे इष्टके । आप इन देवताओं द्वारा अङ्गिरा की तरह सुदृढ़ होकर स्थापित हों ॥१६॥

७०५. आयुर्मे पाहि प्राण मे बाह्यपान मे पाहि ध्यान मे पाहि वक्षुर्मे पाहि भोग्र मे पाहि वाक्  
मे पिब मे जिन्वात्मान मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ ॥१७॥

हे इष्टके ! आप हमारी आयु को संरक्षित करें हमारे जीवनपान ग्रन्थ को संरक्षित करें । हमारे अपानवायु को रक्षित करें । हमारे ध्यानवायु को रक्षित करें । हमारे नेत्रों की रक्षा करें । हमारे दोनों कानों को सुरक्षित करें । हमारी वाणी को हर्षप्रदायक बनाएँ, हमारे मन को उन्नत विचारों से परिपूर्ण करें, हमारी आत्मा का कल्याण करें और हमारी तेजस्विता को प्रसर बनाएँ ॥१७॥

७०६. मा छन्दः प्रमा छन्दः प्रतिमा छन्दो असीवयश्छन्दः पङ्क्तिश्छन्दः ऽ उष्णिक् छन्दो  
बृहती छन्दोनुहृप् छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्दस्त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्दः ॥ १८ ॥

हे इष्टके ! पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक का मनन करते हुए हम आपको स्थापित करते हैं । हम असीवय छन्द, पङ्क्ति छन्द, उष्णिक् छन्द, बृहती छन्द, अनुहृप् छन्द, विराट् छन्द, गायत्री छन्द, त्रिष्टुप् छन्द एवं जगती छन्द का मनन करते हुए आपको स्थापित करते हैं ॥१८॥

७०७. पृथिवी छन्दोन्तरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दो  
मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दोजातान्छन्दोऽश्वश्छन्दः ॥१९॥

हे इष्टके । पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं घृतांक से संबन्धित छन्दों का मनन करके हम आपको स्थापित करते हैं । वर्षा देवता के, नक्षत्र देवता के, वायु देवता के, मन देवता के, कृषि देवता के, हिरण्य देवता के, गो देवता के, अन्ना देवता के एवं अन्न देवता के छन्द का मनन करते हुए हम आपको स्थापित करते हैं ॥१९॥

७०८. अग्निदेवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवतादित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ।

अग्नि देवता, वायु देवता, सूर्य देवता, चन्द्रमा देवता, आठो वसु देवता, ग्यारह रुद्रगण, बारह आदित्यगण, मरुद्गण, विश्वेदेवा, बृहस्पति देवता, इन्द्र देवता और वरुण देवता अदि सम्पूर्ण दिव्य शक्तिधाराओं का मनन करके हम इष्टका को स्थापित करते हैं ॥२०॥

७०९. मूर्धासि राह् ध्रुवासि धरुणा धर्यसि धरणी । आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा ॥२१॥

सर्वोच्च मूर्धाभाग पर स्थित हे इष्टके । आप स्वयं स्थिरतायुक्त होकर दूसरों को धारण करने की सामर्थ्य से युक्त हो । सम्पूर्ण प्रजा को धारण करने वाली धरती के सम्मान इस स्तूप को धारण करें । दीर्घ आयुष्य के लिए हम आपको स्थापित करते हैं, वैजस्यता को प्राप्ति हेतु आपको धारण करते हैं, कृषि उत्पादक अन्नादि की वृद्धि हेतु आपको स्थापित करते हैं और सुख के संबर्द्धन हेतु हम आपको स्थापित करते हैं ॥२१॥

७१०. धरित्री राह् चन्द्रासि धमनी ध्रुवासि धरित्री । इषे त्वोर्जे त्वा रथ्यै त्वा घोषाय त्वा लोकं ता इन्द्रम् ॥२२॥

धरित्री के समान अधिष्ठान, नियमानुसार गतिस्थित हे इष्टके । आप स्वयं नियमपूर्वक रहकर सभी का नियमानुसार संचालन करती हैं । हम अन्नप्राप्ति के लिए आपको स्वीकार करते हैं, हम पराक्रम हेतु आपको स्वीकार करते हैं, ऐश्वर्य संबर्द्धन हेतु आपको स्वीकार करते हैं तथा सभी के पोषण हेतु आपको स्वीकार कर स्थापित करते हैं । आप सभी लोकों की रक्षा करते हुए इन्द्र आदि देवताओं को सन्तुष्ट करें ॥२२॥

७११. आशुस्विह्वान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्तदशो वरुणः एकविंशः । प्रतूर्तिरष्टादश-स्तपो नवदशोऽभीवर्तः सवि २१शो वर्चो द्वाविं २२शः सम्भरणस्त्रयोविं २३ शो योनिश्चतुर्विं २४ शो गर्भाः पञ्चविं २५ शः ओजस्त्रिंशः क्रतुरेकत्रिंशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशः शो बभ्रुस्य चिष्टुषं चतुस्त्रिंशः शो नाकः षट्त्रिंशः शो विवर्तोऽष्टचत्वारिंशः शो धर्मं चतुष्टोमः ॥२३॥

हे इष्टके । त्रिकुट स्तोम में व्याप्त आपको इस स्थान में विरहित करते हैं । पन्द्रह दिन में घटने-बढ़ने वाली चन्द्र ज्योति का मनन करके आपको स्थापित करते हैं । प्रजापति सप्तदश स्तोम-स्वरूप है, इनका मनन करके आपको स्थापन करते हैं । धारण करने योग्य एकविंश स्तोम का मनन करके आपको स्थापित करते हैं । बारह माह, पौष ऋतुओं के साथ एक संवत्सर मितस्वर अठारह अंगों से युक्त प्रतूर्ति स्तोम का मनन करके आपको स्थापित करते हैं । तपःरूप उन्नीस स्तोम है, उन देवताओं का मनन कर आपको स्थापन करते हैं । सभी प्राणियों को आवृत करने से युक्त बारह महीने, सात ऋतु एवं संवत्सररूप बीस संख्या के साथ विंश अभीवर्त देवता का मननकर आपको स्थापित करते हैं । पल्लव जेब को देने वाले द्वाविंश स्तोम है, वच देवता का मनन करके इष्टका का स्थापन करते हैं । पत्नी प्रकार पुष्टिकारक त्रयोविंश स्तोम है, उस संभरण देवता का मनन करके आपको स्थापित करते हैं । प्रजा के उत्पादक चतुर्विंश स्तोम है, उस योनि देवता का मनन करके इष्टका को स्थापित करते हैं । त्रिणव ओजस्वी देवता को स्मरण कर इष्टका का स्थापन करते हैं । जो इक्ष्मीस अवयवयुक्त यज्ञ के लिए उपयुक्त एकत्रिंश स्तोम है, उस क्रतु देवता का मनन करके आपको स्थापित करते हैं । तैत्तिरीस अवयव से युक्त

प्रतिष्ठा के कारण रूप त्रयस्विंशत् स्तोम है, उस प्रतिष्ठा देवता का मनन करके आप को स्थापित करते हैं । सूर्य के निवास स्थल चतुस्विंशत् स्तोम है, उस बर्धविष्ट देवता का मनन करके इष्टका को स्थापित करते हैं । स्वर्ग को प्रदान करने वाले वद्विंश स्तोम है, उस देवता के लिए इष्टका को स्थापित करते हैं । साम के आवर्तनों से सम्पन्न अष्टवत्वारिंश स्तोम है, (३) किवर्त देवता का मनन करके इष्टका को स्थापित करते हैं । त्रिवृत्, पञ्चदश, सप्तदश, एकविंश इन चार स्तोमों का समूह चतुष्टोम सबको धारण करने की शक्ति से सम्पन्न है । चतुष्टोम धर्म देवता का मनन करके इष्टका को स्थापित करते हैं ॥२३॥

७१२. अग्न्येर्भागोसि दीक्षाया ऽ आधिपत्यं ब्रह्म स्पृतं त्रिवृत्स्तोम ऽ इन्द्रस्य भागोसि विष्णोराधिपत्यं क्षत्र्यस्पृतं पञ्चदश स्तोमो नृचक्षसां भागोसि चातुराधिपत्यं जनित्रं ऽ स्पृतं ऽ सप्तदश स्तोमो मित्रस्य भागोसि वरुणस्याधिपत्यं दिवो वृष्टिर्वात स्पृतऽ एकविंश स्तोमः ॥२४॥

हे इष्टके । आप आग्निदेव के अंगरूप हैं, दीक्षा का आधिपत्य आपके ऊपर है, अतः त्रिवृत् स्तोम द्वारा ब्राह्मणों की मृत्यु से रक्षा हुई । त्रिवृत् स्तोम का मनन करके आपको स्थापित करते हैं । आप इन्द्रदेव के अंगरूप हैं, आपके ऊपर विष्णुदेव का अधिकार है, पञ्चदश स्तोम से क्षत्रियों की मृत्यु से रक्षा हुई, अतः पञ्चदश स्तोम का मनन करके आपको स्थापन करते हैं । हे इष्टके ! आप मानवों के अच्छे-बुरे कर्मों के ज्ञाता देवताओं के अंगरूप हैं, आपके ऊपर चातुरा का अधिकार है, आपने सप्तदश स्तोम द्वारा वीरचर्म को मृत्यु से रक्षित किया, सप्तदश स्तोम का मनन करके आपको स्थापन करते हैं । हे इष्टके । आप मित्र के अंगरूप हैं, आपके ऊपर वरुणदेव का अधिकार है, एकविंश स्तोम द्वारा शुन्धेक से सम्बन्धित कर्ष और वायु मृत्यु से संरक्षित हुए हैं, अतः एकविंश स्तोम देवता का मनन करके आपको इस स्थापित करते हैं ॥२४॥

७१३. वसूनां भागोसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पाम् स्पृतं चतुर्विंश स्तोमऽ आदित्यानां भागोसि भरुतामाधिपत्यं गर्भा स्पृताः पञ्चविंश स्तोमोदित्यै भागोसि पूष्णऽ आधिपत्यमोज स्पृतं त्रिणव स्तोमो देवस्य सवितुर्भागोसि बृहस्पतेराधिपत्यं ऽ समीचीर्दिश स्पृताश्चतुष्टोम स्तोमः ॥२५॥

हे इष्टके ! आप वसुगणों के भाग हैं, रुद्रों का आपके ऊपर अधिकार है, आपने चतुर्विंश स्तोम द्वारा पशुओं की मृत्यु से संरक्षित किया है, चतुर्विंशस्तोम देवता का मनन करते हुए आपको स्थापित करते हैं । हे इष्टके ! आप आदित्यगण के भाग हैं, भरद्वाजों का आप पर आधिपत्य है, पञ्चविंश स्तोम द्वारा गर्भस्मित प्राणियों की रक्षा हुई, पञ्चविंश स्तोम देवता का मनन करके आपको इस स्थान से विराजित करते हैं । हे इष्टके ! आप अदिति के भाग हैं, पूषादेव का आपके ऊपर पूर्ण अधिकार है, त्रिणव-स्तोम द्वारा आपने प्रजाओं के ओज को संरक्षित किया है, इस त्रिणवस्तोम देव का मनन करके आपको स्थापित करते हैं । हे इष्टके ! आप सवितरिक सवितादेव के अङ्ग हैं, आप पर बृहस्पतिदेव का अधिकार है । आपने चतुष्टोम स्तोम द्वारा सभी मनुष्यों के विचारण-योग्य दिशाओं को रक्षित किया है, उस चतुष्टोम स्तोम देव का मनन करके आप को स्थापित करते हैं २५ ॥

७१४. यथानां भागोऽथयवानामाधिपत्यं प्रजा स्पृताश्चतुष्पत्वारिंश स्तोमऽ ऋभूणां भागोसि विश्वेषां देवानामाधिपत्यं धृतं ऽ स्पृतं त्रयस्विंश स्तोमः ॥२६॥

हे इष्टके ! आप शुक्लत्वष्ट की त्रिवि के भाग हैं, आपके ऊपर कृष्णपक्षीय त्रिवि का अधिकार है, आपने चत्वारिंशत् स्तोम द्वारा प्रजा की मृत्यु-मुक्ति से रक्षित किया, उस देव का मनन करके आपको इस स्थल पर स्थापित करते हैं । हे इष्टके ! आप ऋतुओं के भाग हैं, आपके ऊपर सम्पन्न देव-समूह का स्वामित्व है, त्रयस्विंशत् स्तोम द्वारा आपने प्राणिमात्र की मृत्यु से बचाया है । इस देव का मनन करके आपको इस स्थान पर स्थापित करते हैं ॥२६॥

७१५. सहस्र सहस्रस्य हैमन्तिकावत् अग्नेरन्तःस्नेहोसि कल्पेतां छावापृथिवी कल्पन्तामापऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः बुधश्चम ज्यैष्ठ्याय सवताः । ये अग्नयः समनसोन्नरा छावापृथिवी इमे । हैमन्तिकावत् अभिकल्पमानऽ इन्द्रमिव देवाऽ अभिसंविशन्तु तथा देवतयाद्विरस्वद् भुवे सीदतम् ॥२७॥

मार्गशीर्ष और पौष वस हेमन्त ऋतु के अवसर हैं । वे दोनों अग्निदेव के अन्ता में स्थित होकर सुदृढ़ता के लिये निपुण किये गये हैं । अग्निवसन करके हुए इस यादवों के उत्थानरतु वे छावापृथिवी अनुसृत कर । जल और ओषधियाँ इमें आरोग्य प्रदान करें । सन्तान उत्पत्ति में मनुष्यरूपित, अनेक नाम वाली अग्निवाँ उत्तम प्रकार से हमारी सहायता करें । ये युत्सेक और बुधवी के बीच में वर्तमान सपान वन वान्से जो अग्निवाँ है, वे हेमन्त ऋतु को सम्पादित करती हुई, उसी प्रकार इस यज्ञ क्रम के आश्रित हैं जिस प्रकार देवता इन्द्रदेव की आश्रना करते हुए आश्रित हैं । हे इन्हें । इस प्रख्यात देवता द्वारा आगरावत् सुदृढ़ प्रकार आप आनन्दित हों ॥२७॥

७१६. एकपास्तुवत प्रजा अधीवन्त प्रजापतिरधिपतिरासीत् तिसुधिरस्तुवत ब्रह्मासुज्यत ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत् पञ्चधिरस्तुवत धृताम्बसुज्यन्त धृतानां पतिरधिपतिरासीत् सप्तधिरस्तुवत सप्तधिरस्तुवन्त धृताधिपतिरासीत् ॥२८॥

प्रजापति ब्रह्मा ने एक पावने से प्रार्थन की जिससे दस परमेस्वर ने अवेतन प्रजा को उत्पन्न किया, प्रजापति ही सबके अधिपति हुए । प्राण, अपान और व्यान इन तीन शक्तियों द्वारा ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई, इन तीनों द्वारा उसकी स्तुति की गई, ब्रह्मणस्पति उस सृष्टि के अधिपति हुए । पाँच प्राणों द्वारा परमेस्वर की स्तुति की गई । उसने पञ्चभूतों का निर्माण किया । उन पञ्चभूतों के स्वामी परमात्मा ही सबके अधिपति हुए । और, नाभिकर, जिह्वा, नेत्र, इन पाँचों के सहयोग से सप्तार्थ प्रकट हुए, जगत् को चारों ओर घेरने वाले परमेस्वर ही उनके अधिपति हुए ॥ २८ ॥

७१७. नवधिरस्तुवत पितरोसुज्यन्तादितिरधिपत्यासीदेकादशधिरस्तुवत ऋतवो सुज्यन्तार्तवा अधिपत्याऽ आसँस्योदशधिरस्तुवत मासऽ असुज्यन्त संवत्सरो धिपतिरासीत् पञ्चदशधिरस्तुवत क्षत्रधिरस्तुवन्तोधिपतिरासीत् सप्तदशधिरस्तुवत ग्राम्याः पशवोसुज्यन्त बृहस्पतिरधिपतिरासीत् ॥२९॥

जिस परमेस्वरने पितरों को संरक्षकस्वरूप में उत्पन्न किया, देवताओं आदिति जिसकी अधिपति हुई, उसकी नवप्राणों से स्तुति की गई, जिससे सधन्वादि ऋतु उत्पन्न हुई वन्त जिसके द्वारा ऋतुओं के गुण अपने-अपने विषय के अधिपति होते हैं, उनकी दस प्राणों और ग्यारहवीं आत्मा से प्रार्थन की गई । जिसने सभी मासों की रचना की और जो पंद्रह तिथियों के साथ संक्रमणकाल का अधिपति निर्धारित किया गया है, उसको दस प्राण, ग्यारहवीं जीवात्मा और दो पादों से स्तुति की गई । जिसने राज्य पत्र सत्त्विकवत् को सृजित किया है, उसकी दस पैर की अंगुलियों, दो जङ्घाओं, दो कानुओं और एक शीर्ष तथा इसके ऊपरी अङ्ग (नेत्र, जिह्वा) इन पंद्रहों से स्तुति की गई, जिसने वैश्यवर्ग के अधिकारी की रचना की और क्षत्र के मन्त्रादि पशुओं की रचना की । उसकी दस पैर की अंगुलियों, घुटने के नीचे एवं ऊपर के चर जोड़, दो पैर तथा सवत्स शक्ति के बीच के इन्द्र से स्तुति की गई ॥२९॥

७१८. नवदशधिरस्तुवत शुद्रार्थासुज्येतामहोरात्रे अधिपत्नी आस्तामेकविंश ज्ञत्यास्तुवतैकजफः पशवोसुज्यन्त वरुणोधिपतिरासीत् त्रयोविंश ज्ञत्यास्तुवत क्षुद्राः पशवोसुज्यन्त पूषाधिपतिरासीत् पञ्चविंश ज्ञत्यास्तुवतारण्याः पशवोसुज्यन्त वायुरधिपतिरासीत् सप्तविंश ज्ञत्यास्तुवत छावापृथिवी ध्वेता वसवो रुद्राऽ आदित्याऽ अनुव्यार्वस्तऽ एवाधिपतवऽ असन् ॥३०॥



हाथ की दस अंगुलियाँ और शरीरिक नौ प्राणों इन उन्नीस से स्तुति की गई है। इन उन्नीस आन्तरिक एवं बाहरी अंगों की तरह ही शुद्ध और अपूर्ण (अथवा सेव्यभाव्य और नष्टानिष्ठ) का प्रादुर्भाव हुआ, उनके रात्रि-दिवस स्वामी हुए। हाथों की दस एवं पैरों की दस अंगुलियाँ तथा एक आत्मा शरीर में विद्यमान है, इन से परमात्मा की महिमा का गुणानुवाद हुआ। उन अङ्गों की शक्तियों से धुद्ध पशुओं का प्रादुर्भाव हुआ। उन सभी के अधिपति पूषा अर्थात् अन्न-प्रदाता भूमि है। हाथों और पैरों की दस-दस अंगुलियाँ, दो भुजाएँ, दो पैर और पच्चीसवाँ आत्मा — ये पच्चीस देह के अवयव हैं। इनसे विधाता की महिमा का गान किया गया। उन अवयवों से जंगली पशुओं की रचना हुई, इन सबका स्वामी वायु है। हाथों और पैरों की दस-दस अंगुलियाँ, दो भुजाएँ, दो घुटने एवं दो पैर तथा सत्प्राणों आत्मा इन घटकों से परमेश्वर के कर्त्तव्य कोशस की वर्णन करते हुए महिमा का गुणगान हुआ। इनके द्वारा ही देवलोक और पृथ्वी दोनों संस्थापना हैं, उनमें ही आठ वसु, ग्यारह रुद्र (अर्थात् प्राण) और बारह मास मत्तीप्रकार रहते हैं, वही उन दोनों अवयवों और भूलोक के अधिपति और पालक हुए। ३०

७१९. नवविंशशत्यास्तुवत् कनस्यतयोसुज्यन्त सोमोधिपतिरासीदेकप्रि २३ शतास्तुवत्  
प्रजा ५ असुज्यन्त यक्षधायवाक्षाधिपतय ५ आसीत्यसि २३ शतास्तुवत् धृतान्यशाम्यन्  
प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासीत्सलोक तत्र ५ इन्द्रम् ॥३१॥

शरीर में हाथों और पैरों की दस-दस अंगुलियाँ और नौ प्राण, इस प्रकार उन्नीस घटक (शक्तियाँ) बिस्व को रच रही हैं, उससे विधाता की स्तुति की गई। उन घटकों से ही कनस्पतियों को विनिर्मित किया गया है। सोम उनके अधिपति हैं। हाथ-पैर की दस-दस अंगुलियाँ, दस प्राण, इकतीसवाँ जीवात्मा इन घटक शक्तियों से सम्पूर्ण शरीर बने हैं, इन शक्तियों से परमात्मा के कोशस की महिमा का गुणगान किया गया। इनसे ही प्रजा का सृजन हुआ है। पुरुष और स्त्रियाँ इनके स्वामी हैं। हाथ-पैरों की दस-दस अंगुलियाँ, दस प्राण, दो वरण और तीसरीसवाँ जीवात्मा इन अवयवों से सम्पूर्ण शरीरों की रचना हुई, इन शक्तियों द्वारा परमपिता परमेश्वर की स्तुति की गई। उनसे ही समस्त प्राणीगण सुखी हुए। परम पट-स्थित प्रजापति परमेश्वर ही सबके अधिपति हुए। सभी ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव की प्रार्थना करते हैं। ॥३१॥

### —ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— ठराना काण्व १-६ । विश्वेदेव ७-३१ ।

देवता— अश्विनीकुमार १-५ । ऋतु ६ । विश्वेदेव ७ । वायु ८ (जल) ८ । लिंगोक्त ९, १०, १७-२०, २८-३१ । इन्द्राग्नी, स्वयमावृष्णा ११ । वायु १२, १४ । दिशार्थ १३ । ऋतु १५, १६, २७ । प्राण २१, २२ । त्रिवृदाय लिङ्गोक्त २३ । इष्टका लिङ्गोक्त २४-२६ ।

छन्द— त्रिष्टुप् १ । निचत् ब्राह्मी बृहती २ । विराट् ब्राह्मी बृहती ३ । पुरिक् ब्राह्मी बृहती ४ । पुरिक् शक्वरी ५ । निचत् उत्कृति ६ । पुरिक् प्रकृति स्वराट् पंक्ति, निचत् आकृति ७ । पुरिक् अतिजगती ८, १८ । निचत् ब्राह्मी पंक्ति, स्वराट् ब्राह्मी बृहती ९ । निचत् अष्टि १० । पुरिक् अनुष्टुप् ११ । पुरिक् विकृति १२ । विराट् पंक्ति १३ । स्वराट् उत्कृति १५ । उत्कृति १६ । विराट् अतिजगती १७ । पुरिक् अतिजगती १८ । आशी जगती १९ । पुरिक् ब्राह्मी त्रिष्टुप् २० । निचत् अनुष्टुप् २१ । निचत् अष्टि २२ । पुरिक् ब्राह्मी पंक्ति, पुरिक् अतिजगती २३ । पुरिक् विकृति २४ । निचत् आकृति २५ । पुरिक् अतिजगती, पुरिक् ब्राह्मी बृहती २७ । निचत् विकृति २८ । आशी त्रिष्टुप्, ब्राह्मी जगती २९ । स्वराट् ब्राह्मी जगती, ब्राह्मी पंक्ति ३० । स्वराट् ब्राह्मी जगती ३१ ।

॥ इति चतुर्दशोऽध्यायः ॥

## ॥अथ पञ्चदशोऽध्यायः ॥

७२०. अग्ने जातान् प्र णुदा न सपत्नान् प्रत्यजातान् नुद जातवेदः । अधि नो बृहि सुमना  
ऽ अहेडँस्तव स्याम शर्म स्त्रिवरूचऽ उज्जो ॥१॥

हे जातवेदा अग्ने ! आप हमारे प्रकट हुए किन्नेहियों को भरोप्रकट विनष्ट करें और प्रकट होने वाले शत्रुओं का अवरोध करें । हमारा अपमान न करके हर्षित मन से हमें अभ्यर्चन कर प्रदान करें । हम आपके श्रेष्ठ सुख के उत्पादक आश्रय में स्थित रहकर तीनों मण्डलों में (आग्नेय, हविर्धान व सटीमण्डप) वरुण कार्य सम्पन्न करें ॥ १ ॥

७२१. सहसा जातान् प्रणुदा न सपत्नान् प्रत्यजाताब्जातवेदो नुदस्व । अधि नो बृहि  
सुमनस्यमानो वयं ऽ स्याम प्र णुदा न सपत्नान् ॥२॥

हे जातवेदा अग्ने ! हमारे शत्रुओं का सब प्रयत्न से विध्वंस कर । पवित्र में संभावित रिपुओं को भी नष्ट करें । आप श्रेष्ठ अन्तःकरण से हमें मार्गदर्शन दें जिससे हम सभी शत्रुओं का विनाश कर सामर्थ्यवान् बन सकें ॥ २ ॥

७२२. षोडशी स्तोमऽ ओजो द्विविणं चतुश्चत्वारि ऽ ऽ स्तोमो वचो द्विविणम् । अग्नेः  
पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विषे अधि गुणन्तु देवाः । स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्ये  
प्रविणा यजस्व ॥३॥

हे इष्टके । सोलह कलाओं से सम्पन्न स्तोम का ध्यान कर आपको स्थापित करते हैं । वे स्तोम पराक्रमयुक्त सम्पदा देते हैं । चौषासीस शक्तियों से युक्त स्तोम का मनन कर आपको स्थापित करते हैं । वे तेज और शक्ति प्रदान करते हैं । आप रक्षक नाम से पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान अर्गमदेव को पूर्णता प्रदान करते हैं । पूर्ण शक्ति को देवसमूह द्वारा प्रशंसित किया जाता है । सभी शक्तियों और बलशाली पुरुषों से सम्मानित होकर तेजस्विता को धारण करके आप इस स्थान पर किराजमान हों । आप हमारे लिए उपयोगी ऐश्वर्य प्रदान करें ॥ ३ ॥

७२३. एवश्छन्दो वरिवश्छन्दः शम्भूश्छन्दः परिभूश्छन्दऽ आच्छच्छन्दो मनश्छन्दो  
व्यच्छच्छन्दः सिन्धुश्छन्दः समुद्रश्छन्दः सरिरं छन्दः ककुच्छन्दस्त्रिककुच्छन्दः काव्यं छन्दो  
अङ्कुषं छन्दोक्षरपङ्क्तिश्छन्दः पदपङ्क्तिश्छन्दो विहारपङ्क्तिश्छन्दः क्षुरोभजश्छन्दः ॥४॥

हे इष्टके । प्राणियों के लिए विचरण करने योग्य पृथ्वी प्रभाकण्डल युक्त अन्तरिक्ष, स्वर्गीय आनन्द के प्रदाता ध्रुलोक एवं मंत्र ओर व्याप्त दिशाओं का मनन करते हुए आपको स्थापित करते हैं । प्रजापति का सङ्कल्प मन की मनन शक्ति, समस्त संसार में व्याप्त गुणयुक्त सूर्य, नाडियों द्वारा शरीर में संव्याप्त प्राण-वायु, समुद्र के समान गम्भीर मन तथा मुख से निःसृत वाणी का मनन करके आपको स्थापना करते हैं । प्राण एवं उदान का मनन कर आपको स्थापित करते हैं । प्रकाश स्वरूप वेदशक्ती, कुटिल भाषों से भाँ प्रवाहित होने वाले जल, पृथ्वी, आकाश, पाताल, दिशाएँ एवं देदीप्यमान विद्युत् का मनन करते हुए आपको स्थापित करते हैं ॥४॥

७२४. आच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दः संयच्छन्दो वियच्छन्दो बृहच्छन्दो रथन्तरश्छन्दो  
निकायश्छन्दो विवधश्छन्दो गिरश्छन्दो भजश्छन्दः स ऽ स्तुच्छन्दो नुष्टुच्छन्दऽ एवश्छन्दो  
वरिवश्छन्दो वयश्छन्दो वयस्कृच्छन्दो विषर्वाश्छन्दो विशालं छन्दश्छदिश्छन्दो दूरोहणं  
छन्दस्तन्द्रं छन्दो अङ्गाङ्गं छन्दः ॥५॥



(के अंग-अवयवों) को पृष्ट बनाएँ। अध्ययन (की प्रतिष्ठा) के लिए, अनुभव-सम्पन्नो के सध्यम से अध्ययन से प्रीति करें तेजस्विता (की प्रतिष्ठा) के लिए विजयसोत्सव के माध्यम से (बाधाओं को जीतकर) तेजस्विता को पृष्ट करें ॥३॥

**७२७. प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुषदस्यनुषदे त्वा सम्पदसि सम्पदे त्वा तेजोसि तेजसे त्वा ॥८॥**

हे इष्टके ! आप जीवन के मूलाधार (अन्नस्वरूप) हैं अन्न के लिए आपको स्वीकृत करते हैं। आप विचार रूप हैं, अतः बुद्धि के लिए आपको स्थापित करने हैं। आप सम्पत्ति रूप हैं अतः सम्पत्ति के लिए आपको उपलब्ध करते हैं। आप मनुष्य के शरीर में तेजस्वरूप हैं अतः तेजस्विता के लिए आपको प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥

**७२८. त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा प्रवृदसि प्रवृते त्वा विवृदसि विवृते त्वा सवृदसि सवृते त्वा क्रमोऽस्याक्रमाय त्वा संक्रमोसि संक्रमाय त्वोत्क्रमोऽस्युत्क्रमाय त्वोत्क्रान्तिरस्युत्क्रान्त्यै त्वाधिपतिनोर्जोर्जं जिन्य ॥९॥**

हे इष्टके ! आप कृषि, बर्षा और बीज से उत्पन्न होने वाले अन्न की भाँति हैं, अन्न-बुद्धि के लिए आपको स्थापित करते हैं। आप सत्कर्म-प्रवर्तक हैं, अतः सत्कर्म की प्रवृत्तियाँ उत्पादित करने के लिए आपको स्थापित करते हैं। आप विशिष्ट विधि से कर्म के सम्पादक हैं अतः एम शुचिकर्मों के लिए आपको विराजित करते हैं। आप श्रेष्ठ आचरण से युक्त हैं, अतः उत्तम चरित्र के लिए आपको स्थापित करते हैं। आप बुद्धि-विचारक अन्न की भाँति हैं अतः भूख मिटाने के लिए आपको स्थापित करते हैं। आप श्रेष्ठ (विधि से) प्रगतिशील हैं, अतः श्रेष्ठ प्रगति के लिए आपको स्वीकारते हैं। आप उन्नत ज्ञान के प्रवर्तक हैं अतः ज्ञानिकारी परिवर्तन के लिए आपको स्थापित करते हैं ॥९॥

**७२९. राश्वसि प्राची दिग्वसवस्ते देवाऽअधिपतयोग्निर्हेतीनां प्रतिघर्ता त्रिवृत् त्वा स्तोमः पुथिव्या १४ अयत्वाज्यमुक्थमव्यधायै स्तभ्नातु रथन्तरं१५ साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऽन्नयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो यात्रया वरिष्णा प्रथन्तु विघर्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥१०॥**

हे इष्टके ! आप पूर्व दिशा को स्थापित हैं अथवा आपके पालक हैं। अग्निदेव समस्त अग्निष्टों के निवारक हैं त्रिवृत् स्तोम आपको भूपर स्थापित करें। आज्य और उक्थ आपको सुदृढ़ करने वाले हैं। रथन्तर साम अन्तरिक्षलोक में प्रतिष्ठा हेतु आपको दृढ़ करें। सर्वप्रथम उत्पन्न हुए अग्निगण देवलोक में श्रेष्ठ देवों के साथ आपकी स्थिर करें। विशिष्ट रीति से धारणकर्ता अधिपति भी आपको निश्चरित करें। इस प्रकार सम्पूर्ण वसवादि देवता एक साथ मिलकर यात्रकों को स्वर्ग के मुख में लाभान्वित करें ॥१०॥

**७३०. विराडसि दक्षिणा दिग्ब्राह्मे देवाऽअधिपतयऽइन्द्रो हेतीनां प्रतिघर्ता पञ्चदशस्त्वा स्तोमः पुथिव्या२४ अयत् प्र उगमुक्थमव्यधायै स्तभ्नातु बृहत्साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऽन्नयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो यात्रया वरिष्णा प्रथन्तु विघर्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥११॥**

हे इष्टके ! आप विशेषरूप से व्यापक दक्षिण दिग्ब्राह्म हैं रुद्रगण आपके पालक हैं इन्द्रदेव विघ्न-विनाशक हैं पञ्चदश स्तोम आपको पृथ्वी में प्रतिष्ठित करें। प्रउग नामक उक्थ स्थिरता के लिए आपको सुदृढ़ बनाएँ बृहत्साम अन्तरिक्ष में आपको स्थापित करें। अग्निगण दिग्वलोक में देवीगुणों में आपको प्रतिष्ठित करें इस प्रकार वे वसु अदि देवता एकत्रित होकर यात्रकों को सुख-स्वरूप स्वर्गलोक में पहुँचाएँ ॥११॥

७३१. सम्राडसि प्रतीची दिगादित्यास्ते देवाऽ अधिपतयो वरुणो हेतीनां प्रतिधर्ता सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्या ऽऽश्रयतु मरुत्वतीयमुखश्चमव्यधायै स्तभ्नातु वैरूप ऽऽ साम प्रतिष्ठित्याऽ अन्तरिक्षऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिष्णा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिः ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादधन्तु ॥१२॥

हे इष्टके । आप विशेष दीप्तियुक्त पात्रम दिशा के समान है, आदित्यगण आपके पालनकर्ता हैं वरुणदेव दुःखों के निवारणकर्ता हैं, सप्तदशस्तोम आपको ऋषि वर्गनिष्ठ करते । मरुत्वं उक्थ्य आपको दृढ़ता के लिए स्थापित करें । वैरूप साम अन्तरिक्ष में दृढ़ता के निमित्त आपको स्थापित करें । मृष्टि क्रम में प्रथम जादुपुंति अधिगण आपको देवलोक में स्थापित करें । इस प्रकार सम्पूर्ण यमु आदि देवता याजकों को मुखस्वरूप स्वर्गलोक में पहुँचाएँ ॥१२॥

७३२ स्वराडस्युदीची दिङ्मरुतस्ते देवाऽ अधिपतयः सोमो हेतीनां प्रतिधर्तैकवि ऽऽ शस्त्वा स्तोमः पृथिव्या ऽऽश्रयतु निकेत्वल्पमुखश्चमव्यधायै स्तभ्नातु वैराजऽऽ साम प्रतिष्ठित्याऽ अन्तरिक्षऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिष्णा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिः ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादधन्तु ॥१३॥

हे इष्टके । आप स्वयं दीप्तिमान् होने वाले उन्नत दिशा रूप है मरुत्वं देवगण आपके प्रियमो हैं सोम व्यधियों के निवारण करने वाले हैं, एकविंश स्तोम आपको ऋषयों में विरजित करें, मुद्गदृता के लिए आपको निकेत्वल्प नामक हाल (स्तोत्र) में स्थित करें, वैराज स्तोम अन्तरिक्ष में आपको भूमि करें । प्रथम उत्पन्न अधिगण सम्पूर्ण दिव्यलोक में उत्तम देवी गुणों को संख्यापन करें । अभीष्ट निष्पादनकर्ता और ये मुख्य स्थापितकर्ता देवता भी आपको विस्तारित करें । इस प्रकार वे सम्पूर्ण वसवर्ग देवता याजकों को एक-पत्र होकर मुखस्वरूप ऊपर स्वर्गलोक में अवश्य ही पहुँचाएँ ॥१३॥

७३३. अधिपत्यसि बृहती दिग्बिम्बे ते देवाऽ अधिपतयो बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्ता त्रिणवप्रथमि ऽऽ जौ त्वा सोमौ पृथिव्या ऽऽश्रयतां वैधदेवाग्निमास्ते उक्थ्ये अव्यधायै स्तभ्नीता ऽऽ शाक्यरदैवते सामनी प्रतिष्ठित्याऽ अन्तरिक्षऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिष्णा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिः ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादधन्तु ॥१४॥

हे इष्टके । आप पालनशक्ति से युक्त, विशुद्ध, ऊर्ध्व दिशा रूप है सब देवशक्तियों आपकी पालक हैं, बृहस्पति दुःखों के निवारणकर्ता हैं, त्रिणवप्रथमि स्तोम भूमि में आपको प्रतिष्ठित करें । वैधदेव अग्निदेव मरुत्वं देव सम्बन्धी उक्थ्य (स्तोत्र) सुस्मिता के लिए आपको स्थापित करें । शाक्यर और रैवत दोनों साम आपको अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित करें । प्रथम उत्पन्न अधिगण दिव्यलोक में उत्तम देवी गुणों को संख्यापन करें । अभीष्ट कार्य सम्पन्न करने वाले और प्रधान (स्थापितकर्ता) देवता भी आपको विस्तारित करें । इस प्रकार वे सभी यमु आदि देवता एकमत होकर, मुखस्वरूप उत्त्वस्थ स्वर्गलोक में वसमान को अवश्य ही प्रतिष्ठित करें ॥१४॥

७३४. अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सु रथीजः सेनानीग्रामण्यौ । पुञ्जिकस्थला च कनुस्थला चाप्सरसौ दक्षिणः पशवो हेतिः पौरुषेयो वधः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नो वन्तु ते नो वृद्धयन्तु ते यं द्विष्यो यस्तु नो द्वेष्टि तमेवां जम्भे दध्मः ॥१५॥

सूर्यदेव की भाँति मुनहत्ता आभा से युक्त देदीप्यमान अग्निदेव पूर्व दिशा में इष्टक के रूप में प्रतिष्ठित है । उन अग्निदेव के रथ विद्या में दक्ष और युद्ध में कुशल सेनापति और वायनायक दोनों वसन्त ऋतु हैं । सत्यं कल्प और रूपादि की प्रेरक दिशा और उपदिशा अपराजित के रूप में है । स्वाग्रहि हिंसक पशु ही इनके अयुध हैं ।

लड़ मरना ही इनका वध है । इस प्रकार उन अग्निदेव को सभी सहजगणियों के साथ नमन करते हैं वे सभी हमारी रक्षा करते हुए सुख प्रदान करें । जो हमारे से प्रीतिरहित हैं और हमसे द्वेष करते हैं, उन सभी को हम अग्नि की ज्वालारूपी दाढ़ों में डालते हैं ॥१५॥

७३५. अथ दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य रथस्यन्ध रथेचित्रं सेनानीग्रामण्यौ । येनका च सहजन्या चाप्सरसौ यातुमाना हेती रक्षा च सि प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेवां जम्भे दध्मः ॥१६॥

दक्षिण दिशा में सभी कर्मों के निर्वाहक-विश्वकर्मा-नाम के रूप में यह इष्टक स्थापित है । रथ में बैठकर शब्द करते हुए शासक, सेनापति और यन्त्र रथक औष्यकृत् रूप हैं । येनका (सबके द्वारा माननीय) और सहजन्या (सर्वसाधारण के साथ सामान्यत्व भावना में स्थित) में दो अप्सराएँ हैं, विश्विध प्रकार की आसुरी वृत्तियाँ ही इनके आयुध तथा अति क्रूर राक्षस इनके तीक्ष्ण शस्त्र हैं । इस प्रकार उस कामरूप इष्टक को सम्पूर्ण परिवारको के साथ नमन करते हैं । वे सभी हमें सुखी करें वे सभी हमारी भूखा करें जो हमसे प्रीतिरहित हैं और जो हमसे द्वेषभावना से ग्रसित हैं, उन्हें इनकी वेगरूपी दाढ़ों में डालते हैं, अर्थात् इनका विध्वंस करते हैं ॥१६॥

७३६. अथ पश्चाद्विश्वव्यास्तस्य रथप्रोक्तासमरथश्च सेनानीग्रामण्यौ । प्रप्तोचन्ती चानुप्तोचन्ती चाप्सरसौ व्याघ्रा हेतिः सर्पाः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेवां जम्भे दध्मः ॥१७॥

सम्पूर्ण विश्व के प्रत्यक्षक अदित्यरूप इष्टक पश्चिम दिशा में स्थापित है । मृद में धैर्यशाली तीर और महारथी इसके सेनानायक और यामरथक वर्णाकृत हैं । अपने वेत्ताधन्यास द्वारा सभी के मन को लुभाने वाली, मुग्ध होने वाले व्यक्ति को पुनः मोहित करने वाली प्रप्तोचन्ती और अनुप्तोचन्ती दो अप्सराएँ हैं और व्याघ्रादि पशु शस्त्र हैं तथा सर्पादि तीक्ष्ण शस्त्र हैं, उन सबके लिए नमस्कार है । वे सब हमारे लिए सुखप्रद हों, वे सब हमारी रक्षा करें । वे सभी, जिनसे हम प्रीतिरहित हैं और जो हमारे लिए द्वेषभावना से ग्रसित हैं, उन्हें इनकी दाढ़ों में डालते हैं, अर्थात् उन्हें विनष्ट करते हैं ॥१७॥

७३७. अयमुत्तरास्त्रयसुस्तस्य ताक्ष्यश्चारिष्ट्नेमिश्च सेनानीग्रामण्यौ । विशाची च वृताची चाप्सरसावापो हेतिर्वातः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेवां जम्भे दध्मः ॥१८॥

यह उत्तर दिशा में प्रतिष्ठित इष्टक धन से सिद्ध होने वाले वज्र के रूप में है । उनके अन्तरिक्ष में तीक्ष्ण पक्षरूपी आयुधों का विस्तार करने वाले और विचित्र-जलक अपराजेय हथियारों से युक्त सेनापति और वायु-पालक सरद क्रतु हैं, उसकी विश्व द्वारा वर्न्दन तथा वृत्त-धक्षण करने वाली विशाची और वृताची दो अप्सराएँ हैं, जल जिनके शस्त्र हैं तथा वायु तीक्ष्ण आयुध हैं । उन सबके लिए हमारा वन्दन है । वे सभी हमें सुखी करें और हमारी रक्षा करें । वे सब जिनसे हम प्रीतिरहित हैं और जो हमसे द्वेष करते हैं, उनको इनकी दाढ़ों में डालते हैं ॥१८॥

७३८. अयमुपर्यर्वाग्वसुस्तस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्यौ । उर्वशी च पूर्वचित्तिष्ठाप्सरसाववस्फूर्जन् हेतिर्विद्युत्प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेवां जम्भे दध्मः ॥१९॥

ऊपर मध्य दिशा में वर्तमान इष्टक पर्यन्तकृत् है । उसके विजैत और समर्थ सेनायुक्त सेनानायक और ग्राम-पालक हेमन्त क्रतु हैं, जिनके विस्तृत काय को नियंत्रित करने वाली एवं अतिरूपवती होने से व्यक्तियों के मनों को वशीभूत करने वाली उर्वशी और पूर्वविति दो अप्सराएँ हैं । भयानक गर्जन जिनका शस्त्र है, विद्युत्,

तीक्ष्ण आयुध हैं, उन सभी के लिए नमस्कार हैं । वे सभी हमें सुखी बनाएँ, वे सभी हमें रक्षित करें, वे सब जिनसे हम द्वेष रखते हैं और जो हमसे द्वेष-भाव से क्रुशित हैं उन्हें इनके दाढ़ों में डाल कर समाप्त करते हैं ॥ १९ ॥

**७३९. अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पत्तिः पृथिव्याऽअयम् । अपा शंस रेता शंसि जिन्वति ॥२०॥**

स्वर्ग के समान मूर्धन्य स्थान में विराजमान वे अग्निदेव जैल के कंचे की भाँति ऊँचे हैं । यही अग्निदेव भूमि के पालक, रक्षक और अधिपति हैं । वे जल की रस रुचि शक्तियों को पोषित करते हैं ॥ २० ॥

**७४०. अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतितनस्पतिः । मूर्धा कवी रथीणाम् ॥२१॥**

त्रिकालदर्शों वे अग्निदेव सहस्रों सुखों के प्रदायक, सैकड़ सम्पदाओं से युक्त तथा अन्न के अधिपति हैं । मूर्धारूप उच्च स्थान पर सुशोभित परमेश्वर के स्वामी हैं ॥ २१ ॥

**७४१. त्वामग्ने पुष्करादभ्यधर्वा निरमन्वतः । मूर्ध्नो विश्वस्य वाधतः ॥२२॥**

इस वेद का अर्थ 'अग्ने वे पुष्कर, जलोऽवर्तित होते (१०-१०-६, १.१.१) अर्थात् 'जल ही पुष्कर है तथा जल अवर्तित है' के अनुसार किया गया है—

हे अग्निदेव ! प्राण चेतना अधर्क ने जल के मंचन से विश्व का वहन करने वाले मूर्धन्य के रूप में आपको प्रकट किया ॥ २२ ॥

[जमीन में स्थित अंतरास्थि जल के संवेग से ही जलमय प्रदीप होती है । समुद्र स्थित बाष्पराशि भी जल में ही प्रकट होती है । ये दोनों के वर्णन से जलमय वा प्रकट होना ही सिद्धमान्य है ॥]

**७४२. ध्रुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यज्ञा नियुजिः सधसे शिवाभिः । दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षा जिह्वामग्ने चकृवे हव्यवाहम् ॥२३॥**

हे अग्निदेव ! जब आप हविष्यान्न ग्रहण करने वाली अपनी अजलारूपी जिह्वाओं को प्रदीप्त करते हैं, तब आप यज्ञ के परिणाम स्वरूप यज्ञीय ऊर्जा के प्रवर्तक-वाहक कहलाते हैं, जहाँ आप कल्याण स्वरूप अर्घ्यों (यज्ञों) के साथ प्राप्त होते हैं, जहाँ दिव्यलोक में शिराजघनन अदित्य की शोभा को धारण करते हैं २३

**७४३. अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति वेनुमिवायतीमुद्यासम् । पद्माऽइव प्र वयामुज्जिह्वानाः प्र धानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥२४॥**

सत्य, ज्ञान और कर्मों से युक्त वाजस्य की समिधाओं से अग्निदेव उसी प्रकार प्रदीप्त होते हैं, जिस प्रकार अपनी ओर उन्मुख हुई गाय की (भी को) देखकर कछुआ (दुग्धपान के लिए प्रेरित होता है ।) सक्रिय होता है । जिस प्रकार उषाकाल में सभी प्राणी वैद्व्य बुद्धि-युक्त होते हैं तथा पक्षी ऊपर उड़कर आकाश में फैल जाते हैं, उसी प्रकार ज्ञान का प्रकाश आकाश में सर्वत्र फैलता है ॥ २४ ॥

**७४४. अबोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दार वृषणाय वृष्णे । गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नीं दिवीव रुक्मपुरुष्यज्वमश्रेत् ॥२५॥**

त्रिकालदर्शों, शक्तिसाली तथा सेवन में समर्थ यज्ञाग्नि का स्तोत्र पठ से हम स्तवन करते हैं । आवाहन की गई अग्नि में हविदाता पुरुष स्थिरवाणी से, मन्त्रोच्चारणपूर्वक हविष्यान्न उसी प्रकार समर्पित करते हैं, जिस प्रकार ध्रुवलोक में प्रकाशमान अदित्य को सन्ध्यापासना के समय कहे गई विशिष्ट महिमायुक्त प्रार्थनाएँ समर्पित की जाती हैं ॥ २५ ॥

**७४५. अयमिह प्रथमो धायि धातुभिर्होता यजिष्ठो अष्वरेष्वीड्यः । यमज्वानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विश्वं विशे-विशे ॥२६॥**

यज्ञीय कर्मों के निर्वाहक अग्निदेव यज्ञों में देव आवाहनकर्ता ऋत्विजों के द्वारा की गयी प्रशंसनीय स्तुतियों को प्राप्त करने वाले हैं। यज्ञीय कर्म हेतु इस यज्ञवेदी में इन्हें स्थापित किया गया है। यजमानों के उत्कर्ष हेतु भृगुवंशी ऋषियों ने इन विलक्षण एवं विस्तृत कर्मों के सम्पन्न अग्निदेव को यज्ञों में प्रज्वलित किया ॥२६॥

७४६. जनस्य गोपाऽ अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नम्यसे । धृतप्रतीको बृहता दिक्षिभ्युशा धुमद्विधाति धरतेभ्यः शुचिः ॥२७॥

सम्पूर्ण मनुष्यों के संरक्षक, चैतन्ययुक्त, अतिकुशल, अपनी ज्वालाओं द्वारा आज्याहुति को ग्रहण करने वाले और पावन गुणों से युक्त अग्निदेव नित्य नवीन यज्ञीय कर्म के निर्वाह के लिए ऋषियों द्वारा प्रकट किये गये हैं। ये अग्निदेव अपनी तेजस्वी ज्वालाओं से दिव्यलोक को स्पर्श करते हुए विशेष प्रकाशमान होते हैं ॥२७॥

७४७. त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दन्निभ्रियाणं वने-वने । स जायसे मध्यमानः सहो महत्वायाहुः सहसस्युत्रमङ्गिरः ॥२८॥

हे अङ्गिराश्रिय अग्निदेव ! अङ्गिरावंशी ऋषियों ने जलरूप यदनस्वलों में स्थित और विभिन्न वनस्पतियों में व्याप्त आपको अन्वेषण करके प्राप्त किया। आप अति बलपूर्वक पर्वण करने के उपरान्त अरणियों से उत्पन्न होते हैं; अतएव मनीषीगण आपको ऋक्-पुत्र कहकर सम्बोधित करते हैं ॥२८॥

७४८. सखायः स वः सम्यज्जामिष २३ स्तोमं चाग्नये । वर्षिष्ठाप क्षितीनाम्पूजों नभे सहस्वते ॥२९॥

हे मित्र ऋत्विजो ! यह वर्षिष्ठ अग्निदेव जल के पौरुषरूप श्रेष्ठ कर्मों को प्रदान करने वाले हैं। आप इनके निमित्त श्रेष्ठ स्तवनों का गान करते हुए हविष्यान्न समर्पित करें ॥२९॥

[जल से उष्णता की उत्पत्ति तक कामाग्नि से अग्नि की उत्पत्ति होने से अग्नि को जल का पौत्र कहा गया है ॥

७४९. स २३ समिधुवसे वृषत्रग्ने विश्वान्यर्यऽ आ । इहस्पदे समिध्वसे स नो वसून्वाधर ॥

हे शक्ति-सम्पन्न अग्निदेव ! सबके अधिपति आप समस्त यज्ञीय अचीष्ट फलों को सभी तरफ से यजमान को उपलब्ध कराने में समर्थ हैं। आप यज्ञ-स्वस्त पर स्थित उत्तर वेदिका में बलीप्रकार प्रज्वलित होते हैं—ऐसे यशस्वी आप हमारे लिए भी ऐश्वर्य-सम्पदा को सभी तरफ से प्रदान करें ॥३०॥

७५०. त्वां चित्रश्रवस्तम इन्दनो विश्व जनकः । शोचिष्केर्शं पुरुषियाग्ने हव्याथ वोधसे ॥३१॥

प्रेमपूर्वक हविष्य को ग्रहण करने वाले हे यशस्वी अग्निदेव ! आप आश्चर्यजनक वैभव से सम्पन्न हैं। सम्पूर्ण मनुष्य, ऋत्विग्गण यज्ञ-सम्पादन के निमित्त आपका आवाहन करते हुए हवि समर्पित करते हैं ॥३१॥

७५१. एना वो अग्नि नमसोर्को नपात्तमा हुवे । प्रियं प्रेतिष्ठमरति २३ स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥३२॥

याजकों के द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न से हम जल के पौत्र अतिश्रिय, चैतन्यतायुक्त, श्रेष्ठ कर्मों के प्रेरक, यज्ञ सम्पादक, सम्पूर्ण यज्ञादि कर्मों के निर्वाहक होने से दूतरूप अविनाशी अग्निदेव का आवाहन करते हैं ॥३२॥

७५२. विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतम् । स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः ॥३३॥

दूत के समान तत्परतापूर्वक कर्म (यज्ञादि) को सम्पन्न करने वाले, उस अप्रुत स्वरूप अग्निदेव को हम आवाहित करते हैं। वे प्रख्यात अग्निदेव ओषरहित, सम्पूर्ण उत्तम यज्ञों के हिस्से को पाने वाले, अश्वों को अपने रथ में नियोजित करते हैं और श्रेष्ठ विधि से अन्नान्वित वे अतिशक्ति यज्ञस्वस्त पर उपास्थित होते हैं ॥३३॥



७५३. स दुद्रवत्स्वाहुतः स दुद्रवत्स्वाहुतः । सुबह्या चक्षुः सुशमी वसूनां देव २३ राधो  
अनानाम् ॥३४॥

त्रेष्ठ याज्ञिकों से युक्त, सत्कर्मरूपी यज्ञ में आवहित में प्रस्थित अग्निदेव शीघ्र ही प्रकट होते हैं वसु, रुद्र, आदित्य आदि देवों वाले यज्ञ में, जहाँ दैवी सम्पदायुक्त व्यक्तियों द्वारा उत्तम विधि से आहुतियाँ समर्पित की जाती हैं, वहाँ आप द्रुतगति से आगमन करते हैं ॥३४॥

७५४. अग्ने वाजस्य गोमतः ईशानः सहस्रो बहो । अस्मे घेहि जातवेदो यहि अयः ॥३५॥

अग्निमन्त्र से उत्पन्न होने वाले हे जातवेद अग्निदेव । आप अन्न, धन, पशु आदि से सम्पन्न हैं हमारे लिए भी अपार वैभव प्रदान करें ॥३५॥

७५५. सऽ इद्यानो वसुष्कविराग्निरीडेन्यो गिरा । रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥३६॥

ज्वालाओं के रूप में अनेक मुख वाले, आञ्जल्यमान हे अग्निदेव । आप त्रिकालदर्शी एवं सभी के आश्रय-स्थल हैं । दिव्य स्तुतियों से सन्तुष्ट हुए, यज्ञ में सर्वप्रथम उपास्थित होने वाले आप हमें अपनी तेजोस्विता से अपार धन-वैभव प्रदान करें ॥३६॥

७५६. क्षपो राजघ्नत त्वनाग्ने वस्तोस्तोवसः । स तिम्रजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥३७॥

लपटों के रूप में विकरास टाढ़ों कासे हे तेजस्वी अग्निदेव । अपने तीक्ष्ण स्वभाव से ही आप असुरों का संहर करने वाले हैं । अतएव हमारे लिए हानिकारक, दिन के और उदात्त के सभी असुरों (विकारों) को भस्म करें ॥३७॥

७५७. भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभन भद्रो अध्वरः । भद्राऽ उत प्रशस्तयः ॥३८॥

प्रतिबिम्बी के आवाहन पर प्रकट होने वाले हे ऐश्वर्यशाली अग्निदेव । आप हमारे लिए कल्याणकारी हैं । यज्ञकर्म एवं दान हमारे लिए कल्याणकारी लेकर मंगल करें तथा आपके प्रशस्तियाँ भी हमारे लिए सुखकारी हों ॥३८॥

७५८. भद्रा उत प्रशस्तयो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये । येना समत्सु सासहः ॥३९॥

हे अग्ने । जिस मनः शक्ति से आप (जीवन) समरक्षेत्र में (कुर्विचाररूपी) शत्रुओं को पराजित करते हैं, उसी मनः शक्ति को हमारे दुष्कर्मरूपी पापों के जल में नियोजित कर हमारा कल्याण करें ॥३९॥

७५९. येना समत्सु सासहोव स्थिरा तनुहि मूरि शर्मताम् । वनेमा ते अभिष्टिष्टिः ॥४०॥

हे अग्निदेव । आप जिस शक्ति से युद्धों में शत्रुओं का संहर करते हैं, उसी प्रकार से अति संघर्षशील शत्रुओं के सुदृढ़ धनुषों की प्रत्यङ्गा को काट दें । आपके द्वारा शत्रु ऐश्वर्य से हम सदा सुखी रहें ॥४०॥

७६०. अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति घेनवः । अस्तमर्वन्तऽ आश्वोस्तनित्यासो वाजिनऽ इष २४ स्तोतृभ्यऽ आ भर ॥४१॥

सबके आश्रय स्थल उन अग्निदेव से हम परिचित हैं, (साथ अग्निहोत्र हेतु) जिन अग्निदेव को प्रदोष जानकर गौएँ गोधूलि चेतों में अपने-अपने बाड़े में वापस लौटती हैं तथा तीव्रगामी अश्व (घो) नित्य ही उस अग्निदेव को प्रदोष देखकर अश्वशाला में लौटते हैं हे अग्निदेव । ऐसे आप याज्ञिकों के लिए प्रचुर धन-धान्य प्रदान करें ॥४१॥

७६१. सो अग्निर्यो वसुगृणे सं यमायन्ति धेनवः । समर्वन्तो रघुद्रुवः स ऽं सुजातासः सूर्यः  
इषं स्तोतृभ्यः आ भर ॥४२॥

जो सबके आश्रयभूत तथा घर से सहायक हैं, उन अग्निदेव को हम प्रार्थना करते हैं जिनके समीप गौएँ आती हैं और शीघ्र गतिमान् अथवा भी जिनके समीप आते हैं, ऐसे अग्निदेव की उपासना श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होकर सुसंस्कार सम्पन्न विद्वान् करते हैं । इन गुणों से युक्त हे अग्ने । याजकों के लिए आप प्रचुर धन-धान्य प्रदान करें ॥

७६२. उभे सुक्ष्मर्षिणो दर्वी श्रीणीषः आसनि । उतो नऽ वसुपूर्या उक्थेषु शवसस्पतः  
इषं स्तोतृभ्यः आ भर ॥४३॥

चन्द्रमा के सदृश सुख-शान्ति देने वाले हे अग्निदेव । आप अपने मुख में घृतपान हेतु दोनों दर्वीरूप हाथों का उपयोग करते हैं । हे बल के स्वामी । आप स्तुति द्वारा किये गये यज्ञों से हमें धन-सम्पदा से परिपूर्ण करें और हम याजकों को मंगलकारी प्रचुर धन-धान्य प्रदान करें ॥४३॥

७६३. अग्ने तमद्याशं न स्तोमैः क्रतुं न धद्रं हृदिस्पृशम् । क्रभ्यामा तऽ ओहैः ॥४४॥

हे अग्निदेव । आज आपके इस यज्ञ को अश्वेष्ट कलत्पक्क, क्षमभवन से हम संवर्धित करते हैं, जिस प्रकार नानाविध स्तुतियों से अश्वमेध यज्ञ के अश्वों को विशेषरूप से प्रेरित किया जाता है, वैसे ही हम कल्याणकारी यज्ञीय संकल्पों को सुदृढ़ करते हैं ॥४४॥

७६४. अमा ह्यग्ने क्रतोर्धद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्जतस्य बृहतो बभूव ॥४५॥

हे अग्निदेव । सारथी द्वारा सावधानीपूर्वक वस्त्रधरे जाने वाले रथ की भीति आप श्रेष्ठ फल प्रदान करने वाले, उत्तम रीति से सम्पादित, कल्याणकारी परिणाम प्रस्तुत करने वाले हमारे यज्ञ को सम्पन्न करें ॥४५॥

७६५. एभिर्नो अर्केर्धवा नो अर्वाह्वस्वर्ण ज्योतिः । अग्ने विश्वेभिः सुमना ऽ अनीकैः ॥

हे अग्निदेव । इन स्तुति-मन्त्रों द्वारा शिखरित होकर आप हमको सम्मुख प्रकट हों । जिस प्रकार सूर्यदेव उदित होकर सम्पूर्ण रश्मियों से संसार के सम्मुख प्रस्तुत होते हैं, उसी प्रकार हमारी प्रार्थना सुनकर आप हमारे जीवन को आलोकित करें ॥४६॥

७६६. अग्निं ऽं होतारं मन्ये दास्वनां वसुं ऽं सुनुं ऽं सहसो जातवेदसं किप्रं न जातवेदसम् ।  
यऽ ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृषा । घृतस्य विधाष्टिमनु वहि शोचिषाजुह्वानस्य  
सर्षिषः ॥४७॥

जो दैवीगुणों से सम्पन्न श्रेष्ठ कर्ष के सम्पन्न अग्निदेव, देवताओं के समीप जाने वाले, ऊर्ध्वगामी ज्वालाओं से प्रदीप्त और विस्तारपुक्त होकर, अग्निरत्न घृतपान की अभिलक्षा करते हैं, उन अग्निदेव को देव आवाहनकर्ता, दानकर्ता, सबके आश्रयभूत (निवासक), कथ्य होने से शक्ति के पुत्र, सर्वज्ञानसम्पन्न, शास्त्रज्ञाता, ब्रह्मनिष्ठज्ञानी के सदृश हम स्वीकार करते हैं ॥४७॥

७६७. अग्ने त्वं नो अन्तमऽ उत त्राता शिवो भवा वरूध्यः । वसुरग्निर्वसुश्रवाऽ अचंछा  
नक्षि द्युमत्तमं ऽं रयिं दाः । तं त्वा शोचिष्ठ दीदितः सुमनाय नूनमीषहे सखिभ्यः ॥४८॥

हे अग्निदेव । आप हमारे अति निकट रहने वाले हैं, हमारे श्रेष्ठ संरक्षक और मंगलकारी हैं, आप सबके आग्रामी, सबके निवासक और परमवैषय दास अति यशस्वी हैं । हे पावन अग्निदेव । आप हमारे यज्ञस्थल में पधार्य और अति तेजस्विता सम्पन्न सम्पदाएँ प्रदान करें । हे सर्वप्रकाशक अग्निदेव । हम मित्रों के लिए और सुखों के निमित्त आपसे निश्चय ही प्रार्थना करते हैं ॥४८॥

७६८. येन ऋषयस्तपसा सत्रमायन्निन्धाना ऽ अग्निं च स्वराभरन्तः । तस्मिन्नहं नि दधे नाके  
अग्निं यमाहुर्मनवस्तीर्णवर्हिषम् ॥४९॥

जिस मन की केन्द्रित करने वाली तपसाधना से ऋषियों ने अग्नि को प्रज्वलित करके देवत्व प्राप्तिरूप परम पुरुषार्थ किया, उसी मन की एकाग्रता रूप तप-साधना से हम भी दैवी क्षमताओं को जाग्रत करने के लिए अग्निदेव की स्थापना करते हैं। उन अग्निदेव को यज्ञयोग्य यज्ञव श्रेष्ठ कर्मों को सफल बनाने वाला सम्बोधित करते हैं।

७६९. तं पत्नीभिरनु गच्छेम देवाः पुत्रैर्घातुभिस्तु वा हिरण्यैः । नाकं गुण्यानाः सुकृतस्य  
लोके तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥५०॥

हे दैवीगुण सम्पन्नो ! पुण्ड्रकर्मों से प्राप्त तीसरे ज्वातिर्मय दिव्यलोक में श्रेष्ठ आनन्दमय स्थान को उपलब्ध करने की इच्छा करते हुए, हम सहधर्मिणियों, पुत्रों बन्धु-बन्धवों तथा स्वर्णादि पदार्थों के साथ अग्नि का सेवन करते हैं। इससे हम श्रेष्ठ देवलोक को प्राप्त करेंगे ॥५०॥

७७०. आ वाघो मध्यमरुहदुरण्पुयमग्निः सत्यतिष्ठेकितानः । पृष्ठे पृथिव्या निहितो  
दविद्युतदधस्यदं कण्ठतां ये पृतन्यवः ॥५१॥

विश्व के धारणकर्ता, श्रेष्ठ महापातकों के घातक, चैन-य (जीनवान्) धूमि के उज्ज्व भाग में स्थित, अति प्रकाशमान हे अग्निदेव ! आप मन्त्रोच्चार के बीच चयन स्थल (यज्ञस्थल) में स्थापित होने वाले हैं। सैन्य शक्ति से सम्पन्न जो दुष्ट-दुराचारी हमसे युद्ध करना चाहते हैं, आप उन्हें पराजित कर अर्थात् नष्ट करें ॥५१॥

७७१. अयमग्निर्वीरतमो वयोधाः सहस्रियो द्योततामप्रयुच्छन् । विधाजमानः सरिरस्य  
मध्य ऽ उप प्र चाहि दिव्यानि धाम ॥५२॥

अतिरुच्य वलवान्, इविष्माण ग्रहण करने में समर्थ, हजारों वयों के सम्पन्न हे अग्निदेव ! आप प्रारम्भ किये गये वर्मानुष्ठान की पूर्ण करने के लिए आत्मस्मरित सेवन प्रकट हो। लोकों (लोकों (प्रेक्षुताओं) के बीच में विशेष प्रकाशमान होकर, हमें दिव्य लोकों को उपलब्ध कराएँ ॥५२॥

७७२. सम्प्रध्यवध्वमुप सम्प्रयताग्ने पथो देवयानान् कण्ठ्यम् । पुनः कण्ठानाः पितरा  
धुवानान्वाता ॥ सीत् त्वयि तन्तुमेतम् ॥५३॥

हे ऋषियों ! आप सभी इन अग्निदेव के निकट आएँ, निकट आकर मलोपकार इसे प्रज्वलित करें। हे अग्ने ! आप हमारे देवयान मार्ग को प्रशस्त करें (प्रकाशित करें)। वाणी और मन को तरुण करते हुए ऋषियों ने इस यज्ञ में आपको श्रेष्ठ रीति से विस्तारित किया है ॥५३॥

७७३. उद्बुध्यस्वाम्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते स च सृजेथाभयं च । अस्मिन्सद्यस्थे  
अध्युत्तरस्मिन् विष्टे देवा यजमानश्च सीदत ॥५४॥

हे अग्निदेव ! आप जाग्रत हों और प्रतिदिन यजमान को भी जाग्रत करें। इस यज्ञ में यजमान के साथ सुसंगत हो। आपके अनुग्रह से इस यज्ञमन्त्र की श्रेष्ठ इच्छाओं की पूर्ति हो, हे विसेदयो ! याजकगण, देवताओं के योग्य सर्वश्रेष्ठ स्थान-देवलोक में विचकाल तक निवास करें ॥५४॥

७७४. येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तये । ॥५५॥

हे अग्निदेव ! आप जिस शक्ति से सहस्र रक्षिणा जाल और सर्वमन्त्र अर्थात् सर्वस्व समर्पित करने वाले यज्ञों को सम्पन्न करते हैं, उसी पराक्रम से हमारे इस यज्ञ को सम्पन्न करें। यज्ञ के प्रभाव से हम याजक देवत्व के परम पद को प्राप्त करें ॥५५॥

७७५. अयं ते योनिर्ऋतृत्वयो यतो जातो अरोचयाः । तं जानन्नग्नऽ आरोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥५६॥

हे अग्ने ! यह गार्हपत्य अग्नि आपके उत्पत्ति-स्थल है, जिस ऋतुवत्त वाले गार्हपत्य से उत्पन्न हुए आप यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के निमित्त प्रदोष होते हैं उस गार्हपत्य का भस्म भीति अनुभव करके हे अग्ने आप दक्षिण कुण्ड में स्थापित हों, तदुपरान्त हमारे लिए घनेश्वर्य को पत्तोप्रकार से संवर्धित करें ॥५६॥

७७६. तपश्च तपस्यश्च शैशिरावतु अग्नेरन्तःश्लेषोसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सद्यताः । ये अग्नयः समनसोन्तरा द्यावापृथिवी इमे । शैशिरावतु अधिकल्पमानाऽ इन्द्रमिव देवाऽ अभिसंविशन्तु तथा देवतयाङ्गिरस्वद्भुवे सीदताम् ॥५७॥

माघ और फाल्गुन मास शिशिर ऋतु से सम्बन्धित हैं । हे इष्टके । आप प्रज्वालित अग्नि में उसकी सुदृढता के लिए स्थित हों आपके द्वारा पुलांक और भूलांक आनन्दप्रद हों, जल और सोमलतादि ओषधियाँ आनन्दप्रद हों । सम्पूर्ण अग्निवाँ हम याज्ञको के उत्पन्न के लिए अनुकूल हों । जो द्यावापृथिवी के बीच में समान मन वाली अनेक अग्निवाँ हैं, वे इस शिशिर ऋतु से सम्बन्धित होकर उसे उसी प्रकार सुदृढ़ करें, जिस प्रकार देव सार्त्तव्य इन्द्रदेव को अपना आश्रय मानकर कर्म सम्पादन करती हैं । उक्त प्रधान देवता द्वारा अग्निरा की तरह ही स्थित होकर हे इष्टके । आप भी सुदृढता को धारण करें ॥५७॥

७७७. परमेष्ठी त्वा सादयतु दिक्स्पष्टे ज्योतिष्मतीम् । विश्वस्मै प्राणाद्यापानाय ध्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ । सूर्यस्तेषिपतिस्तथा देवतयाङ्गिरस्वद् भुवा सीद ॥५८॥

हे जाज्वल्यमान इष्टके । वायुरूप आपको विश्वकर्मों रूप स्वर्गलोक में विराजमान करें । सूर्यदेव आपके स्वामी हैं । आप याज्ञकों के प्राण, अपान और ध्यान के उत्पन्न हों न्योक्ति अनुदान प्रदान करें । आप वायु देवता की सामर्थ्य से यज्ञकार्य में अङ्गिरावत् अविचल रूप से सुस्थिर रहें ॥५८॥

७७८. लोकं पूण छिद्रं पूणाद्यो सीद भुवा त्वम् । इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पति-रस्मिन्मोनावसीषदन् ॥५९॥

हे इष्टके ! आप पहले से स्थापित इष्टक्यों द्वारा स्पर्श न होतो हुई, ध्वन्य स्थल के रिक्त स्थान को पूर्ण करें और दृढतापूर्वक स्थित हों । इन्द्रदेव, अग्निदेव तथा बृहस्पतिदेव ने इस स्थल में आपको विराजित किया है ॥५९॥

७७९. ता अस्य सूददोहसः सोमं च्छ्रीणन्ति पृथ्वयः । जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वारोचने दिवः ॥

दिव्यलोक के जल से तथा प्राणपर्जन्य से परिपूर्ण जो सूर्यदेव की किरणें हैं, वे देवताओं के उत्पादन काल (संवत्सर) में तीनों लोकों के मध्य अर्थात् पृथ्वी, अन्तरिक्ष और सुलोक में याज्ञकों के लिए सोमरूपी पोषक तत्त्वों को परिपक्व करती हैं ॥६०॥

७८०. इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्समुद्रव्यवसं गिरः । रथीतमं च्छरथीनां वाजानां च्छसत्पतिं पतिम् ॥६१॥

याज्ञक द्वारा की गई स्तुतियाँ सुदृढ़, कम्पन विनाश, श्रेष्ठ महारथी, घन-धान्य के अधिष्ठाता तथा धर्म निधियों के प्रसन्नकर्ता इन्द्रदेव का गुणगान करती हैं ॥६१॥

७८१. प्रोथदक्षो न यवसेविष्यन्वदा यह संवरणाद्भवस्थात् । आदस्य वातो अनुवाति  
शोचिरघ स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥६२॥

जिस समय उत्तम काष्ठरूप अरणिषो के मन्त्रन से अग्निदेव प्रज्वलित होते हैं, उस समय भोजन को इच्छा से घास के प्रति प्रेरित अन्न की भाँति वे रुन्द करते हैं । तत्पश्चात् वायु उनकी ज्वालाओं के साथ अनुगमन करते हुए उन्हें अधिक प्रज्वलित करते हैं । उस समय अग्निदेव की प्रगति का मार्ग कृष्णवर्ण धूस से परिपूर्ण होता है ॥६२॥

७८२. आयोष्ट्वा सदने सादयाम्यवतश्छावाया ऽऽ समुद्रस्य हृदये । रश्मीवतीं भास्वतीमा  
या छां भास्या पृथिवीमोर्वन्तरिक्षम् ॥६३॥

तेजस्वी रश्मियों के प्रकाश से सुशोभित हे स्वयम्भूतृण्ये ! जल की वर्षा करने वाले सागर की भाँति पोषक-  
तत्वों की वृष्टि द्वारा संसार का पालन करने वाले अर्द्धदेव के हृदय स्थल में हम आपको प्रतिष्ठित करते हैं ।  
आप पृथिवी, अन्तरिक्ष और ध्रुतोक को अपने दिव्य प्रकाश से परिपूर्ण अर्थात् ज्योतिर्मय कर देती हैं ॥६३॥

७८३. परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रचस्वतीं दिवं धच्छ दिवं दृ ऽऽ हृ दिवं  
मा हिऽऽ सौः । विश्वस्यै प्राणायानाथ व्यानायोदानाथ प्रतिष्ठायै चरित्राय । सूर्यस्त्वाभि  
पातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शान्तमेन तवा देवतयाङ्गिरस्वद् सुखे सौदतम् ॥६४॥

सम्पूर्ण जगत् में अपने तेज का विस्तार करने वाली हे स्वयम्भूतृण्ये ! संसार का सृजन करने वाले विश्वकर्मा  
आपको दिव्यलोक के ऊपर स्थापित करें । आप सप्तस्र प्राणियों के प्राण, अपान, व्यान और उदान की शक्ति को  
सुदृढ़ता प्रदान करने हेतु अपने स्थल पर प्रतिष्ठित हो तथा सदावरण के विस्तार में सहायक हों । सूर्यदेव आपकी  
भली-भाँति रक्षा करें । आप दिव्य गुणों को नष्ट न होने दें । अपने उस अधिष्ठिता देव की अनुकूलता से अङ्गिरा  
के समान अविजल होकर स्थापित हों ॥६४॥

७८४. सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि सहस्रस्योन्मासि साहस्रोसि  
सहस्राय त्वा ॥६५॥

हे अग्निदेव आप हजारों इष्टकाओं ( रश्मियों ) के माषटण्ड हैं । आप असंख्य वैभवों की  
प्रतिमा रूप हैं तथा सहस्राधिक स्थान पर विराजमान होने योग्य हैं । इसी कारण आप हजारों इष्टकाओं  
के ऊपर अधिष्ठित होने के लिए उपयुक्त हैं । हम असंख्य (सहस्र) उच्च ब्रह्मियों की प्राप्ति के लिए आपको  
स्वीकार करते हैं ॥६५॥

## —ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— परमेश्वरी १ १९ । विरूप २०, २१ । भरद्वाज २२ । त्रिमिरा २३ । बुध-गविष्टि २४, २५ । आपदेव २६ । सुतभर २७, २८ । इष २९ । संवन्म ३० । अस्कन्ध ३१ । अस्मिष्ठ ३२-३४, ६२-६५ । गोतम ३५-३७ । सौभरि ३८-४० । कुमार-बुध ४१-४३, ४९-५८ । बन्धु आदि ४८ । देवत्रय-देवतात भारत ५९ । प्रियमेध ऐन्द्र ६० । जेता माधुच्छन्दस ६१ ।

देवता— अग्नि १, २, २० ५६, ६२, ६५ । सिंगोक्त (इष्टक) ३-१९ । क्रतुरं ५७ । सूर्य ५८ । लोकगुण सिंगोक्त ५९ । आपः (जल) ६० । इन्द्र ६१ । स्वयम्भुवत्पुत्र ६३, ६४ ।

छन्द— त्रिष्टुप् १ । भुरिक् त्रिष्टुप् २ । ग्राह्यी त्रिष्टुप् ३, ७ । निवृत् अकृति ४ । निवृत् अधिकृति ५ । विराट् अधिकृति ६ । भुरिक् आषी अनुष्टुप् ८ । विराट् ग्राह्यी जगती ९ । विराट् ग्राह्यी त्रिष्टुप्, ग्राह्यी बृहती १० । स्वराट् ग्राह्यी त्रिष्टुप्, ग्राह्यी बृहती ११, १३ । भुरिक् ग्राह्यी जगती, ग्राह्यी बृहती १२ । ग्राह्यी जगती, ग्राह्यी त्रिष्टुप् १४ । विकृति १५ । निवृत् प्रकृति १६ । कृति १७ । भुरिक् अतिवृति १८ । निवृत् कृति १९ । निवृत् गायत्री २०-२२ । निवृत् आषी त्रिष्टुप् २३, ५२ । निवृत् त्रिष्टुप् २४, २५ । भुरिक् आषी त्रिष्टुप् २६, ५० । निवृत् आषी जगती २७ । विराट् आषी जगती २८ । विराट् अनुष्टुप् २९-३१, ५९, ६०, ६५ । विराट् बृहती ३२ । निवृत् बृहती ३३ । आषी अनुष्टुप् ३४ । उष्णिक् ३५, ३८ । निवृत् उष्णिक् ३६, ३७, ३९-४० । निवृत् पंक्ति ४१ ४३ । आषी पंक्ति ४२ । आषी गायत्री ४४ । भुरिक् आषी गायत्री ४५, ४६ । विराट् ग्राह्यी त्रिष्टुप् ४७ । स्वराट् ग्राह्यी बृहती ४८ । आषी त्रिष्टुप् ४९, ५४ । स्वराट् आषी त्रिष्टुप् ५१ । भुरिक् आषी पंक्ति ५२ । निवृत् अनुष्टुप् ५५, ५६, ६१ । स्वराट् उत्कृति ५७ । ग्राह्यी बृहती ५८ । विराट् त्रिष्टुप् ६२, ६३ । अकृति ६४ ।

## ॥ इति पञ्चदशोऽध्यायः ॥



## ॥ अथ षोडशोऽध्यायः ॥

इस अध्याय के सभी मंत्र 'रुद्र' के प्रति कहे गये हैं। जिस के ऊपर विनम्रता रौद्र रूप, सूर्य के प्रणव रूप, अग्नि के विहरण रूप— इन सभी को सब कहे गया है— 'अग्निरग्निं त्वा उवाच' (मिलन १०.७) 'यो वै रुद्र सोऽग्निः' (शतः ब्रा० ५.२.४.१४) 'रुद्र ग्वातु कहे गये हैं, इस सम्बन्ध में अनेक बातें हैं। ब्रह्मः ब्रह्म में दम प्राप्ति तथा ग्वातुमें अग्नि का पिंसकार एकदम सब कहा गया है (११.२.२.७)। मंत्र के सम्बन्धित सब का यही स्वभाव यही प्रकट किया गया है—

७८५. नमस्ते रुद्र मन्यवऽउतो तऽइषवे नमः । बाहुभ्यामुत ते नमः ॥१॥

हे (दृष्टों को रलाने वाले) रुद्रदेव । आपके मन्यु (अनीति टमन के लिए क्रोध) के प्रति हमारा नमस्कार है । आपके बाणों के लिए हमारा नमस्कार है । आपकी दोनों भुजाओं के लिए हमारा नमस्कार है ॥१॥

७८६. या ते रुद्र शिवा तनूरधोराऽपापकाशिनी । तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताधि  
आकशीहि ॥२॥

हे रुद्रदेव ! आप (अति उच्च) पर्वत की सुरक्षित गुहा में रहते हैं । आपका कल्याणकारी शान्तरूप पापों के विनाशक होने के कारण सीम्य और वसतासी भी है । अपने उसी मंगलमय रूप से हमारे ऊपर कृपा-दृष्टि डालें ॥२॥

७८७. धामिषु गिरिशन्त इस्ते विभर्ष्यस्तावे । शिवां गिरिष तां कुरु मा हिंथसीः पुरुषं  
जगत् ॥३॥

हे रुद्रदेव ! आप पर्वत में स्थित रहकर प्राणियों की रक्षा के लिए समर्पित हैं । जिस प्राण को सन्तुष्टों के विनाश के निमित्त वृष में धारण करते हैं, उसी प्राण को कल्याण-प्रयोजनों में प्रयुक्त करें । वे (प्राण) मनुष्यों और जगत् के प्राणियों की हिंसा में प्रयुक्त न हों ॥३॥

७८८. शिवेन वचसा त्वा गिरिशास्त्रावदामसि । यथा नः सर्वभिज्जगद्वक्ष्म थं  
सुमनाऽअसत् ॥४॥

हे पर्वत-निवासी रुद्रदेव । हम मंगलमय स्तुतियों से प्रार्थना करते हैं कि आप इस सम्पूर्ण जगत् को रोग से दूर रखें और उत्तम विचारयुक्त मन प्रदान करें ॥४॥

७८९. अध्वोचदयिक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् । अहीक्ष सर्वाज्जम्भयन्तसर्वाक्ष  
यातुषान्योऽधरात्तोः परा सुख ॥५॥

(ज्ञान के) प्रमुख प्रवक्ता देवों में प्रथम पूज्य स्मरण मात्र से पक्षोगादि दूर करने वाले वैद्य तुल्य रुद्रदेव ने (अपने वीर भद्रों से) कहा— आप सभी सर्प आदि क्रूर प्राणियों को नष्ट करें और अधोगामी प्रवृत्तियों वाली राक्षसी स्त्रियों (वृत्तियों) को दूर करें ॥५॥

७९०. असौ यस्ताम्रो अरुणऽवत बभूः सुमहत् । ये चैनं थंरुद्राऽअभितो दिक्षु श्रितः  
सहस्रशोऽतैषां हेहऽईमहे ॥६॥

यह (सूर्यरूप) रुद्रदेव उदय काल में ताम्र वर्ण, पश्चाद्-काल में अर्धजम्ब और अस्तकाल में भूरे रंग के हैं । (सूर्य की विश्वरी सहस्रां रश्मियों के सदृश) रुद्रदेव की अंश रूप सहस्रों शक्तियों अनेकों दिशाओं में अवस्थित हैं । (हम उनके प्रति विनम्र अभिवादन जौल रहते हैं) उन्का क्रोध हमारे प्रति शान्त हो ॥६॥

७९९. मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा नऽवक्षन्तमुत मा नऽवक्षितम् । मा नो वधीः पितरं  
मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्यो रुद्र रौरिषः ॥१५॥



हे रुद्रदेव ! हमारे महान् ज्ञानी गुरुजनों, छोटे बालकों, युवा पुरुषों, गर्भवस्थ शिशुओं, पितृजनों, माताओं और प्रिय पुत्र पौत्रादिकों को नष्ट न करें (अपितु उनका कल्याण करें) ॥१५॥

८००. मा नस्तोके तनये मा नऽआयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः । मा नो वीरान् रुद्र भामिनो सखीर्हविष्यन्तः सदमित्वा इवामहे ॥१६॥

हे रुद्रदेव आप हमारे पुत्र-पौत्रों को नष्ट न करें । हमारी आयु में कमी न आए हमारी गौओं और अश्वों (आदि पशुधन) का अहित न हो । हमारे (सहयोगी) पराक्रमी खोरों का वध न करें । हम आहुति प्रदान करते हुए आपका (इस यज्ञ को सफलता के लिए) आवाहन करते हैं ॥१६॥

८०१. नमो हिरण्यवाहये सेनान्ये दिशां च पतये नमो नमो वक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते पक्षीनां पतये नमो नमो हरिकेशायोपदीतिने पुष्टानां पतये नमः ॥१७॥

स्वर्ण-अलंकारों में सुशोभित पूजाओं वाले, दिशाओं के स्वामी (सम्पूर्ण जगत् के रक्षक) सेनानायक, पक्षियों के सदृश हरे (स्निग्ध) बालों वाले, वृक्षों के कुम्भ (सर्षप-झिल्लरी), पशुओं (जीवों) के पालनकर्ता, तेजस्वी, नव अंकुरण के समान पीत वर्ण वाले, आगों के पति (धार्कदर्शक, प्ररणादायी), उपवीत धारण करने वाले, जराग्रहित (ज्ञान व गुण सम्पन्न), समर्थ पदुष्यों के अधिपति (बाह्यदेव) रुद्र को हम नमस्कार करते हैं ॥१७॥

८०२. नमो बभ्रुशाय व्याधिने ऽध्वानां पतये नमो नमो भवस्य हेतयै जगतां पतये नमो नमो रुद्रायाततायिने क्षेत्राणां पतये नमो नमः सूतायाहन्तयै वनानां पतये नमः ॥१८॥

बभ्रु वर्णवाले, रज्जुओं को नष्ट करने वाले, अन्न के पोषणकर्ता, संसार के लिए आयुधधारो (जग-रक्षक), जगत् के पालनकर्ता, आततायियों के लिए अश्वध्व धारण करने वाले, क्षेत्रों और वनों के पालक तथा बध न किये जा सकने वाले सारथीरूप (देवाधिदेव) रुद्रदेव को नमस्कार है ॥१८॥

८०३. नमो रोहिताय स्वपतये वृक्षाणां पतये नमो नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमो नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो नमऽ उच्चैर्घोषायाक्रन्दयते पत्नीनां पतये नमः ॥१९॥

लोहित वर्ण वाले, विश्वकर्मारूप (नृतादि स्थापक), वृक्षों के पोषक, गुम्फडल के विस्तारक, ऐश्वर्यों के स्थापक, औषधियों के पोषक, व्यापारकुशल, जनों को श्रेष्ठ प्रेरण देने वाले, वनों के मूल्य-वीरुध (काटने पर पुनः बढ़ने वाले) आदि के पालक, संग्राम में रज्जुओं को रूताने वाले, मयंकर गर्जना करने वाले तथा पतितबद्ध पैदल सेना के अधिपति रुद्र देवता को नमस्कार है ॥१९॥

८०४. नमः कृत्स्नायतया धावते सत्त्वनां पतये नमो नमः सहमानाय निव्याधिनऽ आव्याधिनीनां पतये नमो नमो निवद्विणे ककुभाय स्तेनानां पतये नमो नमो निघेरवे परिचराधारण्यानां पतये नमः ॥२०॥

हमारी रक्षा के निमित्त धनुष तैयार कर शत्रु पर चढ़ाई करने वाले, सब सात्त्विक पुरुषों के पालक, शत्रुजयी और वैरियों के विनाशक, अन्धरी पराक्रमी सेना के नायक, उपद्रवकारियों पर खड़्ग प्रहार करने वाले, चोरों के नियंत्रणकर्ता, अपहरणकर्ताओं - उपद्रवियों के नियंत्रणकर्ता और वनों के पालक रुद्रदेव को नमस्कार है ॥२०॥

८०५. नमो यज्वते परियज्वते स्तायूनां पतये नमो नमो निषङ्गिणऽङ्गमुधिमते तस्कराणां पतये नमो नमः सुकायिभ्यो जिघा—सङ्गो मुष्णतां पतये नमो नमोसिमङ्गयो नक्तञ्जरङ्गयो विकृन्तानां पतये नमः ॥२१॥

उगने और लुटने का कार्य करने वालों पर दृष्टि रखने वाले रुद्रदेव को नमन है । गुप्तचरों के नियंत्रक रुद्रदेव को नमन है । खड्ग और बाणधारिणों (उपद्रवकारियों) के निरोधक रुद्रदेव को नमन है । तस्करों के नियंत्रणकर्ता रुद्रदेव को नमन है । शङ्ख (यज्ञ) युक्त शत्रुओं के विमोक्षक रुद्रदेव को नमन है । खड्ग धारण कर रात्रि में विचरण करने वालों के नियंत्रक रुद्रदेव को नमन है । सेंध लगाकर परधन हरने वाले दास्यों को पीड़ा देने वाले रुद्रदेव को नमस्कार है ॥२१॥

८०६. नमऽऽष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्जानां पतये नमो नमऽङ्गुपङ्गयो धन्वाधिभ्यश्च यो नमो नमऽआतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च यो नमो नमऽआयच्छद्भ्यो ऽस्पदभ्यश्च यो नमः ॥

पगड़ी धारण कर पर्वत पर विचरने वाले रुद्रदेव को नमन है । बल्लत् परद्रव्य-हरणकर्ताओं के नियंत्रक रुद्रदेव को नमन है । दुष्टों के निमित्त भय प्रकट करने वाले—धनुष और बाण धारक रुद्रदेव को नमन है । दुष्टों के दमन के लिए धनुष पर प्रणयना बद्धा कर धनुष खींचने व चमकने वाले रुद्रदेव को नमन है । हे बाण प्रहारक रुद्रदेव आपको नमस्कार नमन है ॥२२॥

८०७. नमो विसृजद्भ्यो विष्यद्भ्यश्च यो नमो नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च यो नमो नमः शयानेभ्यऽ आसीनेभ्यश्च यो नमो नमःस्तिष्ठद्भ्यो वावद्भ्यश्च यो नमः ॥२३॥

दुष्टों पर बाण चलाने वाले रुद्रदेव को नमन है । शत्रुओं के भेदक रुद्रदेव को नमन है । शयन करने वालों, जाग्रत् अवस्था वालों, आसन पर प्रतिष्ठित होने वालों, उठाने वालों और वेगवान् गति वालों के अनाकरण में अवस्थित रुद्रदेव को नमस्कार है ॥२३॥

८०८. नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च यो नमो नमोऽश्वेभ्यो ऽश्वपतिभ्यश्च यो नमो नमऽ आल्पाधिनीभ्यो विविध्यनीभ्यश्च यो नमो नमऽउगणाभ्यस्तु०हतीभ्यश्च यो नमः ॥२४॥

समारूप रुद्रदेव को नमन है । सभापतिरूप रुद्रदेव को नमन है । अश्वों में बलरूप रुद्रदेव को नमन है । अश्व-अधिपति रुद्रदेव को नमन है । श्रेष्ठ भृत्-सेना में स्थित रुद्रदेव को नमन है । संग्राम में सहायक होकर शत्रु पर प्रहार करने वाले रुद्रदेव को भी नमस्कार है ॥२४॥

८०९. नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च यो नमो नमो ज्ञातेभ्यो ज्ञानपतिभ्यश्च यो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च यो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च यो नमः ॥२५॥

सेना के समूहरूप और उनके अधिपतिरूप रुद्रदेव को नमन है । विशिष्ट (आक्रमणकारी) समूह और उनके अधिपतिरूप रुद्रदेव को नमन है । बुद्धिमान् वर्गरूप और उनके समूहरूप रुद्रदेव को नमन है । विविधरूप वाले और असंख्य रूप वाले रुद्रदेव को नमस्कार है ॥२५॥

८१०. नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च यो नमो नमो रथिभ्यो अरथेभ्यश्च यो नमो नमः क्षत्रुभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च यो नमो नमो महद्भ्यो अर्भकेभ्यश्च यो नमः ॥२६॥

सेनारूप रुद्रदेव को नमन और सेनार्थरूप रुद्रदेव को नमन है । रथ वाले वीरों को नमन और रथहीन वीरों को नमन है । संग्राम करने वाले वीररूप-रथ-सम्पन्नयुक्त वीररूप रुद्रदेव को नमन है । वरिष्ठ पूज्यरूप और कनिष्ठ वीररूप रुद्रदेव को नमस्कार है ॥२६॥

८११. नमस्तक्ष्म्यो रघकारेभ्यश्च नमो नमः कुलालेभ्यः कपरिभ्यश्च नमो नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च नमो नमः हनिभ्यो मृगयुभ्यश्च नमः ॥२७॥

तरकस और रघ-निर्माण में श्रेष्ठ कलाकार के रूप में रुद्रदेव को नमन है। मिट्टी के पात्रादि के निर्माता (कुम्हार) और लोहे के शस्त्रादि के निर्माता (लोहार) रूप रुद्रदेव को नमन है। पर्वत निवासी भीलों (निषाद) और पुञ्जिष्ठ (वन-जाति) के अन्तस् में स्थित रुद्रदेव को नमन है, कुत्तों के गले में रस्सों बाँधकर धारण करने वालों के रूप वाले रुद्रदेव को नमन और मृत्तों की कामना करने वाले व्याघ्रों के रूप वाले रुद्रदेव को नमन है ॥२७॥

८१२. नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ॥२८॥

श्वानों के अन्तस् में प्रतिष्ठित देव को नमन, कुत्तों के स्वामी किरातों के अन्तस् में प्रतिष्ठित देव को नमन, जिनसे सम्पूर्ण विश्व का सृजन हुआ उन्हें नमन, चापनाशक रुद्रदेव को नमन, नील ग्रीवाधारी रुद्रदेव को नमन, नीलातिरिक्त शिति (श्वेत) कण्ठधारी रुद्रदेव को नमन है ॥२८॥

८१३. नमः कर्चर्दिने च प्युलकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतघन्वने च नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो पौंड्रुषाय चेषुमते च ॥२९॥

अट्टाजूटधारी रूप को नमन और पुण्ड्रित केशरूप को नमन, सहस्र चक्षुरूप को नमन और शत धनुर्धारी रूप को नमन, समस्त प्राणियों में व्याप्त विष्णुरूप को नमन, तृप्ति इतान करने वाले मेघरूप को नमन और बाण धारण करने वाले रुद्ररूप को नमन है ॥२९॥

८१४. नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सव्ये च नमोऽग्रथाय च प्रथमाय च ॥३०॥

अल्प शरीर वाले रूप को नमन, छोटे रुद्र वाले रूप को नमन, बौद्ध अंग वाले रूप को नमन, वृद्धांग वाले रूप को नमन, अति वृद्ध रूप को नमन, आकर्षक नरुपरूप को नमन, सन में अवस्थी (अधिकारयुक्त) पुरुषरूप को नमन और सब में श्रेष्ठ (गुण-सम्पन्न) पुरुषरूप देव को नमन है ॥३०॥

८१५. नमोऽआश्वे चाजिराय च नमः शीघ्राय च शीघ्राय च नमोऽकर्म्याय चा-वरयन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च ॥३१॥

शीघ्र गतिमान् को नमन और शीघ्रकर्मी को नमन है। वेग में चलने वाले और प्रवहमान रूप को नमन है। जल तरंगों में गतिरूप और स्थिर जल में विद्यमान रूप को नमन है। नदी में स्थित रहने वाले और द्वीप में स्थित रहने वाले देवरूप को नमस्कृत है ॥३१॥

८१६. नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुल्याय च ॥३२॥

ज्येष्ठरूप वाले और कनिष्ठरूप वाले को नमन, रचना के आरम्भ में उत्पन्न (पूर्वज) रूप और वर्तमान में विद्यमानरूप को नमन है। सन्तान-रूप से उत्पन्न होने वाले रूप, अग्रगल्भ अण्ड-रूप में उत्पन्नरूप को नमन है। पशु आदि रूप में अवस्थित और वृक्षादि के मूल में अवस्थित देव को नमन है ॥३२॥

८१७. नमः सोध्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय चावसान्याय च नमोऽउर्वर्याय च खत्याय च ॥३३॥

सोम्य (मनुष्यलोके) रूप को नमन और शत्रुओं पर आक्रमण कर पराजित करने में सधर्मरूप को नमन है । न्यायरक्षक और व्यवहारकुशल रूप को नमन है । पवन व्याख्या में कुशलरूप और कार्य समाप्ति में कुशल रूप को नमन है । अचल ऐश्वर्यों के अधिपतिरूप और अज्ञादि शत्रुओं के संचय आदि में कुशल देवरूप को नमन है ॥

८१८. नमो मन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नमः आशुषेणाय चाशुरसाय च नमः शूराय चावधेदिने च ॥३४॥

वन के वृक्षादि में स्थित और घास आदि (ओषधिरूप) में स्थित देव को नमन है । ध्वनि में स्थित और प्रतिध्वनि में स्थित देव को नमन है । शीघ्र संचालित सेना में स्थित, शीघ्रगामी शत्रु में अवस्थित देव को नमन है । शूर-वीरों में विद्यमान और शत्रु के हृदय को नेचने वाले सहासों में विद्यमान देव को नमन है ॥ ३४ ॥

८१९. नमो बिल्बिने च कवचिने च नमो वर्मिणे च वरुधिने च नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च ॥३५॥

शिरस्ताण (शस्त्र प्रहार से शिर की रक्षा करने वाले उपकरण) चारण करने वाले और कवच चारण करने वाले को नमन है । रथ के भीतर या हाथों की अप्पारी में बैठने वाले को नमन है । प्रसिद्ध होने वाले और प्रसिद्ध सेना के स्वामी को नमन है । रथ-दुन्दुभि को नमन और बाण-साधन प्रयोक्ता को नमन है ॥३५॥

[ \* हाथी के पीठ पर खाने का होना, शिरको उभर एक कण्ठका धारण होना है । ]

८२०. नमो धूम्राय च प्रपृशाय च नमो निवह्निणे सेबुधिमते च नमस्तीक्ष्णेश्वे चाधुभिने च नमः स्वामुधाय च सुधन्वने च ॥३६॥

संधर्मशूल वीरों को नमन, विकारशून्य वीरों को नमन, सहस्रपायी वीरों को नमन, तरकसधारी वीरों को नमन, तीक्ष्ण बाण-प्रहारक और उत्तम अगुओं से सज्जित वीरों को नमन, उज्जकोटि के आयुधधारी वीरों और श्रेष्ठ धनुषधारी वीरों को नमन है ॥३६॥

८२१. नमः सुत्याय च पथ्याय च नमः काटक्षाय च नीप्याय च नमः कुत्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च वैशन्ताय च ॥३७॥

(ग्राम के) बुद्ध मार्ग में स्थित देव को और राजमार्ग में स्थित देव को नमन है । दुर्गम मार्ग में स्थित तथा पर्वत के नीचे भाग में स्थित देव को नमन है । नहर के मार्ग में स्थित और सरोवर आदि में स्थित देव को नमन है । नदी के जल में स्थित और अल्प सरोवर (पोखर) आदि में स्थित देव को नमन है ॥३७॥

८२२. नमः कुप्याय चावट्याय च नमो सीध्याय चातप्याय च नमो मेध्याय च विद्युत्याय च नमो वर्ध्याय चावर्ध्याय च ॥३८॥

कूप में अवस्थित देव को नमन, गर्त में उपस्थित देव को नमन, अति प्रक्रम में अवस्थित देव को नमन, सूर्य-आतप में अवस्थित देव को नमन, मेघ में अवस्थित और कड़कती धूष में अवस्थित देव को नमन, वृष्टि धारा में अवस्थित और वृष्टि रोकने में सहायक देव को नमन है ॥३८॥

८२३. नमो वात्याय च रेध्याय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च ॥३९॥

वायु प्रवाह में स्थित देव को नमन तथा प्रसन्नरूप गवन में स्थित देव को नमन, वास्तुकला में स्थित देव और वास्तु-गृह के पालक देव को नमन, चन्द्रमा में प्रतिष्ठित देव को नमन, पापनाशक रुद्रदेव को नमन, सायं-कालीन (सायवर्ण) सूर्यरूप में विद्यमान और प्रातः कालीन (अरुणिम वर्ण) सूर्यरूप में विद्यमान देव को नमन है ॥ ३९ ॥

८२४. नमःशङ्खवे च पशुपतये च नमःऽऽग्राय च भीमाय च नमोऽग्रेयवाय च दूरेयवाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय ॥४०॥

कल्याणमयी कपीरूप रुद्रदेव को नमन, प्राणिमंडल के चतुर्दश देव रुद्र को नमन, शत्रुओं के लिए कठोर हृदय रूप रुद्रदेव को और शत्रुओं में कम उत्पादक रुद्रदेव को नमन, प्रत्यक्ष शत्रु के हन्ता और दूरस्थ शत्रु के हन्ता रुद्रदेव को नमन, शत्रुओं का हनन करने वाले और शस्त्रवर्धनी रूप रुद्रदेव को नमन, पर्यारूप हरित केश वाले वृक्ष रूप को नमन तथा संसार सागर से पार लगाने वाले विरट रुद्रदेव को नमन है ॥४०॥

८२५. नमः शम्भवाय च मथोपवाय च नमः शङ्कराय च मधस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥४१॥

दिख्य आनन्द देने वाले और सांसारिक सुख देने वाले रुद्रदेव को नमन है। कल्याण करने वाले और सुख बढ़ाने वाले रुद्रदेव को नमन है। सब प्रकार से बंगस करने वाले और अपने बल्लों को पवित्रता प्रदान करके नति देने वाले देव रुद्र को नमन है ॥४१॥

८२६. नमः पार्याय चाचार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शब्ध्याय च फेन्याय च ॥४२॥

समुद्र के पार अवस्थित और समुद्र के इस पार अवस्थित देव को नमन, पार लगाने में प्रयुक्त साधनरूप और स्वयं पार करने वाले रूप में अवस्थित देव को नमन, तीर्थ में अवस्थित और जल के किनारे अवस्थित देव को नमन, कुशादि में अवस्थित और समुद्र के फेन में स्थित देव को नमन है ॥४२॥

८२७. नमः सिकत्पाय च प्रवाहाय च नमः किंशिलाय च क्षयणाय च नमः कपर्दिने च पुलस्तये च नमः हरिण्याय च प्रपण्याय च ॥४३॥

नदी की रेत में अवस्थित और नदी के बहाव आदि में अवस्थित देव को नमन है। नदी की तलहटी में वृक्ष-कंकड़ादि में अवस्थित और स्थिर जल में अवस्थित देव को नमन है। कौंडी-तीप आदि में अवस्थित और पूर्णतया जल में सन्निहित देव को नमन है। तुलादिस्थित कसर धूलचन्द चर अवस्थित और विशिष्ट जल-प्रवाहों में अवस्थित देव को नमन है ॥४३॥

८२८. नमो वज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च मेढ्राय च नमो हृदय्याय च निवेध्याय च नमः काट्याय च गङ्गरेष्ठाय च ॥४४॥

गौओं के चरने के स्थान में और गोशाला में अवस्थित देव को नमन, शय्या में अवस्थित तथा गृह आदि में अवस्थित देव को नमन है। हृदय में जोकरूप से अवस्थित और हिमशिखरों में अवस्थित देव को नमन, दुर्गम मार्ग में अवस्थित तथा पर्वतोंय गुफा का गहन जल में अवस्थित देव को नमन है ॥४४॥

८२९. नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः कट्यंशस्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय च नमःऽऽर्याय च सूर्याय च ॥४५॥

शुष्क काष्ठादि में विराजित, हरित वर्ण आदि में विराजित देव को नमन है। पुष्पों की छवि में विराजित और धूलिकणों में विराजित देव को नमन है। अदृश्य स्थान में विराजित और तुलादि में विराजित देव को नमन है। पृथ्वी के उत्तर नृ-पात्र में विराजित और महाप्रलय की विध्वंस अग्नि में विराजित देव को नमन है ॥४५॥



८३६. विकिरिद्र विलोहित नमस्ते अस्तु भगवः । यास्ते सहस्रांश्चेतयोऽन्यमस्मिन्नि  
ष्यन्तु तः ॥५२॥

हे भगवन् (रुद्र) ! आप अत्यंत शुद्धस्वरूप वाले और उपद्रवों का नाश करने वाले हैं । आपके नमस्कार हैं । आपके जो सहस्रों शक्ति हैं, वे हमें छोड़ कर अन्य उपद्रव करने वालों पर पड़ें (उन्हें नष्ट करें) ॥५२॥

८३७. सहस्राणि सहस्रशो बाह्योस्तव हेतवः । तासामीज्ञानो भगवः पराचीना मुक्ता कुचि ॥

हे भगवन् (रुद्र) ! आपकी मुखाओं में सहस्रों प्रकार के खड्ग-शूलादि आयुध हैं । हे स्वामी आप इन संहारक आयुधों के मुख, हम से घेरे घेरे लें (जिससे हमें कोई हानि न हो) ॥५३॥

८३८. असंख्यता सहस्राणि ये रुद्राऽअधि भूम्याम् । तेबाधं सहस्रयोजनेऽव बन्वानि तन्मसि ॥५४॥

असंख्यते-शक्तियों को नियंत्रित करने वाले, रुद्रदेव के जो हजारों नाम आदि भूमि के ऊपर अधिष्ठित हैं, हे भगव रुद्रदेव ! उनके धनुषों को हम से हजारों कोस दूर स्थित करें ॥५४॥

८३९. अस्मिन् महत्परिणयेऽन्तरिक्षे धवाऽअधि । तेबाधं सहस्रयोजनेऽव बन्वानि तन्मसि ॥

जो इस अन्तरिक्ष में और विरहल सगर के आश्रय में धनीपूत (प्रत्यंचारी शक्तिरूप) रुद्रगण हैं, हे महारुद्र ! उनके धनुषों को हम से सहस्र योजन दूर प्रत्यंचारहित रखें ॥५५॥

८४०. नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिव्यरुद्राऽअभिः । तेबाधं सहस्रयोजनेऽव बन्वानि तन्मसि ॥५६॥

जो नीली गर्दन वाले और श्वेतकंठ वाले रुद्रगण धुल्लोक के आश्रय में अधिष्ठित हैं, हे महारुद्र ! उनके धनुषों को हमसे सहस्र योजन दूर प्रत्यंचारहित रखें ॥५६॥

८४१. नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वाऽअधः क्षमाचराः । तेबाधं सहस्रयोजनेऽव बन्वानि तन्मसि ॥५७॥

जो नीली गर्दन वाले और श्वेतकंठ वाली (शर्व नामक) रुद्रगण नीचे क्षुमण्डल में विचरते हैं, हे महारुद्र ! उनके सब धनुषों को प्रत्यंचारहित करके हम से दूर रखें ॥५७॥

८४२. ये वृक्षेषु शिथिलजरा नीलग्रीवा विलोहिताः । तेबाधं सहस्रयोजनेऽव बन्वानि तन्मसि ॥५८॥

जो नीलकण्ठ वाले, हरित वर्ण-तेजस्विक सम्पन्न रुद्रगण वृक्षादि में अधिष्ठित हैं (हे महारुद्र ! ) उनके सब धनुषों को प्रत्यंचारहित करके हमसे सहस्र योजन दूर स्थापित करें ॥५८॥

८४३. ये भूतानामधिपतयो विशिखास्त कपर्दिनः । तेबाधं सहस्रयोजनेऽव बन्वानि तन्मसि ॥

(हे महारुद्र ! ) जो सभी प्राणियों के रक्षक हैं, कुण्डल सिरयुक्त एवं कटाघाती हैं, उन रुद्रगणों के सब धनुष प्रत्यंचारहित करके हम से सहस्र योजन दूर स्थापित करें ॥५९॥

८४४. ये पर्वा पथिरक्षयऽऐलब्दाऽआयुर्वुधः । तेबाधं सहस्रयोजनेऽव बन्वानि तन्मसि ॥

(हे महारुद्र ! ) जो विविध मार्गों के पथिकों के रक्षक हैं और अन्न से प्राणियों को पुष्ट करने वाले तथा जीवन पर्यन्त संताप में जूझने वाले हैं, उन सब रुद्रगणों के धनुष प्रत्यंचारहित करके हमसे सहस्र योजन दूर स्थापित करें ॥

८४५. ये तीर्थानि प्रचरन्ति सुकाहस्ता निषङ्गिणः । तेषां संहस्रयोजनेऽयं धन्यानि तन्मसि ॥६१॥

जो रुद्रगण हाथ में भाले लेकर, तलवार नौकर तीर्थों में विचरण करते हैं, (हे महाकाह ! ) उनके सब धनुषों को प्रत्यंवाहीन करके हम से सहस्र योजन दूर रखें ॥६१॥

८४६. येऽग्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् । तेषां संहस्रयोजनेऽयं धन्यानि तन्मसि ॥

जो रुद्रगण अन्न ग्रहण करने वाले प्राणियों को प्रतर्जित करते हैं, (रोगग्रस्त करते हैं ) और पात्रों में जल, दूध आदि पीने वालों को पीड़ा पहुँचाते हैं, (हे महाकाह ! ) उनके सब धनुषों को प्रत्यंवाहीन करके हमसे सहस्र योजन दूर रखें ॥६२॥

८४७. य एतावन्त्य द्यूयांस्त्य दिशो रुद्रा वितस्थिरे । तेषां संहस्रयोजनेऽयं धन्यानि तन्मसि ॥६३॥

जो रुद्रगण इन दिशाओं में या अन्यत्र दिशाओं में स्थित रहते हैं, (हे मातृका ! ) उनके सब धनुषों को प्रत्यंवाहीन करके हम से सहस्र योजन दूर करें ॥६३॥

८४८. नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिशि येषां वर्धयिष्यतः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्यो यस्तं नो द्वेष्टि तमेषां जप्ते दम्भः ॥६४॥

जो रुद्रगण (काह की शक्तिजी) धुलोक में अवस्थित हैं, जिनके साथ वृष्टि बाराएँ हैं, उन्हें नमन है । उन रुद्रों को पूर्व दिशा में, दक्षिण में, पश्चिम में, उत्तर और ऊर्ध्व दिशा में हस्त जोड़कर नमन करते हैं । वे रुद्रगण हमारी रक्षा करें, हमें सुख प्रदान करें । जिनसे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करते हैं, उन्हें हम रुद्रगणों की दाढ़ में (मुख में) स्थापित करते हैं ॥६४॥

८४९. नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वातऽङ्गयतः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्यो यस्तं नो द्वेष्टि तमेषां जप्ते दम्भः ॥६५॥

उन रुद्रगणों को नमन है, जो अन्तरिक्ष में अवस्थित हैं, जिनके साथ विविध प्रकार के पवन हैं । उन्हें पूर्व में, दक्षिण में, पश्चिम में, उत्तर में और ऊर्ध्व दिशा में हस्त जोड़ कर नमन करते हैं । वे रुद्रगण हमारी रक्षा करें । वे हमें सुख प्रदान करें । जिनसे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करते हैं, उन्हें हम रुद्रगणों की दाढ़ में (मुख में) स्थापित करते हैं ॥६५॥

८५०. नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषां भूमिष्यतः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्यो यस्तं नो द्वेष्टि तमेषां जप्ते दम्भः ॥६६॥

उन रुद्रगणों के लिए नमन है, जो पृथ्वी में अवस्थित हैं, जिनके साथ अप्ररूप हैं, उन्हें पूर्व में, दक्षिण में, पश्चिम में, उत्तर में और ऊर्ध्व दिशा में नमन करते हैं । वे रुद्रगण हमारी रक्षा करें । वे हमें सुख प्रदान करें । जिनसे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करते हैं, उन्हें हम उन रुद्रगणों की दाढ़ में (मुख में) स्थापित करते हैं ॥६६॥



## —ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

**ऋषि**— परमेश्वरी प्रजापति भवक देवमन्त्र ऋषिर्वा १-१४ । कुत्स १५-६६ ।

**देवता**— एक रुद्र १-१६, ४७-५३ । बहुरुद्रमन्त्र १७-४५, ५४-६६ । बहुरुद्रमन्त्र, अग्नि-वायु सूर्य ४६ ।

**छन्द**— आषी गायत्री १ । आषीं स्वराट् अनुष्टुप् २ । विराट् आषीं अनुष्टुप् ३, ५४, ६२ । निचृत् आषीं अनुष्टुप् ४, ८, १२, १६, ५३, ५६-५८, ६०-६१ । पुरिक् आषीं बृहती ५, ४७ । निचृत् आषीं पंक्ति ६ । विराट् आषीं पंक्ति ७ । पुरिक् आषीं उष्णिक् ९, ५५ । पुरिक् आषीं अनुष्टुप् १०, ६३ । निचृत् अनुष्टुप् ११ । स्वराट् आषीं उष्णिक् १४ । निचृत् आषीं जगती १५, १६ । निचृत् अतिधृति १७, २१ । निचृत् अष्टि १८, २२ । विराट् अतिधृति १९ । अतिधृति २० । निचृत् अतिजगती २३ । सक्वरी २४ । पुरिक् सक्वरी २५ । पुरिक् अतिजगती २६, २९ । निचृत् सक्वरी २७ । आषीं जगती २८, ४८ । विराट् आषीं त्रिष्टुप् ३० । स्वराट् आषीं पंक्ति ३१, ३९ । स्वराट् आषीं त्रिष्टुप् ३२, ३४-३६ । आषीं त्रिष्टुप् ३३, ४६, ५० । निचृत् आषीं त्रिष्टुप् ३७, ४२, ४५ । पुरिक् आषीं पंक्ति ३८ । अतिसक्वरी ४० । स्वराट् आषीं बृहती ४१ । जगती ४३ । स्वराट् प्रकृति ४६ । आषीं अनुष्टुप् ४९, ५२, ५९ । निचृत् आषीं यक्ष्मन्त्र त्रिष्टुप् ५१ । निचृत् धृति ६४ । धृति ६५, ६६ ।

## ॥ इति षोडशोऽध्यायः ॥



## ॥ अथ सप्तदशोऽध्यायः ॥

८५१. अस्मभूर्जं पर्वते शिखिवाणायजस्रऽ ओषधीष्यो वनस्पतिष्यो अवि सम्भृतं वनः ।  
तां नऽइवभूर्जं वस वस्तः सत्थरराणा अर्धसो क्षुन्यासि सऽ ऊर्ध्वं द्विषासां वे सुगुणानु ॥१॥

हे मन्दरम् ! आप इसे आदि से सम्पन्न करने में सक्षम हैं । आप पर्वतों में—पर्वतों में अस्ति वनों को, वन, ओषधीष्यो वनस्पतिष्यो से विबुध राशियों को तथा वेस अन्य और ओषधियों को इसके लिए करव करें । हे सम्भृती (सब कुछ आत्मसात् कर लेने वाली) अग्निदेव ! आप की बुद्धि-वृद्धि हो (अर्धसु अर्धसु द्विषासां वन हो) आपका स्वरूप वन इसे प्राप्त हो । आपने ओषधियों का प्रकाश उन पर रहे जो हेर राखने हैं ॥१॥

८५२. इमा मे अस्मऽ इष्टका येन्यः सन्त्येका च दश च दश च शतां च शतां च सहस्रं च  
सहस्रं चायुतं चायुतं च विपुतं च विपुतं च त्रयुतं चार्धदं च न्यर्धदं च समुद्रश्च वन्यं चान्यश्च  
वराहक्षौता मे अस्मऽ इष्टका येन्यः सन्त्ययुक्तमूर्ध्वान्ताके ॥२॥

हे अग्निदेव ! ये इष्टकाएँ (अर्धित इष्ट की मुख्य इष्टावली) हमारे लिए (अर्धित वनस्पतिकाय वानस्पेन) गीतों के अद्भुत हो जाएँ । ये इष्टकाएँ एक, एक से दस गुणित होकर दश, दश की दस गुणित होकर बी, बी की दस गुणित होकर सत्रह (सत्तर), सत्रह की दस गुणित होकर अयुत (दस सत्तर), अयुत की दस गुणित होकर विपुत (सहस्र), विपुत की दस गुणित होकर त्रयुत (दस सहस्र), त्रयुत की दस गुणित होकर चोटी (चौराह), चोटी की दस गुणित होकर अर्धद (दस चौराह), अर्धद की दस गुणित होकर न्यर्धद (अस-अस्य) इसी प्रकार दश के गुणक में बढ़ती हुई । न्यर्धद की दस गुणित शर्ब (दस अरब), शर्ब की दस गुणित चर (चारब), चर की दस गुणित वसवच (दस अरब), वसवच की दस गुणित सक् (नील), सक् की दस गुणित त्रयुत (दस नील), त्रयुत, त्रयुत की दस गुणित वन्य (सक्-वच), वन्य की दस गुणित अन्य (दस सक्) और अन्य की दस गुणित होकर वराह (सक्-सक् चोटी) संख्या तक बढ़ जाएँ । ये बढ़ी हुई इष्टकाएँ हमारे लिए इस लोक में और परलोक में हर प्रकार से अर्धित वनस्पतिकाय वानस्पेन गीतों के अद्भुत हो जाएँ ॥२॥

[इस अधिकाय में वह की वृक्षवृक्ष अर्ध के विधान की प्रार्थना की गयी है । विधान का वह कार्य विधान है कि कार्य के साथ विधान वृक्ष हो जाते हैं । उनका प्रकाश उन ही अधिकाय का प्रकाश है । ओषधीष्यो को वृक्षों को वृक्ष वन्यो का अर्थ है । एक वन को दस सत्तर कार्य में विनियमित करने (१० १०<sup>१</sup>) का इसे कार्य का अर्थ है । सत्तरों का सत्तरों का वन के सत्तरों का वन के सत्तरों का वन के विनियमित करने है । वह वृक्षवृक्ष वृक्षों का सम्पन्न वन वृक्ष (१०१०<sup>१</sup>) अधिकाय है । इसी कारण वह से वृक्षवृक्ष कार्य वन्य अधिकाय वृक्षवृक्षों होकर वृक्ष वन को वृक्षवृक्ष वन वृक्षवृक्ष वन्यो है ॥

८५३. क्रजस्य स्वऽ क्रजास्यऽ क्रजुष्टः स्वऽ क्रजास्यः । वृत्तश्च्युतो वचुश्च्युतो विराजो  
नाम कामदुधाऽ अक्षीयमाणाः ॥३॥

हे इष्टके ! आप कामदुध सक्ष के अद्भुत प्रेरण करने वाली हैं । सक्ष को बढ़ाने वाली वृत्तों में अधिष्ठित हो । आप वृत्तक वन और वचुक वन का मिश्रण करने वाली देवीयवन्, अर्धित वानस्पतियों को पूर्ण करने वाली और कभी यह न होने वाली हैं ॥३॥

[विधान की प्रार्थना है कि कार्य की वृक्ष वृक्षों का नहीं होवे, केवल वृक्षवृक्ष होवे हैं ।]

८५४. समुद्रस्य स्वायकवान्यो परी वचामपति । वाचको अस्मन्वऽ शिखो वच ॥४॥

हे अग्निदेव ! हम आपको समुद्र के शीतल अर्द्ध (अथ कुचालवर्ध) से घेर कर सुरक्षित रखते हैं । (जीवन को) पवित्र बनाते हुए आप हमारा कल्याण करें ॥४॥

८५५. हिमस्य त्वा जरायुणाम्ने परि व्ययमसि । पावको अस्मभ्यश्च शिवो भव ॥५॥

हे अग्निदेव ! हिम के जरायु (संरक्षक आवरण) के सदृश चरों और से तपेटकर हम आपकी रक्षा करते हैं । आप हमारे लिए पवित्रकर्ता और कल्याण रूप सिद्ध हों ॥५॥

[हिम की कल्ले देने के लिए जिस प्रकार जल के बुलबुलों का आवरण बनाया जाता है, उसी प्रकार वह आवरण तप को नष्ट न होने देने के लिए भी किया जाता है । यदि भी अग्नि राज के लिए उठी तब के प्रवेश की बात कहते हैं ।]

८५६. उप जम्भूप वेतसेऽवतर नदीष्व । अग्ने पितृमयामसि मण्डूकि ताभिरागहि सेम नो यज्ञं पावकवर्णश्च शिवं कृषि ॥६॥

हे अग्निदेव ! भूमि के ऊपर आएँ और वेतस् (बड़कानल) के साथ नदियों में प्रवाहित हों; क्योंकि आप जल के तेजस् रूप हैं । हे मण्डूकि ! (तुम भी) अग्नि का अनुसरण करते हुए पृथ्वी से बाहर निकल कर जल में प्रवेश करो । हमारे इस यज्ञ को पवित्र और कल्याणकर बनाओ ॥६॥

[सदियों में केवल सूर्य न रात के काल भूमि के अन्तर्गत होकर चले जाते हैं, इसे विज्ञान की भाँति में 'वाक्मय' कहते हैं । जब वाक्मय में चली जाती है, तो वे भी ऊपर निकलकर जल में मिलकर कल्ले लगते हैं ।]

८५७. अपामिह न्ययनश्च समुद्रस्य निवेशनम् । अन्यास्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यश्च शिवो भव ॥७॥

यह अग्नि बल के आश्रय स्थल समुद्र के गम्भीर स्थान में बड़काग्नि के रूप में अधिष्ठित है । हे अग्ने ! आपकी ज्वालाएँ हमें छोड़कर अन्यान्य सन्तानों को संताप दें । आप हमारे लिए पवित्रकर्ता और कल्याण रूप सिद्ध हों ॥७॥

८५८. अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥८॥

सबको पवित्र करने वाले, दिव्य गुणों से सम्पन्न हे अग्निदेव ! आप अपने दीपितमान् आनन्ददायी ज्वालाओं रूपी मधुर जिह्वा से देवों को बुलाएँ और वचन करें ॥८॥

८५९. स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवा २ इहा वह । उप यज्ञश्च हविष्ठा नः ॥९॥

हे पवित्रकर्ता, देदीप्यमान अग्ने ! आप देवों को हमारे इस यजन कर्म में बुलाएँ और यज्ञ के समीप प्रतिष्ठित कर, उन्हें हविष्ठात्र प्राप्त कराएँ ॥९॥

८६०. पावकथा यज्ञितयन्त्या कृपा क्षामन् रुत्त्वऽ उषसो न भानुना । तूर्तन् न यामप्रेतज्ञस्य नू रणाऽ आ यो घृणे न तत्पाणो अजरः ॥१०॥

जो पवित्र करने वाली ज्वालाओं से प्रज्वलित अग्निदेव हैं, वह घूँघटल पर उसी प्रकार सुशोभित होते हैं, जैसे उषाकाल सूर्य-रश्मियों से शोभायमान होता है । वह अग्निदेव पूर्वाहुति के समय प्रखरतापूर्वक जल्वत्स्थान होकर युद्ध में सन्तानों का हनन करने वाले गतिमान् अज्ञ पर अक्रुद्ध वीर सैनिकों के सदृश अपनी तेजस्विता से सुशोभित होते हैं ॥१०॥

८६१. नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्तवर्धिषे । अन्यास्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यश्च शिवो भव ॥११॥

हे अग्ने ! आपकी दीपितमान् ज्वालाएँ सब रक्षों को अन्वर्धित करने वाली हैं । आपके देव को नमन है । आपकी ज्वालाएँ हमें छोड़कर अन्तर्धों को संताप पहुँचाएँ । आप हमारे लिए पवित्रकर्ता और कल्याणकारी हों ॥

८६२. नृषदे वेङ्गप्सुषदे वेह् बर्हिषदे वेह् वनस्पदे वेद् स्वर्गिदे वेद् ॥१२॥

यह अग्नि मनुष्यों में जतराग्नि के रूप में अधिष्ठित है, उसके निमित्त वह आहुति समर्पित है। यह अग्नि समुद्र में बड़वानल के रूप में अधिष्ठित है, उसकी प्रीति के निमित्त यह आहुति समर्पित है। यह अग्नि कुशादि रूप ओषधि में अधिष्ठित है, उसकी प्रीति के निमित्त यह आहुति अर्पित है। यह अग्नि वृक्षा में दखानलरूप में अधिष्ठित है, उसकी प्रीति के निमित्त यह आहुति अर्पित है। यह अग्नि वृत्तल में अवस्थित सूर्यरूप में प्रसिद्ध है, उसकी प्रीति के निमित्त यह आहुति अर्पित है ॥१२॥

८६३. ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियानां संवत्सरीषामुप भागमासते । अहुतादो हविषो यज्ञे अस्मिन्स्वयं पिबन्तु मधुनो घृतस्य ॥१३॥

जो देवगण आहुतियाँ दिये बिना ही हविष्मन् ग्रहण करते हैं, वे प्रायरूप देवगण इस यज्ञ में मधु, घृत आदि हविभाग का स्वयं पान करें। जो देवगण यज्ञ के निमित्त अर्पित देवों के मध्य देदीप्यमान हैं, वे वर्ष को समाप्ति पर होने वाले यज्ञ के हविभाग का सेवन करते हैं ॥१३॥

८६४. ये देवा देवेष्वाधि देवत्वमायन् ये ब्रह्मणः पुरऽभ्युतारो अस्य । येभ्यो नऽभ्युते पयते धाम किञ्चन न ते दिवो न पृथिव्याऽअधि सृषु ॥१४॥

जिन देवों (प्राणों) ने इन्द्रादि की भाँति हो देवत्व का अधिकार प्राप्त किया है, जो आत्माग्नि के सम्मुख संचरण करते हैं, जिनके बिना शरीर किञ्चित् भी चेष्टा नहीं कर सकता, वे प्राण न वृत्तल में हैं और न ही पृथ्वी में हैं, अपितु प्राणिक इन्द्रिय में विद्यमान हैं ॥१४॥

८६५. प्राणदाऽअपानदा व्यानदा चर्षोदा खरिवोदः । अन्यास्ते अस्मत्पयन्तु हेतवः पावको अस्मभ्यं शिवो घव ॥१५॥

प्राणकों को प्राण, अपान, व्यान आदि कामु पराक्रम एवं ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हे अग्निदेव ! आपके शास्त्र हमारे लिए पवित्र करने वाले और कल्याणप्रद हो तथा हमारे शत्रुओं को सन्तप्त करें ॥१५॥

८६६. अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विषं न्यत्त्रिणम् । अग्निर्नो वनते रयिम् ॥१६॥

ये अग्निदेव, तीक्ष्ण, तेजस्वित कुत ज्वलताओं से अच्छे कार्यों में जलक डालने वाले सभी राक्षसों का पूरी तरह से विनाश करें और ये अग्निदेव हमें ऐश्वर्य से युक्त करें ॥१६॥

८६७. य इषा विश्वा धुक्नानि जुह्वदधिर्होता न्यसीदत् पिता नः । सऽआशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छन्दवरो २ आ विवेश ॥१७॥

हमारे पोषककर्ता पितारूप जो परमात्मा इन सम्पूर्ण लोकों के प्राणियों का संहार करने वाले होकर स्वयं सूक्ष्म द्रष्टा (ऋषि) और प्राणियों में अधिष्ठित रहते हैं, वे परमात्म सबकी धन-सम्पदा की इच्छाओं को पूर्ण करते हुए सबको अपने अधीन करके रखते हैं और अक्षीमम् प्राणियों में संव्याप्त हो जाते हैं ॥१७॥

८६८. किं स्वदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमस्त्वत्कथासीत् । यतो धूमि जनयन् विश्वकर्मा विद्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षः ॥१८॥

सृष्टि निर्माण के पूर्व परमात्म किस आश्रय पर अधिष्ठित थे ? सृष्टि के निर्माण में प्रयुक्त होने वाला मूल द्रव्य क्या था ? कैसा था ? जिससे वह विश्वकर्मा परमात्म, इस सुविस्तृत पृथ्वी का निर्माण करके अपनी महान् समर्थ से सम्पूर्ण सृष्टि का द्रष्टा होकर विशेषरूप से वृत्तल में संव्याप्त हो जाता है ॥१८॥

८६९. विश्वतश्चक्षुस्त विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुस्त विश्वतस्यात् । सं बाहुभ्यां वमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देवऽएकः ॥१९॥

सर्वत्र आँख वाले, सब ओर मुख वाले, सब ओर भुजाओं वाले और सब ओर करणों वाले, उस अद्वितीय परमात्मा ने अपने भुजाओं से पृथिवी और घृतलोक को बिना आश्रय के प्रकट किया। वे प्रकृति के परमाणुओं के संयोग अथवा वियोग से नवीन संसार की रचना अथवा विनाश करते हुए इसे सुव्यवस्थित रखते हैं ॥१९॥

[पृथ्वी एवं ऊर्जाक्ष के प्रकट-प्रकाशित बिना बिना के रूप आश्रय के स्वर्णित बिंबों को हैं तथा सुख एवं विषय की विचार सृष्टि में सदाकाल चल रही है—यह विश्व-समस्त जगत् यही सत्त्व से प्रकट किया गया है ।]

८७०. किंश्चिं स्विद्वनं कऽउत स वृक्षऽ आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः । वनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठन्नुदनानि धारयन् ॥२०॥

वह वन कौन सा है ? वह वृक्ष कौन सा है ? जिससे कि विश्वकर्मा ईश्वर ने घृतलोक और पृथिवीलोक का सृजन किया। वे विवेकवान् पुरुषों ! विचार करके यह प्रश्न पूछें कि समस्त भुवनों को धारण करते हुए वह विश्वकर्मादेव किस स्थान पर अधिष्ठित हैं ? ॥२०॥

आपले पंखों से परमात्म की सृजन शक्ति, विश्वकर्मा स्व के संचालन से उत्पन्न यह कार्य द्वारा सुख-आनन्द से ही स्वयं कर्म के सृजन की बात स्पष्ट की गयी है—

८७१. या ते धामानि परमाणि यावया या मध्यमा विश्वकर्मभुतेमा । शिक्षा सखिभ्यो हविनि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्यं वृषानः ॥२१॥

हे विश्व के रचयिता परमात्मन् ! हे सबके धारक-पोषक ईश्वर ! जो आपके उच्चतम, नीचेवाले और मध्यम कोटि के धाम हैं, उन सबको तथा हम मज्जमानों को आप ही मित्रभाव से प्रदर्शित करते हैं (उनका बोध कराते हैं)। आप ही हम सब जीवों के शरीर को कृद्धि प्रदान करते हुए स्वयं ही उत्तम इवि (सूक्ष्म प्राण उत्तम) द्वारा यजन करें (यह कार्य दूसरे के लिए शक्य नहीं है) ॥२१॥

[विश्व के कर्ता परमात्मन् सब भुवनों के सब प्राणियों के पोषण हेतु स्वयं ही यजन् प्रकृति-सत्त्व का सम्पादन कराते हैं ।]

८७२. विश्वकर्मन् हविषा वावृषानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् । मुह्यन्वन्त्ये अभितः सपत्नाऽ इहास्माकं मधवा सूरिरस्तु ॥२२॥

हे विश्व के कर्ता परमात्मन् ! हमारे द्वारा प्रदत्त हविष्कात्र द्वारा प्रसन्न होकर आप हमारे यज्ञ में पृथ्वी के सब आश्रितों के हितार्थ स्वयं यजन करें । आप सब शत्रुओं को अपने कस से मोहयस्त करें । इस (महान् प्रकृति) यज्ञ में इन्द्रदेव हमारे निमित्त आत्मज्ञान का उपदेश करने वाले विद्वान् रूप हों ॥२२॥

८७३. सात्रस्पतिं विश्वकर्माणामृतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेय । स नो विद्यानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥२३॥

आज हम जीवन-संग्राम में अन्धरी रक्षा के लिए ज्ञान के भण्डार मन की तीव्र गति के समान वेगवान् सृष्टि के रचयिता परमपिता परमेश्वर का आवाहन करते हैं । सत्कर्मा की प्रेरणा देकर कल्याण करने वाले वे विश्वकर्मा हमारे द्वारा प्रदत्त हविष्कात्र का हमारी रक्षा के निमित्त प्रेमपूर्वक ग्रहण करें ॥२३॥

८७४. विश्वकर्मन् हविषा सर्वनेन ज्ञातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् । तस्मै विश्वः समनमन्त पूर्वीरथमुग्रो विहृव्यो यथासत् ॥२४॥

हे विश्व के रचयिता परमेश्वर ! त्वि द्वारा कृद्धि को प्राप्त लेने वाले आपने इन्द्रदेव को विश्व का रक्षक और अपराजेय बनाया है । पूर्व काल के ऋषियों के वृत्त्य ह्य भी उन इन्द्रदेव को झुककर स्मन करते हैं । ये पराक्रमी इन्द्रदेव आपकी शक्ति से ही सब प्रकार सार्थ हुए हैं । हब उनका आवाहन करते हैं ॥२४॥

८७५. सक्षुष्म पिता मनसा हि वीरो धृतमेने अज्यनघ्नमाने । सदेदन्ता ऽ अददुहन्त पूर्वऽ  
आदिद् स्यात्वापृथिवी अप्रवेताम् ॥२५॥

सृष्टि के प्रारम्भ में पूर्वज ऋषियों द्वारा पृथ्वी व द्रुत्सेक के आन्तरिक काम को सुदृढ़ता प्रदान किये जाने के उपरान्त उन दोनों का विस्तार हुआ । तब बभ्रु आदि सप्त इन्द्रियों के कलक सहा ने मन के द्वारा धैर्यपूर्वक हस चुलोक और पृथ्वी के अन्दर रसकच कल को उत्पन्न किया ॥२५॥

८७६. विश्वकर्मा विमना ऽ आदिद्वया घाता विजाता परपोत सन्दृक् । तेषामिष्टानि समिधा  
मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन् पर ऽ एकयाहुः ॥२६॥

हे यमुष्यो ! सृष्टिनिर्माण में विश्वकर्मा की शक्ति के साथ मिलकर कार्य करने वाले सप्त ऋषियों का समूह अद्वितीय है । ये दिव्य ज्ञान से सम्पन्न मन वाले सर्वत्र संख्याप्य, सबके चारण-केवलकर्ता, सृष्टि रचयिता और श्रेष्ठ हैं । इनके अनुग्रह से जीव अपने इच्छित फल पाकर हर्षित होता है । लक्ष्म्यार से पुष्ट एवं प्रसन्न होने वाले उन परमेश्वर की उपासना करो ॥२६॥

८७७. यो नः पिता जनिता यो विधातः कामानि वेद भुवनानि विधा । यो देवानां नामना  
ऽ एक ऽ एव तथं सम्पन्नं भुवना यन्मन्या ॥२७॥

जो परमेश्वर हम सबके पालन करने वाले और उत्पन्न करने वाले हैं, जो सबके चारणकर्ता हैं, जो सम्पूर्ण स्थानों और लोकों के ज्ञाता हैं, जो एक होकर भी विविध देवों के विविध नामों को चारण करते हैं, सभी लोकों के प्राणी अन्ततः इनको ही प्राप्त होते हैं ॥२७॥

८७८. तऽ आप्यजन्त इविषां सप्तस्माऽ ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना । असूर्ते सूर्ते रजसि  
निषते ये भूतानि समकण्वन्निमानि ॥२८॥

आन्तरिक्ष में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्षरूप से काम करने वाले जिस परमेश्वर ने समस्त ऋषियों की रचना की है, उस सहा के लिए पूर्वज ऋषिगण स्तुति करते हुए ब्रह्म में महान् वैभव समर्पित करते हैं ॥२८॥

८७९. परो दिवा परऽ एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति । कथंश्चिद् गर्भं प्रथमं दस  
ऽ आपो यत्र देवाः समगच्छन्त पूर्वे ॥२९॥

जो हृदयस्थ ईश्वरीय तत्त्व है, वह चुलोक से परे है, इस पृथ्वी से परे है, देवों और असुरों से भी परे है । जल ने सर्वप्रथम किस गर्भ को चारण किया ? वह गर्भ कैसा किसकाय का ? जहाँ पूर्वकालीन देवगण (ऋषिगण) उस परमतत्त्व का सम्यक् दर्शन पते एवं देवत्व के परम पद को प्राप्त करते हैं ॥२९॥

८८०. तमिदुर्ध्वं प्रथमं दस ऽ आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विष्टे । अजस्य नाभावच्छोकमर्पितं  
यस्मिन् विद्यानि भुवनानि तस्युः ॥३०॥

सृष्टि के आदि से ही विद्यमान उस परमतत्त्व ने जल के गर्भ को चारण किया है, जहाँ सम्पूर्ण देवशक्तियों का आश्रय-स्थल है । इस अजस्य ईश्वर के नाभि केन्द्र में एक ही परम तत्त्व अधिष्ठित है, जिसमें समस्त भुवन आश्रित होकर स्थिर हैं ॥३०॥

८८१. न तं विदाद्य य ऽ इमा जजानान्यक्षुष्माकमन्तरं बभूव । नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतुप ऽ उक्थशास्त्ररन्ति ॥३१॥

हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर ने इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को रचना की है, उसे आप लोग नहीं जानते । वह परम तत्व सबसे पिछ होकर भी सबके पीछे प्रतिष्ठित है । अज्ञान के व्यापक अन्धकार से धिरे हुए केवल कर्ता या विवाद में लगे हुए मात्र प्राण-रक्षण व पोषण को चिन्ता से संतुष्ट लोग उस परमेश्वर के सम्बन्ध में व्यर्थ विवाद करते हुए विचरते हैं । इसका साक्षात्कार नहीं कर पाते ॥३१॥

८८२. विश्वकर्मा ऋजुनिष्ट देवऽआदिह्न्यव्यो अभयद् द्वितीयः । तृतीयः पिता जनितौषधीनामपां गर्भं व्यदधात् धुरुजः ॥३२॥

सृष्टि क्रम में सर्वप्रथम ब्रह्माण्ड के संचालक देवगण अभिवर्धित हुए, इसके पश्चात् पृथ्वी को धारण करने वाले (अग्नि सूर्य) देव प्रकट हुए । तृतीय क्रम में ओषधीयों के उत्पादक और फलक प्राण-पर्वन्व उत्पन्न हुए । वह (विश्वसृजेता) सभी जल के गर्भ को विविध रूपों में धारण करता है ॥३२॥

८८३. आशुः शिशानो वृषभो न धीमो घनाघनः क्षोषणक्षर्षणीनाम् । संक्रन्दनोऽनिमिषएकवीरः शतं सेनाऽअजयत् साकमिन्द्रः ॥३३॥

शत्रुओं पर तीव्रवेग से आक्रमण करने वाले, इविषयों को लेख्य बनाकर रखने वाले, वृषभ के समान विकरास ध्वनि (गर्जना) करने वाले रज्जुसेन को वृष्य क्षय देने वाले, शत्रुओं को बुलाकर आघात पहुँचाने वाले, अत्यन्त स्फूर्त (सचेत) एवं वीर इन्द्रदेव सैकड़ों शत्रुओं की सेनाओं को एक साथ पराजित करने में समर्थ होते हैं ॥३३॥

८८४. संक्रन्दनेनानिमिषेण शिष्णुना युत्कारेण दुक्ष्यवनेन वृष्णुना । सहिन्त्रेण जयत तत्सहस्रं युधो नरऽइषुहस्तेन वृष्णा ॥३४॥

हे योद्धा पुरुषो ! आप सब पूर्वपूर्वक गर्जना द्वारा शत्रुओं को बचपीत करने वाले, विविध आक्रमक मुद्राओं से अविलम्ब युद्ध में उद्यत होने वाले, कणधारी, विवेक, अवेद्य इल्लित वाक्पर्वक इन्द्रदेव की सामर्थ्यों से जुड़कर, शत्रुसेना को पराजित करके विजयी हों और सुखी जीवन जीई ॥३४॥

८८५. सऽइषुहस्तैः स निषद्भिर्विजयी संधावाहा स युधऽइन्द्रो गणेन । संधं सृष्टजित्सोमया बाहुशर्घ्यग्रथन्या प्रतिहिताभिरस्ता ॥३५॥

ये शत्रुओं को बल में करने वाले इन्द्रदेव, कणधारी-खड्गधारी वीरों को सैन्य दल में कर्त्तृ प्रकार व्यवस्थित करते हुए संग्राम में शत्रुओं से युद्ध करने वाले हैं । एकजिह शत्रुओं को जीतने वाले, उत्तम धनुष से शत्रुओं पर बाणों का प्रहार करने वाले तथा यज्ञों में सोम पान करने वाले वह इन्द्रदेव हमारी रक्षा करें ॥३५॥

८८६. बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्रैर अपवाधमानः । प्रमृज्यन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयभ्रस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥३६॥

हे बृहस्पते ! आप राक्षसों का विनाश करने वाले, रथ द्वारा सर्वत्र ध्वज्य करने वाले तथा शत्रु-सेनाओं को छिन्न-भिन्न करके उन्हें पीड़ा देने वाले हैं । हिसा करने वाले हमारे शत्रुओं को युद्ध में पराजित करके हमारे रथों की रक्षा करें ॥३६॥

८८७. बलविज्ञाय स्थविरःप्रवीरः सहस्वान् वाजी सहस्रान ऽ वरः । अभिवीरो अभिसत्त्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ योक्वि ॥३७॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रु के बलों को जानने वाले, युद्ध में अतिकृशत्, अतिसामर्थ्यवान्, बलवान्, ठग वीरों से घिरे हुए श्रेष्ठ पुरुषों के सहायक, प्रसिद्ध बलों से युक्त, शत्रुओं का पराभव करके भूभाग को जीतने वाले हैं ! आप सदैव विजयी रथ पर विराजमान रहते हैं ॥३७॥

८८८. गोत्रमिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा । इमंश्च सजाताऽअनु  
धीर्यध्वमिन्द्रश्चसखायो अनु सधरमध्वम् ॥३८॥

एक समान जन्म लेने वाले (मित्र सदृश) हे देवताओं ! शत्रु वंश का विनाश करने वाले, भूभागों पर अधिकार कर लेने वाले, वज्रकारी बुद्धि वाले, युद्ध विजेता, अपने पराक्रम से शत्रुओं के विनाशक, विद्वान्, इन्द्रदेव को वीरोचित कर्मों के निमित्त आप उत्साह दिलाएँ, स्वयं भी श्रेष्ठ कर्म के लिए उत्साहित हों ॥३८॥

८८९. अभि गोत्राणि सहसा नाहमानोदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः । दुश्श्वनः  
पुतनाबाह्व्युष्मोस्माकंश्च सेनां अयत्तु प्र युत्सु ॥३९॥

अपने बल से शत्रु प्रदेशों को निर्दयतापूर्वक रौंदते हुए, अत्यंत श्रेष्ठ थे घरे हुए, शत्रु सेना को पराजित करने वाले, पराक्रमी इन्द्रदेव युद्ध में हमारी सेना को उत्तम प्रकार से संरक्षण प्रदान करें ॥३९॥

८९०. इन्द्रऽआसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुरऽएतु सोमः । देवसेनानामभिधञ्जतीनां  
जयन्तीनां मस्तो यन्त्वयम् ॥४०॥

शत्रुओं के मद को दूर कर, उन्हें परास्त करके विजय प्राप्त करने वाली देवताओं की सेना का नेतृत्व इन्द्रदेव और बृहस्पतिदेव (बल और ज्ञान) मिलकर करते हैं । ऐसी सेना के आगे आगे भ्रूदगण चलते हैं । यज्ञपुरुष विष्णु-देव दाहिनी ओर तथा सोम-देव पीछे-पीछे गपन करते हैं ॥४०॥

[सेना की दाहिनी ओर यज्ञ-पुरुष विष्णु के होने का कारण है कि वह अभयान योग्य-का प्रथम है । पीछे-पीछे सोम का गपन है कि वे शक्ति-सोम की स्थापना करते हुए आगे बढ़ते हैं ।]

८९१. इन्द्रस्य बृष्णो वरुणस्य राज्ञऽआदित्यानां भरुताश्चशार्धऽउग्रम् । महाभनसां  
भुवनध्यक्षानां घोषो देवानां जयतामुदम्बासु ॥४१॥

युद्ध क्षेत्र में स्थिर मन से शत्रु पक्ष की सेना का विध्वंस करने में समर्थ, विजय प्राप्त करने वाले देवों की, आदित्यों की, भरुदगणों की, वरुणदेव की तथा इक्ष्वाकुसुत वृष्टि करने वाले इन्द्रदेव की सेना का श्रेष्ठ बलभूत जकाद उत्तम रीति से गुरुजयमान हुआ ॥४१॥

८९२. उद्धर्षय भधधन्नायुधान्युत्सत्त्वनां भामकानां भनाधंसि । उद्वृत्रहन् वाजिनां  
वाजिनान्युद्धवानां जयतां यन्तु घोषः ॥४२॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आप अपने आयुधों को उत्तम रीति से तैयार करके देव पक्ष के वीरों के मन को उत्साहित करें, अश्वों को शीघ्रगमन के निमित्त उत्तेजित करें । हे शत्रुनाशक इन्द्रदेव ! विजयी रथों के जयघोष चतुर्दिक् गुरुजयमान हों, अर्थात् चारों ओर देवताओं की विजय का जय-जयकर हो ॥४२॥

८९३. अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं चाऽइषवस्ता जयन्तु । अस्मादं वीराऽउत्तरे  
ध्वन्त्वस्मां २ उ देवाऽअवता ह्वेषु ॥४३॥

रथों पर सगे ध्वजों के उत्तम रीति से पहनाये जाने पर (युद्ध की स्थिति में) शत्रुनाशक इन्द्रदेव और हमारे साथ उत्तेजित होकर शत्रु पर विजय प्राप्त करें । हमारे वीर पुरुष युद्ध में श्रेष्ठ हों (विजयी हों) तथा समस्त देव शक्तिवीं सुरक्षा प्रदान करें ॥४३॥



८९४. अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती बृहन्नाङ्गन्यथे परेहि । अभि प्रेहि निर्देह इत्सु शोकैरन्धेनामिन्नास्तमसा सज्जन्ताम् ॥४४॥

हे व्याधे ! आप शत्रुसेना में व्याप्त होकर उनके शरीरों को कष्ट देने वाली और उनके चित्त को मोहित कर देने वाली हैं । हमसे दूर रहकर शत्रुओं के अंगों को जकड़ें । दीप्तिमान् व्यासाओं के समान आगे बढ़कर शत्रुओं के हृदय को श्लोकग्नि से संस्रपित करें । इस श्लोक-वीर्य से शत्रु गहन तमिस्र में डूब जाएँ ॥४४॥

८९५. अवसुष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंश्रिते । गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कं चनोच्छिष्ट ॥४५॥

हे बाणरूपी अस्त्र ! मन्त्रों के प्रयोग से तीक्ष्ण किये हुए आप हमारे द्वारा छोड़े जाते हुए शत्रु सेना पर एक साथ प्रहार करें और उन्हें संतप्त करें । उनके शरीरों में अक्षिप्त होकर सभी का विनाश करें । किसी भी दुष्ट को जीवित न बचने दें ॥४५॥

८९६. प्रेता जयता वरऽइन्द्रो वः शर्म यच्छतु । उग्रा वः सन्तु बाहुवोऽनाधृष्या यथासक्त ॥४६॥

हे वीरपुरुषो ! शत्रु सेनाओं पर जीवित से आक्रमण करो और विजयश्री का धारण करो । नेतृत्वकर्ता इन्द्रदेव आपको विजय-सुख प्रदान करें । आपको बुझाएँ अत्यन्त बलशाली हो, जिससे कोई भी शत्रु आप पर आक्रमण न कर सके ॥४६॥

८९७. असौ या सेना वरुणः परेषामध्वैति नऽभोजसा स्पर्धमाना । तां गूह्यत तमसापघ्नेन यवामी अन्यो अन्यं न जानन् ॥४७॥

हे वरुणगण ! जो यह शत्रुओं की सेना अपने कर्तव्य के जहंकार से स्वर्ण को उद्यत होकर हमारी ओर बढ़ती चली आ रही है, उस सेना को गहन अन्धकार से आच्छादित करें, जिससे ये शत्रु भ्रमवश एक दूसरे को जान न सकें और आपस में ही लड़ें ॥४७॥

८९८. यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमार किशिक्षा ऽ इव । तत्रऽ इन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विशाहा शर्म यच्छतु ॥४८॥

जिस संग्राम में हमारे सैनिकों के बाण इधर-उधर ऐसे गिरते हों, जैसे शिखारहित झालर (चंचल बालक) इधर-उधर घूमते-गिरते हैं । उस संग्राम में बृहस्पतिदेव, देवशक्ति अदिति और इन्द्रदेव हमें कत्वाणकारी संरक्षण प्रदान करें तथा शत्रुओं को नष्ट करके विजय प्राप्त करने का सुख अनुभव कराएँ ॥४८॥

८९९. मर्माणि ते वर्मणा छन्दयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानुवस्ताम् । उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥४९॥

वीर पुरुष वर्म-स्थलों को सुरक्षा-कवच से आच्छादित करते हैं । वरुणदेव इस कवच को सुदृढ़ता एवं स्थायित्व प्रदान करें । राजा सोम आपको अमृत देकर परिश्रित करें और समस्त देवगण आपको विजय में सहायक होकर आपको हर्षित करें ॥४९॥

९००. उदेनमुत्तरां नयाम्ने घृतेनाहुत । रायस्योषेण सन्धं सृज प्रजया च बहुं कृमि ॥५०॥

हे अर्धे ! राजाओं द्वारा प्रदान की गई घृत की आहुतियों से कृपण होकर आप उन्हें प्रचुर मात्रा में घन-सम्पदा के रूप में अपार वैभव प्रदान करें । पुत्र-पौत्रदि देकर सन्तान सुख से लाभान्वित करें ॥५०॥

१०१. इन्द्रेयं प्रतरां नय सजातानामसहस्री । समेनं वर्धसा सृज देवानां भागदाऽ असत् ॥

हे इन्द्रदेव । इस यज्ञमान को उत्कृष्टतः की ओर बढ़ाएँ, जिससे वह बंधु-बान्धवों को अपने अनुकूल पाने में समर्थ हो । इसे तेजस्वी वैभव प्रदान करे, जिससे वह बड़ के रूप में देवों को उनका भाग देने में समर्थ हो ॥५१॥

१०२. यस्य कुर्मो गृहे हविस्तमप्ते कर्वा त्वम् । तस्मै देवाऽ अधि सुवन्नयं च  
ब्रह्मणस्पतिः ॥५२॥

हे अग्ने ! हम जिस याजक के आवास पर यज्ञकर्म करते हैं, आप उसके वैभव को बढ़ाएँ । सभी देवगण उसको श्रेष्ठता को स्वीकार करें । वह यज्ञमान यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों का सर्वत्र पालन करते हुए सुखी-समृद्ध जीवन का अधिकारी हो ॥५२॥

१०३. उडु त्वा विश्वे देवाऽअग्ने भरन्तु धित्तिभिः । स नो भव शिवस्त्वशं सुप्रतीको  
विभावसुः ॥५३॥

हे अग्ने ! दिव्यगुण-सम्पन्न समस्त देवकन (देवदागण) रित्वा यज्ञादि कर्मों एवं श्रेष्ठ विचारों द्वारा आपका विस्तार करें (मंत्रों के साथ आहुतियों देकर यज्ञाग्नि को बढ़ाएँ) आप हम याजकों को अपार तेजस्वी वैभव प्रदान कर हमारा कल्याण करने का अनुग्रह करें ॥५३॥

१०४. पञ्च दिशो दैवीर्यज्ञपवन्तु देवीरपामतिं दुर्मतिं बाधमानः । राधस्योषे  
यज्ञपतिमाभजन्ती राधस्योषे अधि यज्ञो अस्मात् ॥५४॥

हम याजकों की मन्दबुद्धि और दुर्बुद्धि को इन्द्र, वरुण, कर्म, शिव और ब्रह्मा से सम्बन्धित पाँचों दिव्य दिशाएँ (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और मध्य) दूर करें । वह आदि श्रेष्ठ कर्म करने वाले यज्ञमान को अपार धन-वैभव प्राप्त कराएँ और हमारे यज्ञों की सुरक्षा करें । इन की बुद्धि के साथ ही साथ हमारे यज्ञ (दान आदि सत्कर्म) समृद्धि को प्राप्त हों ॥५४॥

१०५. समिद्धे अम्नावधि मामहानऽठक्वपप्रऽईड्यो गुभीतः । तप्तं धर्मं परिगृह्यायजन्तोर्जा  
पद्मज्ञमयजन्त देवाः ॥५५॥

जब दिव्यगुण सम्पन्न-याजक तप्त धर्म को लेकर यजन कर्म करते और श्रुतयुक्त तपिष्यात्र द्वारा अग्नि को प्रदीप्त करते हैं, तब वेदमंत्रों द्वारा अत्यन्त पुण्य, स्तुत्य देवों की स्तुतियाँ करके यज्ञ को उत्तम प्रकार से सम्पन्न (या सिद्ध) किया जाता है ॥५५॥

१०६. दैव्याय धर्त्रे जोष्टे देवग्रीः श्रीमनः शतपथाः । परिगृह्य देवा यज्ञमायन् देवा देवेभ्यो  
अध्वर्यन्तो अस्थुः ॥५६॥

श्रेष्ठ पुरुष देवों के निमित्त यज्ञ कर्म की कामना करते हैं । वे दिव्य गुणों और सम्पदा के स्वामी, उत्तम मन वाले और सैकड़ों गौओं के दुग्धादि पदार्थों से पृष्ट होने वाले पुरुष, यज्ञ में उठते हैं और दिव्यगुण सम्पन्न, विश्व को धारण करने वाले, प्रेमभावयुक्त ऋणात्मा की स्तुतियाँ करके उसके आज्ञा को प्राप्त होते हैं ॥५६॥

१०७. वीतश्च हविः शमितश्च शमिता यजध्वी नुरीयो यज्ञो यत्र हव्यमेति । ततो  
वाकाऽआशिषो नो जुषन्ताम् ॥५७॥

जब उदारमना सौम्य पुरुष द्वारा सौम्य (संस्कारित) हवियों कर्त्तव्य यज्ञ देवों की तृप्ति-तृष्टि हेतु सम्पन्न होता है, तो वह तुरीय (चतुर्थ अथवा श्रेष्ठ) यज्ञ कर्त्ता होता है । उस समय यज्ञ में उच्चारित वेद-मंत्रों के आशीर्वाचन हमारे अनुकूल फलित होते हैं ॥५७॥

९०८. सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयार् अजस्रम् । तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्सम्पश्यन्विष्णा भुवनानि योषः ॥५८॥

हरित वर्ण वाली वनस्पतियों और इस पर अश्रित सभी जीवों का पोषण करने वाले परम ज्योतिष्मान् सूर्यदेव अपनी रश्मियों को पूर्व से ही प्रकट कर देते हैं । जितेन्द्रिय विद्वान् और पोषणकर्ता सूर्यदेव उत्पन्न हुए सम्पूर्ण लोकों को प्रकाशित करते और सतत गमनशील होते हैं ॥५८॥

[वैज्ञानिकों द्वारा प्रतीकित है कि पूर्व अपनी रश्मियों के निरन्तर कुम्भ (अजस्रम्) के कारण कुछ समय पूर्व ही उदित (प्रकट) हुआ प्रतीत होता है ।]

९०९. विमानऽ एव दिवो मध्यऽ आस्तऽ आर्षप्रिकान् रोदसी अन्तरिक्षम् । स विश्वाचीरभि चष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ॥५९॥

जगत्-रचना में समस्त सूर्यदेव घुसोक के मध्य में अवस्थित हैं । वह घुसोक, पृथ्वीलोक और अन्तरिक्ष लोक तीनों को अपने तेज से पूर्ण दीप्तिमान् करते हैं । वह सूर्यदेव सम्पूर्ण विश्व को अपने आश्रय में लेने वाले, जल धारण करने वाले तथा सब कुछ देखने वाले हैं । इस लोक-परलोक और मध्यलोक में स्थित प्राणियों के सूक्ष्म भावों को भली-भाँति जानते हैं ॥५९॥

९१०. वक्षः समुद्रो अरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश । भक्ष्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा विचक्रमे रजसस्यात्यन्तौ ॥६०॥

जो सूर्यदेव वायु द्वारा स्थित करने वाले समुद्र से जल धारण करने वाले, रक्त वर्णयुक्त आकाश में निरन्तर गतिशील हैं । अनेक रश्मियों से युक्त पूर्व दिशा से उदित होकर घुसोक के गर्भ में समाविष्ट होते हैं, वे आकाश में गमन करते हुए सब लोकों को सब ओर से परिश्रित करते हैं ॥६०॥

९११. इन्द्रं विश्वाऽअवीश्वन्नसमुद्रम्यद्यसं गिरः । रक्षीतमध्वरधीनां वाजानां सत्यतिं पतिम् ॥

समुद्र के तुल्य व्यापक, सब रश्मियों में महान्तम, अन्न के स्वामी और सत्यवृत्तियों के पालक इन्द्रदेव को समस्त स्तुतिवी अभिवृद्धि प्रदान करती है ॥६१॥

९१२. देवहूर्यज्ञऽ आ च यक्षत्सुम्नहूर्यज्ञऽ आ च यक्षत् । यक्षदग्निर्देवो देवार् आ च यक्षत् ।

देवों का आवाहन करने वाला यज्ञ देवों के लिए हविष्यज्ञ वहन करे और उनका यजन करे । सम्पूर्ण सुखों का आवाहन करने वाला यज्ञ देवों को हवि पहुँचाने का कार्य सम्पन्न करे । अग्निदेव समस्त देवताओं को यज्ञशाला में अधिष्ठित करके यजन-कार्य पूर्ण करे ॥६२॥

९१३. वाजस्य मा प्रसवऽ उद्ग्राभेणोदग्रभीत् । अथा सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेणाधरार् अथः ॥६३॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे सत्कर्म करने वाले वाजकों के लिए अन्न उत्पन्न करने वाले होकर प्रगति का मार्ग प्रशस्त करते हुए उच्चतम स्थिति प्रदान करें और हमारे शत्रुओं को निम्न स्थिति में पहुँचाकर अधोगति प्रदान करें ॥६३॥

९१४. उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवाऽ अवीश्वन् । अथा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषुधीनान्व्यस्यताम् ॥६४॥

हे देवो ! हम सत्कर्म करने वालों को उत्तम सामर्थ्य प्रदान करने की स्थिति में और शत्रुओं को पतन के गर्त में पहुँचाएँ । आप हमारे ज्ञान को अनवरत बढ़ाएँ । इन्द्रदेव और अग्निदेव हमारे शत्रुओं का विविध प्रकार से पूर्णरूपेण विनाश करें ॥६४॥

११५. क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यं हस्तेषु विभक्तः । दिवस्पृष्टं स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम् ॥६५॥

हे याज्ञिको ! अग्निदेव से उत्तम मुख को प्राप्त करके, उच्च पात्र को हाथों में धारण करके सौर्य दिखाओ । आप देवगणों के साथ मिलकर दिव्यस्तोत्र में जाकर सुसपूर्वक निवास करो ॥६५॥

११६. प्राचीमनु प्रदिशं प्रेहि विद्वानग्नेरग्ने पुरो अग्निर्मवेह । विश्वा ऽ आशा दीक्षानो सि भाग्युर्ज नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥६६॥

हे अग्ने ! आप पूर्व दिशा की ओर उन्मुख हों । अग्रगण्य लेकर सबका नेतृत्व करें । सम्पूर्ण दिशाओं को दीक्षितमान् ज्वालाओं (प्रकाश) से संव्याप्त करें और हथोर पुत्र-पौत्रों तथा स्वादि पशुओं में बल स्थापित करें ।

११७. पृथिव्या ऽ अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षादियमारुहम् । दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ग्योनिरगामहम् ॥६७॥

हम पृथ्वी से उच्च अवस्थित अन्तरिक्ष में आरुढ़ होने हैं और अन्तरिक्ष से उच्च अवस्थित ध्रुव लोक में आरुढ़ होते हैं और तब गुल्फ के मुखस्वरूप वसन्त (चक्र) से उच्च अवस्थित परम ज्योतिष्मान् सूर्यलोक को प्राप्त होते हैं ॥६७॥

[यज्ञादि आचार्यभिक्त त्रयीमें से अग्न केन्द्र को उर्ध्वरेखे को यह अधिकृत करने का शक्त है ।]

११८. स्वर्चन्तो नापेक्षन्त ऽ आ द्यां रोहन्ति रोदसी । यज्ञ ये विद्यतो द्यारं सुविद्वांस्तो वितेनिरे ॥६८॥

जो उत्तम विद्वान् विश्व को (विश्व की चक्रीय व्यवस्था को) धारण करने वाले यज्ञ का अनुष्ठान सम्पन्न करके अपने यज्ञ को फैलाते हैं, वे अत्यन्त मुखकारी स्वर्ग को छोड़ते हुए सौंछिक छोड़ने की अपेक्षा नहीं करते हैं; वरन् द्यावा-पृथ्वी से ऊपर उठकर स्वर्ग में आरोहण करते हैं ॥६८॥

११९. अग्ने प्रेहि प्रथमो देवयता वक्षुर्देवानाधुत पत्यानाम् । इयक्षमाणा पृगुभिः सजोषाः स्वर्चन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥६९॥

हे अग्ने ! आप दिव्य गुणों की इच्छा करने वाले यजमानों में प्रमुख हैं । देवों और मनुष्यों के नेत्ररूप द्रष्टा हैं, अतः आप अग्रणी-सबके मार्गदर्शक हैं । यज्ञ की इच्छा करने वाले, पापों को मिटाकर सबसे प्रेम करने वाले याजकों का कल्याण करके आप उन्हें स्वर्ग लोक को प्राप्त कराते हैं ॥६९॥

१२०. नक्तोषासा समनसा विरूपे क्षपयेते शिशुमेकं समीची । द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा ऽ अग्निं धारयन् ब्रविणोदाः ॥७०॥

कृष्णवर्ण रात्रि एवं शुक्लवर्ण दिन के मध्य (सम्बद्ध काल में अग्निहोत्र के लिए प्रकट अग्नि) सुशोभित अग्निदेव अनुकूल विचारों वाले मृता-पिता से उत्पन्न घुमन्तों के रूप में प्रतिष्ठित हैं । वही अग्निदेव पृथ्वी और अन्तरिक्ष के मध्य दिव्य प्रकाश के रूप में सुशोभित होते हैं । यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के परिणाम-स्वरूप याजकों को अपार वैभव प्रदान करने वाले देवगण, यज्ञ सम्पन्न करने के लिए यज्ञाग्नि को ग्रहण कर रहे हैं ॥७०॥

१२१. अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्धञ्जतं ते प्राणाः सहस्रं व्यानाः । त्वं साहस्रस्य रायऽर्जुशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा ॥७१॥

हे सहस्रों नेत्रों वाले ! हे सौ सिरों वाले अग्ने ! आपके रीकड़ों प्राण हैं, सहस्रों व्यान हैं । आप सहस्रों सम्पदाओं के स्वामी हैं । आपने लिए हम इविष्यात्र प्रदत्त करते हैं । हमारी आहुति स्वीकृत करें ॥७१॥

९२२. सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे वृषिव्याः सीद । भासाऽन्तरिक्षमापूज ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिशः ऽ दृद्दुधं ॥७२॥

सुन्दर पंख वाले गरुड़ वृषी के रूप में हे अग्ने । आप सुख से परिपूर्ण और मृदुता (दिव्यता या श्रेष्ठता) से सम्पन्न हैं । पृथ्वी तल पर अधिष्ठित होकर आप अपनी कर्मि से अन्तरिक्ष को अभिपूरित करें । अपनी ज्योति से ध्रुवोक्त का उत्थान करें और तेज से दिशाओं को सुदृढता प्रदान करें ॥७२॥

९२३. आजुह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्वं योनिमा सीद साधुया । अस्मिन्सद्यस्थे अच्युत्तरस्मिन्विश्वे देवा यजमानश्च सोदत ॥७३॥

हे अग्ने आप विनयपूर्वक आवाहित किये हुए उत्तम गुणों से युक्त, उत्तम स्थान में पहले से ही स्थित हैं । दिव्य गुणों से सम्पन्न यह यजमान अग्निदेव के साथ (वर्णादि सत्कर्म करते हुए) प्रगतिशील जीवन जीकर उच्चतम सोपानों को प्राप्त करें ॥७३॥

९२४. ताथः सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं षणे सुपतिं विश्वजन्याम् । यामस्य कण्ठो अदुहत्प्रपीनां सहस्रधारां पयसा महीं गाम् ॥७४॥

कण्व-गोत्रीय ऋषि ने सवितादेव की पुष्टिकारक सहस्रां रत्नियों को धारण करने वाली यवस्विनी महान् गौ (पोषण क्षमता) को दुहा । सबके द्वारा स्वीकार्य सवितुदेव को उस मन्दुत, सबका हित करने वाली, सूत्रनात्मक श्रेष्ठमति (बुद्धि) को हम स्वीकार करते हैं ॥७४॥

९२५. विधेम ते परमे जन्मसन्ने विधेम स्तोमैरवरे सद्यस्थे । यस्माद्योनेरुदारिद्र्या यजे तं प्र त्वे हवींश्चि जुहुरे समिद्धे ॥७५॥

हे अग्ने सबसे उत्कृष्ट स्थान में जन्म लेने वाले आपको हम हविष्यान्न समर्पित करते हैं । आप जिस स्थान से प्रकट होते हैं, उस स्थान को यजन के अनुकूल बनाते हैं । हम उत्तम इक्षर से प्रदीप्त आप में आहुतियों समर्पित करते हैं ॥७५॥

९२६. प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्या यविष्ठ । त्वांश्च शश्वन्त उपयन्ति वाजाः ॥७६॥

हे तरुण अग्ने । अनवरत (अर्पित) समिधकों द्वारा प्रज्वलित होकर आप हमारे सम्मुख देदीप्यमान हों हम आपको सदैव हविष्यान्न समर्पित करते हैं ॥७६॥

९२७. अग्ने तमद्याधं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् । ऋष्यायातऽओर्हैः ॥७७॥

हे अग्ने आज आपके अश्वों (यज्ञीय प्रज्वो) को हम अपने कल्पात्मकरी यज्ञीय कृत्ययुक्त तथा संकल्पों से युक्त हृदयस्पर्शी स्तोत्रों द्वारा संवर्धित करते हैं ॥७७॥

९२८. चित्तिं जुहोमि मनसा घृतेन यथा देवा ऽ इहागमन्वीतिहोत्रा ऽ ऋतावक्षः । पत्ये विश्वस्य भूमनो जुहोमि विश्वकर्मणे विश्वाहादाम्यथहविः ॥७८॥

हम मनोयोग से घृत-आहुतियों द्वारा इस चित्ति में स्थित अग्निदेव को जुहू करते हैं । जिससे इस यज्ञ में आहुतियों की इच्छा करने वाले और यज्ञ को बढ़ाने वाले देवगण उत्सर्गपूर्वक वधार्थ । हम इस विशालामना, विश्व के स्वामी, विश्व रचयिता, विश्व संतापहर्ता ईश्वर के निमित्त श्रेष्ठ हविष्यान्न प्रदान करते हैं ॥७८॥

१२९. सप्त ते अग्ने समिष्टः सप्त जिह्वः सप्त ऋण्यः सप्त धाम प्रियाणि । सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरापुणस्य धृतेन स्थाया ॥७९॥

हे अग्ने ! सात प्रकार की विशिष्ट समिष्टओं से आप प्रज्वलित होते हैं, ज्वालारूप सात जिह्वओं से हवि का रस ग्रहण करते हैं, सप्तर्षि उसके स्वरूप द्रष्टा हैं, सात नायक आदि छन्द आपके प्रिय धाम हैं, सात होत्र आपके निमित्त सात अग्निहोत्र करते हैं, सप्त विंति आपके उत्पत्ति-केन्द्र हैं, जो धी की आहुतियों से पूर्ण होते हैं यह आहुति उत्तम प्रकार से स्वीकार करें ॥७९॥

१३०. शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिर्माश्च । शुक्रश्च ऋतपाश्चात्यश्च हः ॥

उत्तम ज्योति वाले, विविध ज्योति वाले, सत्यरूप ज्योति वाले, तेजस्वी दीप्तिमान्, यज्ञरक्षक, पापरहित, मरुद्गण यज्ञ में पधारें । उनके निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥८०॥

१३१. ईदश्च चान्धादश्च सदश्च च प्रतिसदश्च च । मित्रश्च सम्मित्रश्च सभराः ॥८१॥

यज्ञ में अर्पित हविष्यात्र (पुरोडाश) को सम्मान दृष्टि से देखने वाले, अन्य दृष्टि से देखने वाले, समान रीति से देखने वाले, समानभाव से देखने वाले, सम्मान बन करने, पूर्वतन सम्प्राप्त मन वाले, समान शस्त्रास्त्र धारण करने वाले मरुद्गण हमारे यज्ञ में पधारें । उनके निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥८१॥

१३२. ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च । धर्ता च विधर्ता च विधारयः ॥८२॥

शुद्ध और सत्य स्वरूप, स्थिर, धारणशील, धर्ता, विधर्ता और विविध धर्ति से धारणकर्ता, (उज्ज्वल मरुद्गण) हमारे यज्ञ में पधारें । उनके निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥८२॥

१३३. ऋतजिष्ण्व सत्यजिष्ण्व सेनजिष्ण्व सुषेणश्च । अन्तिमित्रश्च दूरे अमित्रश्च गणः ॥८३॥

शुद्ध स्वरूप के विजेता, सत्यरूप के विजेता, सन् सेनाओं के विजेता, श्रेष्ठ सेनाओं वाले, मित्रों के समीप रहने वाले, शत्रुओं को दूर इटाने वाले तथा संपन्न रहने वाले ये मरुद्गण हमारे इस यज्ञ में पधारें । उनके निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥८३॥

१३४. ईदक्षास ऽ एतादक्षास ऽ ऊ षु षः सदक्षासः प्रतिसदक्षास ऽ एतन । मितासश्च सम्मितासो नो अद्य सभरसो मरुतो यज्ञे अस्मिन् ॥८४॥

हे मरुद्गण ! आप विविध कोणों से देखने वाले, सम्मान कोण से देखने वाले, प्रत्येक समान कोण से देखने वाले, मिश्रित कोण से देखने वाले, सम्मान प्रकार के मिश्रित कोण से देखने वाले तथा समान अलंकारों के धारक हैं । आप आज हमारे इस यज्ञ में पधारें । आपके निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥८४॥

१३५. स्वतर्वाश्च प्रधासी च सान्तपन्श्च गृहमेधी च । क्रीडी च शक्नी खोज्मेधी ॥८५॥

स्वयं अर्जित तपोबल से सम्पन्न और पुरोडाश आदि का पचन करने वाले, शत्रुओं को संतप्त करने वाले, गृहस्थ धर्म के पालक, क्रीडाशील बलशाली, यज्ञशक्त, विजयशील मरुद्गण हमारे यज्ञ में पधारें । आपके निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥८५॥

१३६. इन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोनवर्त्मानोऽभवन् यजेन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोन- वर्त्मानोऽपयन् । एवमिमं यजमानं दैवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु ॥८६॥

शक्तिशाली मरुद्गणों के रूप में देवताओं की सेना जिस प्रकार से इन्द्रदेव की प्रजारूप और उनकी अनुगामिनी है, उसी प्रकार से समस्त दैवी गुण और मनुष्यरूप सब प्रजा इस यजमान का अनुगमन करें ॥८६॥

१३७. इमं स्तनमूर्जस्वन्तं वयापां प्रपीनयाने सरिरस्य मध्ये । उत्सं जुषस्व  
मधुमन्तमर्वन्तस्समुद्रियं सदनमा विशस्व ॥८७॥

हे अग्ने ! जल के मध्य अवस्थित विशिष्टरस से परिपूर्ण, घृत घारा से युक्त द्रुक (घी होमने वाले पात्र) रूप  
स्तन का पान करे हे अर्वन् ! (गमनशील अग्ने) मधुर स्नेह वाला घृत से भरे द्रुक का स्नेहपूर्वक पान करे और  
तृप्त होकर समुद्र (चयन याग) सम्बन्धी इस यज्ञस्थल में शोध प्रविष्ट हों ॥८७॥

१३८. घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते त्रितो घृतम्बस्य धाम । अनुष्वधमायह मादधस्य  
स्याहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥८८॥

हम घृत को अग्नि के मुख में समर्पित करने की इच्छा करते हैं, अग्नि की उत्पत्ति का मूलकारण घृत है, यह  
घृत के आश्रित है, घृत ही अग्नि का आधार है । हे अध्वर्यु ! त्वि को अनुकूल (संस्कारित) कर अग्निदेव का  
आवाहन करो उसे तृप्त करके कर्त्ते वज्र के कर्त्त करके खासे हे अग्निदेव । आहुति द्वारा समर्पित हविष्यान्न  
को देवों तक पहुँचाएँ ॥८८॥

१३९. समुद्रादूर्ध्वमर्धुमाँर उदारदुयांश्च शुना समभृतत्वमानद् । घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति  
जिह्वा देवानामभृतस्य नाभिः ॥८९॥

मधुर रसयुक्त तरंगें, घृतरूप समुद्र से उठती हुई प्राक्भृत अग्निदेव से एकीकृत होकर अमरता को प्राप्त  
होती हैं उस घृत का गुप्त नाम देवों की जिह्वा और अभृत की नाभि के रूप में कहा गया है ॥८९॥

१४०. कथं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन् यज्ञे वारयामा नमोऽभि । उप ब्रूया शुणवच्छस्यमानं  
धतुःशुक्रोऽवमीश्रौरऽ एतत् ॥९०॥

५५ इस यज्ञ में घृत के नाम को उच्चारित करते हुए हविरूप अन्न द्वारा यज्ञ को पृष्ट करते हैं । यज्ञ में ब्रह्मा  
संज्ञा से विभूषित विद्वान् स्तुति में अर्पित घृत के नाम को सुनें । वह चार ब्रह्म के होताओं वाला, गौरवर्ण घृत,  
यज्ञ के फल को प्रकट करता है ॥९०॥

१४१. चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त इस्तासो अस्य । त्रिधा बद्धो वृषधो  
रोरवीति महो देवो मर्त्याँर आविवेश ॥९१॥

ब्रह्म, उद्गाता, होता और अध्वर्यु के चार इस यज्ञ के गृह्य हैं । ऋक्, यजु और सामरूपों वाले तीन चरण  
हैं, हविर्धान और प्रवर्ग्य रूप वाले दो शिर हैं । सात छन्दों के रूप में इसके सात हाथ हैं । यह तीन सवनों—  
घातः सवन, माध्यन्दिन सवन और सायं सवन में आबद्ध है । वह अत्यन्त बलवान्, महान्, शब्द करने वाला सर्वोत्तम  
पूजनीय देव (यज्ञ) मनुष्यलोक में अधिष्ठित है ॥९१॥

१४२. त्रिधा हितं षणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् । इन्द्रऽ एकं सूर्यऽ एकं  
जवान वेनादेकं स्वयया निष्ठतक्षुः ॥९२॥

तीनों लोकों में स्थित असुरों से छिपाकर रखे, यज्ञ के फलरूप प्राप्त घृत को देवों ने गौओं में से प्राप्त किया ।  
उसके एक भाग को इन्द्रदेव के निमित्त और दूसरे भाग को सूर्यदेव के निमित्त प्रकट किया तथा तीसरे भाग को  
यज्ञ साधन रूप अग्निदेव से आहुति के रूप में (स्व घृष्ट से) ब्राह्मणों ने प्राप्त किया ॥९२॥

१४३. एता ऽ अर्षन्ति ह्यदात्समुद्राच्छतवज्जा रिपुणा नावक्षे । घृतस्य घाराऽ अभि  
चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्यऽ आसाम् ॥९३॥

इस यज्ञ में अनेकों प्रकार की गतिमान घृत-धाराएँ उसी प्रकार प्रवाहित होती हैं, जैसे हृदयरूपी समुद्र से संकल्प के साथ उल्लास — उमंगरूप से धाराएँ फूटती हैं। ये धाराएँ जपु के गहर से दूटती नहीं हैं। इसके मध्य में अधिष्ठित तेजस्वी अग्निदेव को हम सब ओर से देखते हैं ॥९३॥

१४४. सम्यक् स्वन्ति सरितो न घेना ऽ अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः । एते अर्धन्ध्रमयो घृतस्य मृगाऽ इव क्षिपणोरीचमाणाः ॥९४॥

शरीर के अन्तर्धन और हृदय से पवित्र हुई यागिकी उन्मीलकर संचित होती हैं, जैसे शब्दायमान सरित् प्रवाह। ये घृत तरंगों यज्ञाग्नि की ओर उसी प्रकार प्रवाहित होती हैं, जैसे व्याघ्र से डरकर भागते हुए मृग दौड़ते हैं ॥९४॥

१४५. सिन्धोरिव प्राध्वने शूयनासो वातप्रमियः पतयन्ति यद्वाः । घृतस्य धाराऽ अरुधो न वाजी काष्ठा भिन्दन्मूर्ध्नि पिब्यमानः ॥९५॥

घृत की बहती धाराएँ यज्ञाग्नि पर ऐसे गिरती हैं, जैसे तीव्र वेग से प्रवाहित नदी की वायु के संयोग से उठती तरंगों विषम प्रदक्ष में गिरती हैं और जैसे श्रेष्ठ गुणों से युक्त कनशासी अश्व युद्धस्थल में शत्रुओं की सेनाओं का वेधन करता हुआ क्रम से निःसृत पक्षों का पृथ्वी पर सिंचन करता हुआ गमन करता है ॥९५॥

१४६. अभि प्रवन्त सपनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम् । घृतस्य धाराः समिधो न सन्ता ता जुषाणो ह्वयति जातवेदाः ॥९६॥

जिस प्रकार समान धन वाली रुक्-लावण्ययुक्त स्त्रियाँ हर्ष व प्रसन्नता व्यक्त करती हुई अपने-अपने पति को प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार घृत धाराएँ प्रदीप्त अग्नि को प्राप्त होकर उसे व्याप्त करती हैं। ये जातवेदा (सब कुछ जानने वाले अग्निदेव) उन धाराओं की अन्तर्गत खमना करते हैं ॥९६॥

१४७. कन्याऽ इव बहनुमेतवा ऽ त अज्यज्जाना ऽ अभि साकशीमि । यन्न सोमः सूयते यन्न यज्ञो घृतस्य धाराऽ अभि तत्पवन्ते ॥९७॥

जिस प्रकार अपने सुन्दररूप को प्रकट करती हुई कन्या स्वयंवर के समय अपने पति के समीप जाती है, उसी प्रकार जहाँ सोम का अभिषेक किया जाता है, जहाँ यज्ञ होता है, वहाँ ही घृत धाराओं को गमन करते हुए देखा जाता है ॥९७॥

१४८. अभ्यर्चत सुष्टुति गव्यमाजिमस्मासु भद्रा इविणानि वत्त । इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥९८॥

हे देवो ! आप श्रेष्ठ स्तुतियों कले घृतयुक्त यज्ञ को सब ओर से प्राप्त हो। जिस यज्ञ में मधुर स्वादयुक्त घृत धाराएँ गिरती हैं, उस समय की इन मधुर आहुतियों को देवलोक में प्राप्त कराएँ और हमें सब प्रकार के कल्याणकारी धन-ऐश्वर्य प्रदान करें ॥९८॥

१४९. धाम ते विश्वं भुवनमधि त्रितमन्तः समुद्रे ह्यन्तरायुधि । अषामनीके समिधे यऽ आधृतस्तमश्याम मधुमन्तं तऽ ऊर्ध्वम् ॥९९॥

हे अग्ने ! आपने अपनी धारक समर्थ से सम्पूर्ण लोकों को आश्रय दिया है। सागर के बीच में, हृदय में, जीवनकाल में, जल के संघात में और स्रज कार्य में श्री आपका श्रेष्ठ रूप सन्निहित है। उस मधुर आनन्दयुक्त, रस रूप तरंगों को हम प्राप्त करें ॥९९॥



## —ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

**ऋषि**—कुत्स १-७, ७० वसुयव ८ । मेघातिथि ९ । भरद्वाज १०, १६ । ऋषिसुता लोपामुद्रा ११-१५  
विश्वकर्मा ग्रीवन् १७-३२ । अश्वत्थि ३३-५२, ५४-५८, ६० । तापस ५३ । विशावसु ५९ । जेता माधुच्छन्दस  
६१ । विश्वति ६२-६९, ७१-७३ । कण्व ७४ । गृत्समद ७५, ८८ । वसिष्ठ ७६, ७८ । कुमार-वृष ७७ । सप्त  
ऋषिगण ७९-८७ । वामदेव ८९-९९ ।

**देवता**—मरुद्गण अरमा, आशोकद अश्विजर्वरक १ । अग्नि २-१२, १५, १६, ५०, ५३, ५५, ५६, ५८,  
६५-७३, ७५-७७, ७९, ८७-९० । ऋष-समूह १३, १४ । विश्वकर्मा १७-३२, ७८ । इन्द्र ३३-४४, ५१, ६१,  
६३ । इषु ४५ । योद्धागण ४६ । मरुद्गण ४७, ८०-८६ । सिंभोक्त ४८, ४९, ५२ । दिशार् ५४ । हविर्यज्ञ ५७  
आदित्य ५९, ६० । यज्ञ ६२ । इन्द्राग्नी ६४ । सविता ७४ । यज्ञपुरुष ९१-९९ ।

**छन्द**—भुरिक् अतिशक्वरी १ । निवृत् भिक्वृति २ । विराद् आषी पंक्ति ३, १५, ५६ । भुरिक् आषी गायत्री  
४-५ । आषी त्रिष्टुप् ६, २१, २५, २९, ३०, ३३, ३५-३७, ४१, ४९, ५८, ५९, ७०, ७३, ७५, ८७, ९२, ९५,  
९८ । आषी बृहती ७ । अषी गायत्री ८, ७७, ८१, ८२ । निवृत् अषी गायत्री ९, १६ । निवृत् अषी जगती १०,  
१३, ८४ । भुरिक् आषी बृहती ११ । निवृत् शक्वरी १२ । अषी शक्वरी १४, ७९ । निवृत् आषी त्रिष्टुप् १७, २२,  
२४, २७, ३९, ४३, ४७, ६०, ६६, ७४, ८८, ८९, ९३, ९४, ९६, ९७ । भुरिक् आषी पंक्ति १८, ३१, ५५, ६१,  
७१ । भुरिक् आषी त्रिष्टुप् १९, २३, २६, २८, ३८ । स्वराद् अषी त्रिष्टुप् २०, ३४, ५४, ९९ । स्वराद् आषी  
पंक्ति ३२ । विराद् आषी त्रिष्टुप् ४०, ४२, ४४, ९०, ९१ । अषी अनुष्टुप् ४५, ५१, ६४ । विराद् आषी अनुष्टुप्  
४६, ५०, ५३, ६२, ६३, ६५ । पंक्ति ४८ । निवृत् अषी अनुष्टुप् ५२, ६१, ६८ । निवृत् आषी बृहती ५७  
पिपीलिकामध्या बृहती ६७ । निवृत् आषी पंक्ति ७२ । अषी उष्णिक् ७६, ८० । विराद् अतिजगती ७८ । भुरिक्  
अषी उष्णिक् ८३ । स्वराद् आषी गायत्री ८५ । निवृत् शक्वरी ८६ ।

## ॥ इति सप्तदशोऽध्यायः ॥



## ॥ अथ अष्टादशोऽध्यायः ॥

१५०. वाङ्मय मे प्रसवय मे प्रयत्नि मे प्रसिद्धि मे धीति मे क्रतु मे स्वर मे श्लोक मे श्रव मे श्रुति मे ज्योति मे स्थ मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१॥

इस यज्ञ से हमारे लिए अन्न-सम्पदा ऐश्वर्य, पुरुषार्थ-करावण, श्रवण-क्षमता, बुद्धि की निर्णय क्षमता, कर्तृत्व-शक्ति, स्वर, श्लोक (यज्ञ-सम्पदा), श्रवण-क्षमता, ज्ञान-संपदा, वैवास्वति और आत्मवर्ति (स्वत्व) प्राप्त हो ॥१॥

१५१. प्राण मे पान मे व्यान मे सु मे चित्तं च मऽआधीतं च मे वाक् च मे मन मे चक्षु मे श्रोत्रं च मे दक्ष मे बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२॥

हमें प्राण वायु, अपान वायु, व्यान वायु, मुख्य प्राण, चिंतन, अभ्यवसाय, वाणी, मन, दृष्टि-क्षमता, श्रवण-दक्षता, और बल यह सब यज्ञ की फलश्रुति के रूप में प्राप्त हों ॥२॥

१५२. ओज मे सह मेऽआत्मा च मे तनु मे शर्म च मे वर्म च मेऽज्ञानि च मे स्थीनि च मे पराश्रयि च मे शरीराणि च मऽआयु मे जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३॥

इस यज्ञ के फल से हमारा ओज, सहिष्णुता, आत्मबल और शरीर बल बढ़े । सुख-सम्पदा, कवच, (शारीरिक सुरक्षा) अंगों की पुरेता, अभियों की दृढ़ता, अंगुली आदि की संधियों में दृढ़ता, शारीरिक आरोग्यता, आयुष्य और परिपक्वता में अभिवृद्धि हो ॥३॥

१५३. ज्यैष्ठ्यं च मऽआधिपत्यं च मे मन्यु मे घाम मे म मे म मे जेमा च मे घहिमा च मे वरिमा च मे शशिमा च मे वर्णिमा च मे दधिमा च मे वृद्धं च मे वृद्धि मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥४॥

यज्ञ के फलस्वरूप हमारी श्रेष्ठता, स्वामित्व, अनोति के प्रति क्रोध, दुष्टता के विरुद्ध प्रतिकारक क्षमता बढ़े । हमारी परिपक्वता, जीवनी शक्ति, विजयशीलता, बलता, उत्कृष्टता, व्यापकता, दीर्घायुष्य, बढ़प्पन, वंश-परंपरा और उत्कृष्टता में अभिवृद्धि हो ॥४॥

१५४. सत्यं च मे ब्रह्मा च मे जगज्ज मे वनं च मे विश्वं च मे मह्य मे क्रीडा च मे मोद मे जातं च मे जनिष्यमाणं च मे सूक्तं च मे सुकृतं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥५॥

यज्ञ के फल स्वरूप हम में सत्य और ब्रह्मा की वृद्धि हो । हमारे लौकिक पदार्थ, धन-सम्पदा, विश्वस्तर, महता, क्रीडा, मोद (हर्ष), संगान, सूक्त (ऊँचाई) और उन पर आचरित कर्मों में सब प्रकार अभिवृद्धि हो ॥५॥

१५५. ऋतं च मे मृतं च मे यक्षं च मे नामयज्ज मे जीवातु मे दीर्घायुत्वं च मे नमित्रं च मे धर्मं च मे सुखं च मे शयनं च मे सूक्ल मे सुदिनं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥६॥

यज्ञादि कर्मों के फल से श्रेष्ठ कर्म, अमृत-तत्व, यक्षदि रोषों का अभाव, आरोग्य, प्रतिरोधक क्षमता, दीर्घायुष्य, शत्रुओं का अभाव, निर्धनता, आनन्द, सुखकरक शयन, संध्योपासना हेतु सुप्रभात और उत्तम दिन में अभिवृद्धि हो ॥६॥

१५६. यन्ता च मे घर्ता च मे क्षेमश्च मे द्युतिश्च मे विश्वं च मे पशुश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रं च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥७॥

यज्ञ के फलस्वरूप हमें नेतृत्व-क्षमता, धारण-क्षमता, सम्पत्ति-रक्षण-क्षमता प्राप्त हो। हमें धैर्य, सभी लौकिक ऐश्वर्य, महान् सामर्थ्य प्राप्त हो। हमारी ज्ञान एवं विज्ञान क्षमता, कृषि के साधन और सांसारिक बाधाओं से निवृत्ति की क्षमताएँ प्राप्त हों ॥७॥

१५७. ज्ञां च मे मयश्च मे प्रियं च मेनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनसश्च मे धगश्च मे द्रविणं च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥८॥

यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के फल से सब सुख, सब आनन्द, प्रिय वदार्थ, अनुकूल वदार्थ, श्रेय वदार्थ, उत्तम मन, ऐश्वर्य, धन-सम्पदा, श्रेय-कल्याण, गृह-सुख, वर आदि अभिवृद्धि की प्राप्ति हो ॥८॥

१५८. ऊर्क् च मे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतं च मे मधु च मे सन्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च मेऽभौद्धिर्वा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥९॥

यज्ञादि के फलस्वरूप हमें अन्न, ज्ञानमयी वाणी, दूध, रसयुक्त पच घृत, मधु आदि प्राप्त हों। हय अपने बन्धुओं के साथ मिस्रकर भोजन करने वाले और दुग्धादि पान करने वाले हों। वृष्टि हमारे लिए धान्य उत्पन्न करने वाली तथा हमारी कृषि सुविधायित और अनुकूल बने। हमारे वृक्षों को बढ़ातरी भरी प्रकट हो और हम विजय के लिए उपयुक्त शक्ति सम्पन्न होकर राजपुत्रकी बने ॥९॥

१५९. रयिश्च मे रायश्च मे पुष्टं च मे पुष्टिश्च मे विभु च मे प्रभु च मे पूर्णं च मे पूर्णतरं च मे कुचवं च मेक्षितं च मेत्रं च मेक्षुच्य मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१०॥

यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के फल से हमारी संपदा, हमारे ऐश्वर्य हर प्रकार से पुष्ट हो। शरीर आदि की भी सब प्रकार से पुष्टि हो। हमारी व्यापकता, प्रभुता, पूर्णता और धन-धान्य की प्रचुरता में पर्याप्त वृद्धि होती रहे। हमारे कुयव (मनुष्यों के न खाने योग्य-पशुओं के उपयुक्त) धान्य अद्यावत् अन्न, वृष्टिकारक अन्न और हमारी धृष्टा में भी अभिवृद्धि होती रहे ॥१०॥

१६०. वित्तं च मे वेष्टं च मे भूतं च मे भविष्यच्च मे सुगं च मे सुपथं च मेऽऋद्धिं च मेऽऋद्धिश्च मे वसुपत्नं च मे वसुपत्तिश्च मे पतिश्च मे सुपतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥११॥

यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के फल से हमारे धन-द्रव्यादि में निरन्तर अभिवृद्धि हो। पूर्व संचित धन और भावी प्राप्त धन में वृद्धि हो। धन प्राप्ति के कार्य सुगम और सब अवरोधों से मुक्त हों। यज्ञीय सत्कर्म समृद्ध हों। हमारे ये कार्य श्रेष्ठ द्रव्य और सत् सामर्थ्य बढ़ाने वाले हों। ये (वज्ञीय सत्कारिण्य) हमारी मति को उच्च बनाने वाले व सबके लिए हितकारी (मंगलमय) हों ॥११॥

१६१. वीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुराश्च मे खत्वाश्च मे प्रियङ्गुश्च मे गायश्च मे श्यामाकश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमश्च मे मसुराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१२॥

यज्ञादि कर्मों के फलस्वरूप हमारे लिए बाँह, धान्य, ऊँ, उड़द, तिल, मूँग, चना, प्रियङ्गु (घातकैयनी, राई) अणव (छोटे तन्दुल-चावल), साँवा चावल, खेदार धान्य, गहूँ और मसूर आदि सब धान्यों में वृद्धि हो ॥१२॥

१६२. अश्वश्च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे धनस्पतयश्च मे हिरण्य च मेयश्च मे श्यामं च मे लोहं च मे सीसं च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१३॥

यज्ञादि कर्मों के फल से हमारे (खुनिज कर्त्तव्यों) वाषाण्, उत्तम बिड़ौ छोटे पर्वत, बड़े पर्वत, रेत, वनस्पतियाँ, सुवर्ण, लोहा, ताम्रलोह, रथाम लोह, सोसा और तीन आदि में बढ़ोत्तरी होती रहे । ॥१३॥

१६३. अग्निश्च मऽआपश्च मे वीरुमश्च मऽ ओषधयश्च मे कृष्टपच्यश्च मेकृष्टपच्यश्च मे ग्राम्याश्च मे पशवऽआरण्यश्च मे वित्तं च मे वित्तश्च मे भूतं च मे भूतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१४॥

यज्ञ के फल से देवगण हमारे लिए अग्नि को और आकाशोंय जल को अनुकूल बनाएँ । गुल्म, तृण, वनस्पति, ओषधियाँ, प्रवासपूर्वक उत्पन्न आर्वाधियाँ और स्वतः उत्पन्न आर्वाधियाँ पूर्णरूप से विकसित । यह यज्ञ ग्राम्य और जंगली पशुओं को पृष्ट करें पूर्व श्रुत और कर्त्तव्य प्राप्य धन, पुत्रादि सुख और ऐश्वर्य आदि में अभिवृद्धि हो ॥१४॥

१६४. वसु च मे वसतिश्च मे कर्म च मे शक्तिश्च मे र्वश्च मऽएम्श्च मऽइत्या च मे गतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१५॥

यज्ञादि कर्मों के फल से देवगण हमें उपयोगी वन-संपदा व गृह-संपदा से पृष्ट करें । इच्छित कर्म हेतु एवं इसे पूर्णता तक पहुँचाने हेतु अभीष्ट सामर्थ्य भी प्राप्त करवर्ष । अम्बस्वद धन, इष्ट साधन, इष्ट प्राप्ति का उपाय और गति-सामर्थ्य से भी अभिपूरित करें ॥१५॥

१६५. अग्निश्च मऽइन्द्रश्च मे सोमश्च मऽइन्द्रश्च मे सविता च मऽइन्द्रश्च मे सरस्वती च मऽइन्द्रश्च मे पूषा च मऽइन्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च मऽइन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१६॥

यज्ञ के फल से हमारे निमित्त अग्निदेव के साथ इन्द्रदेव की, सोमदेव के साथ इन्द्रदेव की, सवितादेव के साथ इन्द्रदेव की, देवी सरस्वती के साथ इन्द्रदेव की, पूषादेव के साथ इन्द्रदेव की और बृहस्पतिदेव के साथ इन्द्रदेव की अनुपम कृपा में अभिवृद्धि हो ॥१६॥

१६६. मित्रश्च मऽइन्द्रश्च मे वरुणश्च मऽइन्द्रश्च मे धाता च मऽइन्द्रश्च मे त्वष्टा च मऽइन्द्रश्च मे मरुतश्च मऽइन्द्रश्च मे विश्वे च मे देवाऽ इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१७॥

यज्ञादि प्रेरित कर्मों के फलस्वरूप हमारे निमित्त मित्रदेव के साथ इन्द्रदेव की, वरुणदेव के साथ इन्द्रदेव की, धाता देव के साथ इन्द्रदेव की, त्वष्टादेव के साथ इन्द्रदेव की, मरुदेव के साथ इन्द्रदेव की विश्वदेवा के साथ इन्द्रदेव की अनुपम कृपा में अभिवृद्धि हो ॥१७॥

१६७. पृथिवी च मऽइन्द्रश्च मेन्तरिक्षं च मऽइन्द्रश्च मे रौक्ष मऽइन्द्रश्च मे समाश्च मऽइन्द्रश्च मे नक्षत्राणि च मऽइन्द्रश्च मे दिशश्च मऽइन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१८॥

यज्ञ कर्म के फलस्वरूप हमारे निमित्त भूमिदेव, अन्तरिक्षदेव सुलोक के देव, पृष्टि के देव, नक्षत्रों के देव, दिशाओं के देवगणों की अनुपम कृपा की प्राप्ति हो; पर इन सब देवगणों के साथ साथ देवों के राजा इन्द्र की कृपा अनिवार्यतः प्राप्त हो ॥१८॥

१६८. अ ऋ शुश्च मे रश्मिश्च मेदाभ्यश्च मेधिपतिश्च मऽउषा ऋ शुश्च मेन्तर्यामिश्च मऽऐन्द्रवायवश्च मे मैत्रावरुणश्च मऽआश्विनश्च मे प्रतिप्रस्थानश्च मे शुक्रश्च मे यन्त्री च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१९॥

यज्ञकर्म के फलस्वरूप अंशुग्रह, रश्मिग्रह, अदाभ्यग्रह, अधिपतिग्रह, उषांशुग्रह अन्तर्यामिग्रह, ऐन्द्रवायवग्रह, मैत्रावरुणग्रह, आश्विनग्रह, प्रतिप्रस्थानग्रह, शुक्रग्रह, यन्त्रीग्रह आदि सभी सहायक होकर हमें पृष्ट करें ॥१९॥

१६९. आग्रयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे सुवश्च मे वैश्वानरश्च मऽऐन्द्राम्णश्च मे महावैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे निष्केवल्यश्च मे सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे पालीवतश्च मे हरियोजनश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२०॥

यज्ञकर्म के फलस्वरूप आग्रयण, वैश्वदेव, सुव, वैश्वानर, ऐन्द्राम्ण, महावैश्वदेव, मरुत्वतीय, निष्केवल्य, सावित्र, सारस्वत, पालीवत और हरियोजन आदि सभी अनुकूल होकर हमें पुष्ट करें ॥२०॥

१७०. सुवश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे ग्रावाणश्च मेधिवरणे च मे पूतमृच्च मऽआश्वनीयश्च मे वेदिश्च मे बर्हिश्च मेवभृच्च मे स्वर्गाकारश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२१॥

यज्ञ के फल से हमारे निमित्त सुव, चमस, वायव्य आदि यज्ञ पात्र, द्रोणकलश, ग्रावा, अधिवरण फलक (आष्ठफलक), पूतमृत (सोमपात्र), आश्वनीय पात्र, वेदिक और कुत्त, अवधृत्स्नान और शम्भुवाक पात्र अनुकूल होकर अभीष्ट पूर्ति करें ॥२१॥

१७१. अग्निश्च मे अर्धश्च मेरुश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मेभ्यमेधश्च मे पृथिवी च मेदितिश्च मे दिनिश्च मे द्यौश्च मेऋत्यः शक्वरयो दिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२२॥

यज्ञ के फल से हमारे लिए अग्नि, प्रवर्ग, बुरोडाज सम्बन्धीवाग, सूर्य, प्राण, अन्नमेध, धूमि, दिति और अदिति, घुलोक, विराट् पुरुष के अचवय, शक्तिवी और दिशार्थ आदि सब महावक होकर हमें अभीष्ट प्राप्त कराएँ ॥२२॥

१७२. वत च मऽअग्रावश्च मे तपश्च मे संवत्सरश्च मेहोरात्रे ऊर्वन्धीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२३॥

यज्ञ के फलस्वरूप वत, ऋतु, तप, संवत्सर, दिन-रात, ऊर्वन्धी, बृहद्रथन्तर साम आदि सब हमारे अनुकूल होकर हमें अभीष्ट प्राप्त कराएँ ॥२३॥

१७३. एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च मऽएकादश च मऽएकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च मऽएकविंशं शतिश्च मऽएकविंशं शतिश्च मे त्रयोविंशं शतिश्च मे त्रयोविंशं शतिश्च मे पञ्चविंशं शतिश्च मे पञ्चविंशं शतिश्च मे सप्तविंशं शतिश्च मे सप्तविंशं शतिश्च मे नवविंशं शतिश्च मे नवविंशं शतिश्च मऽएकत्रिंशं शच्च मऽएकत्रिंशं शच्च मे त्रयस्त्रिंशं शच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२४॥

यज्ञ के फलस्वरूप हमारे निमित्त एक संख्यक श्लोम, तीन संख्यक, चार संख्यक, सात संख्यक, नौ संख्यक, ग्याह संख्यक, तेरह संख्यक, पंद्रह संख्यक, सत्रह संख्यक, उन्नीस संख्यक, इक्कीस संख्यक, तेईस संख्यक, पच्चीस संख्यक, सत्ताहस संख्यक, उन्तीस संख्यक, इकतीस संख्यक और तैंतीस संख्यक श्लोम सहायक होकर अभीष्ट प्राप्त कराएँ ॥२४॥

[ इस कंडिका में विंश (उन्नीस) संख्यकों का क्रम दिया गया है । त्रयोदश संख्य के साथ 'च' जुड़ा है । इसका अर्थ + १ कर लेने पर ये सब संख्याएँ बन जाती हैं । 'वैदिक सप्तत्य' नामक सूत्रों में इन्हीं से पञ्चदश एवं त्रयोविंश आदि के सूत्रों का विकास की सिद्धि किया गया है । यज्ञ का एक अर्थ समर्पितकर्म है, अर्पण से अर्पण की समर्पित करने से अर्पण सिद्धि करती है । यज्ञेन कल्पन्ताम् का अर्थ अर्पण की समर्पित करने के संदर्भ से भी लिया जाता है । ]

१७४. चतसृश्च मेष्टौ च मेष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विंशतिश्च मे विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मेष्टाविंशतिश्च मेष्टाविंशतिश्च मे द्वात्रिंशच्च मे द्वात्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मेष्टाचत्वारिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२५॥

यज्ञ के फलस्वरूप हमारे निर्मित चार संख्यक स्तंभ, आठ संख्यक, बारह संख्यक, सोलह संख्यक, बीस संख्यक, चौबीस संख्यक, अट्ठाइस संख्यक, बत्तीस संख्यक, छत्तीस संख्यक, चात्तीस संख्यक, नौवालीस संख्यक और अड़तालीस संख्यक स्तंभ संख्यक होकर अर्थात् प्राप्ति करता है । २५ ।

१७५. अयिष्ठ मे अयी च मे दित्यवाद् च मे दित्यौही च मे पञ्चाविष्ठ मे पञ्चायी च मे त्रिवत्सष्ठ मे त्रिवत्सा च मे तुर्यवाद् च मे तुर्यौही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२६॥

यज्ञ के फलस्वरूप हमारे निमित्त देव वर्ष का बछड़ा और बछिया, दो वर्ष का बछड़ा और बछिया, द्वाँ वर्ष का बछड़ा और बछिया, तीन वर्ष का बैल और गाय तथा सन्ने तीन वर्ष (अर्द्धाक गणना के सूत्र) का बैल और गाय सहायक लेकर प्राप्त हों - २६ ॥

१७६. पष्ठवाद् क मे षष्ठांही च मऽउक्षा च मे वशा च मऽऊवभश्च मे षेहज्ज मेनइयाँश्च मे  
घेनश्च मे घजेन कल्पन्ताम् ॥२७॥

यज्ञ के फल से चार वर्ष का वृषभ और गाय, सेवन-समय वृषभ और बन्धा गाय, पुष्ट वृषभ और गर्भघातिनी गाय, गाड़ी बहन करने में समर्थ बैल और नवप्रसूता गौ आदि ज्ञान प्राप्त हो। अर्थात् हम सब प्रकार की पशु-सम्पदा से युक्त हों ३७॥

१७७. वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाहर्षतये स्वाहाह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैन ११ शिनाय स्वाहा विन १२ शिन ५ आन्त्यायनाय स्वाहान्त्याय धौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा । इयं ते राष्मिन्नाय यन्तासि यमन ५ ऊर्जे स्वा धृष्ट्वै स्वा प्रजानां त्वाधिपत्याय ॥२८॥

(अन्न प्राचुर्य के कारण) वज्र (अन्न) रूप वैन के लिए (जल क्रीडादि की प्रमुखता का परिचय देने वाले) प्रसवरूप वैशाख मास के लिए (ज, क्रीडादि में अधिक आनन्द देने वाले) अपिज रूप ज्येष्ठ मास के लिए (चातुर्मास्यादि यागों की प्रचुरता के हेतु) अतुरूप आषाढ़ मास के लिए (चातुर्मास्य में यात्रा के निबंधक) वसुरूप श्रावण मास के लिए (वर्षान्तर तीव्रतत्त्वकारी) अर्हपति रूप माघपद मास के लिए (तुषारपात के कारण) मुग्ध (मोह) रूप आश्विन मास के लिए (दिनपान घटने के कारण विनाशशील तथा स्नान-दानादि के कारण पापनाशक) अमुग्ध एवं विनंशी स्वरूप कार्तिक मास के लिए (दक्षिणायन के अन्त में स्थित होने वाले) अविनाशी विष्णुरूप मार्गशीर्ष मास के लिए (जठराग्नि को दीप्त करने के हेतुभूत) श्रौवन स्वरूप पौष मास के लिए (सम्पूर्ण भूतजात प्राणिमात्र के शालन करने वाले) भुवनपति रूप माघ मास के लिए (वर्ष के अन्त में होने तथा शैत्य की कमी के कारण अधिक रुचिकर अथवा वसन्त ऋतु के आविर्भाव के कारण अधिक स्वास्थ्यकर—सुन्दर) प्रजापति रूप फाल्गुन मास के लिए ये आहुतिर्ह्यं समर्पित हैं हे प्रजापते । इस अपने राज्य में आप इस यज्ञमान के मिश्रित हितैषी हैं । आप यज्ञादि क्रियाओं के निमित्त हैं । पौषक अन्नरूप ऊर्जा की वृद्धि के लिए (घन-धान्य प्राप्ति के निमित्त) वृष्टि के लिए प्रजाओं के अधिपति रूप में संरक्षण के लिए हम आपको प्रीतिपूर्वक नमन करते हैं ॥२८॥

१७८. आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पता २३ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पता २४ स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरं च । स्वर्देवा ऽ अगन्माप्ता ऽ अभूम प्रजापतेः प्रजा ऽ अभूम वेद् स्वाहा ॥२९॥

यज्ञ के फल से हमारी आयु में अभिवृद्धि हो । श्रवण तेजयुक्त बलों से पूर्ण हो । चक्षु और श्रवण इन्द्रिया उत्कृष्टता से अभिपूरित हों । वाणी उत्कृष्ट हो । मन समर्थवान् हो । आत्मा परम आनन्द में पूर्ण हो । वेदों के ज्ञाता (ब्रह्मा) सन्तोष से परिपूर्ण हों । यज्ञ से ज्योतिर्मान् परमवत्त्व की प्राप्ति हो । यज्ञ से स्वर्ग प्राप्त हो । स्वर्गिक सुख प्राप्त हो । यज्ञ से यज्ञ उत्कर्षता को प्राप्त हो । स्तुति के मन्त्र, यजु, ऋक्, साम, बृहत् और रथन्तर भी हमारी अभीष्ट प्राप्ति में सहायक हों । समस्त देवगण स्वयं प्रत्यक्षपूर्वक हम में देवात्मा स्थापित करके, स्वर्ग के अनृतमय सुखों को प्राप्त कराएँ । हम भी प्रजापति परमात्मा की प्रजारूप में सुख भोग करें । इसी अभिलाषा से प्रेरित यह विशिष्ट आहुति समर्पित है ॥२९॥

१७९. वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीपदिति नाम वचसा करामहे । वस्यामिदं विश्वं भुवनमाविशेश तस्यां नो देवः सविता धर्म साविशत् ॥३०॥

अपने दिव्य रसों एवं अन्न से समस्त प्राणियों को पोषण देने वाली अक्षय्य पृथ्वी की हृम उत्तम स्तुतियों से वन्दना करते हैं, इसमें सम्पूर्ण लोक समाविष्ट हैं । सम्पूर्ण जगत् की अपनी दिव्य किरणों से प्रेरित करने वाले सवितादेव इस पृथ्वी में हमारी स्थिति को सुदृढ़ करें ॥३०॥

१८०. विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऽ ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः । विश्वे नो देवाऽ अवसागमन्तु विश्वमस्तु इविणं वाजो अस्मे ॥३१॥

आज हमारे इस यज्ञ में सम्पूर्ण मरुद्गण बधारे । सरक्षण करने वाली समस्त देव मत्ताएँ (विश्वदेवा आदि) रक्षा साधनों सहित यज्ञ में पधारे । समस्त अग्निवा क्रोधात् हो । हमें महान् ऐश्वर्य व अन्न प्राप्त कराएँ ॥३१॥

१८१. वाजो नः सप्त प्रदिशस्तस्रो यो परावतः । वाजो नो विश्वेदेवैर्धनसाताविहावतु ॥

हमारे अन्न, ज्ञान, ऐश्वर्य, पराक्रम आदि करो तत्त्वों और सातों दिशाओं में अभिवृद्धि को प्राप्त हों । समस्त दिव्य शक्तियाँ हमारे धन-धान्य की रक्षा करें ॥३२॥

१८२. वाजो नो अद्य प्र सुवाति दानं वाजो देवार् ऋतुषि कल्पयाति । वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा ऽ आशा वाजपतिर्धनेयम् ॥३३॥

अन्न के अधिपत्या देव आप हमें अन्नदान की प्रेरणा दे । सब देवगणों को ऋतुओं के अनुकूल हविष्यान्न प्राप्त होता रहे । अन्नदेव हमें (पुत्र-पौत्रादि) वीरों से सम्पन्न करें । हम अन्न के अधिपति देवरूप को ग्रहण कर सब दिशाओं में प्रगति करें ॥३३॥

१८३. वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवान् हविषा वर्धयाति । वाजो हि मा सर्ववीरं चकार सर्वाऽ आशा वाजपतिर्धनेयम् ॥३४॥

अन्न हमारे आगे और पृष्ठों के मध्य उत्पन्न होता है, अन्न हविषों द्वारा देवगणों को दत्त (पुष्ट) करता है । अन्न ही हमें (पुत्र-पौत्रादि) वीरों से युक्त करता है । हम अन्न के अधिपति होकर सभी दिशाओं में प्रगति करें ॥३४॥

९८४. सम्मा सृजामि पयसा पृथिव्याः सम्मा सृजाम्यद्भिरोषधीभिः । सोहं वाज  
२३ सनेयमग्ने ॥३५॥

हे अग्ने ! हम इस पृथ्वी पर उपलब्ध होने वाले रसों को अपने आप से संयुक्त करते हैं । हम जल और ओषधियों को भी अपने से संयुक्त करते हैं । हम ओषधियों और जल रूप में पोषक अन्न प्राप्त करते हैं ॥३५॥

९८५. पयः पृथिव्यां पयऽ ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो वाः । पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु  
मह्यम् ॥३६॥

हे अग्ने ! आप इस पृथ्वी पर समस्त पोषक रसों को स्थापित करें । ओषधियों में जीवन रस को स्थापित करें । सुलोक में दिव्यरस को स्थापित करें । अन्तरिक्ष में जल रस को स्थापित करें । हमारे लिए ये सब दिशाएँ व उपदिशाएँ अभीष्ट रसों को देने वाली हो ॥३६॥

९८६. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेक्षिनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । सरस्वत्यै वाचो  
सन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः साध्नाप्येनाभिच्छिष्यामि ॥३७॥

सवितादेव के उदय होने पर उनकी प्रेरणा से दोनों अक्षिनोकुमारों की बाहुओं एवं पूषादेव के दोनों हाथों से, देवी सरस्वती की वाणी और नियामक सत्ता के नियमन से तथा अग्निदेव के सप्ताज्य से हे यजमान अनुदानों की वर्षा के रूप में आपका अभिषेक किया जा रहा है ॥३७॥

९८७. प्रज्ञाचाकृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोप्सरसो मुदो नाम । स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु  
तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥३८॥

॥३० ॥८ से ४४ तक की कर्त्तव्यताओं से 'इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु' का सम्यक् है । अधिकतर इसका अर्थ किया जाता है, 'इस ब्राह्मण एवं क्षत्रिय की रक्षा करें, किन्तु यज्ञ के प्रत्यक्ष से यज्ञ से लगने वाली श्रुतियों 'ब्रह्मर्षि— ब्रह्मर्षिज्य एवं क्षत्र - परब्राह्मण की कृति, की रक्षा का यज्ञ अधिक पुण्यजनक होता है—

सत्य के बल से विजय पाने वाले, श्रेष्ठ आधार वाले, पृथिवी को धारण करने वाले अग्निदेव ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि श्रेष्ठ वर्णों, द्विजातियों अर्थात् सत्स्कारवान् नगरिकों की रक्षा करने वाले हो । उनके निमित्त यह आहुति प्रीतिपूर्वक अर्पित है । प्राणियों में हर्ष का संचार करने वाली ओषधियाँ इस अग्निरूपी गन्धर्व की अप्सरारूप हैं, वे हमारी रक्षा करें । उन्हें प्रीतिपूर्वक यह आहुति समर्पित है ॥३८॥

९८८. स२३३हितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोप्सरसऽ आयुवो नाम । स नऽइदं  
ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥३९॥

दिन और रात्रि को मिलाने वाले, सामवेद की उत्तम कृत्ताओं द्वारा स्तुत्य पृथ्वी के कर्ता-धर्ता सूर्यदेव हमारे सुवर्णों अर्थात् सत्स्कारवान् ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णों की रक्षा करें । उनके निमित्त यह आहुति अर्पित है । परस्पर संयोग के गुणवाली व्यापक गन्धर्वरूप सूर्य रश्मियों इनकी अप्सराओं के रूप में हैं वे हमारी रक्षा करें । उनके निमित्त प्रीतिपूर्वक आहुति अर्पित है ॥३९॥

९८९. सुषुम्णः सूर्यरश्मिस्तन्मा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो धेकुरयो नाम । स नऽइदं  
ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४०॥

उत्तम आह्लाद प्रदायक, सूर्य रश्मियों से प्रकाश पाने वाले चन्द्रमा रूप गन्धर्व हमारे वायुबल और क्षात्रबल की रक्षा करें । उनके निमित्त यह आहुति समर्पित है । विशेष रूप से कर्त्तव्यमान्, आरोग्यवर्धक, शीतल रश्मियाँ उनकी अप्सराएँ हैं, वे हमारी रक्षा करें । उनके निमित्त प्रीतिपूर्वक आहुति अर्पित है ॥४०॥



१९०. इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापो अप्सरसऽ ऊर्जो नाम । स नऽ इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाद् ताभ्यः स्वाहा ॥४१॥

शीघ्र तमनशील, सर्वत्र व्याप्त इस भूमि को छात्र करने वाले जो गन्धर्वरूप वायु देव हैं, वे हमारे ब्राह्म और क्षत्र बल की रक्षा करें । उनके निमित्त प्रीतिपूर्वक आहुति समर्पित है । प्राणियों के जीवन रस रूप बल इनकी अप्सराएँ हैं, वे हमारा रक्षा करें । उनके निमित्त प्रीतिपूर्वक आहुति अर्पित है ॥४१॥

१९१. भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणाऽ अप्सरस स्तावा नाम । स नऽ इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाद् ताभ्यः स्वाहा ॥४२॥

प्राण-पर्जन्य के रूप में फेरक पदार्थों के दत्त, सदैव उत्तम गमनशील यज्ञरूप गन्धर्व हैं, वे हमारे ब्राह्म बल और क्षत्र बल की रक्षा करें । उनके निमित्त श्रेष्ठ आहुति अर्पित है । श्रेष्ठ स्तुतिरूप स्तावा नामक दक्षिणा उस यज्ञ को अप्सरा हैं, वे हमारा रक्षा करें । उनकी प्रीति के निमित्त श्रेष्ठ आहुति अर्पित है ॥४२॥

१९२. प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऋक्सामान्वप्सरसऽ एष्टयो नाम । स नऽ इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाद् ताभ्यः स्वाहा ॥४३॥

प्रजा के पालक, समस्त विश्व के कर्ता, मनरूप गन्धर्व हयों वाय और वायु बल की रक्षा करें । उनके निमित्त प्रीतिपूर्वक यह आहुति अर्पित है । असीदृ कदाचक एहि नाम की ऋक् और सामवेद की कृपाएँ मन की अप्सराओं के समान हैं, वे हमारा रक्षा करें । यह आहुति उनके निमित्त प्रीतिपूर्वक अर्पित है ॥४३॥

१९३. स नो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य तऽउपरि गृहा यस्य वेह । अस्मै ब्राह्मणेस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा ॥४४॥

विश्व का पालन करने वाले हे प्रजापते । ऊपर ऊर्ध्वलोक के वह भगवा इस लोक के यह सब आपके ही आश्रय पर अवलम्बित हैं । ऐसे आप हमारे इस ब्रह्मण्यत्व और क्षत्रत्व को महान् मुख देने वाले हो । आपके निमित्त प्रीतिपूर्वक यह आहुति समर्पित है ॥४४॥

१९४. सम्पुद्रोसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा । मारुतोसि मरुतां गणः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा वस्यूरसि दुवस्वाच्छम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ॥४५॥

हे वायो । आप सागर के सदृश अपाच अंश से पूर्ण हैं, नममण्डल में सर्वत्र व्याप्त रहने वाले, सृष्टि द्वारा भूतल की आर्द्र करने वाले, सब सुखों को प्रदान करने वाले तथा परम हर्ष उत्पन्न करने वाले हैं । आप अन्तरिक्ष में गमनशील, मरुद्गण स्वरूप हैं । सबको अपने आश्रय में संरक्षण देने वाले, अन्न उत्पन्न करने वाले, सम्पूर्ण सुख और हर्ष उत्पन्न करने वाले हैं । स्वप्न हमें परिचित कर । आपके निमित्त प्रीतिपूर्वक आहुति अर्पित है ॥४५॥

१९५. यास्ते अग्ने सूर्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः । ताभिर्नो अद्य सर्वाधी रुचो जनाय नस्कृधि ॥४६॥

हे अग्ने । आपका दिव्य प्रकाश सूर्य रश्मियों द्वारा सुलोक को प्रकाशित करता है । वह ज्योति आज दिव्य कात्तिक्रियुक्त होकर हमें और हमारे पुत्र पौत्रादि को तेज सम्पन्न बनने के लिए प्रकाशित हो ॥४६॥

१९६. या वो देवः सूर्ये रुचो गोघ्नश्रेषु या रुचः । इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाधी रुचन्तो यत्त बृहस्पते ॥

हे इन्द्र, अग्नि, बृहस्पति आदि विश्व की समस्त देवशक्तियों । आपको जो दीप्तियाँ सूर्यमण्डल में विद्यमान हैं और जो दीप्तियाँ गौओं और ज्यों में तेजस्वरूप में समाविष्ट हैं । उन सम्पूर्ण दीप्तिओं से प्रकाशित हुए आप हमारे अन्दर दिव्य तेज को धारण कराएँ ॥४७॥

१९७. रुचन्नो मेहि ब्राह्मणेषु रुचन्ते राजसु नस्कृधि । रुचं विश्वेषु शूत्रेषु मयि मेहि रुचा रुचम् ॥४८॥

हे अग्ने ! हमारे ब्राह्मणों में तेजस्विता स्थापित करें । हमारे क्षत्रियों में तेजस्विता स्थापित करें । वैश्यों को तेजस्विता धारण कराएँ और शूद्रों में तपस्वित्व दिव्य तेजों को धारण कराएँ ( जिससे कि हमारे राष्ट्र में चारों वर्ण तेजस्वी हों ) ॥४८॥

१९८. तत्त्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणोह बोध्युरुश ॥ स मा न ऽ आयुः प्र मोषीः ॥४९॥

वेद मन्त्रों द्वारा अभिनन्दित हे वरुणदेव । हवियों का दान देकर यजमान लौकिक सुखों की आकांक्षा करता है । हम वेद-वाणियों के ज्ञाता (ब्राह्मण) यजमान की तुष्टि व वसन्तक के निमित्त स्तुतियों द्वारा आपको प्रार्थना करते हैं । सबके द्वारा स्तुत्य देव । इस स्थान में आप क्रोध न करके हमारी प्रार्थना सुनें । हमारी आयु को किसी प्रकार क्षीण न करें ॥४९॥

१९९. स्तार्ण धर्मः स्वाहा स्वर्णार्कः स्वाहा स्वर्ण शुक्रः स्वाहा स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा स्वर्ण सूर्यः स्वाहा ॥५०॥

सर्वत्र प्रकाश बिखेरने वाले आदित्यदेव के निमित्त यह आहुति समर्पित है । सूर्यरूप अग्निदेव के निमित्त यह आहुति समर्पित है । शुभ तेजों से युक्त देव के निमित्त यह आहुति समर्पित है । अन्तर्निहित ज्योति के निमित्त यह आहुति समर्पित है । अन्तः प्रकाशित सूर्य के निमित्त यह आहुति समर्पित है । यह सब आहुतियाँ उत्तम प्रकार से स्वीकृत हों ॥५०॥

१०००. अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्य ॥ सुपर्ण वयसा बृहन्तम् । तेन वयं गमेम ब्रह्मस्य विष्टप ॥ स्वो रुहाणा अधि नाकमुत्तमम् ॥५१॥

दिव्य गुणसम्पन्न, श्रेष्ठ गति वाले, मज्जाआहुतियों से वृद्धि को पाने वाले अग्निदेव को हम बलदायक घृत से सुसम्पन्न करते हैं । हम इस माध्यम से आदित्यलोक को गमन करेंगे, फिर ऊपर स्वर्ग को गमन करते हुए संताप रहित सर्वोत्तम लोक को प्राप्त होंगे ॥५१॥

१००१. इमौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणौ बाध्या ॥ रक्षा ॥ स्थपह ॥ स्वर्गने । ताभ्यां पतेम सुकृताम् लोकं यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥५२॥

हे अग्ने ! आपके ये दोनों पक्ष कर्षी न जोर खेने वाले और उड़ने में सदैव प्रवृत्त रहने वाले हैं, जिसके द्वारा आप राक्षसों का विनाश करते हैं । उन पक्षों के सहारे ही हम पुण्यत्माओं के दिव्यलोक को गमन करें, जहाँ प्रथम उत्पन्न पूर्वकालीन ऋषिगण गये हैं ॥५२॥

१००२. इन्दुर्दक्षः श्येन ऽ क्रतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुरण्युः । महान्सषस्थे भुव ऽ आ निष्तो नमस्ते अस्तु मा मा हि ॥ सीः ॥५३॥

हे अग्ने ! आप चन्द्र के तुल्य अनन्द प्रदान करने वाले, सतत प्रबलशील, वाज्र के तुल्य वेगवान्, सत्यरूप कर्म वाले, स्वर्णिम (सत्य) बल वाले, शक्तिमान्, परम्प-पोषण के आधर रूप, महान् सामर्थ्यवान् अदत्त, यज्ञ में अविच्छिन्न रूप से स्थित रहने वाले हैं, आपको सतत नमन है । आप हमें किसी प्रकार पीड़ा न दें ॥५३॥

**१००३. दिवो मूर्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गपामोषधीनाम् । विश्वायुः शर्म सप्रश्ना नमस्पथे ॥**

हे अग्ने ! आप स्वर्गलोक के मस्तक कृत्य मूर्धन्य और पृथ्वी के नाभि स्वरूप केन्द्र बिन्दु हैं । आप जल और ओषधियों के साररूप हैं । सपस्त प्राणियों के जीवन आधार, सुख-प्रदायक आप समान रूप से व्याप्त होकर स्थित हैं । सबके पथ-प्रकाशकरूप, आपके लिए सतत नमन है ॥५४॥

**१००४. विश्वस्य मूर्धप्रथितिष्ठसि श्रितः समुद्रे ते हृदयमप्स्वायुरपो दत्तोदधिं भिन्त । दिवस्पर्जन्यादन्तरिक्षात्पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्याय ॥५५॥**

हे अग्ने ! सर्वत्र व्याप्त होकर आप विश्व के सर्वोच्च स्थान में अंकित हैं । आपका हृदय अन्तरिक्ष में तथा आयु जल में व्याप्त होकर प्रतिष्ठित है । आप झूलोक से अन्तरिक्ष से, पृथिवी के गर्भ तथा अन्य स्थानों से जल लाकर पृथिवी पर वृष्टि द्वारा हमारी रक्षा करें । मेषों को विदीर्ण कर जल प्रदान करें ॥५५॥

**१००५. इष्टो यज्ञो भृगुभिराशीर्दा वसुभिः । तस्य नऽ इष्टस्य प्रीतस्य इविणोद्भागमेः ॥५६॥**

हे इविण (धन) आप हमारे इष्टरूप हमसे प्रीति करने वाले हैं । धन को कमाया करने वाले यजमान के घर को अपने वैधव्य से सम्पन्न करें । इच्छित फल देने वाला यह यज्ञ भृगुओं (ऋषि विनाशक वीरों) और वसुओं (निवासक वीरों- वृ सम्पदावान् वीरों) द्वारा उत्तम प्रकार से सम्पादित किया गया है ॥५६॥

**१००६. इष्टो अग्निराहुतः पिपर्तुं नऽ इष्टं धं हविः । स्वगेदं देवेभ्यो नमः ॥५७॥**

यज्ञ सम्पादन में सबसे प्रमुख अग्निदेव, याचकों द्वारा प्रदत्त इवि से दृप्त होकर हमारे अभीष्ट को पूर्ण करें और स्वयं गमनशील होकर यह हवि देवताओं को प्राप्त कराएँ ॥५७॥

**१००७. यदाकृतात्समसुखोदयुदो वा मनसो वा सम्पूतं वक्षुषो वा । तदनु प्रेत सुकतामु लोकं यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमजः पुराणाः ॥५८॥**

हे ऋषिगण ! जो ज्ञान अन्तर्प्रेरणा से, हृदय से, मानस से या नेत्रादि इन्द्रियों से सम्पन्न प्रकार स्थित हुआ है, उसके अनुगामी होकर आचारकान् सत्पुरुषों के दिव्यलोक को ही प्राप्त करें, जहाँ प्रथम उत्पन्न पूर्वकालीन ऋषिगण प्राण हुए हैं ॥५८॥

**१००८. एतं धं सद्यस्य परि ते ददामि यमावहाच्छेवधिं जातवेदः । अन्वागन्ता यज्ञपतिर्वीं अत्र तं धं स्म जानीत परमे व्योमन् ॥५९॥**

स्वर्ग में निवास करने वाली हे दिव्य शक्तियों ! अग्निदेव ने जिस यज्ञ के सुखमय फल को यजमान के लिए प्रदान किया है, उस फल को हम आपके लिए अर्पित करते हैं । हे देवो ! यजमान आपके पास आयेगा; परम (व्यापक अथवा श्रेष्ठ) स्वर्ग में आये यजमान को आप जाने । (अभीष्ट प्रदान करें) ॥५९॥

**१००९. एतं जानीथ परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद रूपमस्य । यदागच्छात्पृथिविर्देवयानैरिष्टापूर्ते कृणवाथानिरस्मै ॥६०॥**

परम श्रेष्ठ स्वर्ग में स्थित हे देवो ! इस यजमान से एवं इसके श्रेष्ठस्वरूप से अवगत हों जिस समय यह देवयान मार्ग (देवों के गमन योग्य मार्ग) से गमन करे, तब यज्ञ कर्मों के सम्पूर्ण फल इस यजमान के निमित्त प्रकाशित करें, अर्थात् उसे प्रदान करें ॥६०॥

**१०१०. उदबुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते स धं सृजेशामयं च । अस्मिन्सद्यस्ये अष्ट्युत्तरस्मिन्विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥६१॥**

हे अग्ने ! आप उत्तम रीति से प्रवर्तित होकर चैतन्यता को धारण करें । अभीष्ट पूर्ति वाले इस यज्ञ के फल स्वरूप यजमान की सत् आकांक्षाओं को पूर्ण तथा उसके जीवन को भी चैतन्य करें । हे विभेदेवो ! आपके लिए कर्म करने वाला वह यजमान देवों के साथ रहने योग्य होता हुआ, स्वर्गतोक में विकास तक अभिष्टित रहे ॥

१०११. येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेम यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ १६२ ॥

हे अग्ने ! आप जिस सामर्थ्य से सहस्र दक्षिण वाले यज्ञ को सम्पादित करते हैं, जिससे सर्वज्ञ होने का गौरव प्राप्त करते हैं । उसी सामर्थ्य से हमारे इस यज्ञ को अर्थात् यज्ञ में सम्पत्ति हविष्यान्न को स्वर्गस्थ देवताओं तक पहुँचाने की कृपा करें । याजकों को दिव्यगुणों से अभिपूरित करें ॥ १६२ ॥

१०१२. प्रस्तरेण परिधिना सूचा येद्या च बर्हिषा । ऋज्वेम यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥

हे अग्ने ! हमारे प्रस्तर, परिधि, झुक, वेदी, कुशा और ऋचा आदि से सम्पन्न इस यज्ञ को (यज्ञीय पोषक तत्वों को) देवों के पास पहुँचाने के लिए दिव्यलोक की ओर प्रेरित करें । ॥ १६३ ॥

१०१३. यद्दत्तं यत्परादानं यत्पूर्तं याज्ञ दक्षिणाः । तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥

हे विश्वकर्मन्-अग्निदेव ! हमारे द्वारा दत्त-दक्षिण, अतिविशेष एवं ब्राह्मणों को धन-साधनादि के रूप में दिये गये दान को तथा कूप-बावड़ी आदि के निर्माण जैसे श्रेष्ठ कर्मों में सुख किये गये धन अर्थात् यज्ञ दक्षिणा को स्वर्गस्थ देवशक्तियों तक पहुँचाएँ ॥ १६४ ॥

१०१४. यत्र धारा ऽ अनपेता मधोर्धृतस्य च याः । तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥

यह विश्वकर्मा अग्नि जहाँ मधु को, घृत की और दुध-दही आदि की कभी क्षीण न होने वाली धाराएँ सतत प्रवहमान रहती हैं, ऐसे दिव्यलोक में (सद्गुणों से सुसोपान सुखद स्थिति में) हम याजकों को पहुँचाएँ ॥ १६५ ॥

१०१५. अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं ये चक्षुरमृतं यऽ आसन् । अर्कस्मिधातू रजसो विमानोजसो घर्मो हविरस्मि नाम ॥ १६६ ॥

सम्पूर्ण जगत् को जानने वाले अन्न के योग्य ऋक्, यजु, साम से लक्षित होने वाले, बल के निर्माता, अधिनाशी अग्निदेव उत्पत्ति से ही यज्ञरत्न हैं । उनकी आँखें पृत हैं, मुख में हविरूप अमृत तत्त्व है । वे तीक्ष्ण आदित्य रूप और पुरोडास आदि हविष्यन्न भी यही हैं ॥ १६६ ॥

१०१६. ऋचो नामास्मि यजुऽं चि नामास्मि सामानि नामास्मि । ये अग्नयः पाञ्चजव्याऽ अस्यां पृथिव्यामधि । तेषामसि त्वमुत्तमः प्र नो जीवातवे सुव ॥ १६७ ॥

अद्वैतवादी याजक स्वयं को अग्निरूप में अनुभव करता हुआ कहता है कि ऋग्वेद नामक अग्नि मैं ही हूँ । मैं यजुर्वेद और सामवेद नामक अग्नि भी हूँ । इस पृथिवी पर जो पाँचों राजाजनों के निमित्त हितकारक अग्नि है, उनमें हे विशिष्ट यज्ञाग्नि ! आप श्रेष्ठ हैं । सत्कर्मरत हम याजकों को आप दीर्घ जीवन प्रदान करें ॥ १६७ ॥

१०१७. वार्त्रहत्याय श्वसे पृतनाबाह्याय च । इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥ १६८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं का हनन करने वाले हैं, शत्रुओं पर आक्रमण कर उन्हें पराजित करने वाले अति सामर्थ्यवान् हैं, हम आपको बार-बार बुलाते हैं ॥ १६८ ॥

१०१८. सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र सं पिणक् कुणारुम् । अभि वृत्रं वर्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्व ॥ १६९ ॥

अनेकों याज्ञकों द्वारा हवि प्राप्त करने काले हे इन्द्रदेव । समीपस्थ शत्रु और कुत्सित वचन कहने वाले शत्रु को हस्तहीन (शस्त्रहीन) करके कुचल डाले । हे इन्द्रदेव ! आप वृद्धि को प्राप्त होने वाले तथा सब और हिंसा का अतंक फैलाने वाले हैं । आप वृत्रासुर को चरदरहित अर्थात् नष्टहीन करके विनष्ट करें ॥६९॥

**१०१९. वि नऽ इन्द्र मृषो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः । यो अस्मैऽ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥७०॥**

हे इन्द्रदेव ! संग्राम में हमारे शत्रुओं को पूरी तरह पराजित करें । युद्ध की कल्पना करते हुए जो हमारे विरुद्ध सैन्य बल छोड़े करने वाले हैं, उन शत्रुओं को नीचे पहुँचा दें । जो शत्रु हमें यज्ञ में करके दासत्व देने की इच्छा करें, उन्हें गहन तमिस्र के गर्त में डाल दें ॥७०॥

**१०२०. मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठः परावतऽ आ जगन्वा परस्यतः । सुक शंस शंस शाय पयिमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताडि वि मृषो नुदस्व ॥७१॥**

हे इन्द्रदेव । आप कुटिल काल काले, पर्वत को गुफाओं में रहने वाले, सिंह के सदृश, विकराल, दूरस्थ शत्रुओं को सब ओर से घेर लें । अपने तोक्ष्ण कल से शत्रु के शरीर को छत-विह्वल करके उन्हें प्रताड़ित करें तथा शत्रुसेना को पीछे भगा दें ॥७१॥

**१०२१. वैश्वानरो नऽ क्रतयऽ आ प्र यातु परावतः । अग्निर्नः सुहृतीरुप ॥७२॥**

प्राणि मात्र का कल्याण करने वाले हे अग्निदेव । आप हमारी उत्तम स्तुतियों का प्रवण करें । दूर देश से भी पधारकर सत्कर्मरत हम याज्ञकों की रक्षा करें ॥७२॥

**१०२२. पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विद्या ओषधीरा विवेश । वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषस्यातु नक्तम् ॥७३॥**

प्राणि-मात्र का कल्याण करने वाले अग्निदेव से युत्वेक में स्थापित आदित्य-रूप के विषय में पूछा गया है । अन्तरिक्ष में विद्यमान बल में व्याप्त विशुद्धरूप के स्विच में पूछा गया है । पृथ्वी के ऊपर सम्पूर्ण ओषधियों में प्रविष्ट हुए अग्निदेव के विषय में तत्सम्बन्धी जोष हेतु पूछा गया है । बल पूर्वक धन्य से उत्पन्न होने वाले हे अग्निदेव । आप कौन हैं ? आप हमें दिन और रात्रि में हिंसा से संरक्षित करें ॥७३॥

**१०२३. अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्याम रथिः रथिः सुवीरम् । अश्याम वाजमभि वाजयन्तोश्याम शुम्भमजराजरं ते ॥७४॥**

हे अग्निदेव । आपके द्वारा संरक्षित होकर हम कामन्त्रजों को पूर्ण करें । हे ऐश्वर्यवान् । आपकी कृपा से हम उत्तम वीर-सन्तान और ऐश्वर्य को प्राप्त करें । संग्राम में शत्रु के ऊपर विजय प्राप्त कर ऐश्वर्य को प्राप्त करें । हे चरदरहित ! आपकी कभी क्षीण न होने वाली तेजस्विता को हम प्राप्त करें ॥७४॥

**१०२४. वयं ते अद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य । यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानलोधता मन्यता विप्रो अग्ने ॥७५॥**

हे अग्ने । हम ऊँचे किये हाथों से नमस्कार कर आपके समीप पहुँचते हैं । आज हम यज्ञ-अनुष्ठान में तत्पर हैं । एकामचित और मननशील मन से, अभीष्ट इच्छा को आपके निमित्त अर्पण करते हैं । हे अग्ने । इस उत्तम हवि को युद्धिमान् देवों तक पहुँचाएँ ॥७५॥

१०२५. धामकृदग्निरिन्द्रो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः । सचेतसो विश्वे देवा यज्ञं प्रावन्तु नः शुभे ॥

सब लोकों को धारण करने वाले देवगण अग्नि, इन्द्र, ब्रह्म, बृहस्पति एवं उत्तम बुद्धि वाले हे विश्वेदेवो ! आप हमारे यज्ञ को श्रेष्ठ धाम में स्थापित करें । सबको के इस श्रेष्ठ कर्मरूप यज्ञानुष्ठान को दिव्यलोक तक पहुँचाएँ ॥७६॥

१०२६. त्वं यविष्ठ दाशुषो नूः पाहि शृणुषी गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ॥७७॥

हे अति जाज्वल्यमान युक्त अग्निदेव ! आप हमारे द्वारा वेदमन्त्रों के रूप में स्तुतियों का श्रवण करें और यजमान के पुत्र-पौत्रादि का रक्षण करें । सत्कर्मरत याजकों से सम्पन्नित सभी मनुष्यों की सुरक्षा करें ॥७७॥

### —ऋषि, देवता, छन्द- विवरण—

ऋषि— देवगण १-३० । सुरुषाक ३१-४५, ४८ । इन्द्राग्नौ ४६, ४७ । सुनः सेप ४९-५५ । गालव ५६, ५७ । विश्वकर्मा ५८-६० । ६३-६५ । बन्धु आदि ६१, ६२ । देवक्रवा और देववात प्यरत ६६, ६७ । इन्द्र, विश्वामित्र ६८, ६९ । शास भारद्वाज ७० । जय ऐन्द्र ७१, ७२ । कुत्स ७३ । भरद्वाज ७४ । उत्कल काश्य ७५, ७६ । उशना काश्य ७७ ।

देवता— अग्नि १-२९, ३५, ३६, ४६-४८, ५०-५५, ५७-५९, ६१-६६, ७४, ७५, ७७ । पृथिवी ३० । विश्वेदेवा ३१-७६ । अस्र ३२-३४ । सविता, सिताक्त ३७ । नवर्षी अप्सराएँ ३८-४३ । प्रजापति ४४ । वायु ४५ । वरुण ४९ । यजमान ५६ । सर्व्व अथवा देवगण ६० । आत्म अग्नि ६७ । वृत्रहा (इन्द्र) ६८-७१ । वैशानर ७२, ७३ ।

छन्द— शक्वरी १, ९ । भुरिक् अतिजगती २ । भुरिक् शक्वरी ३, ११, १८, २२ । निचृत् अत्याहि ४, १९ । स्वराद् शक्वरी ५, ८, १७ । भुरिक् अतिशक्वरी ६, १२, १३ । भुरिक् अतिजगती ७ । निचृत् शक्वरी १० । भुरिक् अहि १४ । विराद् आर्षी पंक्ति १५ । निचृत् अतिशक्वरी १६ । स्वराद् अतिधृति २० । विराद् धृति २१ । पंक्ति २३ । संकृति, विराद् संकृति २४ । भुरिक् पंक्ति, निचृत् अकृति २५ । बाह्वी बृहती २६ । भुरिक् आर्षी पंक्ति २७, ४४ । भुरिक् आकृति, आर्षी बृहती २८ । स्वराद् निचृति, बाह्वी उष्णिक् २९ । स्वराद् जगती ३० । निचृत् आर्षी त्रिष्टुप् ३१-४९, ५९, ६० । निचृत् आर्षी अनुष्टुप् ३२, ६२ । त्रिष्टुप् ३३, ३४ । विराद् आर्षी अनुष्टुप् ३५ । आर्षी अनुष्टुप् ३६, ४७ । आर्षी पंक्ति ३७, ५३ । विराद् आर्षी त्रिष्टुप् ३८ । भुरिक् आर्षी त्रिष्टुप् ३९ । निचृत् आर्षी जगती ४०, ५८ । बाह्वी उष्णिक् ४१ । आर्षी त्रिष्टुप् ४२, ६१, ६९, ७१, ७३, ७५ । विराद् आर्षी जगती ४३, ५२ । निचृत् अहि ४५ । भुरिक् आर्षी अनुष्टुप् ४६, ४८ । भुरिक् आर्षी उष्णिक् ५०, ५४ । स्वराद् आर्षी त्रिष्टुप् ५१ । आर्षी जगती ५५, ६७ । आर्षी उष्णिक् ५६ । निचृत् आर्षी गायत्री ५७ । निचृत् अनुष्टुप् ६३, ६४, ७०, ७६ । विराद् अनुष्टुप् ६५ । निचृत् त्रिष्टुप् ६६, ७४ । निचृत् गायत्री ६८, ७७ । आर्षी गायत्री ७२ ।

॥ इति अष्टादशोऽध्यायः ॥

## ॥ अथ एकोनविंशोऽध्यायः ॥

१०२७. स्वाह्यं त्वा स्वादुना तीक्षां तीक्ष्णामृताममृतेन । मधुमतीं मधुमता सजामि  
संक्षेमोमेन । सोमोऽस्यश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व ॥१॥

उत्तम स्वादयुक्त, तीक्ष्ण, अमृतोपम गुणवाली, मधुर रसवाती (हे ओषधि ! ) आपको अति स्वादिष्ट, तीक्ष्ण, अमृतोपम और मधुर सोम के साथ मिश्रित करते हैं । हे ओषधि ! सोम के संसर्ग से आप सोम के तुल्य हो गयी हैं । आप दोनों अधिनोकुमारों के निमित्त परिष्वद्य हों । देखें सरस्वती के निमित्त परिष्वद्य हो और सब प्रकार संरक्षण देने वाले इन्द्रदेव के लिए भी परिष्वद्य हों ॥१॥

१०२८. परीतो विष्वक्ता सुतंक्षं सोमो य उत्तमंक्षं हविः । दधन्वा यो नर्यो अप्सवन्तरा सुवाव  
सोममद्रिभिः ॥२॥

हे श्रुतिज्ञो ! यह सोम उत्तम हविरूप है । यह सोम ऋषियों का हितकारी होकर उनके निमित्त सुख धारण करता है । जल के यथ्य ज्वाप्त इस सोम को पचाम्णे द्वारा (कूटकर) निचोड़ो और उस पवित्र सोम को गोदुग्ध के साथ सम्मिश्रित करो ॥२॥

१०२९. वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क्सोमो अतिहुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा । वायोः पूतः  
पवित्रेण प्राङ्क्सोमो अतिहुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥३॥

यह दिव्य सोम जब ऊपर से (अन्तरिक्ष से) अवतरित होता है, तब वायु के द्वारा शुद्ध होकर इन्द्रदेव (नियन्त्रक देवशक्ति) का मित्र बनता है । यही सोम जब नीचे से ऊपर (वज्रादि द्वारा) जाता है, तब भी वायु से शुद्ध होकर इन्द्रदेव का मित्र सिद्ध होता है ॥३॥

१०३०. पुनाति ते परिस्तुतंक्षं सोमंक्षं सूर्यस्य दुहिता । वारेण शम्भता तना ॥४॥

हे यजमान ! जिस प्रकार सोम को सञ्चल सत्रा (प्रकृतिगत स्नेहन प्रक्रिया) पवित्र करता है, उसी प्रकार श्रद्धा तुम्हें पवित्र करती है । (देवशक्तियों के लिये उपवेशी बनाती है) ॥४॥

१०३१. ब्रह्म क्षत्रं पवते तेजऽ इन्द्रिय— सुरवा सोमः सुतऽ आसुतो मदाय । शुक्लेण देव  
देवताः पिपृग्धि रसेनाहं यजमानाय मेहि ॥५॥

हे दिव्य सोम ! आप अपने शुभ तेज से देवों को प्रसन्न करें । रसयुक्त अन्न को यजमान के लिए प्रदान करें अभिषुत हुआ यह सोम, ब्रह्मबल और क्षत्रबल को पवित्र करता है तथा उनके तेज और इन्द्रिय सामर्थ्य को प्रकट करता है । तीक्ष्ण स्वेभाव वाली, उत्तम रसरूप ओषधि से संयुक्त होकर वह सोम और भी अधिक आमन्ददायक हो जाता है ॥५॥

१०३२. कुविदङ्ग यवमन्तो यवं विक्षधा दान्स्थनुपूर्वं वियूय । इहेहैवां कृणुहि भोजनानि ये  
बर्हिषो नमऽ उक्तिं यजन्ति । त्वयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे  
ऽ एष ते योनिस्तेजसे त्वा वीर्याय त्वा कलाय त्वा ॥६॥

हे सोम ! जैसे यवादि अन्न से सम्पन्न कृषक वर्षापत जल प्राप्ति के लिए शीघ्रता से उसे काटकर सुरक्षित रखते हैं, वैसे ही आप इस यजमान के लिए सब भोज्य पदार्थों को तैयार रखें । कुरु-असन पर विराजित ये

यत्नमान इविष्यन्न लेखर मन्त्रों के साथ यज्ञ करते हैं । हे हव्यरूप सोम ! आप उपयाम पात्र में गृहीत होते हैं हम आपको अधिनीकुमारों के निमित्त ग्रहण करते हैं । यह आपका उत्पत्ति स्थान है, अतः इस स्थान पर हम आपको स्थापित करते हैं । सरस्वती देवी के निमित्त आपको स्थापित करते हैं । रक्षा करने वाले श्रेष्ठ इन्द्रदेव के निमित्त आपको स्थापित करते हैं । शौर्य और बल-सम्पन्नता के निमित्त भी आपको यहाँ स्थापित करते हैं ॥६॥

[ इस अण्वय की चमिकलाओं में सुत एवं सोम का नाम अनेक बार आया है । सोमपत्त अग्नि तन्त्रों से मिलेदे वने फेककर उस को 'सोम' कहा जाता था और ओषधियों का आचमन करके निकाले गये जल को सुरा कहते थे । कुछ रोमनशास्त्र एवं पुष्टिशास्त्र ओषधियों ऐसी होती हैं, जिनमें कलकी का लवण का गुण (सैडिथि इडिथेट) होता है । सुरा उसी प्रकार का उपयोगी जल था । कश्मीर में सुरा शब्द चिन्तुकाय से उत्पन्न अग्नि चमिकले पत्तों के लिए प्रयुक्त होने लगा । केलेक 'सुरा' को कांस्यन वस्त्रन के अर्थ में प्रयुक्त नहीं करना चाहिए । ]

१०३३. नाना हि वां देवहितं सदस्कृतं मा सचं सुक्षाद्यां परमे ध्योमन् । सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम ॥ एष मा मा हिंश्सीः स्वां योनिमाविशन्ती ॥७॥

हे सुरा (ओषधिरस) और सोम ! जैसे देवों के हितकारी आप दोनों यज्ञशास्त्र में पृथक्-पृथक् स्थित होते हैं, वैसे ही अत्यन्त ऊँचे आकाश में (यज्ञ के बाद) भी आप संयुक्त न हों । हे सुरे ! आप बलशाली रसरूप हैं और यह सोम आपसे पिन्न प्रकृति वास्तव है, अतः उसके स्थान में प्रवेश करते हुए आप सोम की प्रकृति नष्ट न करें ॥७॥

१०३४. उपयामगृहीतोऽस्याश्चिन् तेजः सारस्वतं वीर्यमैन्द्र बलम् । एष ते योनिर्मोदाय त्वा नन्दाय त्वा महसे त्वा ॥८॥

हे सोम ! आप उपयाम पात्र में संगृहीत हों । यह आपका स्थान है, इस स्थान में आपको अधिनीकुमारों के तेज, देवी सरस्वती के बल एवं इन्द्रदेव के शौर्य की आप्रति के निमित्त स्थापित करते हैं । हे सोम ! आपको देवों के हर्ष, आनन्द एवं उनकी महता के लिए उन्हें प्रदान करते हैं ॥८॥

१०३५. तेजोसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोसि सहो मयि धेहि ॥९॥

हे तेजस्वी ! हमें तेजयुक्त करें । हे वीर्यवान् ! हमें पातक्यी बनाईं । हे बलशाली ! हमें बलवान् बनाईं । हे ओजस्वी ! हमें ओजवान् बनाईं । हे मन्युरूप ! हमें अनीति शत्रुरोध की क्षमता प्रदान करें । हे संघर्षशील ! (आक्रमणकारियों की प्रत्युत्तर देने में समर्थ) हमें संघर्ष की क्षमता दें ॥९॥

१०३६. धा व्याधं विभूचिकोभौ चूर्कं च रक्षति । श्येनं पतत्रिण्यं सिंहं ह्यं सोमं पातयं हसः ॥१०॥

जो विभूचिक (रोम की अधिकतरी देवी) नाभ और घेड़िया इन दोनों की रक्षा करती है और वेग से जा टूटने वाले दोनों श्येन तथा सिंह की भी रक्षा करती है, वह इन याजकों की भी रक्षा करे । [ अर्थात् जिस प्रकार पुरुषार्थी भूचरों एवं नभचरों पर विभूचिका का असर नहीं होता, वैसे ही याजकों पर भी न हो ] ॥१०॥

१०३७. यदापिपेक्ष मातरं पुत्रः प्रमुदितो वयन् । उत्तदग्ने अनुणो भवाम्यहौ पितरौ मया । सम्यक् स्य सं मा भद्रेण पूष्टक विषूच स्य वि मा पाप्यना पूष्टक ॥११॥

बासक (अनजाने में ही) दूध पीकर, हर्षित होता हुआ (हृद्य-पैर पीटकर) माँ को प्रताड़ित करता है । हे अग्निदेव ! हम इस प्रकार मातृ-पितृ के प्रति हुए शत्रुओं से आपकी सखी में उत्पन्न होना चाहते हैं । अपनी जानकरी से हमने अपना कल्याण करने वाले मातृ-पितृ का अधिक नहीं किया है । आप संयोग काल में समर्थ हैं, हमें कल्याण से युक्त करें । आप विद्योक्त करने में समर्थ हैं, हमें पापों से विमुक्त करें ॥११॥



१०३८. देवा यज्ञस्तन्वत शेषजं भिषजाक्षिना । वाचा सरस्वती भिषगिन्द्रायैन्द्रियाणि  
देवतः ॥१२॥

देवों ने ओषधियों का हवन कर यज्ञ का विस्तार किया । वाँछ अश्विनीकुमारों ने और देवी सरस्वती ने वेद-  
वाणियों से इन्द्रदेव के लिए इन्द्रिय-सामग्र्यों को धारण किया ॥१२॥

१०३९. दीक्षायै रूपं श्याणि प्रायणीयस्य लोकमानि । क्रयस्य रूपं सोमस्य लाजाः  
सोमांशं शवो मघु ॥१३॥

नवोत्पन्न बीहि (बाबल) दीक्षा यज्ञ के लिए अर्घ्यवान है । नवीन जौ प्रायणीय यज्ञ के रूप हैं । खरीदे गये  
लाजा (खीलें) तथा शहद सोम के रूप हैं ॥१३॥

१०४०. आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नमस्कः । रूपमुपसदाभेतत्तिलो रात्रीः सुरासुता ॥

बीहि आदि घान्तों, ओषधियों के मिश्रित नृप आतिथ्य रूप में उपादेय हैं । शुद्ध भान्य महावीरों के लिए  
उपादेय हैं । उपसद श्रद्धा के अनन्तर्गत तीन रात्रि तक अभ्युक्त होकर रस 'सुरा' बन जाता है ॥१४॥

१०४१. सोमस्य रूपं क्रीतस्य परिस्तुपरिधिष्यते । अक्षिभ्यां दुग्धं शेषजमिन्द्रायैन्द्रं  
सरस्वत्या ॥१५॥

अश्विनीकुमारों द्वारा दोहन किये गये ओषधि रसों और देवी सरस्वती द्वारा दोहन किये गये दुग्ध को उत्तम  
प्रकार से मिश्रित किया जाता है, वही ऐश्वर्यवानों द्वारा क्रय किये हुए सोमरस का रूप है । यह ऐश्वर्य के अधिपति  
इन्द्रदेव के लिए है ॥१५॥

१०४२. आसन्दी रूपं राजासन्दी वेद्यै कुम्भी सुराधानी । अन्तरऽउत्तरवेद्या रूपं कारोत्तरो  
भिषक् ॥१६॥

राजा के आसन के स्थान आसन पर सोम स्थापित है । वेदिका पर सुरा (ओषधि रस) का कुंभ स्थापित है ।  
दोनों के बीच का छात्सी स्थान उत्तरवेदी (अग्नि के चरण में उपबोध के स्थल) रूप में है । (ओषधि और अनुपान को  
मिलाने वाले कुशल ओषधिकर्ता) भिषक् के रूप में कारोत्तर (स्नान के यज्ञ) स्थापित है ॥१६॥

१०४३. वेद्या वेदिः समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम् । यूषेन यूषऽआप्यते प्रणीतो  
अग्निरग्निना ॥१७॥

ऋषि में चल रहे विद्युत् चक्र के चक्रों से इस यज्ञ के चक्र प्रण किये गये हैं । इस चक्र से यह यज्ञ चलिता होता है—  
इस यज्ञ के लिए वेदी (पृथ्वी) से वह वेदिकर कुशाओं से कुशा, (दिव्य) इन्द्रियों से पुरुषार्थ, स्तंभ रूप  
(वृक्षों) से स्तंभ और दिव्य अग्निदेव से अग्नि को सम्यक् रूप से प्राप्त किया गया है ॥१७॥

१०४४. हविर्धानं यदक्षिनाम्नीं यत्सरस्वती । इन्द्रायैन्द्रं सदस्कृतं पत्नीशालं गार्हपत्यः ॥

यज्ञ में जो अश्विनीकुमार हैं, उनकी अनुकम्प से स्नेह सम्बन्धी हव्य पदार्थ प्राप्त होते हैं । जो देवी सरस्वती  
हैं, उनकी अनुकम्प से स्नेह सम्बन्धी आग्नीष प्राप्त होते हैं । इन्द्रदेव के लिए उनके ऐश्वर्य के अनुरूप हवियाँ,  
सभागृह में (ज्ञानयज्ञ), पत्नीशाला में (वर्तियैव यज्ञ) एवं गार्हपत्य अग्नि में (देवयज्ञ द्वारा) प्रस्तुत की जाती हैं ॥१८॥

१०४५. प्रैवेभिः प्रैषान्नाप्नोत्याग्नीभिराग्नीर्यज्ञस्य । प्रयज्वेभिरनुयाज्वान् वषट्कारेभिराहुतीः ॥

प्रैष-आहुति कर्मों से आज्ञाकारिणों की, तृप्तिकरक क्रियाओं से तृप्ति प्रदत्ताओं की, श्रेष्ठ यज्ञ साधनों से  
यज्ञादि क्रियाओं की और वषट्कार (स्वाहास्वर) आदि से आहुतियों को प्रप्ति होता है ॥१९॥

१०४६. पशुभिः पशूनाप्नोति पुरोहारीर्द्वितीयः च्या। छन्दोभिः सामिधेनी-  
र्याज्याभिर्वषट्कारान् ॥२०॥

पशुओं के माध्यम से पशुओं की पुरोहारा से हव्य पदार्थों की छन्दों से छन्दों (काव्य शक्ति) की सामिधेनी (विशिष्ट ऋचाओं) से सामिधेनियों (रहस्यकायक ज्ञान) की तथा वज्रादि क्रियाओं से यज्ञ के अनुरूप आचरण की प्राप्ति होती है ॥२०॥

१०४७. घानाः करम्भः सक्तवः परीक्षाः पयो दधि। सोमस्य रूपः हविषः आमिक्षा  
वाजिनं यधु ॥२१॥

घने हुए घान्य, लप्पी, सतू आदि- यह हव्य पदार्थ एवं दुग्ध दधि आदि सोम के रूप हैं। घेना, शहद और जामादि हविष्य रूप हैं ॥२१॥

१०४८. घानानां रूपं कुवलं परीक्षापस्य गोधूमाः। सक्तूनां रूपं कदरमुपधाकाः  
करम्भस्य ॥२२॥

मूल घान्य हो घने हुए अन्न के रूप में गेहूँ के चके हुए पुरोहारा आदि हव्य पदार्थों के रूप में, (घूर्ण बनाया हुआ) घेर सक्तरूप में और यव लप्सों के रूप में यज्ञार्थ प्रयुक्त है ॥२२॥

१०४९. पयसो रूपं यद्यवा दध्नो रूपं कर्कन्धूनि। सोमस्य रूपं वाजिनः सौम्यस्य  
रूपमामिक्षा ॥२३॥

यव जो यव है, वह दुग्ध के समान पीनक रूप में है, घेर दही के रूप में है तथा अन्न सोम के रूप में है और दही मिश्रित दुग्ध एवं सोम रस चक्र के सदृश है ॥२३॥

[ यहाँ दुग्ध आदि पीनक पदार्थों के अन्तर्गत में उनकी पूर्ण मात्रा आदि भूमि इत्यादियों से करने का संकेत है । ]

१०५०. आभावेति स्तोत्रियः त्रय्यत्राखो अनुरूपः। यजेति धाव्यारूपं प्रगाथा ये  
यजामहे ॥२४॥

स्तोत्र की पहली तीन ऋचाएँ "आभावाय" शब्द को लक्षित करती हैं तथा अन्तिम तीन ऋचाएँ "प्रत्याग्राव" की। धाव्य नामक ऋचाएँ "यज" शब्द से प्रारम्भ होती हैं। प्रगाथा रूप ऋचाओं का प्रारम्भ "ये यजामहे" पद से होता है ॥२४॥

१०५१. अर्यऋचैरुक्थानां रूपं पदैसाप्नोति निविदः। प्रणवैः शस्त्राणां रूपं पयसा सोम  
ऽआप्यते ॥२५॥

अर्द्ध ऋचाओं के उच्चारण से उन मन्त्रों का बोध होता है, जो उक्थ नाम से जाने जाते हैं। पदों से 'निविद' नामक ऋचाओं के उच्चारण का बोध किया जाता है। प्रणवों से शस्त्रों (स्तोत्रों) के रूप का अनुभव करते हैं तथा दुग्ध से सोम के रूप का आवास होता है ॥२५॥

१०५२. अग्निभ्यां प्रातःसवनमिन्द्रेणैर्न माध्यंदिनम्। वैश्वदेवः सरस्वत्या तृतीयमाप्नोति  
सवनम् ॥२६॥

"प्रातः सवन" की प्राप्ति दोनों अग्निमीकुमरो द्वारा होती है, "माध्यन्दिन सवन" की प्राप्ति इन्द्र देवता सम्बन्धी इन्द्रदेव के मन्त्रों से होती है और "तृतीय सवन" की प्राप्ति विन्धेदेवों से सम्बन्धित देवी सरस्वती के माध्यम से होती है ॥२६॥

१०५३. वायव्यैर्वायव्यान्वाप्नोति सतेन द्रोणकलशम् । कुम्भीभ्यामम्भुणौ सुते स्थालीभिः  
स्थालीराप्नोति ॥२७॥

प्रकृति में बल रहे विरुद्ध बल के बल्यों से इस बल के बलक प्रप्त किये कये हैं । इस बल से यह बल चटित होता है—

वायव्य पात्रों की प्राप्ति (अन्तः अन्तरिक्ष स्थित) महान् वायव्य सोमपात्रों से होती है और द्रोण कलश की प्राप्ति वेतस् (वेत) पात्र द्वारा; सोम सदन होने पर दोनो कुम्भियों के द्वारा पूतभृत् और अवधनीय की प्राप्ति होती है तथा स्थालियों की प्राप्ति याज्ञिक कवचान् को दिव्य म्यास्तियों द्वारा होती है ॥२७॥

१०५४. यजुर्धिराप्यन्ते ग्रहा ग्रहैः स्तोमस्त विष्टुतीः । छन्दोधिक्वधाशस्त्राणि  
साम्नावधुथऽआप्यते ॥२८॥

यजुर्मन्त्रों के द्वारा यजु, सब ग्रह पात्रों के द्वारा ग्रहपात्र, सब स्तोमों (प्रज्ञस्तियों) द्वारा स्तोम, उत्तम स्तुतियाँ द्वारा स्तुति, छन्दों द्वारा सब उक्थ और ऋत्वि (स्वांश), सप्त मन्त्रों से साम तथा अवधुथ स्नान से अवधुथ (का पुण्य) प्राप्त होता है ॥२८॥

१०५५. इष्टाधिर्षक्षानाप्नोति सूक्तवाकेनाशिक्षः । शंभुना पत्नीसंयाजान्समिष्टयजुषा  
सत्सं स्वाम् ॥२९॥

यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले अन्न के त्याग (हविष्यत्र आदि) से प्राक्पर्वन्त्यरूपी पोषक पदार्थों की प्राप्ति होती है । उत्तम मन्त्र रूपी यजु वचनों के प्रयोग से आशीष की प्राप्ति होती है । संयम से पति-पत्नी के प्रीति-संबंध की प्राप्ति और सामुहिक रूप से सम्पन्न होने वाले यज्ञानुष्ठान से सर्वगत समाज की प्राप्ति होती है ॥२९॥

१०५६. वतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दीक्षिणाम् । दक्षिणा भद्रामाप्नोति भद्रया  
सत्यमाप्यते ॥३०॥

वतपूर्वक यज्ञानुष्ठान सम्पन्न करने पर मनुष्य (दीक्षा) दक्षता को प्राप्त करता है; दक्षता से प्रतिष्ठ्य की प्राप्ति करता है; प्रतिष्ठा से भद्रा की प्राप्ति होती है और भद्रा से सत्य (कृष्ण चरमेष्टवर) को प्राप्त करता है ॥३०॥

१०५७. एतावद्रूपं यज्ञस्य यदेवैर्ब्रह्मणा कृतम् । तदेतत्सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणी सुते ॥

देवी और ब्रह्मा द्वारा सम्पादित यज्ञ का उत्तम-स्वरूप सौत्रामणी- यज्ञ रूप में वर्णित है । इस सौत्रामणी यज्ञ में सोम का अभिषेक होने पर यज्ञ पूर्णता को प्राप्त होता है ॥३१॥

१०५८. सुरावन्तं बर्हिषददं सुवीरं यज्ञयं हिन्यन्ति महिषा नमोधिः । दधानाः सोमं दिवि  
देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानतः स्वर्काः ॥३२॥

स्तुतिगान द्वारा दिव्यलोक में निकल करने वाले देवताओं के निमित्त सोमरस को धारण करते हुए ब्रेष्ठ याज्ञिक एवं कुशा के आसन पर विराजमान देवताओं से युक्त सोम रस को विनिर्मित करने वाले उत्तम ऋत्विज, सौत्रामणी नामक यज्ञ को संवर्धित करते हैं । ऐसे इस ब्रेष्ठ यज्ञ में ह्य महान् वैभव से सम्पन्न इन्द्रदेव के लिए यजन करते हुए हर्षित हों ॥३२॥

१०५९. यस्ते रसः सम्भृतऽ ओषधीषु सोमस्य शुष्णः सुरया सुतस्य । तेन जिन्य यजमानं  
भदेन सरस्वतीमक्षिनाविन्द्रमग्निम् ॥३३॥

हे सोमरस ! ओषधियों में संगृहीत किये गये अन्नक जो सरस्वती हैं, वह तीक्ष्ण ओषधिरस है । अभिषुत स्नेह में जो पोषक तत्त्वरूप बल है, उस अन्नप्रदायक रसरूप स्वर से यजमान, देवी सरस्वती, दोनों अश्विनीकुमारों और अग्निदेव को संतुष्ट करें ॥३३॥

१०६०. यमश्चिना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय । इमं तथः शुक्रं  
मधुमन्तमिन्दुं सोमं राजानमिह भक्षयामि ॥३४॥

दोनों अश्विनीकुमारों ने असुर पुत्र नमुचि के बस से जिस सोम को उपलब्ध किया, देवी सरस्वती ने जिसे इन्द्रदेव की पराक्रमशक्ति बढ़ाने के निमित्त ओषधि रूप में अभिषुत किया । वैष्व-सम्पन्न, सुसंस्कृत राजा (तेजस्वी व्यक्ति) मधुरतायुक्त रस वाले उस सोम का सोपवन्न में सेवन करते हैं ॥३४॥

१०६१. यदत्र रिपयश्चरसिन्ः सुतस्य यदिन्द्रो अपिबच्छचीभिः । अहं तदस्य मनसा शिवेन  
सोमं राजानमिह भक्षयामि ॥३५॥

रसयुक्त अभिषुत हुए सोम का जो भाग यहाँ विद्यमान है और जिसे अपने बल-पराक्रम से इन्द्रदेव ने पिया है, उस दीप्तिमान् सोम का अपने कल्याण की प्राप्ति तथा उत्तम मन से, इस यज्ञ में, हम सेवन करते हैं ॥३५॥

१०६२. पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः  
प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । अक्षन् पितरोभीमदन्त पितरोतीतृपन्त पितरः पितरः  
शुन्यध्वम् ॥३६॥

स्वधा (अन्न) को धारण करने वाले पितरों को स्वधा संज्ञक अन्न प्राप्त हो । स्वधा को धारण करने वाले प्रपितामह को स्वधा संज्ञक अन्न प्राप्त हो । पितरों ने हविष्यान्न के रूप में समर्पित आत्मा को बरहण करके तृप्ति को प्राप्त किया । पितर तृप्त होकर हमें भी तृप्त करते हैं । हे पितृगण ! आप लोग श्रुत होकर हमें भी पवित्र जीवन की प्रेरणा प्रदान करें ॥३६॥

१०६३. पुनन्तु मा पितरः सोम्यास्तः पुनन्तु मा पितामहः पुनन्तु प्रपितामहः पवित्रेण  
शतायुषा । पुनन्तु मा पितामहः पुनन्तु प्रपितामहः पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्ध्वम्नवै ॥

सौम्यता से परिपूर्ण, पवित्र हुए पितर-गण सौ वर्ष के पूर्ण जीवन से हमें पवित्र बनाएँ । पितामह हमें पवित्र बनाएँ ॥ प्रपितामह हमें पवित्र बनाएँ । पवित्र हुए पितामह सौ वर्ष के पूर्ण जीवन से हमें पवित्र बनाएँ । प्रपितामह हमें पवित्र बनाएँ । इस प्रकार आपकी प्रेरणा से पवित्र जीवन से सम्पन्न होकर हम अपनी पूर्ण आयु का उपयोग करें ॥३७॥

१०६४. अम्नऽ आयूश्च वि पयसऽ आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥

दीर्घायुष्य प्रदायक, यज्ञादि कर्म सम्पन्न करने वाले हे आग्ने ! आप हमें पोषक अन्न और दुग्ध आदि रस प्रदान करें । दुष्ट-दुराचारियों से हमारे जीवन की रक्षा करते हुए बाधाओं को दूर करें ॥३८॥

१०६५. पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः । पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः  
पुनीहि मा ॥३९॥

देवत्व के मार्ग का अनुगमन करने वाले पुरुष हमें पवित्र बनाएँ । सुविचारों से सुवासित मन एवं बुद्धि हमें पवित्र बनाएँ । सम्पूर्ण प्राणी हमें पवित्र बनाएँ : हे जातवेदः ! (अग्निदेव) आप भी हमें पवित्र बनाएँ ॥३९॥

१०६६. पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीवत् । अग्ने क्रत्या क्रतूँ १ रनु ॥४०॥

हे दिव्यगुण सम्पन्न अग्निदेव ! आप अपनी आज्ञास्थिति एवं पवित्र वेदावस्था से हमें पवित्र करें । हमारे कर्मों के दृष्टारूप आप अपने पवित्र कर्मों से हमें पवित्र करें ॥४०॥

**१०६७. यत्ने पवित्रमर्चिष्यन्ते विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनातु मा ॥४१॥**

हे आने आपकी तेजस्वी ज्वालाओं के मध्य में जो परम पवित्र सत्य, ज्ञान एवं अनन्तरूप विविध लक्षणों से युक्त ब्रह्म विस्तृत हुआ है, उससे हमारे जीवन को पवित्र करें ॥४१॥

**१०६८. पवमानः सो अहं च पवित्रेण विचर्षणिः । यः पीता स पुनातु मा ॥४२॥**

जो पवित्रता प्रदान करने वाले किस्मियन द्रष्टा, वायुदेव सर्वज्ञ और स्वयं पवित्र हैं, वे आज अपनी पवित्रता से हमारे जीवन को पवित्र करें ॥४२॥

**१०६९. उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सयेन च । मां पुनीहि विद्यतः ॥४३॥**

हे सर्व-प्रेरक सवितादेव ! आप अपने दोनों प्रकार के स्वरूपों से अर्थात् अपनी (यह के लिए) आज्ञा से और प्रात्यक्ष पवित्र स्वरूप से, सब ओर से हमारे जीवन को पवित्र बनाएँ ॥४३॥

**१०७०. वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यामिमा बहुधस्तन्यो जीतपृच्छः । तथा मदन्तः सद्यमादेषु वयं ऽऽस्माम् पतयो रपीणाम् ॥४४॥**

पूर्व जन्मों के मतानुसार यह विश्वदेवी (वाणी) पवित्रता का संचार करती हुई हमें प्राप्ति से । इनके जनकर बहुत से शरीरधारी तथा हम सब समान स्थान में आनन्दपूर्वक रहते हुए ऐश्वर्यों के अधिकारी बनें ॥४४॥

यह विश्वदेवी (वाणी) पवित्रता का संचार करती हुई हमें प्राप्ति से । इनके जनकर बहुत से शरीरधारी तथा हम सब समान स्थान में आनन्दपूर्वक रहते हुए ऐश्वर्यों के अधिकारी बनें ॥४४॥

**१०७१. ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये । तेषां लोकाः स्वधा नयो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥४५॥**

विश्व की नियामक शक्ति 'यमराज' के अधीन रहने वाले समान मन और समान चित्त वाले, जो हमारे पितर हैं, उनके पास तक हमारा स्वधा सज्जक हविष्यान्न और मनोरूप अधिकार पहुँचे । हमारा यह दक्षानुष्ठान समस्त दिव्य शक्तियों को सन्तुष्ट करने वाला हो ॥४५॥

**१०७२. ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु धामकाः । तेषां श्रीर्मयि कल्पतामस्मिंस्लोके ज्ञतं समाः ॥४६॥**

हम विश्व के जीवित प्राणियों में जो भी हमारे जेहो परिजन समान मन और समान चित्त वाले हैं, उनका धर्म और अपार धन-वैभव इस लोक में सौ वर्ष पर्यन्त विद्यमान रहे । वे सब हमसे संयुक्त होकर सुशोभित हों ॥४६॥

**१०७३. द्वे सुती अशृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् । ताभ्यामिदं विश्वमेजस्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥४७॥**

हमने मृत्युधर्मा मनुष्यों के गमन योग्य दो स्वर्ग सुने हैं । एक पितरों का पितृयान मार्ग और दूसरा देवों का देवयान मार्ग है । माता-पिता के संयोग से जब यह जो जीव-जगत् है, वह इन दोनों मार्गों के द्वारा ही चलता है ॥

**१०७४. इदं हविः प्रजननं मे अस्तु दशवीर्यं सर्वगणं स्वस्तये । आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्धयसनि । अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतो अस्मासु धत्त ॥**

हमारा यह हविष्यान्न सन्तानों की वृद्धि करने वाला, दत्ते ईन्द्रियों को सामर्थ्य को बढ़ाने वाला, संप्लुत अंगों को पुष्ट करने वाला, आत्म-सुख प्रदान करने वाला, प्रजा की वृद्धि करने वाला, मूँ आदि पशुओं की वृद्धि करने वाला, सभाज में प्रतिष्ठित दिलाने वाला, अथवा प्रदान करने वाला तथा सबके लिए कल्याणकारी हो । हे आने ! आप हमारी प्रजा की वृद्धि करें और हम में अन्न, दुग्ध और खैर को वारण कराएँ ॥४८॥

१०७५. उदीरतामवरऽ उत्परासऽ उन्मथ्यमाः पितरः सोम्यासः । असुं यऽ ईयुरवकाऽ ऋतज्ञास्ते नोवन्तु पितरो हवेषु ॥४९॥

जो निम्न श्रेणी के (समीपस्थ), उच्च श्रेणी के (दूरस्थ) और मध्यम श्रेणी के सौम्य प्रवृत्ति के पितर हैं, वे हमें उत्तम प्रेरणा दें। शत्रु-होत्र-सत्त्व के ज्ञाता, जो पितर हवि आदि में संभावित क्षात्र की रक्षा करते हैं, वे हमारी भी रक्षा करें ॥४९॥

१०७६. अङ्गिरसो नः पितरो नवम्याऽ अश्वर्वाणो घृगवः सोम्यासः । तेषां वयं सुमतीं यज्ञिधानामपि भद्रे सौमनसे स्वाप ॥५०॥

अग्नि के समान तेजस्वी, नवीन याचिकों के प्रेरक, शत्रुओं से परास्त न होने वाले, दुष्टों को धुनने वाले और सौम्य प्रवृत्ति वाले, जो हमारे पितर हैं, वे हमें सद्बुद्धि प्रदान करें। उनकी कल्याणकारिणी बुद्धि यज्ञादि सत्कर्म करने वाले हम सब याजकों का कल्याण करें ॥५०॥

१०७७. ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासो नृहिरे सोमपीथं वसिष्ठः । तेभिर्मयः सधं रराणो हवींश्च व्युशशुशुभिः प्रतिकाममन्तु ॥५१॥

जो सौम्य प्रवृत्ति वाले, विशिष्ट सुखों में रहने वाले, अविच्छिन्न गोपनीय हमारे पूर्व पितर हैं वे सोमपान करने के योग्य उत्तम आचरण वाले हैं। वे पितर हमारे मंगल की कामना करने वाले हैं। हमारे आवाहन पर इस यज्ञ में नियमनकर्ता यम के साथ पवारें तथा हवियों को ग्रहण करते हुए सुख हों ॥५१॥

१०७८. त्वं सोम प्रधिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम् । तव प्रणीतो पितरो नऽ इन्दो देवेषु रत्नममजन्त धीराः ॥५२॥

अति देदीप्यमान हे सोम ! आप अपनी बुद्धि द्वारा अति सुगम देखने के मार्ग की ओर ले जाने वाले हैं। हे सोम आपके सहयोग को प्राप्त करके हमारे धैर्यवान् पितरों ने यज्ञ-अनुष्ठान आदि श्रेष्ठ कर्म सम्पादित किये तथा इनकी सुखद कलश्रुतियों को प्राप्त किया ॥५२॥

१०७९. त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पथमान धीराः । वन्वस्रवातः परिधीं रपोर्णुं धीरेधिरशैर्मघवा भवा नः ॥५३॥

हे पवित्र सोम ! आपके सहयोग से ही हमारे पूर्वज्जालीन पितरों ने समस्त यज्ञादि कर्मों को सम्पादित किया। आप इस समय हमारे निमित्त यज्ञीय कर्मों में सम्युक्त होकर विघ्नकारियों को दूर भगाईं और अज्ञारोही इन्द्रदेव के समान आप ऐश्वर्य-प्रदाता सिद्ध हों ॥५३॥

१०८०. त्वं सोम पितृभिः संविदानो नृणां पृथिवी आ ततन्व । तस्मै तऽ इन्दो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥५४॥

हे सोम ! हमारे पात्सकों-पूर्वजों के स्वप्न सम्मिलित होकर आप सुतोक और पृथ्वी में सुखों को विस्तृत करें। हे प्रकाशक सोम ! हम आपके लिए हवि देकर खड़े करते हैं। आप हमारे लिए महान् ऐश्वर्य उपलब्ध कराईं ॥५४॥

१०८१. बर्हिषदः पितरऽ कृत्यवर्गिणा वो हव्या चकृपा जुषध्वम् । तऽ आ गतावसा शन्तमेनाधा नः शं योररपो दधात ॥५५॥

कुश-अस्रस पर विशाजित होने वाले हे पितरों ! आपके लिए इन हविष्याजों को हम समर्पित करते हैं। आप इनमें अपनी तृप्ति के लिए प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करें। आप अत्यन्त सुखकारी रखण-साधनों के साथ इस यज्ञ में पवारें सब प्रकार के भय, पाप और दुःखों को दूर करके हमें सुखी बनाईं ॥५५॥

**१०८२. आह पितुन्सुविदत्रो २ अधित्सि न्याते च विक्रमणं च विष्णोः । बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पितरस्तऽ इहागमिष्यते ॥५६॥**

हम विविध ज्ञानों के उत्तम ज्ञाता, अपने पितरों के जुग ज्ञान को ग्रहण करें । व्यापक परमेश्वर के शाश्वत गतिशील सृष्टि-चक्र के क्रम को समझें, कुल के आसन पर अधिष्ठित स्वध (पितरों के निमित्त प्रदत्त अन्न आदि) युक्त सोमरस का पान करने वाले हमारे सभी पितर इस यज्ञस्वस पर पधारें ॥५६॥

**१०८३. उपाहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु । वऽ आ गमन्तु तऽ इह ध्रुवन्त्वधि ध्रुवन्तु तेवन्त्वस्मान् ॥५७॥**

जो सोम की इच्छा करने वाले कुलार्थ पर विराजित अर्ध त्रिव पितर हैं, उनका हम इस यज्ञ में आवाहन करते हैं । वे इस यज्ञ में पधारें । हमारे वनकों को सुनें । पिता की पाति वे हम पुत्रों को श्रेष्ठ उपदेश करें और हमारी रक्षा करें ॥५७॥

**१०८४. आ यन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निध्यान्तः पथिभिर्देवयानैः । अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोधि ध्रुवन्तु तेवन्त्वस्मान् ॥५८॥**

जो सोम के समान सौम्य प्रवृत्ति वाले, अग्निवत् तेजस्वता कारण करने वाले हमारे पितर हैं, वे देवों के लिए दिव्यमार्ग से इस यज्ञ में पधारें । वही स्वध से सन्तुष्ट होकर हमें दिव्य ज्ञान का उपदेश करें और हमारी रक्षा करें ।

**१०८५. अग्निध्यान्तः पितरऽ एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः । अन्ता हवींश्च वि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं च सर्ववीरं दधातन ॥५९॥**

हे अग्निवत् तेजस्वी पितृगण ! अन्न हमारे यज्ञानुष्ठान में पधारें और उत्तम तीर्ति से संस्कारित सर्वोच्च स्वान में प्रतिष्ठित होकर अति प्रयत्न से सिद्ध हुए इविष्यज्ञों को ग्रहण करें । फिर कुल— आसनों पर विराजित आप, हम वाजकों को वीर-पराक्रमी सन्तानें और धन-जन्य आदि वस्तु ऐश्वर्यों को प्रदान करें ॥५९॥

**१०८६. येऽ अग्निध्यान्ता येऽ अग्निध्यान्ता मध्ये दिक् स्वधया मादयन्ते । तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वां कस्ययाति ॥६०॥**

जो अग्नि संस्कार से ऊर्ध्वगति को प्राप्त हुए पितर हैं अथवा जो अभी ऊर्ध्वगति को प्राप्त नहीं हुए हैं, सुलोक के मध्य विद्यमान वे सब पितर स्वध-संपन्न अन्न पाकर आर्जित होते हैं । उन सभी को स्वध विराट परमात्मा मनुष्य के लिए प्राप्त होने वाले ज्ञातेर को कर्मफल की मर्यादा के अनुसार प्रदान करते हैं ॥६०॥

**१०८७. अग्निध्यान्तानृतुमतो हवाभडे नाराशश्च से सोमपीथं यऽ आशुः । ते नो विप्रासः सुहवा भवन्तु ययश्च स्याम पतयो रयीणाम् ॥६१॥**

अग्नि के पाध्यम से ऊर्ध्वगति को प्राप्त हुए पितर (अग्नि वित्त के ज्ञाता-पितर) जो यज्ञादि कर्मों में सोम पीने वाले हैं, उत्तम पुरुषों के योग्य प्रशंसक करते हुए हम उनका आवाहन करते हैं । वे ज्ञान-सम्पन्न पितर हमारे लिए धन-धान्यादि के रूप में अपार वैभव प्रदान करें ॥६१॥

**१०८८. आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमधि गृणीत विष्टे । मा हि चं सिष्ट पितरः केन चित्रो यद् यऽ आगः पुरुषता कराम ॥६२॥**

हे सम्पूर्ण पितरों ! हम लोक दावे घुटने को टेककर (हनुषान् मुदस्वत्) बैठकर आप सबका सत्कार करते हैं । आप हमारे यज्ञ कर्मों की उत्तम सम्प्रेषक कर अपने अधिकृत अंकट करें ; कदाचित् यज्ञ कर्मों के पुरुषार्थ में कोई त्रुटि हो जाए, तो आप हम वाजकों को किसी भी प्रकार से हिरसित न करें, अपितु हमारी रक्षा करें ॥६२॥

१०८९. आसीनासोऽ अरुणीनामुपस्थे रविं यत्त दाशुषे मर्त्याय । पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य तस्यः  
प्र यच्छत त ऽ इहोर्जं दधात ॥६३॥

दिव्य प्रकाश से अभिपूरित सूर्यलोक में विराजमान हे पितरों ! आप यज्ञादि अनुष्ठान करने वाले श्रेष्ठ मनुष्यों के लिए ऐश्वर्य प्रदान करें । इनके पुत्रों को भी श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करें, जिससे वे सब गृहस्वाग्राम में रहकर बल-वैभव को धारण करें तथा सुखी जीवन जिएं ॥६३॥

१०९०. यम्ये कव्यवाहन त्वं धिन्मन्यसे रयिम् । तन्नो गीर्भिः श्रवाथ्यं देवत्रा पनथा  
युजम् ॥६४॥

विद्वानों द्वारा स्तुत्य गुणों व सामर्थ्यों को धारण करने वाले हे अग्ने ! आप वाणियों द्वारा वर्णनीय, विद्वानों द्वारा स्तुत्य, जिन गुणों एवं सामर्थ्यों को श्रेष्ठ मानते हैं, उन्हें हमारे लिए भी उपलब्ध कराएं । हमारे द्वारा देवताओं की तृप्ति के लिए समर्पित हवि उन तक पहुंचाएं ॥६४॥

१०९१. यो अग्निः कव्यवाहनः पितृन् यक्षन्तावृष्टः । त्रेहु इव्यानि वोचति देवेभ्यश्च  
पितृभ्यऽ आ ॥६५॥

कव्य (पितरों के लिए आहुति) वहन करने वाले हे अग्निदेव ! आप सत्यरूपी यज्ञ को बढ़ाने वाले हैं । आप पितरों एवं देवताओं तक हमारे द्वारा समर्पित हवियों पहुंचाएं ॥६५॥

१०९२. त्वमग्न ऽ ईदितः कव्यवाहनावाहुव्यानि सुरभीणि कृत्वी । प्रादः पितृभ्यः स्वधया  
ते अक्षप्रज्ञि त्वं देव प्रयता हवींश्च वि ॥६६॥

हे कव्यवाहन (विद्वानों द्वारा वर्णित गुणों एवं सामर्थ्यों के धारक) अग्ने ! आप स्तुतियों को प्राप्त होकर उत्तम सुगंधवत्त अग्नादि पदार्थों को वहन करें । इसे स्वधारण में पितरों को प्रदान करें हे देव ! आप भी प्रीतिपूर्वक हविष्यान्नों को ग्रहण करें ॥६६॥

१०९३. ये शेह पितरो ये च नेह योश्च विद्य यांर उ च न प्रविद्य । त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः  
स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुवस्व ॥६७॥

हमारे ओ (पालकजन) पितर यहाँ अधिष्ठित हैं और जो यहाँ अधिष्ठित नहीं हैं । हाग जिनको निश्चय से जानते हैं और हम जिनसे निश्चय से नहीं जानते । हे जातवेदः ! (अग्ने ! ) वे जितने भी हों, उन्हें आप जाने । अज्ञादि पोषक पदार्थों से स्वधापूर्वक उत्तम प्रकार से सम्पादित इस यज्ञ को आप सभी स्वीकार कर सन्तुष्ट हों ॥६७॥

१०९४. इदं पितृभ्यो नमो अस्तुद्य ये पूर्वासो य ऽ उपरास ऽ ईयुः । ये पार्थिवे रजस्या  
निषत्ता ये वा नूनं सुवज्जनासु विश्व ॥६८॥

जो पूर्व पितर स्वर्ग में गमनशील हुए जो मुक्ति पकर विलीन हो चुके हैं, जो पृथ्वी में ज्योतिरूप में अवस्थित हैं अथवा जो उत्तम धर्म-पालकों और बलयुक्त ब्रह्माओं के सहायकस्वरूप हैं, उन सब पातक पुरुषों को (पितरों को) आदर सहित यह अन्न प्राप्नोते ॥६८॥

१०९५. अथा यथा नः पितरः परासः प्रत्यासो अग्नऽ ऋतमाशुवाणाः । शुचीदयन्  
दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरपवन् ॥६९॥

हे अग्ने ! जैसे यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों को करते हुए हमारे पूर्व के पातक जनो (पितरों) ने शरीर त्याग कर पवित्र और सत्यलोक को प्राप्त किया । उत्तम ज्ञान का विस्तार करते हुए और अविद्या-रूपी अन्धकार के आवरण को भेदते हुए हम भी यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म सम्पन्न करें । इस प्रकार अपने पूर्वजों की भांति दिव्यलोक को प्राप्त करें ॥६९॥



१०९६. उजान्तस्त्वा निधीमश्नुशन्तः समिधीमहि । उशानुशतऽ आ वह पितृन् हविषे अन्तवे ॥७०॥

हे आने ! यज्ञ व अर्घ्य प्राप्ति की कामना करते हुए हम आपको यहाँ स्थापित करते हैं, यज्ञ-सम्पादन की इच्छा से आपको प्रज्वलित करते हैं । सदैव अग्निको रहने वाले आप स्वर्ण की कामना वाले पितरों को हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए बुलाएँ ॥७०॥

१०९७. अपां फेनेन नमुचेः शिरऽ इन्द्रोदवर्तकः । विश्वा यदज्यः स्पृष्टः ॥७१॥

बुद्ध में विशाल जनु सेना को परास्त करने वाले हे इन्द्रदेव ! आपने नमुचि समक असुर को पानी के फेन से सरसता से काट दिया था ॥७१॥

१०९८. सोमो राजामृतं सुतऽ ऋजीवेणाजहान्मृत्युम् । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्यसऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतं मधु ॥७२॥

अभिभूत हुए रत्नों का राजा सोम अमृत के समान ही है; क्योंकि वह सरसता से मृत्यु को दूर कर देता है । वह यज्ञ से सत्य, बल, अन्न, वीर्य, इन्द्रिय-सामर्थ्य, दुग्धादि पेय, अमृतोपम आनन्द और मधुर पदार्थों को हमारे निमित्त उपलब्ध कराता है ॥७२॥

१०९९. अज्यः क्षीरं व्यपिबत् क्रुद्धाङ्गिरसो भिवा । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्यसऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतं मधु ॥७३॥

हरीर के अंगों का रस पीने वाला ऋण, उस रस के समान है, जो अन्न के बीज से दुग्धरूपी सारभूत अन्न को पृथक् करके पीता है । यही ऋतु से सत्य की प्राप्ति कराता है । यही प्राण हमें पान के निमित्त प्रयुक्त साधन, बल, अन्न, तेज (वीर्य), इन्द्रिय-सामर्थ्य, दुग्धादि पेय, अमृतोपम आनन्द और मधुर पदार्थ प्राप्त कराता है ॥७३॥

११००. सोममन्द्रो व्यपिबच्छन्दसा इन्द्रः स शुचिबत् । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्यसऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतं मधु ॥७४॥

ईस के समान, परमव्यापक आकाश में गमनशील आदित्यदेव उस वृत्त सोम को रश्मियों से पृथक् करके सोम पान करते हैं (इस परम सत्य से ही लौकिक सत्य प्रकट होता है) । यही सोम हमें उपयोग के निमित्त साधन, बल, अन्न, तेज (वीर्य), सामर्थ्य, दुग्धादि पेय और मधुर पदार्थ को प्राप्ति कराता है ॥७४॥

११०१. अप्रात्परिस्तुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत् क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्यसऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतं मधु ॥७५॥

वेदों के ज्ञाता ब्राह्मणों के साथ प्रजापति, परिभूत हुए अज्ञे के रस में से सोम रस रूप दुग्ध को पृथक् करके पान करते हैं और क्षात्रबल को धारण करते हैं । उक्त (ऋतु) सत्य से ही (अनन्त) सत्य प्रकट होता है । वह अन्न रसरूप सोम, बल, अन्न, तेज (वीर्य), सामर्थ्य, दुग्धादि पेय और मधुर पदार्थों को हमारे निमित्त उपलब्ध कराता है ॥७५॥

११०२. रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशतिन्द्रियम् । गर्भो जरायुणावृतऽ उत्वं जहाति जम्ना । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्यसऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतं मधु ॥७६॥

जिस प्रकार गर्भ अपनी रक्षा के लिए स्क्व को जलानु से आवृत करता है; जन्तु जन्म के पश्चात् उसे विदीर्ष कर उसका परित्याग कर देता है । एक ही मार्ग से परिस्थितिवत्त चित्र-मित्र पदार्थ (मूत्र एवं वीर्य) निःसृत होते हैं । लौकिक सत्य इसी सत्य का रूप है । वह अन्न रसरूप सोम, पान के विशिष्ट साधन, बल, अन्न, तेज (वीर्य), इन्द्रिय-सामर्थ्य, दुग्धादि पेय और मधुर पदार्थों को हमारे निमित्त प्रदान कराता है ॥७६॥

११०३. दुह्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः । अश्रद्धामनृतेदमाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विषानं शुक्रमन्थसऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतं मधु ॥७७॥

प्रजापति ने भली प्रकार से विचार करके सत्य और असत्य दोनों स्वरूपों को पृथक्-पृथक् देखकर प्रतिष्ठित किया । उन्होंने असत्य को अश्रद्धा के रूप में तथा सत्य को श्रद्धा के रूप में प्रतिष्ठित किया । प्रस्तुत सत्य उसी (ऋत) सत्य का रूप है । यह अन्न रसरूप सोम, विभिन्न चान करने के साधन, बल, अन्न, तेज, इन्द्रिय सामर्थ्य, दुग्धादि पेय, अमृतोषध मधुर पदार्थ प्रदान करता है ॥७७॥

११०४. वेदेन रूपे व्यपिबत् सुतासुतौ प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विषानं शुक्रमन्थसऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतं मधु ॥७८॥

प्रजापति ने सत्य ज्ञान रूप वेदवच्य से प्रेरित होकर इन्द्रियों द्वारा ज्ञात और अज्ञात पदार्थों को विचार करके स्वीकार किया है । इस परम सत्य पर ही लौकिक सत्य आधारित है । यह अन्न रसरूप सोम, चान करने के विविध साधन, बल, तेज, इन्द्रियबल, दुग्धादि पेय, अमृतोषध मधुर पदार्थ प्रदान करता है । ॥७८॥

११०५. दुह्वा परिसुतो रसं शुक्रम शुक्रं व्यपिबत् ययः सोमं प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विषानं शुक्रमन्थसऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतं मधु ॥७९॥

प्रजापति ने शुद्ध किये हुए सोमियन् सोम, रस को दुध के साथ चान किया और इस (शास्वत) सत्य से (लौकिक) सत्य को जाना । यह अन्न रसरूप सोम चान करने के विविध साधन— बल, अन्न, तेज, इन्द्रिय-सामर्थ्य (तेज), दुग्धादि पेय और मधुर पदार्थ प्रदान करता है ॥७९॥

११०६. सीसेन तन्न मनसा मनीषिणऽ कर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति । अश्विना यज्ञं सविता सरस्वतीन्द्रस्य रूपं वरुणो भिषज्यन् ॥८०॥

जिस प्रकार सीसे (धातु विशेष) के कव एव ऊन आदि कोयल मृत् जले पदार्थों की सहायता से (पटरूप में) बल बना जाता है, उसी प्रकार दोनों अश्विनीकुमार, सर्व प्रेरक सधितदेवता, सरस्वती, वरुण और मेधावी, ज्ञानदर्शी इन्द्रदेव के रूप को ओषधि द्वारा पुष्ट करते हैं और इस प्रकार मनोयोगपूर्वक सौभाग्यी कामक यज्ञ को सम्पन्न करते हैं ॥८०॥

११०७. तदस्य रूपममृतं शचीभिस्तिष्ठो द्युर्देवतः स रराणः । सोमानि शश्वैर्बहुषा न तोषमभिस्त्वगस्य मां समथ्वन्न साजः ॥८१॥

इस यज्ञ में दोनों अश्विनीकुमारों और देवी सरस्वती ने मिलकर अपनी शक्ति द्वारा इन्द्रदेव के विराट् अविनाशी स्वरूप का अन्वेषण किया । यह प्रकट किया कि यज्ञ में प्रमुख बड़ी बात-चानस्पर्तिवाँ इन्द्रदेव के शरीर के रोम हुए । यज्ञ में त्वक् से त्वक् को प्रकट किया और खोले अर्थात् यज्ञ हवि में प्रयुक्त ताजा उनके भंस को पुष्ट करने वाले हुए ॥८१॥

११०८. तदश्विना भिषजा रुद्रवर्तनी सरस्वती वयति पेज्ञो अन्तरम् । अस्थि मज्जानं मासुरैः कारोत्तरेण दयतो गर्वां त्वधि ॥८२॥

इन्द्रदेव के समान स्वभाव वाले वैद्य अश्विनीकुमारों और देवी सरस्वती ने पृथिवी के ऊपर सोम को स्थापित करते हुए इन्द्रदेव के विराट् शरीर की रचना को परिपूर्ण किया । वह रचक त्वक्, मज्जा और परिपक्व ओषधि रस (हर्मोन स्राव) से निर्मित उत्तम शिल्पों के कुल्य निर्माण का परिचय देती है ॥८२॥

११०९. सरस्वती मनसा पेशलं वसु नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः । रसं परित्सुता न रोहितं नम्यहुर्धोरस्तसरं न वेम ॥८३॥

अश्विनीकुमारों के साथ मिलकर देवी सरस्वती, मनमूर्ध्वक, अतिसुन्दर, स्वर्णिम, आभायुक्त, पृष्ठ और दर्शनीय शरीर की रचना करती हैं। धैर्यपूर्वक इन्होंने फिर इन्द्रदेव के शरीर की सुषमा और तेजस्विता के लिए विकार-नाशक लोहित वर्णयुक्त रस (रक्त) को शरीर में उत्पन्न किया ॥८३॥

१११०. पयसा शुक्रममृतं जनित्रं सुरया मूत्राब्जनयन्त रेतः । अपाघतिं दुर्मतिं बाधमानाऽ ऊवध्यं वातं सव्यं तदारात् ॥८४॥

अश्विनीकुमारों और देवी सरस्वती ने दूध से जीवनोक्ति बढ़ाने वाले, अमृत तुल्य प्रजननशील वीर्य को उत्पन्न किया। निकट स्थित होकर अज्ञान और दुर्मति अन्य तमिस्र का उन्मोचन किया। वे आमाशय में स्थित असार भाग को वातनाड़ी से अणनवायु द्वारा और पक्वशय में स्थित अन्न को विभिन्न रसों द्वारा संयुक्त करके असार भाग को मूत्र मार्ग से बाहर निकाल देते हैं ॥८४॥

११११. इन्द्रः सुत्रापा हृदयेन सत्यं पुरोद्देशेन सविता जजान । यकुत् क्लोमानं वरुणो भिवज्जन् यतस्ते वायव्यैर्न भिनाति पितम् ॥८५॥

शरीर की सर्वोत्तम रक्षा करने वाले इन्द्रदेव ने हृदय से और सवितादेवता ने पुरोद्देश संज्ञक अन्न से सत्यरूप यज्ञ के शरीर को पुष्ट किया। वरुणदेव ने ओषधि-विकसक द्वारा यकुत् और गले को नाड़ी को छेक किया है। वायुरूप प्राणों ने हृदय की दोनों पर्याप्तियों की आस्थ और पित को व्यर्कस्थित किया है ॥८५॥

१११२. आन्त्राणि स्वालीर्धन्व पिच्यमाना गुदाः पात्राणि सुदुषा न वेनुः । श्येनस्य पत्रं न प्लीहा शचीभिरासन्दी नाभिरुदरं न माता ॥८६॥

अभिर्भक्षित स्वाली (यज्ञ पात्र विशेष) एवं अन्य पत्रों से सम्पदित अंतर्ग एवं भलद्वार मधु (अन्नादि के सार भाग) को सर्वत्र संक्षरित करने वाले हैं। ये हमारे लिए दुष्कर यौगों की तरह हैं। श्येन पक्षी के पंख के रूप में (हृदय के बायें भाग में) प्लीहा स्थित है। नाभिरूप रक्त-आसन्दी संचालन केन्द्र की तरह है और उदर माता की तरह (सारे अवयवों को पोषण देने में समर्थ) है ॥८६॥

१११३. कुम्भो वनिष्पुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे चोन्मा गधौ भन्तः । प्लाशिर्व्यक्तः शतधाराऽ क्तसो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः ॥८७॥

आसवन की गयी ओषधियों के रस के लिए स्थापित कुंभ ने कर्म के द्वारा बह्नी अंत को विकसित किया। कुंभ के अंदर गर्धरूप में स्थापित स्त्रेय के द्वारा जननेन्द्रिय का उद्भव हुआ। शतधाराओ वाले स्रोत का दोहन करके सुराधानी कुंभों ने पितरों को दत्त किया ॥८७॥

१११४. मुखं सदस्य शिरऽ इत् सतेन जिह्वा पवित्रमश्विनासन्तसरस्वती । चर्ष्यं न पायुर्भिषगस्य वातो वस्तिर्न शोपो हरसा तरस्वी ॥८८॥

इन्द्रदेव के इस विराट् शरीर में मुख और वस्तक सत्य से पवित्र हैं। मुख में स्थित जिह्वा सत्य वाणी और सत्य स्वाद से पवित्र हैं। दोनों अश्विनीकुमार और देवी सरस्वती के द्वारा इन अंगों के संचालन से पवित्रता व्याप्त होती है। शरीर में गुदाद्वार भल विसर्जित कर शरीर को पवित्र और स्वच्छ बनाने के लिए हैं और कल शारीरिक दोषों को बाहर निकालने वाले भिषक् (उपचारकर्ता) रूप होते हैं। शरीर में "वस्ति" मूत्र स्थान और वेगवान् वीर्ययुक्त शेष-प्रजनन इन्द्रिय के रूप में है ॥८८॥

१११५. अधिभ्यां चक्षुरमृतं ग्रहाभ्यां छागेन तेजो हविषा शृतेन । पक्ष्माणि गोधूमैः कुवलैस्तानि पेशो न शुक्रमसितं वसाते ॥८९॥

दोनों अश्विनीकुमारों ने ग्रहों के रूप में दो ज्ञात नेत्रों को निर्मित किया । उस हवि द्वारा उनके नेत्रों में तेज व्याप्त हुआ जो अजा के दुग्ध से परिष्कृत हुई थी । नेत्रों के नीचे काले लोम गेहूँ के बाल से और बेलों से ऊर्ध्वलोम स्थापित किये, जो नेत्रों के शुक्ल और कृष्णरूप को संरक्षित करते हैं ॥८९॥

१११६. अविर्न मेघो नसि दीर्याय प्राणस्य पन्थाऽ अमृतो ग्रहाभ्याम् । सरस्वत्युपवाकैर्वर्णन नस्थानि बहिर्बदरैर्जजान ॥९०॥

उस विराट् की नासिका में बल वृद्धि के लिए 'बेड़' करण बनी । यहाँ से अनवर प्राण का मार्ग प्रवहमान हुआ । सरस्वती ने सब अंकुरों से व्यान धनु प्रकट किया । बेलों और कुशाओं के द्वारा नासिका के लोभ उत्पन्न हुए ॥

१११७. इन्द्रस्य रूपमुच्यते कलाय कर्णाभ्यांश्च भ्रोजममृतं ग्रहाभ्याम् । यथा न बहिर्भुवि केसराणि कर्कन्धु अजे मधु सारधं मुखात् ॥९१॥

कृष्ण ने बल के निमित्त इन्द्र ( इन्द्रियों ) का रूप विनिर्मित किया । इन्द्र भस्मन्की वहाँ द्वारा अविनष्टर सम्पत्तों को ग्रहण करने वाली भ्रोज शक्ति से युक्त दोनों कानों की रचना हुई । जी और कुशा से चौहों के बालों की उत्पत्ति की और बेल से मुख में मधु के सदृश स्वर की उत्पत्ति की ॥९१॥

१११८. आत्मनुपस्थे न वृकस्य लोम मुष्णे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम । केशा न शीर्बन्यशसे श्रियै शिखा सिंहे हस्य लोम त्विधिरिन्द्रियाणि ॥९२॥

उस विराट् इन्द्रदेव के शरीर में उपस्थान के और अधोपाश के लोम वृक (बेड़िया) के लोम रूप हुए मुख में जो मूँछ और दाढ़ी के बाल हैं, वे कृष्ण के लोम के रूप में हुए । शिर में यश के निमित्त बाल, शिखा शोभा के निमित्त और अन्य स्थानों के बाल सिंह के लोम रूप हुए ॥९२॥

१११९. अङ्गान्यात्मन् धिक्का तदधिनात्मानमङ्गैः समघात् सरस्वती । इन्द्रस्य रूप एंश्च शतमानमायुस्त्रेण ज्योतिरमृतं दधानः ॥९३॥

अश्विनीकुमारों ने अनेकों जलियों द्वारा पूजित इन्द्रदेव के रूप को तथा उनकी पूर्ण आयु को, चन्द्रमा की आकाशक ज्योति के साथ संयुक्त करके अनवरत्न प्रदान की है । अश्विनीकुमारों ने शरीर के अंगों को आत्मा के साथ संयुक्त किया और देवी सरस्वती ने उस आत्मा को अंगों के साथ सुनियोजित किया ॥९३॥

११२०. सरस्वती योन्यां नर्धमन्तरधिभ्यां पत्नी सुकृतं विभर्ति । अपांश्च रसेन वरुणो न साम्नेन्द्रश्च श्रियै जनयन्नप्सु राजा ॥९४॥

सरस्वतीदेवी अश्विनीकुमारों की पत्नी बनकर उत्तम प्रकार से उस विराट् इन्द्रदेव को धारण करती है । जल के अधिपति वरुणदेव जल के साररूप रसों से और सप्तमत्त से, ऐश्वर्य के निमित्त इन्द्रदेव को पुष्ट करते हैं । इस प्रकार देवी सरस्वती, इन्द्रदेव को जन्म देती है ॥९४॥

११२१. तेजः पशूनांश्च हविरिन्द्रियात्सु परित्सुता यवसा सारधं मधु । अधिभ्यां दुग्धं धिक्का सरस्वत्या सुतासुताभ्याममृतः सोमऽ इन्द्रः ॥९५॥

धिकित्सा करने वाले दोनों अश्विनीकुमारों और देवी सरस्वती ने शक्तिवृत्त-वीर्ययुक्त पशुओं के दुग्ध-घृत को मधुमिक्षाओं की मधु के साथ संयुक्त करके इन्द्रदेव के लिए तेजस्वी यैव विनिर्मित किया । परित्सुत दुग्ध से अमृत के सदृश शक्तिवर्द्धक सोम को तैयार किया । ऐसे स्वीकृत्य वरुणकर्ताओं को नमन-वन्दन ॥९५॥

## —ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

**ऋषि**— प्रजापति, अधिनीकुमार, सरस्वती १ । ऋगद्वाज २ । आपृति ३-५, ७-९ । सुकीर्ति काशीघट ६ । हैमवर्चि १०-३६ । प्रजापति ३७ । वैखानस ३८ ४८ । शत्रु ४९ ७१ । अश्विनोकुमार, सरस्वती, इन्द्र ७२ ९५ ।

**देवता**— सुरासोम, सूर्य १ । सोम २ ४, ६, ८, ४२ । सुरासोम ५, ७ । पय, सुरा ९ । विषुचिका १० । अग्नि, पयोग्रह, सुराग्रह ११ । सोमसम्पत् १२-३१ । अश्विनो-सरस्वती-इन्द्र ३२-३५, ८०-९५ । पितर ३६ ३७, ४५, ४९-७० । पवमान अग्नि ३८ । त्रिंगोक्त ३९ । अग्नि ४० । अग्नि ब्रह्म ४१ । सविता ४३ । विश्वदेव ४४ । यजमान आशीर्वाद ४६, ४८ । देवयान-पितृयान ४७ । इन्द्र ७१ । ग्रह-स्मृति ७२-७९ ।

**छन्द**— निवृत् शक्वरी १, ९ । स्वराट् अनुष्टुप् २ । भुरिक् त्रिष्टुप् ३, ७, ७२, ७८, ८०, ८१, ८३, ८५, ८९, ९१ । आर्षी गायत्री ४ । निवृत् जगती ५, ५९, ९५ । विराट् प्रकृति ६ । निवृत् पंक्ति ८, ५७ । आर्षी उष्णिक् १० । शक्वरी ११ । भुरिक् अनुष्टुप् १२, १६, २५, २७ । अनुष्टुप् १३-१५, १७, २१-२३, २६, २८, ३०-३१, ३९, ४६, ६५ । निवृत् अनुष्टुप् १८, १९, २४ २७, ४५ ७० । भुरिक् उष्णिक् २० । निवृत् त्रिष्टुप् २२, ६२, ६६, ८४ । त्रिष्टुप् ३३-३४ ५३, ५६, ६१, ६७, ७४, ८२, ८६, ९२, ९३ । विराट् त्रिष्टुप् ३५, ४४, ४९, ५०, ६० । निवृत् अष्टि ३६, ४८ । भुरिक् अष्टि ३७ । गवयत्री ३८ ४० ७१ । निवृत् गवयत्री ४० ४१ ४३ । स्वराट् पंक्ति ४७, ५२, ६७-६८, ९४ । भुरिक् पंक्ति ५१, ५४-५५, ८७, ९० । विराट् पंक्ति ५८ । स्वराट् त्रिष्टुप् ६३, ८८ । विराट् अनुष्टुप् ६४ । स्वराट् बाह्यी उष्णिक् ७३ । भुरिक् अतिजगती ७५, ७९ । भुरिक् अतिशक्वरी ७६ । अतिशक्वरी ७७ ।

## ॥ इति एकोनविंशोऽध्यायः ॥



## ॥ अथ विंशोऽध्यायः ॥

११२२. क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि । मा त्वा हि ऽं सीन्मा मा हि ऽं सीः ॥१॥

(हे आसन्दी ! ) आप छात्रबल के अग्रय-स्थल हैं । धात्रवत के नाभिरूप केन्द्रबिन्दु हैं । (हे कृष्णाजिन ! ) यह आसन्दी आपको पीड़ा न दे । आप भी हमें खेदित न करें ॥१॥

११२३. नि षसाद धृतवतो वरुणः पस्त्वास्वा । साम्राज्याय सुकृतुः । मृत्योः पाहि विद्योत्पाहि ॥२॥

(आसन्दी पर बैठे हुए हे यजमान ! ) वरुण के लिए संकल्पित अग्नि निवारण में संलग्न तथा शुभसंकल्पयुक्त आप साम्राज्य की कामना से मानो ब्रजा के ऊपर ही विराजमान हैं । (हे सौवर्ण रुक्म ! ) आप अकालमृत्यु के कारणों से सबकी सुरक्षा करें । विद्युत्पात जैसी विपत्तियों से रक्षित करें ॥२॥

११२४. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेधिनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । अश्विनोर्धैवज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभिषिञ्चामि सरस्वत्यै धैवज्येन वीर्यायात्राद्यायाभिषिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेभिषिञ्चामि ॥३॥

(हे यजमान ! ) सूर्योदय काल में अश्विनीकुमारों की बाहुओं पूषादेवता के हाथों और अश्विनीकुमारों के ओषाध उपचारों से दिव्य तेज ब्रह्मवर्चस की प्राप्ति के निमित्त आपको हम इस स्थान में अभिषिक्त करते हैं । देवी सरस्वती द्वारा ओषधि उगचार से बल के निमित्त और अन्न की प्राप्ति के निमित्त हम आपका अभिषेक करते हैं । इन्द्रदेव की सामर्थ्य के लिए, बल-ऐश्वर्य के लिए और यश प्राप्ति के लिए आपका अभिषेक करते हैं ॥३॥

११२५. कोसि कतमोसि कस्मै त्वा काय त्वा । सुश्लोक सुमङ्गल सत्यराजन् ॥४॥

हे उत्तमकीर्ति वाले ! हे उत्तम-मंगल कार्यों को करने वाले राजपुत्र ! आप कौन से प्रजापति हैं ? आप अधिष्ठित पुरुषों में कौन हैं ? प्रजापति किस पद के लिए आपको अभिषिक्त करते हैं ? (आपको प्रजापति के सर्वोपरि पद के लिए अभिषिक्त करते हैं ।) हे श्रेष्ठ सत्यवती ! इस उद्देश्य के लिए आप यहाँ आईं ॥४॥

११२६. शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विचिः केशाञ्च श्मश्रूणि । राजा मे प्राणो अमृतं सप्ताद् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ॥५॥

(अभिषिक्त याज्ञक-यजमान अर्चना करने हुए कहते हैं कि) हमारा सिर ऐश्वर्य-सम्पन्न हो । हमारा मुख यशस्वी हो । हमारे केश व मूर्ध्नि कान्तियुक्त हों । हमारा श्रेष्ठ श्रोत्र अमृत के समान हो । हमारे नेत्र प्रजाजनों को जानने वाले हों । हमारे श्रोत्र प्रजाजनों के सम्पूर्ण व्यवहारों का श्रवण करने वाले हों ॥५॥

११२७. जिह्वा मे भद्रं वाङ्महो मनो मन्युः स्वराङ् भामः । मोदाः प्रमोदा ऽअङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः ॥६॥

हमारी जिह्वा कल्याणरूप वचन कला हो । वाली महिम्न से युक्त हो । हमारा मन अनाचारियों पर क्रोध करने वाला हो । हमारी अङ्गुलियाँ स्पर्श सुख देने वाली हों । हमारे सभी अंग सुख देने वाले हों । हमारे मित्र सत्रुओं को परास्त कर सकें ॥६॥

११२८. बाहू मे बलमिन्द्रिय ऽऽ हस्तौ मे कर्म वीर्यम् । आत्मा क्षत्रपुरो यम ॥१७॥

हमारी दोनों भुजाएँ और इन्द्रिय बल-सम्पन्न हों । हमारे दोनों हाथ कर्मक्षेत्र हों । हमारी आत्मा और हमारा हृदय क्षत्रिय धर्म के अनुकूल स्वयम्भूत हों ॥१७॥

११२९. पृष्टीर्मे राष्ट्रमुदरम् ऽऽ सौ शीवाक्ष ओष्णी । कुरु अरली जानुनी विशो मेङ्गानि सर्वतः ॥१८॥

हमारा पृष्ठ भाग (पीठ) राष्ट्र के सम्पन्न सबको क्षरण करने में समर्थ हो । उदर दोनों कन्धे, गर्दन, दोनों जंघाएँ, भुजा का मध्यभाग, कटि, घुटने आदि हमारे सभी अंग वक्र की शक्ति प्रोत्साहित करने योग्य हों ॥१८॥

११३०. नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत् । आनन्दनन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यं यस्तः । जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि विशि राज्ञा प्रतिष्ठितः ॥१९॥

हमारी नाभि ज्ञानरूप हो । हमारी गुदेन्द्रिय विज्ञान (शरीरिक संतुलन) का आधार हो । हमारी क्री प्रजनन में समर्थ हो । हमारे कोश (कुक्ष) आनन्द से युक्त हो । पशु एवं वृक्षरूपी इन्द्रियों से सम्पन्न हमारा शरीर सौभाग्य युक्त हो । जंघाओं और पैरों स्थित सब अंगों से धर्मरूप होकर हम सम्पन्न में शक्तिशाली को प्राप्त करें ॥१९॥

११३१. प्रति क्षत्रे प्रति तिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यङ्गेषु प्रति तिष्ठामि गोषु । प्रत्यङ्गेषु प्रति तिष्ठाम्यात्मन् प्रति प्राणेषु प्रति तिष्ठामि बुधे प्रति क्षत्रापाधिभ्योः प्रति तिष्ठामि यज्ञे ॥

हम क्षत्रियों (शौर्यवान्) एवं राष्ट्र में (उन्हे अपने वक्र में करके) प्रतिष्ठित होते हैं । अश्व और गो आदि पशुओं में (उन्हे प्राप्त करके) प्रतिष्ठित होते हैं । जम्बू एवं अश्वों में (वीरांगिता प्राप्त करके) प्रतिष्ठित होते हैं । आत्मा में (मानसिक बलेशरहित होकर) प्रतिष्ठित होते हैं । बुध में (धन-सम्पत्तिवत् होकर) प्रतिष्ठित होते हैं । प्राणों/धर्मों में (अस्तीतिक वक्र प्राप्त करके) प्रतिष्ठित होते हैं । और वक्र में (वक्र करके) प्रतिष्ठित होते हैं ॥२०॥

११३२. यथा देवाऽ एकादश प्रथमिऽऽ शः सुराचस्तः । बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सभे । देवा देवैरवन्तु मा ॥२१॥

विशिष्ट शक्ति-सम्पन्न ग्वरह ग्वरह देवों के तीन समूहों में से तैत्तिरीय देवता उत्तम गेहर्षों से युक्त बृहस्पतिदेव को पुरोहित बनाकर सवितु के अधिपतासन में रखें और वे सम्पन्न देव अपनी दिव्य सामर्थ्यों से हमारी रक्षा करें ॥२१॥

११३३. प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तुतीयैस्तुतीयैः सत्येन सत्यं यज्ञेन धनो यजुर्भिर्यजू ऽऽ वि सामभिः सामान्यग्निधर्मैः पुरोनुवाक्याभिः पुरोनुवाक्या यज्याभिर्वाज्या यवट्कारैर्वषट्काराऽ आहुतिभिराहुतयो मे कामान्त्समर्चयन्तु धूः स्वाहा ॥२२॥

प्रथम देवता वसु रुद्र के साथ, दूसरे देवता रुद्र अर्द्धित्य के साथ तथा अर्द्धित्य सत्य के साथ हमारे महाबल हों । सत्य वक्र से युक्त हो, यज्ञ यजु से युक्त हो, यजुर्वेद-सामवेद से युक्त हो, सामवेद ऋचाओं से युक्त हो, ऋचाएँ पुरोनुवाक्या से युक्त हो, पुरोनुवाक्य वक्रमणों से, वक्रमण वषट्कारों से युक्त हो, वषट्कार आहुतियों से युक्त हो, आहुतियों समर्पण के साथ इस पृष्ठी पर हमारी कामनाओं को यज्ञी प्रकार सिद्ध करने वाली हो ॥२२॥

११३४. लोमानि प्रयतिर्यम त्वक्ष्मऽ आनतिरागतिः । मा ऽऽ संमऽ उपनतिर्वस्वस्थि भज्जा मऽ आनतिः ॥२३॥

हमारे शरीर के सम्पन्न रोम सज्जित हों । हमारी त्वक् अभ्यस्त और सबको तुष्ट करने वाली हो, हमारा मांस नमनशील (शरीर को लचीला करने वाला) हो और अस्थि सबके आधारभूत धनरूप हो । हमारी बसा शरीर को नष्टा करने करने वाली हो ॥२३॥

११३५. यद्देवा देवहेडनं देवास्त्रकृमा वयम् । अग्निर्मा तस्मादेनसो विद्यान्मुञ्चत्व ॥  
हसः ॥१४ ॥

हे दिव्य गुणों से देदीप्यमान देवों ! हमने आपका जो भी कोई अपराध किया है, अग्निदेव हमें उस अपराध से और अन्य सभी अघर्म के मूल कारणों से बचाएँ । आप से हमारी रक्षा करें ॥१४ ॥

११३६. यदि दिवा यदि नक्तमेनां३ सि चकृमा वयम् । वायुर्मा तस्मादेनसो विद्यान्मुञ्चत्व३ हसः ॥१५ ॥

यदि हमने दिन में या रात्रि में कोई पाप किया हो, तो वायु देवता हमें उस पाप से और अन्य सभी अनाचारों से भी मुक्त करें ॥१५ ॥

११३७. यदि जाग्रद्यदि स्वप्नऽ स्नां३ सि चकृमा वयम् । सूर्यो मा तस्मादेनसो विद्यान्मुञ्चत्व ३ हसः ॥१६ ॥

जाग्रत् अथवा सुप्तावस्था में अर्थात् जागते हुए या अजगते में हमसे जो भी पाप कर्म हुए हों, उन सभी से सूर्यदेव हमें बचाएँ, हमारी रक्षा करें ॥१६ ॥

११३८. यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । यच्छूरे यदये यदेन्द्रकृमा वयं यदेकस्याधि  
धर्मणि तस्यावयजनमसि ॥१७ ॥

जो ग्राम में, जो जंगल में, जो सभा में, जो इन्द्रियों में सम्पन्न कार्यों में, शूद्र अथवा वैश्य वर्ग के साथ जो भी पाप कर्म हमने किये हैं और जो अपराध किसी अधिकार को धारण करने में किया है, (हे गरुडदेव ! ) आप हमारे उन सभी पापों का निवारण करें ॥१७ ॥

११३९. यदापो अज्याऽ इति वरुणेति ज्ञापयहे ततो वरुण नो मुञ्च । अक्षयं निचुम्पुण  
निचेरसि निचुम्पुणः । अव देवैर्देवकृतमेनोयश्च यत्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराजो देव रिचस्याहि ॥

हे वरुणदेव ! हमने अनुचित (असत्य) वार्ता के रूप में जो पाप किये हैं, उनसे आप हमें मुक्त करें । हे अवधुव (ज्ञान योग्य जलप्रवाह) ! आप अनवरत गमनशील हैं, तो भी आप इस यज्ञ स्थान में मन्दगति वाले हों । हे मन्द प्रवाहित वरुण ! देवों के त्रिमित देव कार्यों में हमने जो कुछ पाप कर्म किये हैं, उनका हमने प्रायश्चित्त कर लिया है । हमने मानवी व्यवहारों में जो पाप किये हैं वे सभी दूर करें । हे वरुणदेव ! आप अनेकों त्रिसक शत्रुओं से हमारी रक्षा करें ॥१८ ॥

११४०. समुद्रे ते हृदयमप्यन्तः सं त्वा विशन्वोबधीस्तापः । सुमित्रिद्या नऽ आपऽ ओषधयः  
सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योस्मान्नेष्टि यं च खयं द्विष्ः ॥१९ ॥

हे सोम ! सागर के जल में जहाँ आपका हृदय स्थित है, वही आप विराजमान होते हैं । वहाँ जल के संयोग से आपके अंदर दिव्य ओषधि गुण समाविष्ट हों । जल और ओषधियाँ हमारे निमित्त मित्र की भाँति कल्याणकारी हों । जो दुराचारी (रोगादि) हमसे द्वेष करते हैं और हम जिनसे द्वेष करते हैं, उनके लिए जल और ओषधियाँ शत्रु के रूप में विनाशकारी सिद्ध हों ॥१९ ॥

११४१. हुपदादिव मुमुषानः स्विन्नः स्नातो भलादिव । पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्वन्तु मैनसः ॥

दिव्य गुणों से सम्पन्न जल के सम्पर्क से हम उसी प्रकार पापों से मुक्त हों, जैसे पैं से उतारते ही पादुकाएँ अलग हो जाती हैं, जैसे जल से स्नान करके चर्चित पसीनेज और मैल से रहित हो जाता है और जैसे छने से छना हुआ घृत मैलरहित होता है, वैसे ही, हे अक्षोदेव ! आप हमें पवित्र करें ॥२० ॥



११४२ उद्ध्वं तमसस्परि स्थः पश्यन्तऽउत्तरम् । देवं देवता सूर्यमगन्म ज्योतिस्तमम् ॥

हम इस ब्रूलोक से श्रेष्ठ स्वर्गलोक में अधिष्ठित ज्योतिष्मान्, दिव्यतेज से युक्त सूर्यदेव को देखते हुए तम (अज्ञान-धक्का) से मुक्त हों ॥२१॥

११४३ अपो अद्यान्वचारिषं रसेन समसुक्ष्महि । पयस्यानमऽआगमं तं मा सद्यः सृज वर्धसा प्रजया च धनेन च ॥२२॥

हे अग्निदेव ! आप हमने (अवधूधक्य) उस से संसर्ग किया है । उस के रस से पवित्र हुए हम निर्मल मन से युक्त होकर हो आपके पास आए हैं । आप हमें तेज से, ब्रजा से और धन से सम्पन्न करें ॥२२॥

११४४ एद्योस्येधिषीमहि समिदसि तेजोसि तेजो धमि धेहि । समावर्ति पृथिवी समुषाः समु सूर्यः । समु विश्वमिदं जगत् । वैश्वानरज्योतिर्धूयासं विभून् कामान् व्यश्नवै भूः स्वाहा ॥२३॥

अग्निदेव को समर्पित होने वाली हे समिधे ! आप वृद्धि करने वाली हैं, आपकी अनुकम्पा से हम वृद्धि को प्राप्त हों । आप उत्तम प्रकार दीप्तिमान् हैं और आप तेजस्वरूप हैं । हम भी दिव्यतेज प्रदान करें । भूमि हमें उत्तम प्रकार से सुख प्रदान करें । यह उषा, यह सूर्यदेव और यह सम्पूर्ण जगत भी हम भूशो में स्थित कर । हम सब प्राणियों को प्रकाशित करने वाली वैश्वानर ज्योतिरूप की प्राप्ति कर । तथा उनके अनुग्रह से सभी महती कामनाओं की पूर्ति करें । प्राणियों के कल्याणरूप में यह आहुति आपको समर्पित है ॥२३॥

११४५ अभ्या दधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि । व्रतं च ब्रह्मा घोषैमीन्द्रे स्वा दीक्षितो अहम् ॥२४॥

हे कर्मों के अभिपति अग्ने ! हम ये समिधार् आपसे स्वागत करते हैं । हम ब्रह्म-अनुष्ठान आदि ब्रेष्ठ कर्म करते हुए ब्रह्मा के साथ आपको प्रज्वालित करते हैं ॥२४॥

११४६ यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यज्ज्वौ चरतः सह । तैत्सलोकः पुण्यं प्रज्ञेयं यत्र देवाः सहाग्निना ॥२५॥

जहाँ ब्राह्मण वर्ण और क्षत्रिय वर्ण दोनों की सम्यक् रूप से मिलकर विचारण करते हैं, जहाँ विद्वान् ब्राह्मण-जन अग्निदेव के समान क्षत्रियोचित तेज के साथ निवास करते हैं, उस पुण्य (पवित्र) और दिव्य ज्ञानमय लोक को हम प्राप्त करें २५ ॥

११४७ यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यज्ज्वौ चरतः सह । तैत्सलोकः पुण्यं प्रज्ञेयं यत्र सेर्दिर्न विद्यते ॥

जहाँ इन्द्रदेव और वायुदेव एक साथ मिलकर सहयोगपूर्वक विचारण करते हैं और जहाँ धन-धान्य की कमी के कारण कोई दुःख व्याप्त नहीं है, उस पवित्रतम और दिव्य ज्ञानमय लोक को हम प्राप्त करें ॥२६॥

११४८ अथ शुनां ते अथ शूः पूज्यतां परुषा परुः । गन्धस्ते सोममधतु मदाय रसो अच्युतः ॥२७॥

हे ओषधिरस ! आपका प्राग सोम के प्राग के साथ संयुक्त हो, आपके सूक्ष्म अंग सोम के अंगों से मिले । आपकी सुगन्धि सोमरस से संयुक्त होकर हम सभी को दिव्य आनन्द की अनुभूति कराने में समर्थ हो ॥२७॥

११४९ सिज्वन्ति परि सिज्वन्त्युत्सिज्वन्ति पुनन्ति च । सुरायै बध्नै मदे किन्त्वो यदति किन्तः ॥२८॥

बल को धारण करने वाली, यह द्वारा समुभूत होने वाली ओषधियों का रस पीने से इन्द्रदेव हर्ष को प्राप्त होकर प्राणपर्यन्त वर्षा से अन्तर्दि पदार्थों को संचित है और बल-होर्ष से पवित्र करते हैं। और क्या ? और क्या (चाहिण) ? वह बोलते (गुच्छते) रहते हैं ॥२८॥

११५०. धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुविक्चनम् । इन्द्रं प्रातर्जुषस्य नः ॥२९॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्रातःकाल हम्हा द्वारा समर्पित विविध धान्यों से युक्त दही, सपसी, सत्तु, मासपुए आदि मधुर आहार के सहित पुरोहार और श्रेष्ठ स्तुतियों को ग्रहण करें ॥२९॥

११५१. बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृषहन्तामम् । येन ज्योतिरजनयश्चतावृषो देवं देवाय आगृवि ॥३०॥

हे मरुद्गण ! आप वृषासुर का हनन करने वाले इन्द्रदेव के लिए बृहत् साम का गान करें, यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों की वृद्धि करने वाले अश्विजों ने इसी सामगान द्वारा इन्द्रदेव के लिए चैतन्यरूप आज्यस्वयमान तेजस्विता को प्रकट किया ॥३०॥

११५२. अध्वर्यो अग्निभिः सुतं सोमं पवित्रं आनय । पुनीहीन्द्राय पातये ॥३१॥

हे अध्वर्युगण ! आप पाषाण से अभिषुत हुए सोम को इस स्थान में लाएँ और इन्द्रदेव की तृप्ति के निमित्त इसे शोधित करें ॥३१॥

११५३. यो भूतानामधिपतिर्यस्मिँल्लोकाऽअधि क्रिताः । यऽइंशे महतो मर्हास्तेन गृह्णामि त्वामहं पयि गृह्णामि त्वामहम् ॥३२॥

परमपिता परमात्मा जो सब प्राणियों के स्वामी है, जिनके अखौन रहकर समस्त लोक पोषण पाते हैं और जो महान् होकर सभी विभु पदार्थों को गरु में करने वाले है । हे ब्रह्माय हम आपको (इस परमात्मा से प्राप्त) सामर्थ्य को स्वीकार करते हैं और आपको ग्रहण (स्वापित) करते हैं ॥३२॥

११५४. उपयामगृहीतोऽस्यश्चिभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णाऽएष ते योनिरश्चिभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥३३॥

हे ओषधि रूप रस ! आप दोनों अश्विनीकुमारों के निमित्त अभिषुत होकर उपयाम पात्र में ग्रहण किये गये हैं हम आपको देवी सरस्वती के लिए इन्द्रदेव के लिए और उत्तम सरस्वती के लिए ग्रहण करते हैं । यह आपका उत्पत्ति स्थान है । दोनों अश्विनीकुमारों, सरस्वती और इन्द्रदेव की अनुकम्पा से हम सुरक्षित हों ॥३३॥

११५५. प्राणपा मे अघानपाक्षक्षुष्याः ओत्रपाक्ष मे । वाचो मे विश्वधेकजो मनसोसि विलायकः ॥३४॥

हे ओषधे ! आप हमारे प्राणों के रक्षक, अघानों के रक्षक, नेत्रों के रक्षक और वात्रों के रक्षक हैं । हमारी वाणी सहित समस्त इन्द्रियों की अपने दिव्य ओषधीय गुणों से रक्षा करें । आप इन इन्द्रियों के चालक मन को विधियों से विरक्त कर (उसका आत्मा दें) निलय करें ॥३४॥

११५६. अश्विनकृतस्य ते सरस्वतिकृतस्येन्द्रेण सुत्राम्णा कृतस्य । उपहूतऽउपहूतस्य धक्षयामि ॥३५॥

हे ओषधे ! हम अश्विनीकुमारों द्वारा संस्कारित, देवी सरस्वती द्वारा बल से पुष्ट हुए और उत्तम रक्षक इन्द्रदेव द्वारा उत्पन्न आपको सादर आमंत्रित करते हैं अर्थात् स्वस्थ दीर्घजीवन को कर्मणा से आपका सेवन करते हैं ॥३५॥

११५७. समिद्धऽ इन्द्रऽ उषसायनीके पुरोरुचा पूर्वकृद्वायुधानः । त्रिभिर्देवैस्त्रिंशः शता  
कज्रबाहुर्जघान वृत्रं वि दुरो ववार ॥३६॥

उत्तम प्रकार से जाज्वल्यमान, उत्कृष्टकाल में सर्वप्रथम पूर्व दिक्क को प्रखरशित करने वाली दीप्तियों को फैलाते हुए, तैत्तीस कोटि देवताओं के साथ आगे बढ़ने वाले, मूर्ध के मध्यम कज्रधारी इन्द्रदेव ने मार्ग के अवरोधक वृशासुर का हनन करते हुए, पुर के सब द्वारों को खेलकर प्रकाश प्रकट किया है ॥३६॥

११५८. नराशऽ शः प्रति शूरो मिमानस्तनूनपात्यति यज्ञस्य धाम । गोभिर्वपावान् मधुना  
समञ्जन् हिरण्यैश्चन्द्री यजति प्रचेताः ॥३७॥

सभी जनों से प्रशंसा को प्राप्त, यज्ञ स्थान और अन्यान्य उत्तम पदार्थों के निर्मातृ, बलिष्ठ, वीर, शरीररक्षक, गौओं के दुग्ध का पान करने वाले, मधुर स्वादयुक्त घृत द्वारा पुष्ट हुए, स्वर्णादि निर्मित धूम्रजों से कान्तिमान् और उत्तम वृद्धि वाले इन्द्रदेव का यज्ञमान मन्त्र यजन करते हैं ॥३७॥

११५९. ईडितो देवैर्हरिवाँर अभिष्टिराजुद्धानो हविषा शर्षमानः । पुरन्दरो गोजभिहुप्रबाहुरा  
घातु यज्ञमुप नो जुषाणः ॥३८॥

देवों द्वारा स्मृत्य, तेजस्वी किरणों से युक्त, सम्पूर्ण यज्ञों में वृज्य, अग्निजों द्वारा हविषों के निमित्त बुलाये गये, आपन्न शक्तिशाली, शत्रु पुरों के भेदक, असुरवंश के नाशक, वज्रधारी इन्द्रदेव हमारे इस यज्ञ का सेवन करने के लिए यहाँ पधारे ॥३८॥

११६०. जुषाणो बर्हिर्हरिवान् वऽ इन्द्रः प्राचीनऽ सीदत् प्रदिशा पृथिव्याः । ठरुप्रथाः  
प्रथमानऽ स्व्योनधादित्पौरस्तं वसुभिः सजोषाः ॥३९॥

तेजस्वी, ऐश्वर्यवान्, सबके प्रीति पात्र है इन्द्रदेव । अन्ध पृथ्वी की दिशा विशेष में सुरोभित आसन को देखते हुए, बारह आदिष्टों और आठ ऋतुओं के साथ हमारे प्राचीन यज्ञ स्थान में पधारे और विशाल सुखधारी उस कुश- आसन का उपयोग करें ॥३९॥

११६१. इन्द्रं दुरः कथय्यो धावमाना वृषार्ण यन्तु जनयः सुपत्नीः । हारो देवीरभितो वि  
जयन्ताऽ सुवीरा वीरं प्रथमाना महोष्मिः ॥४०॥

जिस प्रकार मेका-सम्पन्न पतिवत्त को अपने पति के साथ शोभायुक्त होती है, उसी प्रकार उत्तम वीरों और महान् शक्ताओं से सुसज्जित सेनाओं से सुशोभित पराक्रमी इन्द्रदेव सजे हुए विशाल द्वारों से युक्त, सब ओर से सुव्यवस्थित यज्ञशाला को सुशोभित करें ॥४०॥

११६२. उषासानस्ता बहती बहन्तं धयस्वती सुदुषे शूरमिन्द्रम् । तन्तुं ततं पेशसा संवथन्ती  
देवानां देवं यजतः सुरुक्मे ॥४१॥

दुग्धादि उत्तम रसों से युक्त, भ्रमान् विस्तार को प्राप्त करने वाली, अनुपम संमन्त्रयुक्त ठका और रात्रि, महान् पराक्रमी देवों के अधिपति इन्द्रदेव को देदीप्यमान करते हैं ॥४१॥

११६३. दैव्या मिमाना मनुष्यः पुत्रा होताराकिन्द्रं प्रथमा सुवाचा । मूर्धन् यज्ञस्य मधुना  
दधाना प्राचीनं ज्योतिर्हविषा वृषातः ॥४२॥

यज्ञ अनुष्ठानादि श्रेष्ठ कार्य करने वाले कज्रकमल श्रेष्ठ स्तोत्रों से सर्वप्रथम यज्ञ शिरोमणि इन्द्रदेव को स्थापित करते हैं और दिव्य होल (कम्पु और अग्नि) पूर्व दिक्क में स्थित, आवाहन करने योग्य अग्नि को मधुर हविर्या प्रदान करते हुए बढ़ाते हैं ॥४२॥

११६४. तिस्रो देवीर्हविषा वर्षमानाऽ इन्द्रं जुषाणा जन्मो न पत्नीः । अच्छिन्नं तन्तुं पयसा सरस्वतीञ्चा देवी भारती विभृतुर्तिः ॥४३॥

दिव्यगुणों से युक्त, सर्वत्र गमनशील, सरस्वती, भारती और इन्द्रा (इन्द्र) तीनों देवियों धारण-पोषण करने वाली साध्वी स्त्रियों के समान इन्द्रदेव को पृष्ट करती हैं । वे देवियों हमारे यज्ञ को दुग्ध और हवि से सम्पादित करें और हमें विघ्नों से बचाएँ ॥४३॥

११६५. त्वष्टा दधच्छुष्मभिन्नाय दृष्णेपाकोधिहूर्यशसे पुरुणि । वृषा यजन्वृषणं धूरिरेता मूर्धन् यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥४४॥

तेजस्वी, वीर, ऊर्ध्वशक्ति के भेदक त्वष्टादेव, इन्द्रदेव के लिए बल को धारण करें तथा अत्यन्त प्रशंसनीय, वरा के लिए पूजित, प्रबुर सम्पदाओं को धारण करें । वे हमें अभीष्ट वर्षा करने वाले अत्यन्त पराक्रमी, बल-सम्पन्न इन्द्रदेव का सहयोग प्राप्त करते हुए यज्ञ के मूर्धन्य देवों को तृप्त करें ॥४४॥

११६६. वनस्पतिरवस्तुष्टो न पाशैस्त्वन्या समञ्जश्छमिता न देवः । इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन ॥४५॥

समस्त वनस्पतियों से युक्त, आत्म-समर्थ से शर्वांगित, वनस्पतियों के देवता भूतानि मधुररस से यज्ञ को शिद्ध करते हैं तथा इन्द्रदेव के उदर की जठरग्नियों को हविषों से तृप्त करते हैं ॥४५॥

११६७. स्तोकानामिन्दुं प्रति शूरऽ इन्द्रो वृषायमाणो वृषभस्तुरावाद् । घृतप्राया मनसा मोदमानाः स्वाहा देवाऽ अभृता मादयन्ताम् ॥४६॥

पराक्रमी शत्रुओं के प्रति गर्जनशील, सुखवर्क, हिंसक शत्रुओं का मर्दन करने वाले इन्द्रदेव, स्वाहारूप में प्राप्त घृत से तृप्त होते हैं और अमुक्तमय दिव्यगुण-सम्पन्न अल्प बिन्दुरूप में (भी) सोम को पाकर अत्यन्त आनन्दित होते हैं ॥४६॥

११६८. आ यात्विन्द्रोवसऽ उप नऽइह स्तुतः सद्यमादस्तु शूरः । यावृषानस्तविषीर्यस्य पूर्व्यैर्द्यौर्न क्षत्रमधिभूति पुष्यात् ॥४७॥

बलशाली इन्द्रदेव हमारी रक्षा के निमित्त यहाँ सम्पन्न आएँ, वे स्तुति को प्राप्त होकर समस्त जनों के साथ बैठकर प्रसन्नता से पूर्ण हों । जिनके पूर्व सम्पर्थ द्वारा बड़े महान् कार्य सम्पन्न हुए हैं—ऐसे इन्द्रदेव शत्रु के पराभव में समर्थ हमारे क्षात्रबल की घृतलोक के सदृश विस्तृत और पुष्ट करें ॥४७॥

११६९. आ नऽ इन्द्रो दूरप्ता नऽ आस्रदधिहृक्दवसे यासदुग्रः । ओषिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्यणिः पृतन्यून ॥४८॥

अभीष्टों को पूर्ण करने वाले, अत्यन्त तेजस्वी, कलं से युक्त, मनुष्यों के पालक, वज्रधारी, अनेक छोटे बड़े युद्धों में शत्रुओं का मर्दन करने वाले इन्द्रदेव हमारी रक्षा के निमित्त दूर अथवा निकट जहाँ भी हों, वहाँ से यहाँ पधारें ॥४८॥

११७०. आ नऽ इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छावाचीनोवसे राघसे च । तिष्ठाति वज्री मधवा विरष्णीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥४९॥

महान् ऐश्वर्यवान्, वज्रधारी इन्द्रदेव हमारी रक्षा के निमित्त और धन देने के निमित्त हमारे लिए अनुकूल होकर हरिनामक अश्वों से पलौ प्रकार कहीं पधारें । हमारे इस यज्ञ में अपने उपयुक्त हविष्यान्न के भाग को ग्रहण करने के लिए यहाँ (यज्ञशाला में) विराजमान हों ॥४९॥

११७१. प्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवश्शूरमिन्द्रम् । ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा घातिवन्द्र ॥५०॥

हम रक्षा करने वाले, इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं । फलान करने वाले इन्द्रदेव का यज्ञ में बार-बार आवाहन करते हैं । पराक्रमी इन्द्रदेव का उत्तम रीति से आवाहन करते हैं । अत्यन्त समर्थ, अनेकों द्वारा स्तुति किये जाते हुए इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं । वे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव हमारा कल्याण करें ॥५०॥

११७२. इन्द्रः सुत्रामा स्वर्वाँर अयोधिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः । बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥५१॥

उत्तम रक्षा करने वाले, बहुत से स्लायक पुरुषों वाले, विश्व के सब ऐश्वर्यों से युक्त इन्द्रदेव अग्रादि पदार्थों से प्रजा का पोषण करे । वे इन्द्रदेव हमारे दुर्भाग्य को दूर करें । हमें भय-रहित करें । उनकी अनुकम्पा से हम उत्तम बल और पराक्रम से संयुक्त हों ॥५१॥

११७३. तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम । स सुत्रामा स्वर्वाँर इन्द्रो अस्मे आराज्जिद् द्वेषः सनुतर्प्योतु ॥५२॥

हम इन्द्रदेव के विभित किये यज्ञ-कार्यों में इनको उत्तम बुद्धि के अनुगत रहें और उनके कल्याणकारी मन में भी रहें । वे उत्तम रक्षा करने वाले धनवान् इन्द्रदेव हममें दूर अर्वास्थित होने हुए भी धाँजल्य में आने वाले हमारे दुर्भाग्य को सदा दूर करे ॥५२॥

११७४. आ यन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोर्याभिः । मा त्वा के चित्रि यमन् धि न पाशिनोति यन्वेव तौर इहि ॥५३॥

हे इन्द्रदेव । मोर पंखों के समान आकर्षक रोम बाने और गमोर शब्द बाने अपने अर्कों द्वारा यहाँ यज्ञशाला में यहाँ पाश कँकरी पशुओं को फँसाने वाले शिकारी के दुष्ट दुष्ट अनु आपको फँसा न पाएँ । आप इन दुष्ट शत्रुओं को बड़े धनुर्धारी के समान दूर करके यहाँ पहुँचें ॥५३॥

११७५. एवेदिन्द्रं वृषणं यज्रमाहु वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः । स न स्तुतो वीरवद्भानु गोमधुयं यात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५४॥

(अभीष्ट) वर्षक और वज्र के समान भुजा वाले इन्द्रदेव की महर्षि वसिष्ठ के वंशज मन्त्रों द्वारा पूजा करते हैं । वे वरास्यो कर्मों से स्तुति को प्राप्त हुए इन्द्रदेव हमारे गौरों और गौ आदि पशुओं को अपने संरक्षण में धारण करें । हे देवों ! आप सब भी हमारे लिए सदैव कल्याण करने वाले और रक्षा करने वाले हों ॥५४॥

११७६. समिद्धो अग्निरग्निना तप्तो घर्मो विराट् सुतः । दुहे धेनुः सरस्वती सोमं शं शुक्रमिहेन्द्रियम् ॥५५॥

(होता का कचन) हे अग्निनीकुमारो ! अग्निदेव अपने तेज से अत्यधिक देदीप्यमान होकर, यज्ञ में प्रदीप्त हैं, इस अग्नि की तृप्ति के लिए विराट् (अन्तरिक्ष) से सोम को निचोड़ा गया है । गौ के दोहन के सदृश देवी सरस्वती अनेकों सार पदार्थों से शुद्ध, कर्तव्यमान् और बलशाली सोम का दोहन करने वाली हैं ॥५५॥

११७७. तनूपा भिक्षजा सुतेष्टिनोभा सरस्वती । मध्या रजांश्च सीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिर्वहान् ॥५६॥

अपने दिव्य ओषधीय गुणों से हमारे शरीर की रक्षा करने वाले वैद्य दोनों अग्निनीकुमार और देवी सरस्वती अत्यन्त मधुर ओषधिरस को अनेक लोकों के अनेक मार्गों में इन्द्रदेव की पुष्टि के लिए ले जाते हैं ॥५६॥

११७८. इन्द्राद्येन्दुश्च सरस्वती नराश च सेन नमनहुम् । अघाताभक्षिना भक्षु भेषजं भिषजा सुते ॥५७॥

यज्ञ के साथ ही साथ देवी सरस्वती ने इन्द्रदेव के लिए सोम और महौषधियों के तत्व को स्थापित किया तथा वैद्य अश्विनीकुमारों ने निकाले गये उस मधुर ओषधिरूपी सोम को धारण किया ॥५७॥

११७९. आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यम् । इडाभिरक्षिनादिष च सम्पूर्णश्च सश्च रयिं दधुः ॥५८॥

इन्द्रदेव का आवाहन करने वाली देवी सरस्वती और दोनों अश्विनीकुमारों ने इन्द्रदेव के लिए इन्द्रियों में बल और वीर्य को स्थापित किया । गर्वादि पशुओं के साथ सम्पूर्ण अन्न दुग्ध दधि और उत्तम धन को भी धारण किया ॥५८॥

११८०. अक्षिना नमुचेः सुतश्च सोमश्च शुक्रं परिस्रुता । सरस्वती तथा भरद्वाहिपेन्द्राय पातये ।

दोनों अश्विनीकुमारों ने महौषधियों के रस के साथ अभिषुत हुए दीप्तिमान् सोम को पिताया । देवी सरस्वती ने नमुचि राक्षस से सोम का हरण करके उसे इन्द्रदेव के पीने के लिए कुन्नाओं पर स्थापित किया ॥५९॥

११८१. कवच्यो न व्यचस्वतीरक्षिभ्यां न दुरो दिशः । इन्द्रो न रोदसी उभे दुहे कामान्सरस्वती ॥६०॥

दोनों अश्विनीकुमारों सहित देवी सरस्वती ने और इन्द्रदेव ने छिद्र वाले अत्यन्त विराट् यज्ञ द्वारा छावा-पृथिवी दोनों का तथा सम्पूर्ण दिशाओं से अपने कामनाओं का टोहन किया ॥६०॥

११८२. उवासानक्तमक्षिना दिवेन्द्रश्च सायमिन्द्रियैः । सञ्जानाने सुपेशसा समञ्जाने सरस्वत्या ॥६१॥

देवी सरस्वती के साथ दोनों अश्विनीकुमार समान गुण-धर्म करने होकर उषा, रात्रि दिन और सायंकाल में इन्द्रदेव को सम्पूर्ण बल के साथ भली प्रकार से संयुक्त करते हैं ॥६१॥

११८३. पातं नो अक्षिना दिवा पाहि नक्तश्च सरस्वति । दैव्या होतारा भिक्षया पातमिन्द्रश्च सचा सुते ॥६२॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दिन में हमारी रक्षा करें । हे सरस्वती देवि ! आप रात्रि में हमारी रक्षा करें । विराट् प्रकृति यज्ञ के दिव्य होता है अश्विनीकुमारो ! आप ओषधिरूप दिव्य सोम के द्वारा इन्द्रदेव की रक्षा करें ॥६२॥

११८४. तिस्रस्त्रेधा सरस्वत्याक्षिना धारतीह्य । तीव्रं परिस्रुता सोममिन्द्राय सुषुवुर्मदम् ॥६३॥

तीन प्रकार से स्थित अन्तरिक्षलोक में सरस्वती, क्षुलोक में भारती और पृथ्वी में इला, इन तीनों देवियों ने अश्विनीकुमारों द्वारा महौषधियों के दिव्य अरोग्यवर्धक गुणों से युक्त सोम को इन्द्रदेव के लिए अभिषुत किया ॥६३॥

११८५. अक्षिना भेषजं भक्षु भेषजं न सरस्वती । इन्द्रे त्वष्टा यज्ञः त्रियश्च रूपश्च रूपमयुः सुते ॥६४॥

सोम के अभिषुत होने पर दोनों अश्विनीकुमारों ने ओषधिरूप सरस्वती ने मधुरूप ओषधि, त्वष्टा देव ने कीर्तिरूप और धन-सम्पदा के अनेक रूपों को इन्द्रदेव की पुष्टि के लिए धारण किया ॥६४॥

११८६. ऋतुधेन्द्रो वनस्पतिः शशमानः परिस्रुता । कीलात्पश्चिध्या मधु दुहे धेनुः सरस्वती ॥६५॥

वनों के अधिपति इन्द्रदेव ऋतुओं के अनुस्मरण समय-समय पर अभिषुत हुए महीषधियों के मधुरसों और अन्नरसों को प्राप्त कर वृद्धि को प्राप्त हुए हैं । अश्विनीकुमारों और देवी सरस्वती ने गौ के दोहन के समान इन मधुर रसों का दोहन किया ॥६५॥

११८७. गोभिर्न सोममश्विना यासरेण परिस्रुता । समघातः सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुतं मधु ।

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों देवी सरस्वती के साथ गौ के दुग्ध-घृत आदि के साथ महीषधियों के मधुर रस से निष्पन्न सोम को मिलाकर इन्द्रदेव के लिए अर्पित करें । वह अहर्निश पत्नी प्रकार से ग्रहण करें ॥६६॥

११८८. अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती । आ शुक्रमासुराहसु मधमिन्द्राय जधिरे ॥

अश्विनीकुमारों और देवी सरस्वती ने विजातपूर्वक नमुचि नामक दैत्य से श्रेष्ठ-संस्कारित हवि एवं श्रेष्ठ धन को प्राप्त कर इन्द्रदेव के लिए अर्पित किया ॥६७॥

११८९. धमश्विना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्धयन् । स विधेद बलं मधं नमुचावासुरे सत्त्वा ॥

दोनों अश्विनीकुमारों और देवी सरस्वती ने मिलाकर इन्द्रदेव के लिए हवि समर्पित कर उनके पुष्ट किया और इन्द्रदेव ने नमुचि नामक असुर के महान् बल को विदीर्ण किया ॥६८॥

११९०. तमिन्द्र पशवः सचाश्विनोभा सरस्वती । दधानाऽअभ्यनूचत हविषा यज्ञऽइन्द्रियैः ॥

अश्विनीकुमारों और देवी सरस्वती ने साथ मिलाकर यज्ञ से इन इन्द्रदेव को पशुओं के दुग्ध-घृतयुक्त हविष्मात्र समर्पित कर, उनके बल-साधार्थ को कहाया और उनको सब प्रकार से प्रशंसा की ॥६९॥

११९१. यऽइन्द्र इन्द्रियं दधुः सविता वरुणो धनः । स सुत्रामा हविष्यतिर्यजमानाय सक्षत ॥

जो सविता, वरुण और धनदेव हैं, उन्होंने इन्द्रदेव में बल को धारण कराया । वह उत्तम प्रकार से रक्षा करने वाले हविष्मति इन्द्रदेव याजकों की इच्छाओं को पूरा करके सबको सुखी करें ॥७०॥

११९२. सविता वरुणो दध्वाजमानाय दाशुषे । आदत्त नमुचेर्वसु सुत्रामा बलमिन्द्रियम् ॥

उत्तम रक्षक इन्द्रदेव ने नमुचि नामक राक्षस से उसका धन और इन्द्रियों की साधार्थ को ले लिया । सविता और वरुणदेव ने याजकों की प्रसन्नता के निमित्त धन व बल को धारण किया ॥७१॥

११९३. वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं धगेन सविता त्रियम् । सुत्रामा धशसा बलं दधाना यज्ञमाशत ॥७२॥

याजकों को क्षात्रबल व इन्द्रिय-साधार्थ प्रदान करने वाले वरुणदेव ऐश्वर्यप्रदाता सवितादेव एवं यज्ञ तथा पराक्रम की वृद्धि करने वाले इन्द्रदेव हमारे इस (सौजम्य) यज्ञ में बचारे ॥७२॥

११९४. अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्कीर्य बलम् । हविषेन्द्रः सरस्वती यजमानमवर्धयन् ॥

अश्विनीकुमार एवं देवी सरस्वती ने गौओं, अश्वों और हवियों से इन्द्र तथा यजमान के बल, पराक्रम और ऐश्वर्य को वृद्धि की ॥७३॥

११९५. ता नगसत्या सुपेशसा हिरण्यवर्तनी नरा । सरस्वती हविष्यतीन्द्र कर्मसु नोवत ॥

स्वर्गिय पशु पर विहार करने वाले, अनुपम श्रेष्ठतम, मनुष्यकृति वाले दोनों अश्विनीकुमार, देवी सरस्वती और इन्द्रदेव हमारे यज्ञ कर्मों में बचाकर सब प्रकार से हमारी रक्षा करें ॥७४॥

११९६. ता मिषजा सुकर्मणा सा सुदुषा सरस्वती । स वृत्रहा शतक्रतुरिन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ।

श्रेष्ठ कर्म के प्रणेता दोनों वैद्य अश्विनीकुमार अलग कामनाओं का दोहन करने वाली देवी सरस्वती और उस वृत्र-हन्ता शतकर्मा इन्द्रदेव ने राजको के लिए इन्द्रिय-सामर्थ्य को कारण कर उन्हें पुष्ट किया ॥१९५॥

११९७. युवधं सुराममग्निना नमुचावासुरे सचा । विमिषानः सरस्वतीन्द्रं कर्मस्वावत ॥

हे अश्विनीकुमारो हे सरस्वती देवि ! आप सब एक साथ चिलकर नमुचि-नामक असुर से महौषधियों के रस को लेकर, इन्द्रदेव को विविध प्रकार से चम कराते हुए सब प्रकार से रक्षा करें ॥१९६॥

११९८. पुत्रमिव पितरावग्निनोमेन्द्रावशुः काव्यैर्दंष्ट्रं सनाभिः । यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिषणक् ॥१९७॥

हे इन्द्रदेव ! मंत्रद्रष्टा ऋषियों की स्तुतियों को सुन असुरों से संघाम कर जब आप विपत्तिग्रस्त होते हैं, तो दोनों अश्विनीकुमार आपको उसी प्रकार रक्षा करते हैं, जिस प्रकार मात-पिता अपने पुत्र की । हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! जब आप अपनी सामर्थ्य से महौषधियों के रस का पान करते हैं, तो देवी सरस्वती स्तुतिरूप में आपकी सेवा करती हैं ॥१९७॥

११९९. यस्मिन्नश्वासऽ ऋषभासऽ वक्षणो यज्ञा मेघाऽ अवसृष्टासऽ आहुताः । कीलालये सोमपृच्छाय वेधसे हृदा भति जनय चारुमन्त्रये ॥१९८॥

हे याजको ! अग्निरस का पान करने वाले, सोम की आहुति ग्रहण करने वाले, श्रेष्ठ भति वाले अग्निदेव के लिए मन और बुद्धि को शुद्ध करो । इससे अन्न, मंत्रन में समर्थ वृषभ, गौ और मेघ सुसज्जित होकर भेंटरूप में प्राप्त होते हैं ॥१९८॥

१२००. अहाव्यग्ने हविरास्ये ते सुचीव घृतं चम्बीव सोमः । वाजसनिंष्ट्रं रथिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥१९९॥

हे अग्ने ! हम आपके मुख (यज्ञमित्र) में हवि आदि अर्पित करते हैं जैसे सुका में घृत और पात्र में सोम रहता है, वैसे ही आप हमें अन्न, वीर, पुत्रादि, प्रशंसनीय श्रेष्ठ वन और सब लोकों में यज्ञ देने वाला अपार वैभव प्रदान कर सुखी करें ॥१९९॥

१२०१. अग्निना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती धीर्यम् । वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥२००॥

याजकों का कल्याण करने के लिए दोनों अश्विनीकुमारों ने स्वतेज से नेत्रज्योति, देवी सरस्वती ने प्राण के साथ पराक्रम और इन्द्रदेव ने वाणी की सामर्थ्य के साथ इन्द्रिक-बल प्रदान किया ॥२००॥

१२०२. गोमदू बु णासत्थास्त्रायक्षतमग्निना । वर्ती रुद्रा नृपाव्यम् ॥२०१॥

सदा सत्य कर्म में रत रहने वाले, अपने सौद्रक्य से दुष्ट-दुराचारियों को पीड़ित करने वाले हे अश्विनीकुमारो आप गौओं से युक्त, अश्वों से युक्त, श्रेष्ठ मार्ग से सोमरस पान करने वाले हमारे इस सोमयाग में अवश्य पधारें ॥२०१॥

१२०३. न यत्परो नान्तरऽ आदर्षर्षद्वषण्वसू । दुःशं ऽ सो यत्यो रिपुः ॥२०२॥

आषधीय रसों की वर्षा करने वाले हे अश्विनीदेवो ! जो व्यक्ति हमारे सिंदा करने वाले, शत्रु की भीति दुष्टता का व्यवहार करने वाले हों, वे हमें पीड़ित न कर सकें (आप उन्हें नष्ट करें) ॥२०२॥



१२०४. ता नऽ आ वोढमग्निना रयिं पिशङ्गसन्दृशम् । धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥८३॥

हे अग्निनीकुमारो ! आप हम सबको खरण करने वाले हैं । आप दोनों हमारे निमित्त पीतवर्ण, स्वर्णमय, वृद्धिकारक ऐश्वर्य-सम्पन्न प्राप्त कराएँ ॥८३॥

१२०५. पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥८४॥

सबको पवित्रतत्त्व प्रदान करने वाली, अन्न के द्वारा यज्ञदि श्रेष्ठ कर्षों को सम्पादित करने वाली देवी सरस्वती हमारे यज्ञ को धारण करें तथा हमें अधीष्ट वैश्व प्रदान करें ॥८४॥

१२०६. चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञं दधे सरस्वती ॥८५॥

उत्तम और सत्य वाणियों द्वारा सन्मार्ग को प्रेरणा देने वाली, कुर्मति को दूर कर शुभमति उगाने वाली सरस्वती देवी हमारे यज्ञ को धारण करती हैं ॥८५॥

१२०७. यज्ञो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना । धियो विश्वा वि राजति ॥८६॥

अन्न अन्तरिक्ष से दिव्यरत्नों की वर्षा द्वारा सत्कर्म की प्रेरणा देने वाली देवी सरस्वती सभी की बुद्धियों को प्रकाशित करती हैं ॥८६॥

१२०८. इन्द्रा याहि चित्रभानो सुताऽ इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥८७॥

हे विलक्षण कान्तिमान् इन्द्रदेव ! आप हमारे इस यज्ञ-स्थान में पधारें । आपको कामना करते हुए हमने अपनी अँगुलियों से निबोढ़कर पवित्र सोमरस आपके लिए तैयार किया है ॥८७॥

१२०९. इन्द्रा याहि धियेधितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥८८॥

हे इन्द्रदेव ! अपनी अन्तःप्रेरणा से प्रेरित होकर हमारे इस यज्ञ-स्थल में आएं । आपको स्तुति करने वाले ऋत्विग्गण, सोम का शोधन-संस्कार करने वाले हैं, स्वे आप समीप आकर इन हवियों को ग्रहण करें ॥८८॥

१२१०. इन्द्रा याहि तृतुजान उप ब्रह्माणि हरिक् । सुते दधिष्व नमनः ॥८९॥

हरिसंज्ञक घोड़ों से यत्रा करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप इस यज्ञ में प्रतीक्षारत ऋत्विग्गणों के समीप शीघ्र ही आगमन करें । सोम के निष्पादित होने पर हमारे द्वारा सम्पूरित हवियों को ग्रहण कर तृप्त हों ॥८९॥

१२११. अग्निना पिबतां मधु सरस्वत्या सजोषसा । इन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्तांऽ सोम्यं मधु ॥९०॥

देवी सरस्वती के साथ सम्पन्न मन वाले होकर दोनों अग्निनीकुम्हार मधुर सोमरस का पान करें और उत्तम रक्षा करने वाले, वृत्रासुर का हनन करने वाले इन्द्रदेव भी इस मधुर सोमरस का सेवन करें ॥९०॥

## —ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

**ऋषि**— अश्विनीकुमार, सरस्वती, इन्द्र १, ३, २० । शुनः जप २ । प्रस्कम्ब २१, २३ । आश्वतराशि २४-२८ । विष्णुमित्र २९, ५३ । नृमेस-पुरुषमेध ३०, ३१ । नारायण कीर्ति ३२, ३४, ३५ । केशीवल सुकीर्ति ३३ । आंगिरस ३६-४६ । वामदेव ४७-४९ । गर्ग ५०-५२ । वसिष्ठ ५४ । विदर्भि ५५-८० । गृत्समद ८१-८३ । मधुच्छन्दा ८४-९० ।

**देवता**— आसन्दी, कृष्णाजिन १ । वरुण, रुक्म २ । सवित्र, सिन्धोक्त ३ । प्रजापति ४ । इन्द्र, शरीर-अवध ५-९ । विश्वदेवा १०, १२ । देवगण ११ । सिन्धोक्त १३, १७ । अग्नि १४, २२, २४-२६, ७८, ७९ । वायु १५ । सूर्य १६, २१, २७ । आप (जल) १८-२० । समित्, अग्नि वैशान्व २३ । सूर्य-इन्द्र २८ । इन्द्र २९-३१, ४७-५४, ८७-८९ । आत्मा ३२ । सोम, प्रजापति ३३ । सिन्धोक्त ३४, ३५ । इष्म ३६ । तनुष्पात्, नारायण ३७ । इक्ष ३८ । वीरि ३९ । द्वार ४० । उवासानल ४१ । दिव्य होतृगण ४२ । तीन देविया ४३ । स्वाहा ४४ । वनस्पति ४५ । स्वाहाकृति ४६ । अश्विनीकुमार सगर्वाती-इन्द्र ५५, ६९, ७३, ७७, ८०, ९० । इन्द्र, सविता, वरुण ७०-७२ । अश्विनीकुमार ८१, ८३ । सगर्वाती ८४, ८६ ।

**छन्द**— द्विपदा विराट् गायत्री १ । भुरिक् उष्णिक् २, २८ । निवृत् अतिवृत्ति ३ । निवृत् आची गायत्री ४ । अनुष्टुप् ५, ६, १३, २५, ३४, ५५, ५७, ५९-६६, ६८, ७०-७२, ७५ । निवृत् गायत्री ७, ८३, ८५, ८७ । निवृत् अनुष्टुप् ८, १४-१६, २४, ३३, ५८, ६३, ६९, ७३, ७४, ९० । निवृत् जगती ९ । स्वराट् सक्वरी १० । पंक्ति ११, २२, ३२, ४९ । निवृत् प्रकृति १२ । भुरिक् त्रिष्टुप् १७, ४० । भुरिक् अत्यष्टि १८ । निवृत् अतिजगती १९ । भुरिक् अनुष्टुप् २०, ६७ । विराट् अनुष्टुप् २१, २७, ५६, ७६, ८० । स्वराट् अतिशक्वरी २३ । गायत्री २९, ३१, ८४, ८६, ८८, ८९ । बृहती ३० । विराट् त्रिष्टुप् ३३, ५० । निवृत् उपरिष्ठात् बृहती ३५ । त्रिष्टुप् ३६-३८, ४१, ४३, ४५, ४६ । निवृत् त्रिष्टुप् ३९, ४४, ४८ । भुरिक् पंक्ति ४७, ५१, ५२, ५४, ७७, ७९ । निवृत् बृहती ५३ । जगती ७८ । आची उष्णिक् ८१ । विराट् गायत्री ८२ ।

## ॥ इति विंशोऽध्यायः ॥



## ॥ अथ एकविंशोऽध्यायः ॥

१२१२. इमं मे वरुण शुधी हवमन्ना च मृद्वथ । त्वामवस्युरा चके ॥१॥

हे वरुणदेव । आप हमारी स्तुति को सुनकर प्रसन्न हो, हमको सब प्रकार के सुख प्रदान करें । हम अपनी रक्षा के निमित्त आपका आवाहन करते हैं ॥१॥

१२१३. तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणोह बोध्युरुशः ॥ स मा न ऽ आयुः प्र मोषीः ॥२॥

हे वरुणदेव । वेद मंत्रों से आपको स्तुति करते हुए तथा आहुतियों समर्पित करते हुए यजमान पर आप प्रसन्न हों । हे ब्रह्मों से प्रशंसित एवं पूजित वरुणदेव ! आप प्रसन्नचित्त हों, हम सबकी आयु क्षीण न हो । (अर्थात् हम सबको दीर्घायु प्रदान करें) ॥२॥

१२१४. त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेहो अथ यासिसीष्टः । यजिष्ठो यज्ञितम् शोशुचानो विश्वा देवा ॥ सि प्र पुमुष्यस्मत् ॥३॥

हे अग्निदेव । आप सर्वज्ञ, कान्तिमान्, पूजनीय और भस्मे प्रकार आहुतियों को देवों तक पहुँचाने वाले हैं । आप हमारे लिए वरुणदेवता को प्रसन्न करें और हमारे सब प्रकार के अनिष्टों को नष्ट करें ॥३॥

१२१५. स त्वं नो अग्नेवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या ऽ त्वसो व्युष्टौ । अथ यक्ष्व नो वरुणः ॥ रराणो वीहि मृडीकः ॥ सुहवो न ऽ एभि ॥४॥

हे अग्निदेव । इस ठकाकाल में अपनी रक्षण-शक्ति सहित हमारे अत्यधिक निकट आकर हमारी रक्षा करें हमारी आहुतियों को वरुण देवता तक पहुँचकर उन्हें तृप्त करें । सर्वदा आवाहन करने योग्य आप स्वयं हमारी सुखदायी हवि को ग्रहण करें ॥४॥

१२१६. महीम् बु मातरः ॥ सुवतानामृतस्य बत्नीमवसे हुवेम । तुविक्षत्रामजरन्तीमुखी ॥ सुशर्माणमदिति ॥ सुप्रणीतिम् ॥५॥

महान् माहिमावाली, श्रेष्ठकर्मों की माता, सत्य का पालन करने वाली, विभिन्न प्रकार के आक्रमणों से रक्षा करने वाली, चिरयुवा, सतत सम्मार्ग-प्राप्ति और नीतिमूर्ति अदिति का हम अपनी रक्षा हेतु आवाहन करते हैं ॥

१२१७. सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसः ॥ सुशर्माणमदिति ॥ सुप्रणीतिम् । दैवीं नावः ॥ स्वरित्रामनागसमस्तवन्तीमा स्वेमा स्वस्तये ॥६॥

भस्मी प्रकार से रक्षा करने वाली, पर्याप्त विस्तार वाली, अत्यधिक विशाल, सुखदायक, श्रेष्ठ आश्रय देने वाली, निर्दोष, उत्तम पतवार वाली, बिना छिद्र वाली, मृत्यु भय से बचाने वाली, दिव्य और अखण्डित (यज्ञरूपी) नौका को प्राप्त कर हम उस पर चढ़ें, जिससे हमारा कल्याण हो ॥६॥

१२१८. सुनावमा स्वेयमस्तवन्तीमनागसम् । शतारित्रा ॥ स्वस्तये ॥७॥

छिद्ररहित, निर्दोष, अनेकों पतवार (ऊर्ध्व, मधु, सामरूप) वाली, जिसकी बनावट में (अभीष्ट प्रदायक गुण में) कोई दोष न हो, ऐसी सुन्दर (यज्ञरूपी) नाव को (मंसार सागर से पार करने के उद्देश्य से) प्राप्त कर, हम अपने कल्याण हेतु उस पर चढ़ें । (यज्ञीय सिद्धांतों पर आबद्ध हों) ॥७॥

१२१९. आ नो मित्रावरुणा धृतैर्गन्धूतिमुक्षतम् । मध्वा रजा ऽऽ सि सुक्रतू ॥८॥

हे श्रेष्ठकर्मा मित्रावरुण ! आप यज्ञ कार्य हेतु हमें पर्याप्त वृत्त प्रदान करें एवं खेतों को अमृतरूपी मधु (मधुर बल) से सिंचित करें । (जिससे हमें यज्ञ हेतु श्रेष्ठ ओषधीयाँ, जल समिधादि प्राप्त हों) ॥८॥

१२२०. प्र बान्धवा सिसृत जीवसे नऽ आ नो गन्धूतिमुक्षतं धृतेन । आ मा जने ऋषयस्तं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥९॥

हे चिरयुवा मित्रावरुण देवताओं ! आप हमारी कर्त्तव्यता से प्रसन्न होकर मुझाई पैसाकर (अशौचार्द्र देकर) हमें दीर्घ जीवन प्रदान करें । तब जहाँ भी जाएँ, वहाँ हमें कर्त्तव्यता के धृत से सिंचित करे और हमें इस लोक में छायाति भी प्रदान करें ॥९॥

१२२१. शश्रो धवन्तु वाजिनो हवेषु देवतास्ता मितद्रवः स्वर्कः । जम्भयन्तोऽङ्घ्रि युक् ऽऽ रक्षा ऽऽसि सनेम्यस्मद्युपवज्रमीवः ॥१०॥

श्रेष्ठ अन्न एवं यज्ञ से युक्त, शार्ङ्गजिक, उत्तम विज्ञान से युक्त, हे (मित्रावरुण) देवो ! आप सर्प, पेड़िये और राक्षसी जीवों का विनाश करते हुए, हमारे रोगों (विकारों) को नष्ट कर, हमें सनातन सुख (शान्ति) प्रदान करें ॥१०॥

१२२२. वाजे वाजेवत वाजिनो नो हनेषु विप्राऽ अमृताऽ क्रतुजाः । अस्य मय्यः पिबत मादयस्व तृप्ता चात पथिभिर्देवयानैः ॥११॥

अविनाशी, सत्य के ज्ञाता, बुद्धि-बल से सम्पन्न हे (मित्रावरुण) देव ! आप प्रत्येक युद्ध एवं धन प्राप्ति करने के कार्यों में हमारी रक्षा करें । इस मधु रस का पान करके प्रसन्न तथा तृप्त होकर देवमार्ग से गमन करें ॥११॥

१२२३. समिद्धो अग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः । गायत्री छन्दऽङ्घ्रिर्ब्रह्मं प्रविर्गीर्वयो दधुः ॥

इस यज्ञ से लेकर गायत्री यज्ञों तक विभिन्न देवताओं, ऊँटों एवं अन्य पशुओं तक की किसी भी से जान एवं आत्मा की रक्षा के लिये कर्त्तव्यता की गई है । यह 'दिव्य गौ' अर्थात् हमें संख्यापन्न होकर धारण करने वाली सुव्यवस्थित शक्ति सिद्ध होती है—

समिधाओं द्वारा उत्तम रीति से प्रज्वलित, दिव्य प्रकाशयुक्त और धारण करने योग्य अग्नि, गायत्री छन्द और तीनों लोकों, तीनों वयों (बाल, युवा और वृद्ध) की प्रेरक वह गौ (पोषक प्रकृति) हमारे शरीरों को जल तथा आवुष्य प्रदान करे ॥१२॥

१२२४. तनूनपायुध्विचतस्तनूपक्त सरस्वती । ऽङ्घ्रिहा छन्दऽङ्घ्रिर्ब्रह्मं दित्यवाङ्गीर्वयो दधुः ॥

पवित्र आचरण वाले, शरीरों की चतन से बचने वाले, अग्निदेव, रक्षा करने वाली वाणी (सरस्वती), ऽङ्घ्रिक् छन्द और दिव्य इवि को धारण करने वाली गौ (प्रकृति) प्रसन्न होकर हमारे शरीरों को जल और आवुष्य प्रदान करे ॥१३॥

१२२५. इडाभिरग्निरीड्यः सोमो देवो अमर्त्यः । अनुष्टुप्छन्दऽङ्घ्रिर्ब्रह्मं पञ्चाविर्गीर्वयो दधुः ॥

स्तुतियों द्वारा प्रशंसा करने योग्य अग्निदेव, अमरता के दिव्य गुणों से युक्त सोम, अनुष्टुप् छन्द तथा पँचों (पञ्च धृतों) में संख्यापन्न गौ (पोषकशक्तता) पूजित (प्रसन्न) होकर हमारे शरीरों को जल और आवुष्य प्रदान करे ॥१४॥

१२२६. सुवर्हिर्ह्रस्विः पूषण्यानस्तीर्णवर्हिर्मर्त्यः । बृहती छन्दऽङ्घ्रिर्ब्रह्मं त्रिवरसो गौर्वयो दधुः ॥

आकाश में संख्यापन्न, पुष्टिकारक, आकाश को मुद्ध करने वाले और अमर अग्निदेव, बृहती छन्द तथा तीन वयों (जलचर, भूचर, उभचर) वाली गौ (प्रकृति) पूजित (प्रसन्न) होकर हमें जल और आवुष्य प्रदान करे ॥१५॥

१२१७. दुरो देवीर्दिशो महीर्बाहा देवो बृहस्पतिः । पङ्क्तिश्छन्दऽङ्गेन्द्रियं  
तुर्ववाङ्गौर्वयो दधुः ॥१६॥

देदीप्यमान बड़े द्वार, दिशाएँ, बृहस्पति, बहक देवता, पंक्ति छन्द तथा वीर (स्वेदक, अण्डक, उद्धिज एव  
जरायुज) प्राणियों को पोषण देने वाली गौ (प्रकृति) युजित (प्रसन्न) होकर वधमान को बल, ऐश्वर्य एवं आयुष्य  
प्रदान करे ॥१६॥

१२१८. उषे यज्ञी सुपेशसा विशे देवाऽअमर्त्याः । त्रिष्टुप्छन्दऽङ्गेन्द्रियं पङ्क्तवाङ्गौर्वयो दधुः ।

महान्, श्रेष्ठस्वरूप वाली, उष, प्रपात और स्नान केतव्य, अमर सर्वदेव, त्रिष्टुप् छन्द तथा (प्राणिमात्र के पोषण  
का) धार वहन करने में समर्थ गौ (प्रकृति) यहाँ हम लोगों को बल और आयुष्य प्रदान करे ॥१७॥

१२१९. दैव्या होतारा भिषजेन्द्रेण सयुजा युजा । जगती छन्दऽङ्गेन्द्रियमनइवान्गौर्वयो दधुः ।

दिव्य आहुतियों को ग्रहण करने वाले, इन्द्रदेव के संस्मरण में रहने वाले, रोग निवारण की क्षमता से युक्त,  
अग्निदेव और वायुदेव, जगतों छन्द तथा जघट खींचने वाली (पोषण धार को गति देने वाली) गौ, हम सबको  
बल और दीर्घायुष्य प्रदान करे ॥१८॥

१२२०. तिस्रऽङ्गा सरस्वती भारती मरुतो विशः । विराट्छन्दऽङ्गेन्द्रियं मेनुर्गौर्न  
वयो दधुः ॥१९॥

भूमि, सरस्वती और धारण करने वाली मुष्टि— ये तीन देवियाँ, मरुद्गण, विराट् छन्द और दूध (पोषण)  
देने वाली गौ (प्रकृति) हम सबको बल और दीर्घायु प्रदान करे ॥१९॥

१२२१. त्वष्टा तुरीपो अद्भुतऽङ्गनाम्नी पुष्टिर्वर्धना । द्विपदा छन्दऽङ्गेन्द्रियमुक्षा गौर्न  
वयो दधुः ॥२०॥

तीसगामी, दिव्यगुण-कर्म स्वभाव वाले त्वष्टदेवता, पुष्टिताम्र इन्द्रदेव और अग्निदेव, द्विपदा छन्द और  
(जीव मात्र के) सेवन में समर्थ गौ (प्रकृति) हम सबको बल एवं दीर्घ-जीवन प्रदान करे ॥२०॥

१२२२. शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन् भगम् । ककुप्छन्दऽङ्गेन्द्रियं वशा  
वेहद्वयो दधुः ॥२१॥

हमको ज्ञानि देने वाली वनस्पति और ऐश्वर्यशिरक सवितादेवता, ककुप् छन्द और स्थानुशासन (संतुलन)  
में रहने वाली गौ (किरण) यहाँ हम सबको बल तथा आयु प्रदान करे ॥२१॥

१२२३. स्वाहा यज्ञं वरुणः सुक्षत्रो धेषजं करत् । अतिच्छन्दा ऽङ्गेन्द्रियं बृहद्वधो  
गौर्वयो दधुः ॥२२॥

उत्तम प्रकार दुःखों से रक्षा करने वाले वरुणदेवता, श्रेष्ठ कटारवाँ तथा ओषधियों द्वारा किये गये यज्ञ से  
प्रसन्न हुए इन्द्रदेव, अति छन्द तथा भद्रान् अन्न (अन्न-कर्मन् की कर्म में समर्थ) गौ (प्रकृति) हम सबको बल और  
आयु प्रदान करे ॥२२॥

[ ऊक्त सभी मंत्रों में प्रकृति के स्थान पर जीव - जेनन को भी करने पर भी संर्भत भैत जाती है ]

१२२४. वसन्तेन ऋतुना देवा वसवस्त्रियुता स्तुताः । रघन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥

रघन्तर और त्रिवृत् स्तोत्रों द्वारा जिसकी स्तुति की गई है, वे वसु (सबके संरक्षक) देवता और सभी देव वसन्त  
ऋतु के माध्यम से, तेजयुक्त हवि एवं आयुष्य को इन्द्रदेव (इन्द्रियों-जीवकारण) में स्थापित करते हैं ॥२३॥

१२३५. ग्रीष्मेण ऋतुना देवा रुद्रः पञ्चदशे स्तुतः । बृहता यज्ञसा बलध्वं हविरिन्ने  
वयो दधुः ॥२४॥

रुद्रदेवता, जिनकी पंचदश स्तोत्रों (पन्द्रह मंत्रों) और बृहत् (छन्द) द्वारा स्तुति की गई है, (वे) ग्रीष्म ऋतु के माध्यम से यज्ञ-युक्त, बल-युक्त हवि एवं आयुष्य को इन्द्रदेव में स्थापित करते हैं ॥२४॥

१२३६. वर्षाभिर्ऋतुनादित्याः स्तोमे सप्तदशे स्तुतः । वैरूपेण विशीजसा हविरिन्ने  
वयो दधुः ॥२५॥

आदित्यदेवता, जिनकी सप्तदश (सत्रह) स्तोत्रों और वैरूप (छन्द) द्वारा स्तुति की गई है, (वे) वर्षा ऋतु के माध्यम से इन्द्रदेव में ओजयुक्त हवि और आयु को स्थापित करते हैं ॥२५॥

१२३७. शारदेन ऋतुना देवाऽ एकविंशं ऋभय स्तुतः । वैराजेन क्षिया क्षियध्वं हविरिन्ने  
वयो दधुः ॥२६॥

लक्ष्मी (ऐश्वर्य) सहित ऋतु ऋभक देव, जिनकी एकविंश (इकबीस) स्तोम और वैराज (छन्द) द्वारा स्तुति की गई है, (वे) ऋतु ऋभक देव इन्द्रदेव में शरद् ऋतु के माध्यम से कर्त्तियुक्त हवि और आयुष्य को स्थापित करते हैं ॥२६॥

१२३८. हेमन्तेन ऋतुना देवाऽस्त्रिणवे मरुत स्तुतः । बलेन शक्यरीः सहो हविरिन्ने  
वयो दधुः ॥२७॥

त्रि-नव (उनतासीस) स्तोम एवं शक्यरी छन्द के द्वारा स्तुति को प्राप्त हुए मरुत देवता, हेमन्त ऋतु द्वारा इन्द्रदेव में बलयुक्त हवि और आयुष्य को स्थापित करते हैं ॥२७॥

१२३९. शीशिरेण ऋतुना देवाऽस्त्रिणवे शोमताः स्तुतः । सत्येन रेवतीः क्षात्रध्वं हविरिन्ने  
वयो दधुः ॥२८॥

त्र्यस्त्रिंश (तीसीस) स्तोम एवं रेवती छन्द द्वारा स्तुत हुए अमृत ऋभक देवगण शिशिर ऋतु के द्वारा इन्द्रदेव में सत्य के पञ्चधर, क्षात्र बलयुक्त हवि और आयुष्य को स्थापित करते हैं ॥२८॥

यंत्र छ. १९ से ५८ तक पहले ऋषिों में पहले वाले ऋषिः यज्ञ का यज्ञक सम्पन्नता प्राप्त है तथा बाद में वेदों से यज्ञ करने के लिए यज्ञकों को प्रेरित किया गया है । ऋषिगण का यज्ञ किया होता है किन्तु, यज्ञ यज्ञकी वेदों को प्रेरित किया होता है । इसी का अनुष्ठान करने के लिए लौकिक यज्ञको-होमों को प्रेरित किया गया है—

१३४०. होता यक्षत्समिध्नाग्निभिः स्यदेधिनेन्द्रध्वं सरस्वतीमजो धूम्रो न गोधूमैः  
कुवत्सैर्धेवजं मधुशर्षपैर्न तेज उ इन्द्रियं पयः सोमः परिस्तुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य  
होतर्यज ॥२९॥

दिव्य यावक द्वारा, समिधाओं से ऋदीप्त अङ्गवन्धेय अग्नि में, अग्निजेकुमारों, इन्द्रदेव एवं देवी सरस्वती (आदि देवशक्तियों) के निमित्त किये जाने वाले यज्ञ से पोषक अन्न, मधुर ओषधि, तेज और बलप्रदायक दुग्ध, सोम, घृत आदि सभी को प्राप्त हों । हे होत ! ऐसे पवित्र उद्देश्य के लिए अन्न भी यज्ञ सम्पन्न करें (जिससे सब का कल्याण हो) ॥२९॥

१२४१. होता यक्षत्तनूनपात्सरस्वतीमविर्मेधो न धेवजं पयः मधुमता भरद्वाशिनेन्द्राय वीर्यं  
बदरैरुपवाकाभिर्धेवजं लोकमग्निः पयः सोमः परिस्तुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३०॥

दिव्य याजक द्वारा शरीर के रक्षक देव, दोनों अश्विनीकुमारों एवं देवी सरस्वती तथा इन्द्रदेव के निमित्त, बेर, इन्द्रजी (कुटज), अंकुरित बीहि, अम्बवाइन और मेघ (ओषधि) आदि इष्य से किये जाने वाले यज्ञ से शरीर को पुष्ट (आरोग्ययुक्त) करने वाली ओषधि निचोड़े सोम एवं दुग्ध, मूत्र और घी को सब ग्रहण करें हे होता आप भी श्रेष्ठ आहुतियों द्वारा ऐसा ही यज्ञ करें ॥३०॥

१२४२. होता यक्षज्जराशं च सन्न नम्यं पतिं च सुरया धेवजं धेवः सरस्वती धिवग्रथो न चन्द्राक्षिनोर्वपाऽ इन्द्रस्य सौर्यं बदरैरुपवाकाधिर्धेवजं तोळमभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३१॥

याजकों ने धनुषों द्वारा पुष्टिकारक ओषधियों आदि से यज्ञ किया । यज्ञ से पोषित ओषधियों का रस, बेर, इन्द्रजी, अंकुरित बीहि, और मेघ (ओषधि) ऐसे गुणकारक हो गये, जैसे सुवर्णमय रस वाले अश्विनीकुमारों ने और देवी सरस्वती ने इन्द्रदेव के लिए पुष्टिकारक ओषधि (योग) कल्पित किया हो । ये देवतागण परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु, ओषधि तथा घृत का पान करें । हे होता ! आप भी ऐसा ही यज्ञ सम्पन्न करें ॥३१॥

१२४३. होता यक्षदिडेडितऽ आनुद्धानः सरस्वतीमिन्द्रं कालेन चर्षयश्चधेन गलेन्द्रियमग्निनेन्द्राय धेवजं यवैः कर्कन्युधिर्यधु लाजैर्न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३२॥

याजक ने, प्रसन्नचित्त होकर स्तुति द्वारा इत्यादि का अन्वाहन किया । कल्पित दुग्ध, गी के (बल-वर्धक दुग्ध के) द्वारा बल बढ़ाते हुए देवी सरस्वती, इन्द्रदेव और दोनों अश्विनीकुमारों के निमित्त, जी, बेर, लाजा और इन्द्रदेव को बल प्रदान करने वाली ओषधि आदि इतिष्यान् से यज्ञ किया । ये सब देवता परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु और घृत का पान करें हे होता ! आप भी ऐसा ही यज्ञ करें । (अससे सक्षर शायियों का कल्याण हो) ॥३२॥

१२४४. होता यक्षद्वर्हिर्गुणम्रदा धिवज्जनासत्वा धिवजाक्षिनाश्वा शिशुमती धिवग्नेनुः सरस्वती धिवग्नुहऽ इन्द्राय धेवजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३३॥

याजक ने ऊन के जैसी कोमल बर्हि (कुश-आवृत देवों के लिए बैठने के आसन) को देव वीर अश्विनीकुमारों और देवी सरस्वती के निमित्त अर्पित किया । शिशुमती छोड़ी और बछड़े वाली गी के विक्रितसक ने इन्द्रदेव के लिए ओषधि का दोहन किया । उस यज्ञ में सब देवतागण परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु और घृत का पान करें हे होता आप भी ऐसा ही यज्ञ करें ॥३३॥

१२४५. होता यक्षदुरो दिशः कवण्यो न व्यचस्वतीरग्निध्यां न दुरो दिशऽ इन्द्रो न रोदसी दुधे दुधे धेनुः सरस्वत्याग्निनेन्द्राय धेवजं च शुक्लं न ज्योतिरिन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३४॥

याजक ने दिशाओं के समान द्वाररूप इन्द्रदेव, देवी सरस्वती और अश्विनीकुमारों के निमित्त यज्ञ किया यज्ञ के द्वार (दिशाओं के समान द्वाररूप देव) दोनों अश्विनीकुमारों सहित विस्तार वाली छावा-पृथिवी ने ओषधि और सरस्वती ने दुग्ध, जी लेकर इन्द्रदेव के लिए दिव्य तेज और बल प्रदान किया । इस यज्ञ में सब देवतागण परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु और घृत का पान करें । हे होता ! आप भी ऐसा ही यज्ञ करें ॥३४॥

१२४६. होता यक्षत्सुपेशसोषे नक्तं दिवाक्षिना समम्नाते सरस्वत्या त्विषिभिन्ने न धेवजं च स्वेनो न स्वसा हृदा श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥

देवताओं के याजक ने दिव्य अहो रात्र अश्विनो कुमारों और देवी सरस्वती को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ किया । उस यज्ञ से अहो रात्र में स्थित ज्योति ने मन को ब्रह्म श्रो के साथ मासर (मौंड) ओषधि और श्वेन पत्र ने कांति को इन्द्रदेव में स्थापित किया । परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु और घृत का ये सब देवरूप पान करें । हे होता । आप भी ऐसा ही यज्ञ करें ॥३५॥

१२४७. होता यक्षदैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रं न जगृवि दिवा नक्तं न भेषजैः शूचं च सरस्वती भिषक् सीसेन दुहऽ इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्वाज्यस्य होतर्यज ॥

देवताओं के याजक ने दिव्य होतारों (अग्नि और मध्वन प्रयाज), देववीर दोनों अश्विनीकुमारों और इन्द्र देव को प्रसन्न करने के निमित्त यज्ञ किया । उस यज्ञ में बिजि-कसर स्वकर्म में रत सुयोग्य विकित्सक देवी सरस्वती ने ओषधियों और सीसे (चतुर्विंश) से बल और पौर्य का दोहन किया (अर्थात् बल-वीर्य वर्धक ओषधि योग का निर्माण किया) । उस यज्ञ में सभी रस्ते से युक्त दुग्ध, सोम, मधु और घृत का सब देवगण पान करें । हे होता । आप भी ऐसा ही यज्ञ करें ॥३६॥

१२४८. होता यक्षसिन्धो देवीर्न भेषजं त्र्यम्बिकातपोपसो रूपमिन्द्रे हिरण्ययमश्विनेन्द्रा न भारती वाचा सरस्वती महऽ इन्द्राय दुहऽ इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्वाज्यस्य होतर्यज ॥३७॥

देवताओं के याजक ने इन्द्र भारती सरस्वती — तीन देवियों, इन्द्रदेव और अश्विनीकुमारों के निमित्त, कर्मवान् तीन गुणों (सत्, रज, तम) को कारण करने वाली शक्ती (यन्त्रों) से यजन किया । ज्योतिर्मय रूप वाली महाम्बपूर्ण ओषधियों से देवी सरस्वती ने इन्द्रदेव के लिए बल का दोहन किया, उस यज्ञ में सब देवगण परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु और घृत का पान करें । हे होता । आप भी इसी प्रकार का यज्ञ करें ॥३७॥

१२४९. होता यक्षत् सुरेतसमुचभं नर्यापसं त्वहारभिन्द्रमश्विना भिषजं न सरस्वतीभोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो भिषग् यज्ञः सुरया भेषजं च प्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्वाज्यस्य होतर्यज ॥३८॥

देवताओं के याजक ने उतम वीर्यवान्, शराकभी, लोकेश्वरी त्वष्टारूप प्रयाज देवता, इन्द्रदेव, अश्विनीकुमारों और देवी सरस्वती को (तीनों शरीरों की) विकित्सा के निमित्त प्रसन्न करने के लिए यज्ञ किया । उपमी विकित्सक ने वृक, मुरा तथा मासर (मौंड) ओषधि के रस से ऐश्वर्यपूर्ण यज्ञ किया, जिससे जोष, वेग, बल और यश इन्द्रदेव को प्राप्त हुआ । इस यज्ञ में सब देवगण परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु और घृत का पान करें । हे होता । आप भी इसी प्रकार का यज्ञ करें ॥३८॥

१२५०. होता यक्षहनस्पतिं च जामितारं च ज्ञातक्रतुं भीमं न मन्युं च राजानं व्याघ्रं नमसाश्विना भामं च सरस्वती भिषगिन्द्राय दुहऽ इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्वाज्यस्य होतर्यज ॥३९॥

देवताओं के याजक ने कन्स्पति को शुद्ध करने वाले, बहुत कर्म करने वाले, (व्यवस्था हेतु) भयभीत करने वाले, स्वस्थ क्रोधयुक्त, (पशुओं में) सिंह के समान राजा इन्द्र, अश्विनीकुमारों और देवी सरस्वती की प्रसन्नता के लिए संस्कारित अन्न से यजन किया । व्याघ्र (सरस्वती) ने इन्द्रदेव के लिए मन्यु (क्रोध) और बल का दोहन किया । उस यज्ञ में सब देवगण परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु और घृत का पान करें । हे होता । आप भी ऐसा ही यज्ञ करें (जिससे सभी का कल्याण हो) ॥३९॥



१२५१. होता यक्षदग्निं च स्वाहाज्यस्य स्तोकाग्नां च स्वाहा मेदसां पृथक् स्वाहा छागमग्निष्या च स्वाहा मेघं च सरस्वतीं स्वाहा ऋषभमिन्द्राय सि च हाय सहस्रं इन्द्रियं च स्वाहामिन्द्रं न मेघं च स्वाहा सोममिन्द्रियं च स्वाहेन्द्रं सुत्रामाणं च सवितारं वरुणं भिक्षुं पतिं च स्वाहा वनस्पतिं शिवं पाचो न मेघं च स्वाहा देवाऽ आज्यपा जुषाणो अग्निर्मेघं च पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु ध्वन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥४०॥

देवताओं के याजक के द्वारा अग्निदेव का पूजन किया गया उसके लिए घृत बिन्दुओं को ग्रेष्ठ कहा गया । दोनों अग्निनीकुमारों के निमित्त छाग और देवी सरस्वती के लिए मधु को ग्रेष्ठ कहा गया है । मिह के सदृश पराक्रमी इन्द्रदेव के लिए ऋषभ को उत्तम कहा गया है । उत्तम ऋषभ से रक्षा करने में समर्थ सविता देवता और वैश्वपति बड़का के लिए वनस्पदस्य कुराडाज्यस्य सोम की आहुति प्रदान की वनस्पति के लिए अन्न के समान प्रिय ओषधि के द्वारा आहुति प्रदान की । घृत पान करने वाले अग्निदेव ओषधि सेवन करते हुए इस देवगण संहिता, परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु और घृत का पान करें । हे होता । आप भी ऐसा ही यज्ञ करें ॥४०॥

१२५२. होता यक्षदग्निं च स्वाहाज्यस्य स्तोकाग्नां च स्वाहा मेदसां जुषेता च हविर्होतर्यज । होता यक्षत्सरस्वतीं मेघस्य वपाया मेदसो जुषता च हविर्होतर्यज । होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य वपाया मेदसो जुषता च हविर्होतर्यज ॥४१॥

देवताओं के याजक ने दोनों अग्निनीकुमारों के निमित्त बीज बढ़ाने वाली क्रिया से प्राप्त छाग (नामक ओषधि) के बसा भाग से पवित्र यज्ञ किया । हे होता । आप भी ऐसा ही पवित्र यज्ञ करें । देवताओं के याजक ने देवी सरस्वती को प्रसन्न करने के लिए बीज बढ़ाने वाली क्रिया द्वारा प्राप्त मेघ (ओषधि) के बसायुक्त भाग से यज्ञ किया । हे होता । आप भी ऐसा ही पवित्र यज्ञ करें । देवताओं के याजक ने इन्द्रदेव को प्रसन्न करने के लिए बीज बढ़ाने वाली क्रिया से प्राप्त ऋषभ (नामक ओषधि) के बसा वाले पान से पवित्र यज्ञ किया । हे होता । आप भी ऐसा ही पवित्र यज्ञ करें ॥४१॥

१२५३. होता यक्षदग्निं च स्वाहाज्यस्य स्तोकाग्नां च स्वाहा मेदसां जुषेता च हविर्होतर्यज । होता यक्षत्सरस्वतीं मेघस्य वपाया मेदसो जुषता च हविर्होतर्यज । होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य वपाया मेदसो जुषता च हविर्होतर्यज ॥४२॥

देवताओं के याजक ने दोनों अग्निनीकुमारों, देवी सरस्वती और ग्रेष्ठ रक्षक ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव के निमित्त इन मनोहर छाग, मेघ और ऋषभ (नामक ओषधियों) द्वारा यजन किया । हे अश्वर्युगल । तृण, अन्न, यवांकुर, खोसों, तेजयुक्त, प्रसन्न करने वाले, पकाने हुए कवस्तों आदि से सुशोभित, दुग्ध, कान्तियुक्त, अमृतरूप मधु से प्राप्त सोम आप सबके लिए प्रस्तुत है । दोनों अग्निनीकुमार, देवी सरस्वती और उत्तम रक्षक वृत्रासुर-घाती इन्द्रदेव आदि देवगण इस सोमरस का तृप्त होने तक पान करें । हे होता । ऐसा ही पवित्र यज्ञ आप भी करें ॥४२॥

१२५४. होता यक्षदग्निं च स्वाहाज्यस्य स्तोकाग्नां च स्वाहा मेदसां जुषेता च हविर्होतर्यज । होता यक्षत्सरस्वतीं मेघस्य वपाया मेदसो जुषता च हविर्होतर्यज । होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य वपाया मेदसो जुषता च हविर्होतर्यज ॥४३॥

याजक ने दोनों अग्निनीकुमारों के लिए अन्न छाग (ओषधि) के नाच से लिये गये चिकने भाग की आहुतियों से यजन किया । द्वेष रखने वाले दुष्टों के बहलें ही जिन्हें अन्न ग्रहण करने का अधिकार है, ऐसे (देवता) पुरुषाध

से निहत्य ही पहले ब्रह्म करे, जो अग्निदेव द्वारा उत्तम रीति से सुपाचित (वायुभूत) होकर सैकड़ों गुना ब्रह्मों के स्वरूप में प्रकट हो। पार्श्व (कईखो), कटि, गुहाग और चिनको त्वनि हो सके, ऐसे त्रत्येक मर्ष अंग के प्राण अंगों को पुष्ट कर सुरक्षित करें । यह सब दोनों अक्षिणीकुमार ही संचालित करें । हे होता ! आप भी इति से ऐसा ही यजन करें ॥४३॥

१२५५. होता यक्षत् सरस्वतीं येषस्य हविषऽ आस्यदद्य मध्यतो वेदऽ उद्धृतं पुरा हेचोम्यः पुरा पौरुषेय्या गुभो घसभ्रूनं घासे अज्राणां यवमप्रचयानां च सुमत्तराणां च शतस्रिषाणामग्निध्यातानां पीवोषवसनानां पार्श्वतः शोणितः शितामतऽ कत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेव च सरस्वती जुषता च हविर्होतार्यज ॥४४॥

याजक ने सरस्वती देवी को प्रसन्न करने के निमित्त येषस्य आर्षाधि के मध्य से लिये गये चिकने प्राण की आहुतियों से यजन किया । हेच करने वाले (राक्षसों) के पहले ही चिनो अन्न ब्रह्म करने का अधिकार है, (ऐसे देवता) पुरुषार्थ के द्वारा निहत्य ही पहले अन्न ब्रह्म करे, जो अग्निदेव द्वारा उत्तम रीति से सुपाचित (वायुभूत) होकर सैकड़ों गुना ब्रह्मों के स्वरूप में प्रकट हो । पार्श्व, कटि, गुहाग और चिनको त्वनि हो सके, ऐसे त्रत्येक मर्ष अंग के प्राण अंगों को पुष्ट कर सुरक्षित करें । यह सब सरस्वती देवी ही संचालित करें । हे होता ! आप भी इति से ऐसा ही यजन करें ॥४४॥

१२५६. होता यक्षदिन्द्रमृषमस्य हविषऽ आस्यदद्य मध्यतो वेदऽ उद्धृतं पुरा हेचोम्यः पुरा पौरुषेय्या गुभो घसभ्रूनं घासे अज्राणां यवमप्रचयानां च सुमत्तराणां च शतस्रिषाणामग्निध्यातानां पीवोषवसनानां पार्श्वतः शोणितः शितामतऽ कत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवमिन्द्रो जुषता च हविर्होतार्यज ॥४५॥

याजक ने इन्द्रदेव के निमित्त यज्ञ (कामक आर्षाधि) के मध्य से लिये गये चिकने प्राण की आहुतियाँ अर्पित की । हेच करने वाले (राक्षसों) के पहले ही चिनो अन्न ब्रह्म करने का अधिकार है, (ऐसे देवता) पुरुषार्थ के बल पर निहत्य ही पहले ब्रह्म करे, जो अग्निदेव द्वारा उत्तम रीति से सुपाचित होकर (वायुभूत होकर), सैकड़ोंगुना ब्रह्मों के स्वरूप में प्रकट हो । पार्श्व, कटि, गुहाग और चिनको त्वनि हो सके, ऐसे मर्ष अंगों के प्राण-अंगों को पुष्ट कर सुरक्षित करें । यह सब इन्द्रदेव ही संचालित करें । हे होता ! आप भी ऐसा ही यजन करें ॥४५॥

१२५७. होता यक्षइन्द्रस्यतिमभि हि पिष्टतमस्य रश्मिष्ठस्य रश्मिधायित । यत्राश्विनोऽङ्गागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेघस्य हविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य क्रजधस्य हविषः प्रिया धामानि यत्राग्नेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य सुत्राग्न्यः प्रिया धामानि यत्र सवितुः प्रिया धामानि यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया धामानि च सि यत्र देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यत्राग्नेर्होतुः प्रिया धामानि तत्रैतान्मस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावस्यक्षदधीयसऽ इव कृत्वी करदेव देवो वनस्पतिर्जुषता च हविर्होतार्यज ॥४६॥

याजक ने वनस्पतिदेव के निमित्त यज्ञ किया, जिसमे वनस्पतिदेवी की अपने स्थानों में उसी तरह स्थिर हो जायँ, जैसे रस्सी से बैँधा पत्तु स्वस्थान में स्थिर रहता है । जहाँ दोनों अक्षिणीकुमारों की प्रिय इति येष (आर्षाधि) का तथा इन्द्रदेव की प्रिय त्वि क्रजध (आर्षाधि) का सुस्थिर स्थान है । जहाँ अग्निदेव का, सोम का, उत्तम रसक इन्द्रदेव का, सवितृदेव का, वरुणदेव का, पृथ पान करने वाले देवताओं का प्रिय नाभ है, जहाँ वनस्पतिदेव (बुद्धादि) की रक्षा की जाती है, वहाँ उस ध्वज में देवगण उत्तम इति का संयजन करते हैं । हे होता ! आप भी ऐसा ही यज्ञ करें ॥

१२५८. होता यक्षदग्निश्च स्विष्टकृतमयाऽग्निरश्मिनोऽश्वागस्व हविषः प्रिया धामान्ययाद् सरस्वत्या मेघस्य हविषः प्रिया धामान्ययाऽहिन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः प्रिया धामान्ययाऽग्नेः प्रिया धामान्ययाद् सोमस्य प्रिया धामान्ययाऽहिन्द्रस्य सुत्राण्यः प्रिया धामान्ययाद् सवितुः प्रिया धामान्ययाद् वरुणस्य प्रिया धामान्ययाद् वनस्पतेः प्रिया पाथा ऽं स्तयाद् देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यक्षदग्नेर्होतुः प्रिया धामानि यक्षत् स्व महिमानमायजतामेज्या ऽ इक्ष कृणोतु सो अक्षरा जातवेदा जुषता ऽं इविर्होतयंज ॥४७॥

याजक ने अपने इष्ट अग्निदेव के निषक्त यजन किया । अग्निदेव ने (कृपाकर) अश्विनीद्वय की प्रिय हवि जग के धामों (अवतारों) को सरस्वती देवी की प्रिय हवि मेघ (ओषधि) के धामों (उपहारों) को, इन्द्रदेव की हवि ऋषभ (ओषधि) के धाम (उपहारों) को, सवितृदेव के, वरुणदेव के, वनस्पतिदेव के, घृतपान करने वाले देवताओं के, होत अग्निदेव के प्रिय धामों (उपहारों) को समर्पित (यजन) किया । वे जातवेदा अग्निदेव अपनी प्रिय हवि को ग्रहण कर उत्तम कामना करने वाली प्रजा का सब प्रकार कल्याण करें । हे होत आप भी ऐसा ही यज्ञ करें

१२५९. देव बर्हिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रे अश्विना । तेजो न चक्षुरक्ष्योर्बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुधने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥४८॥

सरस्वती ने इन्द्र के लिए कुरु-असुर वधन किया । अश्विनीकुमारों ने इन्द्र में तेज तथा उनकी नेत्र इन्द्रियों में दृष्टि की स्थापना की । ऐश्वर्याधिपति ने इन्द्रादि देवगण हव्य का पान करें । ऐश्वर्य की आकांक्षा वाले याजक यजन करें ।

१२६०. देवीर्हारी अश्विना धिक्जेन्द्रे सरस्वती । प्राणं न वीर्यं नसि हारो दधुरिन्द्रियं वसुधने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥४९॥

दिव्यहार स्वरूपा सरस्वती और वैद्य अश्विनीकुमारों ने इन्द्र में पराक्रम तथा उनकी नासिका इन्द्रिय में प्राण की स्थापना की । ऐश्वर्याधिपति ने इन्द्रादि देवगण हव्य का पान करें । ऐश्वर्य की आकांक्षा वाले याजक यजन करें ।

१२६१. देवी उषासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती । बलं न वाचमास्य ऽ उषाभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुधने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५०॥

दिव्यगुण सम्पन्न रात्रि और उषाकाल की अभिव्यक्ति देवी सरस्वती और अश्विनीकुमारों ने इन्द्रदेव में बल और उनकी मुख इन्द्रिय में वाक् की स्थापना की । ऐश्वर्य के अधिपति ने इन्द्रादि देवगण हव्य का पान करें । ऐश्वर्य की आकांक्षा वाले याजक यजन करें ॥५०॥

१२६२. देवी जोष्टी सरस्वत्यश्विनेन्द्रमर्षयन् । श्रोत्रं कर्णयोर्यशो जोष्टीभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुधने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५१॥

सेवन करने योग्य दिव्यगुण धारण करने वाली सरस्वती देवी और अश्विनीकुमारों ने इन्द्रदेव में यश को बढ़ाया और उनकी कर्णोन्द्रिय में श्रोत्र शक्ति की स्थापना की । ऐश्वर्य के अधिपति ने इन्द्रादि देवगण हव्य का पान करें । ऐश्वर्य की आकांक्षा वाले याजक यजन करें ॥५१॥

१२६३. देवी ऊर्जाहृती दुधे सुदधेन्द्रे सरस्वत्यश्विना धिक्जावत् । शुक्रं न ज्योति स्तनयोराहृती वत् ऽ इन्द्रियं वसुधने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५२॥

उत्तम प्रकार दोहन करने वाली, मनोकामनाओं की पूर्ति करने वाली, रसवती सरस्वती देवी और वैद्य अश्विनीकुमारों ने इन्द्रदेव में शुक्र (बल) और उनके हृदय में ज्योति की स्थापना की । ऐश्वर्य के अधिपति ने इन्द्रादि देवगण हव्य का पान करें । ऐश्वर्य की आकांक्षा वाले याजक यजन करें ॥५२॥

१२६४. देवा देवानां धिक्का होताराविन्द्रमग्निना । वषट्कारैः सरस्वती त्विधिं न हृदये मति  
 ॐ होतृभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५३॥

देवताओं के होतारगण, श्रेष्ठ देव, अग्निनीकुमारों और सरस्वती देवी ने इन्द्रदेव में वषट्कारपूर्वक स्वतेज और हृदय में मति की स्थापना की । ऐश्वर्य के अधिपति ने देवगण हव्य का पान करें । ऐश्वर्य की आकांक्षा वाले याजक यजन करें ॥५३॥

१२६५. देवीस्तिरस्तिस्त्रो देवीरग्निनेद्वा सरस्वती । शूभं न मध्ये नाभ्यामिन्द्राय दधुरिन्द्रियं  
 वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५४॥

इष्टा, भारती, सरस्वती तीन देवियों सहित अग्निनीकुमारों ने इन्द्रदेव की नाभि के मध्य भाग में शूभ की स्थापित किया । ऐश्वर्य के अधिपति ने देवगण हव्य पान करें । ऐश्वर्य की आकांक्षा वाले याजक यजन करें ।

१२६६. देवऽ इन्द्रो नराश ॐ सत्त्विकरुक् सरस्वत्याग्निध्यामीयते रक् । रेतो न रूपममृतं  
 अनिन्द्रमिन्द्राय त्वह्वा दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५५॥

ऐश्वर्यवान्, त्वष्टादेव, देवी सरस्वती और अग्निनीकुमारों ने इन्द्रदेव के लिए समस्त अनेकों में प्रशंसित तीन का वाला रक् (यज्ञ) प्रस्तुत किया । इस मन्त्र से इनको जन्म देने में मयर्ष इन्द्रिय में अमृतरूप रेतस् स्थापित किया । ऐश्वर्य के अधिपति ने देवगण हव्य का पान करें । ऐश्वर्य की आकांक्षा वाले याजक यजन करें ॥५५॥

१२६७. देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपणो अग्निध्या ॐ सरस्वत्या सुपिप्पलऽइन्द्राय पथ्यते मधु ।  
 ओजो न जूतिर्ऋधो न धाम वनस्पतिर्नो दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥

सुन्दर (हरे-परे) रत्न और उत्तम फलों के अधिपति वनस्पतिदेव, अग्निनीकुमारों एवं देवी सरस्वती ने इन्द्रदेव को मधुर रक्त (यज्ञ द्वारा प्राप्त दिव्य सत्व), ओज, उचित विकारात्मक प्रदान कर इनको इन्द्रियों में गति और सामर्थ्य की स्थापना की । ऐश्वर्य के अधिपति ने देवगण हव्य का पान करें । ऐश्वर्य की आकांक्षा वाले याजकगण आप भी यजन करें ॥५६॥

१२६८. देवो बर्हिर्वाग्नितीनामध्वरे स्तीर्णमग्निध्यामूर्णध्यादः सरस्वत्या स्योनमिन्द्र ते सद् ।  
 ईशायै वन्तु ॐ राजानं बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५७॥

सुन्दर सभा (यज्ञशाला) में सरस्वती देवी और अग्निनीकुमारों ने वन में उत्पन्न होने वाली कुशा से निर्मित आसन (देवराज) इन्द्रदेव के निमित्त प्रदान किया और उनको ऐश्वर्य और वन्तु से सुशोभित किया । ऐश्वर्य की आकांक्षा रखने वाले याजक यजन करें ॥५७॥

१२६९. देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवान्यज्ञस्रधायक ॐ होताराविन्द्रमग्निना वाचा वाच ॐ  
 सरस्वतीमग्नि ॐ सोम ॐ स्विष्टकृत् स्विष्टऽ इन्द्रः सुत्रामा सविता वरुणो धिक्गिष्टो देवो  
 वनस्पतिः स्विष्टा देवाऽ आज्यपाः स्विष्टो अग्निरग्निना होता होत्रे स्विष्टकृद्गशो न  
 दधदिन्द्रियमूर्जमपचिति ॐ स्वधा वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५८॥

अग्निदेव, मित्रावरुणदेव, अग्निनीकुमारों, देवी सरस्वती, इन्द्रदेव, सवितादेव, वरुणदेव, वनस्पतिदेव और धृति पान करने वाले अन्य देवगणों ने स्विष्टकृत् से (पत्नी प्रकाश अथवा उत्तम सत्व की प्राप्ति हेतु) अग्निदेव द्वारा हवि को ग्रहण किया । यजन में प्रसन्न हुए देवगणों ने याजकों को यज्ञ, इन्द्रिय-सामर्थ्य, वन-पराक्रम एवं ऐश्वर्य प्रदान किया । ऐश्वर्य के अधिपति ने देवगण हव्य पान करें । ऐश्वर्य के आकांक्षी याजक यजन करें ॥५८॥

१२७०. अग्निमहा होतारमवृणीताय यजमानः पचन् वक्त्रीः पचन् पुरोडाशान् बध्नन्नश्चिभ्यां छागश्च सरस्वतीं मेघमिन्द्राय ऋषभं च सुन्वन्नश्चिभ्यां च सरस्वत्या ऽ इन्द्राय सूत्राम्णो सुरासोमान् ॥५९॥

आज पुरोडाश पकाने के लिए यजमान ने अग्निदेव को वरण किया और अश्विनो कुमारों के लिए छाग (ओषधि) द्वारा, सरस्वती के लिए मेघ (ओषधि) द्वारा तथा इन्द्र के लिए ऋषभ (ओषधि) द्वारा पुरोडाशों को पकाया । अश्विनो कुमारों और सरस्वती ने इन्द्रदेव के लिए मातृवर्षधियों का जेबन रस एवं सोमरस प्रदान किया ॥

१२७१. सुपस्था ऽ अह्य देवो वनस्पतिरभवदश्चिभ्यां छागेन सरस्वतीं मेघेणेन्द्राय ऋषभेणाक्षस्तान् मेदस्तः प्रति पचतागृभीषतावीवृषन्त पुरोडाशैरपुरश्चिना सरस्वतीन्द्रः सूत्रामा सुरासोमान् ॥६०॥

यज्ञस्थल में वनस्पतिदेव ने उर्ध्वस्मत् लेकर छाग (ओषधि) द्वारा अश्विनो कुमारों को, मेघ (ओषधि) द्वारा सरस्वतीदेवों को तथा ऋषभ (ओषधि) द्वारा इन्द्रदेव को व्रतत्र किया । सन्तुष्ट हुए इन्द्रदेव ने अश्विनो कुमारों और देवी सरस्वती के साथ महौषधियों का तीक्ष्णरस तथा जेबन पान किया ॥६०॥

१२७२. त्वामह्य ऋषभऽ आर्षेय ऋषीणां न्यादवृणीताय यजमानो बहृष्यऽ आ सकृतेभ्य ऽ एष मे देवेषु वसु कार्यायक्ष्यन्तऽ इति ता या देवा देव दानान्यदुस्तान्यस्या ऽ आ च शास्व्या च गुरस्वेधितऽ होतरसि भद्रवाच्याय प्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय सूक्ता बृहि ॥६१॥

ऋषि प्रणीत मार्ग पर अविकल्प यज्ञक ने बहुरात्रता में उर्ध्वस्मत् विभिन्न देवगणों में से ऐश्वर्य प्रदाता देवताओं का वरण किया और ऐश्वर्य के विधित उनका वजन किया । इन देवगणों ने मानव को दिव्य दान दिये । वे होता आप भी इन कल्पवाणकारी सूत्रों की श्रवण के कल्याण के लिए जान करें ॥६१॥

### —ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि-शुनःशेष १२ । त्वामदेव ३-५ । यजवत्कृत ६, ७ । विद्याविश्व ८ । वसिष्ठ ९-११ । स्वस्त्यभ्याशेष १२-६१ ।  
देवता— वरुण १, २ । अग्नि, ऋषभ ३, ४ । अदिति ५, ६ । स्वर्ग्य श्री ७ । मिश्रावरुण ८, ९ । अश्व १०, ११ । इष्य, इन्द्र वयोध १२ । अनुन्वन् अक्षया नराशस १३ । इह १४ । धीर्हि १५ । द्वार १६ । उद्यासानक्ता १७ । दिव्य होतागज १८ । तीन देखिनी १९ । त्वह्य २० । वनस्पति २१ । स्वाहाकृति २२ । लिंगोक्त २३-२८ । ४१-४५, ५९-६१ । अश्विनो कुमारः सरस्वती-इन्द्र २९-४० । ४८-५८ । यूप ४६ । स्विहकृत् अग्नि ४७ ।

छन्द— निचृत् गायत्री १, ८ । निचृत् त्रिष्टुप् २, ११ । स्वराट् पंक्ति ३, ४ । त्रिष्टुप् ५ । धुरिक् त्रिष्टुप् ६ । विराट् षवमध्या गायत्री ७ । त्रिष्टुप् ९, ४८, ५०-५१, ५४ । धुरिक् पंक्ति १० । विराट् अनुष्टुप् १२, १४ । अनुष्टुप् १३, १६, १९-२२, २४, २५ । निचृत् अनुष्टुप् १५, १७, १८ । धुरिक् अनुष्टुप् २३, २७, २८ । विराट् बृहती २६ । निचृत् अष्टि २९, ३३, ३६ । धुरिक् अत्याष्टि ३० । अतिधृति ३१, ३२, ४१ । निचृत् अतिधृति ३४ । धुरिक् अष्टि ३५ । धृति ३७, ६० । धुरिक् कर्ति ३८ । निचृत् अत्यष्टि ३९, ५६ । (दो) निचृत् अत्यष्टि ४० । त्रिषाद गायत्री, विराट् आकृति ४२ । याजुषी पंक्ति, उत्कृति ४३ । याजुषी त्रिष्टुप्, स्वराट् उत्कृति ४४ । धुरिक् प्राजापत्या अष्टिक्, धुरिक् अभिकृति ४५ । (दो) धुरिक् अभिकृति ४६ । धुरिक् आकृति, आकृति ४७ । ब्राह्मी अष्टिक् ४९ । अतिजगती ५२ । धुरिक् अतिजगती ५३ । स्वराट् शक्वरी ५५ । अतिशक्वरी ५७ । अत्याष्टि, निचृत् त्रिष्टुप् ५८ । अष्टि ५९ । धुरिक् विकृति ६१ ।

॥ इति एकविंशोऽध्यायः ॥

## ॥ अथ द्वाविंशोऽध्यायः ॥

इस अध्याय में अग्नेय की विशेष अह्नियों का वर्णन है। अह्नियों के पूर्व कुछ पंक्तियों में अग्नेय के अग्नि की स्तुतियों की गयी हैं। अग्नि नाम के किसी पशु की अपेक्षा सर्वत्र सर्वांगीत होने में बहुत बड़ीय ऊर्जा—यज्ञाग्नि के साथ इस स्तुतियों की संगति सटीक बैठती है। सर्वत्र सर्वांगीत होने में बहुत होने के कारण यज्ञियऊर्जा को अग्नि तथा स्वयंस्वरूप चंचल अग्नि की ज्वालाओं को अर्चन कहकर संबोधित किया गया है—

१२७३. तेजोसि शुक्रममृतमायुष्या ऽ आयुर्मे पाहि । देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेक्षिनोर्बाहुभ्यां  
पूष्णो हस्ताभ्यामाददे ॥१॥

हे तेजस्वरूप सुवर्ण (निष्क) ! आप आयु पराक्रम बल और अमरत्व को रक्षा करने वाले हैं। आप हमारी आयु की रक्षा करें। सविता देव के अनुशासन में अहिनीकुमारों की भुजाओं (अर्थात् स्वस्य भुजाओं) और पूषण देव के हाथों (प्राणवान् हाथों) के द्वारा हम आपको यहूय करते हैं ॥१॥

१२७४. इमापगृध्यान् रशनामृतस्य पूर्वऽ आयुषि विदधेषु कव्या । सा नो अस्मिन्सुतऽ  
आ वभूव जलस्य सामन्सरमारपन्ती ॥२॥

यज्ञ से प्राप्त, जिस ज्ञान शक्ति द्वारा ऊर्षियों ने, जगत् के आदिकारण जल के व्यापार (जल और प्रकृति के क्रिया-कलाप) को जाना। हम भी यज्ञ करके ज्ञान मृत्यु के द्वारा जल-प्रकृति के रहस्यों को स्पष्ट रूप से जानें

१२७५. अभिषा असि भुवनमसि यन्तासि धर्ता । स त्वमग्निं वैश्वानरं सप्रधसं गच्छ  
स्वाहाकृते ॥३॥

हे अग्नि (यज्ञाग्नि) ! आप समस्तलोकों के कारककर्ता, निर्वन्ता और पदावली का ज्ञान करने वाले हैं। वैश्वानर अग्नि में इन्द्र की आहुति से अधिक शक्तिशाली होकर आप स्वयं तक यमन करें ॥३॥

१२७६. स्वगा त्वा देवेभ्यः प्रजापतये ब्रह्मभक्षं भन्त्स्यामि देवेभ्यः प्रजापतये तेन राभ्यासम् ।  
तं ब्रह्म देवेभ्यः प्रजापतये तेन राभ्नुहि ॥४॥

हे अग्नि सर्वत्र संस्थापित होने वाले अग्नि प्रजापति आदि देवताओं तक स्वयं जाने में समर्थ हैं। हे ब्रह्मन् अग्नि ! (यज्ञाग्नि) हम आपसे प्रजापति आदि देवताओं के निमित्त पहुँचने की प्रार्थना करते हैं, जिससे सब प्रकार से यह यज्ञ सफल-सिद्ध हो ॥४॥

१२७७. प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामीन्द्राग्निभ्यः त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टं  
प्रोक्षामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि । यो अर्वन्तं  
जिघा ॥ सति तमभ्यमीति वरुणः । परो मर्तः परः श्वा ॥५॥

अह्नियों के पूर्व यज्ञाग्नि का अभिषेक—अभिषेक करने हुए कहा गया है—  
हे सबके प्रिय ! प्रजापति की संतुष्टि के लिए आपका अभिषेक करते हैं। इन्द्रदेव एवं अग्निदेव के निमित्त आपका अभिषेचन है। वायुदेव एवं विश्वदेवों की प्रीति के लिए आपका सम्मान करते हैं। सभी देवताओं के प्रिय आपका अभिषेक है। इन उज्ज्वल यज्ञीय ज्वालाओं (अर्वन्) को हानि पहुँचाने वालों को वरुणदेव नष्ट करें। निष्काणों (यज्ञ कुण्ड के बुझने अवशेष अथवा उत्साहहीन व्यक्तियों) को दूर हटाएँ, शान वृत्ति (हीन वृत्ति) वालों को दूर हटाएँ ॥५॥

१२७८. अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहापां नोदत्य स्वाहा सवित्रे स्वाहा वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा ॥६॥

अग्निदेव के निमित्त आहुति समर्पित है। सोम एवं वस के अन्नन्दामक देवों के लिए आहुतियाँ अर्पित हैं। सवितृदेवता के लिए, वायुदेवता के लिए आहुतियाँ समर्पित हैं। विष्णु एवं इन्द्रदेव के निमित्त आहुतियाँ दी जाती हैं। बृहस्पति, मित्र एवं वरुणदेव के लिए आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं-वे स्वीकृत हों ॥६॥

जाने के गंत्रों में जान ड्रम की जाने वाली क्रियाओं के साथ स्वाहाकार क्रिया करते हैं "वीर्यं वा अह" एवं "वीर्यं तदृष" के अनुरूप तत्त्व के पञ्चम तत्त्व सर्वत्र विद्यमान से सम्बन्ध होने वाली चेष्टाओं-क्रियाओं में साथ यथोक्त ऊर्जा को समर्पित करने के लिए ये आहुतियाँ दी जाती हैं -

१२७९. हिङ्गाराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा ऊन्दते स्वाहावक्रन्दाय स्वाहा प्रोक्षते स्वाहा प्रप्रोक्षाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा सन्दिताय स्वाहा वल्गते स्वाहासीनाय स्वाहा जवानाय स्वाहा स्वप्नो स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा किञ्चिन्मयाणाय स्वाहा विष्ताय स्वाहा स धा नानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहायनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा ॥७॥

हिंकार (उत्साहित होने पर स्वतः उठने वाले स्वर) के लिए आहुति अर्पित है। हिंकर (उत्साह व्यक्त किया जा चुका) के लिए आहुति है। ऊन्दन (ऊच्च स्वर से उद्घोष) एवं अवक्रन्दन (नीचे स्वर से अभिव्यक्ति) के लिए आहुतियाँ हैं। कर्णों की पूर्णता की वरणा के निमित्त आहुतियाँ हैं। गंध लेने की प्रवृत्तियों एवं सूँघने की सम्पत्ति हो चुकी क्रियाओं के लिए आहुतियाँ हैं। पहुँचने एवं बैठने की चेष्टाओं के लिए आहुतियाँ दी जाती हैं। दिने जाने की प्रवृत्ति तथा गतिशीलता के लिए आहुतियाँ हैं। आसन ग्रहण करने तथा लेटने की चेष्टाओं के निमित्त आहुतियाँ हैं। सोने तथा बाने के लिए आहुतियाँ हैं। कूजन (गुनगुनाने तथा प्रबुद्ध होने की क्रियाओं) के निमित्त आहुतियाँ हैं। जँघई लेने (बैठना होने), प्रदीप्त होने के निमित्त आहुतियाँ हैं। शारीरिक मुडौलता के लिए उपस्थिति के लिए, नमन एवं प्रवाण के निमित्त ये आहुतियाँ दी जाती हैं, (स्वीकार हों) ॥७॥

१२८०. यते स्वाहा धावते स्वाहोद्वाधाय स्वाहोद्दुताय स्वाहा शूकाराय स्वाहा शूकृताय स्वाहा निषण्णाय स्वाहोत्थिताय स्वाहा जवाय स्वाहा बलाय स्वाहा विवर्तमानाय स्वाहा विवृताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधृताय स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शुष्वते स्वाहेक्षमाणाय स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वाहा यदति तस्मै स्वाहा यत् पिबति तस्मै स्वाहा बन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा ॥८॥

जाते हुए, दौड़ते हुए तथा तीव्र गति करने के लिए आहुतियाँ समर्पित हैं। उत्कर्ष के लिए प्रयत्नशील, जो शीघ्रता करने वाले हैं तथा जो शीघ्रता कर चुके हैं, उनके निमित्त आहुतियाँ दी जाती हैं। बैठे हुए, उठते हुए एवं वेगवान् के लिए आहुतियाँ अर्पित हैं। विशेष क्रम में उपस्थित तथा विवृत गति (पुनः-पुनः किए जाने) के निमित्त आहुतियाँ हैं, कँपने वाले, अधिक कँपने वाले एवं सुश्रूषा चाहने वाले के लिए आहुतियाँ दी जाती हैं। प्रवणशील के लिए, देखे हुए, परखे हुए के निमित्त आहुतियाँ हैं। फसक झपकने एवं खाने की चेष्टाओं के लिए आहुतियाँ अर्पित हैं। जल सेवन तथा विसर्जन की क्रियाओं के लिए आहुतियाँ हैं। क्रियाएँ, जो की जा रही हैं और जो की जा चुकी हैं, उन सबके लिए आहुतियाँ अर्पित हैं ॥८॥





१२९१. विभूमाऽऽ प्रभूः पित्राद्योऽसि इयोऽस्यत्योऽसि मयोऽस्यर्वाऽसि सप्तिरसि वाज्यसि  
 वृषासि नृमणाऽ असि । वयुर्नामासि शिशुर्नामास्वादित्यानां पत्वान्विहि देवाऽ  
 आशापालाऽ एतं देवेभ्योऽहं मेघाव प्रोक्षितं ३३ रक्षतेह रन्तिरिह रमतामिह वृत्तिरिह  
 स्वधृतिः स्वाहा ॥१९॥

हे अहं (यज्ञाग्नि) । आज मैं तुम्हें गुणों से विभूषित तथा शिशुवत् गुणों से वृद्ध-सम्बन्धन हूँ । आप 'वयु' (गमनशील) और 'शिशु' (प्रसंसनीय) नाम से ख्याति प्राप्त, मित्र-रथ वेग से गमन करने वाले, शत्रुओं का पीछा करने में समर्थ, शत्रु के नाशक, कजा के सुखदाता और पराक्रमी हैं । इसी से मनुष्यों में आपका सम्मान है । जिस तरह आदित्यगण अपने मार्ग में गमन करते हैं वैसे ही आप भी तैर्जस्य-शक्ति से गमन करें । दिव्यगुण वाले, सभी दिशाओं के रक्षक (देवगण, देवकर्ष में मित विद्वान् एवं शौर्यवान् मर्त्य) देवताओं के निमित्त प्रार्थित (संस्कारित) इस अहं (यज्ञाग्नि) की रक्षा करें । यह कार्य प्रसन्नता से रहे (रम्य करे) । यह भी धारण शक्ति बढ़ाने के लिए यह आहुति है, साधकों के स्व (अन्तःकरण) में धारण शक्ति बढ़ाने के लिये यह आहुति है ॥१९॥

१२९२. काय स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहा स्वाहाभिमाधीताय स्वाहा मनः प्रजापतये  
 स्वाहा धितं विज्ञातायादित्यै स्वाहादित्यै महौ स्वाहादित्यै सुमृडीकायै स्वाहा सरस्वत्यै  
 स्वाहा सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा पूष्णे व्रषण्याय स्वाहा  
 पूष्णे नरन्विषाय स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे घुस्रकपाय स्वाहा विष्णवे  
 स्वाहा विष्णवे निधूयपाय स्वाहा विष्णवे क्षिपिविहाय स्वाहा ॥२०॥

(काय) प्रजापति के निमित्त आहुति समर्पित है । (कस्मै) सुख स्वरूप प्रजापति के निमित्त आहुति समर्पित है । (कतमस्मै) सर्वश्रेष्ठ प्रजापति के निमित्त आहुति समर्पित है । विष्णु-बुद्धि धारणकर्ता के निमित्त आहुति समर्पित है । 'मन' रूप प्रजापति के निमित्त आहुति समर्पित है । धित के साथ अर्पण के निमित्त आहुति समर्पित है । सुख-प्रदाता आदित्य के निमित्त आहुति समर्पित है । दवी सरस्वती के निमित्त आहुति समर्पित है । महिमावती सरस्वती के निमित्त आहुति समर्पित है । पदार्थ प्रदायक पूषादेव के निमित्त यह आहुति समर्पित है । मानवों के धारक-पोषक पूषादेव के लिए यह आहुति समर्पित है । त्वष्टादेव के लिए आहुति समर्पित है । तीक्ष्णगति के पोषक त्वष्टादेव के लिए आहुति समर्पित है । अनेक रूप वाले त्वष्टादेव के निमित्त आहुति समर्पित है । विष्णुदेव के लिए आहुति समर्पित है । पास्तक विष्णुदेव के लिए आहुति समर्पित है । सभी प्राणियों के अन्तर में स्थित विष्णुदेव के निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥२०॥

१२९३. विश्वो देवस्य नेतुर्यतो वुरीत सख्यम् । विश्वो रायऽ इषुष्यति शुम्नं वृणीत पुष्यसे  
 स्वाहा ॥२१॥

विश्व के सभी मनुष्यों की मरणार्थ प्राणी देवताओं के शत्रु (सवितादेव) से मित्रता (कृपा प्राप्त) करना चाहते हैं और पुष्टि के लिए मात्र शत्रुवर्षादि को प्राप्त करना चाहते हैं । इस निमित्त (सवितादेव के लिए) हम यह आहुति प्रदान करते हैं ॥२१॥

१२९४. आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्षसी जायताया राह्ये राजन्यः शूराऽ इषुष्योतिव्याधी  
 महारथो जायतां दोग्धी धेनुर्वोदमद्वानाशुः सप्तिः पुरन्ध्रयोषा जिष्णू रथेष्टाः समेयो  
 युवास्य यजमानस्य सीरो जायतां निष्कामे-निष्कामे नः पर्जन्यो वर्षतु कलकत्पो नऽ  
 ओषधयः पृथ्वन्तां योगक्षेमो नः कल्पतम् ॥२२॥

हे महान्, इस राष्ट्र में महान्वर्चस से सम्पन्न बालक तथा पराक्रमी, चतुर्विध में निपुण, शत्रुओं को जीतने वाले महारथी (महायोद्धा) क्षत्रिय उत्पन्न हों । शीघ्रमार्गों से, चारवाही से, दुग्ध देने वाली गौएँ नागरिकों को प्राप्त हों । यहाँ की स्त्रियाँ सर्वगुण सम्पन्न और शीलमयी हों । रथों कीरपुष्प विजयशाली हों । सभा में साधु स्वभाव वाले श्रेष्ठ कर्त्ता एवं वीर बुद्ध हों । हम जब चाहे, तब (आवश्यकता के अनुरूप) जसर्वादि हों । हमारा राष्ट्रफल, ओषधि एवं अन्न से समृद्ध हो और सदैव सकुशल सुरक्षित रहे ॥२२॥

१२९५. प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ॥२३॥

प्राण, अपान, व्यान आदि प्राणों की पुष्टि के लिए ये आहुतियाँ हैं । देखने की तथा वाणी की शक्ति के परिष्कार के लिए ये आहुतियाँ हैं, मन के संस्कार के लिए यह आहुति समर्पित है ॥२३॥

१२९६. प्राच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा प्रतीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोदीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोर्वाच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहावाच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥२४॥

पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम, कन्यम्ब, उत्तर, ईशान, ऊर्ध्व एवं नीच की दिशा, अथवा तथा नीच की दिशा की तुष्टि के निमित्त हम आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥२४॥

१२९७. अद्व्यः स्वाहा वाय्व्यः स्वाहोदकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा अचन्तीभ्यः स्वाहा स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा कूप्याभ्यः स्वाहा मृदाभ्यः स्वाहा भार्याभ्यः स्वाहार्णवाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा सरिराय स्वाहा ॥२५॥

वेध जल, रोग विचारक जल, ऊर्ध्वनाभी जल, स्थिर जल, घ्रने वाले जल, प्रवाहित जल, कुई के जल, वर्षा के जल, धारण करने योग्य जल, समुद्र के जल एवं वायु में स्थित जलों के निमित्त आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥२५॥

१२९८. वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहाधाय स्वाहा मेघाय स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा स्तनयते स्वाहावस्फूर्जते स्वाहा वर्धते स्वाहावर्धते स्वाहोर्ध वर्धते स्वाहा शीघ्र वर्धते स्वाहोदगृह्णते स्वाहोदगृहीताय स्वाहा पुष्पाय स्वाहा शीकायते स्वाहा पुष्पाभ्यः स्वाहा ह्लादुनीभ्यः स्वाहा नीहाराय स्वाहा ॥२६॥

वायु के लिए, धूम (वाष्प) के लिए, अन्न (भक्षणीय द्रव्य) के लिए, मेघ के लिए, विद्युत् पैदा करने वाले, गर्जन करने वाले, विद्युत् को नीचे धँकने वाले, बरसने वाले, कम वर्षा करने वाले, अतिपृष्टि करने वाले, शीघ्र बरसने वाले, ऊपर उठने वाले, ऊपर से जल बहान करने वाले, बड़ी बूँदों वाले, छोटी बूँदों वाले, घनघोर वर्षा वाले, गड़-गड़ शब्द करने वाले, कुहरे वाले— इन सभी मण्डों के निमित्त हम आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥२६॥

१२९९. अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेन्द्राय स्वाहा पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवेस्वाहा दिग्भ्यः स्वाहाशाभ्यः स्वाहोर्ध्व दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥२७॥

अग्नि, सोम, इन्द्र देवता के लिए, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, धुलोक, दिग्गजों, उप दिग्गजों, ऊर्ध्व दिशा और अधो दिशा के निमित्त ये आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥२७॥

१३००. नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहाहोरात्रेभ्यः स्वाहा र्वापासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहा ऋतुभ्यः स्वाहार्तवेभ्यः स्वाहा संवत्सराय स्वाहा द्वाकापृथिवीभ्यां स्वाहा चन्द्राय स्वाहा सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहा- दित्येभ्यः स्वाहा

मरुद्भ्यः स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहा वृक्षेभ्यः स्वाहा ॥२८॥

नक्षत्रों के लिए, नक्षत्रों के देवताओं के लिए, दिन-रात्रि के लिए, अर्द्धमास (पक्षों) के लिए, मास, ऋतु, ऋतु से उत्पन्न पदार्थ, संवत्सर, छाया-पूर्विकी, चन्द्रमा, सूर्य, सूर्य की किरणों, वसुओं, रुद्रों, आदित्यों, मरुद्गणों, मूलों (जड़ों), शाखाओं, वनस्पतियों, पुष्पों, फलों एवं ओषधियों के निमित्त ये आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥२८॥

१३०१. पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यः स्वाहावृक्षेभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा परिप्लवेभ्यः स्वाहा चराचरेभ्यः स्वाहा सरीसृपेभ्यः स्वाहा ॥२९॥

पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यूलोक, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, जल, ओषधियों, वनस्पतियों, घूमनशील ग्रहों, रेंगने वाले प्राणियों एवं चराचर के निमित्त ये आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥२९॥

१३०२. असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहा विभुवे स्वाहा विपतये स्वाहा शुषाय स्वाहा स॒८३ सर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्बुषाय स्वाहा दिवा पतयते स्वाहा ॥३०॥

श्राण, वसुदेव, विभु, विवस्वान् (सूर्यदेव), गणश्रित, अभिभुव्, अभिपति, सामर्थ्यवान्, घूमनशील, गणश्री, ज्योतिर्मान्, चन्द्रदेव, मलिम्बुच (अधिकममस के देवता) आदि को यज्ञीय कर्मा से अनुप्राणित करने के लिए ये आहुतियाँ समर्पित हैं ॥३०॥

१३०३. मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचवे स्वाहा नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहा वाय स्वाहा वायवे स्वाहा स॒८४ सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहा ८३ हुसस्पतये स्वाहा ॥३१॥

वैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, कार्तिक, आश्विन, कार्तिक, जम्भून (मार्गशीर्ष), पौष, माघ, फाल्गुन और अधिक मास के संतुलन के लिए ये आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥३१॥

१३०४. वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहा पित्राय स्वाहा क्रतवे स्वाहा स्वः स्वाहा भूर्धने स्वाहा व्यङ्गुविने स्वाहान्त्याय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहा- विपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ॥३२॥

अन्न देवता, उत्पन्न देव, बलोल्लेख अन्नो, बज्ञ के उपयुक्त अन्नो, स्व (अन्तःकरण), भूर्ध (परिचित के संतुलन), व्यापक अन्न (शरीर, मन, विचार आदि के लिए प्रोत्साहन करने के निमित्त), संसार में होने वाले कर्मों के लिए, भुवनपति और प्रजापति आदि देवों के निमित्त ये आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥३२॥

१३०५. आयुर्यज्ञेन कल्पता ८३ स्वाहा प्राणो यज्ञेन कल्पता ८३ स्वाहापानो यज्ञेन कल्पता ८३ स्वाहा व्यानो यज्ञेन कल्पता ८३ स्वाहादानो यज्ञेन कल्पता ८३ स्वाहा समानो यज्ञेन कल्पता ८३ स्वाहा चक्षुर्यज्ञेन कल्पता ८३ स्वाहा श्रोत्रं यज्ञेन कल्पता ८३ स्वाहा वाग्यज्ञेन कल्पता ८३ स्वाहा मनो यज्ञेन कल्पता ८३ स्वाहात्मा यज्ञेन कल्पता ८३ स्वाहा ब्रह्मा यज्ञेन कल्पता ८३ स्वाहा ज्योतिर्यज्ञेन कल्पता ८३ स्वाहा स्वर्यज्ञेन कल्पता ८३ स्वाहा पुष्टं यज्ञेन कल्पता ८३ स्वाहा यज्ञो यज्ञेन कल्पता ८३ स्वाहा ॥३३॥

यज्ञ से आयु, प्राण, अपान, व्यान्, उदान और समान आदि पंच ज्ञानों की वृद्धि हो, इसलिए ये आहुतियाँ समर्पित करते हैं। यज्ञ से चक्षु, श्रोत्र, वाक्, इन्द्रियाँ बलवान् हों, इस निमित्त आहुतियाँ समर्पित करते हैं। यज्ञ से मन, आत्मा, आत्मज्योति, स्वःलोक, ब्रह्मलोक और यज्ञीय ज्ञान को समर्पण बनाने के निमित्त हम ये आहुतियाँ अर्पित करते हैं ॥३३॥

१३०६. एकस्मै स्वाहा ह्यध्या १३ स्वाहा श्रुताय स्वाहैकश्रुताय स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा ॥३४॥

अद्वितीय परमेश्वर के लिए, प्रकृति-पुरुष के लिए, सत (सौ वर्ष तक की आयु वालों), एक सत (सौ वर्ष से अधिक आयु वालों) के लिए, ऋषि के शिष्यकर्ता के लिए एवं स्वर्ग के लिए हम आहुतियाँ प्रदान करते हैं ३४ ॥



## —ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— प्रजापति १ । संवत्सर यज्ञपुरुष २-८ । विश्वामित्र ९, १६ । मेधातिथि १०-१४ । सुतंभर १५ । विरूप १७ । त्र्यम्बक-प्रसदस्यु १८-२०, २२-३४ । स्वस्त्य आशेष २९ ।

देवता— स्वर्क-निष्क १ । रश्मि २ । लिंगोक्त ३, ४, २०, २२-३४ । लिंगोक्त, अक्ष ५ । लिंगोक्त (अग्नि आदि) ६ । अक्ष ७, ८ । सविता ९-१४, २१ । अग्नि १५-१७ । पवमान १८ । अक्ष, देवाण, अग्नि १९ ।

छन्द— निचृत् पंक्ति १ । निचृत् त्रिष्टुप् २ । भुरिक् अनुष्टुप् ३ । जगती ४, २७ । अतिष्ठति ५ । भुरिक् अतिजगती ६ । (दो) अत्यष्टि ७ । (दो) निचृत् अतिष्ठति ८ । निचृत् गायत्री ९, १३, १५-१६ । गायत्री १०-१२, १७ । पिप्पिलिकामध्या निचृत् गायत्री १४ । पिप्पिलिकामध्या विराट् अनुष्टुप् १८ । विकृति १९ । विराट् अतिष्ठति, निचृत् अतिष्ठति २० । गायत्री अनुष्टुप् २१ । विराट् उत्कृति २२ । विराट् अनुष्टुप् २३ । निचृत् अतिष्ठति २४ । अष्टि २५ । विराट् अधिकृति २६ । भुरिक् अष्टि २८ । निचृत् अत्यष्टि २९ । कृति ३० । भुरिक् अत्यष्टि ३१ । अत्यष्टि ३२ । निचृत् कृति (दो) ३३ । भुरिक् अत्यष्टि ३४ ।

॥ इति द्वाविंशोऽध्यायः ॥



## ॥ अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ॥

**१३०७. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽ आसीत् । स दाधार पृथिवीं  
छामुतेर्मां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥**

सृष्टि के प्रारंभ में हिरण्यगर्भ परमपुरुष (प्रजापति) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के एक मात्र उत्पादक और पालक रहे ।  
वे सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति से पहले की विद्यमान वे वही स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथ्वी को धारण करने वाले हैं, हम  
उसी आनन्दस्वरूप प्रजापति की तृप्ति के लिए आहुति समर्पित करते हैं (उनके अतिरिक्त और किसे आहुति  
समर्पित करें ?) ॥१॥

**१३०८. उपयामगृहीतोसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिः सूर्यस्ते महिमा ।  
यस्तेऽहन्तसंवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते वायावन्तरिक्षे महिमा सम्बभूव यस्ते दिवि सूर्ये  
महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये स्वाहा देवेभ्यः ॥२॥**

हे हवि ! प्रजापति के त्रिव आपकी हम प्रहण करते हैं । आप उपर्युक्त पात्र में स्थित हों, यह आपका धारक  
स्थान है । हे प्रजापति ! सूर्य, वायु, अन्तरिक्ष, पुनः लोक, दिन और रातसर में आपकी महिमा प्रकट है (अर्थात् यह  
सब आपकी महिमा के परिचायक हैं) । आप (महिमावान् प्रजापति) और देवगणों के निमित्त हम यह आहुति  
प्रदान करते हैं ॥२॥

**१३०९. यः प्राणतो निषिषतो महित्वैकऽङ्ग्राजा जगतो बभूव । यऽङ्गिरे अस्य द्विपदस्तुभ्यः  
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥**

जो परमात्मा अपनी महिमा द्वारा निषिष पात्र में मनुष्य पशु सहित सम्पूर्ण जगत् के अधिपत्यता होते हैं  
(अर्थात् उत्पन्न करते हैं) । जो इस जगत् के स्वामी हैं, उन आनन्दस्वरूप परमेश्वर के लिए यह आहुति समर्पित  
करते हैं (उनके अतिरिक्त और किसे आहुति समर्पित करें ?) ॥३॥

**१३१०. उपयामगृहीतोसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिश्चन्द्रमास्ते महिमा । यस्ते  
राश्री संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते पृथिव्यामग्नौ महिमा सम्बभूव यस्ते नक्षत्रेषु चन्द्रमसि  
महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहा ॥४॥**

हे हवि ! प्रजापति के त्रिव आपकी हम प्रहण करते हैं । आप उपर्युक्त पात्र में स्थित हों । यह आपका धारक  
स्थान है । हे प्रजापति ! चन्द्र, अग्नि, नक्षत्र, भूतल, रात्रि और प्रति संवत्सर के रूप में आपकी महिमा प्रकट है ।  
आप (महिमावान् प्रजापति) और देवगणों के निमित्त हम यह आहुति प्रदान करते हैं ॥४॥

**१३११. युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्युक् । रोचन्ते रोचना दिवि ॥५॥**

जिस प्रकार आकाश में स्वप्रकाशित सूर्यदेव संबंधित ग्रहों को अपने साथ जोड़े रहते हैं, उसी प्रकार संतुलित  
मानस वाले ऋत्विग्गण इस स्वप्रकाशित यज्ञमन्त्र (यज्ञमन्त्रि) के साथ सभी बड़ीय उपकरणों को नियोजित रखते हैं ॥५॥

**१३१२. युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥६॥**

जिस प्रकार (कुशल व्यक्ति) मनुष्यों को ले जाने वाले रथ में दो घोड़ों को अपने वश में रखकर जोड़ते हैं,  
उसी प्रकार इस (देवताओं के लिए हवि ले जाने वाले) रथ में 'शोणा' (स्वच्छ रंग के वेगवान् अग्नि) तथा 'धृष्णू'  
नामक अश्वों (समर्थवान् मंत्रों) को नियोजित करें ॥६॥

१३१३. यद्वातो अपो अग्नीगन्निवामिन्द्रस्य तन्वम् । एतच्छ स्तोतरेण पथा पुनरश्ममावर्त्तयासि नः ॥७॥

जब वायु के समान वेगवान् वह अश्व (हवियुक्त प्राणवान् यज्ञीय ऊर्जा) इन्द्रदेव के प्रिय जलरूप (बरसने वाले जल) को प्राप्त हो जाए, तब हे स्तोताओं ! (अपनी मंत्र शक्ति से) इस प्राण-पर्वण्य रूपी अश्व को इसी मार्ग से फिर लौटाओ ॥७॥

[यहाँ कृष्ण से अश्व ऊर्जा से प्रकृति का कर्म करने के लिए देते हैं। अश्व जल से अश्वान् यज्ञीययुक्त ऊर्जा प्राप्त होने का स्थिति दिखाने का है ।]

१३१४. वसवस्त्वाञ्जन्तु गायत्रेण छन्दसा रुद्रास्त्वाञ्जन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसा दित्वास्त्वाञ्जन्तु जागतेन छन्दसा । धूर्ध्रुवःस्वर्ताजीवञ्चाचीरन्यव्ये गव्यऽ एतदन्नमत्त देवाऽ एतदन्नमद्धि प्रजापते ॥८॥

हे अश्व ! (संचरित होने वाले प्राणपर्वण्य) । गव्याँ छन्द द्वारा वसुगण आपको अभिषिक्त करें । आदित्य आपको जागती छन्द द्वारा अभिषिक्त करें । रुद्रगण त्रैष्टुप् छन्द से युक्त करें । भूतोक, अन्तरिक्ष एवं स्वर्ग लोक में स्थित प्रकाशमान एवं सामर्थ्यवान् हे देवगणों ! अन्न इस हव्य को ग्रहण करें । हे सन्धुखो ! इस यज्ञीय प्रक्रिया से पुष्ट हुए यवादि अन्नों एवं गौओं से उत्पन्न दूध अर्द्ध का सेवन करें ॥८॥

१३१५. कः स्वित्देकाकी चरति कऽ उ स्वित्ज्जायते पुनः । किच्छ स्वित्द्विमस्य भेषजं किम्यावपनं महत् ॥९॥

(ब्रह्म होता से पुच्छते हैं, यह बताएं कि) एकाकी कौन विचार करता है ? वह कौन है जो बार-बार पैदा (प्रकाशित) होता है ? हिम (श्रोत) की औषधि क्या है ? एवं बीज-वपन के निमित्त बड़ा क्षेत्र कौन-सा है ? ॥९॥

१३१६. सूर्यऽ एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः । अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥

(होता कहते हैं कि ) सूर्य एककी विचार करता है । चन्द्रमा पुनः-पुनः पैदा प्रकाशमान होता है । अग्नि (हिम) (श्रोत) की औषधि है । बीज-वपन का बड़ा क्षेत्र यह पृथ्वी है ॥१०॥

१३१७. का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किच्छस्विदासीद् बृहद्वयः । का स्विदासीत्पितृनिषिता का स्विदासीत्पिशङ्गिता ॥११॥

(होता ब्रह्म से पुच्छते हैं कि) सबसे पहले चित्त में धारण करने योग्य कौन सी स्थिति है ? सर्वाधिक बलवान् पक्षी कौन है ? शोभावान् कौन है ? सब रूपों को निगलने वाला कौन है ? ॥११॥

१३१८. द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्मऽआसीद् बृहद्वयः । अविरासीत्पितृनिषिता रात्रिरासीत्पिशङ्गिता ॥१२॥

(ब्रह्मा उत्तर देते हुए कहते हैं कि) सबसे पहले चिन्तनीय (स्मरणयोग्य) ज्ञी है । अश्व (सब को गति देने वाले अग्नि) ही सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न पक्षी है । अवनि (रक्षिक पृथ्वी) सबसे बड़ी शोभावाली है । रात्रि समस्त पदार्थों के रूप को निगलने वाली अर्थात् अपने अंधकार में छिपकर रखने वाली है ॥१२॥

१३१९. वायुह्वा पचतैरवत्वसितग्रीवश्छागैर्व्यग्रोऽक्षमसैः शस्मलिर्बुद्ध्या । एष स्य राध्यो वृषा पद्भिश्चतुर्धिरदगन्धहाऽकृष्णः नोक्तु नमोन्नये ॥१३॥

हे अश्व ! (यज्ञाग्नि) वायु आपको परिपक्वता प्रदान करके, कृष्णग्रीव अग्नि छाग (कृष्णवर्णी घुघ्र) प्रदान करके, बट वृक्ष चमस प्रदान करके तथा सेमल वृक्ष वृद्धि प्रदान करके आपको रक्षा करें । यह धनवान् (अश्व)

सर्वत्र संव्याप्त होने वाली आनन्द प्रदायक यज्ञीय ऊर्जा, चारों तरफों में (स्वेदक, अंडक, उद्भिज एवं जरायुज चार प्रकार के जीवों का पोषण करते हुए) आगमन करे। घबतवर्णो अश्व (अग्निज्योति) हमारी रक्षा करे। इस हेतु अग्निदेव को नमस्कार है ॥१३॥

**१३२०. स अंशितो रश्मिना रश्मिः स अंशितो रश्मिना इधः । स अंशितो अप्सवप्सुजा ब्रह्मा सोमपुरोगकः ॥१४॥**

रश्मिबी- ऊर्जा प्रवाह से यज्ञ रश्मि प्रशंसित है। प्रकट किरणों के कारण (हवा) गतिमान अग्निदेव प्रशंसित है जो उस से उत्पन्न है। वह उस से प्रेरित होता है। सोम को (पोषण के निमित्त) आगे रखने (गति देने) के कारण ब्रह्मा (ब्रह्मापति) प्रशंसित होते हैं ॥१४॥

**१३२१. स्वयं वार्षिस्तनवं कस्पयस्य स्वयं बजस्य स्वयं जुषस्य । महिमा तेन्येन न सन्नशे ॥**

वै (वार्षि) बससास्त्रे यज्ञीय ऊर्जा। आप स्वयं समर्थ बने स्वयं यज्ञ द्वारा विस्तार पाएँ, स्वयं ही पदार्थों से जुड़कर उन्हें प्राणवान् बनाएँ। अन्य पदार्थों से मिलकर आपका महिमा (अपका प्रभाव) नष्ट न हो ॥१५॥

**१३२२. न वा उ एतन्निवसे न रिष्यसि देवांर इदेधि पथिधिः सुगेभिः । यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥१६॥**

यह (यज्ञ से उत्पन्न ऊर्जा अथवा आपका) स्थितिकण से न तो रह लेती है और न क्षीण होती है। यह देवयान मार्ग से देवों के उस स्थान तक पहुँचती है जहाँ श्रेष्ठ कर्म करने वाले व्यक्ति रहते हैं। जहाँ वे पुण्यात्मा लोग गये हैं, वहाँ सविता देवता सुग्रे (यज्ञीय ऊर्जा अथवा जीवात्मा को) स्थापित करे ॥१६॥

**१३२३. अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतल्लोकमजयद्यस्मिन्नग्निः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबेता ऽ अपः । वायुः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतल्लोकमजयद्यस्मिन्वायुः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबेता ऽ अपः । सूर्यः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतल्लोकमजयद्यस्मिन्सूर्यः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबेता ऽ अपः ॥१७॥**

सर्वद्वारा अग्निकण पशु (हवि) के द्वारा देवताओं ने बजन किया। जिसमें अग्नि तत्त्व प्रधान बल होता है, वह इस लोक को जीतता है। वायुकण भी इस लोक को जीतने एवं उसमें आश्रय पाने के निमित्त इस शाश्वत ज्ञान को आत्मसात् करे। सर्वद्वारा वायुकण पशु (हवि) द्वारा देवताओं ने बजन किया। जिसमें वायु बल प्रधान होता है, वह इस लोक को जीतता है। इस लोक को जीतने एवं आश्रय पाने के निमित्त है वायुकण। आप भी इस शाश्वत ज्ञान को आत्मसात् करें। सर्वद्वारा सूर्यकण पशु (हवि) के द्वारा देवताओं ने बजन किया। जिसमें सूर्य तत्त्व प्रधान बल होता है, वह इस लोक को जीत लेता है। है वायुकण? आप भी इस लोक को जीतने एवं आश्रय पाने के निमित्त इस शाश्वत रस (ज्ञान) का पान करें ॥१७॥

उक्त मंत्र में ऊर्जा न केवल अंधकार अग्नि प्रकाश कृतेक, वायु प्रकाश कृतेक और प्रकाश प्रकाश सूर्य के तत्त्वलोक को प्रकाश करने की कक्षा दी है ॥

**१३२४. प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा । अम्बे अम्बिकेम्बालिके न मा नयति कश्चन । ससस्त्यश्चकः सुषाद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥१८॥**

शिथिल अग्नि काम्पील अग्निनी (काम्पिल के कुल की संधिधाओं का बड़ी हुई) सुषाद्रिकाओं (श्रेष्ठ हवियों) के साथ होती (अप्रज्वलित स्थिति में पड़ो) है। हविकां (यज्ञ चत्विर्वा) तीन देविकों अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका से प्रार्थना करती हैं कि हे अम्बे, हे अम्बिके, और हे अम्बालिके! हमें कोई ऐसी (शिथिल-अप्रज्वलित) स्थिति में न ले जाएँ। यह जाहतिर्था अम्ब, अम्बिका एवं व्यान की पुष्टि के लिए है ॥१८॥

[इस मंत्र में अग्रपञ्चिका कर्त्तव्य अथवा उत्तराग्नि में आहुतिर्वा न इससे का संकेत है ।]

१३२५. गणानां त्वा गणपतिश्च हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिश्च हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिश्च हवामहे वसो यम । आहुमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥१९॥

हे गणों के बीच रहने वाले सर्वश्रेष्ठ गणपते ! हम आभक्त आवाहन करते हैं हे प्रियों के बीच रहने वाले प्रियपते ! हम आपका आवाहन करते हैं । हे निधियों के बीच सर्वश्रेष्ठ निधिपते ! हम आपका आवाहन करते हैं । हे जगत् को बसाने वाले आप हमारे हों । आप सम्स्त जगत् को गर्भ में धारण करते हैं, पैदा (प्रकट) करते हैं । आपकी इस क्षमता को हम भली प्रकार जाने ॥१९॥

१३२६. ताऽऽधौ चतुरः पदः संप्रसारवाय स्वर्गे लोके प्रोर्णवाया दृषा वाजी रेतोषा रेतो दधातु ॥२०॥

आप दोनों (यज्ञीय ऊर्जा एवं देवशक्तियों) स्वर्गलोक में एक दूसरे का संरक्षण करें दोनों मिलकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी चारों चरणों का संसार में विस्तार करें । हे बलवान् ! कीर्त्य-पराक्रम को धारण करने वाले आप हमें (रेतस्) पराक्रम प्रदान करें (वीर्यवन् बनकर) ॥२०॥

१३२७. उत्सवध्या अव गृहं वेहि समर्द्धिं चारया दृक् । य क्षीणां जीवभोजनः ॥२१॥

अग्नि संकारकर्त्तव्य के कारण जिस की सृष्टि करते हुए कहा है- आपका रूप विविध होते-... आप आपका हैं-आपकी सर्वाङ्गीर्य पर्यंति बुद्धि है । इस मंत्र में 'सर्वार्थ' का प्रयोग सत्त्वों की बुद्धियों के लिए ही प्रयुक्त किया है-

हे बलशाली- दुष्टों के दमनकर्ता ! जो स्वयं अपने शत्रुओं ( बुद्धियों ) को छोड़ एवं व्यसन में नियोजित करके अपनी आजीविका प्राप्त करते हैं, आप उनको प्रताड़ित करें और विद्या एवं व्याप में बुद्धियों के (नियोजन) द्वारा उत्तम सुख की स्थापना करें ॥२१॥

१३२८. यकासकौ शकुन्तिकाहलगिति वज्रवति । आहन्ति गमे पसो निगाल्यालीति धारका ।

(अध्वर्यु का कथन) यह जो शक्ति धारण किए प्रवहमान जल है, शकुन्तिका (पक्षी) के समान आह्लादजनित शब्द करता है । इस उत्पादक जल में यज्ञ-तेज आता है । तेजधारण किया हुआ जल, गल-गल शब्द करता है ॥२२॥

१३२९. यकोसकौ शकुन्तकऽ आहलगिति वज्रवति । विवक्षतऽ इव ते मुखमध्वर्यो मा नस्त्वमधि भाषथाः ॥२३॥

(कुमारी का कथन) हे अध्वर्यु ! (पूर्वोक्त तेज के प्रभाव से) आपका बोलने को आतुर मुख शकुन्तक पक्षी की तरह सतत शब्द कर रहा है । आप निरर्थक बातचीत मत करें (केवल यज्ञीय संदर्भ में अपनी वाणी का प्रयोग करें) ॥२३॥

१३३०. माता च ते पिता च तेऽयं युक्षस्य रोहन्तः । प्रतिलापीति ते पिता गमे मुष्टिमत्सयत् ॥

(ब्रह्म का कथन—) हे महर्षि ! आपके माता और पिता (अग्नि और हवि) वृक्ष के अग्र भाग पर (समिधियों के ऊपर) यज्ञीय प्रक्रिया के सहारे ऊर्ध्व गति प्राप्त करते हैं । यहाँ से आपके पिता सुसंगठित होकर (बज्र धूम से पर्वन्व गठित कर) पर्वन्व की वर्षा कर मुक्तोन्मिश्र होते हैं (बज्र के प्रभावित क्षेत्र में पर्वन्व की वर्षा करते हैं), तब प्रतीत होता है, माने वे कहते हैं— “मैं प्रसन्न हूँ” ॥२४॥

१३३१. माता च ते पिता च तेये युक्षस्य कीदन्तः । विवक्षतऽ इव ते मुखं ब्रह्मन्या त्वं कदो बहु ॥२५॥



(यहिषी का कथन— हे नरह) ! आपके माता-पिता (देवगण एवं हवि) विश्व वृक्ष के उच्च भाग पर क्रीड़ागत (शक्ति प्रयोगरत) हैं । आपका मुख जेतने को आतुर (की तरह) है । (इस समय) अधिक न बोलें अर्थात् केवल आवश्यक यज्ञीय उच्चारण ही करें । (यज्ञीयशक्ति प्रयोग को निरर्थक उच्चारण से व्यस्त-व्यस्त न करें) । २५ ॥

१३३२. ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापय गिरौ भारथं हरत्रिव । अथास्य मध्यमेजताऽऽशीते वाते पुनत्रिव ॥२६॥

(उद्गाता का कथन—) जिस प्रकार किसी नगर को, पर्वत पर पहुँचकर समुन्नत करते हैं और किसान धान्य पात्र को ऊँचा उठाकर धान्य को वायु के प्रवाह द्वारा शुद्ध करता है (धान्य के कणों को हवा में उड़ाकर साफ करता है), उसी प्रकार हे प्रजापते ! आप हम सब को समुन्नत एवं पवित्र करें ॥२६॥

१३३३. ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापयतागिरौ भारथं हरत्रिव । अथास्य मध्यमेजतु शीते वाते पुनत्रिव ॥

(वाताता का कथन—) जिस प्रकार किसी नगर को पर्वत पर पहुँचकर समुन्नत करते हैं और किसान धान्य पात्र को वायु के प्रवाह में छेड़कर शुद्ध करता है । उसी प्रकार हे प्रजापते ! आप भी उस (उस राष्ट्र को जिसके निमित्त यह अश्वमेध किया जा रहा है) समुन्नत व पवित्र करें ॥२७॥

१३३४. धदस्याऽअथहुमेघाः कृषु स्थूलमुपातसत् । मुष्कादिदस्याऽएजतो गोशफे शकुलाविध ॥२८॥

जब इस पाप-नाशक, दुष्टसंहारक यज्ञीय प्रकृति का पृथ्वी पर प्रत्यक्ष स्थापन हो जाता है, तब क्षत्रिय और ब्राह्मण धर्मरूपी गौ के घरों में, दो खुरों के सम्पन्न मृशोपित होते हैं ॥२८॥

१३३५. यदेवासो स्तनापगु प्रविष्टीमिनमाविषुः । सक्थ्ना देदिर्यते नारी सत्पस्याक्षिभुवो यथा ॥२९॥

(परिवृत्त का कथन—) जब दिव्य कर्में (यज्ञार्ति) में श्रेष्ठ पुरुष (यज्ञ की) आनन्दवर्धक क्रिया सम्पन्न करते हैं, तो जिस प्रकार नारी के अंग देखकर नारी की कल्पना हो जाती है, उसी प्रकार आँखों से देखे जाने की तरह उन्हें सत्य की अनुभूति हो जाती है ॥२९॥

१३३६. यद्धरिणो यवमति न पुष्टं पशु मन्यते । शूद्रा यदर्याजारा न पोषाय यनार्यति ॥३०॥

(धत्ता का कथन—) हिरण खेत में घुसकर जी खा ले, तो किसान हिरण के घेरे भरने से प्रसन्न नहीं, खेत की हानि से दुःखी होता है, उसी प्रकार किसी ज्ञानी से शिक्षा पाने वाली शूद्रा का अज्ञानी पति, पत्नी के ज्ञानवर्धन से सुखी नहीं होता, प्रत्युत किसी अन्य की बात मानने के कारण पत्नी से रूठ (ही) होता है ॥३०॥

१३३७. यद्धरिणो यवमति न पुष्टं बहु मन्यते । शूद्रो यदर्यायै जारो न पोषमनु मन्यते ॥३१॥

(भालागली का कथन—) जैसे हिरण को खेत में घुसकर जी खाकर बहुत पुष्ट हुआ देखकर कृषक प्रसन्न नहीं होता, उसी प्रकार शूद्र (शुद्र पुरुष) से ज्ञान कुर्सिधर को पाकर पुष्ट हुई अपनी नारी को देखकर, आर्य (ज्ञानी) प्रसन्न नहीं होते ॥३१॥

१३३८. दधिक्काव्यो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः । सुरभि नो मुखा करत्त णऽ आयूऽधि तारिषत् ॥३२॥

मनुष्य को चरण करने वाले, क्षेत्र मजिष्यते, सबको जेतने में समर्थ अश्व (यज्ञाग्नि) को हम संस्कारित करते हैं । यह अश्व इस यज्ञ के प्रभाव से हमारे मुखों को सुरक्षित करने वाला और अशु को बड़ाने वाला हो ॥३२॥

[यज्ञ की हवि के मुखीकरण से सुनयन तथा अनुपहृत पोषक कर्में की प्रप्ति होती है ।]

१३३९. गायत्री त्रिष्टुभ्यगन्तुष्टुभ्यश्चत्वारः सह । बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥

इस मंत्र से यज्ञीय कर्मकाण्ड के काम में सूची-वेचन प्रक्रिया करने का विधान है । यज्ञ कृत्वा में अस्म-यस सम्पत्ति ईश्वरी जगती है तथा यौग में ह्यम् की अनुत्तिष्ठ ईश्वरी जगती है । यज्ञी (इत्यन्तः) एक पिण्ड सा बन जाता है । यज्ञे पुरा यज्ञ यज्ञ यज्ञिष्ठ, किन्तु उसे लेना नहीं जाना पड़ता । इत्यन्तः सूचिभ्यश्च (अन्तःस्थ) से अन्तः छन्द यज्ञे उसके यज्ञ की प्रक्रिया तीव्र की जाती है । इस पिण्ड को अष्ट यज्ञकर उसकी त्वत्वा का छन्द करने के अन्तः संस्कार करने का विधान है—

हे अष्ट (यज्ञाग्नि) ! गायत्री छन्द, त्रिष्टुप् छन्द, अगती छन्द, अनुष्टुप् छन्द पंक्ति छन्द सहित बृहती छन्द, उष्णिक् छन्द एवं ककुप् छन्द आदि सूचियों के माध्यम से आपको ज्ञान्त करें ॥३३॥

१३४०. द्विष्टा यष्टतुष्टदाक्षिपदा यष्ट चट्पदा । विच्छन्दा यष्ट सच्छन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३४॥

हे यज्ञाग्ने ! जो दो पदों वाले, तीन पदों वाले, चार पदों वाले और छः पदों वाले छन्द हैं, जो छन्द सक्षमों से हीन अथवा लक्षणों से वृत्त हैं ये सभी सूचियों द्वारा आपको ज्ञान्ति प्रदान करें ॥३४॥

१३४१. महानाम्न्यो रेवत्यो विष्ठा आशाः प्रभूवरीः । मैथीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३५॥

हे यज्ञाग्ने ! सब प्राणियों को चारण करने वाले ऋचाएँ, सम्पूर्ण दिशाएँ, "महानाम्नी" नामक देववाणियों, रेवती नामक ऋचाएँ, मेघ से उद्भव होने वाली विद्युत् और सब प्रकार की श्रेष्ठ वाणियों सूचियों द्वारा आपको ज्ञान्ति प्रदान करें ॥३५॥

१३४२. नार्घस्ते पत्न्यो लोम विधिन्वन्तु मनीषया । देवानां पत्न्यो दिशः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३६॥

हे यज्ञाग्ने ! नेतृत्व में समर्थ (यजमान इत्यादि), आपके स्त्रियों (अनुपयुक्त तत्त्वों) की बुद्धि के सहारे अलग करें । देवगणों की पत्नियाँ एवं दिशाएँ सूची द्वारा आपको कल्पान्त करें ॥३६॥

१३४३. रजता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः । अक्षस्य वाजिनस्त्वचि सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः ॥३७॥

रजत, सीसा और स्वर्ण की सूचियाँ मिलकर अस्त्रात् अष्ट (यज्ञ पिण्ड) की त्वत्वा (ऊपरी सतह) में नियोजित की जाती हैं, वे अच्छे प्रकार से अष्ट (यज्ञाग्नि) की रक्षा करें । शान्ति से रहते हुए (उन्हें छोड़ा न जाए) अग्नि को शान्ति प्रदान करें ॥३७॥

१३४४. कुविद्व्यवमन्तो यवम्विद्यथा दान्यनुपूर्वं विद्युष । इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमऽ उक्तिं यजन्ति ॥३८॥

हे सोम ! जिस प्रकार अधिक यज्ञों से पुरित घमस्त को विचार करते हुए कपलः काटते हैं उसी प्रकार जो कुराआसन पर बैठकर 'नमः' आदि का उच्चारण करते हुए वचन करते हैं, उन याज्ञकों के निमित्त विभिन्न प्रकार के भोजन को यथायोग्य पृथक्-पृथक् स्थापित करें ॥३८॥

१३४५. कस्त्या छ्यति कस्त्या विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति । कऽउ ते शमिता कविः ॥

(प्रश्न) आपको कौन मुक्त करता है ? कौन आपको शत्रुओं का उपदेश करता है ? कौन आपके अंगों को सुख पहुँचाता है ? और कौन विद्वद् बुद्धि आपको शान्ति पहुँचाता है ? भोक्ता, उपदेशक, सुखदाता और शान्ति प्रदाता कौन है ? (उत्तर) मेधावी प्रजापति ही सब करते हैं ॥३९॥

१३४६. ऋतवस्त ऽ ऋतुधा पर्य शमितारो वि ज्ञासतु । संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥४०॥

यज्ञ के प्रकाश से ऋति के ऋतुज्ञान का संकेत इन यज्ञों में है—

हे यज्ञाग्ने ! ऋतुएँ, ऋतु के अनुसार शांतिदायक हों । इस वर्षकाल में ठीक प्रकार से अनुशासित रहें संवत्सर के तेज के प्रभाव से, शांतिदायी कर्मों से आपको शांति प्रदान करें ॥४०॥

१३४७. अर्घमासाः परुष्टं च ते मासा ऽ आ च्छन्तु शम्यन्तः । अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टं सुदयन्तु ते ॥४१॥

हे अश्व (यज्ञाग्नि) जैसे रात, दिन दोनों पक्ष एवं मास द्वारा अश्व सहज ही क्षीण होती है । (वैसे ही) परुष्टगण आपके नुतिपूर्ण पाप को दूर कर आपको कल्याण करें ॥४१॥

१३४८. दैव्या अध्यर्घवस्त्वा च्छन्तु वि स ज्ञासतु । गात्राणि पर्यशस्ते सिमाः कृष्वन्तु शम्यन्तीः ॥४२॥

दिव्यगुणों से युक्त अध्यर्घगण आपके दोषों को विनष्ट करते हुए उत्तम धर्म का आरुढ़ होने के लिए उपदेश करें । शरीर के अंगों, संधि आदि को शक्ति सम्पन्न बनाएँ ॥४२॥

१३४९. द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्चित्रं पृणातु ते । सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया ॥४३॥

हे अश्व ! पृथ्वी, स्वर्ग और अन्तरिक्ष आपके दोषों को दूर करें । सूर्य-नक्षत्र आपके विभिन्न लोकों को सञ्चारित बनाएँ ॥४३॥

१३५०. ज्ञं ते परेभ्यो गात्रेभ्यः जमस्त्वरेभ्यः । जमस्थभ्यो मज्जभ्यः शम्यन्तु तन्वी तव ॥

हे अश्व ! आपके शरीर के अंग-प्रत्यङ्ग अस्ति एवं घन्त आदि निर्विकार हों । आपको सब प्रकार से कल्याण हो । आप दूसरों की सुख-शांति प्रदान करें ॥४४॥

१३५१. कः स्वित्देकाकी चरति कऽत स्वित्ज्जायते पुनः । किं च स्वित्द्विमस्य भेषजं किम्व्यावपनं महत् ॥४५॥

इन कथों में अक्षत-वक्र के प्रश्न-प्रतीकन प्रत्युत दूर हैं—

एकाकी विचरण करने वाला कौन है ? कौन बार-बार प्रकट होता है ? (अर्थात् प्रकाशित होता है) हिम (शीत) की औषधि क्या है ? और उत्तम प्रकार से बीज बोने का बड़ा स्थान कौन सा है ? ॥४५॥

१३५२. सूर्यऽएकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः । अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥४६॥

सूर्य अकेला विचरण करता है । चन्द्रमा बार-बार जन्म लेता है । शीत की औषधि अग्नि है । बीज बोने का बड़ा आधार पृथ्वी है ॥४६॥

१३५३. किं च स्वित्सूर्यसमं ज्योतिः किं च समुद्रसमं सरः । किं च स्वित्पृथिव्यै वर्षीयः कस्य मात्रा न विद्यते ॥४७॥

सूर्य के प्रकाश के समान ज्योति कौन सी है ? समुद्र के जैसा सरोवर कौन सा है ? पृथ्वी से भी अधिक वर्षों का पुरातन कौन है ? किसका परिमाण मापन संभव नहीं है ? ॥४७॥

१३५४. ब्रह्म सूर्यसप्तं ज्योतिर्द्यौः समुद्रैः समं सतः । इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥४८॥

सूर्य जैसी प्रकाशस्वरूप ब्रह्मज्योति है । मूलतः समुद्र के समान स्रोत है । पृथ्वी से भी अधिक प्राचीन इन्द्र है । गौ की तो तुलना किसी अन्य से नहीं हो सकती ॥४८॥

१३५५. पृच्छामि त्वा चितये देवसख यदि त्वयत्र मनसा जगन्ध । येषु विष्णुस्त्रिषु पदेष्वेष्टस्तेषु विश्वं ध्रुवनमा विवेशां ॥४९॥

हे देवताओं के मित्र यदि आप मन के द्वारा जानते हों तो समाधान करें कि विष्णु जिन तीन स्थानों में पूज्य बने, तो क्या उनमें सम्पूर्ण ध्रुवन सम्मिलित है ? वह विज्ञासु पाश से हम आपसे पूछते हैं ॥४९॥

१३५६. अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि येषु विश्वं ध्रुवनमा विवेश । सद्यः पर्येयं पृथिवीमुत धामेकेनाङ्गेन दिवो अस्य पृष्ठम् ॥५०॥

उन तीन स्थानों में भी मैं ही हूँ, जिनमें सम्पूर्ण ध्रुवन सम्मिलित है । स्वर्ग, पृथ्वी और ऊपर के लोकों को भी सृष्टि मात्र में ही मैं इस एक अंग (भग्न) से जान लेता हूँ ॥५०॥

१३५७. केच्यन्तः पुरुषऽ आ विवेश कान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि । एतद्ब्रह्मभुप वत्सहामसि त्वा किंश्च स्विन्नः प्रति वोचास्म्यत्र ॥५१॥

हे ब्रह्मन् ! सबके अन्तः में निवास करने वाला परम पुरुष किन पदार्थों में रमता है ? इस पुरुष में कौन-कौन सी वस्तुओं को अर्पित किया गया है ? विज्ञासुवराह वह आपसे पूछते हैं, इस प्रश्न का उत्तर दें ॥५१॥

१३५८. पञ्चस्वन्तः पुरुषऽ आ विवेश तान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि । एतत्त्वात्र प्रतिमन्वानो अस्मि न मायया भवस्युत्तरो मत् ॥५२॥

वैकि तुम (प्रश्नकर्ता) मुझ से कम ज्ञान रखते हो, अतएव मैं प्रत्यक्षरूप से जानने वाला उत्तर देता हूँ । सुनो, पंच महाभूत और पाँचों तन्मात्राओं में परमपुरुष रमता है और ये पाँचों महाभूत, तन्मात्राओं सहित परमपुरुष में अर्पित हैं ॥५२॥

१३५९. का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किंश्च स्विदासीद् बृहद्वयः । का स्विदासीत्पिलिपिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥५३॥

(हे अध्वर्यु !) सर्वप्रथम जानने का विषय क्या है ? सबसे बड़ा पक्षी (उड़ने वाला अर्थात् तीव्रगामी) कौन है ? शोषामयी कौन है ? और सभी रूपों को निगलने वाला कौन है ? ॥५३॥

१३६०. द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरक्षऽआसीद् बृहद्वयः । अक्षिरासीत्पिलिपिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ॥५४॥

सर्वप्रथम जानने योग्य द्यौ ही है । सबसे बड़ा पक्षी (तीव्र उड़ने वाला) अक्ष (अग्नि) ही है, सर्वाधिक शोषामयी अवि (रक्षा करने में समर्थ-पृथ्वी) है और रात्रि सभी रूपों को निगलने वाली है ॥५४॥

१३६१. का ईमरे पिशङ्गिला का ई कुरुपिशङ्गिला । कऽईमास्कन्दमर्षति कऽ ई पन्था वि सर्षति ॥५५॥

रूपों को कौन निगलती है ? स्कन्दपूर्वक सभी रूपों को कौन निगलती है ? कूट-कूट कर चलने वाला कौन है ? मार्ग पर सरककर चलने वाला कौन है ? ॥५५॥

१३६२. अजारः पशङ्गित्वा सावित्कुरुपिशङ्गित्वा । जज्ञऽआस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां वि सर्पति ।

हे अध्वर्युगण ! सभी रूपों को निरुद्ध करने वाली अज (मन्त्र) हो है । वह ही रूपों को शब्द करती हुई निगल लेती है । खरगोश उछल-उछल कर कत्तल है । मार्ग पर 'अहि' ही विशेष प्रकार से सरकता है ॥५६॥

१३६३. कत्यस्य विष्टाः कत्यक्षराणि कति होमासः कतिधा समिद्धः । यज्ञस्य त्वा विदधा पृच्छमन्न कति होतारऽऋतुशो यजन्ति ॥५७॥

इस यज्ञ के अन्न कितने प्रकार के हैं / कितने अक्षर हैं ? होम कितने प्रकार के होते हैं ? समिधाएँ कितने प्रकार की हैं ? प्रत्येक ऋतु में कितने होतार यजन करते हैं ? यह सब जानने के लिए ही हम यज्ञ के विशिष्ट ज्ञाता आपसे प्रार्थना करते हैं ॥५७॥

१३६४. षडस्य विष्टाः शतमक्षराण्यशीतिहोमाः समिधो ह तिस्रः । यज्ञस्य ते विदधा प्र ज्ञवीमि सप्त होतारऽऋतुशो यजन्ति ॥५८॥

छः प्रकार के यज्ञात्र (क्योंकि अन्न में छहों रस विद्यमान रहते हैं) हैं । अक्षर सौ होते हैं (दो-दो छन्दों का घुगम सौ वर्णों वाला होता है यथा गावजो (२४) + अतिर्धृति (७६) = १०० अक्षिक् (२८) + धृति (७२) = १००, अनुष्टुप् (३२) + अत्यष्टि (६८) = १०० इत्यादि । होम अस्त्रों (४ x २०) होते हैं । समिधाएँ (अध, गो, मृग) तीन प्रकार की हैं । प्रत्येक ऋतु में यज्ञकर्ता सात (छः ऋतुओं का + १ षष्ठ्यक्षर का) होते हैं । इस यज्ञीय-ज्ञान को मैं आपसे कहता हूँ ॥५८॥

१३६५. को अस्य वेद भुवनस्य नाभिं को छावापृथिवी अन्तरिक्षम् । कः सूर्यस्य वेद बृहतो जनित्रं को वेद चन्द्रमसं यतो जाः ॥५९॥

(उद्गाता का कथन) इस जगत् की नाभि को जानने वाला कौन है ? छावा-पृथिवी को जानने वाला कौन है ? महान् सूर्य की उत्पत्ति कौन जानता है ? चन्द्रमा के उत्पन्न करने वाले को कौन जानता है ? ॥५९॥

१३६६. वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद छावापृथिवी अन्तरिक्षम् । वेद सूर्यस्य बृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसं यतो जाः ॥६०॥

(ब्रह्मा का कथन) मैं इस जगत् की नाभि जानता हूँ । मैं धुल्लोक, बूलोक और अन्तरिक्षलोक को जानता हूँ । महान् सूर्य की उत्पत्ति स्थल को भी मैं जानता हूँ । चन्द्रमा और वहाँ उसकी उत्पत्ति हुई है, उसे भी मैं जानता हूँ ॥

१३६७. पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः । पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाक्चः परमं व्योम ॥६१॥

(यजमान का कथन) हम पृथ्वी के परम अन्त को पूछते हैं । पृथ्वी के नाभि स्थल को भी पूछते हैं । सब प्रकार के सुखों की वर्षा करने में समर्थ, सर्वव्यापक परमेश्वर का उत्पादक बल कौन है ? यह हम आपसे पूछते हैं । वाणी का श्रेष्ठ स्थान क्या है ? यह भी आपसे पूछते हैं ॥६१॥

१३६८. इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्याऽअयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः । अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्माय वाक्चः परमं व्योम ॥६२॥

पृथ्वी का परम अन्त यह वेदिक (जैसी पृथ्वीरूप) है । वह यज्ञ ही समस्त भुवनों की नाभि (यज्ञ से ही सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ) है । सब सुखों की वर्षा करने में समर्थ सर्वव्यापक परमेश्वर का उत्पादक बल यह सोम ही है । यह ब्रह्मा ही वाणी (वेदरूप) का सर्वश्रेष्ठ स्थान है ॥६२॥

१६६९. सुयूः स्वयम्भूः प्रथमोन्तर्महत्त्वर्णते । दधे इ गर्भमृत्विधं यतो जातः प्रजापतिः ॥६३॥

समस्त संसार के उत्पादक स्वयंभू परमात्मा ने मग्नान् सरोवर के बीच समयानुसार प्राप्त गर्भ को धारण किया, जिससे बड़ा उत्पन्न हुए ॥६३॥

१६७०. होता यक्षत्रजापतिं संसोमस्य महिम्नः । जुषतां पिबतु सोमं सं होतर्यज ॥६४॥

होता ने महिमायुक्त सोम के द्वारा प्रजापति का वजन किया । प्रजापति सोमरस को प्रेमपूर्वक स्वीकार करें और पान करें । हे होता ! आप भी इसी प्रकार वजन करें ॥६४॥

१६७१. प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विष्ठा कृष्याणि परि ता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु ययथ स्याम पतयो रयीणाम् ॥६५॥

समस्त प्रजाओं का पालन करने में समर्थ हे प्रजापते ! हम जिस निमित्त यह यज्ञ करते हैं, हमारा अभिप्राय सफल हो ( अर्थात् जिन इच्छाओं की पूर्ति हेतु हम यज्ञ करते हैं, वे मनोकामनाएँ पूरी हों ) । हम आप की कृपा-अनुग्रह से पराक्रमयुक्त-ऐश्वर्य प्राप्ति करें (सदैव सुखपूर्वक रहें) ॥६५॥

## —ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि—हिरण्यगर्भ १-४, ६५ । यदुक्तान्दा ५-३१ । दक्षिण्यमा नामदेव्य ३२-६४ ।

देवता—ऋः १, ३ । प्रजापति, देवगण २, ४ । आदित्यगण ५ । अश्व ६, ७ । सिंगोक्त, अश्व ८ । प्रश्न ९ ११ ४५, ४७, ४९, ५३, ५५, ५७, ५९, ६१ । प्रतिप्रश्न १०, १२, ४६, ४८, ५०-५२, ५४, ५६, ५८, ६०, ६२ । सिंगोक्त (अश्व) १३ । अश्व १४-१७, २१, ३२-४४ । सिंगोक्त १८-२०, ६३ । कुमारी २२ । अध्वर्यु २३ । महिषी २४ । ब्रह्मा २५ । वायव्य २६ । उद्गाता २७ । परिवृत्ता २८ । होता २९ । पासागस्त्री ३० । क्षता ३१ । प्रजापति ६४-६५ ।

छन्द—त्रिष्टुप् १ ३, ६० । निचृत् आकृति २ । विकृति ४ । भावरी ५ । विराट् गायत्री ६ । निचृत् बृहती ७ । निचृत् अत्यष्टि ८ । निचृत् अनुष्टुप् ९ । अनुष्टुप् १०, ११, २५, २६, २७, २९, ३१, ३२, ३७, ४०, ४१ ४३, ४६-४८, ५३, ५५ । निचृत् अनुष्टुप् १२, १४, २४, २८, ३०, ३४, ४५, ५४ । पुरिक् अतिमगती १३ । विराट् अनुष्टुप् १५, २२, ६३ । विराट् कगती १६, १८ । (दो) अतिसक्वरी १७ । सक्वरी १९ । स्वरट् अनुष्टुप् २० । पुरिक् गायत्री २१, ३९ । बृहती २३ । अग्निक् ३३, ४४ । पुरिक् अग्निक् ३५, ३६, ४२ । निचृत् त्रिष्टुप् ३८, ४९, ५०, ५७-५९, ६१ । पंक्ति ५१ । विराट् त्रिष्टुप् ५२, ६२, ६५ । स्वरट् अग्निक् ५६ । विराट् अग्निक् ६४

॥ इति त्रयोविंशोऽध्यायः ॥

## ॥ अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

इस अध्याय में अक्षय्य रात्र के अन्तर्गत विभिन्न देवताओं के निमित्त विभिन्न वस्तु-पक्षियों को दानादाला में स्थापित कर  
में आबद्ध करने का विधान है। रात्र के समय विष्णु के निमित्त किये जाने वाले अक्षय्य क्रम में सभी प्रजातियों के पशु-पक्षियों  
को भी यहीय उर्जा से अनुप्राणित करते उन्हें पुनः कर्म में छोड़ दिया जाता था। आख्येय उक्त वे भी इस अध्याय के अन्त में अपने  
भाष्य में स्पष्ट लिखा है:—“सर्वे पशवः अक्षय्यकाले न तु विन्यस्यः” । यहाँ विन-विन वस्तु-पक्षियों को विन-विन देवताओं के निमित्त  
नियोजित करने का विधान विहित है, उनका चेककाल पर परस्पर काल संबंध है, कुछ व्यवस्था के लिए या समग्र के लिए  
उनका क्या विशेष उपयोग है—यह सब ज्ञेय का विषय है—

१३७२. अश्वस्तूपरो गोधुगस्ते प्राजापत्याः कृष्णग्रीवऽआग्नेयो रराटे पुरस्तात्सारस्वती  
मेघ्यथस्ताद्धन्वोराशिनावधोराभौ बाह्वोः सौमार्पौष्णः श्यामो नाभ्याधः सौर्ययामौ श्वेतश्च  
कृष्णश्च पार्श्वयोस्त्वाष्टौ लोमशसक्यौ सक्थ्योर्वापव्यः श्वेतः पुच्छऽ इन्द्राय स्वपस्याय  
वेहद्वैष्णवो वामनः ॥१॥

घोड़ा, सींगरहित वृषभ और नील गाय ये तीनों प्रजापति के निमित्त, काली गर्दन वाला अश्व अग्निदेव के  
निमित्त, सरस्वती की प्रीति के लिए मेघी को, श्वेत अश्व को अश्विनोत्तमरों के निमित्त, ऐसा अश्व जिसका नाभिस्थल  
काला है, सोम और पूषादेव के निमित्त, श्वेत एवं कृष्ण वर्ण के जिनके पार्श्व हैं, ऐसे सूर्य और यम के निमित्त, त्वष्टा  
के निमित्त अधिक रोम वाले, श्वेत पूँछ वाले वायु के निमित्त, इन्द्र के निमित्त गर्भधात्री, विष्णु की प्रीति के निमित्त  
वामन (कम ऊँचाई वाले अर्थात् नाटो) वस्तु बाँधें ॥१॥

१३७३. रोहितो धूमरोहितः कर्कशुरोहितस्ते सौम्या बभुररुणवधुः शुकबभुस्ते वारुणाः  
शितिरन्धोन्यतः शितिरन्धः समन्तशितिरन्धस्ते सावित्राः शितिवाहुरन्धतः शितिवाहुः  
समन्तशितिवाहुस्ते बार्हस्पत्याः पृथ्वी क्षुद्रपृथ्वी स्थूलपृथ्वी ता मैत्रावरुण्यः ॥२॥

लाल, धूम्र के समान लाल, पके चट्टी काल (वेर) के समान वर्ण सोम के हैं। भूरा, लाल भूरा, हरा भूरा वरुण  
के हैं। श्वेत बिन्दियों वाले, एक ओर श्वेत बिन्दियों वाले, सब ओर श्वेत बिन्दियों वाले सवितादेव के लिए हैं। श्वेत  
पैर वाले बृहस्पति से संबंधित हैं। चितकम्बरी (कासे सफेद चकते कासे) छोटे या बड़े चकते वाले पशु मित्रावरुण  
देव के निमित्त हैं ॥ २ ॥

१३७४. शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्तऽ आश्विनः श्वेतः श्वेताक्षोरुणस्ते रुद्राय  
पशुपतये कर्णा साभाऽ अवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः चार्जन्यः ॥३॥

शुद्ध श्वेत बालों वाले, पूर्ण श्वेत बालों वाले और मणि की आभा के समान बालों वाले पशु दोनों अश्विनी-  
कुमारों के निमित्त हैं। श्वेत वर्ण, श्वेत नेत्र तथा लाल वर्ण वाले पशु पशुपति रुद्र के निमित्त हैं। चन्द्रमा के समान  
घवल वर्ण वाले यम से संबंधित हैं। रौद्र स्वभाव वाले रुद्र से संबंधित हैं। आकाश जैसे नील वर्णवाले पर्जन्य  
से संबंधित हैं ॥ ३ ॥

१३७५. पृश्निस्तिरक्षीनपृश्निरुर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः फल्गूलोहितोर्णी पलक्षी ताः सारस्वत्यः  
प्लीहाकर्णः शुण्ठाकर्णोऽध्यालोहकर्णस्ते त्वाष्ट्रः कृष्णग्रीवः शितिकक्षोऽजिसकथस्तऽ  
ऐन्द्राग्नाः कृष्णाजिरत्पाजिर्महाजिस्तऽ अवस्थाः ॥४॥

विचित्र वर्ण, तिरछी रेखा वाले, विचित्र बिन्दुओं वाले पररुदगण से संबंधित हैं। स्वल्पबल वाली, लाल तथा छेत उन वाली (भेड़े) सरस्वती देवी से सम्बन्धित हैं। प्लोत रोमयुक्त कर्ण वाले, छोटे कान वाले तथा लाल वर्ण के कान वाले त्वष्टादेव से सम्बन्धित हैं। काली बर्दन वाले, श्वेतपार्श्व भ्राम वाले तथा लाल चिह्न युक्त जंघा वाले पशु इन्द्र-अग्निदेव से सम्बन्धित हैं। काले धन्ने, छोटे धन्ने तथा बड़े धन्ने वाले उषा देवी से सम्बन्धित हैं।

१३७६. शिल्पा वैश्वदेव्यो रोहिण्यस्यवयो वाचेविज्ञाता अदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतयो देवानां पत्नीभ्यः ॥५॥

विचित्र रंगों वाले पशु विश्वदेवी के निमित्त हैं। हेड वर्ण की आयु वाले, लाल रंग के वाणों के निमित्त हैं और बिना जाने हुए (विशेष पहचान से रहित) अदिति के निमित्त हैं। सुन्दर आकृति वाले धातादेव के निमित्त हैं। बहिर्या देव पत्नियों के निमित्त हैं ॥५॥

१३७७. कृष्णग्रीवाऽ आग्नेयाः शितिभ्रम्यो वसूनाथ रोहिता रुद्राणाथ शेता ऽअवरोकिण ऽआदित्यानां नभोरूपाः पार्जन्याः ॥६॥

कृष्ण ग्रीवा अग्नि के निमित्त, छेत भू वाले वसु के निमित्त, सात्वर्ण रुद्र के निमित्त, श्वेतवर्ण आदित्यों के निमित्त हैं और आकाश जैसे नीलवर्ण वाले पशु पार्जन्य के निमित्त हैं ॥६॥

१३७८. उग्रत ऽ ऋषयो वामनस्त ऽ ऐन्द्रावैष्णवा उग्रतः शितिबाहुः शितिपृष्ठस्त ऽ ऐन्द्रा बाईस्पत्याः शुक्ररूपा वाजिनः कल्पायाऽ आग्निभारुताः श्यामः पौष्णाः ॥७॥

ऊँचे, डिगने, ऋष (पुष्ट) ये इन्द्र-विष्णु के निमित्त, कुष्ठ भ्रम और अगले पैरों से सफेद तथा ऊँचे कद वाले इन्द्र-बृहस्पति के निमित्त, शुक्र जैसे (हरे) वर्ण वाले वाजी देवता के निमित्त हैं। चितकनरे अग्निदेव और पररुदगण के निमित्त तथा श्याम वर्ण वाले पशु पौष्णादेव के निमित्त हैं ॥७॥

१३७९. एताऽ ऐन्द्राग्ना द्विरूपाऽ अग्नीषोमीया वामनाऽ अन्यूवाहऽ आग्नावैष्णवा वशा मैत्रावरुण्योन्यतऽ एन्यो मैत्रः ॥८॥

ये जो पहले कहे गये चितकनरे हैं, ये इन्द्राग्नी के निमित्त हैं। दो वर्ण वाले अग्नि और सोम से संबंधित हैं। नाटे पशु अग्नि-विष्णु के निमित्त हैं। वींज (वन्ध्या) मित्रवरुण के निमित्त हैं। एक पार्श्व से चित्र-विचित्र पशु मित्र देवता के निमित्त हैं ॥८॥

१३८०. कृष्णग्रीवाऽ आग्नेया बभ्रवः सौम्यः शेता वायव्याऽ अविज्ञाताऽ अदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतयो देवानां पत्नीभ्यः ॥९॥

ग्रीवा पर कृष्ण चिह्न वाले अग्नि के निमित्त, भूरे वर्ण वाले सोम देवता के निमित्त, श्वेत वर्ण वाले वायु देवता के निमित्त और अविज्ञात (बिना किसी विशेष चिह्न वाले) अदिति के निमित्त हैं, सुन्दर रूप वाले धाता के निमित्त तथा बहिर्या देवपत्नियों के निमित्त हैं ॥९॥

१३८१. कृष्णा भौया धूम्राऽ आन्तरिक्षा बृहन्तो दिव्याः श्वला वैद्युताः सिध्मास्तारकाः ॥

कृष्ण पृथ्वी के निमित्त, धूपवर्ण के अन्तरिक्ष के निमित्त, बड़े पशु स्वर्ग (द्यौ) के निमित्त, चितकनरे विद्युत् के निमित्त और सिध्म (कुष्ठ) रोग वाले पशु नक्षत्रा के निमित्त हैं ॥१०॥

१३८२. धूम्रान्वसन्ताघालभते शेतान्गोष्मय कृष्णान्वर्षाभ्योरुणाञ्छरदे पृथतो हेमन्ताय पिशङ्गाञ्छिराय ॥११॥



धूम वर्णवाले वसन्त ऋतु, श्वेतवर्ण के शीघ्र ऋतु, कृष्णवर्ण के वर्ष ऋतु, अरुणवर्ण के सरद् ऋतु, चिन्दियां वाले हेमन्त ऋतु तथा अरुण-वर्णित वर्ष के पशु विभिन्न ऋतु के निमित्त विचारित हैं ॥११॥

१३८३. अथ यो गायत्री पञ्चाक्षरसिद्धमे दित्यवाहो जगत्यै त्रिवत्साऽ अनुष्टुमे तुर्यवाहऽ उष्णिहो ॥१२॥

इंद्र वर्ष के गायत्री छन्द के निमित्त, द्यौर्ष वर्ष के त्रिष्टुप् के लिए, तीन वर्ष के अनुष्टुप् के लिए और साढ़े तीन वर्ष की आयु वाल पशु उष्णिक् छन्द के निमित्त है ॥१२॥

१३८४. पष्ठवाहो विराजऽ उक्षाणो बृहत्याऽ अग्रथाः ककुभेनद्वाहः पक्ष्वन्त्यै येनवोतिच्छन्दसे ॥१३॥

पृष्ठ के द्वारा चार बहन करने वाले विराट् छन्द के निमित्त, वीर्य सेवन में समर्थ बृहती छन्द के निमित्त, बलिष्ठ (अग्रथ) ककुप् छन्द के निमित्त, वृषभ (गाड़ी को खींचने में समर्थ) पक्षि छन्द के निमित्त और दुग्ध देने वाली गौ (पशु) अतिछन्द के निमित्त हैं ॥१३॥

१३८५. कृष्णाग्नीवाऽ आग्नेया बभ्रवः सौम्याऽ अप्सवस्ताः सावित्रा वत्सतर्षः सारस्वत्याऽ श्यामाः पौष्णाः पृथ्व्यो मारुता बहुरूपा वैश्वदेवा वशन् छात्रापृथिवीषाः ॥१४॥

कृष्ण शीघ्र वाले अग्निदेव के निमित्त, भूरे रंग वाले सोमदेवता के निमित्त, मिश्रितवर्ण वाले सवितादेव के निमित्त, वत्सरागी (कम उम्रवाली बकिया) सरस्वती के लिए, श्याम वर्ण के पृथ देव के लिए, चितकबरे पशु मरुद्गण के निमित्त हैं। विभिन्न रूप वाले पशु वैश्वदेव के निमित्त, कन्ध और अन्तरिक्ष और पृथ्वी के निमित्त हैं।

१३८६. उक्ताः सञ्चराऽ एताऽ ऐन्द्राग्नाः कृष्ण मारुताः पृथ्व्यो मारुताः काचास्तूपराः ॥

ये कहे गये, अच्छे प्रकार से चलने वाले पशु आदि इन्द्र और अग्निदेव गणों के हैं। कृष्णवर्ण वाले वरुण के हैं। चितकबरे पशु मरुद्गणों के हैं और सींगरहित पशु प्रजापति के निमित्त हैं ॥१५॥

१३८७. अन्नयेनीकवतो प्रथमजानालभतो मरुद्भ्यः सानपनेभ्यः सवात्यान्मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यो बभ्रुहान्मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः सधसृहान्मरुद्भ्यः स्वतवज्जघोनुसृहान् ॥१६॥

सेनानायक के तुल्य अग्निदेव के निमित्त आग्नी-श्रव्य श्रेणी वाले पशु हैं। उत्तम तप करने वाले मरुद्गणों के लिए बायु के समान तीव्रगामी पशु हैं। चिर प्रसूत पशु गृहमेध नामक मरुद्गणों के निमित्त हैं। प्रीड़ा करने वाले मरुद्गणों के लिए उत्तम गुणयुक्त पशु हैं। स्वोन्नत मरुद्गणों के निमित्त अनुकूली (साब रहने वाले) पशु हैं।

१३८८. उक्ताः सञ्चराऽ एताऽ ऐन्द्राग्नाः प्राभृगा माहेन्द्रा बहुरूपा वैश्वकर्मणाः ॥१७॥

ये जो ऊपर कहे गये, अर्थात् जिनके निर्धारण पहले कर दिये कहे हैं वे तीव्र गमनशील पशु इन्द्र, अग्नि आदि के निमित्त हैं। उत्तम गूंग (सींगों) वाले कौन्टदेव आदि के निमित्त हैं और बहुत से रंगों वाले पशु विश्वकर्मा आदि देवगणों के निमित्त हैं ॥१७॥

१३८९. धूम्रा बभ्रुनीकाशाः पितृणां सोम्यतां बभ्रवो धूम्रनीकाशाः पितृणां बर्हिषदां कृष्णा बभ्रुनीकाशाः पितृणामग्निष्वात्तानां कृष्णाः पृथ्वन्तर्क्षीयम्बकाः ॥१८॥

नेबले के समान भूरे रंग वाले पशु सोमगुण से युक्त पितृगणों के निमित्त, कुल-आसन पर विराजमान पितृगणों के निमित्त धूम्रवर्ण वाले पशु हैं। कृष्णवर्ण के पशु अग्नि विष्टा में निपुण वासक पितरों के निमित्त हैं। श्रम्बक पितरों के निमित्त काले रंग के बिन्दुयुक्त पशु हैं ॥१८॥



१३९८. वसुभ्यऽ ऋष्यानात्मभते रुद्रेभ्यो रुसूनादित्येभ्यो न्यङ्कुन्विसेभ्यो देवेभ्यः  
पृषतान्साध्वेभ्यः कुतुङ्गान् ॥२७॥

वसुगणों के लिए ऋष्य (मृग विशेष), रुद्र जाति के मृग रुद्रदेव के लिए, न्यङ्कु जाति के मृग आदित्यों के लिए, पृषत (चित्तीदा) मृग विश्वदेवों के लिए तथा कुतुङ्ग जाति के मृग साध्वदेवगणों के निमित्त नियुक्त करें ॥२७॥

१३९९. ईशानाय परस्वतऽ आत्मभते मित्राय गौरान्धरुणाय महिषान्बृहस्पतये  
गवर्थास्त्वष्ट ५ उष्ट्रान् ॥२८॥

परस्वत जाति के मृग ईशानदेव के लिए, मित्रदेव हेतु और मृग, वरुण को घैंसें, बृहस्पति के निमित्त नील गौर और त्वष्टदेव के लिए ऊँटों को घोष ॥२८॥

१४००. प्रजापतये पुरुषान्दस्तिनऽ आत्मभते वाचे प्लुषींश्चक्षुषे मशकाञ्छ्रोत्राय मृङ्गाः ॥२९॥

प्रजापति के निमित्त हाथियों को, वाक् के लिए 'प्लुषी' (देवी सूँह चाली), चक्षु के निमित्त मशक (मच्छर) को और श्रोत्र के लिए घमरो को नियोजित करें ॥२९॥

१४०१. प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेघो यमाय कृष्णो मनुष्यराजाय  
मर्कटः शार्दूलाय रोहिदृषभाय गवयी क्षिप्रश्चेनाय वर्तिका नीलङ्गोः कृमिः समुद्राय  
शिशुमारो हिमवते हस्ती ॥३०॥

प्रजापति और वायु देव के निमित्त 'वर-नील-गाय' वरुणदेव के लिए 'जंगली मेघ' यम के निमित्त 'कृष्ण-मेघ', नरेश के लिए बन्दर, शार्दूल (पुरुष सिंह) के लिए सात मृग, ऋषभ देव के लिए 'मादा-नील गाय', क्षिप्रश्चेन देव के लिए बटेर, नीलङ्ग के निमित्त 'कृमि' समुद्र के लिए 'सूँस' नावक जलजन्तु और हिमवान् देवत के लिए हाथी नियोजित करें ॥३०॥

१४०२. मयुः प्रजापत्य उक्तो हस्तिङ्गो वृद्धः दंष्ट्रस्ते घात्रे दिशां कङ्कले बुद्धक्षान्नेयी  
कलविङ्गो लोहिताहिः पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्रा वाचे कुम्भः ॥३१॥

प्रजापति के लिए किरा (गानकिका ये निपुण), उक्त, 'हस्तिङ्ग' (सिंह विशेष) और बिलास घाता देव के लिए दिशाओं के लिए 'कङ्क', आग्नेय दिशा के लिए 'बुद्ध' 'विष्ट' सात सौंप और कमल को खाने वाला 'पक्षी विशेष' ये तीन त्वष्टदेव के लिए और वाक् के लिए 'ज्वीच' पक्षी को नियोजित करें ॥३१॥

१४०३. सोमाय कुतुङ्गऽ आरण्योजो नकुलः शका ते पीष्णाः क्रोष्टा माधोरिन्द्रस्य गौरमृगः  
पिहो न्यङ्कुः कक्कटस्तेऽनुमत्यै प्रतिश्रुत्कार्यै चक्रवाकः ॥३२॥

'कुतुङ्ग' (कुरंग) नामक पशु विशेष सोम के लिए, 'जंगलमेघ', 'वेवला' और 'मधुमक्खी' पूषादेव के लिए, 'मृगाल' मायुदेव के लिए, 'गौर मृग' इन्द्र के लिए, 'न्यङ्कु-मृग', 'पिहू मृग' और कक्कट मृग ये तीनों अनुमति देव के निमित्त और चक्रवा पक्षी प्रतिश्रुतदेव के लिए नियोजित करें ॥३२॥

१४०४. सौरी बलाका शार्गः सृजयः शयाण्डकस्ते यैत्रः सरस्वत्यै शारिः पुरुषवाक्  
सावित्रीमी शार्दूलो वृकः पदाकुस्ते मन्यवे सरस्वते शुक्रः पुरुषवाक् ॥३३॥

'बगुले' सूर्यदेव के लिए, 'चक्रक' 'सृजय' तथा 'शयाण्डक' ये पक्षी मित्र-देवता के लिए, 'यैना' सरस्वती देवी के लिए, 'सेही' पृथ्वी के लिए, 'शेर' पेड़िका और सर्प ये मन्युदेव के निमित्त तथा समुद्र के लिए 'तोता' (मनुष्य जैसा बोलने वाला) पक्षी नियोजित करें ॥३३॥

१४०५. सुपर्णः पार्जन्यऽ आतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे बृहस्पतये वाचस्पतये  
पैङ्गराजोलजऽ आन्तरिक्षः प्लवो मधुर्मत्स्यस्ते नदीपतये द्यावापृथिवीयः कूर्यः ॥३४॥

पार्जन्य के निमित्त 'सुपर्ण' पक्षी, 'आहरी', 'वाहस' और 'अष्ट कुट' ये तीनों पक्षी वायुदेव के निमित्त, 'पैङ्गराज' पक्षी वाणी के स्वामी बृहस्पति के लिए, अन्तरिक्ष के लिए 'अलज' पक्षी, 'जस-कुक्कुट', 'कारडव' और 'मत्स्य' ये 'नदी पति' के लिए तथा कसुआ प्लव-पृथिवी के लिए नियोजित करें ३४ ॥

१४०६. पुरुषमृगच्छन्दमस्ते गोधा कालका दारवाघाटस्ते वनस्थतीनां कृकवाकुः सावित्रो  
इन्द्रसो वातस्य नाको यकः कुलीपवस्तेकूपारस्य द्विवै शस्यकः ॥३५॥

चन्द्रको 'न-हिर' वनस्थिदेवको 'गो' 'अलज' पक्षी और कडुखेड़ पक्षी, सावित्र देवको 'लघुचूर' वायुदेवको 'हंस', समुद्रको 'नाक', 'मकरबछ' और 'कुलीपव' यकक जन्तु और द्वी देवको 'मेहे' अर्पित करें ।

१४०७. एण्यहो यण्डको पृथिका तितिरिस्ते सर्पाणां लोपाजऽ आश्विनः कुब्जो राज्याऽ  
भक्षो जतुः सुषिलीका तऽइतरजनानां जहका वैष्णवी ॥३६॥

'हरिणी' अइदेवता, मेढक, सूई और खैर ये सब मछी, लोचन दोनों अश्विनीकुमारों, कृष्णमृग सिंह, रीक, जतु और सुषिलीका पक्षी-ये तीनों इतर देव-पक्षी तथा 'जहका' समकाली शिष्य देवता के लिए हैं ॥३६॥

१४०८. अन्यवापोर्धमासानामृश्यो मयूरः सुपर्णस्ते गन्धर्वाणामपामुहो भासां कश्यपो  
रोहितकुण्डणाक्षी गोसप्तिका तेष्वरसां मृचवेसितः ॥३७॥

'कोकिल' अर्धमास के निमित्त, कश्यप उल्लिखित या मृग खोर और सुपर्ण पक्षियों के लिए, कर्कट (केकड़ा) अदि जल के लिए, कसुआ मत्स्य के लिए, रोहित मृग कुण्डुनाबी नायक वनचरी और 'गोसप्तिका-पक्षी' ये तीनों अप्सराओं के लिए हैं । 'मृच-देवता' के लिए कृष्ण मृग नियोजित करें ॥३७॥

१४०९. वर्षाहूर्जानामासुः कशो गन्धालस्ते पितृणां बलाबाजगरो वसूनां कपिञ्चलः  
कपोतऽ अमूकः शशस्ते निर्जित्यै वरुणाधारण्यो मेघः ॥३८॥

वर्षाहू (वर्षा) को आहूत करने वाली अर्धमास (मेढकी) जन्तुओं के लिए, मूक, कसुन्दर और गन्धाल (छिपकली) ये तीनों पितरों के निमित्त, कपिञ्चल वस्तुओं के लिए, अजगर वस-देवता के लिए, निर्जितदेव के लिए कसुतर, उलूक और खरगोश एवं कशभदेव के लिए जगती मेघ नियोजित करें ॥३८॥

१४१०. शिब्र आदित्यानामुहो धृषीवान्वार्हीनसस्ते पत्पाऽ अरण्याय सुमरो रुक् रौद्रः  
व्यधि कुटुर्दात्यौहस्ते वाजिनः कामाय पिकः ॥३९॥

विचित्र पशु विशेष अदित्यों के निमित्त उह (उंट), चील और कण्ड में खन बीसी आकृति वाला बकरा—ये तीनों यदि देखी के लिए, नीमनाम अरण्यदेवता के लिए रुक् मृग रुद्रदेव के लिए, व्यधि समक पक्षी, कौवा और मुर्गा—ये वाधि देवताओं के निमित्त और कोकिल कामदेव के लिए नियोजित करें ॥३९॥

१४११. खड्गो वैश्वदेवः शः कृष्णः कर्णो मर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसापिन्नाय सूकरः सि यं  
हो मारुतः ककलास्तः पिण्डका शकुनिस्ते शरत्वायै विष्टेर्वा देवानां पृथतः ॥४०॥

पैने सौग काल गेडा वैश्वदेवों के लिए, खस्ते रंग का कुत्ता, पृथ और खस्ते ये तीनों राक्षसों के लिए, सुकर इन्द्र के निमित्त, सिंह मरुद्गज के निमित्त, पिण्डक, पक्षी और शकुनि नाम की चिन्नी ये सब शरत्वा देवी के लिए और पृथ-मृग मछी देवताओं के लिए नियोजित हैं ॥४०॥

## —ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

**ऋषि**—प्रजापति १-४० ।

**देवता**—प्रजापति आदि १ - ४० ।

**छन्द**— पुरिक् संकृति १ । निवृत् संकृति २ । निवृत् अतिवृत्ति ३ । विराट् अतिवृत्ति ४ । निवृत् बृहती ५, २७ । स्वराट् गायत्री ६ । अतिवृत्ति ७ । स्वराट् बृहती ८, ११ । निवृत् पंक्ति ९ । स्वराट् गायत्री १० । स्वराट् अनुष्टुप् १२ । निवृत् अनुष्टुप् १३ । पुरिक् अति वृत्ति १४, १८, ३३ । विराट् उष्णिक् १५ । सक्वरी १६, ४० । पुरिक् गायत्री १७ । विराट् गायत्री १९ । विराट् वृत्ति २० । बृहती २१, २८ । विराट् बृहती २२ । पंक्ति २३ । पुरिक् पंक्ति २४ । स्वराट् पंक्ति २५ । पुरिक् अनुष्टुप् २६ । विराट् अनुष्टुप् २९ । निवृत् अति वृत्ति ३० । स्वराट् त्रिष्टुप् ३१, ३९ । पुरिक् वृत्ति ३२, ३७ । स्वराट् सक्वरी ३४ । निवृत् सक्वरी ३५ । निवृत् वृत्ति ३६ । स्वराट् वृत्ति ३८ ।

## ॥ इति चतुर्विंशोऽध्यायः ॥



॥ अथ पञ्चविंशोऽध्यायः ॥

[illegible]

१४१२. शार्दं दक्षिरयकां दन्तयुत्तैर्मृदं वस्वैस्तोगान्दं १३ दृष्ट्या १३ सरस्वत्याऽऽग्रजिह्वं  
जिह्वायाऽऽसत्तमवक्रत्वेन तालु कव १३ इनुध्याययऽ आस्येन वृषजमाध्याध्यायादित्या  
हमभुधिः पन्थानं धूम्रं क्षायापृथिवी कनोभ्यं विद्युतं कनीनकाया १३ शुक्लस्य स्वाहा  
हृज्याय स्वाहा पार्थाणि पश्माण्यवर्थाऽऽ इक्षवोवर्थाणि पश्माणि वार्थाऽऽ इक्षवः ॥१॥

दाँते की शक्ति से समुद्र देवता (योगमयजल) को, दाँते की जड़ों (पी शक्ति) से अथवा अर्थात् जल में उभरने वाले वातकण संसार देवता को, दाँते के पीछे काने भाग से विष्टी को, दाँतों से त्रैलोक्य को प्रसन्न करते हैं। विष्णु की शक्ति से अथवा दक्षिण को एवं विष्णु से उत्तरदेवता को प्रसन्न करते हैं। ब्रह्मा की शक्ति से अथवा उत्तरदेव को, छोड़ी से अथवा देव को, मुख से अथवा देवता को प्रसन्न करते हैं। दोनों अथवा दोनों की शक्ति से अथवा देवता को तुष्ट करते हैं। दाँते-मुख की शक्ति से आदिमन्त्रों को, दाँते पीछे से अथवा देवता को, बरीनियों (दोनों बालों के बालों) से पुष्पी एवं पुष्पों को अथवा शक्ति की दाँते पुष्पियों से विष्टी देवता को प्रसन्न करते हैं। सुख एवं कृष्ण देव- शक्तियों की संहति के विष्टि वा अहति समर्पित है। वेदों के ऊपरी एवं नीचे के दोनों (कालों) से 'अथ' एवं 'अथ' देवताओं को प्रसन्न करते हैं ॥ ११ ॥

१४१३. वातं प्राणोवाधानेन वासिके उपस्थमथकण्ठेन सदुत्तरेण कृच्छाशेनान्तराक्षुकाशेन  
वातं निवेष्ट्य यूर्ध्वा सत्वयित्नुं निर्वायेन्नाश्रिं वासिकेण विद्युत् कनीयकाध्या कर्णाध्या  
२३ ओत्र २३ ओत्राध्या कर्णां तेदनीमथरकण्ठेनापः शुष्ककण्ठेन चितं मय्याधिरादितिथं  
शीर्ष्वां निर्वाप्ति निर्जर्जस्येन शीर्ष्वां संकोशैः प्राणान् रेखात्न २३ स्तुपेन ५२ M

जगत्प्राप्त की शक्ति से कतदेव तथा जगन्नाथ की शक्ति से जलित्वा (स्थित देवशक्ति) को प्राप्त करते हैं। ठगर के ओष्ठ से सत् देवता तथा नीचे के ओष्ठ से उपकाम देवता को प्राप्त करते हैं। तारीर की बाह्य कान्ति से अन्तरदेवता तथा आन्तरिक देह कान्ति से बाह्यदेवता को प्राप्त करते हैं। धन्यक से प्रवेष्ट शक्ति को, गिर की शक्ति से स्तनयज्ञ देवशक्ति को, शक्तिशब्द की शक्ति से अश्वि देवता को, जीता की पुत्रलियों से विष्णुदेव शक्ति को, दोनों कानों से श्रेष्ठ देवशक्ति को तथा मुन्ने की शक्ति से लोचों कानों की देवशक्ति को प्राप्त करते हैं। नीचे के फले (कण्ठ) से तैददीदेव को, गूले गले से जलदेवता को, गले की नौद्वयो से विस देवशक्ति को, शि ऊदिति को, ऊर्ध्वरि शिरोभाग से 'मिर्जिठिदेव' को, सम्यग्गन्ध अंगों से कर्णों को तथा शिखा की शक्ति से शि शक्ति को प्राप्त करते हैं ॥२॥

१४१४. मलकान् केशैरिन्द्रः स्वयम् वहेन बृहस्पतिः जकुनिसादेन  
मरुतैराकृम्यः स्वराध्यमक्षसाविः कपिञ्जलाञ्जयं अङ्गभ्यमव्यान् बाहुभ्य  
सेनारज्यमग्निमतिरुज्या पृथग् दोर्ध्वाग्निजयः साध्याः अङ्गः रोराध्यान्

केलों से मशक देवशक्तियों तथा पुष्ट कर्तव्यों से इन्द्रदेव को प्रसन्न करते हैं । पची सदृश गति से बृहस्पति, सूरों की शक्ति से कूर्मदेव, (एडो के ऊपर की गोंड) गुल्फों से आक्रमण, गुल्फों के नीचे वाली नाड़ियों से कपिशालदेव, जंघाओं से वेग की देवी, बाहुओं से भारदेव, जानु से अरण्यदेव, जानुदेश से अग्निदेव, जानु (घुटना) के नीचे भाग की शक्ति से पूवा, दोनों कंधों से अश्विनीकुमारों तथा अंस-अश्विनों से रुद्रदेवों को प्रसन्न करते हैं ॥३॥

१४१५. अग्नेः पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थ्यादित्यै पञ्चमीन्द्राण्यै षष्ठी भरताः७ सप्तमी बृहस्पतेरहम्यव्यणो नवमी वातुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी ॥४॥

बायीं ओर की पहली अश्वि अग्निदेव के लिए, दूसरी वयुदेव के लिए, तीसरी इन्द्र की, चौथी सोम की, पाँचवीं अदिति की, छठवीं इन्द्रपत्नी की, सातवीं भरता के लिए, आठवीं बृहस्पति के लिए, नौवीं अश्वि अर्धमादेव के लिए, दसवीं वातादेवता के लिए, ग्यारहवीं इन्द्रदेव के निमित्त, बारहवीं वरुण के निमित्त तथा यमदेवता की प्रसन्नता के लिए तेरहवीं अश्वि (की शक्ति) समर्पित है ॥४॥

१४१६. इन्द्राण्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीयायां चतुर्थी निर्ऋत्यै पञ्चम्यम्यनीचोमयोः षष्ठी सर्पाणां७ सप्तमी विष्णोरहमी पूषणो नवमी त्वहूर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी चतुर्थी त्रयोदशी द्वावापुथिष्योर्दक्षिणं पार्श्वं विधेवा देवानामुत्तरम् ॥५॥

बायीं ओर की पहली अश्वि इन्द्र एवं अग्निदेवों की प्रसन्नता के लिए, दूसरी अश्वि सरस्वती के लिए, तीसरी अश्वि मित्र देवता की प्रसन्नता के लिए, चौथी उत्त के निमित्त, पाँचवीं निर्ऋतदेव के निमित्त, छठवीं अग्नि एवं सोमदेवता की प्रसन्नता के लिए, सातवीं सर्पों (नागदेवों) के लिए, आठवीं देव विष्णु के लिए, नवमी पूषा के लिए, दसवीं त्वहृदेव के लिए, ग्यारहवीं इन्द्रदेव के लिए, बारहवीं वरुणदेव के लिए तथा यमदेवता की प्रसन्नता के लिए तेरहवीं अश्वि समर्पित है । दक्षिण हिस्सा पृथ्वी और द्युस्त्रोक के लिए तथा बायीं भाग सभी देवों की प्रसन्नता व संतुष्टि के लिए समर्पित है ॥५॥

१४१७. भरताः७ स्कन्वा विधेवा देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयादित्यानां तृतीया वायोः पुच्छमग्नीचोमयोर्धसदौ कुश्वी शोणिष्याभिन्नाबृहस्पती ऋतुध्यां मित्रावरुणावल्गाभ्यामाक्रमणः७ स्मृराध्यां वत्स कुष्ठाभ्याम् ॥६॥

स्कन्वा प्रदेश की अश्वि मरुद्गणों के लिए नियोजित करते हैं । प्रथम अश्वि पंक्ति विष्टेदेवों के लिए, दूसरी पंक्ति रुद्रों के लिए, तीसरी अश्वि पंक्ति आदित्यों के लिए समर्पित है । पुच्छ भाग वयुदेव के लिए, निताम्ब अग्नि एवं सोमदेवता के लिए, शोणि कौञ्च देवता के लिए, ऊरु इन्द्र और बृहस्पतिदेव के लिए, मित्र और वरुणदेव के लिए जंघाएँ, आक्रमणदेव के लिए अघोचम तथा ऊपर का भाग वरुणदेवता को प्रसन्नता के लिए समर्पित है ॥६॥

१४१८. पूषणं वनिष्ठुनान्वाहीनस्थूलगुदं७ सर्पान्मुदाभिर्पिबुतऽ आन्वैरपो वस्तिना कुबजयाऽऽध्यां वाजिनः७ शेषेन प्रजाः७ रेतस्र चावान् पितेन प्रदरान् पायुना कूरमाऽऽकपिण्यैः ॥७॥

स्थूल अंग का भाग पूषदेवता के लिए, स्थूल मुटा नेत्रहीन सर्पों के लिए तथा अन्य सर्पों के लिए समान्य गुदा का भाग, आँखों का शेष भाग विहुतदेवता के लिए, वस्ति नाम की उत्त के लिए, अण्डकोषों की शक्ति कुबजदेव के लिए, उपरस्र की शक्ति वज्रो देव के लिए, वीर्य प्रज के लिए, पित 'जल' देवता के लिए, गुदा का तृतीय भाग रुद्रदेवों के लिए तथा शकपिण्डों को कूरम देवता की प्रसन्नता के लिए समर्पित करते हैं ॥७॥

१४१९. इन्द्रस्य क्रोडोदित्यै पावस्व दिशं जत्रवोदित्यै वसञ्जीमूतान् हृदयोपशेनान्तरिक्षं  
पुरीतता नभऽ उदर्येण चक्रवाक्यै मत्तस्नाभ्यां दिवं वृक्काभ्यां गिरीन् प्लाशिभिरुपलान्  
प्लीहा वल्मीकान् क्लोमधिर्गोभिर्गुल्मान् हिराभिः स्रवन्तीर्द्वादन् कुक्षिभ्यां  
समुद्रमुदरेण वैशानरं वसम्न ॥८॥

क्रोड (छाती के मध्य का भाग) इन्द्रदेव का है अर्थात् इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए नियोजित है। पैर अर्दति  
देवता का, नवु (हंस्तुली की अस्थि का भाग) दिश्वज्यो का, वेदाभ अर्दति का, इदम भाग मेघों का है तथा हृदय  
नाड़ी अन्तरिक्ष की प्रसन्नता के लिए, पेट का भाग अक्काशदेव के लिए, केकड़ों का भाग चक्रवाक के लिए, दोनों  
गुदें धुलोक के लिए, प्लाशि भाग (गुदों के नीचे की नाड़ी) कर्णों की प्रसन्नता के लिए, क्लोम भाग वाय्वीय के  
लिए, ग्लीनाड़ी गुस्मदेवों की प्रसन्नता के लिए, रक्तवाहिनीयें नदियों की प्रसन्नता के लिए, कुक्षि (कोख) का भाग  
हृद के लिए, उदर समुद्र की प्रसन्नता के लिए, वल्मीक भस्म को वैशानरदेव की प्रसन्नता के लिए समर्पित करते हैं ॥८॥

१४२०. विधुतिं नाभ्या घृतं रसेनापो य्यूषा मरीचीर्विषूधिनीहारमूषणा शीनं वसत्या  
मुष्वा अभुभिर्द्वादीर्दुषीकाभिरस्ना रक्षांसि विप्राण्यर्द्धक्षप्राणि रूपेण पृथिवीं स्वधा  
युष्वाकाय स्वाहा ॥९॥

नाभि से विधुतिदेवता को प्रसन्न करते हैं। वीर्य रस से घृत तन्नि को, य्यूषाजल से जल देवता को, वस  
विदुओं से मरीचि देवता को, शरीर की उष्णता से नीहार (ओस) देवता को, वस्त्र से शीन देव को, अभुओं से मुष्वा  
(पौधों को लींचने वाले कुहार) देवता को नेत्रों के मल से हृदुनी (अक्षरणीय विधुत) देवता को, रक्षिकों से  
रक्षादेव को, विभिन्न अंगों से विभिन्न देवताओं को प्रसन्न करते हैं। शरीरिक सौन्दर्य से नक्षत्रदेवों को, तथा से  
पृथ्वीदेवी को तथा युष्वा (यक्ष) देव को प्रसन्न करने के लिए आहुति प्रदान करते हैं ॥९॥

१४२१. हिरण्यगर्भः समवर्ततात्रे घृतस्व जातः पतिरेकऽ आसीत् । स दाधार पृथिवीं  
छामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१०॥

प्राणिजगत् की उत्पत्ति से पूर्व ही जो हिरण्यगर्भ (सृष्टि रचना से पूर्व जो स्वर्ग की आधायक श्रोति पिण्ड  
के रूप में प्रकट हुए का जो अपने गर्भ में स्वर्ग जैसा देव समर्पित किये हुए) परमात्म विद्यमान था, जो इस जगत्  
का एक मात्र स्वामी है, इस पृथ्वी और धुत्केक को धारण करने वाले उस सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्म के लिए  
हम आहुति समर्पित करते हैं (उसके अतिरिक्त और किसे आहुति प्रदान की जाए ?) ॥१०॥

१४२२. यः प्राणतो निमिषतो महित्वैकऽ इन्द्राया जगतो बभूव । यऽ ईशे अस्य  
हिपदक्षतुष्यदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥११॥

जो अपनी महती महिमा से इस सज्जोय दृश्य जगत् का एक मात्र स्वसक हुआ है तथा जो प्राणिमात्र (दो व  
चार पैर वाले जीवों) का स्वामी है, उस सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्म के लिए आहुति समर्पित करते हैं।

१४२३. यस्येमे हिमवन्तो महित्वं चस्य समुद्रं रसयन् सहाहुः । यस्येमाः प्रदिशो यस्य  
बाहु कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१२॥

सच्चिदानन्द स्वरूप जिस परमात्म की महती महिमा से विशाल बर्फीली कर्णत-कोटियों का निर्माण हुआ,  
दिव्य जीवन-रस रूपी जल से र्णपूर्ण सागर जिसके द्वारा कर्णये कये कये जाते हैं तथा दसों दिशाओं के रूप में  
जिसकी भुजाएँ फैली हुई हैं, उस (जगत्पति) की प्रसन्नता के लिए हम आहुति समर्पित करने हैं ॥१२॥



१४२४. यऽ आत्मदा बलदा यस्य विश्वऽ उपासते प्रशिक्षं यस्य देवाः । यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय इविष्य विधेम ॥१३॥

जो भौतिक एवं आध्यात्मिक सम्पत्ति को प्रदान करने वाला है, जिसकी छात्र-छाया (आश्रय) में रहकर अमरत्व का सुख तथा जिससे विमुख होकर मृत्युजन्य दुःख प्राप्त होता है, सम्मार्गगामी सभी देवगण जिसकी उत्तम शिक्षाओं का पावन करते हैं, उस सर्वव्यापक स्वरूप परमात्मा के लिए हम आहुतिर्वा समर्पित करते हैं ॥१३॥

१४२५. आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोदव्यासो अपरीतासऽ उद्भिदः । देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे-दिवे ॥१४॥

कल्याणकारी, दुर्लभ व फलदायी यज्ञों (अथवा संकल्पों) को हम सभी ओर से प्राप्त करें (अर्थात् सभी ओर प्रेषित संकल्पों एवं यज्ञीय कर्मों का वास्तवरूप बने), जबकि सभी देवता क्रमादरणीय होकर नित्यप्रति हमारी वृद्धि (सर्वतोमुखी प्रगति) के लिए प्रवृत्त रहें ॥१४॥

१४२६. देवानां यद्वा सुमतिर्जुषतां देवानां धी रातिरभि नो निवर्तताम् । देवानां च सख्यपुषसेदिमा वयं देवा नऽ आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥१५॥

लोककल्याण में निरत, सरस हृदय वाले देवों की जन हितकारीणी उत्तम पति एवं उनके प्रेषित अनुदान हमारे लिए हर प्रकार से अनुकूल हों । देवों की मित्रता से हम सभी तृप्तचित्त हों । सभी देव हमें दीर्घायुष्य प्रदान करें ॥

१४२७. तान्पूर्वया निविदा हूमेहे वयं यगं भिजमदिति दक्षमस्त्रिषम् । अर्यमणं वरुणं च सोममग्निना सरस्वती नः सुधमा ययस्करत् ॥१६॥

प्राचीन स्वयंभूवा, दिव्यवाणी से हम उन यम, मित्र, अदिति, दक्ष, अर्यमा, वरुण, सोम एवं अग्निनीकुमरों आदि अविनाशी देवों के लिए आहुतिर्वा अर्पित करते हैं । सौभाग्यदर्शकनी देवी सरस्वती हमारा का कल्याण करें ।

१४२८. तन्नो वातो मयोधु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः । तद् द्यावाणः सोमसुतो मयोधुवस्तदग्निना शृणुतं धिष्यथा युवम् ॥१७॥

सबको धारण करने वाले हे अग्निनीकुमारो ! आपके अनुग्रह से वायुदेव हमारे लिए औषधीय गुणों से युक्त सुखद प्राणवायु प्रवाहित करें । धरतीमाता योग्यभक्षण वनस्पतियों से तथा अन्नदाता पिता जीवन - तत्त्वों से युक्त जल से सम्पन्न बनाएँ । निचोड़ने वाले ज्ञाता (पत्थर) हमारे लिए जीवकी शक्ति से युक्त सुखकारी सोम प्रदान करें । आप हमारी प्रार्थना सुनकर हमें सुखी बनाएँ ॥१७॥

१४२९. तमोऽज्ञानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियज्जिज्यमयसे हूमेहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसाभिसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥१८॥

अखिल विश्व की रक्षा करने वाले, बुद्धियों को प्रेरित कर सकने वश में करने वाले परमात्मा का हम आवाहन करते हैं । पिता की भाँति पोषण, संरक्षण एवं सहायता करने वाले व हमारे बुद्धिबल को बढ़ाकर हमें सुखी बनाएँ ॥

१४३०. स्वस्ति नऽ इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥१९॥

महान ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव हमारा कल्याण करें, सम्पूर्ण ब्रह्म के ज्ञाता पूषादेवता हमारा कल्याण करें, अनिष्ट का नाश करने वाले पशों (पंखों) से युक्त गरुड़देव हमारा कल्याण करें तथा देवगुरु बृहस्पति हम सबका कल्याण करते हुए हमें सुखी बनाएँ ॥१९॥

१४३१. पृथदक्षा भरतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदधेभु जगधः । अग्निजिह्वा जनकः  
सूर्यक्षसो विश्वे नो देवाऽ अवसागमग्निह ॥२०॥

शक्तिशाली अश्वं करते अर्थात् तीव्र शक्ति से करते करते, अदिति के पुत्र, स्वयं कल्याण करने करते, अग्नि  
रूपी जिह्वा तक सूर्यरूपी नेत्र करते, सर्वत्र भरतदेवता अपनी विभिन्न शक्तियों के साथ इस यज्ञमन्त्र में बहारे  
और हमें सुखी बनाएँ ॥२०॥

१४३२. अद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा अद्रं पश्येमाक्षभिर्वज्रतः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा एं  
सस्तनुभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२१॥

यात्रकों के पोषक हे देवताओं । हम सदैव कल्याणकारी वचनों को ही अपने कानों से सुनें, नेत्रों से सदैव  
कल्याणकारी दृश्य ही देखें हे देव ! अपरिपुष्ट अंगों से युक्त सुदृढ़ सरीर वासे हम आपकी वन्दना करते हुए पूर्ण  
आयु तक जीवित रहें ॥२१॥

१४३३. ज्ञतमिन्नु जरदो अन्ति देवा यत्र नक्षत्रा जरसं तनूनाम् । पुत्रासो यत्र पितरो यवन्ति  
मा नो यव्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥२२॥

हे विश्व के स्वामी (हम याजकगण) पुत्र-पौत्रों से युक्त बृद्धावस्था होने तक, तब जब तक का पूर्ण जीवन  
सुखपूर्वक जिई । जीवन के मध्य में हम कभी मृत्यु को प्राप्त न हों ॥२२॥

१४३४. अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्मातृ स पिता स पुत्रः । विश्वे देवाऽ अदितिः स्रज्ज  
जनाऽ अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥२३॥

पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं ध्रुवोक्त अखण्डित न अविनाशी हैं । अमृत का उत्पादक परमात्मा एवं उसके द्वारा उत्पन्न  
यह जीव-जगत् भी कभी नष्ट न होने वाला है । विश्व की समस्त देव-शक्तियाँ, अकिन्नाली हैं । स्रज्ज के पाँचो वर्ग  
(ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं निषाद) तक सबवस्तुओं (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) से विनिर्मित यह सृष्टि  
अविनाशी है । जो कुछ उत्पन्न हो चुका अथवा जो कुछ उत्पन्न होने वाला है, वह भी अपने कारणरूप से कभी  
नष्ट नहीं होता है ॥२३॥

१४३५. मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्रऽ ऋभुक्षा भरतः परि लभन् । यद्वाजिनो  
देवजातस्य सप्तोः प्रवक्ष्यामो विदधे वीर्याणि ॥२४॥

हम याजकगण यज्ञशास्त्र में, दिव्यकुल सम्पन्न, गतिमान्, पराक्रमी, काजी (बलशाली) देवताओं के ही ऐश्वर्य  
का गान करते हैं । अतः मित्र, वरुण, अर्यमा, आयु, ऋभुक्ष, भरत, इन्द्र आदि देवता हमारी उपेक्षा करते हुए  
हमसे विमुख न हों (वरन् अनुकूल रहें) ॥२४॥

[यहाँ कभी का अर्थ बोझ न करने उसे कल्याणही देखें का कर्त्तव्य करना पता है । आकर्षण अतः एवं परीक्षर ने भी अपने  
बाप्य में अन्ध के नाम से देखें की ही स्तुति का काम स्पष्ट किया है ।]

१४३६. यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं नृभीतां मुखतो नयन्ति । सुप्राङ्गनो  
मेभ्यद्विषस्य ऽ इन्द्रापूजोः प्रियमप्येति पाण्डः ॥२५॥

चिह्ने वेद में देवशक्तियों के लिए अन्ध संज्ञक लम्बेचन दिया गया है । वेदों के तीन वेदों में भी यहाँ लम्ब  
देवशक्तियों के लिए अन्ध संज्ञक लम्बेचन है, यहाँ निरिज नीच आत्मजों को 'अन्ध' (अंधार) कहा गया है । वेदों की पुष्टि  
के लिए चिह्ने पर यह का साथ प्रकृति में लम्बेचन लम्ब शक्तियों के लम्ब-लम्ब लम्बेचन जीवों से लम्बेचन वेदों को भी  
जाना होता है, यह काम यहाँ अभीष्ट है—

जब सुसंस्कारित, ऐश्वर्ययुक्त, सबको आकृष्ट करने वाले (देवों) के मुख के सस (देवों का मुख यज्ञाग्नि को कहा जाता है)। हविष्यात्र (पुरोडाश आदि) तबया जज्ञ है, तो भस्ती प्रकर आगे लावा हुआ विश्वरूप अज (अनेक रूपों में जन्म लेने वाली जीव चेतना) का मैं-मैं करता (मुझे भी जगिह् इस भाव से) जाता है, (तब वल्लभा) इन्द्र और पूषा आदि के प्रिय आहार (हव्य) को खाव करता है ॥२५॥

१४३७. एष छागः पुरो अग्नेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः। अभिप्रियं यत्पुरोडाशमर्वता त्वष्टेदेनं सौम्रवसाय जिव्यति ॥२६॥

यह अज जब बलशाली अज के अग्ने तबया जज्ञ है, तो श्रेष्ठ पुरुष (याज्ञिक अथवा प्रजापति) इस चंचल (अज) के साथ अज को भी, सबको प्रिय लगने वाले पुरोडाश आदि हव्य का भाग देकर वस प्राप्त करते हैं ॥२६॥

१४३८. यद्विष्यमनुशो देवयानं निर्मानुषः पर्यसं नवन्ति। अत्रा पूष्णः प्रथमो भागऽ एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥२७॥

जब मनुष्य (याज्ञिकगण) हविष्य को (यज्ञ के माध्यम से) तीनों देवयान भागों (पृथ्वी, अंतरिक्ष एवं सुलोक) में अज को वृद्ध संचारित करते हैं, तब यहाँ (पृथ्वी पर) यह अज पोषण के प्रथम भाग को पाकर देवताओं के हित के लिए यज्ञ की विज्ञापित करता चलता है ॥२७॥

१४३९. होताध्वर्युरावया अग्निभिन्वो ग्रावग्राभऽवत शंस्तु सुविप्रः। तेन यज्ञेन स्वरक्तेन स्थिष्टेन वक्षणाऽआ पूणस्वम् ॥२८॥

होता, अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, आग्नेय, ग्रावस्तोता, प्रसास्त, ब्रह्मकन् ब्रह्मा आदि हे ऋत्विजो ! आप वस सब प्रकार सम्मिश्रित ( अङ्ग - उपग्राह सहित सम्पन्न ) यज्ञ द्वारा इष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए (प्रकृतिगत) प्रवाहों को समुद्र बनाएँ ॥२८॥

१४४०. यूपयस्का वत ये यूपवाहास्तुचालं ये अक्षयूपाय तक्षति। ये चार्चते पचनं संधारन्पुतो तेषामभिगूर्तिर्नऽ इन्वतु ॥२९॥

हे ऋत्विजो ! यज्ञ की व्यवस्था में सहयोग देने वाले, लकड़ी काटकर यूप का निर्माण करने वाले, यूप को यज्ञशाला तक पहुँचाने वाले, चवाल (लोहे या लकड़ी की फिरकी) बनाने वाले, अन्न बाँधने के छूटे को बनाने वाले-इन सबका किया गया प्रयास हमारे लिए हितकारी हो ॥२९॥

१४४१. उष प्रागात्सुमन्मेषाधि यन्म देवानामाशाऽ उप वीतपृष्ठः। अन्येनं विप्राऽ ऋधयो मदन्ति देवानां पुष्टे चक्रमा सुबन्धुम् ॥३०॥

अश्वमेध यज्ञ की फलश्रुति के रूप में श्रेष्ठ मानवीयवस्तु इसे स्वयं ही प्राप्त हो देवताओं के मनोरथ को पूर्ण करने में समर्थ इस अश्व (शक्ति) की कामना सभी करते हैं। इस अश्व को देवत्व की पुष्टि के लिए मित्र के रूप में मानते हैं। सभी बुद्धिमान ऋषि इसका अनुषोदन करें ॥३०॥

यज्ञ ३० ३१ से ४५ तक के मंत्रों का अर्थ कई जगद्विदों ने अश्वमेध में की जाने वाली अन्न बलि (हिंस्र) के हार में किया है। इस ग्रंथ की भूमिका में यह स्पष्ट बिन्दु या सूचना है कि वंशों में जगद् का प्रयोग घोड़े के सन्दर्भ में नहीं, अप्रपुत्र प्रकृति में सेवकता समर्थ प्राप्ति करारों (यज्ञीयकर्तृ-सूर्य की किन्तों-देवर्षिकों) आदि के विभिन्न विधा गया है। इसलिए इन मंत्रों का अर्थ हिंस्रपक्ष सन्दर्भ में न करके जगद् विना, यज्ञीय सन्दर्भ में ही बिन्दु जान उचित है—

१४४२. यद्वाजिनो दाम मन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रज्ञना रज्जुरस्य। यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये वृणं सर्वं ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥३१॥

इस वाजिन् (बलशाली) को नियंत्रित रखने के लिए मर्दन का बन्धन, इस (अर्वन्) चंचल के लिए पैरों का बंधन, कंधर एवं सिर के बन्धन तथा मुख के घास अग्नि वृक्ष सभी देवों को अर्पित हों । (यज्ञीय ऊर्जा अथवा राहु की शक्तियों को सुनियंत्रित एवं समृद्ध रखने वाले सभी साधन देवों के ही नियंत्रण में रहें ) ॥३१॥

१४४३. यदश्वस्य क्रविषो पक्षिकाश्च यद्वा स्वरी स्वधितौ रिप्तमस्ति । यद्धस्तयोः शमितुर्यन्त्रस्त्रेषु सर्वा ता ते अपि देवेभ्यस्तु ॥३२॥

अश्व (संचरित होने वाले हक्क) का जो विकृत (खेमा न आ सकने वाला) भाग पक्षियों द्वारा खाया जाता है, जो उपकरणों में लगा रहता है, जो वाजक के हाथों में तथा जो नाखूनों में लगा रहता है, वह सब भी देवत्व के प्रति ही समर्पित हो ॥३२॥

१४४४. यद्वृषध्वमुदरस्यापवाति यऽ आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति । सुकृता तच्छमितारः कृष्यन्तु मेघंश्च शतपाकं पचन्तु ॥३३॥

उदर में (यज्ञ कुण्ड के गर्भ में ) जो ठण्डेदन घेंग्य गन्ध अथवाघे (हथियात्र) से निकल रही है, उसका शमन भली प्रकार किये गये मेघ (यज्ञीय) उपचार द्वारा हो और उसका पाचन भी देवों के अनुकूल हो जाए ॥३३॥

१४४५. यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधायति । या तज्जूम्यामाभिघन्मा तुषोषु देवेभ्यस्तदुशजघो रातमस्तु ॥३४॥

जब भूमि के पत्र में हथियात्र का क्या निहत कर जाता है । वह अग्नि में ठीक से पच जाए इसके लिए उसे मूल से छेद दिया जाता है । उस समय में छी छिटियों का निहत करने का विधिज्ञ ज्ञान का है—

आप के जो अग्नि द्वारा पकाये जाते हुए अन्न शूल के अपघात से इधर-उधर उछल कर गिर गये हैं, वे भूमि पर ही न पड़े रहें, तुषों में न मिल जाएं वे भी यज्ञ जाग जाइने वाले देवों का आहार बनें ॥३४॥

१४४६. ये वाजिनं परिपश्यन्ति यक्वं यऽ ईमाहुः सुरभिर्निहिरिति । ये चार्चतो माधं सधिक्षामुपासतऽ उतो तेषामधिगूर्तिर्न ऽ इत्यतु ॥३५॥

जो इस वाजिन् (अन्नयुक्त पुरोडास) को चकत्ता हुआ देखते हैं और जो उसकी सुगंध को आकर्षक कहते हैं, जो इस गोम्य अन्न से बने आहार की खबर कर रहे हैं, उनका पुरुषार्थ भी हमारे लिए फलित हो ॥३५॥

१४४७. यज्ञीक्षणं माँस्यचन्याऽ उखाया या पात्राणि यूष्णऽ आसेवनानि । ऊष्मण्यापिधाना धरूणामद्भूः सूनाः परि भूषन्त्यश्चम् ॥३६॥

जो उखा पात्र में पकाये जाते (अन्न एवं फलों के नुदे से बने) पुरोडास का निरीक्षण करते हैं, जो पात्रों को वल से पवित्र करने वाले हैं, (पकाने के क्रम में ) ऊष्ण को रोकने वाले ठण्डकन, चरु आदि को अंक (गोद) में रखने वाले, तथा (पुरोडास के) टुकड़े कटने वाले जो उपकरण हैं, वे सब इस अश्वमेध को विभूषित करने वाले (यज्ञ की गरिमा के अनुरूप) हों ॥ ३६ ॥

१४४८. मा त्वाग्निध्वनयीदधूपगन्धिमोँस्त्रा भ्राजन्त्याधि विक्त जघिः । इष्टं वीतमभिगूर्तं यषदकृतं तं देवासः प्रति गृभ्यन्त्यश्चम् ॥३७॥

(पकाये जाते हुए पुरोडास के प्रति कहते हैं —) धुँएँ की गंधवाली अग्नि तुम्हें पीड़ित न करे, (अग्नि के प्रभाव से) चमकता हुआ अग्नि पात्र (उखा) तुम्हें अद्विग्न न करे । ऐसे (धुँएँ आदि से रहित, भस्मो प्रकार सम्पन्न) अश्वमेध को देवगण स्वीकार करते हैं ॥३७॥

१४४९. निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पृथ्वीशमर्वतः । यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥३८॥

(हे यज्ञरूप अश्व !) आप का निकलना बैठना, झटोलित होना, फसटना, चीना, खाना आदि सारी क्रियाएँ देवताओं में (उनके ही बीच, उन्हीं के संरक्षण में) हों ॥३८॥

१४५०. यदश्वाय वासऽ उपस्तृणन्त्वधीवासं या हिरण्यान्यस्यै । सन्दानमर्वन्तं पृथ्वीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥३९॥

यज्ञ को समर्पित (पूजन योग्य) अश्व को सजाने वाला ऊपर का बल, आभूषण, सिर तथा पैर बाँधने की मेखलाएँ आदि सभी देवताओं को प्रसन्नता प्रदान करने वाले हों ॥३९॥

१४५१. यसे सादे महसा श्रुकृतस्य पाथर्वा वा कशया वा तुतोद । सुंचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥४०॥

(हे यज्ञानिरूप अश्व !) अतिशीघ्रता (जल्दबाजी) से तुम्हें सजाने वालों, निचले भाग को (हृदय को जल्दी पचाने के लिए) अग्नि के निचले भाग को कुरेद कर) पीड़ित करने वालों द्वारा की गयी सभी भुटियों को (हम पुरोहित) शुक्ल की आहुतियों (पृथाहुतियों) से ठीक करते हैं ॥४०॥

१४५२. चतुर्विधं शस्त्राजिनो देववन्धोर्वह्नीरश्वस्य स्वधितिः समेति । अधिक्रवा गात्रा ययुना कृणोत परुषकरनुयुष्या विशस्त ॥४१॥

हे ऋत्विजो ! धारण करने की सामर्थ्य से युक्त, नतिष्ण, देवताओं के बन्धु इस अश्व (यज्ञ) के चौतीस अंगों को अच्छी प्रकार जाने प्रत्येक अंग को अपने प्रवासों द्वारा सुदृढ़ बनाएँ और उसकी कमियों को दूर करें ॥४१॥

१४५३. एकस्त्वहुरश्वस्या विशस्ता इ यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः । या ते गात्राणामनुया कृणोमि ता-ता पिण्डानां प्र जुहोम्यस्मी ॥४२॥

(काल विभाजन के क्रम में) त्वष्टा (सूर्य) कभी अश्व का विभाजन संवत्सर (वर्ष) करता है । उत्तरायण तथा दक्षिणायन नाम से दो विभाग उसके नियन्त्रा होते हैं । वह वसन्तदि दो-दो बार की ऋतुओं में विभक्त होता है । यज्ञ में शरीर के अलग-अलग अंगों की पूर्ति के निमित्त ऋतु संबंधी अनुकूल पदार्थों की आहुतियाँ देते हैं ॥४२॥

१४५४. मा त्वा तपत्रियऽ आत्मापियन्तं या स्वधितिस्तन्वऽ आ तिष्ठिपत्ते । मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना पिबू कः ॥४३॥

हे अश्व (राष्ट्र अथवा यज्ञ) ! आप का परंप्रित्व आत्मतत्त्व अर्थात् अश्व गौरव कभी भी पीड़ादायक स्थिति में झोड़कर न जाए (राष्ट्र का गौरव अशुण्य रहे) । तन्म (विशुद्धि करने वाली शक्तियाँ) आप के अंग-अवयवों पर अपना अधिकार न जमा सकें (राष्ट्र कभी खण्डित न हो) । अकुशल व्यक्ति भी आपके दोषों के अतिरिक्त किसी उपयोगी अंग पर असि (तलवार) का प्रयोग न करे ॥४३॥

१४५५. न वा उ हतन्त्रियसे न रिष्यसि देवाँर इदेचि पविष्टिः सुगेभिः । हरी ते युञ्ज्या पृथ्वी अभूतामुपास्थाद्वाजी सुरि रासभस्य ॥४४॥

हे अश्व ! (यज्ञ से उत्पन्न ऊर्जा) न तो आपका नष्ट होता है और न आप किसी को नष्ट करते हैं, (वरन् आप) सुगम-सहज मार्ग से देवताओं तक पहुँचते हैं । शपद करने वालों (मंत्रोच्चार करने वालों) के आधार पर वाजी (ऐश्वर्यवान्) और हरि (अंतरिक्षीय नतिशील प्रवाह) उपस्थित होकर, आपके साथ संयुक्त होकर पुष्ट होते हैं ॥४४॥

१४५६. सुगन्धं नो वाजी स्वस्थं पुष्टं पुत्रैश्च तत विद्यापुषं रयिम् । अनागास्तं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अशो वनतां हविष्मान् ॥४५॥

देवत्व को प्राप्त करने वाला वह वसन्तली (यज्ञीय प्रकोप) हमें पुत्र-पौत्र, धन-धान्य तथा उत्तम अशों के रूप में अपार वैभव प्रदान करे । हम दीनता, पापकृत्यों एवं अशराओं से सदैव दूर रहें । अश के समान शक्तिसाली हमारे नागरिक पराक्रमी हों ॥४५॥

१४५७. इमा नु कं भुवना सीषयामेन्द्रा विश्वे च देवाः । आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं धेयजा करतु । यज्ञं च वस्तन्वं च ब्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषयाति ॥४६॥

इन्द्र और विश्वब्रह्माण्ड में स्थित समस्त देवता इन समस्त लोकों को अपने अनुरासन-नियंत्रण में रखें । अपने गणों सहित आदित्य इन्द्र, मरुत् आदि हमारे रिश्व उपचार (आरोग्य और पुष्टि के लिए प्रयास) करें । वह यज्ञ हमारे शरीर एवं ब्रजाओं को इन्द्र एवं आदित्य के साथ (युक्त होकर) अपने नियंत्रण-संरक्षण में रखे ॥४६॥

१४५८. अग्ने त्वं नो अन्तमऽतः त्रता जिवो भया वरुष्यः । वसुरग्निर्वसुभ्रवाऽअच्छा नक्षि शुमन्तमं चरयि वः । तं त्वा शोचिष्ठ दीदिक सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥४७॥

हमारे निकटस्थ हितैषी हे अग्निदेव ! अथ हम वरुष्य को देदीप्यमान ऐश्वर्य प्रदान कर हमारा कल्याण करें । सत्कर्म में निरत हम याजकों की दुराचारियों एवं हिंस्र करने वालों से रक्षा करें । हे पुतिमान् अग्ने ! हमारे सहयोगियों के लिए धन, ऐश्वर्य एवं सुख प्रदान कर, इस हेतु हम आपको प्रार्थना करते हैं ॥४७॥

### — ऋषि, देवता, छन्द-विवरण —

ऋषि — प्रजापति १-८ । प्रजापति, पुरिहच औदन्य ९ । हिरण्यगर्भ १०, ११ । प्राजपत्य हिरण्यगर्भ १२, १३ । गोतम १४-२३ । दीर्घतमा २४-४५ । भौक्यआप्य वा भौक्यसाधन ४६ । बन्धु, सुबन्धु, मृत्युबन्धु ४७

देवता — साध आदि १-८ । स्रष्ट आदि वरुण ९ । कः १०-१३ । विश्वेदेवा १४-२३, ४६ । अश्व २४-४५ । अग्नि ४७ ।

छन्द — भुरिक शक्वरी, निचत् जितशक्वरी १ । (दो) भुरिक अतिशक्वरी २ । भुरिक कृति ३ । स्वराट घृति ४ । स्वराट विकृति ५ । निचत् अतिघृति ६ । निचत् अष्टि ७ । निचत् अभिकृति ८ । भुरिक अत्यष्टि ९ । त्रिष्टुप् १०-१९, २२-२३, २७, ३०-३१, ४९ । स्वराट पंक्ति १२, ३७, ४२, ४५ । निचत् त्रिष्टुप् १३, २१, २४, २५, ३२, ३३, ४०, ४३ । निचत् जगती १४, २६ । जमती १५, १६, २० । भुरिक त्रिष्टुप् १७, १८, २९, ३४, ४४ । स्वराट बृहती १९ । विराट त्रिष्टुप् २८ । स्वराट त्रिष्टुप् ३५ । भुरिक पंक्ति ३६, ३८ । विराट पंक्ति ३९ । भुरिक शक्वरी ४६ । शक्वरी ४७ ।

॥ इति पञ्चविंशोऽध्यायः ॥

## ॥ अथ षड्विंशोऽध्यायः ॥

१४५९. अग्निश्च पृथिवी च सन्नते ते मे सं नमतामदो वायुश्चान्तरिक्षं च सन्नते ते मे सं नमतामदऽ आदित्यश्च द्यौश्च सन्नते ते मे सं नमतामदऽ आपश्च वरुणश्च सन्नते ते मे सं नमतामदः । सप्त सन्धेःसदो अष्टमी भूतसाधनी । सकात्मांर अध्वनस्कुरु संज्ञानमस्तु मेमुना ।

अग्नि और पृथ्वी आपस में सहयोगपूर्वक रहते हैं । वे दोनों इसे (मेरे स्नेह और कामना के पात्र को) हमारे अनुकूल बनाएँ । हवा और आकाश भी परस्पर सम्मान गृह्य करते हैं, वे दोनों अथवा उदाहरण प्रस्तुत करके इसे अनुकूल बनाएँ । आदित्य और नभ भी परस्पर अनुकूलता से रहते हैं, वे दोनों इसे हमारे अनुकूल बनाएँ । जल और वरुण भी आपस में अनुकूलता से रहते हैं, वे भी इसे हमारे अनुकूल बनाएँ । हे देव । सप्त संसर्ग (अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष, सूर्य, आकाश, जल, वरुण) और आठवीं पृथिवी के आश्रय स्वरूप आप सभी भागों, विविध शक्तियों तथा वस्तुओं को अपनी कामना के अनुकूल बनाएँ, ताकि हमें सभी के बारे में वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो ॥

१४६०. यथेमां वाचं कल्पाणी वाक्पदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्वाध्याधं शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च । प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमनु ॥२॥

जिस प्रकार कल्पान्न करने वाली इस (दिव्य) वेदवाणी का हमने (मन्त्रद्वारा ऋषि) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, प्रिय, अप्रिय वनों एवं सम्पूर्ण त्रेलोक के लिए उपदेश किया है, उसी प्रकार हे मनुष्ये ! आप लोग भी उपदेश करें, जिससे इस संसार में यज्ञ हेतु देवताओं को उचितता देने वाले लोग हमसे प्रेम करें । हमारा यह अभीष्ट मनोरथ पूर्ण हो और हमें यज्ञ की प्राप्ति हो ॥२॥

१४६१. बृहस्पते अति यदयोर् अर्हाद् शुभद्विधाति क्रतुमग्जनेषु । यदीदयच्छवसऽ प्रजतप्रजात तदस्मासु द्विविणं भोहि चित्रम् । उपयामगृहीतोसि बृहस्पतये त्वैव ते योनिर्बृहस्पतये त्वा ॥३॥

हे बृहस्पते ! जिस आत्मशक्ति से आप सबके स्वाध्याय, सबके पूज्य और सभी लोगों में आदित्य के समान तेजस्वी एवं सक्रिय होकर सर्वत्र सुशोभित होते हैं, जिस शक्ति से आप सबकी रक्षा करते हैं, उसी आत्मशक्ति से आप हम सब मनुष्यों को श्रेष्ठ धन प्रदान करें । आप राष्ट्र के निर्धारित नियमों द्वारा स्वीकार किये गये हैं, यह पद आपके योग्य है । अतः हम सब 'बृहस्पति' ऋषि के लिए आप को चुनते हैं ॥३॥

१४६२. इन्द्र गोमन्निहा याहि पिबा सोमं शतक्रतो । सिद्धद्विर्ग्रावधिः सुतम् । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा गोमतऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥४॥

हे शतक्रतु (सैकड़ों प्रकार के यज्ञों के कर्ता) गोमन् (गौओं अथवा इन्द्रियादि के पालनकर्ता) इन्द्रदेव ! आप इस यज्ञ में आएँ और बली प्रकार पत्थरों द्वारा अभिषुत सोमरस का पान करें । हे सोम ! आपको पवित्र कल्पश में गोपालक इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए एकत्रित करते हैं । आपको (इस स्थान पर) तेजस्वी इन्द्रदेव की प्रीति के लिए प्रतिष्ठित करते हैं ॥४॥

१४६३. इन्द्रा याहि वृत्रहन्निवा सोमं शतक्रतो । गोमन्निर्ग्रावधिः सुतम् । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा गोमतऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥५॥

हे सतक्रतो वृत्रहन्ता इन्द्रदेव । आप इस यज्ञ में बधरो और कधरो से निष्कृष्ट, मो-दुग्ध मिश्रित इस सोम का पान करें । हे सोम 'हम आपको 'उपयाम' पात्र में एकत्र करके तेजस्वी देव की प्रसन्नता के लिए प्रतिष्ठित करते हैं ॥

१४६४. ऋताक्षानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिष्यस्यतिम् । अजस्रं धर्ममीमहे । उपयामगृहीतोसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥६॥

ईश्वरस्वरूप, कभी नष्ट न होने वाले, तेज उज्ज्वल, प्रकाशवान्, प्राणिपति के हितैषी, विश्व के मार्ग दर्शक अग्निदेव की हम (स्तोत्रागण) स्तुति करते हैं । आप उपयाम पात्र में प्रतिष्ठित हों, वैश्वानर की प्रसन्नता प्राप्ति हेतु हम आपको इसमें ग्रहण करते हैं । वैश्वानर की तुष्टि हेतु हम आपको इसमें स्थापित करते हैं ॥६॥

१४६५. वैश्वानरस्य सुमनो स्याम राजा हि कं भुवनानामभिप्रीः । इतो जातो विश्वमिदं वि षष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण । उपयामगृहीतासि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥७॥

हम वैश्वानर (विश्व हितकारी प्राणाग्नि) की सुमति (श्रेष्ठ मिदंजन) में प्रतिष्ठित रहें । सभी भुवनों के आश्रयदाता यह वैश्वानर निहितरूप से यही (पृथ्वी पर) उत्पन्न हुए हैं । वह सारे भंसार का निरीक्षण करते हैं । सूर्य के समान ही वे प्रकाश एवं तेज से युक्त हैं । उपयाम पात्र में ग्रहण करके वैश्वानर को जगत् हितकारी कार्यों के लिए यहाँ (यज्ञ में) स्थापित करते हैं ॥७॥

१४६६. वैश्वानरो नऽ ऊतयऽ आ प्र यातु परावतः । अग्निरुज्ज्वेन वाहसा । उपयामगृहीतोसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥८॥

सम्पूर्ण जगत् के हितैषी वैश्वानर अग्नि स्तोत्ररूपी वाहन द्वारा दिव्यलोक से यहाँ आकर हमारी सुरक्षा करें आप उपयाम पात्र में प्रतिष्ठित हों । यही (पृथ्वी) आपका उत्पत्ति स्थल है । वैश्वानर (लोक कल्याणकारी) की प्रसन्नता प्राप्ति हेतु आपको इस स्थान पर स्थापित करते हैं ॥८॥

१४६७. अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागवम् । उपयामगृहीतोस्यग्ने त्वा वर्धसऽ एष ते योनिरग्ने त्वा वर्धसे ॥९॥

जो अग्नि ऋषीं बर्णों-सम्पूर्ण समाज (राजान्, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा विजाट) को मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के सद्गुण निर्मल करने वाला पुरोहित (स्तोत्रहित को सामने रखने वाला) है । उन महान्, स्तुत्य अग्निदेव की हम स्तुति करते हैं । आप उपयाम पात्र में प्रतिष्ठित हों । यही आपका आवास केन्द्र है । तेजस्वी अग्निदेव (परमात्मा) की प्रसन्नता के लिए आपको यहाँ प्रतिष्ठित करते हैं ॥९॥

१४६८. महौर इन्द्रो वज्रहस्तः षोडशी शर्म यच्छतु । हन्तु पाप्मानं वोस्मान्द्वेष्टि । उपयामगृहीतोसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥१०॥

जो वज्रपाणि, महान् इन्द्रदेव मोक्षक वक्ताओं से युक्त (पूर्ण) है, वे हमें सुखी बनाएँ । जो हम से द्वेष करते हैं, उन दुष्ट आत्माओं का नाश करें । इन्द्रदेव की प्रसन्नता के निमित्त आप (अग्निदेव) उपयाम पात्र में प्रतिष्ठित हों, हम आपको इस स्थान पर स्थापित करते हैं ॥१०॥

१४६९. तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्वसः । अचि वत्सं न स्वसरेषु येनवऽ इन्द्र गीर्धर्नवामहे ॥११॥

हे यजमानो ! सब सम्पदाओं से युक्त, भक्तों दर्शनीय, सबको आवास प्रदान करने वाले, अन्न आदि पदार्थों से संतुष्ट करने वाले उन इन्द्रदेव की, दिव्य वाक्पिण्डों से (आवधिहित होकर) हम उसी प्रकार प्रार्थना करते हैं, जिस प्रकार गौरी स्नेहपूर्वक रीति हुई अपने बछड़ों को मुस्तती है ॥११॥



१४७०. यद्वाहिष्ठं तदम्ये बृहदर्थं विभावसो । यद्वाहीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजाऽऽदीरते ॥१२॥

हे उद्गाताओ । आप बृहत् साम (स्तुतिगान की एक पद्धति) से अभीष्ट प्रदान करने वाले, तेवस्वरूप उन अग्निदेव की स्तुति करें, जो महारात्री की तरह सम्पत्ति और पोषक अन्नदि प्रदान करने में समर्थ हैं ॥१२॥

१४७१. एषू च जवाणि तेनऽ इत्येतरा निः । हविर्वर्षासऽ इन्दुभिः ॥१३॥

स्रोम (आदि पोषक रसों) से युद्धि को प्रवृत्त होने वाले हे अग्निदेव ! आप स्वाभाविक रूप से इस यज्ञ-स्वल्प पर पधारें । हम भावप्रधान स्तोत्रों से आपको प्रार्थन करते हैं ॥१३॥

१४७२. अतवस्ते यज्ञं वि तन्यन्तु मासा रक्षन्तु ते हविः । संवत्सरस्ते यज्ञं दद्यातु नः प्रजां च परिपातु नः ॥१४॥

हे देव सभी ऋतुर्य यज्ञ के विस्तार के अनुकूल हों (यज्ञीय प्रक्रिया के विस्तार में सहायक हों), सभी यहीने हवि का रक्षण करें, संवत्सर यज्ञ को धारण करें, जिससे हमारे (सभी) परिवर्जनों का परिपालन हो सके ॥१४॥

१४७३. उपह्वारे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम् । धियः विप्रो अजायत ॥१५॥

पर्वतों की उत्पत्तिस्थानों, गिरि - कन्दराओं और नदियों के किनारे संगम स्थलों पर ध्यान करने से विप्र-विद्वंस्त्वानों की प्रज्ञा जाग्रत होती रही है ॥१५॥

१४७४. उष्णा ते जातपन्थसो दिवि सङ्गम्या ददे । उग्रं च जगं महि जगः ॥१६॥

हे सोम ! हम आपके श्रेष्ठ रस (अन्न) से निम्न, पुष्पक में रहने वाले, प्रसंसनीय, श्रेष्ठ सुख प्रदान करने वाले आश्रय को स्वीकार करते हैं । यह पृथ्वी के सम्मन निजातमुक्त हो ॥१६॥

१४७५. स नऽ इन्द्राय यज्यसे वरुणाय यरुदध्वः । सरितो वित्परि सवः ॥१७॥

हे सोम ! आप यज्ञ और कीर्तिवृत्त धन को जानने वाले हैं । आप इन्द्र, वरुण और मरुतों की वृष्टि के लिए हमें रसरूप में प्रदात हों ॥१७॥

१४७६. एना विश्वान्यर्यऽ आ शुम्नानि यानुषाणाम् । सिवासन्तो वनामहे ॥१८॥

हे विश्व के स्वामी ! मनुष्यों को श्रेष्ठ सम्पदा प्रदान करें, उनके सेवाभावी व्यक्ति सुख प्राप्त कर सकें ॥१८॥

१४७७. अनु वीरैरनु पुष्यास्म गोभिरन्वक्षैरनु सर्वेण पुष्टैः । अनु द्विपदानु चतुष्पदा वयं देवा नो यज्ञमृतुषा नयन्तु ॥१९॥

हम वीर पुरुषों से युक्त हों । गौओं, अश्वों तथा सब प्रकार के सेकड़ों और पशुओं से सम्पन्न बनाने के लिए दिव्य शक्तियों हमारे इस यज्ञ को ऋतुओं के अनुसार सम्पन्न करें ॥१९॥

१४७८. अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुज्जतीर्य । त्वष्टारं सोमपीतये ॥२०॥

हे अग्निदेव ! आहुतियों की इच्छा करने वाली देव वृत्तियों (शक्तियों) को तथा त्वष्टा (देवों के शिल्पी) देवता को हमारे इस यज्ञ में सोमरस पीने के लिए अपने सख सेकर आएं ॥२०॥

१४७९. अधि यज्ञं गृणीहि नो म्वावो नेष्टः पिब क्रतुना । त्वं हि रत्नमाऽ असि ॥२१॥

हे, पत्नी (शक्ति) युक्त नेष्ट-अग्निदेव ! आप हमारे इस यज्ञ को सम्पन्न (पूर्ण) करें तथा ऋतु के अनुसार सोम रस का पान करें, क्योंकि आप हमारे लिए श्रेष्ठ सम्पदाएँ धारण करते करते हैं ॥२१॥

१४८०. इविणोदाः पिपीयति जुहोत अ च तिष्ठत । नेहादतुधिरिभ्यत ॥२२॥

हे ऋत्विजो ! जिस तरह घनप्रदाता नेत्र (अग्नि) देवता समक्षानुसार सोमरस पीने की इच्छा करते हैं, वैसे ही आप लोग भी पीने की कामना से उसे प्राप्त करें । आप बड़ा करें और सम्मान के अधिकारी बनें ॥२२॥

१४८१. तवायथं सोमस्त्वमेहावाङ् सशक्तमथं सुमनाऽ अस्य पाहि । अस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दक्षिण्येन जठर ऽ इन्दुमिन्द्र ॥२३॥

हे ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप हमारे निकट आएं । वह खोच आपके निमित्त अर्पित है । अतः प्रसन्नचित्त होकर दीर्घकाल तक इसकी रक्षा करें । इस यज्ञ में कुत के आसन पर आसीन होकर इस सोम को स्वीकार करें ।

१४८२. अमेव नः सुहवाऽ आ हि गन्तव्यं नि बर्हिषि सदतन्य रणिष्टन । अथा मदस्व जुजुषाणो अन्यसस्त्वष्टदेवेभिर्जनिष्टि सुमहृष्ट ॥२४॥

हे आवाहन पर ध्यान देने वाली देवर्त्तियो ! (ऋत्विजो ! ) आप अपने गृह सदस हमारें इस यज्ञ यण्डप में पधारें और कुश-आसव पर प्रसन्नतापूर्वक आसीन हों । हे त्वष्टादेव ! आप देवर्त्तियों के साथ इविष्याम को ब्रह्मण करते हुए आनन्दित हों ॥२४॥

१४८३. स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम वारया । इन्द्राय पातये सुतः ॥२५॥

हे सोमदेव ! आप अपनी स्वादिष्ट और अमन्द प्रदान करने वाली धारा के साथ इन्द्रदेव के लिए कलश में प्रवाहित हों, क्योंकि आप उनकी के पीने के लिए निकाले बने हैं ॥२५॥

१४८४. रक्षोह्य विस्ववर्षणिरभि योनिकयोह्ये । होमे सवस्वमास्रत ॥२६॥

हे दिव्य सोमदेव ! आप राक्षसों का विनाश करने वाले तथा स्वस्त विष को देखने वाले हैं । आप काष्ठपात्र तथा सौत निर्मित गज से संस्कारित होकर, द्रोणकलश में स्थिर होकर, यज्ञ के मध्य में विराजमान रहें ॥२६॥

### —ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि—विश्वाम्ना १ । विश्वाम्ना स्तोत्रार्चि २ । गुत्सभ ३, २४ । रम्भात्रि ४, ५ । प्रादुरार्चि ६ । कुत्स ७ । वसिष्ठ-भरद्वाज ८, ९ । वसिष्ठ १० । नोषा गोतम ११ । वसुधव १२ । भरद्वाज १३, १४ । वत्स १५ । आमहीयव १६-१८ । मुद्गल यज्ञपुत्र १९ । मेधातिथि २०-२२ । विश्वामित्र २३ । यद्युञ्जन्दा २५, २६

देवता—लिङ्गोत् १, २ । ब्रह्म ३ । इन्द्र ४, ५, १९, २३ । वैश्वदेव ६-८ । अग्नि ९, १२-१४, २० । महेन्द्र १० । सोम १५-१८, २५, २६ । देवर्त्त १९ । ऋतु २१, २२ । त्वष्टा २४ ।

छन्द—अधिकृति १ । विराट् अत्यष्टि २ । पुरिक् अत्यष्टि ३ । स्वराट् जगती ४, ९ । पुरिक् जगती ५ । जगती ६, ८, २४ । स्वराट् अष्टि ७ । निचूक् जगती १० । बृहती ११ । विराट् अनुष्टुप् १२ । विराट् गायत्री १३, १५ । पुरिक् बृहती १४ । निचूक् गायत्री १६, १७ । विराट् गायत्री १८ । त्रिष्टुप् १९ । गायत्री २०-२२ २५, २६ । पुरिक् पंक्ति २३ ।

॥ इति षड्विंशोऽध्यायः ॥

## ॥ अथ सप्तविंशोऽध्यायः ॥

१४८५. समास्त्वाग्ने ऽ ऋतवो वर्धयन्तु संवत्सराऽ ऋमयो यानि सत्या । सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा ऽ आ पाहि प्रदिश्वस्तसः ॥१॥

हे अग्ने आपकी ऋषिगण प्रत्येक मास ऋतु और संवत्सर में दिव्य बलों से बढ़ाते हैं । इस प्रकार आप अपने अलौकिक तेज से देदीप्यमान होकर सम्पूर्ण दिशाओं तथा चारों उत्पदिशाओं को आलोकित करें ॥१॥

१४८६. सं चेद्भ्यस्त्वाम्ने प्र च बोधयैनमुच्च तिष्ठ महते सौभगाय । मा च रिषदुपसत्ता ते अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये ॥२॥

हे अग्निदेव आप मसीप्रकार देदीप्यमान होकर इस यजमान को आत्मज्ञान प्रदान करें तथा महान् ऐश्वर्य दिलाने के निमित्त प्रयत्नशील हो । हे अग्ने ! आप को उपासना करने वाला उपासक अमृतत्व को प्राप्त करे । आपके प्रतिकर्तृ तथा याज्ञकगण कीर्तिमान् हों और विपरीत आचरण काले वह सब न पाएँ ॥२॥

१४८७. त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणाऽ इमे शिवो अग्ने संवरणे धवा नः । सप्तमहा नो अभिमातिजिष्ण्व स्वे गये जागृह्यप्रयुचन् ॥३॥

हे अग्ने ! ये विप्र लोग आपकी अर्चना करते हैं । इनके द्वारा सम्पन्नित किये जाने पर आप हमारे लिए मंगलकारी हो । हे अग्ने ! हमारे रिपुओं के विनाशक तथा विजेता आप अपने गृह में प्रमादरहित होकर जाग्रत् रहें ॥

१४८८. इहैवाग्ने अधि यारय्य रथि मा त्वा नि क्रन्मूर्वचितो निकारिणः । क्षत्रमग्ने सुयममस्तु तुष्यमुपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टतः ॥४॥

हे अग्ने ! इन यजमानों के धन की वृद्धि करें । यज्ञाग्नि को प्रकट करने वाले याज्ञक आपकी आज्ञा की अवहेलना न करें । क्षत्रिय (शौर्यसम्पन्न वर्गिक) सरस्वज से आपके वशीभूत हों । आपके भक्त अधिनाशी होकर सम्पूर्ण समृद्धि को प्राप्त हों ॥४॥

१४८९. क्षत्रेणाग्ने स्वायुः सत्यं रघस्य मित्रेणाग्ने मित्रमेये यतस्व । सजातानां मध्यमस्था ऽ एधि राज्ञामग्ने विह्व्यो दीदिहीह ॥५॥

हे महान् अग्निदेव ! आप क्षत्रियों की क्षात्रवर्ध की प्रेरणा देते हुए यज्ञ सम्पन्न करें । सूर्य के साथ रहकर यज्ञ आदि सृजनात्मक कार्य करने का प्रयत्न करें । सजातियों के मध्य रहने काले हे अग्ने ! राजाओं के द्वारा बुलाये जाने पर इस यज्ञ में आकर आप प्रदीप्त हों ॥५॥

१४९०. अति निहो अति स्त्रियोत्यचित्तिमत्यरातिमग्ने । विश्वा ह्याग्ने दुरिता सहस्वाधास्यध्य ः सहवीरा ः रथि दाः ॥६॥

हे अग्निदेव ! आप हत्या करने वालों, कुत्सित आचरण करने वालों, दुराचारियों, मनचलों और लोभियों को साहस के साथ सम्पूर्ण दुष्टताओं से दूर करें । इसके बाद हे अग्ने ! इन्से वीर सन्तान के साथ उत्तम धन-धान्य प्रदान करें ॥६॥

१४९१. अनाद्युष्यो जातवेदाऽ अनिष्टतो विराडग्ने क्षत्रभृद्दीदिहीह । विश्वा ऽ आशाः प्रमुञ्चन्मानुषीर्भयः शिवेधिरक्ष परि पाहि नो वृषे ॥७॥

हे आग्ने । आप अपराजेय सर्वज्ञात् अमरं नेत्रवन् तथा सर्वशक्ति सम्पन्न क्षत्रिज धर्म का पोषण करने वाले हैं । इन गुणों से सम्पन्न होकर सभी दिग्गजों को प्रकाशित करें । मनुष्य के सभी पथानक रोग-शोक आदि को दूर करके, समृद्धि प्रदान करें तथा स्वन्त्रपत्न से हमारा परिपासन करें ॥७॥

१४९२. बृहस्पते सवितर्बोधयैनं सधंश्रितं चित्सन्तरा यं स यं शिशिषि । वर्धयैनं महते सौभगाय विश्वे ऽ एनमनु मदन्तु देवाः ॥८॥

हे बृहस्पते । हे सवितरदेव । इन कर्षकों को ज्ञान बुद्धि यन्त्र बनाकर और अधिक चेतन सम्पन्न करें महान् सम्पदाओं के निमित्त इनको आगे बढ़ाएं । विश्वदेव भी अनुकूल होकर इन्हें वर्धित करें ॥८॥

१४९३. अमुप्रभूपादध यक्षमस्य बृहस्पते अभिशस्तेरमुज्ज्वः । प्रत्यैहतामश्विना मृत्युमस्माद्देवानामग्ने धिक्का शचीषि ॥९॥

हे बृहस्पते । परलोक में जाने के कर्म से तथा यमराज के भय से हमें छुड़ाएँ । हे आग्ने । इस (याज्ञक वर्ग) के यज्ञादि कर्मों के द्वारा अधिनीकुमन (देवों के वीर) मृत्यु भय को दूर करें, जन्म-जन्मान्तरों के पापों को दूर करें ॥

१४९४. उह्यं तमसस्परि स्वः पश्यन्त ऽ उत्तरम् । देवं देवज्ञा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥

हम इस जगत् के अज्ञानान्धकार से मुक्त होकर उत्कृष्ट सुख प्रदान करने वाले, अविनाशी, महान् गुण सम्पन्न सर्वोत्कृष्ट ज्योतिस्वरूप सूर्यदेव (सविता) को देखते हुए परमपद को प्राप्त करें ॥९०॥

१४९५. ऊर्ध्वाऽ अस्य समिधो भवत्यूर्ध्वा शुक्रा शोधीऽध्वमेः । सुमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः ॥११॥

याज्ञिकों के द्वारा उत्पन्न किये जाने पर श्रेष्ठ दीखने वाले अग्निदेव की किरणें समिधाओं से ऊर्ध्वगमन करती हैं तथा शुभ प्रकाश फैलाते हुए ऊपर उठने की प्रेरणा देती हैं ॥११॥

१४९६. तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः । पक्षो अनक्तु मय्या घृतेन ॥१२॥

शरीर की रक्षा करने वाले ऋणवान् विश्ववेदा देवताओं में महान् अग्निदेव मधुर भी की आहुतियों द्वारा यज्ञों को बढ़ाएँ तथा सन्मार्ग पर बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करें ॥१२॥

१४९७. मय्या यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराशंस्तो अग्ने । सुकदेवः सविता विश्वचारः ॥१३॥

दिव्यगुणों से सम्पन्न आभितक ऋत्विजों द्वारा पूज्य हे अग्ने । श्रेष्ठ कर्मों के सम्पादनकर्त्ता तेजस्वी सविता रूप आप सम्पूर्ण जगत् के प्रिय पति हैं । अन्न मधुर पदार्थों से यज्ञ को सम्पन्न करते हैं ॥१३॥

१४९८. अच्छायमेति हवसा घृतेनेदानीं यद्भिर्नमसा । अग्निं यं सुधो अश्वरेषु प्रयत्सु ॥

यज्ञकर्त्ता वह अध्वर्यु विभिन्न स्तोत्रों द्वारा प्रार्थन करते हुए, घृत तथा इक्षिमात्र के सहित यज्ञपात्रों (जुहु) को लेकर अग्नि के निकट जाते हैं ॥१४॥

१४९९. स यक्षदस्य महिमानमग्नेः स ईं मन्द्रा सुप्रयसः । वसुश्रोतिष्ठो वसुधातमश्च ॥१५॥

वह याज्ञिक यज्ञ कार्य में निमग्न होकर, अत्यन्त जाज्वल्यमान, उत्तम सम्पदाओं को प्रदान करने वाले और अन्न से सुसम्पन्न अग्निदेव की आराधना करता है । वह याज्ञिक ही हव्यज्ज हविषों से आहुति प्रदान करे ॥१५॥

१५००. द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रता ददन्ते अग्नेः । उरुव्यवसो धाम्ना पत्यमानाः ॥१६॥

विज्ञात आकाश से युक्त सामर्थ्यवान् दिव्यद्वार अग्निदेव के संकल्प को धारण करते हैं तथा समस्त देवगण अग्नि के कर्म (यज्ञ) को धारण करते हैं ॥१६॥

१५०१. ते अस्य योषणे दिव्ये न योना उवासानक्ता । इयं यज्ञमयतामध्वरं नः ॥१७॥

इस यज्ञ मण्डप में अग्नि की दो दिव्य देखियाँ उठा (दिवा) और नक्त (रात्रि) विद्यमान हैं । वे दोनों हमारे इस श्रेष्ठ यज्ञ की सरल रीति से सुरक्षित करें जहाँ कुण्डमध्य में अग्निदेव के साथ बिरावें ॥१७॥

१५०२. दैव्या होताराऽ ऊर्ध्वमध्वरं नोनेर्जिह्वायामि गृणीतम् । कणुतं नः स्वाष्टिम् ॥१८॥

दिव्यगुणों से युक्त दोनों होतृ अग्नि और त्वयु हमारे इस यज्ञ को श्रेष्ठ ढंग से सम्पन्न करें हमारे यज्ञाग्नि की लपटें ऊर्ध्वगामी होकर हर प्रकार से हमें ऊर्ध्वगमन की वरणा प्रदान करें ॥१८॥

१५०३. तिलो देवीर्बहिरिदं सदन्यवहा सरस्वती भारती । गही गृणाना ॥१९॥

महती स्तुतियोग्य ताँनों देवियों इहा सरस्वती और भारती यज्ञशाला में इस कुल आसन पर अरुढ़ हों ॥१९॥

१५०४. तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम् । रायस्पोषं वि ध्वतु नाभिपस्ये ॥२०॥

त्वष्टादेव उस शीघ्रगति वाले, अदभुत, विधिम ऋषों में सुशोभित ऐश्वर्य पोषक, श्रेष्ठ वीर्य को हमें प्रदान करें २० ॥

१५०५. वनस्पतेव सृजा रराणस्पना देवेषु । अग्निर्हव्यं हामिता सूदयाति ॥२१॥

हे वनस्पते ! आप देवस्वरूप होकर देवताओं को हवियों द्वारा आहुति प्रदान करें कल्पाजकारी अग्निदेव इन आहुतियों को संस्कारित करते हैं ॥२१॥

१५०६. अग्ने स्वाहा कणुति जातवेदऽ इन्द्राय हव्यम् । विश्वे देवा हविरिदं जुबन्ताम् ॥२२॥

हे अग्निदेव ! आप सर्वविद् हैं । हमारी इन आहुतियों को इन्द्रदेव के लिए प्रदान काएँ । सभस्त देवगण इन आहुतियों का सेवन करें ॥२२॥

१५०७. पीवो भग्ना रथिवृक्षः सुमेधाः श्रेष्ठः सिबक्ति नियुतामभिधीः । ते बाधवे समनसो वि तस्युर्विशेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥२३॥

अत्रादि से पृष्ठ हुए ऐश्वर्य वृक्षों वाले, सद्बुद्धि सम्पन्न, वायुदेव का आश्रय लेने वाले, उनके समान स्वभाव वाले अश्वों (यज्ञीयऊर्जा) का सेवन वायुदेव करते हैं । वे (यज्ञीय ऊर्जरूप) अश्व वायुदेव के लिए उपलब्ध रहते हैं । श्रेष्ठ मनुष्य (याज्ञकगण) श्रेष्ठ सन्तान आदि की प्राप्ति के लिए ऐसा ही (यज्ञ) सम्पन्न करें ॥२३॥

१५०८. राये नु यं जज्ञतु रोदसीमे राये देवी धिषणा वाति देवम् । अथ वायुं नियुतः सञ्जतः स्वा उत श्रेतं वसुधितिं निरेके ॥२४॥

धावा-पृथिवी ने जिस वायु (जल तत्व) को ऐश्वर्य के लिए पैदा किया, उसी वायु को दिव्य वाक्देवी, धन के निमित्त धारण करती हैं । इसके पश्चात् शुद्ध सम्पत्ति को धारण करने वाले वायु (आणतत्व) का सभी प्राणी महत्ताण्ड में रहकर सेवन करते हैं ॥२४॥

[अनन्त जनरिण से सम्पन्न दिव्य सम्पत्तियों के रूप में पृथ्वी आणतत्व को ग्रहण करती है । उसे प्राप्त तत्व का सभी प्राणी सेवन करते हैं ]

१५०९. आपो ह यद्वृहतीर्विक्षमायन् मघं दधाना जनयन्तीरग्निम् । ततो देवानां स समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२५॥

स्वर्णिम आचमय अग्नि के तेज को गर्भ में प्रवेश करने हुए महान् ब्रह्म सर्वप्रथम पृथ्वी पर प्रकट हुआ। उस हिरण्यगर्भ से देवताओं के प्राक्कल्प आन्ध्र (तिष्ठन् शतैररूपी हिरण्यगर्भ) की उत्पत्ति हुई। हम हिरण्यगर्भरूपी प्रजापतिदेव के लिए हवि प्रदान करते हैं (उनके अतिरिक्त और किसे हवि प्रदान करें ?) ॥२५॥

१५१०. यक्षिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनवन्तीर्यज्ञम् । यो देवेष्वधि देवऽ एकऽ आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२६॥

जिस (परमात्मशक्ति) ने (सर्वत्र विस्तार) ब्रह्म को देखा और दक्ष-प्रजापति के माध्यम से यज्ञ करने वाली प्रजा को जन्म दिया, उन सभी देवों में श्रेष्ठ प्रजापति देव को हम आहुति प्रदान करते हैं ॥२६॥

१५११. प्र याभिर्यासि दाक्षान्ध्रस्यच्छा नियुद्धिर्वायविष्टये दुरोणे । नि नो रविऽ सुभोजसं युवस्व नि वीरं गच्छममर्थं च राक्ष ॥२७॥

हे वायो ! यज्ञमण्डप में आहुति प्रदान करने वाले काजक के पास आरंभ अथवा अन्त की भाँति जिस तीव्र गति से आते हैं, उसी प्रकार हमें वीर-संतान, यौ, अथवा अग्नि अथवा वैश्व प्रदान करें ॥२७॥

१५१२. आ नो नियुद्धिः शतिनीधिरश्वरऽ सहस्रिणीधिरुय याहि यज्ञम् । वायो अस्मिन्सखने मादयस्व यूयं प्राप्त स्वस्तिभिः सदा नः ॥२८॥

हे वायो ! आप सैकड़ों हजारों अश्वों द्वारा खींचे जाते हुए वाहनों पर आरुढ़ होकर अर्थात् तीव्र गति से हमारे इस यज्ञ में पधारें और इसके सेवन से स्वयं वृक्ष हों तथा हम सबको भी हर्षित करें । आप अपने कल्याणकारी सखियों द्वारा हमारी सहायता करें ॥२८॥

१५१३. नियुत्वान्वापचा गच्छथऽ शुक्रो अयामि से । गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥२९॥

सत्कर्मरत पावकों की ओर गन्तव्य है वायो ! आप अपने तीव्रगामी वाहन द्वारा इस यज्ञस्थल पर तीव्र पधारें । शुक्र आवि प्रह आपको धारण करने के लिए उत्तर है ॥२९॥

१५१४. वायो शुक्रो अयामि से मध्वो अग्रं दिविष्टिषु । आ याहि सोमपीतये स्याहो देव नियुत्वता ॥३०॥

विजयी वीरों द्वारा स्पृहणीय हे वायुदेव ! यज्ञ ब्रह्मरूप रथों में प्रमुख शुक्र प्रह आपके लिए प्रस्तुत है । तीव्रगामी अश्वों से युक्त वाहन द्वारा सोमरस पीने के लिए आरंभ तीव्र हों पधारें ॥३०॥

१५१५. वायुरग्रेण यज्ञप्रीः साकं गन्मन्सा यज्ञम् । शिवो नियुद्धिः शिवाभिः ॥३१॥

चेतुत्व करने वाले, यज्ञ से आनन्दित होने वाले, मन्त्रकारी वायुदेव अपने कल्याणकारी अश्वों पर आरुढ़ होकर पूर्ण मनोयोग से हमारे यज्ञ में पधारें ॥३१॥

१५१६. वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेधिरा महि । नियुत्वान्सोमपीतये ॥३२॥

हे वायो ! आपके पास सहस्रों रथ (वाहनों) हैं, उन रथों में अश्वशक्ति (सर्प पावर) जोड़कर सोमरस को पीने के निमित्त हमारे इस यज्ञ में पधारें ॥३२॥

१५१७. एकया च दशभिश्च स्वभूते द्वाभ्यामिष्टये विंशशती च । तिसृभिश्च वहसे त्रिंशताथ नियुद्धिर्वायविह ता विमुञ्च ॥३३॥

स्वयं के ऐश्वर्य से सुशोभित हे वायुदेव ! आप एक दो, तीन एवं (गुणितदस) दस बीस तीस अथवा (अश्वशक्ति) युक्त वाहनों (यानों) को इस अभीष्ट प्रयोजन के लिए छोड़ें ॥३३॥

१५१८. तव वायव्यतस्त्यते त्वष्टृर्जायतरन्तुत । अवाधंस्या वृणीमहे ॥३४॥

हे सन्ध्यालोक वायुदेव ! आप त्वाहादेव के जन्मलक्षण और अहर्कर्मजनकरूप वाले हैं । आपके द्वारा प्रयुक्त रक्षा-साधनों को हम हर तरह से जंग्गेन्कार करते हैं ॥३४॥

१५१९. अभि त्वा शूर नोनुमोदुग्धाऽ इव धेनवः । ईशानमस्य जगत् स्वर्दशमीशानमिन्द्र तस्युक् ॥३५॥

सूर्य की भाँति सब पर दृष्टि रखने वाले हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! आप इस सम्पूर्ण स्वतन्त्र जंगम जगत् के स्वामी और नियन्ता हैं, हम आपके सम्मुख नमन करते हैं । बिना दुहो गौ जैसे कलड़े को पाना चाहतो हैं वैसे ही हम आपसे अनुदान पाना चाहते हैं ॥३५॥

१५२०. न त्वावाँर अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते । अद्यायन्तो मघवसिन्द्र घाजिनो राघ्यन्तस्त्वा इवामहे ॥३६॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपके समूह दिव्य देव कोई अन्य नहीं है, न कोई पैदा हुआ है, न ही पविष्य में पैदा होगा । अतः हम घोड़ों, गैरों और शक्ति की कामना से आपके लिए आहुति समर्पित करते हैं ॥३६॥

१५२१. त्वामिन्द्र हवामहे भ्रातौ वाजस्य कारकः । त्वां वृत्रेष्णिन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्षतः ॥३७॥

सत्य का पालन करने वाले हे इन्द्रदेव ! हम यज्ञ करने वाले वाजकर्म धन-धान्य लाभ के लिए, सत्रुओं का नाश करने के लिए, अन्न लाभ तथा सभी दिक्कतों में विजय प्राप्त करने के लिए आपको आवाहन करते हैं ॥३७॥

१५२२. स त्वं नक्षित्रं बज्रहस्तं वृष्णुया मरु स्तवानो अद्विजः । गामश्चरं रथ्यमिन्द्र सं किं सत्रा वाचं न जिन्मुषे ॥३८॥

हे अद्भुत कर्म वाले वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप अपने बराबर और मातृतेज से सबके द्वारा स्तुत्य हैं । हमें गाय तथा अन्नसंज्ञित रथ प्रदान करें । जिस प्रकार वृद्ध जीतने की कामना से घोड़ों को अत्रादि देकर भजवृत्त किया जाता है, उसी प्रकार हमें भी आप पुष्टि प्रदान करें ॥३८॥

१५२३. कया नक्षित्रं ऽ आ भुवदूती सदावृक् सखा । कया शशिष्ठया वृता ॥३९॥

सर्वदा वृद्धि करने वाले, अद्भुत शक्ति सम्पन्न हे इन्द्रदेव ! किस रक्षण तथा वर्तन क्रिया से प्रसन्न होकर आप सदैव हमारे मित्ररूप में प्रस्तुत होते हैं ? ॥३९॥

१५२४. कस्तवा सत्यो मदानां मरुं हिष्ठो मत्सदन्वसः । दृढा चिदास्त्ये वसु ॥४०॥

हे धन-सम्पन्न इन्द्रदेव ! सोमरस का कौन सा अंश आपको अन्नन्दित करता है, जिस अंश को पीकर हर्षित होते हुए आप याजकों को स्वर्ण आदि धन प्रदान करते हैं ? ॥४०॥

१५२५. अभीषु षाः सखीनामविता जरितृणाम् । शतं भवास्यूतये ॥४१॥

हे इन्द्रदेव ! आप मित्र सदृश हम कश्चित् के फलक हैं । आप वस्तुओं की रक्षा के लिए विविध प्रकार के उपायों का सहारा लेते हैं ॥४१॥

१५२६. यज्ञा-यज्ञा वो अग्नये गिरा-गिरा च दक्षसे । प्र-प्र वयममृतं जालक्षेदसं प्रियं मित्रं न शरं सिधम् ॥४२॥

यज्ञों में अत्यन्त शक्ति-सम्पन्न, अमर, सर्वविद् और त्रिविध के सधान अग्निदेव की, विभिन्न स्तोत्रों से हम स्तुति करते हैं ॥४२॥

१५२७. पाहि नो अग्न ऽ एकया पाह्युत द्वितीयया । पाहि गीर्भिस्तिसृभिरुजां पते पाहि  
चतसृभिर्वसो ॥४३॥

हे अग्ने ! आप बलों के स्वाधी तथा उत्तम निवास प्रदान करने वाले हैं । हम आपकी ऊर्ध्व, यजु, साम तथा अथर्वरूपी दिव्य स्तोत्रों से वन्दना करते हैं; आप हमारी रक्षा करें ॥४३॥

१५२८. ऊर्जो नपात धं स हिनायमस्मयुर्दाशेम इव्यदातधे । भुवद्वाजेध्वविता भुवद्वृष ऽ  
वत त्राता तनूनाम् ॥४४॥

हे अध्वर्युगण ! आप जौर्व के रक्षक अग्निदेव को संतुष्ट करें । वे हमारे शरीर, पत्नी तथा बच्चों की रक्षा करते हैं तथा कामनाओं को पूर्ण करते हैं । जीवन में उन्नति को कामना करते हुए हम उन्हें आहुति प्रदान करते हैं ॥

१५२९. संवत्सरोसि परिवत्सरोसीदावत्सरोसीद्वत्सरोऽसि कत्सरोसि । उषसस्ते  
कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्धमासास्ते कल्पन्तां भासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्तां  
संवत्सरस्ते कल्पन्ताम् । प्रेत्या ऽ एतै सं चाव्य प्र च सारय । सुपर्णचिदसि तथा  
देवतयाङ्गिरस्वद् भुवः सोद ॥४५॥

हे अग्ने ! आप संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, इद्वत्सर तथा कत्सर (वर्ष) हैं । आपके लिए ठंडा, दिन-रात, कृष्णपक्ष, शुक्लपक्ष, मास, ऋतु तथा वर्ष सुसम्पन्न हो । आप हमारी क्षणिक के निमित्त अपनी शक्तियों का संग्रह तथा विस्तार करते हैं । आप उन दिव्य शक्तियों के साथ मिलकर ऋणकण्ड के मद्दत दृढ़ होकर स्थिर रहें ॥४५॥

### —ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— अग्नि १-९, ११-२२ । प्रसकम्ब १० । वसिष्ठ २३, २४, २७, २८, ३५, ३६ । हिरण्यगर्भ प्राजापत्य २५, २६ । गृत्समद २९, ३२ । पुरुमीठ-अजमीठ ३०, ३१ । अजापति ३३ । अश्व आगिरस ३४ । शंभु बार्हस्पत्य ३७, ३८ । धामदेव ३९-४१ । शंभु ४२-४५ ।

देवता— अग्नि १-९, ४२-४५ । सूर्य १० । इव्य ११ । तनूनक्षत्र १२ । नरासंस १३ । इष्ट १४ । बर्हि १५ । इन्द्र १६ । तवासानन्ता १७ । दिव्य होतान्न १८ । तीन देवित्री १९ । त्वष्टा २० । वनस्पति २१ । स्वाहाकृति २२ । वायु २३, २४, २७-३४ । अजापति २५, २६ । इन्द्र ३५-४१ ।

छन्द— त्रिष्टुप् १, २, ८, ९, २४, २६, २८ । विराट् त्रिष्टुप् ३, ३३ । स्वराट् त्रिष्टुप् ४, २५ । स्वराट् पंक्ति ५, २७ । गुरिक् बृहती ६ । निचृत् जगती ७ । विराट् अनुष्टुप् १० । उष्णिक् ११, १२ । निचृत् उष्णिक् १३, १६, १७, २०, २२ । गुरिक् उष्णिक् १४ । स्वराट् उष्णिक् १५ । गुरिक् गायत्री १८ । गायत्री १९, ३१, ३२, ३९ । विराट् उष्णिक् २१ । निचृत् त्रिष्टुप् २३ । निचृत् गायत्री २९, ३४, ४० । अनुष्टुप् ३० । स्वराट् अनुष्टुप् ३५, ४३ । निचृत् पंक्ति ३६ । निचृत् अनुष्टुप् ३७ । स्वराट् बृहती ३८, ४४ । छन्दनिचृत् गायत्री ४१ । बृहती ४२ । निचृत् अभिकृति ४५ ।

॥ इति सप्तविंशोऽध्यायः ॥





## ॥ अथ अष्टाविंशोऽध्यायः ॥

इस अध्याय में प्रकृति में क्या वे विराट् यज्ञ का वर्णन किया गया है। इसमें ब्रह्म में जिस 'होत' का उल्लेख है, उसे सभी धर्मशास्त्रों ने 'प्रकृति यज्ञ संकल्पक दिव्य होत' ही माना है। 'अजस्र' का अर्थ विद्वानों ने 'धी, तेज, दृढ़' आदि किसी भी इष्टनीय पदार्थ के संदर्भ में लिया है। यही अर्थ अजस्र युक्ति संगत भी है—

१५३०. होता यक्षत्समिधेन्द्रमिदस्पदे नाभ्य पृथिव्या ऽ अधि । दिवो वर्धन्समिधयत ऽ ओजिष्ठश्चर्षणीसहो वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥१॥

दिव्य याज्ञिक ने समिधाओं के द्वारा इन्द्रदेव के निमित्त यज्ञ किया है। (प्रकृति यज्ञ के उस विराट् यज्ञ में) अग्निदेव धरती पर यज्ञाग्नि रूप में, पाप्य स्वान अन्तरिक्ष में विद्युत् रूप तथा ऊपर स्वर्ग में सूर्य के रूप में आलोकित होते हैं। श्रेष्ठ विजेता ओजस्वी इन्द्रदेव इव्यपान करें। हे होत ! आप भी उनके निमित्त यज्ञ करें ॥१॥

१५३१. होता यक्षत्तनूनपातमूर्तिभिर्बेतारमपराजितम् । इन्द्र देवश्च स्वर्षिर्दं पथिभिर्मधुमत्तमैर्नराशश्च तेजसा वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२॥

महान् तेजस्वी, मनुष्यों के द्वारा प्रशंसित, शरीर के रक्त, शत्रुओं से पराजित न होने वाले, शत्रुओं के विजेता, अपने को जानने वाले, देवेन्द्र के लिए दिव्य होत ने अपनी हर्षप्रदायक तथा सुमधुर आहुतियों द्वारा यज्ञ किया। इस प्रकार वे इव्य का पान करें। हे याज्ञिक ! आप भी यज्ञ करें ॥२॥

१५३२. होता यक्षदिकाभिरिन्द्रमीडितमाजुह्वानममर्त्यम् । देवो देवैः सवीर्यो वज्रहस्तः पुरन्दरो वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥३॥

वेद मंत्रों की मधुर स्तुतियों के द्वारा स्वुत्प देवताओं के उच्चमर्क, अविनाशी इन्द्रदेव के लिए महान् याज्ञिक ने यज्ञ किया। दिव्य गुणों से सम्पन्न शत्रुओं की पुर्तियों को नष्ट करने वाले वज्रधारी देवराज इन्द्र, इव्य का पान कर चुप हो। हे होत ! आप भी यज्ञ करें ॥३॥

१५३३. होता यक्षदुर्हिषीन्द्र निबद्धं वृषर्षं नर्यापसम् । वसुभी रुद्रैरादित्यैः सयुग्मिर्बर्हिर्नासद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥४॥

धन की बर्षा करने वाले, याज्ञिकों के द्वितीय इन्द्रदेव को कुशाओं के आसन पर आरुढ़ करके होताओं ने भजन किया। समान कृत्व करने वाले वसुओं, रुद्रों तथा अदित्यों के साथ कुश-आसन पर बैठकर वे इव्य का पान करें। हे होत ! आप भी यज्ञ करें ॥४॥

१५३४. होता यक्षदोजो न वीर्यश्च सङ्गो हार ऽ इन्द्रमवर्धयन् । सुप्रायणा ऽ अस्मिन्यज्ञे वि श्रयन्तामृतावृधो हार ऽ इन्द्राय भीदुषे व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥५॥

महान् याज्ञिक ने इन्द्रदेव के निमित्त यज्ञ किया और हार के देवता ने उनके अन्दर ओज, वीर्य और मनोबल को बढ़ाया। सरलता से जाने योग्य और यज्ञ संवर्धक हार, अभीष्टवर्षक इन्द्रदेव के लिए खुल जाएँ, वे इस यज्ञ में पधारकर इव्य का पान करें। हे याज्ञिक ! आप भी (ऐसा ही) यज्ञ करें ॥५॥

१५३५. होता यक्षदुषे इन्द्रस्य घेनू सुदुषे मातरा यही । सवातरौ न तेजसा वत्समिन्द्रमवर्धतां वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥६॥

महान् होता ने इन्द्रदेव को घेनू के सदृश उत्तम दूध देने वाली दो गौओं के समान, पृथ्वी और उषा का यजन किया। इसके बाद उन्होंने तेज के द्वारा इन्द्रदेव को संवर्धित किया। जिस प्रकार दो गौएँ एक बछड़े को प्यार

करती हुई उसे मजबूत बनाती है उसी क्रम (उक्त दोनों यज्ञों के प्रभाव से) वे हव्य (पोषण) प्राप्त कर पुष्ट हो । हे याज्ञिक ! आप भी उसी निमित्त यज्ञ करें ॥६॥

१५३६. होता यक्षद्विष्या होतारा धिक्वा सखावा इविषेन्द्रं धिक्ज्यस्तः । कवी देवो प्रचेतसाविन्द्राय वक्तुः ॥ इन्द्रियं सीतामाज्यस्य होतर्यज ॥७॥

महान् दिव्यहोता ने त्रिकिन्सक, मित्ररूप, महान् गुणों से सम्पन्न, उत्कृष्ट ज्ञानवान्, देवगणों के वीर (दोनों अश्विनीकुमारों) के निमित्त यज्ञ किया । वे दोनों इन्द्रदेव को त्रिकिन्सक कर उसके आरोग्य लाभ प्रदान करते हुए हव्य का पान करें । हे याज्ञिक ! आप भी इसी हेतु यज्ञ करें ॥७॥

१५३७. होता यक्षत्विषो देवीर्न भेषजं त्र्यस्त्रिधातवोऽपसः ॥ इहा सरस्वती पारती महीः । इन्द्रपत्नीर्हविष्यतीर्व्यन्वाज्यस्य होतर्यज ॥८॥

महान् होता ने तीनों लोकों में, अग्नि, वायु, सूर्य— इन तीनों के धारक, सदी, गर्मी, वर्षा तथा ताम्र आदि की व्यवस्था करने वाले इन्द्रदेव का चस्मा करने वाली, ओषधिवृक्ष आहुति से सम्पन्न इहा, सरस्वती तथा पारती-इन तीनों देवियों का यजन किया । वे हव्यपान कर पुष्ट हो । हे याज्ञिक ! आप भी इनके निमित्त यज्ञ करें ॥८॥

१५३८. होता यक्षत्वाहारमिन्द्रं देवं धिक्ज॑तं सुयजं घृतश्रियम् । पुरुषप॑तं सुरेतसं मघोनमिन्द्राय त्वहा दध्मदिन्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥९॥

महान् ऐश्वर्यवान्, दान-दाता, रोगनाशक, श्रेष्ठ यज्ञिक, स्नेही, धन-सम्पन्न, विविधरूप वाले, श्रेष्ठ शक्ति से सम्पन्न त्वहादेव का दिव्य होता ने यजन किया । उसके बाद त्वष्टदेव ने इन्द्रदेव के लिए अनेकानेक शक्तियों को प्रदान किया । वे हव्य का पान करें । हे याज्ञिक ! आप भी उनकी के लिए यज्ञ करें ॥९॥

१५३९. होता यक्षइन्द्रस्यति॑तं शपितार॑तं शतक्र॑तुं धिष्ये जोहारमिन्द्रियम् । मध्वा समज्जन्वधि॑भिः सुगे॑भिः स्वदाति वज्रं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥१०॥

दिव्यहोता ने शान्ति-स्थापक, बहुत कार्य करने वाले, विचारपूर्वक कार्य करने वाले, इन्द्रदेव के हितैषी वनस्पतिदेव का यजन किया और मधुर पृथ्वी से वृक्ष यज्ञ को सम्पन्न करके सुगम मार्गों से देवों तक पहुँचाए । वे (देवगण) मधुर घृतवृक्ष हवि का पान करें । हे होता ! आप भी इसी निमित्त यज्ञ करें ॥१०॥

१५४०. होता यक्षदिन्द्र॑तं स्वाहाज्यस्य स्वाहा घेतस्तः स्वाहा स्तोका॑न्ना॑तं स्वाहा स्वाहाक॑तीना॑तं स्वाहा हव्यसू॑क्तीनाम् । स्वाहा देवाऽआज्य॑षा जुवा॑णाऽइन्द्रऽआज्य॑स्य व्यन्तु होतर्यज ॥११॥

दिव्यहोता ने पृथ्वी से, स्निग्ध पदार्थों से, सोमरस से, स्वाहाकारवृक्ष हवि से तथा सम्पन्नित श्रेष्ठ मंत्रों का प्रयोग करते हुए इन्द्रदेव के निमित्त यज्ञ किया । स्वाहा के उच्चारण से हर्षित होकर हव्य पीने वाले देवता तथा इन्द्रदेव उसका पान करें । हे याज्ञिक ! आप भी इसी निमित्त यज्ञ करें ॥११॥

१५४१. देवं ब॑र्हि॒रिन्द्र॑तं सुदे॑वं देवैर्वी॒रव॑स्ती॒र्णं वे॒द्याम॑वर्षयत् । वस्तो॑र्वृतं प्रा॒प्तोर्धृत॑तं रा॒या ब॑र्हिष्यतो॒त्पगा॑द्भुवने वसु॒धेय॑स्य येनु यज ॥१२॥

दिन में काटे जाने ( फँसी ) शक्ति में वेदों पर ( कार्य क्षेत्र में ) विस्तार पाने वाले, वीरों की भाँति अपने संस्कारों से ( परिस्थितियों का ) अतिक्रमण करने वाले, इन्द्र, मरुत् आदि देवों का विकास करने वाले बर्हिदिव ( कुशदि के अधिप्यता देवता ) हव्य का पान करें । हे बर्हिवृक्ष कवचों ! ऐश्वर्य की प्राप्ति एवं धारण के लिए आप भी यजन करें ॥१२॥

१५४२. देवीर्ह्यऽ इन्द्रं सङ्गते वीक्षीर्यामिववर्धयन् । आ वत्सेन तरुणेन कुमारेण च  
मीवतापार्वाणं रेणुककाटं नुदन्तां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥१३॥

सामूहिकरूप से देहस्त्री-कफट (आदि रुको में संव्याप्त) रूप दिव्य शक्तियों ने अपने कर्म से इन्द्रदेव को  
वृद्धि प्रदान की । (वे इन्द्रदेव) काल अवस्था अवस्था तरुण अवस्था काले हस्तिकारक तत्वों को आगे जाने से रोके  
तथा धूल परे बादलों को दूर करें । वे (इन्द्र) ऐश्वर्य प्रदान करके उन्हें (दिव्यशक्तियों को) यजमान के गृह में स्थित  
करने के निमित्त 'हव्य' का पान करें । हे होता ! आप भी यज्ञ करें ॥१३॥

१५४३. देवी उवासानक्तेन यज्ञे प्रवत्यङ्केताम् । दैवीर्विशः प्राद्यासिष्टा सुप्रीते सुचिते  
वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥१४॥

हमेशा प्रेम करने वाली, त्रेष्ठ त्रितेयो उवा और रात्रि देवी, यज्ञ के द्वारा इन्द्रदेव को समृद्ध करें तथा मत्तन्  
दिव्य प्रजाजनो वसु, रुद्र आदि को इस समय प्रेरित करें । वे यार्वाक के ऐश्वर्य की प्राप्ति तथा स्थिरता के निमित्त  
हव्य पान करें । हे होता ! आप भी इसी निमित्त यज्ञ करें ॥१४॥

१५४४. देवी जोष्टी वसुधितौ देवमिन्द्रमवर्धताम् । अयाव्यन्याया देवाः स्यान्वा वक्षद्वसु  
वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥१५॥

हमेशा प्रेम करने वाली, ज्ञान-संपन्न, ऐश्वर्य धारण करने वाली, अहोरात्र की देवी इन्द्रदेव को वृद्धि करती हुई,  
(प्रथम) उन (यजमान) के पाप और बुरे भाग्य को दूर करती है (तथा दूसरी) ग्रहणीय ऐश्वर्य प्रदान करती है । वे  
यजमान के लिए धन की प्राप्ति और स्थिरता के लिए हव्य का पान करें । हे होता ! आप भी इसी निमित्त यज्ञ करें ॥

१५४५. देवी ऊर्जाहुती दुधे सुदुधे पयसेन मवर्धताम् । इवमूर्जमन्या वक्षत्सग्विधं  
सपीतिमन्या नवेन पूर्वं दयमाने पुराणेन नवयथातामूर्जमूर्जाहुती ऊर्जयमाने वसु वार्याणि  
यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥१६॥

अन्न, जल एवं यमनाकषो दूध सहित लोहे देवियों ने इन्द्रदेव को वृद्धि प्रदान की । दोनों अन्न-जल रूपी  
शक्ति को गहन करती हैं । दयायुक्त रस की वृद्धि करने वाली, तत्व को जानने वाली, नये अन्न से पुराने और पुराने  
से नये अन्न को धारण करती हुई यजमान के लिए यमान ऐश्वर्य प्रदान करने एवं उसे स्थिर करने के लिए वे हव्य  
का पान करें । हे होता ! आप भी इसी के निमित्त यज्ञ करें ॥१६॥

१५४६. देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रमवर्धताम् । हताघरा ऽसावाभाष्टा वसु वार्याणि  
यजमानाय शिक्षितौ वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥१७॥

दुष्कर्मों का दण्ड देने वाली, दुष्टता को नष्ट करके देवत्व को बढ़ाने वाली, दिव्य होतारूप दोनों देवियों ने  
इन्द्रदेव को वृद्धि प्रदान की और यजमान को वांछित ऐश्वर्य प्रदान किया । वे दोनों यजमान के लिए धन प्राप्ति  
और उसकी स्थिरता के निमित्त हव्य पान करें । हे होता ! आप भी इसी निमित्त यज्ञ करें ॥१७॥

१५४७. देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीः पतिमिन्द्रमवर्धयन् । अस्पृक्षद्भारती दिव्यं रुद्रैर्यज्ञं  
सरस्वतीडा रसुमती गृहान् वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥१८॥

तीनों देवियों ने पालनकर्ता इन्द्रदेव को संवर्धित किया । इनमें भारती दिव्यलोक की, रुद्रों की सङ्चारिणी  
सरस्वती यज्ञ की, वसुमती (इडा) भूतलक को स्पर्श करती हैं । तीनों देवियाँ याजक के लिए धन-प्राप्ति और उसकी  
स्थिरता के लिए हव्य पान करें । हे होता ! आप भी इसी निमित्त यज्ञ करें ॥१८॥

१५४८. देवो इन्द्रो नराशंसस्त्रिवरुधस्त्रिबन्धुरो देवमिन्द्रमवर्धयत् । शतेन शितिपृष्ठानामाहितः सहस्रेण प्रवर्तते पित्रावरुणेदस्य होत्रमर्हतो बृहस्पतिः स्तोत्रमग्निनाध्वर्यवं वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥१९॥

बहु प्रशंसित, तीनों लोकों के स्वामी, ऋद्ध, यजु, साम की ऋक्ओं से युक्त यज्ञदेव ने इन्द्रदेव को वृद्धि प्रदान की । वे कपती पीठ वाली हजारों (गौओं या मेघों) के द्वारा मृजोभित होते हैं । इस यज्ञ के होता कर्मशील वरुण, स्तोता बृहस्पति तथा अध्वर्यु दोनों अग्निनांकुमार हैं । वे (इन्द्रदेव) याजक के लिए ऐश्वर्य की प्राप्ति तथा उसकी स्थिरता के उद्देश्य से हव्यपान करें । हे होता ! आप भी इसी निमित्त यज्ञ करें ॥१९॥

१५४९. देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यघणो मधुशास्त्रः सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्धयत् । दिवमग्नेणास्पृक्षदान्तरिक्षं पृथिवीमद् यज्ञो ह्यसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥२०॥

सुनहरी पत्तों से, मधुमयी दर्जनियों से, सुस्वादु फलों से सम्पन्न वनस्पति देव ने देवगणों के साथ इन्द्रदेव को तेजस्विता से संवर्धित किया । वे वनस्पतिदेव अपने अगले भाग में आकाश की तथा यह द्वारा धरती की स्पर्श करते हुए विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं । वे देव याजक के लिए धन प्राप्ति और उसकी स्थिरता के लिए हव्य पान करें । हे होता ! आप भी इसी निमित्त यज्ञ करें ॥२०॥

१५५०. देवो बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रमवर्धयत् । स्वासस्थमिन्नेणासन्नमन्या बर्हिर्ध्वभ्यध्वभ्यसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥२१॥

पानी के बीच में आलोकित, सुखपूर्वक बैठने योग्य, इन्द्रदेव के आश्रययुक्त अन्याय देव ने इन्द्रदेव को संवर्धित किया । वे अन्नग्रहण वस्तुओं को अधिभुक्त करके, यजमान को ऐश्वर्य देने और उसकी स्थिरता के लिए हव्य पान करें । हे होता ! आप भी इसी के निमित्त यज्ञ करें ॥२१॥

१५५१. देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रमवर्धयत् । स्विष्टं कुर्वन्स्विष्टकृत्स्विष्टमद्य करोतु नो वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥२२॥

श्रेष्ठ कामनाओं की पूर्ति करने वाले अग्निदेव ने इन्द्रदेव को संवर्धित किया । वे आज श्रेष्ठ कर्म करते हुए हमारे लिए उत्तम फल प्रदान करें और यजमान के ऐश्वर्य प्राप्ति और उसकी स्थिरता के लिए हव्य पान करें । हे होता ! आप भी इसी के लिए यज्ञ करें ॥२२॥

१५५२. अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्पक्तीः पचन्पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय छागम् । सुपस्था ऽ अद्य देवो वनस्पतिरथविन्द्राय छागेन । अघसं भेदस्तः प्रति पथताग्रभीदवी वृधत्पुरोडागेन । त्वामद्य ऋषे ॥२३॥

पकने वाली चरु को पकाकर, रोगमशक दुग्ध के निमित्त बकरी को बाँधकर, इस यजमान ने इन्द्रदेव के निमित्त आज अग्नि को ग्रहण किया । वनस्पतिदेव ने आज परिपाक हवि तथा बकरी के दुग्ध को ग्रहण कर (उससे बने) पुरोडाश के द्वारा इन्द्रदेव को समृद्ध किया । हे ऋषियो ! आपको भी आज इसी तरह करना चाहिए ।

१५५३. होता यक्षत्समिधानं महद्यज्ञः सुसमिद्धं करेण्यमग्निमिन्द्रं वयोधसम् । गायत्रीं छन्द ऽ इन्द्रियं त्र्यम्बिं गां वयो दधन्नेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२४॥

दिव्य होता ने गायत्री छन्द, इन्द्रवशति, त्र्यम्बिं गौ (प्रकाश, ऊर्जा, गतियुक्त किरणें) एवं आयुष्य धारण करते हुए, प्रदीप्त, तेजस्वी, महान् यज्ञस्वी, आयुष्य बढ़ाने वाले अग्नि एवं इन्द्रदेव के लिए यजन किया । प्रयाजदेव एवं इन्द्रदेव (हवि को) पान करें । (उन्की कृपा प्राप्ति के लिए) याजकगण हव्य की आहुतियों प्रदान करें ॥२४॥

१५५४. होता यक्षतनूनपातमुद्भिदं यं गर्भमदितिर्दधे शुचिमिन्द्रं वयोवसम् । त्विणां छन्दऽ  
इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयो दधहेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२५॥

दिव्य होता ने, उषिक् छन्द, इन्द्रियवर्तिक, दित्यवाह गौ (यज्ञीय वर्तिका संवर्तित करने वाली किरणें) एवं आयुष्य को धारण करते हुए, अदिति ने जिसे गर्भ में धारण किया, उन आयुष्य बढ़ाने वाले इन्द्रदेव के लिए यजन किया । प्रयाज एवं इन्द्रादि देव (इषि का) पान करें । याजकगण आहुतिर्वां दें ॥२५॥

१५५५. होता यक्षदीडेन्यमोदितं वृज्जहन्तर्षयिडाधिरीडधेऽं सप्तः सोममिन्द्रं वयोवसम् ।  
अनुष्टुभं छन्दऽ इन्द्रियं पञ्चाविं गां वयो दधहेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२६॥

दिव्य होता ने अनुष्टुप् छन्द, इन्द्रियवर्तिक, पञ्चावि गौ (पञ्च पृष्ठों में संवर्तित किरणें) एवं आयुष्य को धारण करते हुए, स्तुतिबोध, स्तुतिर्वां से प्रवर्तित, अन्नन्द प्रदान करने में सोम के सम्पन्न समर्थ, आयुष्य बढ़ाने वाले इन्द्रदेव के लिए यजन किया । प्रयाजदेव इन्द्रादि सहित (इषि का) पान करें । याजक आहुति प्रदान करें ॥२६॥

१५५६. होता यक्षत्सुबर्हिषं पृषण्वन्तपधर्त्तं सीदन्तं बर्हिषि प्रियेयुतेनं वयोवसम् । बृहतीं  
छन्दऽ इन्द्रियं त्रिवत्सं गां वयो दधहेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२७॥

दिव्य होता ने, बृहती छन्द, इन्द्रिय वर्तिक, तीन बछड़ों वाली गाय (जलघर, चुचर, गधघरो को जीघन देने वाली किरणें) एवं आयुष्य को धारण करके, प्रेषण देने वाले, पृषु से चरे, त्रिव, अन्न, रजिष आसन पर स्थापित होने वाले, आयुष्य बढ़ाने वाले इन्द्रदेव के लिए यजन किया । प्रयाजदेव इन्द्रादि सहित इषि का पान करें । याजकगण आहुतिर्वां दें ॥२७॥

१५५७. होता यक्षद्व्यवस्वतीः सुप्रायणाऽ ज्ञावाधो हारो देवीर्हिरण्यपीर्षाणामिन्द्रं  
वयोवसम् । पङ्क्तिं छन्दऽ इहेन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयो दधद्व्यन्ताज्यस्य होतर्यज ॥२८॥

दिव्य होता ने पङ्क्ति छन्द, इन्द्रियवर्तिक, तुर्यवाह गौ (स्वेदक, जडक, उर्ध्विक एवं ब्राम्भ धारों को पोषण देने वाली किरणें) एवं आयुष्य को धारण करके, जिसमें सुविधपूर्वक जाने के स्थान हैं, ऐसे ब्रह्म का विस्तार करने वाली, स्पर्धिम हार के सम्पन्न देवी (यज्ञाग्नि) के माध्यम से आयुष्य बढ़ाने वाले इन्द्रदेव का यजन किया । प्रयाज एवं इन्द्रादि देव इषि का सेवन करें । याजकगण भी आहुतिर्वां दें ॥२८॥

१५५८. होता यक्षत्सुपेशसा सुशित्ये बृहती उधे नक्तोवासा न दर्शते विश्वमिन्द्रं वयोवसम् ।  
त्रिष्टुभं छन्दऽ इहेन्द्रियं षष्ठवाहं गां वयो दधहीतामान्यस्य होतर्यज ॥२९॥

दिव्य होता ने त्रिष्टुप् छन्द, इन्द्रियवर्तिक, षष्ठवाह गौ (प्रकृति के पोषण का भार वहन करने में समर्थ किरणें) एवं आयुष्य को धारण करके, सुन्दररूप एवं शित्य वाली, विश्ववर्तित्व और दर्शनीय एषि एवं उषा के माध्यम से आयुष्य बढ़ाने वाले, सर्वव्यापी इन्द्रदेव के लिए यजन किया । ये दोनों (उषा-एषि) इषि का पान करें । याजकगण भी यजन करें ॥२९॥

१५५९. होता यक्षत्प्रचेतसा देवानामुत्तमं यज्ञो होतारा दैव्या कवी सयुजेनं वयोवसम् ।  
जगतीं छन्दऽ इन्द्रियमन्द्वाहं गां वयो दधहीताज्यस्य होतर्यज ॥३०॥

दिव्य होता ने जगती छन्द, इन्द्रियवर्तिक, सप्त छवि देने वाले कृष (पोषण चक्र को प्रतिरूप बनाने में समर्थ किरणें) एवं आयुष्य को धारण करते हुए, प्रहार जनवृत्त, देवज्ज्वा में प्रवृत्त, वृत्त सम्पन्न, अन्नदर्शी, आयुष्य बढ़ाने वाले इन्द्रदेव का दोनों सहयोगी होतारों सहित यजन किया । प्रयाज एवं इन्द्रदेव इषि का पान करें । याजकगण भी यजन करें ॥३०॥

१५६०. होता यक्षत्पेशस्वनीस्तिस्रो देवीर्हिरण्ययीर्धारतीर्बहतीर्महीः पतिमिन्द्रं वयोधसम् ।  
विराजं छन्दऽ इहेन्द्रियं धेनुं गां न वयो दधत्स्वन्वाज्यस्य होतर्यज ॥३१॥

दिव्य होता ने विराट् छन्द, इन्द्रवशति, दूध देने वाली गौ (धेनु) और (धेनु) एवं आयुष्य को धारण करते हुए, सौन्दर्ययुक्त, स्वर्णकान्ति युक्त, बहुत भण्डारवाली, इष्ट, सरस्वती एवं धारती देवियों सहित, आयुष्य बढ़ाने वाले, पालनकर्ता इन्द्रदेव के निमित्त यजन किया । इन्द्रादिदेव हवि का पान करें । याजकगण भी आहुतियाँ दें ॥३१॥

१५६१. होता यक्षत्सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टियर्धनं छः कृपाधि विधतं पृथक् पुष्टिमिन्द्रं  
वयोधसम् । द्विपदं छन्दऽ इन्द्रियमुक्षाणं गां न वयो दधत्स्वन्वाज्यस्य होतर्यज ॥३२॥

दिव्यहोता ने द्विपदा छन्द, इन्द्रवशति, सिंघन करने वाली गौ (प्रथमवर्क किरणें) एवं आयुष्य को धारण करते हुए, दत्तादन शक्ति से सम्पन्न, विशिष्ट प्रणियों को सेवन देने वाले, पुष्टि को धारण करने वाले त्वष्टादेव एवं आयुष्य बढ़ाने वाले इन्द्रदेव का यजन किया । त्वष्टा एवं इन्द्रदेव हवि का पान करें । याजक आहुति प्रदत्तन करें ॥

१५६२. होता यक्षद्द्वनस्पतिं छः शमितारं छः शतकस्तुं छः हिरण्यपर्णमुक्षिन्नं छः रशनां विधतं  
वशिं भगमिन्द्रं वयोधसम् । ककुषं छन्दऽ इहेन्द्रियं वरुणं वेहतं गां वयो दधत्स्वन्वाज्यस्य  
होतर्यज ॥३३॥

दिव्यहोता ने ककुष छन्द, इन्द्रिय शक्ति, वज्रा एवं वर्षकालिनी गौ (हानिकारक विकिरण से युक्त विकारी की गर्भ में ही नष्ट कर देने वाली किरणें) एवं आयुष्य को धारण करते हुए, हविषों को संस्कारित करने वाली, अनेक कर्मों में प्रयुक्त होने वाली, सुनहले पत्तों वाली, कक्षीय सामर्थ्य से युक्त, रज्जुयुक्त, पनोत्र, सेवन योग्य धनस्पतियों एवं आयुष्य बढ़ाने वाले इन्द्रदेव के लिए यजन किया । वनस्पति एवं इन्द्रदेवता हवि का पान करें । याजकगण हवन करें ॥३३॥

१५६३. होता यक्षत्स्वाहाकृतीरग्निं गृहपतिं पुथम्वरुणं भेषजं कविं क्षत्रमिन्द्रं वयोधसम् ।  
अतिछन्दसं छन्दऽ इन्द्रियं बृहद्वर्धं गां वयो दधत्स्वन्वाज्यस्य होतर्यज ॥३४॥

दिव्यहोता ने, अति छन्दस् नामक छन्द, इन्द्रवशति, गन्ध बलिष्ठ गौ (अद्भुत सामर्थ्ययुक्त किरणें) एवं आयुष्य को धारण करके, त्रत्येक वज्र में वरुण योग्य, ओषधी युक्त, ज्ञानदात्री, स्वाहाधरयुक्त अग्नि एवं आयुष्यवर्धक, रक्षा करने वाले इन्द्र के लिए यजन किया । वज्रान्देव एवं इन्द्रादि देवगण हवि का पान करें । याजकगण आहुतियाँ प्रदान करें ॥३४॥

१५६४. देवं बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्रमवर्धयत् । गावश्चा छन्दसेन्द्रियं वक्षुरिन्द्रे वयो  
दधद्भुसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥३५॥

बर्हिदेव ने गवत्री छन्द द्वारा नेत्रशक्ति, वस्तु, आयुष्य आदि इन्द्रदेव में स्थापित करते हुए आयुष्य बढ़ाने वाले (इन्द्रदेव) को (यज्ञ हवि द्वारा) वृद्धि प्रदान की । यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करने एवं उसे स्थिरता प्रदान करने के लिए बर्हि देव हवि का पान करें । हे होता ! आप भी यजन करें ॥३५॥

१५६५. देवीर्द्वारो वयोधसं छः शुद्धिमिन्द्रमवर्धयन् । उष्णिहा छन्दसेन्द्रियं प्राणमिन्द्रे वयो  
दधद्भुसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥३६॥

'उष्णिक्' छन्द के द्वारा द्वार-देवियों ने प्राण, वस्तु और आयु को इन्द्रदेव में स्थापित करते हुए जीवन दाता श्रेष्ठ (इन्द्र) को वज्र हवि द्वारा समृद्ध किया । यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करने एवं उसे स्थिर बनाने के लिए द्वार देवियाँ हवि का पान करें । हे होता ! आप भी यजन करें ॥३६॥

१५६६. देवी उषासानक्ता देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम् । अनुष्टुभा छन्दसेन्द्रियं  
बलमिन्द्रे वयो दधद्भुसुवने वसुधेयस्य वीता यज ॥३७॥

अनुष्टुप् छन्द के द्वारा उषा और रात्रि दोनों देवियों ने बल, इन्द्रिय और आयुष्य को इन्द्रदेव में स्थापित करते हुए जीवनदाता इन्द्रदेव को हवि द्वारा समृद्ध किया । यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करने एवं उसे स्थिर करने के लिए उषा एवं रात्रिदेवी हवि का पान करें । हे होता ! आप भी यजन करें ॥३७॥

१५६७. देवी जोष्ठी वसुधितो देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम् । बृहत्या छन्दसेन्द्रियं  
श्रोत्रमिन्द्रे वयो दधद्भुसुवने वसुधेयस्य वीता यज ॥३८॥

बृहती छन्द के द्वारा कान्तिप्रयां, परस्पर प्रेम करने वाली, ऐश्वर्य को धारण करने वाली, दोनों अनुयायि देवियों ने श्रवणशक्ति, इन्द्रिय और आयु को इन्द्रदेव में स्थापित करते हुए दिव्य जीवनदाता इन्द्रदेव को यज्ञ हवि द्वारा समृद्ध किया । यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करने एवं उसे स्थिर रख प्रदान करने के लिए दोनों अनुयायि देवियाँ हवि का पान करें । हे होता ! आप भी यजन करें ॥३८॥

१५६८. देवी ऊर्जाहृती दुधे सुदुधे पयसेन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम् । पङ्क्त्या  
छन्दसेन्द्रियं शुक्रमिन्द्रे वयो दधद्भुसुवने वसुधेयस्य वीता यज ॥३९॥

कामनाओ का दोहन और उसका परिपूर्ण करने वाली, टीर्थलपणी, अन्न-वस्तु प्रदान करने वाली दोनों देवियों ने पक्ति छन्द के माध्यम से शुक्र (बोरी), इन्द्रिय और आयुष्य को इन्द्रदेव में स्थापित करके जीवन दाता इन्द्रदेव को यज्ञ हवि द्वारा समृद्ध किया । यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करने एवं स्थिर बनाने के लिए दोनों देवियाँ (ऊर्जा एवं आहुति) हवि का पान करें । हे होता ! आप भी यजन करें ॥३९॥

१५६९. देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम् । त्रिष्टुभा छन्दसेन्द्रियं  
त्विमिमिन्द्रे वयो दधद्भुसुवने वसुधेयस्य वीता यज ॥४०॥

त्रिष्टुप् छन्द के द्वारा दोनों दिव्य इन्द्रियों ने केन्द्र इन्द्रिय और आयुष्य को इन्द्रदेव में स्थापित करते हुए जीवनदाता दिव्य इन्द्रदेव को यज्ञ हवि द्वारा समृद्ध किया । यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करने एवं उसे स्थिर बनाने के लिए दोनों दिव्य होता हवि का पान करें । हे होता ! आप भी यजन करें ॥४०॥

१५७०. देवीस्तिस्वस्तिस्त्रो देवीर्वयोधसं पतिमिन्द्रमवर्धयन् । जगत्या छन्दसेन्द्रियं  
शूषमिन्द्रे वयो दधद्भुसुवने वसुधेयस्य वीतु यज ॥४१॥

जगती छन्द के द्वारा तीनों देवियों (इन्द्र, सरस्वती और वरती) ने बल, इन्द्रिय और आयुष्य को इन्द्रदेव में स्थापित करके, आयु प्रदाता, पोषक इन्द्रदेव को यज्ञ हवि द्वारा समृद्ध किया । यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करने एवं उसे स्थिर करने के लिए तीनों देवियाँ हवि का पान करें । हे होता ! आप भी यजन करें ॥४१॥

१५७१. देवो नराश शसो देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत् । विराजा छन्दसेन्द्रियं  
रूपमिन्द्रे वयो दधद्भुसुवने वसुधेयस्य वीतु यज ॥४२॥

विराट् छन्द के द्वारा देवत्व सम्पन्न बहुप्रशंसित ब्रह्मदेव ने रूप, बल और आयुष्य को इन्द्रदेव में स्थापित करके, आयुष्य प्रदाता दिव्य देवेन्द्र को यज्ञ हवि द्वारा समृद्ध किया । यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करने एवं उसे स्थिर करने के लिए ब्रह्मदेव हवि का पान करें । हे होता ! आप भी यजन करें ॥४२॥

१५७२. देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत् । द्विपदा छन्दसेन्द्रियं भगमिन्द्रे  
वयो दधद्भुसुवने वसुधेयस्य वीतु यज ॥४३॥

द्विपदा छन्द के द्वारा दिव्य वनस्पतिदेव ने सीचाये, इन्द्रिय और आयुष्य को इन्द्रदेव में स्थापित करके, दिव्य जीवन प्रदाता इन्द्रदेव को यज्ञ-हवि द्वारा समृद्ध किया । यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करने एवं उसे स्थिर करने के लिए वनस्पतिदेव हवि का पान करें । हे होत ! आप भी यजन करें ॥४३॥

१५७३. देवो बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रं वयोवसं देवो देवमवर्षयत् । ककुभा छन्दसेन्द्रियं यशऽ  
इन्द्रे वयो दधद्भुसुवने वसुधेयस्य येतु यज ॥४४॥

ककुप् छन्द के द्वारा ज्योत्स्न यक्ष के वक्ष में प्रकाशमान बर्हिदेव ने वसु, इन्द्रिय और आयुष्य को इन्द्रदेव में स्थापित करके दिव्य जीवन प्रदाता इन्द्रदेव को यज्ञ-हवि द्वारा समृद्ध किया । यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करने एवं उसे स्थिर करने के लिए बर्हिदेव हवि का पान करें । हे होत ! आप भी यजन करें ॥४४॥

१५७४. देवो अग्निः स्वितृकृहेवमिन्द्रं वयोवसं देवो देवमवर्षयत् । अतिच्छन्दसा  
छन्दसेन्द्रियं अग्रमिन्द्रे वयो दधद्भुसुवने वसुधेयस्य येतु यज ॥४५॥

अतिच्छन्दस् छन्द के द्वारा अग्र कर्ष करने वाले दिव्य अग्निदेव ने स्वितृकर्ष, इन्द्रिय और आयुष्य को इन्द्रदेव में स्थापित करके दिव्य जीवन के दाता इन्द्रदेव को यज्ञ-हवि द्वारा समृद्ध किया । यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करने एवं उसे स्थिर करने के लिए अग्निदेव हवि का पान करें । हे होत ! आप भी यजन करें ॥४५॥

१५७५. अग्निमद्य होतारमवृणीताय यजमानः पचन्पत्नीः पचन्पुरोडाशं बध्नन्निन्नाथ  
वयोवसे छागम् । सूपस्त्रा ऽ अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय वयोवसे छागेन । अद्यत्  
मेदस्तः प्रतिपद्यताय धीदवीमृषत्पुरोडाशेन । स्वाभद्य ऋषे ॥४६॥

पकने योग्य सब को पकाकर, आयुर्वर्धक, रोगनाशक दुग्ध के निमित्त बकरी को (गृध्र में) बाँधकर, इस यजमान ने इन्द्रदेव के निमित्त बक्रीय प्रक्रिया के रूप में अग्नि को, वनस्पतिदेव ने परिपाक हवि-पुरोडाश तथा बकरी के दुग्ध को ग्रहण कर उसके द्वारा इन्द्रदेव को समृद्ध किया । हे ऋषे ! आप आज ऐसा यज्ञ करें ॥४६॥

### —ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि—प्रजापति, अधिनीकुम्भर, सरस्वती १ २२ २४-४५ । स्वाम्य अग्नेव २३, ४६

देवता—इध्न १ । अनुसक्त २ २५ । इड ३, २६ । बर्हि ४, १२, २१ २७, ३५, ४४ । होत ५, १३, २८, ३६ ।  
उवासानक्त ६, १४, २९, ३७ । दिव्य होतमन् ७, ३०-४० । तीन देविनी ८, १८, ३१-४१ । त्वष्टा ९, ३२ । वनस्पति  
१० ३३, ४३ । स्वाहाकृति ११, ३४ । छान्द-पुष्पिणी अथवा अश्वराज १५, ३८ । इन्द्र [ वैदिक यन्त्रालय, अजमेर  
की संहिता के अनुसार ] १६, ३९ । पार्थिवग्नि १७ । बड १९ । गृध्र २० । स्वितृकृत् अग्नि २२ । लिगोक्त  
२३, ४६ । सधित् २४ । स्यासंस ४२ । स्विष्टकृत् ४५ ।

छन्द—निवृत् त्रिष्टुप् १, ४, २२ । निवृत् अतिजगती २, ५, ९, १२, ४२, ४३ । स्वराट् पंक्ति ३, १४ । त्रिष्टुप्  
६, २१ । जगती ७ । निवृत् जगती ८ । स्वराट् अतिजगती १० २७, ४५ । निवृत् सक्वरी ११, २६, ३९ । भुरिक्  
सक्वरी १३, ३०, ३१ ३२ । भुरिक् अतिजगती १५, २५, ३७, ३८, ४४ । भुरिक् आकृति १६ । भुरिक् जगती  
१७, ४१ । अतिजगती १८, ४० । कृति १९, २३ । निवृत् अतिजगती २० २९ । स्वराट् जगती २४ । स्वराट्  
सक्वरी २८ । निवृत् अत्यष्टि ३३ । अतिजगती ३४ । भुरिक् त्रिष्टुप् ३५, ३६ । आकृति ४६ ।

॥ इति अष्टाविंशोऽध्यायः ॥



## ॥ अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥

१५७६. समिद्धोऽब्जन् कदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत्पिन्वमानः । वाजी वहन् वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सप्तस्थम् ॥१॥

हे सर्वज्ञाता आग्ने ! आप विधिवत् ऋज्वलित होकर मेघवर्षा के हृदयगत भाव को व्यक्त करते हुए पौष्टिक तथा मधुर घृत का सेवन करें । वह एवि को देवगणों के निमित्त ले जाते हुए उनके प्रिय सहचरों को प्रदान करें ॥१॥

१५७७. घृतेनाब्जन्सं पयो देवयानान् प्रजानन् वाज्यप्येतु देवान् । अनु त्वा सपे प्रदिशः सप्तन्तांश्च स्वधामस्यै यजमानाय धेहि ॥२॥

यह वाजी (शक्तिशाली-शक्तिवर्द्धक-वायुघृत हव्य) यज्ञीय प्रक्रिया को सम्पन्नता हुआ देवगणों के जाने योग्य मार्ग का घृत द्वारा अभिषिचन करता हुआ, देवगणों को प्राण्य हो । हे अब (ऊर्जारूप सूक्ष्मीकृत हव्य) ! सभी दिशाओं में रहने वाले प्राणी आपको जाते हुए अनुभव करें । आप इस यजमान को स्वधा (स्फूर्तिधारण की क्षमता या बुद्धि) प्रदान करें ॥२॥

१५७८. ईक्ष्वांसि वन्द्यश्च वाजिप्राशुश्चासि मेघ्यश्च सपे । अग्निह्वा देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीतं वक्षि वहतु जातवेदः ॥३॥

हे वाजिन् (सूक्ष्मीकृत बलशाली हव्य) ! आप ऋज्वीर तथा वन्दनीय होकर, तोड़ ही शुद्ध हों । वसुदेवों से प्रेम करने वाले, आत्मज्ञानी अग्निदेव, प्रसन्न होकर आपको देवगणों के निकट ले जाएँ ॥३॥

१५७९. स्तीर्णं बर्हिः सुहृदीमा जुषाणोक्तं पृथु प्रजमानं पृथिव्याम् । देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कण्वानां सुविते दधातु ॥४॥

देवी सम्पदाओं से युक्त, सर्वमूल्य और सुखदायी अदितिदेवी पृथ्वी के विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए कुल-आसन पर बैठकर श्रेष्ठ जनों को वस प्रदान करें ॥४॥

१५८०. एता ऽ उ वः सुपगा विश्वरूपा वि पक्षोभिः त्रयमाणा ऽ उदातैः । ऋष्याः सतीः कवचः शुष्ममाना द्वारो देवीः सुप्रायणा भवन्तु ॥५॥

(हे यजमानो ! ) यह दिव्यद्वार (सूक्ष्म जगत् से सम्पर्क करने वाले) श्रेष्ठ धनयुक्त, सुन्दर, लम्बे आकार वाले, पंख के समान फटक वाले, आवागमन में उपयोगी, खोलने-बन्द करने पर श्रेष्ठ ध्वनि करने वाले, शोभावाले, सरलता से ले जाएँ अग्ने योग्य और दूसरी विशेषताओं से सम्पन्न कपाटों से सुशोभित हों ॥५॥

१५८१. अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामग्निं संविदाने । उषासा वांश्च सुहिरण्ये सुशिल्पे ऋतस्य योनाविह सादयामि ॥६॥

घुत्तोक और पृथ्वी के बीच में विचरने वाली, सम्पूर्ण जलैव व्यवहारों के विषयवस्तु को प्रकाशित करने वाली, श्रेष्ठ ज्योति सम्पन्न, कुशल शिल्पकारों द्वारा विनिर्मित, हे उषा और ऋत देवियो ! हम ईश्वर के स्थान रूप इस यज्ञ में आपको स्थापित करते हैं ॥६॥

१५८२. प्रथमा वाद्यं सरस्विना सुवर्णा देवी पश्यन्तौ धुवनानि विश्वा । अपिप्रयं चोदना वा  
मिमाना होतारा ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥७॥

समान रथ वाले, सुन्दर स्वर्णयुक्त कर्ण वाले, समस्त क्षेत्रों को देखने (चलने) वाले आप दोनों (अग्नि तथा वायु) सभी लोगों को निजकर्म में संलग्न करते हैं । सभी दिशाओं को प्रकाशित करने वाले आप दोनों दिव्य होतारों को हमने प्रसन्न किया ॥७॥

१५८३. आदित्यैर्नो भारती यष्टु यज्ञं सरस्वती सह रुद्रैर्नऽ आवीत् । इन्द्रोपहृता वसुभिः  
सज्जोषा यज्ञं नो देवीरभुतेषु धत्त ॥८॥

देवी भारती आदित्यों के साथ हमारे यज्ञ की रक्षा करें, वसुओं और रुद्रों के साथ देवी इन्द्र तथा सरस्वती हमारे यज्ञ की रक्षा करें, हम उनका आवाहन करते हैं । हे देवियों ! आप हमारे यज्ञ को देवों में स्थापित करें ॥८॥

१५८४. त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुरवां जायत आशुरक्षः । त्वष्टेदं विश्वं धुवनं जजान  
बहोः कर्तारमिह यक्षि होतः ॥९॥

त्वष्टादेव ने दिव्यगुणों की कामना करने वाली और सन्तानों को उत्पन्न किया । उन्होंने ही शीघ्रगामी और सम्पूर्ण दिशाओं में व्याप्त होने वाला अश्व (सूर्य) उत्पन्न किया । हे योजक ! आप बहुविध विराट् जगत् के निर्माता, उस परमात्मा का इस स्थान में (यज्ञशाला में) बजन करें ॥९॥

१५८५. अश्वो घृतेन त्वन्या सघक्त उप देवाँर क्रतुशः पाचऽ एतु । वनस्पतिर्देवलोकं  
प्रजानमग्निना हव्या स्वदितानि वक्षत् ॥१०॥

घृत द्वारा भस्मी प्रकार सिंचित हुआ अश्व (सूक्ष्मीकृत हव्य) अन्नकण इन्हीं से युक्त, निरामपूर्वक देवों के पास पहुँचे । देवलोक को जलने वाले वनस्पतिदेव अग्नि के माध्यम से ग्रहणीय हवि अन्य देवों को प्राप्त कराएँ ॥१०॥

१५८६. प्रजापतेस्तपसा बाधुधानः सद्यो जातो दधिधे यज्ञयग्ने । स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा  
याहि साम्या हविरदन्तु देवाः ॥११॥

हे अग्ने ! आप अग्नि-मन्त्रन से तत्काल प्रकट होकर प्रजापति की वधुधर्मों से नृदि को प्राप्त करते हुए, यज्ञ को धारण करते हैं । स्वाहाकर पूर्वक समर्पित हवि द्वारा अन्नगामी होकर आप भवार, जिससे साम्य देवता हमारी हवि को ग्रहण करें ॥११॥

१५८७. यदक्रन्दः प्रथमं जायमानऽ उहन्तसमुद्रादुत वा पुरीषात् । श्येनस्य पक्षा हरिणस्य  
बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥१२॥

हे अर्वन् ! (चंचल गतिवाले ! ) कछा के पंखों तथा हिरन के पैरों की तरह गतिशील आप जब प्रथम, समुद्र से उत्पन्न हुए, तब उत्पत्ति स्थान से प्रकट होकर अन्न क्रन्द करने लगे, तब आपकी महिमा स्तुत्य हुई ॥१२॥

[ यहाँ चंचल गतिवाले ज्ञान-कर्मवन्त के कर्म के निम्न अर्वन् लब्धोक्त अधिक सार्थक सिद्ध होता है । ]

१५८८. यमेन दत्तं त्रित एनपायुनगिन्द्रऽ एषं प्रथमो अध्यतिष्ठत् । गन्धर्वो अस्य  
रशनामगृध्णात् सूरदश्च वसवो निरतह ॥१३॥

वसुओं ने सूर्यमण्डल से अन्न ( तोषणति से संकलन करने वाली ऊर्जा रश्मियों ) को निकाला । तीनों लोकों में विचरने वाले वायु ने यम के द्वारा प्रदान किये गये अन्न को रथ में ( कर्म में ) नियोजित किया । सर्वप्रथम इस अन्न पर इन्द्रदेव चढ़े और गन्धर्व ने इसकी लगभग सँकलने (ऐसे अन्न की हथ स्तुति करते हैं ) ॥१३॥

**१५८९. आस यमो अस्यादित्यो अर्वत्रसि त्रितो गुह्येन चतेन । असि सोमेन समया विपुक्तऽ  
आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥१४॥**

हे अर्वन् ! अपने गुप्त वतों (जो प्रकट नहीं हैं, ऐसी विशेषताओं) के कारण आप यम हैं, आदित्य हैं, त्रित (तीनों लोकों अथवा तीनों आयामों) में संख्यापत हैं। सोम (पांचक ज्वाह) के साथ आप एकरूप हैं। ध्रुव लोक में स्थित आपके तीन बन्धन (शुक्र, यजु, सामरूप) कहे गये हैं ॥१४॥

{विज्ञान का सर्वमान्य नियम है कि किसी निष्क को निरार करने के लिए तीन दिग्गजों से संतुष्टि नहीं पाईए। इन दिग्गजों को 'इक्वलीमायन ऑफ वी फोर्स' (तीन शक्तियों का समतन) एवं ट्रायेंगल ऑफ फोर्स (त्रिक बिन्दु), कहते हैं। संयोजक ज्ञान अपनी सूक्ष्म दृष्टि से अनर्गल से भी कहीं निष्कल निष्कर्ष निकाल लेता देखते हैं।

**१५९०. त्रीणि तऽ आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे । उतेव मे  
चरुणश्चन्त्यर्वन् यत्रा तऽ आहुः परमं जनित्रम् ॥१५॥**

हे अर्वन् (चंचल प्रकृति वाले) ! आपका श्रेष्ठ उत्पत्तिक सूर्य कल भवा है। दिव्यलोक में, जल तथा अन्तरिक्ष में आपके तीन तीन बन्धन कहे गये हैं। आप चरुणरूप में हमारी प्रशंसा करते हैं ॥१५॥

**१५९१. इमा ते वाजिन्रवमार्जनानीमा शफानाथं सनितुर्निधाना । अत्रा ते धरा रशनाऽ  
अपश्यन्तस्य चाऽ अभिरक्षन्ति गोषाः ॥१६॥**

हे वाजिन् (चलशास्त्री पेश) आपके मार्जन (सिंचन) करने वाले साधनों को हम देखते हैं। आपके खुरों (धाराओं के आपात) से खुदे हुए वह स्थान देखते हैं। वहाँ आपके कल्याणकारी रज्जु (निषेधक सूत्र) हैं, जो रक्षा करने वाले हैं, जो कि इस जल (सनातन सत्य-यज्ञ) की रक्षा करते हैं ॥१६॥

**१५९२. आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् । शिरो अपश्यं पथिभिः  
सुगेभिररेणुभिर्जहमानं पतन्नि ॥१७॥**

हे अह (तीव्र गति से संचार करने वाले वायुमृत हव्य) ! नीचे के स्थान से आकाश मार्ग द्वारा सूर्य की तरफ जाते हुए आपकी आत्मा को हम विचारपूर्वक जानते हैं। सरलतापूर्वक जाने योग्य, बलिरहित मार्गों से जाते हुए आपके नीचे की ओर आने वाले सिरों (श्रेष्ठ भागों) को भी हम देखते हैं ॥१७॥

**१५९३. अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिव ऽ आ पदे गोः । यदा ते मर्तो अनु  
भोगमानडादिद् प्रसिष्ठ ऽ ओषधीरजीगः ॥१८॥**

हे अह (तीव्र गति से संचार करने वाले वायुमृत हव्य) ! आपके वज्र की कामना वाले श्रेष्ठ स्वरूप को हम सूर्य मंडल में विद्यमान देखते हैं। यज्ञमन्त्र ने जिस समय उत्तम हवियों को आपके विमित समर्पित किया, उसके बाद ही आपने हव्यरूप ओषधियों को ग्रहण किया ॥१८॥

**१५९४. अनु त्वा रथो अनु मयों अर्वत्रनु गावोनु धगः कनीनाम् । अनु व्रातासस्तव  
सख्यमीयुरनु देवा भमिरे वीर्यं ते ॥१९॥**

हे अर्वन् (चंचल प्रकृतिकाले यज्ञमन्त्र) 'रथ (मन्त्रेरथ) आपके अनुग्रही हैं। आपके अनुगामी मनुष्य, कन्याओं का सौभाग्य तथा गौरव हैं। मनुष्य समुदाय ने आपकी मित्रता की प्राप्त किया तथा देवगणों ने आपके शौर्य का वर्णन किया है ॥१९॥

**१५९५. हिरण्यशृङ्गोयो अस्य पादा मनोजक्ताऽ अवरऽ इन्द्रऽ आसीत् । देवाऽ इदस्य  
हविरहामाथन् यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥२०॥**

सबसे पहले स्वर्ण मुकुट धारण करके अश्व भर आरुढ़ होने वाले इन्द्रदेव थे । इस अश्व के पैर लोहे के समान दृढ़ और मन के सदृश वेगवान् हैं । देवताओं ने ही इसके हविरूप भोजन को ग्रहण किया ॥२०॥

१५९६. ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सश्रेण शूरणासो दिव्यासो अत्याः । हृथसाऽ इय श्रेणिशो यतन्ने यदाक्षिषुर्दिव्यमज्यमन्त्राः ॥२१॥

जब पुष्ट अंशों और वध खाते, मध्य पाव में पतते, कलसानी, सूर्य के रथ को खींचने वाले और लगातार चलने वाले अश्व (किरण) पत्तिबद्ध होकर हथों के समान चलते हैं, तब वे स्वर्गमार्ग में दिव्यता को प्राप्त होते हैं ।

१५९७. तव शरीरं पतयिष्यत्सर्वन्तव चित्तं वातऽ इव श्रज्जीमान् । तव शृङ्गाणि विष्टिता पुरुवारण्येषु जर्धुराणां चरन्ति ॥२२॥

हे अर्बन् (चञ्चल प्रकृति वाले अग्निदेव) ! आपका शरीर ऊर्ध्वगमन करने वाला और चित्त वायु के समान वेगवाला है । आपको विशेष प्रकार से स्थित दीप्तियाँ कन्ध में दाढ़ानल के रूप में व्यपन्न हैं ॥२२॥

१५९८. उप प्रागात्कृत्स्नं वाज्यर्वा देवद्रीषा मनसा दीभ्यानः । अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभः ॥२३॥

यशस्वी मन के समान तीव्र गति से चलावमान तेजस्वी अश्व (सूक्ष्मीकृत हव्य) ऊपर की ओर देव मार्ग को जाता है । अज (अर्थात् कृष्ण वर्ण घुड़) आगे चलता है । (सूक्ष्मीकृत हव्य का) नाभि (नाभिक-शुक्लियस-मुख्य भाग) उसका अनुगमन करता है । पीछे-पीछे पाठ करते हुए स्तोता चलते हैं (पंजे का पाठ होता है) ॥२३॥

१५९९. उप प्रागात्परमं यत्सद्यस्यमर्वा २ अच्छा पितरं यातरं च । अद्या देवाऽजुहोतमो हि गम्याऽ अद्या शास्ते दाशुषे वार्याणि ॥२४॥

ये शक्तिशाली अर्बन् (चञ्चल प्रकृति वाले सूक्ष्मीकृत हव्य) सर्वश्रेष्ठ उच्च स्थान को प्राप्त करके पालक और सम्माननीय माता-पिता (दावा-पृथिवी) से मिलते हैं । हे याजक ! आप की सदगुणों से मुशोभित होते हुए देवत्व को प्राप्त करें । देवताओं से अपार वैभव उपलब्ध करें ॥२४॥

१६००. समिद्धो अश्व मनुषो दुरोणे देवो देवान् वजसि जातवेदः । आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्तं दूतः कविरसि प्रचेतः ॥२५॥

प्राणिमात्र के हितैषी हे मित्र अग्निदेव ! आप प्रज्वलित और मखन कुल सम्पन्न होकर कुशल यात्रकों द्वारा निर्धारित यज्ञ मण्डप में देवों को आहूत करें तथा यज्ञ करें । आप श्रेष्ठ चेतन युक्त, विद्वान् तथा देवों के दूत हैं ॥

१६०१. तनूनपात्यथ ऽ ऋतस्य वानान्मन्त्रा समञ्जन्तवदवा सुविद्ध । मन्त्रानि वीभिस्त यशमन्धन् देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥२६॥

हे शरीर के रक्षक और श्रेष्ठ कर्मी वाले अग्ने ! आप सत्त्वरूप यज्ञ के मार्गों को वाह्याधुर्व से सींचते हुए, हवियों को ग्रहण करें । बुद्धियों द्वारा मनपूर्वक यज्ञ को समृद्ध करें । हमारे यज्ञ को देखें तक पहुँचने योग्य बनाएं ।

१६०२. नराशंशसस्य महिमानमेषामुष स्तोत्राम यजतस्य यज्ञैः । ये सुक्रतवः शुचयो धियन्त्राः स्वदन्ति देवाऽ तमयानि हव्याः ॥२७॥

हम यज्ञों से पूजित, मनुष्यों द्वारा प्रशंसित, अग्निदेव की पहिमा का मान करते हैं । शुभ कर्मयुक्त पवित्र बुद्धि सम्पन्न देवता, दोनों प्रकार की हवियों (स्थूल एवं सूक्ष्म) से यज्ञ करते हैं ॥२७॥

१६०३. आजुहान ऽ ईव्यो यन्वासा वाहाम्ने वसुभिः सजोषाः । त्वं देवानामसि यज्ञ होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥२८॥

देवताओं को आहुत करने वाले हे आग्ने ! आप जार्जन करने योग्य, वन्दनीय तथा वसुओं के समान प्रेम करने वाले हैं । अतः आप देवताओं के होता के रूप में यहाँ रहकर कर उनके लिए यज्ञ करें ॥२८॥

१६०४. प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या सृज्यते अग्रे अह्नाम् । व्यु प्रयते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥२९॥

कुशकण्टिका के रूप में यह बिछी हुई कुम्हार बहुत ही उत्तम हैं । यह देवताओं तथा अदिति के निमित्त सुखपूर्वक आसीन होने के योग्य हैं । यह यज्ञवेदी को ढकने के लिए फैलायी जाती है ॥२९॥

१६०५. व्यचस्यतीरुर्विया वि अयन्तां पतिभ्यो न जनयः सुम्भमानाः । देवीर्हरो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥३०॥

वैसे पतिवता स्त्रियाँ अपने पति के निमित्त अनेक प्रकार से पति (काजी) करने वाली तथा सुसोपित होकर विश्रान्ति प्रदान करती हैं, वैसे ही देवत्व सम्पन्न बहान् द्वार-देवियाँ रित्त स्नान वाली, सबको अपने-आने के लिए मार्ग देने वाली तथा देवगणों को सुगन्ध से ज्ञात होने वाली हों ॥३०॥

१६०६. आ सुच्ययन्ती यजते ज्या के उपासान्ता सदतां नि योनी । दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अभि श्रियंश्च शुक्रपिशां दधाने ॥३१॥

श्रेष्ठ रीति से अपना कार्य सम्पन्न करने वाली, एक दूसरे के समीप दिव्यवज्र स्नान में रहने वाली, श्रेष्ठ अभ्युषणों से सम्पन्न, शुक्ल तथा कपिश (पूरा) वर्ण से सुसोपित तथा और नरक दोनों देविणी इस वज्र स्नान में भली प्रकार से प्रतिष्ठित हैं ॥३१॥

१६०७. दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा निमाना यज्ञं मनुषो यज्यन् । प्रचोदयन्ता विद्वेषु काक प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥३२॥

विशद प्रकृति यज्ञ के दोनों दिव्यहोतार श्रेष्ठ काजी बोलने वाले हैं । वे पूर्व दिशा से निकलने वाले, ज्ञानदान करने योग्य पुरातन सूर्यरूप ज्योति से यज्ञ करते हैं । मनुष्यों को यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्म करने की प्रेरक प्रदान करते हैं ॥३२॥

१६०८. आ नो यज्ञं भारती नृयमेत्विहा मनुष्यदिह चेतयन्ती । तिस्रो देवीर्बहिरिदंश्च स्योनश्चसरस्वती स्वपस्व सदन्तु ॥३३॥

यहाँ इस यज्ञ में मनुष्यों को ज्ञान और कर्म का समान ज्ञेय करने वाली भारती, इहा तथा सरस्वती तीनों देविणी शीघ्रता से पधारकर कुश से निर्मित इस कोमल आसन पर आसीन हों ॥३३॥

१६०९. य ऽ इमे छावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंश्चन्द्रवनानि विश्वा । तमद्य होतमिथितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥३४॥

हे यज्ञ करने वाले मेधावी विद्वान् होता ! अब आप इस यज्ञ में त्वष्टादेव का पूजन करें, जो सुलोक, पृथ्वीलोक तथा अन्य समस्त लोकों का निर्माण करके उसका स्वरूप प्रकट करते हैं ॥३४॥

१६१०. उपावसुज त्मन्या समरुजन् देवानां पाथऽ ऋजुया इवींश्च वि । यनस्यतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥३५॥

हे याजक ! आप यज्ञ करते समय देवताओं को समर्पित किये जाने वाले हव्य को मधुर रस तथा घृत से सिंचित करते हुए आहुतिर्वा प्रदान करें । जनस्मृति, शक्ति तथा अग्निदेव उन दिव्य हवियों को ग्रहण करें ॥३५॥  
[ याम के विधानों में संक्रम (संधि) कार्य को सम्पन्न करने वाले व्यक्ति को शक्ति कहते हैं । ]

१६११. सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः । अस्थ होतुः प्रदिश्युतस्य वाचि स्वाहाकृतश्च हविरदन्तु देवाः ॥३६॥

उत्पन्न होते ही देवताओं का नेतृत्व करने वाले हे अग्निदेव ! आप देवताओं का आवाहन करने वाले तथा पूर्व दिशा में दिव्य ज्योतिरूप से स्थित हैं । आपके मुख में स्वाहाकार रूप से समर्पित आहुति देवगण ग्रहण करें ॥

१६१२. केतुं कृष्वन्नकेतवे पेशो मर्याऽअपेशसे । समुषश्चिरजायधाः ॥३७॥

अज्ञानी पुरुषों को सद्ज्ञान और रूपहीनों को सुन्दर स्वरूप प्रदान करने वाले हे अग्निदेव ! आप उषा के साथ समानरूप से उत्पन्न होते हैं ॥३७॥

१६१३. जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्धर्मी याति समदामुपस्थे । अनाविद्ध्या तन्वा जघ्नत्सं स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥३८॥

कवच को धारण करके जब शूरवीर बौद्धा संग्राम स्थल के लिए जाते हैं, तब सेना का स्वरूप बादल के सदृश होता है । हे वीरपुरुष ! आप किन्तु अज्ञ हो विजय को प्राप्त करें उस कवच की महान् शक्ति आपकी रक्षा करे ॥३८॥

१६१४. धन्वना गा धन्वनाग्निं जयेष धन्वना तीक्षाः समदो जयेम । धनुः शशोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥३९॥

हम धनुष की शक्ति से गौओं को जीते, मार्ग और संक्रम में विजय प्राप्त करें । हमारा धनुष शत्रु को पराजित करता है, ऐसे धनुष की महिमा से सभी दिशाओं को जीते ॥३९॥

१६१५. वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं चरिषस्वजाना । घोषेव शिङ्गुर्ले वितताग्निं धन्वञ्ज्या इयं सधने पारयन्ती ॥४०॥

संग्राम में विजय दिलाने वाली शरणा धनुष पर चढ़कर अज्वल अग्नि करती हुई, प्रिय बाणरूप मित्र से मिलती है । वह घोड़ा के कानों तक सिंचती हुई ऐसे शरीर लेती है, माने कुछ कहना चाहती है ॥४०॥

१६१६. ते आचरन्ती समनेष योषा मातेष पुत्रं विष्मतामुपस्थे । अप शत्रून् विध्यताथं संविदाने आर्त्ती इमे विष्मरन्ती अमित्रान् ॥४१॥

समान विचार वाली स्त्री की की तरह आकर शत्रुओं को टंकार से संकेत करने वाली यह धनुष की दौरी अपने बीच में बाण को उसी प्रकार धारण करती है, जैसे माँ अपने पुत्र को गोद में ग्रहण करती है । यह धनुष की दौरी शत्रुओं का संहार करे ॥४१॥

१६१७. बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य । इषुभिः सङ्गुः पृतनश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥४२॥

यह तरकस अनेकों बाणों का पिता (रक्षक) है । अनेकों बाण पुत्र की तरह इसके आश्रय में रहते हैं । युद्ध भूमि में जाकर ये पुत्रवत् बाण चीत्कार करते हैं । पीठ पर बैठा हुआ यह तरकस आज्ञा मिलने पर सेना के समस्त योद्धाओं पर विजय प्राप्त करता है ॥४२॥

१६१८. रथे तिष्ठन् नयति वाजिनः पुरो यत्र-यत्र कामयते सुचारुधिः । अभीशूनां महिमानं  
धनायतं मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥४३॥

रथ पर आरुढ़ हुआ सारथी जहाँ-जहाँ भी जाना चाहता है, आगे जुड़े अश्वों को इच्छानुसार ले जाता है  
वह बागदोर भी प्रशंसनीय है, जो पीछे स्थित होकर अश्वों के मन को अपने कानू में रखती है ॥४३॥

१६१९. तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयोक्ष्ण रथेभिः सह वाजयन्तः । अवकामन्तः  
प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रून् रणपथ्ययन्तः ॥४४॥

अश्वों की लगाम जिनके हाथ में है ऐसे सारथी उच्च अवयोजन करते हैं तथा शत्रुओं के साथ बल लगाकर  
चलने वाले घोड़े अपने खुरों से शत्रुओं को घायल करते हैं । वे अश्व स्वर्ग सुरक्षित रहकर शत्रुओं का  
विनाश करते हैं ॥४४॥

१६२०. रथसाह्वणाधः हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य धर्मः । तत्रा रथमुप शग्मध्वं सदेम  
विद्याह्ना वयध्वं सुमनस्यमानाः ॥४५॥

जहाँ इस घोड़े के कवच तथा अस्त्र-शस्त्र रखे रहते हैं, इस वाहन का नाम रथ-वाहन है । अनुकूल विचारों  
से युक्त हम इस सुखकारी रथ को स्थापित करते हैं ॥४५॥

१६२१. स्वादुवध्वंसदः पितरो वयोधः कृच्छ्रेभितः शक्तीवन्तो गभीरः । धिप्रसेनाऽ  
इषुबलाऽ अमृषाः सतोवीराऽ उरवो व्रतसाह्वः ॥४६॥

आराम से (देर तक) आसीन रहने वाले, रक्षा करने वाले, आयु को धारण करने वाले, सहनशील, बल-सम्पन्न,  
गम्भीर, श्रेष्ठ सेना-युक्त, अस्त्र-शस्त्रों सहित, विशालकाय और शत्रु-सैनिकों का सामना करने वाले हमारे श्रेष्ठ रथ  
रक्षक हों ॥४६॥

१६२२. ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो सावापुधिवी अनेहसा । पूषा नः पानु  
दुरितादृतावृषो रक्षा माकिर्नो अघज्ञध्वंस ईशत ॥४७॥

ब्रह्मनिष्ठ जीवन जीने वाले ब्राह्मण सोमरस का चम करने वाले पितर और कल्याण करने वाले देवगण तथा  
अपराधों को रोकने में सक्षम शाला और पृथिवी हमारी रक्षा करें । वे पूषादेव अपराधों से हमारी रक्षा करें और  
कोई भी पापी व्यक्ति हमारे ऊपर शासन न करे ॥४७॥

१६२३. सुपर्ण वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता । यत्रा नरः सं ज वि  
ष द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषकः शर्म यध्वंसन् ॥४८॥

जो बाण पक्षी के पंख को धारण करता है, जिसका फलक शत्रुओं को खोजने वाला है । शत्रु से बँधा हुआ  
वह रिपुओं पर गिरता है । बुद्धिबल पर जहाँ खीर घोड़ा श्वर-उत्तर जाते हैं, वहाँ पर यह कण हमारे लिए  
कल्याणकारी हो ॥४८॥

१६२४. ऋज्जीते परि वृङ्गिष नोश्मा भवतु नस्तनूः । सोमो अधि ब्रवीतु नोदितिः शर्म  
यच्छतु ॥४९॥

हे ऋजुगामी बाण ! आप हमारे ऊपर मत गिरो । हमारा शरीर पत्थर के सदृश मजबूत हो । सोमदेव  
अनुकूल होते हुए हमारी स्तुति का अनुष्ठान करें तथा देवताता अदिति हमारे लिए कल्याणकारी प्रेरणाओं को  
प्रेषित कर, हमें प्रसन्नता प्रदान करें ॥४९॥

१६२५. आ जहन्ति सान्देषा जघनोऽप्य विघ्नते । अश्वाजनि प्रचेतसोश्चान्समत्सु  
चोदय ॥५०॥

हे अश्वों के प्रेरक कशा (जानुक) ! आप युद्ध में शौर्य सम्पन्न पर्वस करते अश्वों को प्रेरित करें । आपके द्वारा ही अश्वरोही वीर इन अश्वों के ऊपर हुए अंग को आपकृत करते हैं तथा जंघाओं को चोट पहुँचाते हैं ॥५०॥

१६२६. अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेति परिबाधमानः । हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि  
विद्वान् पुमान् पुमाथ्सं परि पातु विघ्नतः ॥५१॥

प्रत्येका के प्रहार को हटाता हुआ, स्वयं की रक्षा करने वाले कार्य खेदक बाहु से वैसे ही लिपटता है, जैसे बाहु से सोंप । इसी प्रकार सम्पूर्ण युद्ध कौशल को जानने वाला औरपुरुष अपने नगर वासियों को भली प्रकार से सुरक्षित रखता है ॥५१॥

१६२७. वनस्पते वीड्यङ्गो हि धूयाऽ अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः । गोभिः सज्जद्धो असि  
वीड्यस्वास्थाता से जयन्तु जेत्वानि ॥५२॥

काष्ठ निर्मित हे रथ ! आप हमारे मित्र होकर, पञ्चवृत्त अंग तथा श्रेष्ठ योद्धाओं से सम्पन्न होकर संकटों से हमें पार लगाएँ । आप श्रेष्ठ चर्य द्वारा बंधे हुए हैं । इसलिए वीरतापूर्ण कार्य करें । हे रथ ! आपका सवार जीतने योग्य समस्त वैभव को जीतने में समर्थ हो ॥५२॥

१६२८. दिक् पृथिव्याः पर्योज्य द्धतं वनस्पतिभ्यः पर्याभूतं सः । अपामोज्मानं परि  
गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं वज्र ॥५३॥

हे अध्वर्युगण ! आप पृथ्वी और सूर्यलोक से ग्रहण किये गये तेज को, वनस्पतियों से प्राप्त बल को, जल से प्राप्त पराक्रम वाले रस को सब तरफ से नियोजित करें । सूर्य किष्कि से आलोकित, वज्र के समान सुदृढ़ रथ को यजन कार्य में समर्पित करें ॥५३॥

१६२९. इन्द्रस्य वज्रो यस्तामनीकं भिन्नस्य गधो वरुणस्य नाभिः । सेमां नो हव्यदातिं  
जुषाणो देव रथं प्रति हव्या गुषाथ ॥५४॥

हे दिक्व रथ ! आप इन्द्रदेव के वज्र तथा मर्त्यों की सैन्यशक्ति के समान सुदृढ़ हैं । मित्रदेव के गर्भरूप आत्मा तथा वरुणदेव को नाभि के समान है । हमारे द्वारा समर्पित इत्किष्किन् को प्राप्त कर तृप्त हों ॥५४॥

१६३०. उप आसय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्टितं जगत् । स दुन्दुभे सज्जुरिन्नेण  
देवैर्दूराद्वीयो अप सेध शत्रून् ॥५५॥

हे दुन्दुभे ! आप अपनी ध्वनि से भू तथा दिव्यलोक गुंजावमान करें, जिससे जंगम तथा स्थावर जगत् के प्राणी आपको जानें । आप इन्द्रदेव तथा दूसरे देवगणों से श्रेष्ठ करने वाली हैं । अतः हमारे रिपुओं को हमसे दूर हटाएँ ॥५५॥

१६३१. आ क्रन्दय बलमोजो नऽ आसा निष्टनिहि दुरिता बाधमानः । अप प्रोथ दुन्दुभे  
दुच्छृणाऽ इतऽ इन्द्रस्य पुष्टिरसि वीड्यस्य ॥५६॥

हे दुन्दुभे ! आपकी अवाज को सुन करके शत्रु सैनिक घेने लगे । आप हमें तेज प्रदान करके, हमारे पापों को नष्ट करें । आप इन्द्रदेव की पुष्टि के सम्पन्न सुदृढ़ होकर, हमें पञ्चवृत्त करें तथा हमारी सेना के समीप स्थित दुष्ट शत्रुओं का पूर्णरूपेण विनाश करें ॥५६॥



१६३२. आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमहुन्दुमिर्वावदीति । समक्षपर्णाक्षरान्ति नो नरोस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥५७॥

हे इन्द्रदेव ! युद्धघोष करके आगे दुष्टों को सेनाओं को भलीप्रकार दूर बनाएँ । हमारी सेना विजय उद्घोष करती हुई लौटे । हमारे द्रुतगामी अश्वों के साथ वीर रथारोही घूमते हैं । वे सब विजयप्री का वरण करें ॥५७॥  
अपने दो घोड़े में देवताओं से संबंधित पशुओं का वर्णन तथा शीघ्र पशु में उनसे संबंधित हविषों का वर्णन है-

१६३३. आग्नेयः कृष्णाश्वीकः सारस्वती येवी बभूः सौम्यः पौष्णः श्यामः शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः शिल्पो वैश्वदेवऽ ऐन्द्रोरुणो मारुतः कल्पावऽ ऐन्द्राग्नः सध्वहितोद्योराफः सावित्री वारुणः कृष्णऽ एकशितिपात्येत्यः ॥५८॥

कृष्ण ग्रीवा वाला पशु अग्निदेवता से, मेघों सरस्वती देवी से, पिगल रंग का पशु सोमदेवता से, काले रंग का पशु पूषादेवता से, काली पीठ वाले पशु बृहस्पति से, विभिन्न वर्ण के पशु विश्वेदेवों से, अरुण रंगवाला इन्द्रदेव से, चितकबोरे वर्णवाला पशु मरुत से, मरुतव अंग वाला पशु इन्द्र और अग्निदेवता से, अधोस्थान में सफेद रंग वाले पशु सूर्य से, तथा एक पैर सफेद तथा शेष सभी कासे अंग वाले वेगवान् पशु वरुणदेवता से सम्बन्धित है ।

१६३४. अम्ययेनीकवते रोहिताब्जिरनइवानद्योरायी सावित्री पौष्णौ रजतनाभी वैश्वदेवौ पिशाङ्गौ तूपरी मारुतः कल्पावऽ आग्नेयः कृष्णोजः सारस्वती येवी वारुणः पेत्यः ॥५९॥

साल चिह्न वाला वृषभ ज्वाला वाले अग्नि से, नीचे स्थान में सफेद रंगवाले दो पशु सवितादेवता से, नाभि स्थान में बाँदी की तरह गुह्य रंग वाले दो पशु पूष देवता से, पीले रंग के सींग रहित दो पशु विश्वेदेवदेवता से, चितकबोरे रंग का पशु मरुदेवों से, कासे रंग का अब अग्निदेवता से, मेघों सरस्वती देवी से तथा वेगवान् पतनोमुख पशु वरुणदेवता से सम्बन्धित है ॥५९॥

१६३५. अम्यये गायत्राय त्रिवृते राधन्तरायाहाकपालऽ इन्द्राय त्रैष्टुभाय पञ्चदशाय बार्हतायैकादशकपालो विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो वैरुपेभ्यो द्वादशकपालो मित्राय रुणाभ्यामानुष्टुभाभ्यामेकविंशताभ्यां वीरताभ्यापयस्या बृहस्पतये पाङ्क्ताय त्रिणवाय शाकवराय चरुः सवित्रऽ औष्णिहाय त्रयस्त्रिंशाय रैवताय द्वादशकपालः प्राजापत्यश्चरुदित्यै विष्णुपत्यै चरुरम्यये वैश्वानराय द्वादशकपालोनुमत्याऽ अष्टाकपालः ॥६०॥

गावत्री छन्द, त्रिवृत् स्तोम, राधन्तर साम से स्तुत, अष्टाकपाल में सुसंस्कृत पुरोडाश (हवि) अग्नि के लिए है । त्रैष्टुप् छन्द, पञ्चदश स्तोम, नवत्साम से स्तुत, पञ्चदश कपाल में सुसंस्कृत हवि इन्द्रदेव के लिए है । अगती छन्द, सप्तदश स्तोम, वैरुपसाम से स्तुत, द्वादश कपाल में सुसंस्कृत हवि विश्वेदेवों के लिए है । अनुष्टुप् छन्द, एकविंश स्तोम और वीरता साम से स्तुत, दुर्धर्षर्मत चरु मित्रवक्षण के लिए है । पंक्ति छन्द, त्रिणव स्तोम, शाकवर साम से स्तुत, चरु बृहस्पतिदेव के लिए है । औष्णिक् छन्द, त्रयस्त्रिंश स्तोम, रैवत साम द्वारा स्तुत, द्वादश कपाल में सुसंस्कृत पुरोडाश हवि सवितादेवता के निमित्त है । प्राजापति के निमित्त चरु, विष्णुदेव की पत्नी और अदिति के निमित्त यज्ञ योग्य पदार्थ, वैश्वानर अग्निदेव के निमित्त द्वादश कपाल में सुसंस्कृत पुरोडाश-हवि और अनुमति देवता के निमित्त अष्टाकपाल में सुसंस्कृत पुरोडाश समर्पित करना चाहिए ॥६०॥

। चरु एक प्रकार का पदार्थ है, जिसमें इन्द्रिय पुरोडाश को चरु कहते हैं ।

## —ऋषि, देवता, छन्द-विधरण—

**ऋषि**—बृहदुक्थ वाग्देव्य अथवा अथ सम्मुद्रि १-११ । चार्गव जम्बदग्नि दीर्घतप्ता १२-२४ । जम्बदग्नि २५-३६ । मधुच्छन्दा ३७ । ऋषु चारुद्राज ३८-६० ।

**देवता**—समित् १, २५ । तनूनपात् २, २६ । नरासंस ३, २७ । अर्हि ४, २९ । हार ५, ३० । उवासानता ६, ३१ । दिव्य होतागण ७, ३२ । तीन देवियाँ ८, ३३ । स्वाहा ९, ३४ । वनस्पति १०, ३५ । स्वाहाकृति ११, ३६ । अथ १२-२४ । इह २८ । अग्नि ३७ । सप्तहम् ३८ । चार्पुष ३९ । गुण ४० । मात्वी ४१ । तुम ४२ । आरुधि रविमयी ४३ । अथ समुह ४४ । रथ ४५, ५२-५४ । रथ-रथक ४६ । ब्राह्मण आदि त्रिगोत्र ४७ । ह्यु ४८, ४९ । कशा ५० । हस्त्य ५१ । दुन्दुभि ५५, ५६ । दुन्दुभि इन्द्र ५७ । पशु-समुह ५८, ५९ । अग्नि अदि ६० ।

**छन्द**—त्रिष्टुप् १ ५-९, ११, १२, १७, १८, २७, ३१, ३४, ३९, ४१, ४२, ४४-४६, ४८, ५१ । विराट् त्रिष्टुप् २, १४, १९, २२ । पंक्ति ३ । निवृत् त्रिष्टुप् ४, १०, १६, २०, २४-२६, ३०, ३५, ३६, ३८, ४०, ५४ । पुरिक् त्रिष्टुप् १३, ५५, ५६ । पुरिक् पंक्ति १५, २१, २३, २९, ३३, ५२, ५७ । स्वराट् बृहती २८ । आर्वी त्रिष्टुप् ३२ । गायत्री ३७ । जगती ४३ । विराट् जगती ४७, ५३ । विराट् अनुष्टुप् ४९, ५० । पुरिक् आपहि ५८ । पुरिक् अति शतपदी ५९ । विराट् प्रकृति, प्रकृति ६० ।

॥ इति एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥



# ॥ अथ त्रिंशोऽध्यायः ॥

१६३६. देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केत नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं न स्वदतु ॥१॥

हे उत्पादक सवितादेव ! आप हम सबको शुभ कर्म करने तथा यज्ञदि श्रेष्ठ कर्मों के संरक्षण की प्रेरणा प्रदान करें । आप अपने श्रेष्ठ ज्ञान से पवित्र करने कात हैं । अतः हम सबके विचारों को भी पवित्र करें । आप दैवी गुणों से सम्पन्न वाचो के पोषक हैं, अतः हम सबको वाचों को सुमधुर बनाएँ ॥१॥

१६३७. तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥२॥

हम उन सर्वप्रेरक सविता के तेज को धारण करते हैं जो हमारा बुद्धि (कर्म) को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करे ॥

१६३८. विश्वानि देव सवितर्दुरितानि वरा सुव । यद्भद्रं तन्न ऽ आ सुव ॥३॥

हे सर्व उत्पादक सवितादेव । आप हमारा सम्पन्न बुराइयों (पापकर्मों) को दूर करे तथा हमारे लिए जो कल्याणकारी हो, उसे प्रदान करें ॥३॥

१६३९. विधातारं हवामहे वसोक्षित्रस्य राधसः । सवितारं नृचक्षसम् ॥४॥

श्रेष्ठ आश्रयदाता, सर्वोत्कृष्ट सम्पदाओं को बाँटने वाले, सबको भद्रकर्म में प्रेरित करने वाले, मनुष्यों के सच्चे उपदेशक उन सर्वप्रेरक सवितादेवता का हम आवाहन करते हैं ॥४॥

१६४०. ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं तमसे तस्करं नारकाय वीरह्मणं पाप्मने क्लीबं पाक्रद्याया ऽ अयोगू क्रमाय पुंश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम् ॥५॥

इस अध्याय में ३० ५ से ३० २२ तक के श्लोकों में "अनु विधान" का वर्णन है । इससे कुल १८४ मंत्र प्राप्त हैं । सबसे लिए विधानम्, अन्त में ब्रह्मणे मंत्र में "आगच्छे" के मंत्र में आया है । इस मंत्र का प्रयोग २० अर्चों में होता है- प्रथमे प्रथम चान्द्र, पुरा करना मित्र करना, उपवास करना ओष्ठ्य, स्नेह्य करना, अर्पण करना प्रसाद करना, स्वर्ग करना, निवारण करना, वाक्प्राप्ति आदि । धिष्णो ने अपने-अपने ढंग से इस प्रकार के अनेक प्रदान के अर्थ किये हैं । यहाँ पक्षीय वर्णन के अनुसार ब्रह्मणे ओष्ठ्यम् अर्थ किये गये हैं । यह अर्थवाक्य अनेकपक्षी पक्षीय वर्णनों के अर्थवाक्य से सम्बद्ध है । यज्ञ के प्रचार से समाप्त में श्रेष्ठ पक्षीय वर्णनका काम लगाने की दृष्टि से किये गये काल विशेषों एवं निमित्तों का अत्यन्त इस प्रकार के विधान गन्ता प्रतीत होता है—

ब्राह्मण का ब्रह्मकर्म (यज्ञ विप्रदान आदि), क्षत्रिय का नीति की रक्षा, वैश्य का पोषण कर्म तथा शूद्र का सेवा कार्य सहज कर्म है । अन्यकार (स्नान के कार्य) में चोर, नरक के लिए बोरघातक, पापकर्मों के लिए क्लीबत्व (नपुंसकत्व), आक्रम (क्रम-विक्रम) के लिए अयोगू (भक्त पुरुषाणो), काम (सेवन) के लिए व्याधिचारी तथा वक्तृता के लिए मागध (योग्य प्रमाण देने वाला) उपयुक्त हैं ॥५॥

१६४१. नृताय सूतं गीताय शैलूथं वर्माय सभाचरं नरिष्ठाय धीमत्तं नर्माय रेभथ हसाय कारिमानन्दाय क्षीबस्तं प्रमदे कुमारीपुत्रं मेशाय रश्मिकारं वैर्याय तक्षाणम् ॥६॥

नृत (अंगविशेष) के लिए सूत को, गीत के लिए नट (हस्य भावपूर्ण अभिव्यक्ति में कुशल) को, धर्म के लिए-सभासदों को, नेतृत्व के लिए पर्याप्त सामर्थ्यवान् को, स्रष्टा के लिए मृदुवाचों को, विनोद के लिए स्वांग धरने वाले को नियुक्त करें । आनन्दप्रद के लिए शिखर के प्रति सख्य भाव को, प्रबन्ध मय ( से उन्नत) के लिए कुमारी (वीरांगना) पुत्र को, मेषा (बुद्धिमत्तायुक्त कार्य) के लिए शिल्पी को तथा धैर्य (वृत्त कार्य) के लिए तक्षों (गढ़ाई करने वालों) को नियुक्त करें ॥६॥

१६४२. तपसे कौलालं पायायै कर्मारं रूपाय मणिकारं शुभे वपं शरव्याया ऽ  
इषुकारं हेतुं वनुष्कारं कर्मणे ज्याकारं दिष्टाय रज्जुसर्पं मृत्यवे मृगयु मन्तकाय धनिनम् ॥

तापक्रिया के लिए कुम्भकार, कुशलता के लिए करीमर, सौन्दर्य (को परस्त्री) के लिए जोहरी, शुभ संस्कारों के लिए बौने-छाँटे में कुशल व्यक्ति, सन्ध्यावेध के लिए खान बनाने वाले, प्रक्षेपण अस्त्रों के लिए वनुष्कार, (प्रक्षेपण) कर्म के लिए प्रत्यन्त (हारी) बनाने वाले, दिष्ट (आज्ञा-अदस्ता) देने के लिए रस्से पर बड़ने-उतरने में कुशल, मृत्युदण्ड के लिए बंधक तथा वध के लिए कुत्तों को ले जाने वाले को नियुक्त करें ॥७॥

१६४३. नदीभ्यः पौलिष्ठ मृक्षीकाभ्यो नैषादं पुस्तक्याभ्यां दुर्मदं गन्धर्वाप्सरोभ्यो ब्रातृषं  
प्रयुग्म्य ऽ उन्मत्तं सर्पदेवजनेभ्यो प्रतिपदमयेभ्यः कितव मीर्यताया ऽ अकितव पिशाचेभ्यो  
विदलकारीं शतुधानेभ्यः कण्टकीकारीम् ॥८॥

नदियों (को पार करने) के लिए मनुवारों को रोज आदि वनचर्ग के लिए शिशों ( वनचर्मियों ) को व्याघ्र की तरह आक्रामक पुरुष (को निर्बल बनाने) के लिए प्रचण्ड वीर को, अप्सराओं एवं गन्धर्वों के लिए संस्कार न हुए (व्यक्ति) को, शोधकार्य के लिए उन्मत्त (दुर्बल) को, सर्प, दंतों तथा मनुष्यों के लिए (संयुक्त रूप से) अक्षुणीय जानी पुरुष को, वासों के (क्षेत्र के ) मृत कुशल को तथा उन्नति प्रयासों के लिए सत्यकपट-मुक्त सज्जनों को, पिशाच (प्रकृति वालों) के लिए बंद नौति उत्पन्न कर देने वालों को, शतुधानों ( मार्ग के लुटेरों ) के लिए अवरोध उपस्थित कर देने वालों को नियुक्त करना चाहिए ॥८॥

१६४४. सन्धये जारं गेहायोपपति मर्त्यं परिकितं निर्ऋत्यं परित्विविदान मराभ्या ऽ एदिधिवुः  
पतिं निष्कृत्यै पेशस्कारीं संज्ञानाय स्मरकारीं प्रकामोद्यायोपसदं वर्णाधानुरुधं  
बलायोपदाम् ॥९॥

सुनह के लिए वयोवृद्ध, घर के लिए (प्रमुख के अतिरिक्त) उपप्रमुख आर्तता के निवारण हेतु पर्याप्त सम्पन्न व्यक्ति, आपात स्थिति ( भूखमरी-महामारी आदि) में साधन जुटाने में कुशल (कार्य की) असिद्धि की स्थिति में हित को साधनिकता देने में समर्थ, परितोषन के लिए मुद्रिकरण को प्रक्रिया में कुशल व्यक्ति, सम्पन्न ज्ञान प्राप्ति के लिए स्नेहपूर्वक कार्य करने में कुशल व्यक्ति, अज्ञानक कर्म आ पढ़ने की स्थिति में सन्निकट व्यक्ति, स्वीकृति प्राप्त करने के लिए अनुरोधार्थ में कुशल व्यक्ति तथा शक्ति के लिए सहाय्य देने वाले को नियुक्त करें ९

१६४५. उत्सादेभ्यः कुक्कुं प्रमुदे वामनं द्युर्ध्वः स्वामं स्वप्नायान्वमधर्माय बधिरं पवित्राय  
भिक्षवं प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शं माशिक्षायै प्रश्निन्नं मुपशिक्षाय ऽ अभिप्रश्निन्नं मर्यादायै  
प्रश्नचिवाकम् ॥१०॥

उत्सादन (शत्रुनाश) के लिए खड्गधारी, विनोद के लिए बौने तथा द्वारों (को रक्षा) के लिए परिश्रमी पुरुष को नियुक्त करें । स्वप्न के लिए अन्धे का और अन्धों को स्थिति में बहने का अनुगमन करें । कायशुद्धि (रोग मुक्ति) के लिए औषधि विशेषज्ञ, विशिष्ट ज्ञान के लिए खगोलविद, समस्त शिक्षा के लिए (विविध) प्रश्न पूछने (पूछ सकने) वाले, (शिक्षा के) अभ्यास के लिए जिज्ञासु तथा न्याय व्यवस्था के लिए पंच को नियुक्त करना चाहिए ।

१६४६. अमेंभ्यो हस्तिषं जवायाभ्यं मुष्ट्यै गोपालं वीर्यायाविपालं तेजसेजपालमिरायै  
कीनाशं कीलास्त्राय सुराकारं भद्राय गृहपं श्रेयसे वित्तव्यमाध्यक्ष्यायानुसत्तारम् ॥११॥

भारी सवारियों के लिए हस्तिपलक को, तीव्र बल के लिए अश्वपलक को, पुष्टि के लिए गोपलक को, वीर्य के लिए मेघपालक को, तेजस् के लिए अजयपलक को, अन्नवृद्धि के लिए (निर्वाह आदि करने वाले) किसान को,

अमृतोपम सुदृग्गण के लिए अभिव्यक्त विशेषज्ञ को सुख एवं कल्याणकृति के लिए गृहपालक को (श्रेष्ठ कार्यो से) श्रेय देने के लिए सम्पन्नो को तथा अध्वर्यु के लिए निरीक्षक को नियुक्त करना चाहिए ॥११॥

१६४७. चायै दार्वाहारं प्रभायाऽ अन्वेषं ब्रह्मस्य विष्टपायाधिपेक्षारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारं सर्वेभ्यो लोकेभ्यऽ उपसेक्तारमथ ब्रह्मै वधायोपपन्वितारं वेधाय वासः कस्युलीं प्रकामाय रजयित्रीम् ॥१२॥

अग्नि के लिए सकड़हारे को, ब्रथा (प्रकाश) के लिए अग्नि बसाने वाले को, सूर्य की उष्णता (गर्मी अधिक पड़ने) वाले स्थान के लिए अभिवेक करने वाले को, स्वर्गोपम सुख के लिए सब ओर से प्रभावित करने वाले को, देवलोका के लिए सुन्दर आकृति बनाने वाले को, मनुष्यलोका के लिए (श्रेष्ठता का) प्रसार करने वाले को, सभी लोकों के लिए संबन्ध करने वाले (दृष्टि प्रदान करने वाले) को, आक्रमण करके पक करने के लिए खसमाली बधा देने वाले को नियुक्त करें, वेधककृति के लिए कस ब्रह्मस्य वैसी विधा का अनुगमन करें, लोका के लिए रंजन कला (चित्रकारिता आदि) के ज्ञाता का अनुसरण करें ॥१२॥

१६४८. ब्रह्मणे सोमहृदयं वैरहस्याय पितुनं विविक्तयै क्षत्तारं यौषधहृद्यायानुक्षत्तारं बलापानुचरं घूमे परिष्कन्दं प्रियाय प्रियवादिनं परिष्ठाऽ अक्षसादं स्वर्गाय लोकाय भागदुषं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम् ॥१३॥

शत्रु सैन्य (विनष्ट करने) के लिए गुप्त (रक्त) कृति रखने वाले को, शत्रु हत्या के लिए युगलखोर को, पेद (ठारण करने) के लिए विषाक्तक को, (सूक्ष्मता से) निरीक्षण के लिए विमलनी वाले को, बल के लिए आज्ञानुवर्ती को, क्षेत्र विशेष के लिए परिभ्रमण करने वाले को, द्विष कार्य के लिए प्रियवादी को, अग्नि (विचारण) के लिए मकारोही को, स्वर्गीय वातावरण के लिए उचित विवरण करने वाले को तथा श्रेष्ठ सुखों की प्राप्ति के लिए सब ओर से प्रभावित करने वाले को नियुक्त करें ॥१३॥

१६४९. मन्यवेयस्तायं क्रोधाय निसरं योगाय योक्षारं शोकायाभिस्तारं श्लेमाय विमोक्षारं मुत्कूलनिकुलेभ्यश्चिष्टिनं वपुषे मानस्कृतं शीलायाम्बनीकारीं निर्गन्धै कोशकारीं यमायासूम् ॥१४॥

यन्त्र (अनीति प्रतिरोधक) का आदर्श (घोड़ने के लिए) स्नेह को उपाने वाला है, क्रोध की शान्ति के लिए दानी (प्रकृति वाला) को, योग (जोड़ने) के लिए योगी (जोड़ने वाले) को, तेजस्विता के लिए संव्रगामी को, क्षेम के लिए (संरक्षण के निमित्त) भुक्ति दाता को, ठंडक बढ़ावा करने वेशों के लिए (ऊँच नीच से निपटने के लिए) तीनों (ऊँच नीच समतल) में दख को, शरीरिक विकास के लिए प्रमाण के अनुसार आचरण करने वालों को, शालीनता के लिए दृष्टि की शुद्धि करने वाले को प्रयुक्त करें, विपत्ति (से बचने) के लिए संजय की नीति वाले को तथा यम (नियम आदि) के लिए निष्पक्षता की प्रवृत्ति वाले को प्रयुक्त करें ॥१४॥

१६५०. यमाय यमसूयर्वाभ्योक्तोक्तां संवत्सराय वर्यायिणीं परिकत्सरायविजाता-मिदावत्सरायातीत्वरीभिहत्सरायातिष्कहरी वत्सराय विजर्जरां संवत्सराय पलिकनीमृधुभ्योजिनसन्वत् साध्येभ्यर्हर्ममम् ॥१५॥

इस चरित्रका में यमार्थ विशेष प्रयोगों के लिए युक्त-युक्त गुणों वाली नितियों को नियुक्त करने का संकेत है। इस रूप में संवत्सरा आदि चार नामों का अनेक ही है। यमसूय विचारण से उत्पन्न (वर्षों) के बीच-बीच के वर्ष बनाने वाले हैं। वत्सराय के उद्गमर्ष विशेष में यमय यम को संवत्सरा, विजर्ज को परिकत्सरा, पलिक को अजयत्सरा, यमार्थ को अनुकूलता तथा पंचम को उदयत्सरा कहा जाता है। यमिजर्जों के लिए ओ सम्बन्धन ज्ञान है, ये यम के विषय हैं कि चरित्र काय में भिन्न गुण-वर्ग वाली नती के लिए यम की सम्बन्धन प्रयुक्त होना चाहिए—

(३) परमात्मन् (?) जल को निकल करने वाली के लिए विमानज में समर्थ सन्तानों को जन्म देने वाली को, हिंसा से दूर रहने वाली के लिए अत्यन्त कमल स्त्री को, संवत्सर के लिए अत्यन्त की विधि-अवस्था जानने वाली को, परिवत्सर के लिए बह्वर्षिकी कुमारी को, इन्द्रवत्सर के लिए अत्यधिक बलिशील रहने वाली को, इन्द्रवत्सर या अनुवत्सर के लिए अतिशय जनकाली स्त्री को, वत्सर या अनुवत्सर के लिए अराज्योर्ध्व वृद्धा स्त्री को, संवत्सर के लिए श्वेतकेशी वृद्धा स्त्री को निवृत्त करना चाहिए तथा जन्मों के लिए अपराधों व पुण्य से विवृत्त रखने वाले को और साध्यों के लिए विशिष्ट ज्ञान (धर्म विज्ञान) कुछ पुण्यों को निवृत्त करना चाहिए ॥१५॥

१६५१. सरोज्यो वैवरयुषस्वावराभ्यो दाज्ञं वैजन्ताभ्यो वैन्दं नह्वत्माभ्यः शौचकलं पाराय  
मार्गारमबाराय कैवर्त्तं तीर्थेभ्यः ३ आन्दं विषयेभ्यो मैनास्तथ स्थनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः  
किरास्तथ सानुभ्यो जम्बकं पर्वतेभ्यः किम्पूतयम् ॥१६॥

सरोवरो के लिए नीचो, ठण्डाने के लिए सेण्डो, छोटे जगजगो के लिए निचटो, नह्वत्स (नरकट) बहुल घटेलों के लिए शौचकल (पातल जीवो), पार करने के लिए मार्ग जानने वाली, अकार (उस पार से इस पार आने वाली) के लिए कैवर्त्त (नारिक) तीर्थ (जल के गटकली जगो) के लिए (किरास्त) बाँधने वाली, विषय स्वस्तो से रक्षा हेतु बाढ़ लगाने वाली, स्थान (नद करने) के लिए जम्बक (मुरली बजाने वाली) गुफाओं के लिए कोल-किरातो, सानु (शिखर) के लिए जम्बक पुष्पो तथा पर्वतों के लिए छोटे पद के पुष्पो को निवृत्त करना चाहिए ॥१६॥

१६५२. बीभत्साय बीभत्सं वर्णाय हिरण्यकारं सुलायै चापिञ्जं पञ्चादोषाय म्नादिनं  
विशेष्यो धृतेभ्यः सिध्वाय धृते जगरणाय धृते स्वप्नमायै जगवादिनं व्युद्धाय ३  
अपगल्भय सधशराय प्रचिदम् ॥१७॥

बीभत्स (पुमिल) कार्यों के लिए बीभत्स ( जगहों ) को, मुन्दर आकार देने के लिए स्वर्णकार को, तुल्य व्यवहार (तीलमे आदि) के लिए बीभत्स (जगहारी) को, खट में टांकारोच्य करने के लिए अपगल्भ व्यक्ति को, सभी ज्ञानियों के लिए सिध्वाय (मिष्टि ब्रह्मण्य पुण्य) को, वर्णाड के लिए जगहकार को, अजगृड के लिए आलसी प्रकृति वाले को, बीडा (की निवृत्ति) के लिए स्वेण को माकजान करने वाले को, वृद्धि के लिए अपगल्भ (विराधनामी) को तथा जग प्रवेण के लिए लक्ष-वेध में कुशल व्यक्त को निवृत्त करना चाहिए ॥१७॥

१६५३. अक्षराजाय कितलं कृतायादिनकदर्शं त्रेतायै कल्पिनं ह्यपराधाधिकल्पिनं  
मास्कन्दाय सधात्वायु मृत्यवे भोज्यकमनकाय मोघातं धृते यो मां विकृन्तनं  
भिक्षमाय ३ उपतिष्ठति दुष्कृताय चरकात्कार्यं वाप्यने सैलनम् ॥१८॥

पौसे खेलने के लिए जग पुण्य कृत (किरासेना) के लिए मकीक, त्रेत (क्रिय के लिए संकल्पित) के लिए कल्पनशील, ह्यपर (कर्म-मुक्त) के लिए अतिकल्पनशील, आस्कन्द (अक्रमण की स्थिति में) सधा में स्थिर (अत्युत्तम) बलि वाले, मृत्यु के लिए इन्द्रिय सुखों के पीछे कमनेवाले, अन्नक (कमराय) के लिए मोघाती, धृता (भुक्त रहने) के लिए मय को करने वाले बीडा बाँधने हुए उर्ध्वगत होने वाले, दुष्कृत विचारण के लिए चलते-धिरते रहने वाले आकारों तथा जगियों के लिए दुष्टपूर्वक दम्भित करने वाले को निवृत्त करना चाहिए ॥

१६५४. अतिमुत्काया ३ अर्त्तनं योषाय भवयन्ताय बहुवादिनमनन्ताय मूकं  
राक्षसाय ह्यवराकाय मृदुसे बीजायाय क्रोशाय तुल्ययज्ज वरस्यराय शङ्खार्थं वनाय  
वनयमन्यतोरुषाय दौघयम् ॥१९॥

अतिज्ञ के लिए अतिउत्तम या निर्वाह करने वाले को, योषाय के लिए (योर से) खेलने वाले को, अन्न (विवाद के अन्त) के लिए कुशल वस्तु को, अन्न (विवाद के अतिरिक्त) के लिए पुण्य रहने वाले को, मूक के लिए

आडम्बराघात । . . जोर से काटकर बजाने वाले) को मङ्गल के लिए खीणावादक को तुमुल स्वर के लिए बड़े डोल बजाने वाले को, मध्यम आवाज के लिए सख बजाने वाले को, वन (को रक्षा) के लिए वनरस्यक को तथा दूसरे प्रकार के अरण्यां के लिए दाकम्बल से रखा करने वाले को नियुक्त करना चाहिए ॥१९॥

१६५५. नर्माय पुंश्चलूथं हसाय कारि यादसे शाकम्वां ग्रामण्यं गणकमधिकोशकं तान्महसे खीणावादं पाणिघ्नं तूणवध्यं तात्रताम्यानन्दाय तलवम् ॥२०॥

कौतुक में लगी हुई दक्षरित्र महिला को ईमाने से लगे हुए सकल उतारने वालों को तथा जल-जन्तुओं को मारने में प्रवृत्त नौच जातिवालों को दूर डटाने चाहिए । ग्रामाधीश, ज्योतिषियों एवं सबको बुलाने वाले को सत्कार के लिए नियुक्त करना चाहिए । कोणार्कदक, ताल संध बजाने वाले को तथा स्वर वाद्य बजाने वाले को नृत्य के लिए तथा आनन्द के लिए ताली बजाने वाले को नियुक्त करना चाहिए ॥२०॥

१६५६. अग्नये पीवानं पविष्व्यं पीठसर्पिणं वायवे जगन्नालभनरिक्षाय वथंशनर्तिनं दिवे खलतिथं सूर्याय हर्यक्षं नक्षत्रेभ्यः किर्पिरं चन्द्रमसे किलासमङ्गे शुक्लं पिङ्गाक्षं रात्रौ कृष्णं पिङ्गाक्षम् ॥२१॥

अग्नि के (साध कार्य करने के) लिए म्बुल पदार्थों (कलान् भुखें), पृथ्वी के लिए आसन पर बैठकर चलने वाले, वायु (का सामना करने) के लिए प्रचण्ड (कार्य करने वाले) पुरुष, अन्तरिक्ष के कार्य (अधर पर लटककर कार्य करने वाले) के लिए बाँस के ऊपर कला दिखाने वाले, सूर्य के लिए छगोलविद्, सूर्य के लिए हरितवर्ण वाले, नक्षत्रों के लिए भारंगी रंग पहनने वाले, चन्द्रमा के लिए किन्नास (चर्म रोन धिरोष) वाले, दिन के लिए सफेद रंग के पीली आँख वाले तथा रात्रि के लिए काले रंग के पीली आँख वाले को नियुक्त करना चाहिए ॥२१॥

१६५७. अथैतानष्टौ विरूपाना लभतेतिदीर्घं चातिह्रस्वं चातिमथूलं चातिकृशं चातिशुक्लं चातिकृष्णं चातिकुलं चातिलोमजं च । अशुद्धाऽअवाहणास्ते प्राजापत्याः मागधः पुंश्चली कितवः क्लीबोशुद्धाऽअवाहणास्ते प्राजापत्याः ॥२२॥

इस प्रकार ऊपर कहे गये तथा इन आठों- अति दीर्घ, अति ह्रस्व, अति मथूल, अति कृश, अति शुक्ल, अति कृष्ण तथा अति कुल (रोम रहित) और अति रोमजों (रोम युक्तों) को तथा इन चार प्रकार के—मागध (बादुकार), पुंश्चली (दुराचारिणी), कितव (जुवारी) व क्लीब (नपुंसक)— ऐसे अवाहणों और अशुद्धों को (बुद्धि एवं धर्म का कार्य न कर सकने वाली) प्रजापति (प्राजापत्य) को सौंप देना चाहिए । (ताकि पहले आठ के लिए उचित निर्वाह और दूसरे चार के लिए उचित नियन्त्रण की व्यवस्था कर सकें) ॥२२॥

### —अग्नि, देवता, छन्द-विवरण—

अग्नि— नारायण पुरुष १ । विष्णुमित्र २ । उवाचन ३ । मेधातिथि ४-२२ ।

देवता—सविता १-२२ ।

छन्द— विष्टुप १ । निचृत् मायत्री २ । मायत्री ३.४ । स्वराट् अतिशयवरी ५.११ । निचृत् अहि ६.७ । कृति ८.१३ । भुरिक् अत्यहि ९.१० । २१ । विराट् संकृति १२ । निचृत् अत्यहि १४ । विराट् कृति १५.१६ । विराट् भृति १७ । निचृत् प्रकृति १८ । भुरिक् भृति १९ । भुरिक् अतिजपत्री २० । निचृत् कृति २२ ।

॥ इति त्रिंशोऽध्यायः ॥



# ॥ अथ एकत्रिंशोऽध्यायः ॥

१६५८. सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिर्धः सर्वतः स्मृत्वात्यतिष्ठ-  
दशाङ्गुलम् ॥१॥

(जो) सहस्रों सिर वाले, सहस्रों नेत्र वाले और सहस्रो चरण वाले विराट् पुरुष हैं वे सारे ब्रह्मांड को आवृत करके भी दस अंगुल शेष रहते हैं । ॥१॥

[दशअंगुलम् - मध्य में पूर्वार्ध अर्थात् १ से जो १ अर्धक है।]

१६५९. पुरुषऽ एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च धाव्यम् । उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥

जो सृष्टि बन चुको, जो बनने वाला है, वह सब विराट् पुरुष ही हैं । इस अमर जीव जगत् के भी वही स्वामी हैं । जो अन्न द्वारा वृद्धि प्राप्त करते हैं, उनके भी वही स्वामी हैं ॥२॥

१६६०. एतावानस्य महिमातो ज्यायंश्च पुरुषः । पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।

विराट् पुरुष की महत्ता अति विस्तृत है । इस श्रेष्ठ पुरुष के एक चरण में सभी प्राणी हैं और तीन भाग अनन्त अन्तरिक्ष में स्थित हैं ॥३॥

१६६१. त्रिपादूर्ध्वऽउदैत्युरुषः पादोस्येहाभवत् पुनः । ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अधि ॥४॥

चार भागों वाले विराट् पुरुष के एक भाग से वह सारा संसार उड़ और चेतन विविधरूपों में समाहित है इसके तीन भाग अनन्त अन्तरिक्ष में समये हुए हैं ॥४॥

१६६२. ततो विराड्जायत विराजो अधि पुरुषः । स जातो अत्यरिष्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥

उस विराट् पुरुष से वह जगत्पद उत्पन्न हुआ । उस विराट् से समष्टि जीव उत्पन्न हुए, वही देहधारी रूप में सबसे श्रेष्ठ हुआ, जिसने सबसे पहले पृथ्वी को, फिर जल-वायुओं को उत्पन्न किया ॥५॥

१६६३. तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भूतं पृषदाय्यम् । पर्शुस्तंश्चके वायव्यानारण्ये ग्राम्याश्च ये ॥

उस सर्वश्रेष्ठ विराट् प्रकृति यज्ञ से दधिभुक्त पूत प्राप्त हुआ (जिससे विराट् पुरुष की पूजा होती है) वायुदेव से संबन्धित पशु हरिण, गौ, अश्व आदि की उत्पत्ति उस विराट् पुरुष के द्वारा हो गई ॥६॥

१६६४. तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतऽ ऋचः सामानि जज्ञिरे । ऊन्दा ऽऽ सि जज्ञिरे तस्माद्यज्ञस्तस्मादजायत ॥७॥

उस विराट् यज्ञपुरुष से ऋग्वेद एवं सामवेद का प्रकटीकरण हुआ । उसी से यजुर्वेद एवं अथर्ववेद का प्रादुर्भाव हुआ, अर्थात् वेद की ऋचाओं का प्रकटीकरण हुआ ॥७॥

१६६५. तस्मादश्वाऽ अजायन्त ये के चोभवादतः । गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाताऽअजायन्तः ॥८॥

उस विराट् यज्ञपुरुष से दोनों तरफ दौत खले घोड़े हुए और उसी विराट् पुरुष से गीर्ण, बकरियाँ और भेड़ आदि पशु भी उत्पन्न हुए ॥८॥

१६६६. तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः । तेन देवाऽअयजन्त साव्याऽऋषयश्च ये ॥



मंत्रद्वारा ऋषियों एवं योगाभ्यासियों ने सर्वप्रथम प्रकट हुए विराट् पुरुष को यज्ञ (सृष्टि के पूर्व विद्यमान महान् ब्रह्माण्डरूप यज्ञ अर्थात् सृष्टियज्ञ) में अभिषिक्त करके उसी परम पुरुष से ही यज्ञ (आत्मयज्ञ) का प्रादुर्भाव किया।

**१६६७. यत्पुरुषं व्यदधुः कतिषा व्यक्तल्पयन् । मुखं किमस्यासीत् किं बाहु किमूरु पादाऽ उच्येते ॥१० ॥**

संकल्प द्वारा प्रकट हुए जिस विराट् पुरुष का ज्ञानोन्मूलन विविध प्रकार से वर्णन करते हैं, वे उसकी कितने प्रकार से कल्पना करते हैं ? उसका मुख क्या है ? भुजा बंधाएँ और पाँव कौन से हैं ? शरीर संरचना में वह पुरुष किस प्रकार पूर्ण बना ? ॥१० ॥

**१६६८. बाह्यणोस्य मुखमासीद्बाहु राज्यन्धः कृत् । ऊरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या एंड शूद्रो अजायत ॥११ ॥**

विराट् पुरुष का मुख बाह्यण (ज्ञानोन्मूलन) हुए ऋषि (ब्राह्मणी व्यक्ति), उसके शरीर में विद्यमान बाहुओं के समान हैं । वैश्य अर्थात् पोषण शक्तिसम्पन्न व्यक्ति उसके जंघ एवं सेवाधर्मी व्यक्ति, उसके पैर हुए ॥११ ॥

**१६६९. चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षुः सूर्यो अजायत । ओग्राह्यपुष्ट प्राणश्च मुखोदग्निरजायत ।**

विराट् पुरुष के मन से चन्द्रमा, नेत्रों से सूर्य, कर्ण से कण्ठ एवं प्राण तथा मुख से अग्नि का प्राकट्य हुआ ॥

**१६७०. नाभ्याऽ आसीदन्तरिक्ष एंड शीघ्रं द्यौः समवर्तत । पद्भ्या धूमिर्दिशः ओग्रासवा लोकाँऽ अकल्पयन् ॥१३ ॥**

विराट् पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष, तिर से ध्रुवके, कर्णों से धूमि तथा कानों से दिशाएँ प्रकट हुईं इसी प्रकार (अनेकानेक) लोकों को कल्पित किया गया है (रचा गया है) ॥१३ ॥

**१६७१. यत्पुरुषेण हविषा देवा यजमतन्वत । वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्मऽ इध्मः शरद्विः ॥**

जब देवों ने विराट् पुरुषरूप को हविष मानकर यज्ञ का शुभारंभ किया, तब घृत वसंत ऋतु, ईधन (सविधा) ग्रीष्मऋतु एवं हवि शरदऋतु हुई ॥१४ ॥

| यहाँ सृष्टि का के प्रारम्भिक स्वरूप का वर्णन है ।

**१६७२. सप्तास्थ्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त सभिधः कृताः । देवा यद्याज्ञं तन्वाताऽ अभ्यघ्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५ ॥**

देवों ने जिस यज्ञ का विस्तार किया, उसमें विराट् पुरुष को ही पशु (हव्य) रूप की भावना में बाँधा (नियुक्त किया), उसमें यज्ञ की सात परिधियाँ (सात समुद्र) एवं द्वाकीस (ऊँट) सभिधाएँ हुईं ॥१५ ॥

**१६७३. यज्ञेन यजमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । ते ह नाकं महिमानः सचन्त यज्ञं पूर्वं साध्याः सन्ति देवाः ॥१६ ॥**

आदिकालीन श्रेष्ठ वर्गपातक्य देवों ने, यज्ञ द्वारा यज्ञरूप विराट् का यजन किया। यज्ञीय जीवन जीने वाले (याजक) पूर्वकाल के सिद्ध साध्यगणों तथा देवताओं के निकट महिमाशक्त स्वर्गलोक को प्राप्त करते हैं ॥१६ ॥

**१६७४. अद्ध्यः सम्पूतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे । तस्य त्वष्टा विदधद्रूपयेति तन्मर्त्यस्य देयत्वमाजानमग्रे ॥१७ ॥**

सर्वप्रथम सब कर्म करने वाले परमात्मा (विश्वकर्मा) ने पृथ्वी एवं जल नक्षत्रों और उस जलरूप रस (प्राणवत्त्व) से सृष्टि का निर्माण हुआ । मर्त्य को देवत्व प्रदान करते हुए वह विश्व-निर्माता विश्व का निर्माण करता है ॥१७ ॥

१६७५. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमस्तः परस्तात् । तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेयनाय ॥१८॥

सूर्य के समतुल्य तेजसम्पन्न अंधकाररहित वह विराट् पुरुष है, जिसको जानने के पश्चात् साधक (उपासक) को मोक्ष की प्राप्ति होती है । मोक्षप्राप्ति का यही मार्ग है, इससे भिन्न और कोई मार्ग नहीं ॥१८॥

१६७६. प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरास्थिमानो बहुधा वि जायते । तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तास्मिन् ह तस्म्यर्धुवनानि विष्ठा ॥१९॥

प्रजापतक परमात्मा की सत्ता सम्पूर्ण पदार्थों में विद्यमान है, वह अजन्मा लेकर भी अनेक रूपों में प्रकट होता है । उसकी कारण शक्ति में सम्पूर्ण भुवन समाहित है । ज्ञानी जन उसके मुख्य स्वरूप को देख सकते हैं ॥१९॥

१६७७. यो देवेभ्यऽ आतपति यो देवानां पुरोहितः । पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय बाह्यये ॥२०॥

देव समुदाय में अग्रणी एवं उन्हें (देवों को) प्रकाशित करने वाले, जिनका प्राकट्य सब देवों से पहले ही हुआ है, उन तेज सम्पन्न ब्रह्म को नमन है ॥२०॥

१६७८. क्वं बाह्यं जनयन्तो देवाऽ अग्रे तदब्रुवन् । यस्तैव बाह्यणो विष्ठास्तस्य देवाऽ असन् यशो ॥२१॥

ब्रह्मज्ञानी देवों का आरम्भिक कथन है कि जो प्रकाशमान ब्रह्म को प्रकट करने वाले ज्ञानी उसको (विराट् सत्ता को) जानते हैं, उनके अधिकार में समस्त देवशक्तियाँ रहती हैं ॥२१॥

१६७९. ग्रीष्म ते लक्ष्मींश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमस्मिन् क्वाप्तम् । इष्ठाभिधाणामु यऽ इषाण सर्वलोकं यऽ इषाण ॥२२॥

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! सबको सम्पन्न प्रदान करने वाली वैभवरूपी लक्ष्मी आपकी पत्नी स्वरूप हैं, भुजार्ध रात्रि और दिन एवं नक्षत्र आपके रूप हैं । ब्रूलोक एवं पृथ्वी आपके मुख सदृश हैं । इच्छाशक्ति से सबकी इच्छाओं को पूर्ण करने में समर्थ हे ईश्वर हमारी उत्तम लोकों की प्राप्ति की इच्छा पूर्ति के लिए आप कृपा करें ॥

### —ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— नारायण पुरुष १-१६ । उत्तरनारायण १७-२२ ।

देवता—पुरुष अगदकीर्ण १-१६ । आदित्य १७-२२ ।

छन्द—निवृत् अनुष्टुप् १-३, ८-११, १४ । अनुष्टुप् ४, ५, ७, १२, १३, १५, २०, २१ । विराट् अनुष्टुप् ६ । विराट् त्रिष्टुप् १६ । भुरिक् त्रिष्टुप् १७, १९ । निवृत् त्रिष्टुप् १८ । निवृत् जाक् त्रिष्टुप् २२ ।

॥ इति एकत्रिंशोऽध्यायः ॥



# ॥ अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥

१६८०. तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा । तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥

सर्वव्यापक परमात्मा ही स्वयं प्रकाशित प्रजापति है, वही सभी जगह प्रकाश फैलाने वाले अग्नि, सूर्य के सदृश तेजयुक्त आदित्य, व्यापक (अणुरूप) वायु, आनन्दमय चन्द्रमा, दीप्तिमान् (शुद्ध और पवित्र) शुक्र, श्रेष्ठ, उत्कृष्ट पथ-प्रदर्शक ब्रह्म, सब में समाहित जल एवं समस्त प्रजाजनों के चालक (पी) हैं ॥१॥

१६८१. सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युत् पुरुषादधि । नैनमूर्ध्वं न तिर्यज्वं न मध्ये परि जग्रभत् ॥२॥

परम तेजस्वी सर्वव्यापी परमात्मा से ही सभी काल प्रकट हुए हैं । इस परमात्मा को ऊपर से, इधर-उधर से अथवा मध्य भाग से, पूर्णरूप से कोई भी ग्रहण नहीं कर सकता (पूर्णरूप से कोई नहीं जान सकता) ॥२॥

१६८२. न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यज्ञः । हिरण्यगर्भऽ इत्येष मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान्न जातऽ इत्येषः ॥३॥

जिस परमात्मा की महिमा का वर्णन 'हिरण्यगर्भः' (२५।१०) 'यस्मान्न जातः' (८।३६) तथा 'मा मा हिंसीत्' (१२।१०२) आदि मंत्रों में किया गया है, जिसका नाम और यज्ञ अत्यन्त बड़ा है; परन्तु उसका कोई प्रतिमान नहीं है ॥३॥

१६८३. एषो ह देवः प्रदिशोनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः । स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यह् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥४॥

वह परमात्मा सभी दिशाओं-उपदिशाओं, जन्म लिए हुए तथा जन्म लेने के लिए तत्पर (अभी माता के गर्भ में स्थित) सभी प्राणियों में संव्याप्त है । वही जन्म लेकर पुनः-पुनः (आगे भी) जन्म लेने वाला है तथा वर्तमान में भी सर्वत्र वही विद्यमान है ॥४॥

१६८४. यस्माज्जातं न पुरा किं चनेद यऽ आबभूव भुवनानि विश्वा । प्रजापतिः प्रजया स धरराणस्त्रीणि ज्योती धिं सचते स षोडशी ॥५॥

जो परमात्मा अकेले ही सभी भुवनो में व्याप्त है, उससे पूर्व कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ, वह प्रजा के साथ रहने वाले प्रजापति सोलह कलाओं से युक्त तोनों ज्योतियों (अग्नि, विद्युत्, सूर्य) को धारण करते हैं ॥५॥

१६८५. येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तमितं येन नाकः । यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥

जिस परमात्मा ने द्युलोक को तेजस्वी बनाया, जिसने सुख और आनन्द की प्राप्ति के लिए पृथ्वी को दृढ़ बनाया और आदित्य षण्डल एवं स्वर्गलोक को स्थिर किया, जिसने आकाश में गंगा लोकों का निर्माण किया, उस आनन्दस्वरूप परमात्मा की भक्तिपूर्वक अर्चना करते हैं (उसके अतिरिक्त और किसकी अर्चना की जाए ?) ॥६॥

१६७५. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमस्तः परस्तात् । तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेयनाथ ॥१८ ॥

सूर्य के संपतुल्य तेजसम्पन्न, अंधकाररहित, वह विराट् पुरुष है, जिसको जानने के पश्चात् साधक (उपासक) को मोक्ष की प्राप्ति होती है । मोक्षप्राप्ति का यही मार्ग है, इससे भिन्न और कोई मार्ग नहीं ॥१८ ॥

१६७६. प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते । तस्य योनिं परि पश्यन्ति विरास्तस्मिन् ह तस्युर्मुवनानि विद्या ॥१९ ॥

प्रजापालक परमात्मा की सत्ता सम्पूर्ण पदार्थों में विद्यमान है, वह अजन्म होकर भी अनेक रूपों में प्रकट होता है । उसकी कारण शक्ति में सम्पूर्ण भुवन सम्मिलित हैं । ज्ञानी जब उसके मुख्य स्वरूप को देख पाते हैं ॥१९ ॥

१६७७. यो देवेभ्यऽ आतपति यो देवानां पुरोहितः । पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुन्वाथ ब्राह्मणे ॥२० ॥

देव समुदाय में अग्रणी एवं उन्हें (देवों को) प्रकाशित करने वाले, जिसका प्राकट्य सब देवों से पहले ही हुआ है, उन तेज सम्पन्न ब्रह्म को नमन है ॥२० ॥

१६७८. रुषं ब्राह्मं जनयन्तो देवाऽ अग्रे तदब्रुवन् । यस्त्वीवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवाऽअसन् वने ॥२१ ॥

ब्रह्मज्ञानी देवों का प्रारंभिक कथन है कि जो प्रकाशमय ब्रह्म को प्रकट करने वाले ज्ञानी उसको (विराट् सत्ता को) जानते हैं, उनके अधिकार में समस्त देवशक्तियाँ रहती हैं ॥२१ ॥

१६७९. श्रींश्च ते लक्ष्मींश्च परम्यात्पद्मेरात्रे पाशे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यातम् । इष्वाग्निवाणाम् म उ इवाण सर्वलोकं म उ इवाण ॥२२ ॥

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! सबको सम्पन्नता प्रदान करने वाली वैश्वरूपी लक्ष्मी आपकी पत्नी स्वरूप हैं, भुआर्ण रात्रि और दिन एवं नक्षत्र आपके रूप हैं । सुलोक एवं पृथ्वी आपके मुख रुद्र हैं । इच्छाशक्ति से सबकी इच्छाओं को पूर्ण करने में समर्थ हे ईश्वर ! हमारी उन्नत लोकों की प्राप्ति की इच्छा पूर्ति के लिए आप कृपा करें ॥

### —ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— नारायण पुरुष १-१६ । उत्तरनारायण १७-२२ ।

देवता—पुरुष जगद्बीज १-१६ । आदित्य १७-२२ ।

छन्द—निचृत् अनुष्टुप् १-३, ८-११, १४ । अनुष्टुप् ४, ५, ७, १२, १३, १५, २०, २१ । विराट् अनुष्टुप् ६ । विराट् त्रिष्टुप् १६ । भुरिक् त्रिष्टुप् १७, १९ । निचृत् त्रिष्टुप् १८ । निचृत् आशी त्रिष्टुप् २२ ।

॥ इति एकत्रिंशोऽध्यायः ॥



# ॥ अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥

१६८०. तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः । तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥

सर्वव्यापक परमात्मा ही स्वयं प्रकाशित प्रजापति है, वहाँ सभी जगह प्रकाश फैलाने वाले अग्नि, सूर्य के सदृश तेजयुक्त आदित्य, व्यापक (प्राणरूप) वायु, आनन्दमय चन्द्रमा, दीप्तिमान् (शुद्ध और पवित्र) शुक्र, श्रेष्ठ, उत्कृष्ट पथ- प्रदर्शक ब्रह्म, सब में समाहित जल एवं समस्त प्रजाजनों के पालक (पिता) हैं ॥१॥

१६८१. सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुस्मादधि । नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परि जग्नभत् ॥२॥

परम तेजस्वी सर्वव्यापी परमात्मा से ही सभी काल प्रकट हुए हैं । इस परमात्मा को ऊपर से, इधर-उधर से अथवा मध्य भाग से, पूर्णरूप से कोई भी ग्रहण नहीं कर सकता । (पूर्णरूप से कोई नहीं जान सकता) ॥२॥

१६८२. न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यज्ञः । हिरण्यगर्भऽ इत्येव मा मा हिंसीत् ॥३॥

जिस परमात्मा की महिमा का वर्णन 'हिरण्यगर्भः' (२५।१०) 'वस्मान्न जातः' (८।३६) तथा 'मा मा हिंसीत्' (१२।१०२) आदि मंत्रों में किया गया है, जिसका नाम और वस्तु अत्यन्त बड़ा है; परन्तु उसका कोई प्रतिमान नहीं है ॥३॥

१६८३. एषो ह देवः प्रदिशोनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः । स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥४॥

वह परमात्मा सभी दिशाओं-उपदिशाओं, जन्म लिए हुए तथा जन्म लेने के लिए तत्पर (अभी माता के गर्भ में स्थित) सभी प्राणियों में संव्याप्त है । वही जन्म लेकर पुनः पुनः (आगे भी) जन्म लेने वाला है तथा वर्तमान में भी सर्वत्र वही विद्यमान है ॥४॥

१६८४. यस्माज्जातं न पुरा किं चनैव य ऽ आबभूव भुवनानि विष्ठा । प्रजापतिः प्रजया स धरराणस्त्रीणि ज्योती धिं चि स्रज्ते स षोडशी ॥५॥

जो परमात्मा अकेले ही सभी भुवनों में व्याप्त है, उससे पूर्व कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ, वह प्रजा के साथ रहने वाले प्रजापति सोलह कलाओं से युक्त तीनों ज्योतिषों (अग्नि, विद्युत्, सूर्य) को धारण करते हैं ॥५॥

१६८५. येन द्यौरग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तमितं येन नाकः । यो अन्तरिक्षे रजसो विषानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥

जिस परमात्मा ने द्युलोक को तेजस्वी बनाया, जिसने सुख और आनन्द की प्राप्ति के लिए पृथ्वी को दृढ़ बनाया और आदित्य मण्डल एवं स्वर्गलोक को स्थिर किया, जिसने आकाश में नाना लोकों का निर्माण किया, उस आनन्दस्वरूप परमात्मा की भक्तिपूर्वक अर्चना करते हैं (उसके अतिरिक्त और किसकी अर्चना की जाए ?) ॥६॥

१६८६. यं क्रन्दसी अवसा तस्तामाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने । यत्राधि सूरऽ उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम । आपो ह वद्बृहतीर्यक्षिदायः ॥७॥

जिस परमात्मा की शक्ति से पोषक पदार्थों द्वारा प्राणि जगत् को संरक्षण देने वाले सुलोक और पृथिवीलोक, इनमें रहने वाले ज्ञानीपुरुष मन्त्रशक्ति द्वारा सर्वत्र देखते हैं और जिसमें तेजोमय सूर्य उदित तथा प्रकाशित होता है, उस आनन्दमय परमात्मा की शक्तिपूर्वक अर्चना करते हैं । "आपो ह वद् बृहती," और "यक्षिदाय" इन दो मंत्रों (२७।२५-२६) में उस परमात्मा का विस्तार से वर्णन है ॥७॥

१६८७. वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विशं भवत्येकनीडम् । तस्मिन्निदं स च वि चैति सर्वं स ओतः प्रोत्सृज्य विष्णुः प्रजासु ॥८॥

प्रत्येक पदार्थ में छिपे उस परमात्मा को ज्ञानी-जन मित्त्व, सम्पूर्ण जगत् को आश्रय देने वाले रूप में जानते हैं । सब प्रजाओं में व्याप्त उस परमात्मा में सभी प्राणी इसव्यवस्था में लय हो जाते हैं तथा सृष्टिकाल में उसी से पुनः प्रकट होते हैं ॥८॥

१६८८. अ तद्गोचेदमृतं नु विद्वान् मन्त्रवो धाम विभूतं गुहा सत् । त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य चस्तानि वेद स पितुः पितासत् ॥९॥

उस परमात्मा के स्वरूप का वर्णन ज्ञानीजन ही कर सकते हैं । बुद्धि में धारण करने पर ही वह परमात्मा सुशोभित होता है । जो उस परमात्मा के तीन पद (तीन स्वरूप-सत्, चित्, आनन्द) को धारण करता है, वह पालकों का भी पालक होता है ॥९॥

१६८९. स नो बभूवर्जनिता स दिवाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यत्र देवाऽ अमृतमानशानास्तृतीये धामप्रख्यैरयन्त ॥१०॥

अमरत्व प्राप्त ज्ञानीजन जिस तीसरे धाम (स्वर्गरूप) में स्वेच्छा से विचरण करते हैं । (उस धाम में व्याप्य) वह परमात्मा हम सबका धन्व, हम सभी को उत्पन्न करने वाला तथा हर प्रकार से पोषण करने वाला है । वह सभी भुवनों तथा प्राणियों को जानने वाला है ॥१०॥

१६९०. परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च । उपस्थाप्य प्रथमजामृतस्थात्मनात्मानमभि सं विवेश ॥११॥

सभी प्राणियों, सभी लोकों, सभी दिशाओं और उपदिशाओं को जानकर सत्य नियम (वेदग्रन्थों) पर आधारित सनातनरूप की उपासना करके ज्ञानीजन अन्तर्मरूप से परमात्मा में समर्पित हो जाते हैं ॥११॥

१६९१. परि छावापृथिवी सद्यऽ इत्वा परि लोकान् परि दिशः परि स्कः । अज्ञस्य तन्नु विततं विवृत्य तदपश्यत्तदभवत्तदासीत् ॥१२॥

आकाश से पृथ्वी पर्यन्त सभी पदार्थों, सभी लोकों, सभी दिशाओं एवं आत्मशक्ति को जब ज्ञानीजन जान लेते हैं, तब अटल सत्यरूप में विशेष रूप से जैसे उस परमात्मा की अनुभूति करके वैसे ही बन जाते हैं, जैसे वह पहले (सनातन परमात्मरूप में) थे ॥१२॥

१६९२. सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काव्यम् । सनि मेधामयासिषं स्याद्वा ॥१३॥

प्राप्त करने योग्य, विलक्षण इन्द्रदेव के मित्र, विश्व के स्वामी (परमात्मा) से सेवन के योग्य धन तथा उत्तम बुद्धि की याचना करते हैं । इसके लिए आहुति समर्पित है ॥१३॥

१६९३. यां मेधां देवगणाः पितृस्त्रोपासते । तस्य मामस्र मेधयाम्ने मेधाविर्न कुरु  
स्वाहा ॥१४ ॥

देवगण तथा पितृगण जिस उत्तम बुद्धि की कामना करते हैं हे अग्निदेव ! उस बुद्धि से आज हमें मेधावी  
बनाएँ । इसके लिए यह आहुति समर्पित है ॥१४ ॥

१६९४. मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः । मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां घाता ददातु  
मे स्वाहा ॥१५ ॥

हे वरुणदेव ! हे प्रजापतिदेव अग्निदेव ! हे इन्द्र और वायुदेव । हे परमात्मन् । हमें उत्तम बुद्धि प्रदान करें  
इसके लिए ये आहुतियाँ समर्पित हैं ॥१५ ॥

१६९५. इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोमे त्रियमश्नुताम् । मयि देवा दधतु त्रियमुत्तमां तस्यै  
ते स्वाहा ॥१६ ॥

देवगण हमारे इस ज्ञान-तेज तथा हमारे इस क्षत्रवत्, इन दोनों को हम में लोभायमान करें । इसके लिए यह  
आहुति समर्पित है ॥१६ ॥

\*\*\*

### —ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— ब्रह्म स्वयंभु १-१२ । मेधाकाम १३-१५ । श्रोकाम १६ ।

देवता—आत्मा १-१२ । सप्तसप्तति १३ । अग्नि १४ । वरुण आदि लिंगोक्त १५ । श्री यज्ञोक्त १६ ।

छन्द—अनुष्टुप् १ २, १६ । निचृत् चत्ति ३ । भुक्ति त्रिष्टुप् ४, ५ । निचृत् त्रिष्टुप् ६, ८-११ । निचृत् शक्वरी  
७ । त्रिष्टुप् १२ । भुक्ति गक्वरी १३ । निचृत् अनुष्टुप् १४ । निचृत् बृहती १५ ।

॥ इति द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥



# ॥अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

१६९६. अस्याजरासो दमामरित्राऽ अर्चद्दमासो अमन्यः पावकाः । क्षितीचयः क्षात्रासो भुरण्यवो वनर्षदो वायवो न सोमः ॥१॥

इस यजमान को अग्निर्यौ, जराहित और गृहों की रक्षा करने वाली हैं, अर्चन योग्य, जाज्वल्यमान, पवित्र करने वाली, शुभ ऐश्वर्य से युक्त करने वाली, शीघ्र फल देने वाली, ब्रह्म को पोषण देने वाली, वन (क्षेत्रों) में व्याप्त, वायु के समान प्राणदायक और यजमान को अघोष्ट प्रदान करने वाली हैं ॥१॥

१६९७. हरयो धूमकेतवो वातजूताऽ उषःशवि । यत्नो वृक्षगमनयः ॥२॥

हरित वर्ण, धूमरूपी ध्वजावाली, वायु से वृद्धि पाने वाली अग्निर्यौ स्वर्ग (ऊर्ध्व) गमन के निमित्त निरंतर प्रयत्नशील रहती हैं ॥२॥

१६९८. यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाः२ ऋतं बृहत् । अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥३॥

हे अग्ने ! आप हमारे मित्र, वरुण और (अन्य) देवों के लिए यज्ञ करें । साथ ही अपने घर को यज्ञादि शुभ कर्मों से युक्त करें ॥३॥

१६९९. पुत्र्वा हि देवदूतमाः२ अर्षाः२ अग्ने रधीरिव । नि होता पूर्यः सदः ॥४॥

हे अग्ने ! देवों का आवाहन करने वाले अर्षों को स्मरण के समान प्रेक्ष्य रथ में नियोजित करें । आदिकार से ही बुलाये जाने वाले आप इस यज्ञ में अर्धचित्त हो ॥४॥

१७००. हे विरूपे चरतः स्वर्षे अन्यान्या वत्समुषः प्रापयेते । हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुको अन्यस्यां ददुशे सुवर्चाः ॥५॥

दो भिन्न रूप रंगवाली स्त्रियों के समान रात्रि और दिन अपने उत्तम कर्मों में तत्पर विविध प्रकार से विचरण करते हैं । उनमें से एक श्यामवर्ण रात्रि के स्वप्नवान् पुत्र चन्द्र उत्पन्न हुए और दूसरे दिन के उत्तम त्रेजों से युक्त पुत्र सूर्य प्रकट हुए— ऐसी मान्यता है ॥५॥

१७०१. अथमिह प्रथमो वाचि वातुमिहोता यजिष्ठो अश्वरेष्ठीउषः । यमजवानो घृगवो विरुक्तचुर्वनेषु चित्रं विध्वं विशे-विशे ॥६॥

देवों का आवाहन करने वाले, यज्ञ में अर्धचित्त, सोम-वागादि में स्तुत्य अग्निदेव को यज्ञ स्थान में ऋत्विजों के द्वारा प्रमुखरूप से स्थापित किया मक है । ज्ञानवान्, तपस्वी अप्रवान्, धृन् आदि ऋषियों ने प्रत्येक मनुष्य के उपकार के लिए उन विराट् अग्निदेव को, वनों में-यज्ञ स्थानों में प्रज्वलित किया था ॥६॥

१७०२. त्रीणि ज्ञाता, त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशज्ज्य देवा नव चासपर्यन् । औक्षन् घृतैरस्तृणान् बहिरस्मा आदिहोतारं न्यसादयन्त ॥७॥

तीन सहस्र, तीन सौ, तीस और नौ अर्णात् तैत्तिरीय औन्नत्यस्य देवतागण अग्निदेव को सेवा करते हैं । वे घृत आहुतियों द्वारा अग्नि को प्रज्वलित करते हैं, अग्निदेव के लिए कुशाओं का आसन प्रदान करते हैं और फिर उन्हें होतारूप से वरुण कर स्थापित करते हैं ॥७॥



१७०३. मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतऽ आ जातमग्निम् । कविऽ सप्तजमतिधिं  
जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥८॥

देवगणों ने घुत्तेक के शिरःस्थान में अदित्य के रूप में पृथ्वी की सीमा तक प्रकाशित होने वाले वैश्वानर, यज्ञादि में उत्पन्न, ज्ञानादशी सम्बद्धरूप से ओजवान्, समस्त ज्ञाजनों द्वारा अतिविरूप में आदर को प्राप्त, मुख्य होता रूप में विराजित अग्निदेव को सबके रक्षकरूप में प्रज्वलित किया ॥८॥

१७०४. अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्विषास्युर्विषन्वया । सपिङ्गः शुक्रऽ आहुतः ॥९॥

यज्ञ कुण्ड में आपनित, शुभ तेजयुक्त, प्रतीत अग्निदेव, हविष्यान्नरूप घन की कामना करते हुए विविध प्रकार की आहुतियों द्वारा पाषाणों (वृत्र) को विनष्ट करते हैं ॥९॥

१७०५. विष्केभिः सोम्यं यष्यन्मऽ इन्द्रेण वायुना । पिबा मित्रस्य घामभिः ॥१०॥

हे अग्ने ! मित्रदेव के वेश से युक्त इन्द्र, वायु तथा सप्तसप्त देवों के साथ आप सोमरूप मधु का पान करें ॥१०॥

१७०६. आ यदिषे नृपतिं तेजऽ आनद् शुचिं रेतो निचितं क्षौरभीके । अग्निः शर्वभनवद्यं  
सुवानऽ स्वाध्वं जनयत् सुदयध्व ॥११॥

जिस समय अन्न और जल के लिए यंत्रों द्वारा पवित्र वृक्ष, देवों के उद्देश्य से यजन करने योग्य तेज का अग्नि में हवन होता है, उस समय अग्निदेव, बल के आश्रययुक्त, टोकयुक्त, अनवरत प्रवाहित, सम्पन्न, विचारणीय, जगत् के बीजरूप जल को स्वर्ग के समीप अन्तरिक्ष में मेघरूप में प्रकट करते हैं और वृष्टिरूप में गिराते हैं ॥११॥

१७०७. अग्ने शर्वं महते सौभगाय तव घृण्यन्नुत्तमानि सन्तु । सं जास्यत्पथऽ सुयममा  
कणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महार्थसि ॥१२॥

हे अग्ने ! महान् सौभाग्य के निमित्त अपने बलों को प्रकट करें । आप श्रेष्ठ वसवाले होकर प्रकाशित हों । उत्तम यजमान दम्पती को परस्पर स्नेह बंध से संयुक्त करें और तत्रुता करने वालों की महता को गिरा दें ॥१२॥

१७०८. त्वा हि मन्त्रतममर्कशोकैर्वयमहे भहि नः श्रोष्यमे । इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं  
पृणन्ति राक्षसा नृतमाः ॥१३॥

हे अग्ने ! आप अत्यन्त गम्भीर हैं, ऐसे आपको सूर्य के समान तेजस्वी यंत्रों से हृदय धरण करते हैं । आप हमारे महान् स्तोत्रों का श्रवण करें । आप बल में इन्द्रदेव और वायु के सदृश हैं । आपको श्रेष्ठ मनुष्य एवं देवगण हवियों से पूर्ण करते हैं ॥१३॥

१७०९. त्वे अग्ने स्थाहुत प्रियासः सन्तु सूरवः । यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान् दधन्त  
गोनाम् ॥१४॥

हे उत्तम प्रकार से आहुत अग्ने ! मनुष्यों में से जो जिज्ञेन्द्रिय-धम्मान् पुरुष आपके निमित्त गौओं के दुग्ध, दधि, घृत आदि से युक्त पुरोडाश अर्पित करते हैं वे तेजस्वी पुरुष आपके प्रिय पात्र हो ॥१४॥

१७१०. भुवि श्रुत्कर्णं बह्विभिर्देवैरग्ने सखावन्ति । आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा  
प्रातर्यावाणो अध्वरम् ॥१५॥

हे अग्ने ! आप स्तुतियों का श्रवण करनेवाले और हवियों को साथ लेकर वहन करने वाले हैं । आप देवों के साथ हमारे यजन कर्म में स्तोत्रों का श्रवण करें और विश्व, अर्यमा तथा ऋतः सबन में हवि-गृहीता देवों के साथ कुश के आसन पर विराजें ॥१५॥

१७११ विश्वेषामदितीर्यज्ञियानां विश्वेषामपतिधर्मानुष्णाम् । अग्निर्देवानामव आवृणानः  
सुमृडीको भवतु जातवेदः ॥१६ ॥

सर्वज्ञ, सम्पूर्ण यज्ञार्ह (यज्ञ योग्य) देवों के मध्य अदिति (दीप्ता रहित-तेजस्वी) रूप में और सम्पूर्ण मनुष्यों के मध्य में अतिथि के तुल्य पूजनीय अग्निदेव, देवों को इतिष्यात्र देते हुए हमें उत्तम सुख देने वाले हैं ॥१६ ॥

१७१२. महो अग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये ।

श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तदेवानामवो अद्या वृणीमहे ॥१७ ॥

सवितादेव की आज्ञा के अनुगत होकर हम देवों के संरक्षण का वरण करते हैं । हम पूज्य और प्रदीप्त अग्नि के आश्रय को प्राप्त करते हुए मित्र और वरुण के मध्य में अपराधरहित होकर सदा कल्याण को प्राप्त करें ॥१७ ॥

१७१३. आपक्षित्पिप्यु स्तयों न जावो नक्षत्रतं जरितारस्तऽ इन्द्र । याहि वायुर्न नियुतो नो  
अच्छा स्वऽहं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥१८ ॥

हे इन्द्रदेव स्तोतागण आपके यज्ञ को प्राप्त करते हैं और जल आपके जल को अधिकर्षित करते हैं । आप हमारे समीप आगमन करें, अपने उन वायु के वेग वासे अस्त्रों को नियोजित कर अपनी बुद्धि (युक्त कर्मों) द्वारा हमारे समीप अश्वारि के प्रदाता बनकर आएँ ॥१८ ॥

१७१४. गावऽ उपावतावर्तं मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥१९ ॥

दिव्य किरणों आकाश और पृथ्वी दोनों रूपों को रक्षित करती हैं । हे स्वर्चिम कर्ण वाली (दो कोनों को मिलाने वाली) किरणों ! आप यज्ञ के पास आकर हमें रक्षित करें ॥१९ ॥

१७१५. यदद्य सूरऽ अदितेनागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ॥२० ॥

आज सूर्य के उदित होने पर पाररहित हुए हमको मित्र, सविता, भग और अर्यमादेव श्रेष्ठ कर्मों में प्रेरित करें ।

१७१६. आ सुते सिञ्चत श्रियऽरोदस्योरभिश्चियम् । रसा दधीत वृषधम् । तं प्रत्नद्यायं येनः ॥

घावापृथ्वी के आश्रय में वर्षाशील सोम का तीव्र प्रवाह अत्यन्त शोभायमान होता है; ऋत्विगाण उस (जगत् के आधारभूत) सोम प्रवाह को अभिभूत करके सींचते हैं ॥२१ ॥

[ इस मंत्र के अन्त में 'तं प्रत्नद्यायं येनः' (७ १२) एवं 'येनः' (७ १६) के उत्तरार्धक तत्त्व ही प्रतिकल्पक रूप से दिये गये हैं । इसका अर्थ संदर्भित स्थानों पर ही देखा जाय ॥ ]

१७१७. आतिष्ठन्तंपरि विश्वे अधूवञ्जिह्वो वसानस्मरति स्वरोचिः । महत्तद्वृष्णो असुरस्य  
नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्यौ ॥२२ ॥

सब देवों ने मिलकर, जिस देव को प्रतिष्ठित कर, ऊपरों ओर से घेर कर, छोड़े होकर स्तुति आदि की है, ऐसे देव इन्द्र अति तेजस्वी ऐश्वर्यों से सुशोभित होकर विचरते हैं । विश्वरूप वे इन्द्रदेव, जल को वर्षण के लिए प्रेरित करते हैं । वे इन्द्रदेव असुरों का संहार कर महान् वज्रस्वी होते हैं और अमृत उत्तर्जों का पान कर चिरकाल तक उसी प्रतिष्ठा पर विराजते हैं ॥२२ ॥

१७१८. प्र वो महे मन्दमानायान्यसोर्धा विश्वानराय विश्वाभुवे । इन्द्रस्य यस्य सुभस्त्रऽहं सहो  
महि श्रवो नृष्णं च रोदसी सपर्यतः ॥२३ ॥

हे ऋत्विजों ! विश्व के उत्पादक, मनुष्यों के लिए अन्नदाता, महान् अन्न-प्रदाताक ठन इन्द्रदेव का अर्घन करें, जिनको घावापृथिवी भी उत्तम यज्ञ, संघर्षशक्ति, महान् वज्र और वन आदि पदार्थों को प्रदान करके पूजते हैं ॥

१७१९. बृहन्नदिधमऽ एषां भूरि जस्तं पृथुः स्वस्तः । येयामिन्द्रो युवा सखा ॥२४॥

जिनके मित्र अति तेजवान्, अतिव्यापक, जन्तुओं को बचाने वाले, सामर्थ्यशाली और महान् इन्द्रदेव हैं, उनकी ही बहुत प्रशंसा होती है । ऐसे इन्द्रदेव कन्दोर्ध्व हैं ॥२४॥

१७२०. इन्द्रेहि मत्स्यन्वसो विश्वेष्टि सोमपर्वणि । महो२ अभिष्टिरोजसा ॥२५॥

तेज से सम्पन्न, अत्यन्त महान् और वृद्धीय है इन्द्रदेव ! आप यहाँ यज्ञशाला में पथारे और सम्पूर्ण सोम के पर्वों (यज्ञोत्सवों) से प्राप्त हुए रस और इक्षिप्यज्ञ से तृप्ति को प्राप्त हों ॥२५॥

१७२१. इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः । भायिनामभिनाहर्षणीतिः । अहन् व्यथं३समुशम्यन्वेष्ट्याविर्धेनाऽ अकृणोद्राम्याणाम् ॥२६॥

महान् बलशाली, नीति-कुशल, वन हरण करने वाले चोरों को पीड़ित करने वाले इन्द्रदेव, भायायी असुरों को विनष्ट करते हैं, साथ ही वे वृत्रासुर का प्रतिरोध करते, हितक दुष्टों का संहार करते एवं देवों को आह्लादित करते हुए, याज्ञिकों की श्रेष्ठ वापियों को प्रकट करते हैं ॥२६॥

१७२२. कुतस्त्वमिन्द्र माहिन्ः सप्रेको यासि सस्ते किं तऽ इच्छा । सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचिस्तन्नो हरिवो यतो अस्मे । महो२ इन्द्रो यऽ ओजसा कदा चन सरीरसि कदा चन प्र युच्छसि ॥२७॥

हे सज्जनों के स्वामी इन्द्रदेव ! आप अकेले क्या करते हैं ? हे बाह्यायन् ! आपके जाने का अभिप्राय क्या है ? सम्यक् प्रकार से आते हुए आप चले जाते हैं कि हे हरित वर्ण अन्न वाले इन्द्रदेव ! हमसे गमन का कारण कहें, क्योंकि हम आपके ही हैं । हे महान् इन्द्रदेव ! आप अपने तेज से न कभी हिंसा करने वाले हैं और न कभी प्रमाद करने वाले हैं ॥२७॥

१७२३. आ तप्तऽ इन्द्रायकः वनन्ताभि यऽ ऊर्वी गोमन्तं तितृत्सान् । सकृत्स्वं ये पुरुपुत्रां मही३सं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ॥२८॥

हे इन्द्रदेव ! जो दुष्ट भूमि के भालिक की हिंसा करते हैं, उन्हें आप मारते हैं । जो बहुत से पुत्रों वाली, प्रचुर अन्नादि उत्पन्न करने में समर्थ पृथ्वी का दोहन करते हैं और सहस्रों धाराओं से वर्षणशील ध्रुलोक का दोहन कर सोम का अभिषेक करते हैं, वे मनुष्य आपकी श्रेष्ठता की ही सतत स्तुति करते हैं ॥२८॥

१७२४. इमां ते शिषं प्र भरे मह्यो महीमस्य स्तोत्रे विषणा यतऽ आनजे । तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्र देवास्तः शवसामदन्नन् ॥२९॥

हे महान् इन्द्रदेव ! हम आपकी बुद्धि को कारण करते हैं । आपके निमित्त स्तुति करने में निवोधित बुद्धि, आपकी सामर्थ्य को प्रकट करती है । उसी सामर्थ्य से हमारे उत्सव और प्रसव (जन्मोत्सव) के समय पीड़ा पहुँचाने वाले स्तुओं को दवाने वाले इन्द्रदेव, बलशाली देवगणों द्वारा अकिञ्चिदन्त किये जाते हैं ॥२९॥

१७२५. विश्वा३ बृहत्पिबन्तु सोम्यं मध्वायुर्दधच्छपतावविहृतम् । वातजूतो यो अभिरक्षति त्वना प्रजः पुपोष पुरुषा वि राजति ॥३०॥

जो वायु के समान प्रचण्ड वेगवान्, विश्वेवरूप से देदीप्यमान, सम्पूर्ण देवों से युक्त, अपनी सामर्थ्य से प्रजाओं को सब ओर से रक्षित करते हैं, अनेकों प्रकार से प्रवर्धित करते हैं ऐसे वे सूर्यदेव अपनी रश्मियों द्वारा दिव्य सोमादि पथुर रसों का फल करें ॥३०॥

१७२६. उदु त्वं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दशे विद्याय सूर्यम् ॥३१॥

उन सर्वज्ञाता, सर्वप्रकाशक, महान् सूर्यदेव को, सम्पूर्ण विद्या द्वारा भस्मी-भाँति देखे जाने के लिए किरणें कर्षणगति प्रदान करती हैं ॥३१॥

[सूर्य रश्मियों अस्त्रों के गुण के कारण उदु कहलें सूर्य को कुछ उदु उदुभर दर्शन कराती हैं ।]

१७२७. येन पाथक चक्षसा पुरण्यन्तं जनीरं अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥३२॥

हे पाथक (पवित्रकर्ता) ! हे वरुणदेव ! जिस सूर्यरूप ज्योति (प्रकाश) से आप अपने स्वर्णिम दिव्यरूप को देखते हैं, उसी ज्योति से आप इन प्रजावनों को देखें ॥३२॥

१७२८. दैव्यावध्वर्यु आ गतं धेनुधेन सूर्यत्वया । मध्या यज्ञं धेनुं समञ्जसाधे । तं प्रत्यधायां येनक्षित्रं देवानाम् ॥३३॥

हे दिव्य अध्वर्यु अश्विनोकुमारो ! आप सूर्य के सम्मान कार्त्तिक्यान् राव के द्वारा यहाँ आई और यधुर हवियों द्वारा यज्ञ को उत्तम रीति से सम्पन्न करें ॥३३॥

[तं प्रत्यधायां अथ केन्द्र, देवानां ध्वर्यु य धेनुं तत्त्विक उदु ये प्रत्युक्त हुए हैं । (तं प्रत्यधायां अथ केन्द्र के समर्थ मंत्र २१ में मिले का बुके हैं, जिस देवकाय ७ (६२ का है) ।]

१७२९. आ नऽ इन्द्राभिर्विदधे सुशस्ति विद्यानरः सविता देवऽ रतु । अपि यथा पुत्रानो मत्सथा नो विश्वं जगद्भिपित्वे मनीषा ॥३४॥

इन सभी प्राणियों के परम हितकारी हे सवितादेव ! आप हमारे श्रेष्ठ अन्न से परिपूर्ण, प्रशस्ति यज्ञ-गृह में आगमन करें । संसार जीवन्त रहने वाले हे देवो ! आप यहाँ तृप्त होकर इस कर्त्तृ को अपनी बुद्धि द्वारा वृत्त करें ॥

१७३०. यदस्य कक्ष्यं वृत्रहन्नुदगाऽ अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते यज्ञो ॥३५॥

सूर्य के द्वारा अन्धकार की भाँति शत्रुओं का विनाश करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप यहाँ कहीं भी अहित होते हैं, वे सब आपके अधिकार में होते हैं ॥३५॥

१७३१. तरणिर्विष्टदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा धासि रोचनम् ॥३६॥

हे सूर्यदेव ! आप संसार को तराने वाले, संसार के दर्शन योग्य और तेज के उत्पत्तिकर्त्ता हैं । आप संसार को अपनी तेजस्विता से प्रकाशित करने वाले हैं ॥३६॥

१७३२. तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततयं सं जघार । यदेदमुक्तं हरितः सधस्थादाव्राज्जी वासस्तनुते सिमस्मै ॥३७॥

सूर्यदेव की वह दिव्यता और महता अत्यन्त व्यक्त है, जो संसार के मध्य स्थित होकर, विस्तीर्ण ग्रह-मण्डल का निर्माण करने वाली और संहरकर एकीभूत करने वाली है । जब वे देव अपनी हरित-वर्ण-किरणों को आकाश से विलग कर केन्द्र में धारण करते हैं, तब रात्रि इस ब्रह्माण्ड के ऊपर रहन रहिमा का आवरण डाल देती है ॥

१७३३. तन्मित्रस्य वरुणस्याभिच्छब्दो सूर्यो रूपं कृणुते क्षौरुपस्थे । अनन्तमन्यद्वृत्तस्व पात्रः कृष्णमन्यद्वृत्तः सं भरन्ति ॥३८॥

सुरोक्त के अंक में स्थित सूर्यदेव, मित्र और वरुणदेव का वह रूप प्रकट करते हैं, जिससे वे मनुष्यों को सब ओर से देखते हैं । इन सूर्यदेव का एक रूप शुद्ध, चैतन्य, निर्गुण है तथा दूसरा इन्द्रियगम्य सगुण स्वरूप है, उसे दिखाई धारण करते हैं ॥३८॥

१७३४. ऋषमर्हो२ असि सूर्य बडादित्य मर्हो२ असि । महस्ते सतो महिमा पनस्यतेद्धा देव  
मर्हो२ असि ॥३९॥

हे सूर्यदेव आप विह्वल ही स्वप्ने महान् हैं । हे अर्धादित्य । आपके महान् होने के कारण आपकी महत्ता की  
सब स्तुति करते हैं हे-देव । आप निरुच्य हो सन्तुष्ट हैं ॥३९॥

१७३५. बद् सूर्य भवसा मर्हो२ असि सज्ञा देव मर्हो२ असि । मद्वा देवानामसूर्यः पुरोहितो  
विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥४०॥

हे सूर्यदेव ! आप धनादि सम्पदा को प्रकट करने वाले होकर महान् हैं । हे देव प्राणियों के हितकारी, देवों  
में अग्र प्रतिष्ठित, सर्वव्यापक, अविनाश और देवस्वी आप बन्ध करने के कारण मनुष्य को प्राप्त हैं ॥४०॥

१७३६. आयन्तऽ इव सूर्य विशेदिन्नस्य भक्षत । वसूनि जाते जनमानऽ ओजसा प्रति  
भागं न दीधिम ॥४१॥

सूर्य प्रकाश का आश्रय लेकर विस्तार करने वाले रश्मियों सम्पन्न आन्यादि पदार्थों का उपयोग करती हैं  
वैसे ही हम लोग अपने लिए और उत्पन्न होने वाली सन्तान उत्पत्ति के लिए ओजस् के भाग को वारण करें ॥

१७३७. अद्या देवाऽ उदिता सूर्यस्य निरध्वंसः पिपृता निरवद्यात् । तन्नो मित्रो वरुणो  
मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत धौः ॥४२॥

हे देवो ! आज सूर्योदय काल की दिव्य प्रकाश रश्मियाँ हमें पापों से रक्षित करें और अपयज्ञ से दूर करें  
मित्र, वरुण, सिन्धु, पृथ्वी और ध्रुव लोक हमारी मनेकामनाओं को पूरा करें । ॥४२॥

१७३८. आ कृष्योन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च । हिरण्ययेन सविता रथेना  
देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥४३॥

उत्पत्तिकाल की रश्मियों कृषी स्वर्णिय रथ पर आरुढ़ सविता देव, वहन अभिलाषुक अनन्तरिक्ष पथ में भ्रमण  
करते हुए, देवों और मनुष्यों को बड़ादि श्रेष्ठ कर्मों में निवेशित करते हैं । ये सम्पन्न लोकों को प्रकाशित करते  
हुए अर्थात् उनका निरीक्षण करते हुए निकलते हैं ॥४३॥

१७३९. प्र वावृजे सुप्रया बहिरिषामा विष्पतीष बीरिटऽ इथाते । विशामिक्तोरुवसः पूर्वहूतौ  
वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥४४॥

सम्पन्न प्राणियों के कल्याण के लिए 'नियुत' संज्ञा करते वहन में आरुढ़ वायुदेव और पूषादेव, रात्रि के  
अन्त में उषाकाल के पूर्व मनुष्यों द्वारा बुलाये जाने पर अनन्तरिक्ष से इस प्रकार आते हैं, जैसे राजा पथार रहे हों  
इन दोनों देवों के लिए यज्ञशाला में उत्तम प्रकार से कुस-आसन प्रस्तुत किये जाते हैं ॥४४॥

१७४०. इन्द्रवायु बृहस्पति मित्राग्निं पूषणं भवम् । आदित्यान् मास्तं गणम् ॥४५॥

यज्ञशाला में हम इन्द्र, वायु, बृहस्पति, मित्र, अग्नि, पूषा, बव, अर्धादित्ययन् और महद्गण आदि देवों का  
आवाहन करते हैं ॥४५॥

१७४१. वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरुतिभिः । करतां नः सुराग्रस्तः ॥४६॥

वरुणदेव और मित्रदेव अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति द्वारा हमारी उत्तम प्रकार से रक्षा करें और हमें  
पशान् ऐश्वर्य-सम्पन्न बनाएँ ॥४६॥

१७४२. अग्निं न ऽ इन्द्रैषां विष्णोः सखात्पानाम् । इता मरुतो अग्निना । तं प्रत्नधायं येनो  
ये देवास ऽ आ न ऽ इहाभिविश्वेष्टिः सोम्यं मरुतोमास्सुहृषणीधृतः ॥४७॥

हे इन्द्रदेव ! हे विष्णो ! हे मरुतो ! हे अग्निनीकुमारो ! आप सब हमारे सखातीय अनुष्ठानों के मध्य में आगमन  
करें । आप हमारे सब प्रकार से संरक्षक हों और हमें धारण करने वाले हों ॥४७॥

[ तं प्रत्नम् (७।१२) , अग्ने देव (७।१६) , ये देवाः (७।१९) और आ न इहाभिः (३३।३४) , ये चारों पत्रों के  
प्रतीक रूप में हैं । ]

१७४३. अग्नऽ इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्षं प्र यन्त मारुतो विष्णो । उभा नासत्या रुद्रो  
अथ ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥४८॥

हे अग्नि, इन्द्र, वरुण, मित्र, मरुतो, और विष्णु आदि देवताओं ! आप हमें साथध्वं प्रदान करें । दोनों  
अग्निनीकुमार, रुद्र, देवपालियों, पूषा, भग और सरस्वती हमारी इविषां ग्रहण करें ॥४८॥

१७४४. इन्द्राग्नी मित्रावरुणादिति ऽं सः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वतांर अपः । हुवे विष्णुं  
पूषणं ब्रह्मणस्पतिं धगं नु श ऽं स ऽं सविता रमृतये ॥४९॥

इन्द्राग्नी, मित्रावरुण, अदिति, पृथ्वी, सुलोका, आदित्य मरुत, पर्वत समूह, जल, विष्णु, पूषा, ब्रह्मणस्पति, भग  
और सविता सविता आदि देवों का हम आवाहन करते हैं । वे जहाँ स्तोत्र पछारे एवं हमारी रक्षा करें ॥४९॥

१७४५. अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृजहत्ये भरहृतां सजोषाः । यः शश्वसते स्नुवते धाधि  
पन्नऽ इन्द्रज्येष्ठा अस्मांर अवनु देवाः ॥५०॥

जो स्तुति करता है, स्तोत्रों का पाठ करता है, अर्जित धन से इविषों को समर्पित करता है, उस यजमान के  
लिए और हमारे लिए धन-धान्यादि की कर्षा करने वाले रुद्रदेव तक वृजसुर का नाश करने वाले, पर्वतों का इनन  
करने वाले, संशय में सहायता देने वाले, देवों में अधिक इन्द्रदेव आदि हमारी रक्षा करें ॥५०॥

१७४६. अर्वाज्यो अद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम् । त्राष्यं नो देवा  
निजुरो वृकस्य त्राष्यं कर्तादिवपदो यजत्रः ॥५१॥

याज्ञिकों की रक्षा करने वाले हैं देखो ! आप हमारे समीप आएं जिससे हम भयभीत याज्ञिक हृदय में  
प्रेम भाव की अनुभूति कर सकें । अत्यन्त हिंसक वृक रूप धारण करने से हमें मुक्त करें और पाप रूप नुरे  
कृत्यों से हमें रक्षित करें ॥५१॥

१७४७. विष्टे अद्य मरुतो विष्टऽ उती विष्टे भवन्त्वन्वयः समिद्धाः । विष्टे नो देवाऽ अवसा  
गमन्तु विष्टमस्तु ब्रविणं वाजो अस्मे ॥५२॥

आज हमारे इस यज्ञ में समस्त षष्ठ्यं आगमन करें । रुद्र, आदित्य आदि सब देवगण पछारे ।  
समस्त देवगण हमारी रक्षा के निमित्त आएँ । सम्पूर्ण गर्हापत्वादिक अग्निर्वा प्रवृद्ध हों और हमें सब प्रकार  
का धन-धान्य प्रदान करें ॥५२॥

१७४८. विष्टे देवाः शृणुतेम ऽं हवं मे ये अन्तरिक्षे यऽ उप द्यवि च । ये अग्निजिह्वा ऽ  
उत वा यजत्रा ऽ आसन्वास्मिन्वर्हिषि यादवध्वम् ॥५३॥

जो अन्तरिक्ष में हैं, जो सुलोक में हैं, जो सुलोक के समीप हैं और जो (अग्नि मुख वाले) यजन के योग्य हैं,  
ऐसे विष्ट के समस्त देवता हमारे आवाहन को स्वीकार कर इस कुल-आत्मन का विराजमान हों और हमारे द्वारा  
समर्पित इविषों से तृप्त हों ॥५३॥

१७४९. देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योमृतत्वं च सुवासि वागमुत्तमम् । आदिहामानं च सवितर्य्यर्णुषेनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ॥५४॥

हे सवितादेव ! उदयकाल में आप यज्ञ के योग्य देवों को अमृतमय सारतत्त्वों का उत्तम भाग प्रदान करते हैं, अर्थात् सबको अग्निहोत्र करने की श्रेष्ठ प्रदान करते हैं । फिर उदित होकर दीप्तिमान् रश्मियों को विस्तार करते हैं और प्राणियों के निमित्त रश्मियों के द्वारा जीवन का विस्तार करते हैं ॥५४॥

१७५०. प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्विं विष्टवारं रघवाम् । श्रुतधामा नियुतः पत्न्यमानः कविः कविमिवक्षसि प्रयज्यो ॥५५॥

हे अध्वर्युगण ! आप व्यापक बुद्धि से सम्पन्न यज्ञादि कार्यों में नियुक्त हैं आप महान् ऐश्वर्यसम्पन्न, ज्ञानदर्शी, सब में व्याप्त, रथों से सम्पन्न और तेजस्वी वायुदेव की उत्तम बुद्धि द्वारा स्तुति करें ॥५५॥

१७५१. इन्द्रवायू इमे सुता उष प्रयोधिरा नतम् । इन्द्रो वामुशन्ति हि ॥५६॥

हे इन्द्र और वायो ! आपके लिए यह सोम रस अभिषुत किया गया है, इस सोम के पान के निमित्त आप यहाँ अतिशय पथरों, ये सोमदेव आपका स्नेह प्राप्त करने को इच्छा करते हैं ॥५६॥

१७५२. मित्रं च हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशद्दसम् । धियं घृताचीं साधना ॥५७॥

पवित्रता प्रदान करने वाले मित्रदेव और पापों का शमन करने में समर्थ वरुणदेव का हम आवाहन करते हैं वे तेजस् से सित मेधा को धारण करते हैं ॥५७॥

१७५३. दत्ता युवाककः सुता नमस्त्या वृकवर्हिः । आ घातं रुद्रवर्तनी । तं प्रत्यधाय वेनः ॥५८॥

हे रुद्र के समान प्रवृत्ति वाले, दर्शनीय, अतिनोकुमारो ! आप यहाँ आएँ और बिल्ली हुई कुशाग्रों पर विराजमान हो तथा प्रस्तुत संस्कारित सोम का पान करें ॥५८॥

[तं प्रत्यधाय (यजु० १९१) और आ घातं (यजु० १९६) दोनों वाक्यों का अर्थ है ।]

१७५४. विदधदी सरथा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सद्यधकः । अग्रं नयत्सुपथक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥५९॥

उत्तम चरणों में विभक्त, सर्वप्रथम यज्ञश्रमण में स्फुरित दिव्यवाणी, परम सत्य अमृत तत्त्वों का उपदेश कर हमें आगे बढ़ाती है । इस दिव्य वाणी से सुशोभित विद्वान् ब्रह्मरत्न में प्रसार खण्डों द्वारा अभिषुत सोमरस का सेवन करते हैं ॥५९॥

१७५५. नहि स्पशमविदन्नन्यमस्माद्वैशानरात्पुरः स्तारभग्नेः । एमेनमवृधन्नमृता ऽ अमर्त्यं वैशानरं क्षेत्रजित्याय देवाः ॥६०॥

देवों ने इस विश्व के द्वैतको अग्निदेव से भिन्न, सब कार्यों में अग्रणी (अन्य किसी को) नहीं जाना, उन्होंने इनके अविनाशीरूप को जानकर विश्व के द्वैतकारी वैशानर अग्नि (प्रजिह्वों में स्थित) को, यज्ञमान द्वारा प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रवृद्ध किया ॥६०॥

१७५६. उग्रं विघनिना मूषऽ इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृहातऽ ईदृशे ॥६१॥

हम उग्र बल वाले, शत्रुनाशक इन्द्राग्नी का आवाहन करते हैं । वे इस प्रवण युद्ध (जीवन संग्राम) में हमारा कल्याण करें ॥६१॥

१७५७. उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अग्नि देवार् र इयक्षते ॥६२॥

हे ऋत्विजो ! छत्रे से निस्सृत होने वाले, ओषधकलश में स्थिर होने वाले, देवों की कामना वाले तथा पवित्र हुए सोम रस के लिए आप स्तुतियों का गायन करें ॥६२॥

१७५८. ये स्वाहिहृत्वे मधवज्ज्वर्धन्ये शाम्भरे हरिवो ये गविष्ठी । ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्रः  
पिबेन्द्र सोमं सगणो मरुद्भिः ॥६३॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! जिन मेघाकी मरुद्गणों ने आपको अहि जम्बक जनु का हनन करने में और शंबर को विनष्ट करने में आगे बढ़ाया तथा जिन्होंने गौओं को छुड़ाकर स्तुते हुए आपकी स्तुति दी की, ये मरुद्गण सदा आपका अनुमोदन करते हैं । हे हरितवर्ण अश्व वाले इन्द्रदेव ! आप उन मरुद्गणों के साथ खेलपान करें ॥६३॥

१७५९. अनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय मन्द्रऽओजिष्ठो बहुलाभिमानः । अवर्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र  
माता यक्षीरं दधनन्निष्ठा ॥६४॥

हे इन्द्रदेव ! आप उग्र, हर्षवर्द्धक, ओजस्वी, अहि बलाभिमानी, घेगवान्, साहसीरूप में प्रकट हुए हैं । यहाँ वृत्रवध कार्य में मरुद्गणों ने आपको स्तुति कर सन्तुष्ट किया, उसी कार्य के निमित्त माता अर्द्धति ने आपको गन्ध में धारण किया, यह कार्य आपका महान् है ॥६४॥

१७६०. आ तू नऽ इन्द्र वृत्रहृत्स्माकमर्धमा गहि । महान्महीभिर्कृतिभिः ॥६५॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव । आप अपने रक्षण कार्य में महान् हैं, ऐसे अथ हमारे पास यज्ञशाला में पधारें और हमारे इस यज्ञस्थल को सुशोभित करें ॥६५॥

१७६१. त्वमिन्द्र प्रतूर्तिर्ज्वभि विश्वाऽ असि स्युधः । अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्ध्वं  
तरुष्यताः ॥६६॥

हे इन्द्रदेव, आप युद्ध स्थल पर साम्रम के लिए उत्पन्न जनु-सेनाओं को पराजित करते हैं, आप सुख-उत्पादक, दुःख-विनाशक और सब जनुओं के नरक हैं । आप हमारे दिव्य जनुओं को विनष्ट करें ॥६६॥

१७६२. अनु ते तूर्ध्वं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशु न मातरा । विश्वास्ते स्युधः श्वधयन्त मन्यवे  
वृत्रं यदिन्द्र तूर्ध्वसि ॥६७॥

हे इन्द्रदेव ! जनुओं पर शीघ्रता से आपात करने वाले आपके बल की क्षात्र-पृथ्वी उसी प्रकार प्रशंसा करती है, जिस प्रकार माता-पिता अपने शिशु को पालन देते हैं । जब आप वृत्र का मर्दन करते हैं, उस समय सम्पूर्ण जनु-सेना भय से शिथिल हो जाती है ॥६७॥

१७६३. यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नषादित्यासो भवता मृडयन्तः । आ योर्वाची  
सुमतिर्वदत्यादं होमिष्ठा वरिवोक्तिरास्तु ॥६८॥

देवताओं के सुख के निमित्त यज्ञ का प्रवेष करते हैं, अतएव हे आदित्यम्न ! आप हम सबके लिए कल्याणकारी हैं । आपको शुभ संकल्पवृत्त मति हमें उपलब्ध हो । यज्ञात्याओं की जो बुद्धि घनोपाजन में संलग्न है, वह भी हमारे अनुकूल हो ॥६८॥

१७६४. अदब्धेभिः सवितः पायुभिर्ह्य ऽं शिवेभिरस्य परि पाहि नो गयम् । हिरण्यजिह्वः  
सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अवश ऽं सऽ ईशत ॥६९॥



हे सवितृदेव ! स्वर्णमयो जिह्वा ( स्वर्णिम रस्मिन्वी ) आले आप कल्याणकारी रक्षण साधनों से हमारे गृह तथा सुख की रक्षा करें जिससे कोई हिंसक सत्तु हम पर अधिकार न कर सके ॥६९॥

१७६५. प्र वीरया शुचयो दद्विरे वापध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतास्तः । वह वायो नियुतो याहाच्छा पिबा सुतस्यान्यसो मदाय ॥७०॥

हे यजमान दम्पती ! आप दोनों अध्वर्युओं द्वारा कृष्णों से कूटकर अभिभुत हुए उत्तमध्वर तुल्य पवित्र सोम को तैयार करें । हे वायो ! आप अपने अश्वों को नियोजित कर रथ को लम्बे और यज्ञ के समीप आकर आनन्द प्राप्ति के लिए अभिभुत सोम का पान करें ॥७०॥

१७६६. गावऽ उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥७१॥

हे जसधाराओं जिस प्रकार किरने पृथ्वी और छाया दोनों रूपों को व्याप्त कर रक्षित करती हैं, उसी प्रकार स्वर्णिम कानों से (स्तुति सुनकर) आप हमारे यज्ञ के समीप आकर हमारी रक्षा करें ॥७१॥

१७६७. काव्ययोराजानेषु कृत्वा दक्षस्य दुरोणे । रिशादस्त सधस्थऽ आ ॥७२॥

विद्वानों के हितोंको हे मिश्रवरुणदेव । यज्ञदि श्रेष्ठ कार्य करने में दक्षता प्राप्त आप इस याज्ञक के यज्ञ स्थान में सोमरस पान एवं यज्ञ कर्म सम्पादन के निमित्त आश्रयन करें ॥७२॥

१७६८. दैव्यावध्वर्यु आ गतं रथेन सूर्यत्वचा । मध्वा यज्ञस्य समग्नाये । तं प्रत्यधाय वेनः ।

दिव्य अध्वर्यु हे अग्निनीकुमारो ! आप सूर्य के समान कान्तिमान् रथ में आकृष्ट होकर यहाँ यज्ञस्थल पर पधारें और मधुर हविषों से यज्ञ को सम्पन्न करें ॥७३॥

१७६९. तिरछीनो विततो रश्मिरेचामधः स्विदासीद्दुपरि स्विदासीद् । रेतोधाऽ आसन्महिमानऽ आसन्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥७४॥

पवित्र होने वाले सोम की रश्मियों का प्रकाश विरक्त होकर बहुत दूर तक विस्तीर्ण हुआ है वह नीचे की ओर भी स्थित है और ऊपर की ओर भी है । ये रश्मियाँ धीरे धीरे अर्धतुल्य- समता को धारण करने वाली हैं और व्यापक महिमा वाली (समर्थमान) हैं । संसार को धारण करने वाला कार्य और आत्मा को प्रेरित करने का कार्य बहुत ऊँचा (मान्य) है ॥७४॥

१७७०. आ रौदसी अपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो अघारयन् । सो अध्वराय परि पीयते कविरत्यो न वाजसातये वनोहितः ॥७५॥

जिस समय वैश्वानर अग्निदेव उत्पन्न होते हैं उस समय यजमान यज्ञ स्थान में उन्हें धारण करते हैं । वह धावा-पृथ्वी और व्यापक अन्तरिक्ष को प्रकाश से व्याप्त करते हैं । ये ब्रह्मदसी वैश्वानर अग्निदेव हमारे हितकारी यज्ञ के लिए सब ओर से वैसे ही कर्म किये जाते हैं, जैसे अन्न अन्न प्राप्ति के लिए सब ओर विद्यरता है ॥७५॥

१७७१. उक्थेभिर्वृत्रहन्तया या मन्दाना पिदा गिरा । आह्नुषैराविवासतः ॥७६॥

वृत्रासुर का हनन करने वाले, आनन्ददायी स्वच्छ वाते इन्द्र और अग्निदेव की उत्तम स्तोत्रों उक्थों द्वारा सम्यक् रूप से वन्दना करते हैं ॥७६॥

१७७२. उप न सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य वे । सुमृडोका भवन्तु नः ॥७७॥

जो प्रजापतिदेव के पुत्र अकिञ्चशी विश्वेदेवा हैं, वे हमारे स्तुतियों को स्वीकार करें और मत्तीप्रकार हमारा कल्याण करें ॥७७॥

१७७३. ब्रह्माणि मे मतयः शतं सुतास्तु शुभ्यऽ इत्यर्तिं प्रभृतो मे अग्निः । आ शासते प्रति  
हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥७८ ॥

(इन्द्र-मरुत् संवाद के अंतर्गत इन्द्रदेव कहते हैं) हे मरुत् ! विद्या से अर्चयित्व हुए मननशील पुरुषों द्वारा  
की गई स्तुतियों अत्यंत सुखद हैं । वे इन उक्थरूप स्तोत्रों को प्राप्त करने की इच्छा करते हैं । हमारे अथ हमें वहाँ  
(यज्ञस्थल पर) पहुँचाएँ ॥७८ ॥

१७७४. अनुत्तमा ते मधवप्रकिर्नु न त्वाप्यार अस्ति देवता विद्वान् । न जायमानो नशते न  
जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥७९ ॥

हे ऐश्वर्यशालिन् (इन्द्र) कोई पदार्थ ऐसा नहीं जो आपके द्वारा संज्वलित न हो, आपके सदृश विद्वान् देव  
अन्य कोई नहीं है । हे वृद्धि को प्राप्त देव ! आपके सदृश न कोई पैदा हुआ है, न पैदा होने वाला है । आप जिन  
कर्मों को करेंगे, उन्हें कोई अन्य न करेगा है और न कर सकेगा ॥७९ ॥

१७७५. तदिदास धुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञऽ उग्रस्त्वेबन्मृणः । सद्यो जज्ञानो नि रिणाति  
शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥८० ॥

सम्पूर्ण लोकों में वह इन्द्रदेव ही सर्वश्रेष्ठ हैं । जिनसे प्रकाश स्वरूप, ज्योतिष्मान्, श्रेष्ठ सूर्यदेव उत्पन्न हुए  
हैं, जो उत्पन्न होकर शीघ्र ही तमरूप शत्रुओं को नष्ट करते हैं । रक्षा करने वाले सम्पूर्ण देवगण उनकी प्रसन्नता से  
प्रसन्न होते हैं ॥८० ॥

१७७६. इमाऽ उ त्वा पुरुवसो गिरो वर्धन्तु य मय । पावकवर्णाः शुच्यो विपश्चितोभि  
स्तोमैरनुषत ॥८१ ॥

हे बहुल सम्पत्ता के धनी आदित्य ! हमारी कर्णीरूप स्तुतियों विश्व ही आपको श्री वृद्धि करें । अग्नि के  
सदृश पवित्र-तेजस्वी रूप को जलने के लिए विद्वान् स्तोत्रों से आपको सब प्रकार से स्तुतियों करते हैं ॥८१ ॥

१७७७. यस्यायं विश्वऽ आयो दासः शेषाक्षिणा अरिः । तिरस्त्रिदये रुशमे पवीरवि तुष्येत्सो  
अज्यते रयिः ॥८२ ॥

समस्त श्रेष्ठ मानव जिनके (इन्द्रदेव के) सेवक हैं और अनुदारभक्त जिनके शत्रुरूप हैं, धन की रक्षा के निमित्त  
आयुधधारी इन देवगणों के उपयोग के लिए ही यह समस्त वैभव प्रकट होता है ॥८२ ॥

१७७८. अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्रऽ इव पप्रथे । सत्यः सो अस्य महिमा गृणे  
शक्नो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥८३ ॥

ये इन्द्रदेव ऋषियों के द्वारा बत्तों से संयुक्त किये गये हैं । इन कान्तिमान् देव की बल-महता सत्य है  
वे समुद्र के समान विस्तीर्ण हैं । हम यज्ञों में विप्रजनों के विदेहानुसार सहस्रों प्रकार से उनकी महिमा का  
स्तवन करते हैं ॥८३ ॥

१७७९. अदक्षोभिः सवितः पायुभिह्वलं शिखेभिरक्ष परि पाहि नो गधम् ।  
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अपश्रथ्मऽ ईशत ॥८४ ॥

हे सवितादेव ! स्वर्णमयी जिह्व वाले, सत्वमयी आप ठाक ठाकने कल्याणप्रद श्रेष्ठ रक्षण-साधनों  
द्वारा हमारे गृह को रक्षित करें । स्वीन सुख ऋषि के निमित्त हमें चरिरक्षित करें । हिंसक शत्रु हम पर प्रभुत्व  
न कर सकें ॥८४ ॥

**१७८०. आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मणिः ।**

**अन्तः पवित्रऽ उपरि श्रीणानोयन्थं शुक्रो अयामि ते ॥८५॥**

हे वायो, आप हमारे इस दिव्यतम का स्पर्श करने वाले श्रेष्ठ यज्ञ में पधारें। ऊपर से सिञ्चित हुआ अक्राशोय सोम पत्र में स्थित होता है। श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा स्तुति करते हुए हम इसे आपके लिए अर्पित करते हैं ॥८५॥

**१७८१. इन्द्रवायू सुसन्दृशा सुहवेह इवामहे । यथा नः सर्वऽ इज्जनोनमीकः सङ्गमे सुयनाऽ असत् ॥८६॥**

यहाँ इस यज्ञ में उत्तम रूप से देखने वाले, उत्तम रूप से आहूत किये जाने योग्य इन्द्र और वायुदेव का हम आवाहन करते हैं, जिससे कि हमारे पुत्र-पौत्रादि जन व्याधिरहित एवं उत्तम पत्र वाले हों ॥८६॥

**१७८२. ऋषगित्था स मर्त्यः जशमे देवतातये । यो नूनं मित्रावरुणावधिष्टयऽ आचक्रे हव्यदातये ॥८७॥**

निष्ठाय ही जो मनुष्य अभीष्ट स्वप्न के लिए और हविदान के लिए मित्रावरुणदेव का आवाहन करते हैं, वे मनुष्य देवकर्म करते हुए कस्याप को प्राप्त होते हैं ॥८७॥

**१७८३. आ घातमुप भूवतं पञ्चः पिबतमघिना । दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्षिहमा गतम् ॥८८॥**

हे अश्विनीकुमारों ! आप दोनों हमारे यज्ञ में पधारें और इस यज्ञ की शोभा बढ़ाएँ। यहाँ आकर मधुर रसों का पान करें। हे वर्षणशील देवों और घन के स्वामियों ! आज हमें दुग्धादि पद्यों से अभिपूरित करते हुए, यहाँ आगमन करें। हमें पीड़ित न करें ॥८८॥

**१७८४. प्रीतु ब्रह्मणस्पतिः देव्येतु सुनुता । अच्छा वीरं नर्यं पशुक्तिरायसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥८९॥**

ब्रह्मणस्पति हमारे अनुकूल होकर यज्ञ में आगमन करें। हमें सत्त्वरूप दिव्यवाणी प्राप्त हो। मनुष्यों के हितकारी देवगण हमारे यज्ञ में पंक्तिबद्ध होकर पधारें तथा शत्रुओं का विनाश करें ॥८९॥

**१७८५. चन्द्रमाऽअप्यवन्तरा सुपर्णो धावते दिवि । रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं हरिरेति कनिक्रवत् ॥९०॥**

चन्द्रमा से निस्सृत, शुभ दीप्तियुक्त, तेजस्विता को धारण किये हुए हरिताम सोम पर्जन्यरूप में घोर गर्जन करते हुए ध्रुवोक्त एवं अन्तरिक्ष से गमन करते हैं। वे मनुष्यों द्वारा कञ्चित् स्वर्ण सदृश तेजस्वी धन्यों को प्रदान करते हैं ॥९०॥

**१७८६. देवं-देवं सोवसे देवं-देवमधिष्टये । देवं-देवन्तं हुवेम वाजससिथे गृणन्तो देव्या धिया ॥९१॥**

श्रेष्ठ स्तोत्रों से स्तुति करते हुए हम अपने राजा के लिए देवों के अधिपति का आवाहन करते हैं। अभीष्ट सुख प्राप्ति के लिए हम देवाधिपति देव को आहूति समर्पित करते हैं और अन्न प्राप्ति के लिए हम सर्वोच्च देव का इस यज्ञ में आवाहन करते हैं ॥९१॥

१७८७. दिवि पृष्ठो अरोचताग्निर्वैश्वानरो बृहन् । क्षमया वृश्चानऽ ओजसा चनोहितो ज्योतिषा बाधते तमः ॥९२॥

सब मनुष्यों के हितों की महान् अग्निदेव धुलोक के पृष्ठ में दीप्तिमान् होते हैं । धुलोक में मनुष्यों द्वारा प्रदत्त हवियों से प्रवृद्ध होकर अपने ओज से अज्जदि में वृद्धि कर मनुष्यों का बोध करते हैं और अपनी ज्योति द्वारा तमिस्रा को नष्ट करते हैं ॥९२॥

१७८८. इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात् पट्टतीभ्यः । द्विती शिरो जिह्वया वाक्दच्चरन्निधंशत्पदा न्यक्रमीत् ॥९३॥

हे इन्द्राग्नी । यह उषा पादरहित होकर भी पादयुक्त प्राणियों से पूर्व आगमन करती है । स्मिररहित होते हुए भी उन प्राणियों के स्मिरों को प्रेरित करती है । वह प्राणियों की वाग्निद्वय द्वारा सन्ध करती हुई आगे बढ़ती है और एक दिन में तीस पदों (मुहूर्तों) को लँघकर आगे बढ़ती है ॥९३॥

१७८९. देवासो हि ऽप्य मनवे समन्वयो विसे साकं सरसतः । ते नो अद्य ते अपरं तुवे तु नो भवन्तु वरिषोविदः ॥९४॥

हे सब मनवशील प्रवृत्ति वाले, दानशील, अति पराक्रमी विश्वेदेव, समानरूप से हमारे लिए आज धनादि प्रदान करें । वे भविष्य में भी हमारे पुत्र-पौत्रादि के निमित्त विविध ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हों ॥९४॥

१७९०. अपाधमदभिः शस्तीरशस्तिहायेन्द्रो घुम्याभवत् । देवास्तऽ इन्द्र सस्रधाय येभिरे बृहदधानो मरुद्गण ॥९५॥

इन्द्रदेव उच्छृङ्खल पुरुषों को प्रतडित करते हैं, तिसक शत्रुओं को दूर भगाते हैं और अग्नादि ऐश्वर्यों से समृद्ध करते हैं । हे इन्द्रदेव ! हे अग्निदेव ! हे यज्जन्वो ! सब देवगण आपके मित्र-भाव को प्राप्त करने के लिए यत्नशील हैं ॥९५॥

१७९१. प्र वऽ इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत । वृत्रं च हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥९६॥

हे मरुद्गणो ! आप लोग व्यापक महिमा वाले इन्द्रदेव के लिए वेद-स्तोत्रों का उच्चारण करें, वह वृज्जन्ता और शतकर्मा इन्द्रदेव सौ प्राणि वाले कब्र से वृत्र-असुर का हनन करते हैं ॥९६॥

१७९२. अस्येदिन्द्रो वावृषे वृष्यं च श्रवो मदे सुतस्य विष्णवि । अद्या तमस्य महिमानमायवो नुष्टुवन्ति पूर्वथा । इमाऽ उ त्वा यस्यायययं सहस्रमूर्ध्वऽ ऊषु णः ॥९७॥

हे इन्द्र-विष्णुदेव सोमरस से आनन्दित होकर वज्रधन के रत्न पराक्रम को प्रवृद्ध करते हैं । वे यजमान पूर्वकालीन ऋषियों के सम्पन्न उन इन्द्रदेव की महिमा की सम्पत्करूप से स्तुति करते हैं ॥९७॥

[ ' इमा उ त्वा ' (३३ ८२) ' वस्यम् ' (३३ ८२) , ' अय सहस्रम् ' (३३ ८३) और ' ऊर्ध्व ऊषु णः ' (२१ ८२) सर्वांगीय पदों के प्रतीक अंग रूप हैं । ]

## —ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

**ऋषि**—वत्सजी १ । विष्णु २, ४ । गोतम ३ । कुत्स ५, २९, ३७-३८, ४२, ६८ । कामदेव ६, ५४, ६५ ।  
 विष्णुमित्र ७, २२, २६, ६०, ६३, ७५ । चरदास ८, ९, १३, ६९, ६९, ८४ । मेघातिथि १०, ४५-४६, ८१-८३,  
 ९७ । पराशर शाकल्य ११ । अत्रिद्विहारा विश्वामित्र १२ । अतिष्ठ १४, १८, २०, ४४, ७०, ७६, ८८ । प्रत्यक्ष  
 १५, ३१, ३२, ३६ । कामदेव मोक्ष १६ । सुखेयनक १७, ५२ । पुष्पोद-अम्बरीष १९, ७१ । सुनीति, अवतार  
 काश्यप, वेन २१ । सुवीक २३ । विशोक २४ । मधुच्छन्दा २५, ५७ । अगस्त्य २७, ३४, ७८-७९ । गौरीविति  
 शाकल्य २८ । विष्णु सौर्व ३० । प्रत्यक्ष, अवतार काश्यप, वेन, कुत्स आभिरस ३३ । श्रुतकथ-सुकथ ३५ ।  
 जमदग्नि ३९-४०, ८५, ८७ । नृपेय ४१, ६६-६७, ९५-९६ । हिरण्यस्तुप आंगिरस ४३ । कुसीदी वरुण,  
 अवतार काश्यप, वेन, कुत्स आभिरस, अगस्त्य मेघातिथि, मधुच्छन्दा ४७ । अतिथि ४८ । अवतार काश्यप  
 ४९ । प्रगाथ ५० । कूर्म मत्स्य ५१ । मुद्गेत ५३, ७७, ९३ । आदित्य चक्रवर्त्य, ऋषि ५५-५६ ।  
 मधुच्छन्दा, अवतार काश्यप, वेन ५८ । कुम्भिक ५९ । देवस अवका अस्ति ६२ । गौरीविति ६४ । दध ७२ ।  
 प्रत्यक्ष, अवतार काश्यप, वेन ७३ । परमेष्ठी प्रजापति ७४ । मुद्गेत चक्रवर्त्य ८० । अयस ८६ । कथ ८९ ।  
 श्रुत आदित्य ९० । मनु वैवस्वत ९१ । मेघ ऐन्द्र ९२ । मनु ९४ ।

**देवता**—अग्नि १-७, ९, १७ । विष्णु ८, ६०, ७५, ९२ । इन्द्र १८-२०, २२-२९, ५९, ६३-६७, ७१, ९०,  
 ९५-९६ । इन्द्र विद्योदेव, वेन २१ । सूर्य ३०-३२, ३४-४३ । सूर्य विद्योदेव, वेन ३३, ७३ । विद्योदेव ४४-४६,  
 ४८-५४, ७७, ८९, ९१, ९४ । सूर्य विद्योदेव, वेन अग्नि ४७ । विष्णु ५५, ७०, ८५ । इन्द्र-विष्णु ५६, ८६ । मिश्रवर्त्य  
 ५७, ७२, ८७ । अश्विनी कुमार, विद्योदेव, वेन ५८ । इन्द्राग्नी ६१, ७६, ९३ । सोम ६२ । आदित्य ६८, ८१, ८३ ।  
 सविता ६९, ८४ । आश्विनी ७४ । इन्द्रावर्त्य ७८-७९ । यम ८०, ९७ । अश्विनीकुमार ८८ ।

**छन्द**—स्वराट् पंक्ति १, ५, ७, १६, १८ । गायत्री २, ९, १९, ४५-४६, ५६-५८, ६५, ७१, ७६ । निवृत्त  
 गायत्री ३, ४, २०, २१, २४, २५, ३१-३३, ३६, ६१, ६२, ७२, ७३, ७७ । पुरिक विष्टुप् ६, १७, २३, ६० । विष्टुप्  
 ८, ३४, ३७, ३८, ५०, ५१, ५३, ५५, ६३, ६४, ७४, ७९ । विष्टुप् गायत्री १० । विष्टुप् ११, २७, ४३, ६८,  
 ७०, ७८ । निवृत्त विष्टुप् १२, २२, ४२, ४४, ४८, ५२, ५४ । पुरिक पंक्ति १३, २६, २८, ५९ । अनुष्टुप् १४ ।  
 बृहती १५, ३९ । जगती २९ । विष्टुप् जगती ३० । पिपेलिकामय्य निवृत्त गायत्री ३५ । पुरिक बृहती ४०,  
 ९५ । निवृत्त बृहती ४१, ८१, ८२, ८६-८८, ९०, ९२, ९६ । स्वराट् आर्षी मयत्री ४७ । निवृत्त जगती ४९, ६९,  
 ७५, ८४ । पुरिक अनुष्टुप् ६६, ८९, ९३ । पंक्ति ६७, ८०, ९४ । निवृत्त पंक्ति ८३ । विष्टुप् बृहती ८५, ९१ ।  
 स्वराट् सतोबृहती ९७ ।

## ॥ इति त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

# ॥ अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

**१७९३. यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवेति । दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥१॥**

जाग्रत अवस्था में जिस प्रकार मन दूर-दूर कर्म करता है- सुप्तावस्था में भी उसी प्रकार (दूर-दूर) करता है, वही निश्चितरूप से तेजस्वी इन्द्रियों का ज्योतिरूप (प्रवर्तक) है। जीवात्मा का एकमात्र दिव्य माध्यम वही (मन) है। इस प्रकार का वह हमारा मन श्रेष्ठ-कल्याणकारी संकल्पों से युक्त हो ॥१॥

**१७९४. येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृष्यन्ति विदधेभु धीराः । यत्पूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२॥**

सत्कर्मों में संलग्न मनोयोगी जिस मन से यज्ञोप श्रेष्ठ कर्मों को सम्पादित करते हैं, जो सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर में विद्यमान है तथा यज्ञों में अपूर्व एवं आदरणीय भाव से जो सुशोभित होता है, वह हमारा मन श्रेष्ठ-कल्याणकारी संकल्पों से युक्त हो ॥२॥

**१७९५. यत्प्रज्ञानमूलं चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्ऽऽकृते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥३॥**

प्रखर ज्ञान से सम्पन्न चेतनशील तथा धैर्य-सम्पन्न जो मन है, सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तःकरण में अमर प्रकाश-ज्योति स्वरूप है, जिसके बिना कोई भी कार्य सम्पन्न न सम्भव नही, ऐसा हमारा मन श्रेष्ठ-कल्याणकारी शुभ संकल्पों से युक्त हो ॥३॥

**१७९६. येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तापते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥४॥**

जिस अविनाशी मन की सामर्थ्य से सभी भूत वर्तमान और भविष्यत् काल के ज्ञान को प्रत्यक्षीभूत किया जाता है तथा जिससे सप्त याज्ञिकों से युक्त यज्ञ को विस्तारित किया जाता है, ऐसा हमारा मन श्रेष्ठ-शुभ संकल्पों से युक्त हो ॥४॥

**१७९७. यस्मिन्नुक्तं साम यजूंश्च यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविचाराः । यस्मिंश्चित्तं च सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥५॥**

जिस मन में वैदिक ऋचाएँ प्रतिष्ठित हैं, जिसमें स्वयं व यजुर्वेद के मन्त्र उसी प्रकार स्थित हैं, जिस प्रकार रथ के पहिये में आगे स्थित होते हैं तथा जिस मन में प्रजाओं के सम्पूर्ण चित्तों का ज्ञान समाहित है, ऐसा हमारा वह मन कल्याणकारी-शुभ संकल्पों से युक्त हो ॥५॥

**१७९८. सुधारधिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेभीशुभिर्वाजिनऽ इव । इत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥६॥**

जिस प्रकार कुशल सारथी लगाम के नियन्त्रण से गतिमान अश्वों को गंतव्य पथ पर (इधर-उधर) ले जाते हैं, उसी प्रकार जो मन मनुष्यों को लक्ष्य तक पहुँचाता है, जो जगदीश्वर, अति वेगशील इयं हृदय स्थान में स्थित है, ऐसा हमारा मन कल्याणकारी-श्रेष्ठ विचारों से युक्त हो ॥६॥

१७९९. पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् । यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥७॥

हम बलोत्पादक, धारण-योग्य अन्न को प्रार्थना करते हैं, जिसकी शक्ति-सामर्थ्य से त्रिलोक-अधिपति इन्द्रदेव ने वृत्रासुर को खण्ड-खण्ड करके मर्दिन किया था ॥७॥

१८००. अन्विदनुमते त्वं मन्यासै जं च नस्कृषि । क्रतवे दक्षाय नो हिनु प्र णऽ आयूधं वि तारिषः ॥८॥

हे अनुमते (विशिष्ट देवता) ! आप हमें कल्याणकारी सुख प्रदान करें । बुद्धिबल एवं दक्षता हेतु हमें संवर्धित करें तथा हमारी आयुष्य को निरचित हो प्रवृद्ध करे अथात् बढ़ाए ॥८॥

१८०१. अनु नोद्यानुमतिर्यज्ञं देवेषु भन्वताम् । अग्निश्च इव्यवाहनो भवतं दाशुषे मयः ।

हे अनुमते ! आज आप हमारे यज्ञ को देवताओं के निर्मित अनुकूल बनाएँ और हविषाहक अग्निदेव भी हविष्य प्रदान करने वाले यजमान हेतु आनन्दप्रद हों ॥९॥

१८०२. सिनीवालि पृधुहुके या देवानामसि स्वसा । जुषस्व इव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिङ्मि नः ॥

अतिकेशयुक्त सम्पूर्ण प्रजाओं का कल्याण करने वाली, हे सिनीवाली देवि ! आप देवताओं की बहिन हैं, ऐसी आप हमारे द्वारा विशेष प्रकार से प्रदत्त आहुतिरूप हविष्य को प्रीतिपूर्वक ग्रहण करें । हे दिव्यगुण सम्पन्न देवि ! हमारे लिए सन्तानरूप प्रजा को उत्पन्न कराएँ ॥१०॥

१८०३. पञ्च नद्यः सरस्वतीयपि यन्ति सरोतसः । सरस्वती तु पञ्चधा सो देशे- भवत्सरित् ॥११॥

समान स्रोत वाली ( श्रेष्ठ ब्याहरील ) पाँच सरिताएँ (नदियाँ) जिस प्रकार महानदी सरस्वती में समाहित हो जाती हैं, उसी प्रकार बड़ी सरस्वती देव में पाँच (नदियों के) रूप में (प्रसिद्ध) हुई (अर्थात् विद्या, पाँच प्रकार की प्रतिभाओं — क्रमपरक, विजयपरक, अर्थपरक, कलापरक और भावपरक को संयुक्त करके उन्हें प्रगतिशील बनाती हैं) ॥११॥

१८०४. त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऽ ऋषिर्देवो देवानामभक् शिक् सखा । तव भूते कवयो विद्यानापसोजायन्त मरुतो प्राजदृष्टः ॥१२॥

हे अग्ने ! आप शारीरिक अंगों के जनक, सर्वप्रथम दिव्यतायुक्त, कल्याणकारी और देवताओं के सर्वश्रेष्ठ मित्र हैं । आपके वतानुशासन से क्रान्तरी और कर्मों के ज्ञान मरुद्गण श्रेष्ठ-तीक्ष्ण आयुधों से युक्त हुए हैं ॥१२॥

१८०५. त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघो नो रक्ष तन्वश्च वन्य । त्राता तोकस्य तनये गवामस्य निमेषं रक्षमाणस्तव वृते ॥१३॥

हे अग्निदेव ! आप वन्दना के योग्य हैं । अपने अनुशासन के वती इस ऐश्वर्यशाली यजमान का संरक्षण करें । हमारी शारीरिक क्षमता को अपनी सामर्थ्य से श्रेष्ठ करें । स्वीकृतिपूर्वक संरक्षित करने वाले आप यजमान के पुत्र-पौत्रादि सन्तानों और गवादि पशुओं के संरक्षक हों ॥१३॥

१८०६. उक्तानायामव घरा चिकित्वान्तसः प्रवीता वृषणं जजान । अरुषस्तूपो रुशदस्य पाजऽ इडायास्मुत्रो वयुनेजनिह ॥१४॥

पृथ्वी से उत्पन्न अग्निदेव विशिष्ट ज्ञानयुक्त कर्म के साथ प्रादुर्भूत हुए हैं, इनके प्रज्वलित तेज को जो अरणि ग्रहण करे वह अरणि प्रेरित होकर ज्वलनशील अग्नि को जीव हो उत्पन्न करती है ॥१४॥

१८०७. इडायास्त्वा पदे वयं नाथा पृथिव्याऽ अघि । जातवेदो निधीमहाग्ने इध्याय घोहवे ॥

हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! पृथ्वी के केन्द्रीय स्थल उत्तरवेदी के मध्य में हम आपको स्थापित करते हैं । हमारे द्वारा समर्पित हवियों को आप ग्रहण करें ॥१५॥

१८०८. प्र मन्महे शयसानाय शूयमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् । सुवृक्तिभिः स्तुयतऽ  
अङ्गिमयायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥१६॥

हम इन्द्रदेव के शक्ति-संवर्धक स्वयं से परिचित हैं । शक्ति की आकांक्षा से मुक्त, श्रेष्ठ वाणियों से सम्पन्न ज्ञानवान् नेतृत्व के लिए विद्यमान इन्द्रदेव की हम अङ्गिरा के सद्गुण स्तुति-पत्रों से अर्चना करते हैं ॥१६॥

१८०९. प्र वो महे भङ्गि नमो भरध्वमाङ्गूष्यं शयसानाय साम । येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाऽ  
अर्चन्तो अङ्गिरसो गाऽ अविन्दन् ॥१७॥

हे अतिशयो ! आप अति पराक्रमी इन्द्रदेव की व्रसनता के लिए स्तुतिगान करते हुए हविष्यान्न समर्पित करें । हमारे पूर्वज अग्नियों ने इसी प्रकार अन्न (हवि) एवं साम (गान) के द्वारा सूर्य मण्डल से तेजस्विता को धारण किया था ॥१७॥

१८१०. इच्छन्ति त्वा सोम्यास्तः सखास्तः सुवृन्ति सोयं दधति प्रयाधं सि । तितिक्षन्ते  
अभिशास्ति जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकृतः ॥१८॥

हे इन्द्रदेव ! सभी प्रकार के श्रेष्ठ ज्ञान आप से ही उपसम्भ होते हैं । सोमरस विनिर्मित करने वाले आपके मित्ररूप घातक आपकी कामना करते हैं । वे मनुष्यों के कहकशी दुर्व्यवहार को सहते हुए भी मोमाभिव्रण करते हैं तथा अन्न को धारण करते हैं ॥१८॥

१८११. न ते दूरे परमा चिद्विजाधं स्या तु प्र याहि हरिवो हरिध्याम् । स्थिराय वृष्णे सक्ता  
कृतेषा युक्ता प्रावाणः सभिधाने अग्नौ ॥१९॥

हरिनामक अश्वों से युक्त हे इन्द्रदेव ! अग्नि के प्रदीप्त होने की स्थिति में, चनिष्ठ मित्रता के लिए ये प्रातःकालीन यज्ञ (सर्व) किये जा रहे हैं । इन अभिव्रण प्रस्तोत्रों को आपके लिए नियुक्त किया गया है, इसलिए आप अश्वों के साथ आगमन करें, क्योंकि अतिदूर का स्थान भी आपके लिए विशेष महत्त्व का नहीं, अर्थात् अधिक दूर नहीं है ॥१९॥

१८१२. अवाधं युत्सु पृतनासु पथिधं स्वर्धामप्सां वृजनस्व गोपाम् । भरेवुजाधं सुधितिधं  
सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु पदेम सोम ॥२०॥

हे सोम ! संग्रामों में असहनीय पराक्रम दिखाने वाले, शत्रुओं पर विजय पाने वाले, विशाल सेनाओं के पालक, जलदाता, शक्ति-संबन्धक, संपन्नों के विजेता, श्रेष्ठ निवासयुक्त तथा कीर्तिमान् आपके विजयशील स्वरूप से हम प्रसन्न होते हैं ॥२०॥

१८१३. सोमो धेनूधसोमो अर्वन्तमाशुधं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति । सान्द्रन्यं विदध्यधं  
समेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्यै ॥२१॥

जो यजमान सोमदेव के लिए आहुति समर्पित करते हैं उन्हें वे सोम दुधारू गौर प्रदान करते हैं । वे सोम अतिगतिशील अश्व प्रदान करते हैं तथा कभी सोम कर्मकुशल, वृहत्कर्म में दक्ष, यज्ञ में पारंगत, सभा योग्य और पितृ आज्ञापालक वीर पुत्र प्रदान करते हैं ॥२१॥



१८१४. त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः । त्वमा ततन्धोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा मि तमो वयर्थ ॥२२॥

हे सोमदेव । आप इन सम्पन्न ओषधीयों को उत्पन्न करते हैं । आपने जल और घेनुओं को उत्पन्न किया है । आपने ही अन्तरिक्ष को विस्तृत किया है और अपने तेजस्वित्व से अन्धकार को नष्ट किया है ॥२२॥

१८१५. देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागश्चसहसावन्नभि युध्य । मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्रचिकित्सा गविष्टौ ॥२३॥

हे दिव्य शक्ति-सम्पन्न सोम । विचारपूर्वक श्रेष्ठ धन का धाम हमें प्रदान करें । दान के लिए प्रवृत्त हुए आपको कोई प्रतिबन्धित नहीं करेगा; क्योंकि आप ही अति समर्थ कार्य के सक्षम हैं । स्वर्गकामना युक्त हम दोनों लोकों में सुख प्रदान करें ॥२३॥

१८१६. अष्टौ व्यस्रयत् ककुभः पृथिव्यास्त्री बन्व योजना सप्त सिन्धून् । हिरण्वाक्षः सविता देव ऽ आगादधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥२४॥

हिरण्यदाष्टि (सुनहली किरणों) से युक्त सर्वितदेव, हविदाता पञ्चमान के लिए श्रेष्ठ राशियों को प्रदान करने के लिए यहाँ आएँ, वही सवितादेव पृथ्वी की कठोर दिग्गजों, लोकों लोकों, सप्त सागरों तथा नानाविध योजनाओं को आलोकित करते हैं ॥२४॥

१८१७. हिरण्यपाणिः सविता विश्वर्षणिरुषे छावापृथिवी अन्तरीयते । अपामीषां वाचते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा चामृणोति ॥२५॥

विश्वधरुणों में दर्शनीय स्वर्णिम रश्मियों से सुशोभित, सर्व-उत्पादक सवितादेव आप छावा-पृथिवी के मध्य में सूर्यदेव को प्रेरित करते हैं । इन्हीं से व्याधिकों और ऐंसे को सम्पन्न करते हैं तथा जब वे अस्तावस में जाते हैं, तब अन्धकाररूपी कृष्ण-रज से दिव्यलोक को अभिव्याप्त करते हैं ॥२५॥

१८१८. हिरण्यहस्तो असुरः सुनीचःसुपुडीकः स्वर्वां यात्वर्वाङ् । अपसेषन् रक्षसो यातुषानानस्थादेवः प्रतिदोषं गुणान् ॥२६॥

हिरण्य-हस्त (स्वर्णिम तेजस्वी किरणों से युक्त), प्राणदाता, कल्याणकारक, उत्तमभुक्छायायक, दिव्यगुण सम्पन्न सूर्यदेव, सम्पूर्ण मनुष्यों के समस्त दोषों की असुरों और दुष्कर्म्मियों की नष्ट करते हुए उदित होते हैं—ऐसे सूर्यदेव हमारे लिए अनुकूल हो ॥२६॥

१८१९. ये ते पन्थाः सवितः पूर्यासोरेणवः सुकृताऽअन्तरिक्षे । तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगोष्ठी रक्षा च नो अधि च ब्रुहि देव ॥२७॥

हे सवितादेव । अन्तरिक्षलोक में रजरीत उग्रवत मार्ग, जो श्रेष्ठ रीति से विनिर्मित हुए हैं, ऐसे उत्तम मार्गों से हमें ले चलें और हमें संरक्षित करते हुए श्रेय मार्ग का संदेश प्रदान करें ॥२७॥

१८२०. उभा पिषतमश्विना नः शर्म यच्छतम् । अविद्वियाधिरूतिभिः ॥२८॥

हे अश्विनीकुमारों । आप दोनों इस यज्ञस्वत पर स्नेहजन के लिए पधारें । आप दोनों ही अश्व सामर्थ्यों द्वारा हमारे लिए सुखों को उपलब्ध कराएँ ॥२८॥

१८२१. अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्ये कृतं नो दत्ता वृषणा मनीषाम् । अद्यत्येवसे नि ह्रुये वां वृषे च नो भवतं वाजसार्ता ॥२९॥

हे दर्शनयोग्य, शक्तिसम्पन्न अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हमारा कानो और बुद्धि को सत्कर्मों में निवोजित करें । हम यात्राकण समार्ग से उपलब्ध होने वाले अन्न हेतु आप दोनों का आवाहन करते हैं । आप दोनों ही यज्ञ में हमारी बुद्धि के कारण सिद्ध हों ॥२९॥

१८२२. द्युभिरवत्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः । तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥३०॥

हे अश्विनीकुमारो ! दिन-रात हिसारहित श्रेष्ठ धन से हमें सभी ओर से संरक्षित करें । मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक आपके द्वारा प्रदत्त धन के संरक्षण में सहायक हों ॥३०॥

१८२३. आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्मृतं मर्त्यं च । हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥३१॥

स्वर्णिम किरणों के रथ पर आरुढ़ होकर प्रपन्न करने वाले सर्वव्यापक अपनी तेजस्विता से पृथ्वी, अन्तरिक्ष आदि लोकों को प्रकाशित करते हैं— निरीक्षण करते हैं । अपनी दिव्यता से देव, मानव आदि सभी प्राणियों को कर्मों में प्रेरित करते हुए पधारते हैं ॥३१॥

१८२४. आ रात्रि पार्थिवधंरजः पितुरप्रापि धामभिः । दिवः सदाधं सि ब्रह्मती वि लिख्यस ऽ आ त्वेषं वर्सते तपः ॥३२॥

हे रात्रिदेवि ! आप भूलोक को तथा अन्तरिक्ष लोक के स्थानों को पूर्ण करती हैं । आप महान् दिव्यलोक के स्थानों को संव्याप्त करती हैं । आपकी भक्ति से इस प्रकार अंधकार सर्वत्र संव्याप्त होता है ॥३२॥

१८२५. उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति । येन लोकं च तनयं च धामहे ॥३३॥

धन-धान्य से सम्पन्न हे उषादेवि ! आप हमारे लिए आश्चर्यजनक उत्तम धन-सम्पदा को प्रदान करें—जिसकी सहायता से पुत्र-पौत्रादि का हम भली-भाँति चल्कन-पोषण कर सकें ॥३३॥

१८२६. प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रधं इवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना । प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रधं हुवेम ॥३४॥

प्रभातकाल में अग्नि के रूप में हम अग्निदेव का आवाहन करते हैं । प्रभात में ही यज्ञ की सफलता के निमित्त इन्द्रदेव, मित्रावरुण, अश्विनीकुमारों, भग, पूषा, ब्रह्मणस्पति, सोम और रुद्रदेव का आवाहन करते हैं ॥३४॥

१८२७. प्रातर्जितं भगमुग्रधं हुवेम वयं पुत्रमदितेयो विभर्ता । आशुश्चिद्यं मन्यमान-स्तुरश्विद्राजा विद्यं भगं भक्षीत्याह ॥३५॥

हम प्रसिद्ध प्रभात वेला में यज्ञ करते समय अवशीष्ट प्रचण्ड-अदितिपुत्र सूर्य को आमंत्रित करते हैं, जो विश्व के धारणकर्ता हैं । निर्धन, रोपी तथा सखा सगी अपीष्ट सिद्धि के लिए जिनके अनुग्रह की कामना करते हैं । सभी “मुझे ऐश्वर्य प्रदान करें” इस प्रकार से उनकी कन्दल करते हैं ॥३५॥

१८२८. भग प्रणेतर्भग सत्यराक्षो भगेमां विद्यमुदवा ददन्तः । भग प्र नो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नुभिर्नृवन्तः स्थाम ॥३६॥

हे उत्कृष्ट यागप्रिय भगदेव ! आप अविनाशी धन प्राप्त करने के साधन हैं । हमें सद्बुद्धि प्रदान करके हमारा संरक्षण करें । हे भगदेव ! हमें गो और अश्वदि से सम्पन्न करें । भली-भाँति नेतृत्व करने वाले साधकों (सन्तानों) से हम सम्पन्न हों ॥३६॥

१८२९. उतोदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्वऽ उत मध्ये अह्नाम् । उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य  
वयं देवानाश्चसुमतीं स्याम ॥३७॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव (सूर्यदेव) ! हम सूर्योदय काल में, सूर्यास्त समय में और मध्याह्न काल में भी  
धन-सम्पन्न रहें तथा सदैव देवताओं के अनुरूप श्रेष्ठ-चित्त में निरत रहें ॥३७॥

१८३०. भगऽ एव भगवोऽ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम । तं त्वा भग सर्वऽ  
इज्जोह्वीति स नो भग पुरऽ एता भवेह ॥३८॥

हे देवगण ! समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी भग देवता के अनुग्रह से हम भी समस्त वैभवं सम्पदा से सम्पन्न  
हों । हे भग (ऐश्वर्यवान्) ! सभी मनुष्य आपको आकर्षित करते हैं । हे ऐश्वर्याधिपति ! ऐसे सुप्रसिद्ध आप हमारे  
अग्रणी होकर समस्त कार्यों को सफल करें ॥३८॥

१८३१. समध्वरायोवसो नमन्त दधिक्कावेव शुचये पदाय । अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो  
रथमिवाश्वा चाजिनऽ आ वहन्तु ॥३९॥

उषाकाल में देवों की प्रसन्नता हेतु श्रेष्ठ यज्ञादिकर्म सम्पन्न होते हैं । जैसे समुद्री अश्व अपने पवित्र पैर  
बढ़ाने तथा गतिशील घोड़े रथचढ़ाने करने हेतु तैयार रहते हैं, वैसे भगदेव श्रेष्ठ ऐश्वर्यों से हमें सम्पन्न करें ॥३९॥

[ समुद्री अश्व के संकोचन से जल में लीज की-से संघील होने वाले अत्यन्त लघु विलसी पान का संकेत यहाँ  
अश्वक विद्यमान है । ]

१८३२. अश्वावतीर्गोमतीर्नऽ उषासो वीरवतीः सदमुष्कन्तु यज्ञाः । घृतं दुहाना विश्वतः  
प्रपीता घृतं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४०॥

अश्वों से युक्त, गौ से युक्त, वीर सन्तानों से सम्पन्न, कल्याण-स्वरूप प्रभात वेला जिस प्रकार घृतयुक्त  
दूध को प्रदान करती है, उसी प्रकार सम्पूर्ण दिग्भक्षों को शान्त करने वाली प्रभात वेलाएँ (उषाएँ) हमारे अज्ञान  
रूप बांधनों को भी सदा हटाएँ । हे देवताओं ! आप सभी हमारी रक्षा करते हुए सदैव हमारा कल्याण करें ॥४०॥

१८३३. पूषन् तव वते वयं न रिष्येम कदा चन । स्तोतारस्तऽ इह स्मसि ॥४१॥

हे पूषादेव ! आपके बतानुसारन में उत्तर हम कभी भी विनष्ट न हों । वहाँ हम यज्ञादि अनुष्ठानों में आपको  
प्रार्थना करते हैं ॥४१॥

१८३४. पथस्यश्च परिपति वचस्या कामेन कृतो अभ्यानर्हकम् । स नो रासच्छुरुयश्चन्द्राग्रा  
धिर्यधियश्चसीवधाति प्र पूषा ॥४२॥

उत्तम स्तोत्रों द्वारा प्रार्थना किए जाने पर जो पूषा देवता हमें सत्व मार्ग की प्रेरणा प्रदान करते हैं, वही हमें  
आह्लादप्रद और संतापनाशक साधनों को प्रदान करें । वे हमारी बुद्धिओं को श्रेष्ठ कर्मों में संलग्न करें ॥४२॥

१८३५. ओणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोषाऽ अदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् ॥४३॥

सर्वव्यापक, सबके संरक्षक और अविनाशी विष्णु देव तानों लोकों को विशेष रूप से विनिर्मित करते एवं  
चलते हैं तथा अपनी त्रिविध शक्तियों (अग्नि, वायु, अदित्य) से सम्पूर्ण विश्व को धारण किये हुए हैं ॥४३॥

१८३६. तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाश्चसः समिन्धते । विष्णोर्धत्परमं पदम् ॥४४॥

ब्रह्मनिष्ठ जीवनयापन करने वाले तथा आत्मसं-ग्रहणादि से रहित सदैव श्रेष्ठ कर्म करने वाले साधक  
अन्तर्यामी परमेश्वर के सर्वोत्तम परमघाम को प्राप्त करते हैं ॥४४॥

१८३७. धृतवती भुवनानामभिप्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुधे सुपेशसा । धावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे धूरिरेतसा ॥४५॥

जलधाराओं से युक्त, समस्त प्राणियों की आश्रयस्थल, व्यापक पृथ्वी मधुर रस के दोहन में समर्थ है । श्रेष्ठ रूपवाली, जरारहित, समस्त स्रग्मयों की आदि स्रोत धावा-पृथिवी वरुणदेव की शक्ति से सुदृढ़ हुई है ॥४५॥

१८३८. ये नः सप्तत्वाऽ अप ते भवन्विन्द्रामिध्यामव बाधामहे तान् । वसवो रुद्राऽ आदित्वाऽ उधरिस्पृशं मोघं चेत्तारमधिराजमक्रन् ॥४६॥

जो हमारे शत्रु हैं, वे पराभूत हों, हम उन शत्रुओं को इन्द्राग्नी की सामर्थ्य से विनष्ट करते हैं । वसु, रुद्र और आदित्यगण— ये सभी हमें ऊँचे पदों पर आसीन करके पशुक्रमी, ज्ञानसम्पन्न तथा सबके अधिपति बनाएँ ॥४६॥

१८३९. आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना । प्रायुस्तारिह नै रयाऽं३-सि मृक्षतं३ सेषतं देवो भवतं३ सखाभुवा ॥४७॥

हे अश्विनाशो अश्विनीकुमारो ! आप दोनों तैत्तिरीय देवताओं सहित हमारे इस यज्ञ में मधुपान के लिए पथारे, हमारी आवु बढाएँ और हमारे घोषों को बली-घाति विनष्ट करें । हमारे ऋति देव-भावना को समाप्त करके सभी कार्यों में सहायक बनें ॥४७॥

१८४०. एव स स्तोमो भरुतऽ इयं गीर्मान्दार्त्यस्य मान्यस्य कारोः । एवा पासीष्ट तन्ने वयां विद्यामेघं वृजनं जीरदानुम् ॥४८॥

हे भरुद्गण ! सम्माननीय व उत्तम फलप्रदायक, ये स्तोम तथा विष्काम यजमान की सत्यप्रिय वाणीरूप स्तुतिवीं आपके प्रति समर्पित हैं । आप हमारे शरीरों को दीर्घायुत्व और चोक्क तत्व प्रदान करने के लिए यहाँ पदार्पण करें; जिससे जीवनीशक्ति प्रदायक बलवर्द्धक अन्न का हम उपयोग करें ॥४८॥

१८४१. सहस्तोमः सहच्छन्दसऽ आवुतः सहप्रमाऽ क्रुषन् सप्त दैव्याः । पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य गीराऽ अन्वासेभिरे रभ्यो न रश्मीन् ॥४९॥

स्तोम और गायत्र्यादि छन्दों के साथ कर्म में अनुष्ठित, शब्द ब्रह्मण के परीक्षण में तत्पर, ज्ञानवान्, दिव्य सप्तर्षियों ने पूर्व ऋषियों के मार्ग का अवलम्बन करके इस विराट् सृष्टि यज्ञ का प्रादुर्भाव किया । जैसे अभीष्ट स्थान को पाने की कामना से प्रेरित रथी, लगाम से अश्वों को गन्तव्य तक ले जाते हैं, वैसे ही ये (यज्ञ) की अभीष्ट स्वर्गस्थान में ले जाने के माध्यम हैं ॥४९॥

१८४२. आयुष्यं वर्चस्यं चंरायस्योषमौद्भिदम् । इदं३ हिरण्यं वर्त्तस्वज्वैत्रायाविशतादु माम् ॥५०॥

यह आयु की बढाने वाला, कान्तिमान्, धनरूप, पुष्टिवर्धक, भूमि से उत्पन्न, तेजयुक्त, प्रकाशक, स्वर्णरूपी वैभव, विजय के लिए हमें निश्चितरूप से उभलतव्य हो ॥५०॥

१८४३. न तद्रक्षाऽं३ सि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजं३ होतन् । यो विभर्ति दाक्षायणं३ हिरण्यं३ स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥५१॥

उस स्वर्ण (दैवी सम्पदा) पर राक्षस आक्रमण नहीं करते और निशाच भी आक्रमण नहीं करते । निश्चित ही यह सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाले देवत्वों का ठेग है । जो असंख्य रूप (आभूषण) में स्वर्ण को धारण करते हैं, वे ( दैवी सम्पदा से विभूषित ) मनुष्य भी दीर्घायु को प्राप्त करते हैं ॥५१॥

१८४४. यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानः । तन्वऽ आ बध्नामि शतशारदायायुष्माब्जरदष्टिर्यथासम् ॥५२॥

दाक्षायणीय ब्राह्मणों ने विचारपूर्वक जिस स्वर्ण (स्वर्णिम विभूतियों ) को अनेक संज्ञाओं से युक्त राजा के लिए बाँधा (धारण किया) था, उसी स्वर्ण को शतावु क्षति के लिए हम अपने शरीर में धारण करते हैं । हम चिरंजीवी होकर वृद्धावस्था तक जीवित रहें ॥५२॥

१८४५. उत नोहिर्बुध्न्यः शृणोत्यब्जऽ एकपात्पृथिवी समुद्रः । विश्वे देवाऽ ऋतावृषो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता ऽ अयन्तु ॥५३॥

अहिर्बुध्न्य देवता, अज, एकपात्, पृथिवी, समुद्र तथा सर्वदेव समूह हमारे वचनों का श्रवण करें । सत्य के संवर्धक, मन्त्रों द्वारा स्तुत्य बुद्धिमन्त्रों से प्रशंसित तथा हमारे द्वारा आवाहित ये सभी देवता हमें पत्नी-प्राप्ति संरक्षित करें ॥५३॥

१८४६. इमा गिरऽ आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि । शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अथऽ ऋः ॥५४॥

इन घृतों को, इवन करनेवाली स्तुतियों के द्वारा, बुद्धिरूप जुह से बिरकास तक प्रकाशमान आदित्यों के लिए समर्पित करते हैं । मित्र, अर्यमा, भग, त्वष्टा वरुण, दक्ष और अंश नमक आदित्य ये सभी हमारे द्वारा की जाने वाली उत्तम स्तुतियों का श्रवण करें ॥५४॥

१८४७. सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्ता रक्षन्ति सदमप्रमादम् । सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सप्रसदौ च देवौ ॥५५॥

शरीर में स्थित त्वक्, चक्षु, श्रवण, रसन, घ्राण, मन, बुद्धि अथवा सप्त ऋषादि रूप सप्तर्षि निरंतर प्रमाद रहित होकर इस शरीर को संरक्षित करते हैं । ये सातों स्नेह हुए देहधरियों के हृदयाकाश में स्थित विज्ञानात्मा की प्राप्ति होते हैं । वहाँ सुषुप्ति को प्राप्त न होने वाले ऋषियों की रक्षा में सतत संलग्न, ब्रह्म में उपस्थित प्राण और अपानरूप देवता नामत् रहते हैं ॥५५॥

१८४८. उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्वेमहे । उग्र प्र यन्तु भरतः सुदानवऽ इन्द्र प्राशूर्भवा सखा ॥५६॥

हे ब्रह्मणस्पते ! आप उत्तर हों । हम देवत्व के कारण की इच्छा करते हुए आपके आगमन की प्रार्थना करते हैं । ग्रेष्ठ दानदाता भरतदेव आपके समीप आकर रहें । हे इन्द्रदेव ! आप भी साथ रहने के लिए सब प्रकार की सौमता करें ॥५६॥

१८४९. प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थम् । यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवाऽ ओकाथऽ सि चक्रिरे ॥५७॥

ब्रह्मणस्पति निश्चय ही ऐसे स्तुतिमोक्ष मंत्र को विशेष विधि से उच्चारित करते हैं, जिस मंत्र में इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा आदि देवगण निवास करते हैं ॥५७॥

१८५०. ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्य । विश्वं तदध्वं यदवन्ति देवा बृहद्देव विदधे सुवीरः । यऽ इमा विश्वा विश्वकर्मा यो नः पितान्नपतेन्नस्य नो देहि ॥५८ ॥

हे ब्रह्मणस्पते . आप इस संसार के निबन्ध हैं । अतएव हमारी प्रार्थना को जाने और हमारी संतानों पर प्रसन्न हों । देवगण जिस कल्याण को चेषित करते हैं, वे समस्त कल्याण हमें उपलब्ध हों तथा श्रेष्ठ वीर पुत्रों से युक्त हम यज्ञ में विशेष महिमा को प्राप्त करें । जो इस सम्पूर्ण विश्व के निर्माता हैं, जो परमेश्वर हमारे पालनकर्ता हैं, वे हमारी रक्ष करें । हे अन्नाधिपते ! आप हमारे लिए अन्न-प्रदायक सिद्ध हों अर्थात् हमें श्रेष्ठ अन्न प्रदान करें ॥५८ ॥

## — ऋषि, देवता, छन्द-विवरण —

ऋषि— शिवसंकल्प १-६ । अयस्त्य ७-९, ४८ । गृत्तमद १०, ११ । हिरण्यस्तूप आंगिरस १२, १३, २४-२७, ३१ । देवश्रवा-देववात भरत १४, १५, १८, १९ । नील १६-१७ । गीतम २०-२३, ३३ । प्रत्यक्ष २८ । कुत्स २९, ३० । कशिय भरद्वाज दुहित ३२ । वसिष्ठ ३४-४० । सुहोत्र ४१ । ऋषिबा ४२, ५६ । मेधातिथि ४३, ४४ । भरद्वाज ४५ । विहव्य ४६ । हिरण्यस्तूप ४७ । यज्ञ ब्रह्मपत्य ४९ । दक्ष ५०-५२ । कूर्म गार्त्तमद ५४, ५५ । कण्व वीर ५६, ५७ । गृत्तमद, विश्वकर्मा वीर, अफनेदिष्ठ ५८ ।

देवता— मन १-६ । अन्न ७ । अनुमति ८, ९ । सिन्धुवास्ती १० । सरस्वती ११ । अग्नि १२-१५ । इन्द्र १६-१९ । सोम २०-२३ । सविता २४-२७ । अश्विनीकुम्भ २८-३०, ४७ । सूर्य ३१ । रात्रि ३२ । तथा ३३, ४० । अग्नि आदि ३४ । वग ३५-३९ । पूष ४१, ४२ । विष्णु ४३, ४४ । सावा-पृथिवी ४५ । इन्द्राग्नी आदि लिङ्गोक्त ४६ । मरुद्गण ४८ । ऋषिसृष्टि ४९ । हिरण्य ५०-५२ । पृथिवी आदि ५३ । आदित्यगण ५४ । सप्तऋषिगण ५५ । ब्रह्मणस्पति ५६-५७ । ब्रह्मणस्पति, विश्वकर्मा, अग्नि ५८ ।

छन्द— विराट् त्रिष्टुप् १, १६, २६, २७, २९, ३१, ४२ । त्रिष्टुप् २, ४, ५, १३, १४, ३०, ३९, ४९ । स्वराट् त्रिष्टुप् ३६ । उष्णिक् ७ । निचृत् अनुष्टुप् ८, ९, ११ । अनुष्टुप् १० । विराट् जगती १२ । विराट् अनुष्टुप् १५ । निचृत् त्रिष्टुप् १७-२०, २३, ३५, ३६, ३८, ४०, ५२, ५४, ५८ । भुरिक् पंक्ति २१, २४, ५३ । स्वराट् ब्राह्मी गायत्री २२ । निचृत् जगती २५, ३४, ४५ । निचृत् मध्यमी २८, ४३ । पञ्चावहती ३२ । निचृत् पर उष्णिक् ३३ । पंक्ति ३७, ४८ । गायत्री ४१, ४४ । भुरिक् त्रिष्टुप् ४६ । जगती ४७ । भुरिक् उष्णिक् ५० । भुरिक् शक्यरी ५१ । भुरिक् जगती ५५ । निचृत् बृहती ५६ । विराट् बृहती ५७ ।

## ॥ इति चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥



# ॥ अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥

१८५१. अपेतो यन्तु षण्योसुम्ना देवपीयः । अस्य लोकः सुतास्तः ।  
द्युधिरहोभिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ॥१॥

षण्डव्य-हरणकर्तृ, देवताओं के विद्वांसों, दुःखदायक असुर इस स्थान से चलायन करें । यह स्थान देवों के लिए सोम को तैयार करने वालों (वाजकों) का है । यमदेव ऋतुओं, दिनों और रात्रियों द्वारा निर्धारित किये गये श्रेष्ठ स्थान इन (वाजकों) के निमित्त प्रदान करें ॥१॥

१८५२. सविता ते शरीरेष्वः पृथिव्याँस्नोकमिच्छतु । तस्मै युज्यन्तामुन्निधाः ॥२॥

(हे यजमान !) सबके प्रेरक सवितादेव आपके शरीर के लिए इस पृथ्वी में श्रेष्ठ स्थान देने के इच्छुक हों । सविता द्वारा प्रदान किया गया वह संस्कारित क्षेत्र बहुतों से समृद्ध हो ॥२॥

१८५३. वायुः पुनातु सविता पुनात्यग्नेर्धाजसा सूर्यस्य वर्चसा । वि युज्यन्तामुन्निधाः ॥३॥

हल जोतने के बाद क्षेत्र को वायुदेव पवित्र करें, सवितादेव इस स्थान को पवित्र करें, सूर्य के तेजस्वी प्राण से यह क्षेत्र संस्कारित हो । तत्पश्चात् गौ-पुत्र (बैतों) को इस से विमुक्त कर दिया आए ॥३॥

१८५४. भ्रष्टत्वे वो निषदनं एणो वो वसतिष्कता । गोभाजऽइत्तिकलासव यत्सनवव पुरुषम् ।

अवस्थ और पलाश (आदि) वृक्षों पर निवास करने वाली है ओषधियों ! आप यजमान को जीवनीशक्ति प्रदान करके उस पर अनुग्रह करती हैं, जिसके लिए आप विरहित कृतज्ञता के पात्र हैं ॥४॥

१८५५. सविता ते शरीराणि मातुस्त्यस्वऽअ वपतु । तस्मै पृथिवि शं भव ॥५॥

हे यजमान ! सवितादेव आपके शरीरों को पृथ्वी मातृ की गोद में स्थापित करें । हे पृथिवी ! आप भी इस यजमान का हर प्रकार से कल्याण करें ॥५॥

१८५६. प्रजापतौ त्वा देवतायामुपोदके लोके नि दधाम्यसी । अथ नः शोशुषदधम् ॥६॥

हे मृतक ! आपको जल के समीपवर्ती पवित्र स्थान में प्रजापति की स्मृति में प्रतिष्ठित करते हैं । वे प्रजापतिदेव हमारे पाप-भावों को शीघ्र दूर करें ॥६॥

१८५७. परं मृत्यो अनु परेहि षन्वा वस्ते अन्यऽ इतरो देवधानात् । जक्षुष्यते शृण्वते ते  
अवीधि मा नः प्रजायं रीरिषो मोत वीरान् ॥७॥

हे मृत्यु ! आपका मार्ग, देवयान मार्ग से भिन्न पितृयन राग वाला है, अतः आप दूसरे मार्ग से वापस लौट जाएँ, चक्षुषुक्त (श्रेष्ठ ज्ञान-सम्पन्न) और श्रवण क्षमता-सम्पन्न हमें आपसे निवेदन करते हैं कि आप हमारी प्रजा और वीर पुरुषों का हनन न करें ॥७॥

१८५८. शं वातः शश्वः हि ते घृणिः शं ते भवन्तिष्ठकाः । शं ते भवन्त्यन्वः पार्थिवासो मा  
त्वाभि शूशुचन् ॥८॥

(हे यजमान !) वायुदेव आपके लिए मंजलकारी हों, सूर्यदेव आपका कल्याण करें । इष्टकाओं से विनिर्मित यज्ञकुण्ड मंजलकारी हों, (पार्थिव) अग्निदेव कल्याणकारी हों, वे आपको सतत्प २ दें ॥८॥

१८५९. कल्पन्तां ते दिशस्तुभ्यमापः शिक्तमास्तुभ्यं भवन्तु सिन्धवः । अन्तरिक्षश्च शिवं  
तुभ्यं कल्पन्तां ते दिशः सत्वाः ॥९॥

आपके लिए दिशाएँ हितकारी हों, जत आपके लिए मंगलप्रद हो, समुद्र, अन्तरिक्ष तथा सम्पूर्ण दिशाएँ आपके लिए आनन्ददायक हों ॥९॥

१८६०. अशमन्यती रीयते सः रघव्यमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः । अत्रा जहीमोशिवा ये असञ्जिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥१०॥

हे सखा पाषाणयुक्त नदी प्रवाहित हो रही है, आज उसे लॉफने के लिए भली-प्रकार प्रयास करें, खड़े होकर उसके पार जाएँ इसमें जो कष्टप्रद (असुखकर) और विघ्नकारी पदार्थ हैं, उन्हें दूर करते हैं। सुखदायक अन्न (पोषक पदार्थ) को इस नदी से प्राप्त करें ॥१०॥

१८६१ अषाघमप किल्बिषमप कृत्यामपौ रपः । अपामार्गं त्वमस्मदप दुःखप्यं सः सुव ॥

हे दुष्कर्मों के संहारक अपामार्ग ! आप हमारे दुष्कर्मरूपी पापों को नष्ट करें। अपमशकारी सारोरिक दुष्कर्मों को विनष्ट करें। शत्रु द्वारा प्रयुक्त गुप्त अपराधों तथा दुःस्वप्न के दुःखद परिणामों को भी हमसे दूर करें ॥११॥

१८६२ सुमित्रिया नऽआपऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्नेष्टि यं च वयं द्विष्यः ।

जल और औषधियाँ हमारे लिए श्रेष्ठ मित्रों के सदृश कल्याणकरक हो। जो हमसे द्वेष करते हैं और जिनके प्रति हम प्रीतिरहित हैं, उनके लिए वे पदार्थ शत्रुओं के सम्पन्न होइयायक हो ॥१२॥

१८६३. अनङ्गवाहमन्वारधामहे सौरभेयः स्वस्ताये । स नऽ इन्द्रऽ इव देवेभ्यो बहिः सन्तारणो धव ॥१३॥

सुरभी गाय के पुत्र (बैल) को हम कल्याण के निमित्त स्पर्श करते हैं। हे वृषभ ! आप हमें लक्ष्य तक पहुँचाएँ। आप इन्द्रदेव के सदृश ही देवताओं की शक्ति के कारणकर्ता हैं ॥१३॥

१८६४. उद्धयं तमसस्परि स्क् पश्यन्तऽ उत्तरम् । देवं देवता सूर्यमगन्य ज्योतिरुत्तमम् ॥

हम अंधकारलोक से दूर स्वर्गलोक को देखते हैं। देवलोके में सर्वोत्तम ज्योतिस्वरूप सूर्य को परमात्मरूप में देखते हुए परब्रह्म को ही प्राप्त होते हैं ॥१४॥

१८६५. इमं जीवेभ्यः परिभिं दद्यामि मैत्रां नु नन्दपरो अर्धमेतम् । जतं जीवन्तु शरतः पुल्लधीरन्तर्भृत्यं दद्यतां पर्वतैः न ॥१५॥

(अध्वर्यु का कथन) इस वर्षादा को जीवों के हितार्थ स्थापित करते हैं। इस नीति-वर्षादा के अनुगत होकर आप सब सौ वर्ष पर्वत ऐश्वर्य आदि से युक्त सुखी जीवन जीएँ। इस अनन्तराल में आगत मृत्यु के मार्ग में (देवतण) पर्वत सदृश बाधाएँ स्थापित करें ॥१५॥

१८६६. अग्नऽ आयुः वि पवसऽ आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाबस्व दुष्कृणाम् ॥१६॥

हे अग्ने ! आप आयुर्वर्धक वज्रादि श्रेष्ठ कर्मों का सम्पन्न करने वाले हैं, हमें धन-धान्य और पुष्टिदायक दुग्ध दधि आदि रस प्रदान करें। आज दूर स्थित दुर्जनों (जाने वाले संकटों) के कार्य में बाधक बनें ॥१६॥

१८६७. आयुष्मानने हविषा वृक्षानो घृतप्रतीको घृतयोनिरेभि । घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभि रक्षतादिमान्स्याह ॥१७॥

हे आयुष्मान् अग्ने ! आप हवि द्वारा वृद्धि को प्राप्त होने वाले, घृत चटक मुखवाले, घृत से उत्पन्न (वृद्धि को प्राप्त) होने वाले और महान् हैं। आप यौ के मधुर एवं उत्तम घृत का भान करके इन प्राणिमियों की उसी प्रकार रक्षा करें, जैसे पिता पुत्र को सुरक्षित रखता है। यह आहुति आपके निमित्त अर्पित है ॥१७॥



१८६८. परीमे गामनेषत पर्याग्निमहृषत । देवेष्वाकृत अक् कऽ इमोऽर आ दधर्षति ॥१८ ॥

ये याजक गौ और अन्न के स्वरूप रसों की छदियाँ देकर देवों को प्राप्त करते हैं; ऐसे याजकों को भला क्यों पराजित कर सकता है ? ॥१८ ॥

१८६९. क्रव्यादमग्निं प्र विणोमि दूरं यमराज्यं गच्छतु रिप्रवाहः । इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं ब्रह्म प्रजानन् ॥१९ ॥

हम क्रव्यादि अग्नि को दूर करते हैं । ये यमराज्य को प्रस्थान करें । ये जातवेदा अग्निदेव हमारे गृह में प्रवृद्ध होकर अपनी सामर्थ्य से हमारी हवि देवों तक पहुँचाएँ ॥१९ ॥

१८७०. वह वपां जातवेदः पितृभ्यो वन्नैनान्येत्वा निहितान् पराके । मेदसः कुल्या ऽउप तानस्त्रवन्तु सत्याऽएषामाशिकः सं नमन्ताश्च स्वाहा ॥२० ॥

हे जातवेदा अग्निदेव । आप पितरों के लिए हवि के स्वर भाग को वहन करें, क्योंकि आप दूर प्रदेश के निवासक इन पितरों को जानते हैं । उनकी रक्षा के निमित्त उनके समीप जस की चाराएँ भी झपाते हों । उनके आशीर्वाद सत्यवाक्य होकर यसी-पौति पूर्व हों । उन पितरों के निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥२० ॥

१८७१. स्योना पृथिवि नो भवानक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रधाः । अप नः शोशुषदयम् ॥२१ ॥

हे पृथिवीदेवि । आप हमारे लिए सुखप्रद शकटों एवं कष्टों से रहित और निवास योग्य हों । आप सम्यक् रूप से बिस्तीर्ण होकर हमें सुख एवं तरण प्रदान करें । आप हमारे कष्टों को भस्मीभूत करके दूर करें ॥२१ ॥

१८७२. अस्मास्वमधि जातोसि त्वदयं जायतां पुनः । असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ॥२२ ॥

हे अग्ने । आप यहाँ इस यजमान के द्वारा उत्पन्न होते हैं । वह यजमान आपके अनुग्रह से अन्नदि ऐश्वर्य को प्राप्त करे । यह यजमान स्वर्ग प्राप्ति के लिए और लोकहित के लिए इतम कर्म और न्याय का सम्पादन करे ॥२२ ॥

### —अग्नि, देवता, छन्द, विवरण—

अग्नि— आदित्य अथवा देवगण १-३, ५-६ । धिष्णु आश्वर्य ४ । संकसुक् ७-९, १५ । सुजीक १० । शूनः शोष ११, १३ । मेघातिथि १२, २१, २२ । अस्वप्न १४ । वैश्वानर १६, १७ । शिरिम्बिठ भारद्वाज १८ । दमन १९, २० ।

देवता— पितर १, २ । वायु आदि सिंगोक्त ३ । ओषधि ४ । सविता ५ । प्रजापति ६ । मृत्यु ७, १५ । विश्वेदेवा ८ १० । सिंगोक्त ११ । वरुण १२ । अमरुद् १३ । सूर्य १४ । पयस्वन अग्नि १६ । अग्नि १७, १९, २२ । इन्द्र १८ । जातवेदा २० । पृथिवी २१ ।

छन्द— निचृत् गायत्री, प्राजापत्या बृहती १ । मयूरी २, १६ । उष्णिक् ३, ६ । अनुष्टुप् ४, ८ । भुरिक् गायत्री ५ । त्रिष्टुप् ७, १५, १९ । स्वराट् बृहती ९ । निचृत् त्रिष्टुप् १० । विराट् अनुष्टुप् ११, १८ । निचृत् अनुष्टुप् १२ । स्वराट् अनुष्टुप् १३ । भुरिक् उष्णिक् १४ । स्वराट् त्रिष्टुप् १७, २० । निचृत् गायत्री, प्राजापत्या गायत्री २१ । स्वराट् गायत्री २२ ।

॥ इति पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥

# ॥ अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥

१८७३. ऋचं वाचं प्र पद्ये मनो यजुः प्र पद्ये साम प्राणं प्र पद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्र पद्ये ।  
वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥१॥

हम वाणी-रूप ऋग्वेद, मन-रूप यजुर्वेद तथा प्राण-रूप सामवेद की शरण में जाते हैं (वेदज्ञान प्राप्तिके लिए) नेत्रों एवं कानों की सामर्थ्य की शरण ग्रहण करते हैं । (वेदज्ञान के विस्तार के लिए) वाणी का ओज तथा (वेदानुशासन के अनुगमन के लिए) प्राण-अपान आदि सहित शारीरिक ओजस् हमारे अंदर स्थापित हो ॥१॥

१८७४. यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितुष्णं बृहस्पतिर्मे तद्वधातु । शं नो भवतु  
भुवनस्य यस्पतिः ॥२॥

हे बृहस्पतिदेव ! आप हमारे आँख की, हृदय की तथा मन को कमजोरियों को दूर करें । हे भुवनों के पालक आप हम सभी का कल्याण करें ॥२॥

१८७५. भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥३॥

उस प्राण स्वरूप, दुःख-मशक, सुखस्वरूप प्रकाशवान्, श्रेष्ठ, तेजस्वी, देवत्व प्रदान करने वाले परमात्मा का हम ध्यान करते हैं, जो (वह) हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करे ॥३॥

१८७६. कया नक्षित्रऽ आ भुवदूती सदावृष्टः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥४॥

सबसे श्रेष्ठ और अद्भुत शक्ति-सम्पन्न परमात्मा, कल्याणकारी शक्तियों एवं रक्षण के साधनों से मित्र के समान हम सबका कल्याण करता है ॥४॥

१८७७. कस्त्वा सत्यो मदानां मधं हिष्ठो मत्सदन्वसः । दृढा चिदारुजे वसु ॥५॥

(हे इन्द्र ! ) सोमरस का कौन सा अंश आपको आनन्दित करता है ? जिसे पीकर आप अत्यधिक हर्षित होते हैं और (राजकों के) दुःखों के निवारण के लिए श्रेष्ठ (सुवर्णादि) धन प्रदान करते हैं ॥५॥

१८७८. अभी धु णः सखीनामविता जरितृणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ॥६॥

हे इन्द्रदेव ! आप हर प्रकार के सैकड़ों उत्तम साधनों द्वारा, मित्रों, उपासकों सहित हम सभी की रक्षा करने वाले हैं ॥६॥

१८७९. कया त्वं नऽ ऊत्याभि प्र मन्द्र से वृषन् । कया स्तोतृभ्यऽ आ धर ॥७॥

हे काम्यवर्षक परमात्मन् ! आप किन आनन्दकारी रक्षा साधनों के साथ हम सबको आनन्दित करते हैं और किस आनन्द से स्तोताओं को धन प्रदान करते हैं ? ॥७॥

१८८०. इन्द्रो विश्वस्य राजति । शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥८॥

सबके स्वामी ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव आप (दो पैरवाले) हम सबका तथा चार पैरवाले (पशुओं) का भी कल्याण करने वाले हैं ॥८॥

१८८१. शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्वया । शं नऽ इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुत्क्रमः ॥९॥

सहयोगी रूप मित्रदेव, श्रेष्ठ वरुणदेव, न्यायकारी अर्च्यकदेव ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव, वाणी के स्वामी बृहस्पतिदेव तथा संसार का पतन करने वाले विष्णुदेव हम सबके लिए कल्याणकारी हैं ॥९॥

१८८२. शं नो वातः पथताथं शं नस्तपतु सूर्यः । शं नः कनिष्ठदेवः पर्जन्यो अभि वर्षतु ॥१०॥

वायुदेवता एवं सूर्यदेवता हमारे लिए मंगलकारी हो । वर्षना करने वाले पर्जन्यदेव हम सबके लिए कल्याणकारी वृष्टि करें ॥१०॥

१८८३. अहानि शं भवन्तु नः शथं रात्रीः प्रति वीर्यताम् । शं नऽ इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं नऽ इन्द्रावरुणा रतहव्या । शं नऽ इन्द्रापूषणा वाजसातौ शभिन्नासोया सुविताय शं योः ॥११॥

दिन और रात्रि हम सबके लिए मंगलकारी हो । इन्द्र और अग्निदेव तथा इन्द्र और वरुणदेव हम सभी का कल्याण करें । इन्द्र और पूषादेव मंगलकारी अन्न और ऐश्वर्य प्रदान करें । इन्द्र और सोमदेव सुसन्तति प्राप्ति के लिए तथा रोगों के शमन और सब दूर करने के लिए (हमारे लिए) मंगलमय हो ॥११॥

१८८४. शं नो देवीरधिष्ठयऽ आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि भवन्तु नः ॥१२॥

दिव्यजल हम सब के लिए अधीष्ट कल्याणक तथा वृष्टिदायक बने । यह हमारे रोगों के शमन तथा अनिष्ट हटाने के लिए अरुणता रहे, इस प्रकार हमारा सब प्रकार से कल्याण करे ॥१२॥

१८८५. स्योना पृथिवि नो भवानक्षरा निवेशनी । पच्छा नः शर्म सप्रथः ॥१३॥

हे पृथिवि । आप हमारे लिए सुखकारी, निर्बिघ्न तथा उत्तम आवास प्रदान करने वाली हैं । हमारे लिए सब प्रकार से विस्तृत होकर सुखदायी हो ॥१३॥

१८८६. आपो हि ष्ठा मयोधुवस्त नऽ ऊर्जे दद्यातन । महे रणाय चक्षसे ॥१४॥

जल निश्चितरूप से सुखकारी है । अतः वह हम सबको अन्न और अन्न प्रदान करते हुए श्रेष्ठ-रणपीव दृश्य देखने के लिए दिव्यदृष्टि प्रदान करे ॥१४॥

१८८७. यो नः शिवतमो रसस्तस्य पात्रयतेह नः । दशतीरिव मातरः ॥१५॥

हे जलसमूह ! आपका कल्याणकारी रस इस संसार में है । अतः जिस प्रकार स्नेहमयी माताएँ अपने शिशु को दुग्ध पान कराती हैं, उसी प्रकार हम सबको उस (दिव्य) रस का पान कराएँ ॥१५॥

१८८८. तस्माऽ अरं ममाम वो यस्य क्षयाय जिन्यथ । आपो जनयथा नः ॥१६॥

हे जलसमूह ! आपके गतिमान् रस को पूर्णरूपेण प्राप्त करने के लिए हम सब आपके पास आये हैं, आप हम सभी को उन्नतिशील बनाएँ ॥१६॥

१८८९. द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं च शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं च शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥१७॥

स्वर्गलोक, अन्तरिक्षलोक तथा पृथिवीलोक हमें शान्ति प्रदान करें। जल शान्तिप्रदायक हो, ओषधियाँ तथा वनस्पतियाँ शान्ति प्रदान करने वाली हों। सभी देवगण शान्ति प्रदान करें। सर्वव्यापी परमात्मा सम्पूर्ण जगत् में शान्ति स्थापित करें। शान्ति थी हमें परमशान्ति प्रदान करे ॥१७॥

१८९०. दू ते दू दं ह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥१८॥

हे परमात्मन् आप हमें सामर्थ्यवान् बनाएँ। सभी प्राणी हमें मित्रभाव से देखें। हम सभी को मित्रभाव से देखते हैं। हम सभी मित्रभाव से (एक दूसरे को) देखें ॥१८॥

१८९१. दू ते दू दं ह मा। ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासं ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासम् ॥१९॥

हे शक्तिमान् परमात्मन्। आपके हमें शक्तिमान् बनाएँ। आपके दिव्यदर्शन से हम विरकाल तक जीवित रहें आपके दर्शन करते हुए हम दीर्घायुष्य को प्राप्त हों ॥१९॥

१८९२. नमस्ते हरसे शोधिषे नमस्ते अस्त्वधिषे। अन्यास्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यं शिवो भव ॥२०॥

हे अग्निदेव आपको तेजस्वी ज्योत्स्नियों को हम नमस्कार करते हैं। वे ज्वालाएँ पवित्रता को बढ़ाने वाली तथा दुष्टता का हरण करने वाली हों। आपको ज्वालाएँ स्रष्टृओं के लिए कहकरी तथा हमारे लिए पवित्रता प्रदान करने वाली तथा मंगलकारी हों ॥२०॥

१८९३. नमस्ते अस्तु विष्णुते नमस्ते स्तनयितृषवे। नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥२१॥

विष्णु के समान तेजस्वी तथा येश के सन्तान वर्धन करने वाले हे परमात्मन्। आपको नमस्कार है। आप हमारे लिए मंगलकारी हैं, अतः आपको नमस्कार नमस्कार है ॥२१॥

१८९४. यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। जं नः कुरु प्रजाभ्योभयं नः पशुभ्यः ॥२२॥

हे परमात्मन् आप जिससे-जिससे कहें, उससे-उससे हमें भयरहित करें। हमारी प्रजाओं (सन्तानों) का कल्याण करें और पशुओं के लिए अभय प्रदान करें ॥२२॥

१८९५. सुमित्रिया नऽ आपऽ ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु। योस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्यः ॥२३॥

हे जल और ओषधियों। आप हम सबके लिए हितकारी हों। जो हम सबसे द्वेष करता है और जिस से हम सभी द्वेष करते हैं, उसके लिए आप कहकारक सिद्ध हों ॥२३॥

१८९६. तच्चक्षुर्देवाहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं ब्रह्माम शरदः शतमदीनाः स्वाप शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥२४॥

वे देवगणों द्वारा धारण किये गये, (जगत् के) नेत्रभूत दोषिणान् सूर्यदेव पूर्व से उदित होते हैं। सूर्यदेव की सहायता से हम सौ वर्ष तक देखें, सौ वर्ष को जानु प्राप्त करें, सौ वर्ष तक कानों से सुनें, सौ वर्ष तक उत्तम वाणी बोलें, सौ वर्ष तक दीनतत्परा रहें और सौ वर्ष तक सरद क्रतुओं को पूर्ण करते हुए इससे भी अधिक समय तक आनन्दपूर्वक रहें ॥२४॥

## —ऋषि, देवता, छन्द, विवरण—

ऋषि—दश्याङ् आश्वर्षण १, २, ७-१२, १७-१९, २१, २२, २४ । विश्वामित्र ३ । कामदेव ४-६ । मेघातिथि १३, २३ । सिन्धुद्वीप १४-१६ । ऋषिसुक्त तोषामुद्रा २० ।

देवता— विश्वेदेवा १ । बृहस्पति २ । सविता ३ । इन्द्र ४-८ । मित्र, वरुण आदि ९, १० । अहोरात्र, इन्द्राग्नी आदि ११ । आपः (जला) १२, १४-१६, २३ । पृथिवी १३ । सिंगोक्त १७ । महावीर १८-१९ । अग्नि २० । अग्नि (विष्णु) २१, २२ । सूर्य २४ ।

छन्द— पंक्ति १ । निवृत् पंक्ति २ । दैवी बृहती, निवृत् गायत्री ३ । गायत्री ४, १२, १४-१६ । निवृत् गायत्री ५ । पादनिवृत् गायत्री ६, १९ । वर्द्धमान गायत्री ७ । द्विपदा विराट् गायत्री ८ । निवृत् अनुष्टुप् ९, २१ । विराट् अनुष्टुप् १०, २३ । अतिशक्वरी ११ । पिपीलिका मध्य निवृत् गायत्री १३ । भुरिक् शक्वरी १७ । भुरिक् जगती १८ । भुरिक् बृहती २० । भुरिक् अश्विक् २२ । भुरिक् माहो विष्टुप् २४ ।

## ॥ इति षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥



# ॥ अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥

इस अध्याय के मंत्रों का उपयोग यज्ञीय कर्मकाण्ड के अंतर्गत अग्नि, अग्निहोत्र, यज्ञोपवीत-सम्पन्न आदि उपाकरणों की प्रति स्थापन अथवा प्रोक्षण आदि के रूप में करना तथा इस से विना जाना है। उन पाठों को संशोधित करते हुए ही इन मंत्रों के अर्थ भी किये जाते हैं। किन्तु यद्यपि एवं देव शक्तिरत्नों के संदर्भ में वेद मंत्रों के अर्थ अधिक वृत्तिसंगत लगते हैं। इसी क्रिया विशेष के संदर्भ में उन्हें प्रयुक्त करने में भी कोई कठिनाई नहीं होती। इस अनुच्छेद में इसीलिए देवमाला अर्थ ही किये गये हैं।

१८९७. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आ ददे नारिरसि ॥१॥

हे अग्निदेव ! सवितादेव के अनुज्ञासन में रहकर अश्विनीदेवों की बाहुओं तथा पूषादेव के दोनों हाथों से हम आपको ग्रहण करते हैं। आप हमसे सन्तु न हों ॥१॥

१८९८. युञ्जते मनऽ उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः । वि होत्रा दधे वयुनाविदेकऽ इन्मही देवस्य सवितुः परिहृतिः ॥२॥

हे साधको ! जो भुवनपति समूचे विश्व को उत्तम रीति से चरान करते हैं जो सवितादेव प्रशंसनीय हैं, जिस अनन्त ज्ञानवाले सर्वव्यापी परमात्मा में याज्ञिकजन अपने मन को स्थिर करते हैं और उसी का ध्यान करते हैं, ऐसे परमात्मा की आप सब आराधना करें ॥२॥

१८९९. देवी छावापृथिवी मखस्य वाक्छ शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्षो ॥३॥

हे पृथ्वी और स्वर्गलोक की दिव्य शक्तियो ! आज इस यज्ञस्थल पर देवयज्ञ के निमित्त, मुख्य वेदी में आपको उत्तम रीति से स्थापित करते हैं। हे पृथिवी ! श्रेष्ठ यज्ञस्थल में पत के लिए आपको शीर्ष स्थान में ग्रहण (स्थापित) करते हैं ॥३॥

१९००. देव्यो वस्रघो भूतस्य प्रथमजा मखस्य वोह शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्षो ॥४॥

हे अग्नि से उत्पन्न आत्माओ ! आप प्राणियों से भी पहले उत्पन्न हुई हैं। इस यज्ञस्थल पर ज्ञानीजनों के मध्य प्राणिमात्र के कल्याण के लिए शीर्षरूप आपका संस्कार करते हैं। प्रजापालक यज्ञ के लिए सम्पन्न के साथ आपको शीर्ष स्थान पर नियुक्त करते हैं ॥४॥

१९०१. इयस्यग्रऽ आसीन्मखस्य तेह शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्षो ॥५॥

हे अग्निशिखाओ, (यज्ञ की अग्नि) यज्ञीय संगठिकरण रूपी श्रेष्ठता के लिए आप सबको प्रयुक्त करते हैं। इस भूमि के मध्य, यज्ञस्थल में, विद्वानों द्वारा यवन के निर्मित आप सबको क्ली-भौति नियुक्त करते हैं ॥५॥

१९०२. इन्द्रस्यौजस्य मखस्य वोह शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्षो । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्षो । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्षो ॥६॥

हे अग्नि की ज्वालाओ ! इन्द्रदेव के ओज को प्राप्त करने की भाँति, आज इस पृथ्वी के मध्य यज्ञस्थल पर, यज्ञ के मूर्धन्यस्वरूप आप को प्राप्त करते हैं । हम इस शीर्षस्थ मुख्य यज्ञ के निमित्त, उत्तम यज्ञ के सम्पादन के निमित्त, उत्तम गुणों के इस यज्ञ के निमित्त, यज्ञरूप उत्तम व्यवहार के निमित्त, उत्तम विज्ञान के प्रचार के निमित्त, विद्यार्थक व्यवहार के निमित्त आपको प्राप्त करते हैं । आप सभी श्रेष्ठ गुणों से युक्त हैं ॥६॥

१९०३. प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्रदेव्येतु सूनता । अच्छा वीरं नयं पङ्क्तिराग्रसं देवा यज्ञं नयन्तु नः । मखाय त्वा मखास्य त्वा शीर्ष्णो । मखाय त्वा मखास्य त्वा शीर्ष्णो । मखाय त्वा मखास्य त्वा शीर्ष्णो ॥७॥

ब्रह्मणस्पति देव इस यज्ञ में आएँ । सत्त्वान्नी रुन्नी सरस्वती उत्तम स्थान पर विराजें बलवान् सर्वहितकारी, प्रजाजनों को अनुशासन कलन कराने में समर्थ देवगण भी इस यज्ञ को सफल बनाएँ हे अग्नि ज्वालाओ ! आप यज्ञ के शीर्ष हैं और यज्ञ के लिए हैं, अतः बार-बार [ भू, भुवः (अन्तरिक्ष), स्वः (शुलोक) में आपको ] यज्ञ कार्य के लिए नियुक्त करते हैं ॥७॥

१९०४. मखास्य शिरोसि । मखाय त्वा मखास्य त्वा शीर्ष्णो । मखास्य शिरोसि । मखाय त्वा मखास्य त्वा शीर्ष्णो । मखास्य शिरोसि । मखाय त्वा मखास्य त्वा शीर्ष्णो । मखाय त्वा मखास्य त्वा शीर्ष्णो । मखाय त्वा मखास्य त्वा शीर्ष्णो । मखाय त्वा मखास्य त्वा शीर्ष्णो । मखाय त्वा मखास्य त्वा शीर्ष्णो ॥८॥

हे अग्निदेव ! आप यज्ञ के शीर्षरूप हैं, अतः यज्ञ के मूर्धन्य कार्य के निमित्त अर्थात् यज्ञ कार्य के सम्पादन के लिए आपको बार-बार नियुक्त करते हैं ॥८॥

१९०५. अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना वृषयामि देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखास्य त्वा शीर्ष्णो । अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना वृषयामि देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखास्य त्वा शीर्ष्णो । अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना वृषयामि देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखास्य त्वा शीर्ष्णो । मखाय त्वा मखास्य त्वा शीर्ष्णो । मखाय त्वा मखास्य त्वा शीर्ष्णो । मखाय त्वा मखास्य त्वा शीर्ष्णो । मखाय त्वा मखास्य त्वा शीर्ष्णो ॥९॥

हे वृष्ण (बलशाली) ! आपको वृष्णों पर देवयजन क्रिया के अन्तर्गत अश्व (यज्ञाग्नि) द्वारा उत्सर्जित (अवशिष्ट अग्नि या ऊर्जा) तथा उसके द्वारा वृषित (संस्कारित) करते हैं । आपको यज्ञार्थ यज्ञ के शीर्ष (श्रेष्ठतम प्रयोजन) के रूप में (तीनों लोकों में) नियुक्त (या प्रयुक्त) किया जाता है ॥९॥

[ इसी मंत्र को तीन बार दुहराकर क्रिया को तीन बार करने का संकेत, सम्बन्धित तत्व को अधिक बार देकर प्रस्तुत करने के औप्य से प्रीति होता है । ]

१९०६. प्रजये त्वा सायवे त्वा सुक्षित्वै त्वा । मखाय त्वा मखास्य त्वा शीर्ष्णो । मखाय त्वा मखास्य त्वा शीर्ष्णो । मखाय त्वा मखास्य त्वा शीर्ष्णो ॥१०॥

(हे बलशाली ! ) आपको सत्य के निमित्त, सज्जन्त के निमित्त एवं श्रेष्ठ भूमि (पृष्ठभूमि) के निमित्त, प्रयुक्त (या नियुक्त) किया जाता है । आपको यज्ञार्थ, यज्ञ के श्रेष्ठतम रूप में प्रयुक्त किया जाता है ॥१०॥

१९०७. यमाय त्वा मखाय त्वा सूर्यस्य त्वा तपसे । देवस्तवा सविता मध्वानन्तु पृथिव्याः सः स्पृशस्पाहि । अर्चिरसि शोचिरसि तपोसि ॥११॥

( हे सप्तर्षि अग्निदेव ! ) दिव्य अनुज्ञासनों, यज्ञीय प्रयोजनों एवं सूर्य के तप की सार्धकता के लिए आपको नियुक्त किया जाता है । सवितादेवता आपको मधुरता से युक्त करें । पृथ्वी का स्पर्श करके आप (सब प्राणियों की) रक्षा करें । आप ज्वालारूप हैं, विद्युतरूप हैं तथा तपः शक्ति से युक्त हैं ॥११॥

११०८. अनाघृष्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्यऽ आयुर्मे दाः । पुत्रवती दक्षिणातऽ इन्द्रस्याधिपत्ये प्रजा मे दाः । सुषदा पश्चादेवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः । आभ्रुतिरुत्तरतो वातुराधिपत्ये रायस्पोष मे दाः । विद्युतिरुपरिष्ठाद्बृहस्पतेराधिपत्यऽ ओजो मे दा विश्वाभ्यो मा नाह्वाभ्यस्याहि मनोरम्वासि ॥१२॥

हे पृथिवि ! शत्रुओं से अविनाशित रहती हुई पूर्व दिशा में अग्नि की रक्षा करके हमें आयु प्रदान करें । पुत्रवती होकर दक्षिण दिशा में इन्द्रदेव के स्वामित्व में रहकर उत्तम सन्तान प्रदान करें । हे पृथिवि ! आप सुखदात्री हैं, अतः पश्चिम दिशा में सवितादेव के स्वामित्व में रहकर हमें दिव्य दृष्टि प्रदान करें । उत्तम रीति से भ्रमण करने वाली होकर उत्तर दिशा में ब्रह्मा के स्वामित्व में रहकर हमें उत्तम धन से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करें । ऊर्ध्व दिशा में नाना प्रकार के पदार्थों को धारण करने में समर्थ होकर बृहस्पतिदेव के स्वामित्व में रहकर हमें ओजस्वी बनाएँ । हे पृथिवि ! वृष्टि प्रणितियों वाले शत्रुओं से हमारी रक्षा करें । आप बर्षस्त्रियों की अरुणा (बढ़ाने करने वाली) हैं ॥१२॥

११०९. स्वाहा मरुतिः परि श्रीयस्व दिवः स ऽं स्पृशस्याहि । मधु मधु मधु ॥१३॥

हमारी इस आहुति को मरुतदेव धारण करें । घुसोक को स्पर्श करनेवाली हवि, हमारी रक्षा करे । प्राण, अपान और व्यान अथवा पृथ्वी, अन्तरिक्ष और घुसोक में मधुरता की स्थापना हो ॥१३॥

१११०. गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजानाम् । स देवो देवेन सवित्रा गत सऽं सूर्येण रोचते ॥१४॥

जो परमात्मा देवों के धारक, ज्ञानीजनों के परम, प्रजा के रक्षक एवं दिव्यगुण सम्पन्न हैं । वे परमात्मन सम्पूर्ण संसार के त्रेक, सूर्यदेव के सम्मन्त्र प्रकाशित होते हैं, (उन्हें हम स्तुतिपूर्वक नमन करते हैं) ॥१४॥

११११. समन्धिरग्निना गत सं दैवेन सवित्रा सऽं सूर्येणारोचिह । स्वाहा समन्धिरस्तपसा गत सं दैव्येन सवित्रा सऽं सूर्येणात्कुरुत ॥१५॥

वह परमात्मा तेजस्वी अग्नि के समान सक्तिदेव से एककार होकर सूर्यरूप में प्रकाशित है । आहुति दी गई हवि सहित अग्नि, सूर्य के तेज से मिलकर एवं दिव्यगुण युक्त सवितादेव से एककार होकर सूर्यदेव के साथ प्रकाशित होता है ॥१५॥

१११२. धर्ता दिवो वि भाति तपसस्पृधित्वां धर्ता देवो देवानाममर्त्यस्तपोजाः । वाचमस्मे नि यच्छ देवायुवम् ॥१६॥

ज्ञानीजनों को धारण करनेवाला, दिव्यगुणयुक्त परमात्मा, साधारण मनुष्यों से भिन्न अपनी तपशक्ति से समर्थ्यवान् होकर, घुसोक और किरण समूहों को धारण करने वाले सूर्यरूप में पृथ्वी पर सुशोभित होता है । वह परमात्मा हमें दिव्यता धारण करानेवाली कभी चटम करे ॥१६॥

१११३. अपश्य गोपामनिपद्यमानम् च परा च पथिभिश्चरन्तम् । स सधीचीः स विषूचीर्वसानऽ आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥१७॥

सबकी रक्षा करनेवाले, कभी भी नष्ट न होने वाले, अपने साथ रहनेवाले रश्मियों को धारण करने वाले, समस्त लोकों के मध्य, सबसे ऊपर रहने वाले सूर्यदेव को हम देव वर्ग में आते एवं जाते हुए देखते हैं ॥१७॥



१११४. विश्वासां भुवां पते विश्वस्य मनसस्पते विश्वस्य वचसस्पते सर्वस्य वचसस्पते ।  
देवभुत्वं देव धर्म देवो देवान् पाद्भ्यः प्रावीरनु वां देववीतये । मधु माध्वीभ्यां मधु  
माध्वीभ्याम् ॥१८॥

समस्त लोकों के स्वामी, सबके मनों के रक्षक तथा सभी की वाणियों के प्रेरक, प्राणिमात्र की वाणियों के  
पालक, प्रकाशक, देवताओं में कीर्तिमान् रूप, दिव्यगुणों से युक्त सुखदाता परमात्मा इस संसार में धर्मपथ पर  
चलने वाले ज्ञानीजनों की रक्षा करें । हे अश्विनो कुमारो ! आप मधुर गुणों से युक्त विघ्न, उत्तम रीति से प्रदान  
करें और मधुर बह्म-विज्ञान के साधकों के साथ देवत्व की प्राप्ति के लिए प्रयासरत ज्ञानीजनों का संरक्षण करें  
हे याज्ञको ! यह परमात्मा आपको सहायक बने ॥१८॥

१११५. हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा । ऊर्ध्वो अध्वरं दिवि देवेषु धेहि ॥१९॥

हे यज्ञदेव ! हम हृदय की विशालता के लिए मन की शुद्धि के लिए तथा सूर्य की तेजस्विता को धारण करने  
के लिए आपको स्तुति करते हैं । आप हमारे हृदय को ऊपर देवगणों तक पहुँचाएँ ॥१९॥

१११६. पिता नोसि पिता नो बोधि नमस्ते अस्तु मा मा हिंसे सीः । त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेम  
पुत्रान्मशून्मयि धेहि प्रजामस्मासु घेहिरिष्टाहं तं सह पत्या भूयासम् ॥२०॥

हे यज्ञदेव ! आप हमारे पिता के समान पालक हैं, अतः हमें पिता (पुरु) के समान ज्ञानवान् बनाएँ । इसके  
लिए हम आपको नमन करते हैं । हम समस्त ब्रज सहित ब्रजापति रूप तेजस्वी बनकर आपको प्राप्ति करें । आप  
हमें पशुधन, सन्तान तथा उत्तम ब्रज से युक्त करें । हम आपके साथ कल्याणकारी होकर विरकास तक सुखपूर्वक  
जीवन व्यतीत करें । आप हमें हिंसित न करें ॥२०॥

१११७. अहः केतुना जुषतां सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा । रात्रिः केतुना जुषतां सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ॥२१॥

स्वज्योति से ज्योतिर्मान् कर्मयुक्त दिन (सबके लिए) प्रसन्नतादायक सिद्ध हो तथा अपनी ही ज्योति से  
ज्योतिर्मती रात्रि कर्मयुक्त होकर प्रसन्नतादायी सिद्ध हो—इस निमित्त यह आहुति समर्पित है ॥२१॥

### — ऋषि, देवता, छन्द विवरण —

ऋषि — दध्मह् आश्विन १, ३-१६ । श्यमाश्व २ । दोषतमा १७-२१ ।

देवता — सविता, अग्नि १ । सवितृ २ । ज्योति-पृथिवी ३ । कल्मीकवृक्ष ४ । वराहविहत ५ । आदाव ६ ।

धर्म ७-११, १४-१९, २१ । पृथिवी १२ । धर्म प्राण १३ । धर्म कल्मीक आशीर्वाद २० ।

छन्द — निचृत् उष्णिक् १ । जगती २ । ब्राह्मी गायत्री ३ । निचृत् पंक्ति ४ । विराट् ब्राह्मी गायत्री ५ । भुरिक्  
अतिजगती ६ । निचृत् अष्टि ८ । स्वराट् अतिपंक्ति ९ । (व्यो) अतिशब्दवती ९ । स्वराट् पंक्ति १० । त्रिष्टुप् ११ ।  
स्वराट् उत्कृति १२ । निचृत् गायत्री १३ । भुरिक् अनुष्टुप् १४ । निचृत् ब्राह्मी अनुष्टुप् १५ । भुरिक् बृहती १६ ।  
निचृत् त्रिष्टुप् १७ । निचृत् अत्यष्टि १८ । विराट् उष्णिक् १९ । निचृत् अतिजगती २० । अनुष्टुप् २१ ।

॥ इति सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥

# ॥ अथ अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥

प्रथम चार मंत्रों का उपयोग कर्मकाण्ड की परम्परा के अनुसार कर्मरत भौ ब्रह्मणे की रस्सी प्राप्त करने, भौ को ब्रह्म स्वरूप पर लाने, ब्रह्मणे को रस्सी से मुक्त करने तथा दृष्ट करने की क्रियाओं के साथ किया जाता है। इस दृष्ट प्रक्रिया के साथ एक सूक्ष्म प्रक्रिया का बोध कराया जाता है जिसके अन्तर्गत पोषण देने वाली प्राकृतिक शक्ति आकाशों को प्रभावित करने वाली पृथ्वी शक्ति को प्रभाव (अपवृत्ति) करना, उसके प्रभाव से पोषक शक्तियों को प्रेरित करना तथा उसके पोषक प्रभाव को प्रत्युत्पन्न में प्रत्यक्ष करके सुनियोजित करने के प्रयोग करते हैं। रासना का अर्थ व्यक्त करने वाली मेखला या शक्ति है। इन्द्र (पृथिवी) अदिति एवं सरस्वती को बोध कराया गया है (मन्त्र ० ३०- १६२.१७)। यहाँ कर्मकाण्ड का सूक्ष्म प्रक्रिया के अनुस्यू ही किया गया है —

१९१८. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेभिर्नोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आ ददेदित्यै रास्नासि ॥१॥

(हे यज्ञीय ऊर्जें ! आपको हम सवितृदेव की प्रेरणा से, अग्निदेवों (आयुष्म देने वाले देवों) की बाहों और पूषा (पोषण देने वाले देवों) के हाथों से ग्रहण करते हैं। आप अदिति (देवों की माता-देवी प्रवाह पैदा करने वाली सूक्ष्म प्रकृति) को मेखला (आवृत करके प्रभावित करने वाली) है ॥१॥

१९१९. इन्द्रो एवा दितो एहि सरस्वत्येहि। असावेह्यसावेह्यसावेहि ॥२॥

हे इन्द्र (बलवी माता) ! हे अदिति ! हे नौ सरस्वती देवि ! आप (गौ के समान पोषण प्रदायक बनकर) वहाँ आईं, इसी रूप में आईं ॥२॥

१९२०. अदित्यै रास्नासीन्द्राण्याऽ उष्णीषः। पूषासि घर्माय दीप्य ॥३॥

(हे यज्ञीय ऊर्जें ! आप अदिति की मेखलारूप हैं, इन्द्राणी (संगठक शक्ति) की पगड़ी (प्रतिष्ठा का चिह्न) हैं। आप पोषण देने में समर्थ हैं, घर्म (हितकारी कार्य-वर्षों) के लिए अपनी शक्ति को नियोजित करें ॥३॥

१९२१. अग्निभ्यां पिन्वस्व सरस्वत्यै पिन्वस्वेन्द्राय पिन्वस्व। स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् ॥४॥

(हे गौ की पाँच सवितृ होने वाली सूक्ष्म प्रकृति ! आप अग्नि (आयुष्म-वर्धक) देवों, सरस्वती (विद्यावर्धक शक्तियों) तथा इन्द्र (संगठक देववृत्तियों) की पृष्टि के लिए स्रवित (प्रवाहित) हों। इन्द्रदेव के (सदृश पोषक प्रवाहों के वर्षण की प्रक्रिया के) लिए यह जाहूति समर्पित है, पुनः-पुनः समर्पित है ॥४॥

१९२२. यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूयो रत्नवा वसुविद्धः सुदन्तः। येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह भातवेकः। उर्वन्तरिक्षमन्येमि ॥५॥

हे माँ सरस्वति (गौ) ! जिस प्रकार माता का स्तन बच्चे को सुख की नींद से सुलाने वाला, आनन्ददायी, उत्तम कला तथा उत्तम गुणों का पोषक होता है, उसी प्रकार आपका दिव्य ज्ञान (दुग्ध) सुख-शान्तिदायक तथा मंगलकारी ऐश्वर्य प्रदान करने वाला है। हे सरस्वती देवि ! सम्पूर्ण कार्य का पोषण करने वाला, उत्तम दानशील, जो ज्ञान है, उस ज्ञान को प्रजा के धारण और पोषण के लिए आप हमें प्रदान करें, जिससे हम विश्वस्य अन्तरिक्ष के अनुगामी बन सकें ॥५॥

१९२३. गायत्री छन्दोसि त्रैष्टुभं छन्दोसि छात्वापृथिवीभ्यां त्वा परि गृहणाम्यन्तरिक्षेणोप यच्छामि । इन्द्राक्षिना मधुनः सारथस्य धर्मं पात वसवो यजत वाद् । स्वाहा सूर्यस्य रश्मये वष्टिवनये ॥६॥

हे इन्द्रदेव ! आप गायत्री छन्द तथा त्रिष्टुप् छन्द से स्तुति करने वालों का संरक्षण करने वाले हैं । हे दोनों अभिनीकुमारो ! सुलोक से पृथ्वीलोक पर्वन्त ऋजु की नीलैंगत के लिए हम आप दोनों को ग्रहण करते हैं । जिस तरह अन्तरिक्ष वर्षा तथा वायु के द्वारा सभी के प्राणों की रक्षा करता है, उसी प्रकार यज्ञ को ज्ञान तथा ऐश्वर्य से सम्पन्न करने के लिए हम आप दोनों को स्वीकार करते हैं । हे वसुमन् ! मधुररस के मगान, मधुर व्यवहारयुक्त पराक्रम को हम सत्यरूप में स्वीकार करते हैं । आप भस्मी प्रकार यज्ञ का सम्पादन करें और वर्षा हेतु सूर्य की रश्मियों की सहायता प्राप्त करने (अर्थात् उत्तम वर्षा-पर्वन्त गृष्टि) के लिए यज्ञ करें ॥६॥

१९२४. समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा सरिराय त्वा वाताय स्वाहा । अनाधृष्याय त्वा वाताय स्वाहाप्रतिधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा । अवस्यवे त्वा वाताय स्वाहाशिमिदाय त्वा वाताय स्वाहा ॥७॥

सम्पूर्ण प्राणियों को उत्पन्न करने वाले, सभी प्राणियों को अभीष्ट प्रदान करने वाले, अस्त्रगुप्त शक्तिवाले, अपराधित, संरक्षण प्रदान करने वाले, कष्ट दूर करने में सक्षम वायुदेव ! आपके लिए यह आहुतियाँ समर्पित की जा रही हैं, आप इन्हें स्वीकार करें ॥७॥

१९२५. इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवते स्वाहेन्द्राय त्वादित्यवते स्वाहेन्द्राय त्वाभिमातिवते स्वाहा । सवित्रे त्वऽऽरुमते विधुमते वाजवते स्वाहा बृहस्पतये त्वा विश्वदेव्यावते स्वाहा ॥८॥

हे वसु (धन) शक्ति से युक्त एवं रुद्र (भोज) शक्ति से युक्त इन्द्रदेव ! आपके लिए आहुति समर्पित है । हे आदित्यों के तेज से युक्त इन्द्रदेव ! आपके लिए यह आहुति है । हे अभिमानियों को नष्ट करने वाले इन्द्रदेव ! आपके लिए ये आहुतियाँ समर्पित हैं । ऋजु व ज्ञान से प्रकाशित होने वाले, अत्यधिक सामर्थ्यवान्, ऐश्वर्य एवं शक्तिशाली सैन्य कक्ष प्रदान करने वाले सवितृदेव के लिए ये आहुतियाँ समर्पित हैं । समस्त देवशक्तियों के हितकारी बृहस्पतिदेव के लिए यह आहुति समर्पित है ॥८॥

१९२६. धर्माय त्वाङ्गिरस्यते पितृमते स्वाहा । स्वाहा धर्माय स्वाहा धर्मः पित्रे ॥९॥

पितृगणों तथा अङ्गिराओं से युक्त यम देवता के लिए ये आहुतियाँ समर्पित हैं । धर्म (यज्ञ विशेष) के विस्तार के लिए ये आहुतियाँ हैं । पितृगणों की वृष्टि के लिए यह आहुति समर्पित है ॥९॥

१९२७. विश्वाऽऽशा दक्षिणसद्विष्टान् देवानयाजिह । स्वाहाकृतस्य धर्मस्य मघोः पिबतमक्षिना ॥१०॥

इस यज्ञस्थल पर दक्षिण दिशा में बैठे होताओं ने, सभी दिशाओं में रहने वाले समस्त देवगणों एवं विद्वज्जनों का यथोचित पूजन-अर्चन किया है । अतः हे अभिनीकुमारो ! आप यहाँ इस यज्ञ में समर्पित आहुतियों के मधुर रस का पान करें ॥१०॥

१९२८. दिवि वाऽऽयं यज्ञमिमं यज्ञं दिवि वाः । स्वाहाम्नवे यज्ञियाय शं यजुर्ध्वः ॥११॥

हे याज्ञिको ! यज्ञमि से सुखपूर्वक यज्ञकार्य सम्पन्न करें और इस यज्ञ की हवि को देवलोक तक पहुँचाएँ । यजुर्वेद के मंत्रों का उच्चारण करते हुए आहुतियाँ समर्पित करें ॥११॥

१९२९. अश्विना धर्मं पात७३ इष्टानमहर्दिवाधिरूपतिष्ठि । तन्नायिणे नमो  
छावापृथिवीध्याम् ॥१२॥

हे अश्विनोकुमारो ! आप अपने रहस्य-शक्तियों से इष्टव को प्रिय रखने वाले ब्रह्म की दिव-रात रक्षा करें  
काल चक्र के प्रवर्तक सूर्य और चन्द्रोक्त से पृथिवी चर्वन्त मन्त्री देवी शक्तियों को इच्छा नमन है ॥१२॥

१९३०. अपातामश्विना धर्ममनु छावापृथिवी अयं ऽऽसाताम् । इहैव रातयः सन्तु ॥१३॥

हे अश्विनोकुमारो ! आप हमारे ब्रह्म की इस प्रकार से रक्षा करें । धुत्नेक तथा पृथिवी लोक के अधिपत्य  
देवता भी आपके कार्य में सहयोगी हों । आप अपने स्थान में ही रहकर इसे कई ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१३॥

१९३१. इषे पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व छावापृथिवीध्यां  
पिन्वस्व । धर्मासि सुधर्मयिन्यस्ये नृम्यानि वारय ब्रह्म वारय इष्टं वारय विशं वारय ॥१४॥

हे यज्ञदेव ! अथ की वृद्धि तथा वस्त्र-पराक्रम के लिए सम्पूर्ण ब्रह्म को आप पुष्ट बनाएँ । ब्राह्मणत्व तथा  
क्षत्रियत्व की वृद्धि के लिए ब्रह्म को पुष्ट बनाई । धुत्नेक और पृथिवी लोक के विस्तार के लिए ब्रह्म पुष्ट हो । हे  
परमात्मन् ! आप उत्तम रीति से समस्त ब्रह्म एवं राष्ट्र को व्यापक करने में समर्थ हैं । आप हिसारहित हैं । मनुष्यों  
के लिए तितकारो ऐश्वर्य हमें प्रदान करें । आप हमें ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व तथा व्यापार की क्षमता प्रदान करें १४ ॥

१९३२. स्वाहा पूषो शरसे स्वाहा छावध्वः स्वाहा प्रतिरवेध्वः । स्वाहा पितृध्व  
ऽऽर्ध्वर्ध्वर्हिध्वो धर्मपावध्वः स्वाहा छावापृथिवीध्या ७३ स्वाहा विद्येध्वो देवेध्वः ॥१५॥

स्नेहधारी पूषा शरणो, शब्द करने वाले प्रजिके, सोमपायी, धर्म (ब्रह्म विरोध) को पवित्र करने वाले पितृगणों,  
धुत्नेक, पृथ्वीलोक तथा सम्पूर्ण देवगणों के लिए—वे आहुतिर्ध्व समर्पित की जा रही हैं ॥१५॥

१९३३. स्वाहा रुद्राय रुद्रहूतये स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः । अहः केतुना जुषता ऽऽ  
सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा । रात्रिः केतुना जुषता ऽऽ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा । मधु  
हूतमिन्द्रतमे अम्नावस्याम ते देव धर्मं नमस्ते अस्तु मा मा हि ७३ सीः ॥१६॥

राक्षसों के संहारक रुद्रदेव के लिए यह आहुति समर्पित है । अर्धेति से ज्योति मिलकर भसी प्रकार प्रज्वलित  
हो, इसके लिए आहुति समर्पित है । दिन में ब्रह्म से युक्त तेज अपने तेज से मयुक्त हो, इसके लिए यह आहुति  
समर्पित है । रात्रि में ब्रह्म से युक्त तेज अपने तेज से मयुक्त हो इसके लिए यह आहुति समर्पित है । हे दिव्य गुणों  
से युक्त परमात्मन् ! आप तेजस्वी अग्नि में समर्पित की गयी मधुर आहुति को ग्रहण करें और हमारी रक्षा करें १६

१९३४. अभीमं महिमा दिवं विप्रो बभूव सप्रजाः । उत क्षवसा पृथिवीं ७३ स ७३ सीदस्य  
महो २ असि रोचस्य देववीतमः । वि धूममग्ने अरुवं विद्येध्व सुज प्रज्ञस्त दर्शतम् ॥१७॥

हे अग्निदेव ! आपकी सुविस्तृत कीर्ति सुत्नेक तथा पृथिवीलोक में व्याप्त है । आप सभी देवगणों को तृप्त  
करने में समर्थ हैं । आप हमारे ब्रह्म में कभी प्रकार से विराजमान होकर प्रज्वलित हों । हे ब्रह्म के योग्य, उत्कृष्ट  
अग्निदेव ! आप अपने स्वस रथ से युक्त, दर्शनीय ब्रह्म का विस्तार करें ॥१७॥

१९३५. या ते धर्मं दिव्या शुभ्या गायत्र्या ७३ हविर्बनि । सा तऽ आ प्यायतां निष्टयायतां  
तस्यै ते स्वाहा । या ते धर्मान्तरिक्षे शुभ्या त्रिष्टुप्पयस्वीसे । सा तऽ आ प्यायतां निष्टयायतां  
तस्यै ते स्वाहा । या ते धर्मं पृथिव्या ७३ शुभ्या जगत्या ७३ सदस्या । सा तऽ आ प्यायतां  
निष्टयायतां तस्यै ते स्वाहा ॥१८॥

हे अग्निदेव ! आपकी जो दीप्ति कुत्सेक तथा विविध यज्ञ में एवं गावों के छन्द में है; आपकी जो दीप्ति अन्तरिक्ष में एवं अग्नि के समान प्रदीप्त विह्वल छन्द में है, आपकी जो दीप्ति पृथिवी में, सम्प्रस्थान में एवं जगती छन्द में है; वह दीप्ति विस्तार पाए तथा दृढ़ हो इसके लिए यह आहुतियाँ समर्पित की जा रही हैं ॥१८॥

१९३६. क्षत्रस्य त्वा परस्याय ब्रह्मणस्तन्वं वाहि । विशस्त्वा धर्मणा वयमनु क्रामाम  
सुविताय नव्यसे ॥१९॥

हे परमात्मन् ! शत्रुओं से प्रकाश की रक्षा के लिए हम आपको अनुसरण करते हैं । सौर्यवान् क्षत्रियों तथा ज्ञानवान् ब्राह्मणों के शरीरों में विद्यमान शक्तियों की आर रक्षा करें । ब्रह्मा को धर्म मार्ग पर चलाकर उत्तम पदार्थों को प्राप्त करने, श्रेष्ठ मार्ग पर चलाने और कर्तव्य-पालन के लिए हम आपको अनुसरण करते हैं ॥१९॥

१९३७. चतुःश्रुतिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः स नो विश्वायुः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः । अप  
द्वेषो अप ह्यरोन्यद्यतस्थ सक्षिप्त ॥२०॥

हे परमात्मन् ! आप चतुर्दिक् संव्याप्त एवं यज्ञ-व्यवस्था के केन्द्र हैं । अति विस्तृत यज्ञवाले होकर जीवन पर्यन्त हमारी रक्षा करें । विस्तृत यज्ञवाले आप हमारे कल्याण के लिए दीर्घायु प्रदान करें । द्वेष करने वाले कुटिल शत्रुओं से तथा आत्मागमन से हमें मुक्त करें । हम अहंतुकी कृपा करने वाले आपकी उपासना करते रहें ॥२०॥

१९३८. धर्मतत्ते पुरीषं तेन वर्धस्य चा च प्यायस्य । वर्धिषीमहि च वयमा च  
प्यासिषीमहि ॥२१॥

हे वज्रदेव ! आप बड़े ऐश्वर्यशाली एवं सम्पत्त्यवान् हैं । आपकी समृद्धि और भी बढ़े । इस प्रकार आप पूर्ण समृद्धिशाली हों । हम लोग भी श्रेष्ठ बन एवं पदार्थों से दृप्त होकर पूर्ण वृद्धि को प्राप्त हों ॥२१॥

१९३९. अभिक्तदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । स ऋं सूर्येण सिधुत्सुदभिर्निभिः ॥

हे यज्ञ प्रभो ! आप मेघों की भाँति मुखों की कर्ष करने वाले हैं । आप ब्रह्मा के दुःखों को दूर करने वाले, मित्र के सम्मान स्नेह प्रदान करने वाले और सबके द्रष्टा हैं । आप सूर्य के समान अपने तेज से प्रकाशित होने वाले तथा समुद्र की तरह गम्भीर और खजाने के समान ऐश्वर्यों के रक्षक हैं ॥२२॥

१९४०. सुमित्रिया नऽ आपऽ ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योस्मान्दोहि यं च  
नयं द्विष्टः ॥२३॥

हे यज्ञ प्रभो ! हमारे लिए अन्न तथा ओषधियाँ परम मित्र के समान लाभ पहुँचाने वाली हों । हमसे जो द्वेष करते हैं या जिनसे हम द्वेष करते हैं, उनके लिए वह अन्न तथा ओषधियाँ शत्रु के समान हानि पहुँचाने वाली हों ॥२३॥

१९४१. उह्वयं तमसस्परि स्थः पश्यन्तऽ उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म  
ज्योतिरुत्तमम् ॥२४॥

हम इस लोक से भी ऊँचे, सुखस्वरूप, स्वयं उत्कृष्ट, परम ज्योति स्वरूप, दैवी गुणों से युक्त सूर्यदेव के समान तेजस्वी परमात्मा को देखते हुए अन्यकार से दूर होकर उच्चतम स्थिति को प्राप्त हों ॥२४॥

१९४२. एषोस्येषिषीमहि समिदसि तेजोसि तेजो मयि वेहि ॥२५॥

हे वज्रदेव ! आप स्वयं प्रकाशमान हैं । यह प्रकाश सदैव विस्तार पाए । आप प्रज्वलित व्यष्ट (समिधा) के समान प्रकाशित तेज स्वरूप हैं, अन्न हमें भी तेजस्वी बनाएँ ॥२५॥

१९४३. यावती द्यावापृथिवी यावच्च सप्त सिन्धयो वितस्थिरे । तावन्तमिन्द्र ते ग्रहमूर्जा  
गृहणाम्यक्षितं मयि गृहणाम्यक्षितम् ॥२६॥

हे यज्ञ प्रभु ! जहाँ तक ब्रूलोक व भूलोक का विस्तार है और जहाँ तक सातों समुद्र तथा विविध दिशाएँ फैली हैं, वहाँ तक के विस्तृत क्षेत्र में हम (सभी जन्मी) आपकी ऊर्जा ग्रहण करते हैं । इसके लिए (ग्रहण करने की) अभ्युपगम सामर्थ्य भी हम आपसे प्राप्त करते हैं ॥२६॥

१९४४. मयि त्वदिन्द्रियं बृहन्मयि दक्षो मयि क्रतुः । धर्मश्चिशुम्भिराजति विराज्या ज्योतिषा  
सह ब्राह्मणा तेजसा सह ॥२७॥

जो परमात्मा अग्नि, विद्युत् तथा सूर्य, इन तीनों के सदृश तेजस्वी होकर महान् प्रकाश, विविध तेज तथा ब्रह्मतेज से संयुक्त होकर सुरोपहित होते हैं, वे हमें महान् बलशाली बनाएँ, हमें कर्तृत्वशक्ति एवं दक्षता प्रदान करें ॥

१९४५. पयसो रेतऽ आभूतं तस्य दोहमशीमद्भुनरामुत्तराधं सभाम् । त्विषः संवृक् क्रतवे  
दक्षस्य ते सुषुण्यस्य ते सुषुम्णान्निहुतः । इन्द्रपीतस्य प्रजापति-भक्षितस्य मधुमत्तऽ उपहूतऽ  
उपहूतस्य भक्षयामि ॥२८॥

पयस् (बरसे हुए पोषण) से रेतस् (उर्ध्वरक्त तेज) प्रकृति में (वज्र के प्रक्षय से) भर गया है । उसके दोहन की (यज्ञीय) प्रक्रिया का लाभ आगे आने वाले वर्षों में हम (सप्ताक्षर) प्राप्त करेंगे । ज्ञानि (तेजस्विता) को स्वीकार करने वाले, संकल्पों को सिद्धि प्रदान करने में कुशल, आमंत्रित हे यज्ञदेव । सुसुखकारक अग्नि (वज्राग्नि) में आपके लिए दी गयी आहुतिवाँ श्रेष्ठ सुखप्रदायक हैं । इन्द्रदेव के दूध पान किये गये, प्रजापति द्वारा सेवन किये गये, मधुरतायुक्त (हव्य) का सेवन हम भी करते हैं ॥२८॥

### —ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— दध्यह्न आश्विन १-४ । दीर्घतम ५-२२, २६-२८ । येनातिथि २३ । प्रस्कण्य २४, २५

देवता— सवितार २७, १ । गौ २ । रज्जु ३ । तिनोक्त, विष्णु ४ । वाक् ५ । परीतास, महावीर, धर्म, विसेदेवा ६ । वातनाभ ७, ८ । वातनाभ, धर्म ९ । अश्विनीकुमार १०, १३ । धर्म ११, १८-२२ । अश्विनीकुमार आदि १२ । धर्म, स्त्र १४ । पूषा आदि १५ । रुद्र आदि, पय, धर्म १६ । अग्नि १७ । आपः २३ । सूर्य २४ । समित् २५ । दधिधर्म २६ । स्वामन्-आशीर्वाद २७ । यजमन्-आशीर्वाद, दधिधर्म २८ ।

छन्द— विराट् आशीर्वादि १ । निचृत् मावरी २ । भुरिक् साम्ने बृहती ३ । आशीर्वादि ४, १२ । निचृत् अतिजगती ५ । निचृत् अतिवृद्धि ६ । अतिवृद्धि ७, ८ । भुरिक् मावरी ९ । अनुष्टुप् १०, २१ । विराट् अध्विक् ११ । निचृत् अध्विक् १३ । अतिजगती १४ । स्वराट् जगती १५ । भुरिक् अतिवृद्धि १६ । निचृत् अतिजगती १७ । भुरिक् आकृति १८ । निचृत् उपरिष्ठान् बृहती १९ । निचृत् विष्टुप् २० । परोष्णिक् २२ । निचृत् अनुष्टुप् २३ । विराट् अनुष्टुप् २४ । साम्ने पंक्ति २५ । स्वराट् पंक्ति २६ । पंक्ति २७ । स्वराट् धृति २८ ।

॥ इति अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥

# ॥ अथ एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

१९४६. स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः । पृथिव्यै स्वाहाम्नये स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा वायवे स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा ॥१॥

प्राणों के अधिपति (हिरण्यगर्भ) सहित उत्तम प्राणों के लिए, पृथ्वी के लिए, अग्नि के लिए, अन्तरिक्ष के लिए, वायु देवता के लिए, बुलोक के लिए तथा सूर्यदेव के लिए—ये आहुतियाँ समर्पित की जा रही हैं ॥१॥

१९४७. दिग्भ्यः स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यः स्वाहा वरुणाय स्वाहा । नाभ्यै स्वाहा पूताय स्वाहा ॥२॥

सभी दिशाओं के लिए, चन्द्रमा के लिए, नक्षत्रों के लिए, जल समूहों के लिए, नाभि (भुवनस्य नाभि-वज्र देव) के लिए तथा पवित्रता का संचार करने वाले देवता के लिए—ये आहुतियाँ समर्पित की जा रही हैं ॥२॥

१९४८. वाचे स्वाहा प्राणाय स्वाहा प्राणाय स्वाहा । चक्षुषे स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा ॥३॥

उत्तम वाणी के लिए, प्राण वायु को पवित्र रखने के लिए, दोनों आँखों की पवित्रता के लिए तथा दोनों कानों की पवित्रता के लिए—ये आहुतियाँ समर्पित हैं ॥३॥

१९४९. मनसः कामपाकृतिं वाचः सत्यमशीय । पशूनाधं रूपमग्नस्य रसो यशः श्रीः भयतां मयि स्वाहा ॥४॥

(मनस्वी) अन्तःकरण की कामना की पूर्ति हो तथा जानी को सत्य बोलने की क्षमता प्राप्त हो । पशुधन से धर की शोभा बढ़े । अन्न के रस, कीर्ति तथा समृद्धि की प्राप्ति हो—इसके लिए ये आहुतियाँ समर्पित हैं ॥४॥

१९५०. प्रजापतिः सम्प्रियमाणः सम्राट् सम्प्रतो वैश्वदेवः सधंसत्रो धर्मः प्रवृत्त स्तेजऽ उद्यतऽ आश्विनः पयस्यानीयमाने पौष्णे विष्यन्दमाने भारुतः क्लृण्वन् । मैत्रः शरसि सन्ताप्यमाने वायव्यो ह्ययमाणऽ आग्नेयो हूयमानो वाग्धुतः ॥५॥

(यशस्वी प्रयोगों से) पुष्ट होते हुए प्रजापति के लिए, प्रभु द्वारा सम्मानित सम्राट् के लिए, विद्वानों से सम्मानित वैश्वदेव के लिए, उच्चासन प्राप्त तेजस्वी धर्म (यज्ञ विज्ञेय) के लिए, उद्यत श्रम पर प्रकाशित तेज के लिए, चल से अभिषिक्त अश्विनो कुमारों के लिए, पृथ्वी के हित में प्रवृत्त 'पूष' के लिए, शत्रुनाशक मरुत् के लिए, कृषि साधनों के विस्तारक मित्र के लिए, युद्ध क्षेत्र में गम्भीरता वायु के लिए, आहुतियाँ प्राप्त करने वाले अग्नि तथा वाक् देवता के लिए आहुतियाँ समर्पित हैं ॥५॥

१९५१. सविता प्रथमेहन्नग्निर्हितीये वायुस्तृतीयऽ आदित्यश्चतुर्थे चन्द्रमाः पञ्चमऽ अश्रुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे । मित्रो नवमे वरुणो दशमऽ इन्द्रऽ एकादशे विश्वेदेवा द्वादशे ॥६॥

पहले दिन सविता के लिए, दूसरे दिन अग्नि के लिए, तीसरे दिन वायु के लिए, चौथे दिन आदित्य के लिए, पाँचवें दिन चन्द्रमा के लिए, छठे दिन ऋतु के लिए, सातवें दिन मरुद्गन्ध के लिए, आठवें दिन बृहस्पतिदेव के लिए, नौवें दिन मित्र के लिए, दसवें दिन वरुण के लिए, ग्यारहवें दिन इन्द्रदेव के लिए तथा बारहवें दिन विश्वेदेवा के लिए आहुतियाँ समर्पित हैं ॥६॥

१९५२. उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च । सासङ्गैश्चाभियुष्वा च विक्षिपः स्वाहा ॥७॥

उग्र के लिए, भीम के लिए, ध्वान्त (घोर शब्द करने) के लिए, धुनि (कम्पित करने वाले) के लिए, सासङ्गान् (पराजित करने में समर्थ) के लिए, अभियुष्वा (जलुओं पर चढ़ाई करने वाले) के लिए तथा विक्षिप (छिन्न-भिन्न करने वाले वायु देवता) के लिए—ये आहुतियाँ समर्पित हैं ॥७॥

१९५३. अग्निं च हृदयेनाशनिं च हृदयाग्रेण पशुपतिं कृत्स्नहृदयेन ध्रुवं चवना । शर्वं मतस्नाभ्यापीशानं यन्युना महादेवमनतः पर्जन्येनोद्य देवं वनिष्ठुना वसिष्ठहनुः शिङ्गीनि कोश्याध्याय ॥८॥

अग्नि की ओर अग्निशक्ति से देव शक्ति को कृत्स्न करने का अन्तेष्ट है । इन अग्नि-अग्निशक्ति से सौम्यता शक्तियों को यही अन्तेष्ट से निकाल कर लेने से देवों की अन्तेष्ट शक्ति होने का अन्त प्रतीय है—

(याजक) हृदय से अग्नि को, हृदय के आग्रहण से विद्युत् देव को, सम्पूर्ण हृदय से पशुपति देवता को, चवना से आकाश को, गुह्य से अन्त को, यन्यु से ईशान को, अन्त की परमशक्ति से महादेव को, अर्थात् से उग्र देवता को, हनु से वसिष्ठ को तथा हृदय कोश से शिङ्गी देवों को तुष्ट (प्रसन्न) करते हैं ॥८॥

१९५४. उग्रैस्त्रोहिनेन मित्रैश्च सौमत्येन रुद्रं दौर्बल्येनेन्द्रं प्रकीडेन भरुतो बलेन साध्यान् प्रमुदा । भवस्य कण्ठस्थं रुद्रस्यान्तः पार्श्वं महादेवस्य यकुच्छर्वस्य वनिष्ठुः पशुपतेः पुरीतत् ॥९॥

लोहित से उग्रदेवता को, उत्तम शक्ति के पालन से मित्र देवता को, दुराचार के त्याग से रुद्रदेव को, श्रेष्ठ आचरण से इन्द्रदेव को, बल के मनुष्यको से भरुत् को, प्रसन्नता (दायी कर्मी) से साध्यादेवों को, सुमधुर ग्रसन के आचारभूत कण्ठ से यव देवता को, परमशक्ति से अर्थात् शक्तियों द्वारा रुद्र को, सहृदयता से महादेव को, स्थूल अन्त में सन्निहित शक्तियों से रुद्रदेवता को तथा पुरीतत् (हृदय स्थित नदी की शक्ति) से पशुपति को प्रसन्न करते हैं ॥९॥

१९५५. लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा त्वचे स्वाहा लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा । मांससेभ्यः स्वाहा मांससेभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहास्वभ्यः स्वाहास्वभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा रेतसे स्वाहा । पायवे स्वाहा ॥१०॥

इस मंत्र में शरीर के विभिन्न अवयवों की पृष्टि के लिए दो-दो आहुतियाँ दी गयी हैं । प्रथम आहुति पृष्टि तक तब दूसरी समर्पित तक चलाकर दो-दो बार मंत्र प्रत्येक विचार कर प्रतीय होने है—

लोमों के निमित्त, त्वक के निमित्त, लोहित के निमित्त, मेदों के निमित्त, मांसों के निमित्त, स्नायुओं के निमित्त, अस्थियों के निमित्त, मज्जाओं के निमित्त, रीर्य के निमित्त तथा गुदाकूप अवयव के निमित्त—ये आहुतियाँ समर्पित हैं ॥१०॥

१९५६. आयासाय स्वाहा प्रायासाय स्वाहा संवासाय स्वाहा वियासाय स्वाहाहोद्यासाय स्वाहा । शुचे स्वाहा शोचते स्वाहा शोचमानाय स्वाहा शोकाय स्वाहा ॥११॥



आयास देवता के निमित्त, प्रयास देवता के निमित्त, संकास देवता के निमित्त, वियास देवता के निमित्त, उदास देवता के निमित्त, शुच देवता के निमित्त, श्लोच देवता के निमित्त, श्लोचमान देवता के निमित्त तथा शोक देवता के निमित्त—ये आहुतियाँ समर्पित हैं ॥११॥

१९५७. तपसे स्वाहा तप्यते स्वाहा तप्यमानाय स्वाहा तप्ताय स्वाहा धर्माय स्वाहा । निष्कृत्यै स्वाहा प्रायश्चित्त्यै स्वाहा भेषजाय स्वाहा ॥१२॥

तप के निमित्त, संताप (को प्रपन्न होने कसे) के निमित्त, तप्यमान के निमित्त, तप के निमित्त, धर्म (यज्ञ विशेष) के निमित्त, निष्कृति के निमित्त, प्रायश्चित्त के निमित्त तथा भेषज के निमित्त—ये आहुतियाँ समर्पित हैं ॥१२॥

१९५८. यमाय स्वाहान्तकाय स्वाहा मृत्यवे स्वाहा । ब्रह्मणे स्वाहा ब्रह्महत्यायै स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा छायापृथिवीभ्यां च स्वाहा ॥१३॥

यम के निमित्त, अन्तक के निमित्त, मृत्यु के निमित्त, ब्रह्म के निमित्त, ब्रह्म हत्या के (तापन के) निमित्त, सम्पूर्ण देवगणों के निमित्त तथा छुलोक और पृथ्वीलोक के निमित्त—ये आहुतियाँ समर्पित हैं ॥१३॥

### —ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— दध्यह् आधर्वण १-६ । परमेष्ठी प्रजापति अथवा साध्य ७-१३ ।

देवता— मान्त्रवर्षिक्य १-३ । अज्यमान-अक्षरीर्वाट, श्री ४ । अग्नित्त देवता ५ । सविता आदि ६ । मरुद्गण ७ । अग्नि ८-१३ ।

छन्द— पंक्ति १ । गुरिक् अनुष्टुप् २ । स्वराद् अनुष्टुप् ३ । विचृत् बृहती ४ । कृति ५ । धिराद् धृति ६ । गुरिक् गायत्री ७ । निचृत् मत्पष्टि ८ । गुरिक् अष्टि ९ । अकृति १० । स्वराद् वगती ११ । विष्टुप् १२ । निचृत् विष्टुप् १३ ।

॥ इति एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥



॥ अथ चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

समुद्रों के २१ अक्षांश वृत्तीय वर्णमालाएँ लगे गये हैं। उनकी लम्बी अवकाश विस्तृत ज्ञानमाल है। इसे ईसापूर्वके प्रसिद्ध के रूप में मान्यता प्राप्त है। अन्तर्गत स्थिति ने भी विशुद्ध ही कि यद्यपि से मुक्त हुए अन्तः कारण को जायस्य—प्राप्त्यस्य से संस्कारित करने के लक्ष्य से अग्नियों ने का अग्निव अन्तर्गत अक्षुब्ध ज्ञान सुखों के रूप में स्थापित किया है। इस भावसमुच्चय में मुक्त मंत्रों का केवल सर्वसुख लक्ष्योपयोगी अर्थ ही दिया जा रहा है—

१९५९. ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किं न जगत्स्यां जगत् । तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः  
कस्य स्विकृतम् ॥१॥

इस सृष्टि में जो कुछ भी (जड़ अथवा चेतन) है, वह सब ईश द्वारा आवृत-आच्छादित है (उसी के अधिकार में है)। केवल उसके द्वारा (उपयोगी) छोड़े गये (साँप बने) का ही उपयोग करो। (अधिक का) लालच मत करो, (क्योंकि यह) धन किसका है ? (अर्थात् किसी व्यक्ति का नहीं केवल 'ईश' का ही है) ॥६॥

१९६०. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतश्च समाः । एवं त्वयि नान्यथेतोस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥२॥

यहाँ ( ईश्वर से अनुशासित इस जगत् में ) कर्म करते हुए सौ वर्षों (पूर्वजों) तक जीने की कामना करें । (इस प्रकार अनुशासित रहने से) कर्म मनुष्य को लिप्त (विकारग्रस्त) नहीं करते । (विकारमुक्त जीवन जीने के निमित्त) यह (मार्गदर्शन) हमारे लिए है, इसके अतिरिक्त परम कल्याण का और कोई अन्य मार्ग नहीं है ॥२॥

१९३१. असुर्या नाम ते लोकाः ऽ अन्येन तमसावृताः । तांस्तु प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के  
चात्महनो जनः ॥३॥

वे (इस अनुशासन का उल्लंघन करने वाले) लोग असुख (केवल शरीर एवं इन्द्रियों की शक्ति पर निर्भर-सद्विवेक की उपेक्षा करने वाले) नम से जाने जाते हैं । वे (जीवन भर) गहन अन्धकार (अज्ञान) से घिरे रहते हैं । वे आत्मा (आत्मचेतना के निदेशों) का ध्यान करने वाले लोग, प्रेत रूप में (शरीर छूटने पर) भी वैसे ही (अधकारयुक्त) लोकों में जाते हैं ॥३॥

१९६२. अनेजदेकं मनसो ज्वीयो नैनदेवाऽ आप्नुवन् पूर्वमर्शत् । तद्वावतोऽन्यानत्येति  
तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥४॥

चंचलतारहित वह ईश एक (ही है, जो) मन से भी अधिक वेगवान है। वह स्फूर्तिवान पहले से ही है, (किन्तु) उसे देवगण (देवता या इन्द्रिय समूह) प्राप्त नहीं कर पाते। वह स्थिर रहते हुए भी दौड़कर अन्य (गतिशीलों) से आगे निकल जाता है। उसके अतर्गत (अनुशासन में रहकर) वे गतिशील वायु-जल को धारण किए रहता है ॥४

१९६३. तदेजति तन्नैजति तद्वरे तद्वनितके । तदन्तरस्य सर्वस्य तद् सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥५॥

वह (परमात्मतत्त्व) गतिशून्य भी है और स्थिर (भी) है। वह दूर से दूर भी है और निकट से निकट भी है वह इस सब (जड़-चेतन-जगत्) के अंदर भी है तथा उसके बाहर (उसे आवृत किये हुए) भी है ॥५॥

१९६४. यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति । सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि-  
चिकित्सति ॥६॥

व्यक्ति (जब) सभी भूतों (जड़-चेतन सृष्टि) को (इस) आत्मतत्त्व में ही स्थित अनुभव करता है तथा सभी भूतों के अंदर इस आत्मतत्त्व को समाहित अनुभव करता है, तब वह किसी प्रकार प्रमित नहीं होता ॥६॥

१९६५. यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विज्ञानतः । तत्र को मोहः कः शोक उपकार-मनुपश्यतः ॥७॥

जिस स्थिति में (व्यक्ति) वह (धर्म) जान लेता है कि यह आत्म तत्त्व ही छपरत भूतों के रूप में प्रकट हुआ है, (तो) उस एकत्व की अनुभूति की स्थिति में मोह अथवा शोक कहीं टिक सकते हैं ? अर्थात् ऐसी स्थिति में व्यक्ति मोह एवं शोक से परे हो जाता है ॥७॥

१९६६. स पर्यगाच्छुक्रमकायमखणमनाविरक्ष्य शुद्धमपायविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोर्थान् व्यदधाच्छासतीत्यः सम्यग्यः ॥८॥

वह (परमात्मा) सर्वव्यापी है तेजस्वी है । वह देहस्थित, स्थावुरस्थित एवं छिद्र (गुण) रहित है । वह शुद्ध और निष्काम है । वह कवि (ब्रह्मादरी), मनीषी (बन पर रहस्य करने वाला), सर्वज्ञवी और स्वयं ही उत्पन्न होने वाला है । उसने अनादिकाल से ही सबके लिए यथा-योग्य अर्थों (साधनों) की व्यवस्था कराबी है ॥८॥

१९६७. अन्यं तपः प्र विज्ञानि येसंभूतिमुपासते । ततो भूयऽ इव ते तमो यऽ उ सम्भूत्याधः रतः ॥९॥

जो लोग केवल असंभूति (विस्मरण-विनाश) की उपासना करते हैं (उन्हे प्रवृत्तियों में रने रहते हैं), वे घोर अंधकार (अज्ञान) में घिर जाते हैं और जो केवल संभूति (समठन-सृजन) की ही उपासना करते हैं, वे भी उसी प्रकार के अंधकार में फँस जाते हैं ॥९॥

१९६८. अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् । इति शुश्रुम वीराणां ये नस्तद्विचक्षिरे ॥

जिन देवपुरुषों ने हमारे लिए (इन विषयों को) विशेषरूप से कहा है, हमने उन वीर पुरुषों से सुना है कि संभूतियोग का प्रभाव भिन्न है तथा असंभूति योग का प्रभाव उससे भिन्न है ॥१०॥

१९६९. सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयधः सह । विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥११॥

(इसलिए) संभूति (समय के अनुरूप नया सृजन) तथा विनाश (अव्यक्तनीय को समाप्त करना)—इन दोनों कलाओं को एक साथ जानो । विनाश की कला से मृत्यु को पार करके (अनिष्टकारी को नष्ट करके मृत्युदम से मुक्ति पाकर) तथा संभूति (उपयुक्त निर्माण की) कला से अमृतत्व की प्राप्ति की जाती है ॥११॥

१९७०. अन्यं तपः प्र विज्ञानि येविद्यामुपासते । ततो भूयऽ इव ते तमो यऽ उ विद्यायाधः रतः ॥१२॥

जो लोग (केवल) अविद्या (पदार्थ-निष्ठ विद्या) की उपासना करते हैं, वे महान् अंधकार (अज्ञान) से घिर जाते हैं और जो (केवल) विद्या (आत्म-विद्या) की उपासना करते हैं, वे भी उससे ऊपर के अज्ञान में फँस जाते हैं ॥१२॥

१९७१. अन्यदेवाहुर्विद्यायाऽ अन्यदाहुरविद्यायाः । इति शुश्रुम वीराणां ये नस्तद्विचक्षिरे ॥१३॥

जिन देवपुरुषों ने हमारे लिए (इन विषयों को) विशेषरूप से कहा है, उन वीर पुरुषों से हमने सुना है कि विद्या का प्रभाव कुछ और है तथा अविद्या का प्रभाव उससे भिन्न है ॥१३॥

१९७२. विद्यां चाविद्यां च वस्तुद्वेदोभयं सह । अविद्याया मृत्युं तीर्त्वा विद्यायामृतमश्नुते ॥१४॥

(इसलिए) इस विद्या (आत्म-विज्ञान) तथा उस अविद्या (पदार्थ-विज्ञान) दोनों का ज्ञान एक साथ प्राप्त करो । अविद्या के प्रभाव से मृत्यु को पार करके (पदार्थ-विज्ञान से अस्तित्व बनाये रखकर), विद्या (आत्म-विज्ञान) द्वारा अमृत तत्व की प्राप्ति की जाती है ॥१४॥

१९७३. वायुरनिलयमृतमघेदं यस्मान्नतथं शरीरम् । ओ३म् कृतो स्मर । क्लृप्ते स्मर । कृतश्च स्मर ॥१५॥

यह जीवन (अस्तित्व) वायु-अग्नि आदि (पंचभूतों) तथा अमृत (सनातन आत्म वेतना) के संयोग से बन है । शरीर तो अंततः यस्म हो जाने वाला है । (इसलिए) हे संकल्पकर्ता ! तुम परमात्मा का स्मरण करो, अपनी सामर्थ्य का स्मरण करो और जो कर्म कर चुके हो उनका स्मरण करो ॥१५॥

१९७४. अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विद्यानि देव ययुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठा ते नयऽ अर्कं विधेम ॥१६॥

हे आग्ने (यज्ञ प्रभु) ! आप हमें श्रेष्ठ मार्ग से ऐश्वर्य की ओर ले चलें । हे विद्व के अधिपतिरादेव ! आप कर्म मार्गों के श्रेष्ठ ज्ञाता हैं । हमें कुटिल चपकर्मों से बचाएँ । हम बहुत (भूयिष्ठ) गमन करते हुए आप से विनय करते हैं ॥१६॥

१९७५. हिरण्यमेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् । योसावादित्ये पुरुषः सोसावहम् । ऊँ सां ब्रह्म ॥१७॥

सोने के (चमकदार-सुभाषणे) पात्र से सत्य का मुख (स्वरूप) देका हुआ है । (आवरण हटने पर पता लगता है कि) वह जो अदित्यरूप पुरुष है, वही (आत्मरूप में) मैं हूँ । 'ऊँ' (अक्षर) अक्षरारूप में ब्रह्म ही संख्याप्राप्त है ॥

### —ऋषि, देवता, छन्द-विवरण—

ऋषि— दध्यङ् आधर्वज १-१४ । दध्यङ् आधर्वज, वस १५, १७ । अगस्त्य १६ ।

देवता— आत्मा १-१४, १७ । आत्मा, परमात्मा १५ । अग्नि १६ ।

छन्द— अनुष्टुप् १, ३, ५, ९-११, १३, १७ । गुरिक् अनुष्टुप् २ । निवृत्तिष्टुप् ४, १६ । निवृत्त अनुष्टुप् ६-७, १२ । स्वराद् जगती ८ । स्वराद् अणिक् १४, १५ ।

॥ इति चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

॥ इति शुक्लयजुर्वेदसंहिता समाप्ता ॥



आपत्त को प्रभावित करने हुए सर्वप्रथम सूचना में लिखा है—अपने कानूनसंगीन विधायक सोहनसुत (मार्च २०४)। आचार्य महोदय ने यही प्रसंग स्पष्ट करते हुए लिखा है—अपने कानून सोहनसुत (पृ. १०११ यही. ५०)।

६०. श्रीराम (३.४९-५०) — अर्धवर्ष के बंरस को श्रीराम कह्य गय है। कुछ लोगो ने इन्हे श्रीधर्य का शिष्य भी कय है। बाक मे इनका उपरोक्त अनेक स्थानो पर आचार्य के रूप मे लिख है— *श्रीरामश्रीधर्य* (16.१५.२२), बभ्रुवेंद (३.४९-५०) के इहा अपि ली है। जैसन कि पार्थिव कायकयन प्रयोग सर्वज्ञप्रमुख मे उल्लिखित है— *श्रीराम* है श्रीराम केनकायकयन (मिर्क. १.२५)।

[illegible][illegible]

३३. **कलिका बरहम दक्षिण (३४.३२) —** कलिका ग्राम की पश्चिम की ओर जाने वाले पथों में कलिका का भी महत्वपूर्ण स्थान है। समीपस्थ क्षेत्र में ही एक छोटा सा झील है। इस झील के पानी में कलिका का पानी भरकर पीया जा सकता है। इस झील के पानी में कलिका का पानी भरकर पीया जा सकता है। इस झील के पानी में कलिका का पानी भरकर पीया जा सकता है।

३४. काशीका मुनीर्षि (१०.३२) — मुनीर्षि कलकत्ता-गोत्र के होने के कारण काशीका मुनीर्षि कहलाए जो ३१वे (१०.३१) मुख के शिर्ष हैं— अथवा इति सम्प्रति मुनीर्षि मुख कलकत्ता पञ्चम मुनीर्षिगणम् ... 'म. १०.३१ सा. ५०) व. ३० में इसका वर्णित अन्वय १० के ३२ से ३३ में प्राप्त होता है— मुख काशीका मुनीर्षिगणम् (पट्टी. ५०. व. ३०. १०.३२)

14. कुत्स (स. १२२) —अष्टाश्विनी (श्विनी) के कुत्से में 'उन पुत्रों' की संख्या आठ है इनके कुत्स भी हैं। श्रुति आठवें के वैयक्तिक श्रुति के रूप में कुत्स का नाम उल्लेख किया गया है। (कुत्स श्रुति का अर्थ है श्रुति के रूप में ही इसे निर्मित किया गया है) — अनुशासनब्रह्म कुत्स श्रुति (सं. १.१.१.१. १००, १०१)। अथ कुत्स श्रुति का अर्थ कुत्स श्रुति (सं. १.१.१.१. १००, १०१)। कुत्स में आठवें श्रुति का अर्थ कुत्स श्रुति के रूप में ही इसे निर्मित किया गया है। (कुत्स श्रुति का अर्थ है श्रुति के रूप में ही इसे निर्मित किया गया है)। इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक साहित्य में कुत्स का महत्वपूर्ण स्थान है।

**३६. कुमार-वृष (१५, ४९-७०)** —कुमार और वृष दोनों का अङ्गिरस ऋषिज बन्धुवंद (१५, ४९-७०) में एक स्थान पर ही उल्लेख किया है। जबकि कुमार शरीर कुमार आश्रय कुमार आश्रय मत्त कुमार साक्षात्कार के मत अनुसार भी धार्य जाते हैं। वरन् यह कहना बड़ा कठिन है कि जो कुमार वृष के मत अवश्य है, वे ही इतिहास आश्रय आश्रय एवं समाधान के साथ हैं। बन्धुवंद में उनके ऋषिज का उल्लेख करने हुए नहीं। सुकर्म ने लिखा है— अत्रि के कुम्भकर्ण (अर्थात् २५०)। यही मत पं. ५३.१ तथा साम्य ४२५ में भी पाया है। वरन् यदि अनुमानों से इस मत के ऋषि का नाम कुमार वृष के स्थान पर बन्धुवंद आश्रय आया है।

डॉ. कुमार हरीश (१२.६९) — 'कठारमक उद्योग' में आचार्य को प्रथम बार सुनी (१५.२) में गानव के शिष्य कुमार हरीश का उल्लेख है। (सं. १२.६९ में प्रकाश) को रूप में इसका नाम प्रकृत है। सुखर ने लिखा है— सुनं कस्य सीतलकस्य कुमारात्मिके डे सिद्धौ — (सं. १२.६९)। आचार्य महीधर ने अपने नाम में इसे इस प्रकार अस्तिष्ठित किया है— कथारमक उद्योग सीतलकस्य (सं. १२.६९ मं. १०)।

३८. कुलसप्तति (८. ३९) — वैदिक साहित्य में कुलसप्तति का अर्थ कुल अथवा गोत्र का नाम है। यजुर्वेद में मात्र एक मात्र (८. ३९) में ही इसका उल्लेख मिलेका है। अथर्ववेद में भी मात्र २०. ५२ मंत्र का उल्लेख इसके रूप में उपलब्ध होता है। महाभारत में इसके सम्बन्ध में लिखा है—  
 अथर्वान् कुलसप्ततिं संश्लेषयन् (महा० १. ३०) आचार्य महीधर ने कुलसप्तति का अर्थ कुल अथवा गोत्र स्वीकार किया है—  
 कुलोक्तं च यस्मै कुलसप्ततिरुच्यते (वि० १. ३९ पदो० ५०)









६८. देवप्रजा-देवप्रजा भरत (३. १५. १. ३०) — देवप्रजा और देवप्रजा जिन का नाम 'देवप्रजा देवप्रजा भरत' के साथ समुद्रित रूप में मिलता है। अथर्व ४.१५.३ में 'देवप्रजा संज्ञके का उल्लेख हुआ है जिसमें किसी 'देवप्रजा' नामक राजा के पुत्र 'संज्ञक' का उल्लेख है। ३.१३.३ में देवप्रजा-देवप्रजा 'भरत' राजा का पर्वत नाम आता है, जिन्होंने दुषहती कास्यती और आपका के वट पर वट फल खा— देवप्रजा देवप्रजा सुप्रजा। अथर्व के अन्तर्गत इसके अतिरिक्त का उल्लेख लघुनाम सूत्र द्वारा हो जाता है। जहाँ से देवप्रजा देवप्रजा भरत की अन्वेषी-सुप्रजा (अर्थ १.१.२) पदों का अन्वेषण नाम में दूसरे शब्दों में आता हुआ है— अन्वेषी विप्र देवप्रजादेवप्रजासुप्रजा (अर्थ १.१.३५ अर्थ ५५)।

५१. कृष (१२११) — कमुबैट का १२११ मंत्र कृष खाति इजा दूत है। इन्के आधिकार गौरीय भी कहा गया है। इनके द्वारा दूत मर्मा में राष्ट्र के सुस्थिति की वाचना की गई है तथा अन्तर्गत दृष्टांत आदि पद्यों को आधिकारिक मिलती है। कमुबैट में खाति कृष के आधिकार का प्रतिपादन सर्वोत्कृष्ट सूत्र में इस प्रकार प्राप्त होता है—आ मा कृषः प्रकृष्यन् (मन्त्रः २५) यही तन्त्र अपने सन्धि में प्रकट करते हुए आचार्य व्यास मिलते हैं। आचार्यविरचित सूत्रान्त (मन्त्रः १२११ मन्त्रः ५५)।

७०. वाधार्थेदिष्ट (१.१७) — अथार्थेदिष्ट को मनुष्य कल मक है। अथार्थ इन्के नाम के जगो मानव कद की जोड़ा जाता है। अथार्थ के दो मुक्तों १.५१ ५२ जो मनुष्य के कल मक के टुक जोड़े नाम के वाधार्थेदिष्ट निर्दिष्ट हैं— 'क धोके' ... निर्दिष्ट मुक्तों मानव नामार्थेदिष्टमक (सं. १.१२ क. म.) । मनुष्य के नामार्थेदिष्ट मक के इनके वाधार्थ को निर्दिष्ट नाम है— वाधार्थेदिष्ट (मनु. १.१५ म. म.) । केनोप नामार्थेदिष्ट के जो जगो नाम जोड़ेना है— मनु. पुनोप नामार्थेदिष्ट नामार्थेदिष्ट (विधि. सं. १.१.५.५) ।

**७१. नारायण (३९ ६-९६) —** अस्मिन् पृथक् मुक्त का दर्शन करावना यदि ठहरा हो किता गया है । आचार्य प्राकृत का अधिकत  
है कि आदि काल प्रथम का अतिपादन करने के कारण इसे प्रथम भूषण कहा गया है । चतुर्वेदीय महासमुद्र सूत्र में नारायण को  
आदि रूप में आरोपित किया गया है—**अथाक्षरं नारायणम्—विश्वम्.** (२५५)। चतुर्वेद व्याख्यान उपर्युक्त में भी इनके अर्थों को  
विस्तारित किया है—**प्रथमभूषणम् नारायणम् इति प्रथमे देवत्वमुच्यते** (चतु. ३९६. ३. म.)

[illegible]

७३. नुमेथ (३३-४९) — नुमेथ नाम दुसरा दुष्ट मंत्र वाला फेलो से मिलने हैं। ज़ायेद एक मन्थरेड में इनके नाम के साथ अकस्मात्क पद-नाम आगमना भी सम्बन्ध है परन्तु मन्थरेड एक मन्थरेड में यह पद-नाम सम्बन्ध नहीं है। मन्थरेड सर्वांगमूल्य कुछ एक मन्थरेड मन्थरेड नाम से इनके अन्तिम को अन्तिम-मूल्य किया गया है—अन्तिम इस नुमेथे दुष्टमन् (मन्थरेड ३४९)। नुमेथद्वारा दुष्टमन् (मन्थरेड ३४-४९ मन्थरेड ३४९)।

194. **श्रीमद्-पुरुषसूक्त (२० ३०-३९) —** यजु. २० ३० ३९ का ये श्रुति काव्य वे 'श्रीमद्-पुरुषसूक्त' नाम निर्दिष्ट है। यही मंत्र कावेद ८ ८११ में आया है। यहाँ श्रुति नाम श्रीमद्-पुरुषसूक्त ही लिखित है। अथर्व ब्राह्मण 'श्रीमद्-पुरुषसूक्त' के स्थान पर श्रीमद्-पुरुषसूक्त नाम अमृत है। श्रीमद् श्रुति का नाम अमृत रूप से कहा गया। अथर्व, वे ब्रह्मण्य है। परन्तु पुरुषसूक्त के श्रुतिवाचक मंत्र यहाँ वेदों में नहीं मिलता। यजुर्वेद काव्यका अथर्व ब्राह्मण भी यजुर्वेद-श्रुति को ब्रह्म के रूप में स्वीकार करते हैं— श्रीमद्पुरुषसूक्त (यजु. २० ३० ३९)। इन्द्रिय अथर्व ब्राह्मण, यजुर्वेद भी करते हैं— बृहद्विद्या पुरुष श्रीमद्पुरुषसूक्त — (सर्वा. २.३५)।

७५. **वैशुवि काश्यप (८.६३)** — शब्द का नाम नीलो नेलो में निष्पत्ति काश्यप द्वारा दत्त सुक्ता एवं मंत्र संग्रहीत हैं। ऋग्वेद में एक सुक्ता ९.६३ इनकी के द्वारा दत्त है। इसी सुक्ता का एक मंत्र ९.६३.१८ ऋग्वेद में ८.६३ में संग्रहीत है। परन्तु यज्ञ, सर्वाङ्गकाम मंत्र में इनके द्वारा का नाम वैशुवि काश्यप निर्दिष्ट है जो अश्वत्थ पत्र फलेन दत्त है— **आ पञ्चम लौकी गच्छी वैशुवि काश्यपः** (सर्वा. १३३) संभव है वैशुवि निष्पत्ति के बरतन हो। ऋग्वेद काश्यपका मन्त्रिक ने इनके शिष्य विवेचन में केवल काश्यप - १० प्रयुक्त किया है— **सोमदेवाय गच्छी काश्यपः** (यजु. ८.६३ मन्त्र. ५०.)

५५५. मोक्ष गौतम (२६. ११) — जयस सम्म कर्म का इत्थेस ज्ञावेत् के पयसे बहस के सुक्ती (६१-६२ आदि) में का बा  
हु । है । ज्ञावेत् के पयसे बहस के सुक्ती ५८ से ६४ तक के कर्म सम्म में इसका सम्म निर्दिष्ट है— 'यु ज्जि' इति नव्वं प्रथमं  
सुक्ती नौत्तमस्य मोक्ष आरम्भमेवम् (३६. १५८-१५९) । पञ्चवेत् में जो जेका मोक्ष इत्थ कर्म में निर्दिष्ट है— कुत्तरेकस्य





[illegible][illegible]

१५. बृहस्पति आंगिरस (२११-१३) — बृहस्पति को पशु का दूहा कब तक पशु पालना भी में कहा गया है। इनके लोक का पुराना नाम आंगिरस गोत्र के नाम से कहा है। लोकनाम के अनुसार बृहस्पति का कुलनाम बृहस्पति (अ. १.१.१४) था। बृहस्पति ने आचार्य ब्रह्मरात्रि को अपने कुल के नाम से संबोधित किया है— बृहस्पति बृहस्पति (अ. १.१.१४)। बृहस्पति सप्तर्षि के भी इनके प्रति का कब में संबोधित किया है— बृहस्पति बृहस्पति (अ. १.१.१४)।

१६. **बृहस्पति-वृद्ध (११-१३)** — वेदों में वेदका जो को भी उचित नाम है वदुर्देव ११ १३ में बृहस्पति इन्द्र का नामित नाम बृहस्पति ब्रह्मपति किन्ना गया है। ब्रह्मपति यहाँ के ब्रह्म रूप में ब्रह्मपति ब्रह्मपति व इन्द्र विनाशित किया है—ब्रह्म ब्रह्मपति-ब्रह्मपति-ब्रह्मपति-ब्रह्मपति व देव ब्रह्मपति (अथर्व १३८)। ब्रह्मपति इन्द्र-ब्रह्मपति व भी ब्रह्मपति वदुर्देव नाम में इन्द्र के ब्रह्मपति को ब्रह्मपति किया है—ब्रह्मपति-ब्रह्मपति-ब्रह्मपति (अथर्व ११ ३० ५५)।

[illegible][illegible][illegible]

१००. **भारतवासी भारतीयता (८६)** - यह ग्रन्थ जहाँ भारत-देश के रूप में विवेचन किया गया है। विशेषतः के प्रयोग के रूप में और सामान्यतः के रूप में भी इसका विवेचन मिलता है। बुद्धिमान के मतों को के मतों को भी भारतीयता कहा गया है। ज्ञानेद पक्ष मंडल (१३०) के रूप में इसे वर्णित किया है - **भारतीयता** भारत के एक अक्षरमयम् । (वि. ६१ सा. ५५)। मनुसंहिता के अनुसार यह भी इसके अर्थों को वर्णित किया है - **भारतीयता** विदुषः भारतवर्ष (पृ. ८६ मही. ५०)।

[illegible]





वाष्पी वातकृदा (मनु. ७.५. १५) + सम्पन्नस्य सुनकार ने वां दृष्टपुत्र तथा का स्वीकार किया है— स ओषसा वातो वाष्पीन (सर्वा. १.३१)।

[illegible][illegible][illegible]

११६. बसुबुत (१२) — बसुबुत बसि डाल दृष्टि में है। बसु, बस, जो भी बसों में मिलने है। बसुबुत नाम में आचार्य सायन ने १६ अक्षर (आदि-मोक्ष) बसुबुत लिखित किया है। बसुबुत बसु, दुर्गि बसुबुत की बसुबुत बसुबुत बसुबुत बसुबुत बसुबुत (१२ अक्षर, १६ अक्षर)। अक्षर-बसुबुत बसुबुत में भी १६ अक्षर बसुबुत बसुबुत बसुबुत बसुबुत बसुबुत (१२ अक्षर, १६ अक्षर)। बसुबुत नाम में आचार्य बसुबुत बसुबुत ने बसुबुत बसुबुत बसुबुत बसुबुत बसुबुत बसुबुत (१२ अक्षर, १६ अक्षर)। बसुबुत नाम में आचार्य बसुबुत बसुबुत ने बसुबुत बसुबुत बसुबुत बसुबुत बसुबुत बसुबुत (१२ अक्षर, १६ अक्षर)।

१२७. बंसुपुत्र (१७.८) — बंसुपुत्र का जन्म केवल आग्नेय देव बंसुदेव से किया है। आग्नेय के पश्चिम पक्ष में ही जून २५-२६ में बंसुपुत्र आग्नेय का अग्रिम मिलता है। यहाँ ५ २५ का पत्थर पड़ा है बंसुदेव १७ ८ में संगृहीत है परन्तु यहाँ केवल बंसुपुत्र अतिव्यक्त है। आग्नेय पक्ष में आग्नेय पत्थर ने इनके अग्रिम का विवेचन किया है— आग्नेय पत्थर इसी स्थान पर ही मिलता है। बंसुपुत्र पत्थर (१७.५ २५ यहाँ ५७.१) आग्नेय पक्ष में आग्नेय पत्थर के पश्चिम बंसुपुत्र का अग्रिम किया है— आग्नेय पक्ष में बंसुपुत्र (१७.८ यहाँ ५७.१) यहाँ से ही इनके अग्रिम का वर्णन है— आग्नेय पक्ष में पत्थर (यहाँ ५७.२)

१२९. **सामवेद** (३. १५, ३६, १०. २४-२६) —समवेद के समस्त मन्त्रों के अधि के रूप में सामवेद का नाम आता है। भाष्य वेदों में इसका अधिकार दृष्टिकोण होता है। परन्तु यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में तब अधिओं के नाम अपत्यार्थक नाम से मिले हैं। सामवेद एवं अथर्व वेदों के नाम 'गौतम' नाम संयुक्त हैं। यजुर्वेद मन्त्रानुसूच-मन्त्र में इसके अधि का नाम विधेयन अधिर्वाचित है— अथर्ववेद सामवेदो जगदीश्वर (मन्त्र. १. १३)। अथर्ववेद अधिर्वाच २ वीं इसके अधि का नाम अधिर्वाचित किया है— सामवेदो जगदीश्वर (मन्त्र. ३. ३८, मन्त्र. ५५. १)। सामवेद का संबंध ब्रह्मण्य 'गौतम' आंगेय, अधिर्वाचन बृहदुक्त्य और अधिर्वाचन से निर्दिष्ट है।

१२२. विदर्भ (२० ५५-८०) — विदर्भ द्वारा दृष्ट गंध कबल क्यूरेट में संश्लिष्ट किया गया है। इनके जन्मस्थान का शिष्य कहा गया है और गालन को विदर्भ की शिष्य का शिष्य कहा गया है (वृ. ३, २५, ३)। यहां इनके नाम के साथ 'श्रीशिव' अथवा 'शिव' नाम भी संयुक्त है। आचार्य महोदय ने अपने क्यूरेट 'शिव' में इनके आली-सज्जक मूल के द्वारा रूप में स्वीकार किया है। विदर्भ द्वारा अक्षरानुसारी-संस्कृत आचार्य महोदय द्वारा (वृ. ३, ५५, ५६, ५७)।

[illegible]

१२४. विप्रबन्ध (३. २६) — अंगरेज ५२४ सूक्त का सामूहिक अधिनियम प्राप्त होता है जिसमें चार भागा अधिषो का विवरण प्राप्त होता है। उनमें से एक भाग विप्रबन्ध को भी अधिनियम प्राप्त है। इसी सूक्त के वचन अथवा मंत्र मनुवेद ३. २५. २६ में संगृहीत हैं जिसके अधि उपर्युक्त पदों प्रस्ता है। मुद्रिका में भी उपर्युक्त अधिनियम प्राप्त है— कण्व-प्रकृतिन् वैष्टा येऽविप्रबन्धो (बृ. ७. ८६)। मनुवेद ३. २६ का वाच्य पूर्वार्द्ध से विप्रबन्ध द्वारा दृष्ट है मन्व ३. २५ एवं ३. २६ में चारों भागों को अर्द्ध का अधिनियम ही प्राप्त होता है— अथो त्वं कण्वो विष्टाऽविप्रबन्धो मन्वः कण्व-प्रकृतिन्-वैष्टा-येऽविप्रबन्धो (सर्ग. १. १३)।

**१२५. विद्यार्त्त सौर्य (३३.३०) —** विद्यार्त्त सौर्य का जन्मलग्न दृष्टि मंग ग्रह के चंद्रमा के चंद्रमा के चंद्रमा में मिलता है। अथवा १०.१७०  
सूर्य के देवता सौर्य हैं इसका जन्म विद्यार्त्त सौर्य है। सूर्य ४३ होन के कर्मण्डलु उपाधि सौर्य है। सर्वोच्च ब्रह्म हैं सूर्य दिन सूर्य  
सूर्य के जन्मर्ष में दृष्ट वर विद्यार्त्त सौर्य के ही हैं। अथवा सूर्यजन्म विद्यार्त्त सौर्य जन्म सूर्यजन्म (पंज. ३३.३०  
करी. ५०.) विद्यार्त्त सूर्य के विशेषण के रूप में भी प्रयुक्त किया गया है— विद्यार्त्त विद्यार्त्तसौर्य विशेषण दीप्तसूर्य सूर्य  
अथवा १०.१७०.१७०.५०.)।

१२६. **विष्णु आंगिरस (३.१, ११.७१)** —विष्णु आंगिरस का उचित नामों से होने में निरूपित है। विष्णु को आंगिरस पद 'आंगिरस गोत्रीय' होने के कारण माना है। यद्यपि अर्वाकृष्ण सूक्तकार ने इनके उचित नाम का उल्लेख नहीं किया है। अंगिरस विष्णु उद्गीतः (सर्ग. ११.७) का नाम विष्णु आंगिरस (सर्ग. ३.१) आश्विन महीना में पद नाम उल्लेखित नहीं किया है—  
आश्विन महीना विष्णुपदो (मनु. ११.७१ मही. १७.१)

१२७. **विकलाङ्ग आगिरहा (१२, ३०)** — 'विकलाङ्ग' शब्द का मूल अर्थ 'कृच्छ्र' के रूप में आता है जिसके अन्तर्गत दो संयुक्त शब्द 'विकृष्ट और अङ्ग' आते हैं। इन दोनों का एकत्र एक शब्द बन भी (३० / ४३) ४४ और १० ३४ में) उपलब्ध होता है। आचार्य गङ्गाधर ने विकलाङ्ग के शब्दार्थ का 'विकलाङ्ग' कहा है — विकलाङ्गशब्द आयेकी मन्त्रकी मन्त्रमन्त्रमन्त्रमन्त्र (पृष्ठ १२ ३० पृष्ठ १० ३१)। अर्थात् 'विकलाङ्ग' शब्द का अर्थ 'विकलाङ्ग' है। अर्थात् 'विकलाङ्ग' शब्द का अर्थ 'विकलाङ्ग' (पृष्ठ १२ ३१)।

१२८. विद्यमान (८.३६-३७) — विद्यमान को सम्पूर्ण ब्रह्मण्ड का सम्पूर्ण वर्णन प्राप्त है— 'इमे कादि च जगन्मो विद्यमानास्तस्मात्' (यहाँ १२) अन्तः विशेष रूप से इन्हें अनुवेद ८.३६ ३७ पर ब्रह्मण्ड १०.११ मूल का उदाहरण दिया है यहाँ विद्यमान के साथ 'कादि' नाम की ब्रह्मण्ड में सम्मिलित है। इन्हें अदिश्यों में प्रत्यक्ष रूप से और अदिश्यों का पुनः भी कहा गया है (वि. १.१६३) के अनुसार विद्यमान ने सम्पूर्ण जगत् सभी में अक्षणीयता को उत्पन्न किया। कम और कम की भी उत्पन्न किया। इसी कारण से विद्यमान कहलाते। अनुवेद नाम में इन्हें अदिश्यों का अक्ष निरूपण आचार्य श्रीराय ने किया— इन्द्रोक्त विद्यमान विद्यमान (वि. ८.३६ मही. १०)। — यह ब्रह्मण्ड की सम्पूर्ण विद्यमान (वि. ८.३६ मही. १०)।

**१२९. विद्युत्कार्यी भीतन (१७.१०-३२) —** विद्युत्कार्यी भीतन का आभाव एक बंधु साथ लीने गेटो में मिलता है यमुबंद में कहीं-कहीं 'भीतन' नाम अनुपस्थित है। इसे सम्पूर्ण मृदिकाई विद्युत्कार्य विद्यालय के रूप में भी प्रतिपादित किया गया है—विद्युत्कार्य विद्यालय जलविद्युत् कार्य विद्यालय समूह (पृष्ठ २०, ८१३) । अन्तर्गत भीतन से इन्हें युग्मय के रूप में निर्दिष्ट किया है— युग्मय विद्युत्कार्य विद्युत्कार्य विद्युत्कार्य विद्युत्कार्य (पृष्ठ १०१५ पंक्ति ४०) । अन्तर्गत विद्युत्कार्य का तात्पर्यभारति (पृष्ठ १४३१ पंक्ति ४०) ।

**१३०. विद्युतधारा (१९४६) —**विद्युतधारा का अधिकतम धारा बेटों में दृष्टिगोचर होता है। आगे के जो सूत्रों ८२३-२६ के उदाहरण हैं। आगे और सम्बन्ध में इस नाम के साथ सम्बन्धीक नाम देखना भी संभव है। इनका सम्बन्ध गुरुत्वाकर्षण के साथ भी माना जाता है। विद्युतधारा विद्युतधारा के सम्बन्ध (पृ. ८२५)। यद्यपि यह एक सर्वांगीय रूप में ही इसके अधिकतम का विशेषता दिया गया है— अधिकतम धारा काही विद्युतधारा (पृ. ११४९ मही. भा.) को नियमित किया गया (सर्ज. २४)

१३१. विद्यामित्र (उ. ३५; क. ३१, ११, ६२) — विद्यामित्र नाम का काव्यमय बालो वेदों में दृष्टिगोचर होता है परन्तु यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में इनका अप्रत्यक्ष नाम 'गार्ग्य' अनुश्रुतिमय है जो ऋग्वेद एवं सामवेद में मिलता है। इन्हें ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के द्वा. के रूप में जाना जाता है। विद्यामित्र के बाल को कुशिक के रूप में बताया गया है। चिकन में उनके पिता कुशिक को राजा बनाया है—**काम्य काव्यमय कुशिकमयः यजुः। कुशिको यजुः यजुः (यि. २. २५)**। विद्यामित्र ने मृग-शेप को अपना दत्तक पुत्र बनाया और देवराष्ट्र नाम राजा। ऐ. ३. १० में इस मन्त्रमय वेदिलुप्त विचारमय प्रपण होता है। गायत्री मंत्र के द्वा. के रूप में ये प्रसिद्ध है—**विद्यामित्रोऽयं गार्ग्योऽयं विद्यामित्रोऽयं (यजु. ३. ३५ पदो. ५०)**। सम्यक्सिद्धिगार्ग्य गार्ग्य (सर्वा १. १३) आचार्य सामन में इनके नाम विद्यामित्र उल्लेख में इन्हें गार्ग्यः (गार्ग्य के पुत्र) कहा है—**अप्ये सहस्रं इति गार्ग्योऽयं विद्यामित्रः (यजु. ३. २४ पदो. ५०)**।













### यजुर्वेदीय देवताओं का संक्षिप्त परिचय

- [illegible]





















ख. न्यङ्कुसारिणी बृहती	८ + १२ + ८ + ८	३६	११.३८
च. पथ्या बृहती	८ + ८ + १२ + ८	३६	३.३४ ३४.३२
चिराट् पथ्या बृहती		३४	११.४५
छ. पिपीलिका मथ्या बृहती	१३ + ८ + १३	३४	१७.६७
ज. बाह्वी बृहती	९ + १८ + २७	५४	२११, ७.१०
निचत् बाह्वी बृहती		५३	२.५, ८.५७
भुरिक् बाह्वी बृहती		५५	२.११
चिराट् बाह्वी बृहती		५२	४.३६, ८.१०
स्वराट् बाह्वी बृहती		५६	५.१, ७.२६
झ. वाजुषी बृहती + (स्वराट् बाह्वी अनुष्टुप् + स्वराट् बाह्वी उज्जिक्)	९	९	५.२३
ञ. सतोबृहती	१२ + १२ + १२	३६	
स्वराट् सतोबृहती		३८	३३.१७
ट. साम्नी बृहती + (साम्नी उज्जिक्)	९ + ९	१८	४.२८
भुरिक् साम्नी बृहती		१९	३८.३
१९. विकृति	८ + १० + १२	९२	९.३६
निचत् विकृति		९१	१४.२८; १७.२
भुरिक् विकृति		९३	१४.२४; २१.६१
स्वराट् विकृति		९४	२५.५
२०. शक्वरी	८ + ८ + ८ + ८ + ८ + ८ + ८	५६	१६.२४
निचत् शक्वरी		५५	१६.२७; १७.८६
भुरिक् शक्वरी		५७	१६.२५, १८.११
स्वराट् शक्वरी		५८	१८.१७; २४.३४
२१. संकृति + (चिराट् संकृति)		१६	१८.२४
निचत् संकृति		१५	२४.२
भुरिक् संकृति		१७	२४.१
चिराट् संकृति		१४	३०.१२
स्वराट् संकृति		१८	११.६०; १४.२५











सम्बन्धित पत्र: लघुसम्बन्धितपत्रिका (सं. ४३३४)। कुम्भकर्णिका (सं. ४३३४)।  
सम्बन्धित पत्र: लघुसम्बन्धितपत्रिका (सं. ४३३४)। कुम्भकर्णिका (सं. ४३३४)।

२०. कुल (दर्प) कुल का प्रयोग व्यक्तिगत कृत्यों में विशेषतः किया जाता है। चारों दिशाओं में कुलकण्डिका का स्तरण एवं बल प्रोक्षण के विभिन्न प्रकार प्रयोग होते हैं। प्रोक्षण-कालक होने के कारण इसे बल रूप भी कहा गया है— अर्थात् हि कुल (सं. पृ. १.३.२३) कुल का प्रयोगकर्ता स्वयं दर्प प्रदान करता है। दर्प को प्रयुक्त करने वाला कहा गया है। दर्प का औपचार्य प्रयोग इत्यत्र है— इत्यत्र वेदार्थ का दर्प प्रदान प्रोक्षणक कालक— सं. ७.३.३.३। अर्थात् का प्रयोगकर्ता नेत्रों पर धारण (का. सं. ३.३.२०)। दर्प की प्रतीति व्यक्तिगत कृत्यों में प्रयुक्त दर्प प्रदान है। अर्थात् प्रदान कालक (सं. पृ. ७.३.२३)।

[illegible][illegible]

३०. वर्ष (कृष्णाब्दि, श्रावर्ण, आदि) — कृष्णिक वर्षों में वर्ष का विविध प्रयोग पाया जाता है। इनका प्रयोग मुख्यतः आश्विन के मास में किया जाता है। वर्षों का विस्तार ३५६० तक हो जाये तो (वर्ष का प्रयोग को पन्था में कटते में तथा इसके एक को निराली में)। 'वर्ष मृग' के मास आदि के वर्ष का अन्तर्गत का वर्षों में हुआ है— कृष्ण-वर्णाब्दि (पृष्ठ. १०५, ३०)। शीतमासका वर्ष में अश्वि कुम्भाब्दि को एक के लक्ष विविध विचारों का है— कृष्णाब्दि (पृष्ठ. १०५, २५२)। वर्ष में वर्ष का प्रयोग भी कृष्ण-वर्ष का प्रयोग होता है— वर्ष का प्रयोग कृष्णाब्दि (पृष्ठ. १०५, २५२, २५३)। कृष्ण मृग के वर्ष को कुम्भाब्दि और आश्विन का प्रयोग के वर्ष को श्रावर्ण कहा गया है। कृष्णाब्दि (पृष्ठ. १०५, २५३, २५४)। कृष्णाब्दि (पृष्ठ. १०५, २५३, २५४)।

३१. **कालाचक्र**—वातुर्गम्य का अग्निहोम भाग की वेंटिका में डगर की ओर काटवाले बनवा जाता है। यह एक चिह्न वक्राकार होता है, जिसकी नाप ३२.५ ३२.५ ४ अंगुल है। इसका इस्तेमाल कर्मकाण्ड और मनुष्य में अनेक व्याधियों पर किया जाता है—**कालाचक्र** काटवाले चिह्न (पा. श्रौ. ५.३.२२)। **विश्वार्जुन** काटवाले चक्र (पा. श्रौ. ५.३.२३)। **विश्वामित्र** काटवाले चक्र (पा. श्रौ. १.३.४१)। **कालाचक्र** में इसका एक अर्थ है—**उग्रदेवी** में २-४ का स्थान—**उग्रदेवी** का चक्र (पा. श्रौ. २.२.१२)।

३२. **मुहू**—काग में इधियाँ आँखें करने के लिये बहुत होते वाली सूखी कोड़े का कहते हैं। पर बलराम काष्ठ की एक अलंकार (काव्यभारत नाम की, आगे में यह अमुक गर्विल्ली और इतनुली होती है) कविने मुहूको कागको लव व लल्लललललल (पृ. ५० ३२४२) कागली मुहू (पृ. ५० ३३२५)। पल्ललली मुहू (पृ. ५० ३५०२) इसे काग का मुहू और पल्ललली की ललललललललल कह गये हैं—मुहूँ लललललल (पृ. ५० ३३२)। लललली लललली ललललललललल (पृ. ५० ३३२)।

[illegible][illegible]

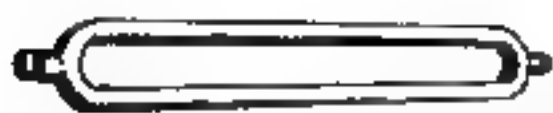




५२. **रन्तु** —अन्धन कार्य के निमित्त रन्तु का प्रयोग किया जाता है। यज्ञ में कम्प-अन्धन एवं यज्ञ-नियोजन में इसका उपयोग किया जाता है— यज्ञिकरथ रन्तु रन्तुस्य (श्रौ. १.१६२.८)। रन्तु को अश्विनी और पूषा की पुत्राये कहा गया है— हे रन्तो ! सवित्रुर्देवस्यपुत्रायां रन्तुमन्त्रोऽभिमतोवाङ्मुन्यं कृण्वे इत्यथर्थां तन्मन्त्रो मूलमन्त्रि (यजु. ३८.१ मही. ५७)। रन्तु को वरुण से सम्बन्ध भी माना गया है— कश्मल वी यज्ञे रन्तु (श्रौ. ७.४३.८)।
५३. **रथ (सोमरथ)** —रथ एवं उसके विविध अङ्गों का उपयोग वेदों में सर्वत्र प्राप्त होता है। यजुर्वेद में यज्ञिक कार्यों में प्रतीकालेक रथ का उपयोग किया जाता है। वाजसनेय ब्राह्मण के प्रसंग में रथ-मृति की गयी है। आशुलो को इसी रथ में स्थापित किया जाता है— अथर्वश्रुत रथ स्तुत्यः । अथर्वश्रुत रथमन्त्राय यज्ञ रथ मन्त्रिण रथमन्त्रम् । अथर्वश्रुत रथमन्त्रोऽभिमतोवाङ्मुन्यं कृण्वे इत्यथर्थां तन्मन्त्रो मूलमन्त्रि (यजु. २९.४५ मही. ५७)। अथर्वश्रुत रथमन्त्रोऽभिमतोवाङ्मुन्यं कृण्वे इत्यथर्थां तन्मन्त्रो मूलमन्त्रि (यजु. २९.४५ मही. ५७)।
५४. **वसतीवरी** —शोधयाग में भद्र प्रारम्भ होने के एक दिन पूर्व रात में संघटों में जल का आवरण किया जाता है। उसी जल का उपयोग सोमाभिषेक आदि यज्ञिक कार्यों में किया जाता है। यज्ञ कार्य के उपरान्त इस जल का नाम वसतीवरी है। शोधयाग को कूटकर जो रस निष्कृता जाता है उसे वदमं के लिए इसमें कम्पनीपरी लक्षक जल मिलाते हैं। इसमें विश्वेदेवा का नाम माना जाता है— वसतु नु इत्यस्मिन् तद् अस्मिन्निष्कृतं वसतीवरीम् (तैत्ति. ५.४.२.२)। तन्मन्त्रो मूलमन्त्रि (यजु. २९.४५ मही. ५७)। अथर्वश्रुत रथमन्त्रोऽभिमतोवाङ्मुन्यं कृण्वे इत्यथर्थां तन्मन्त्रो मूलमन्त्रि (यजु. २९.४५ मही. ५७)।
५५. **वास** —वास का सामान्यतया वैदिक प्रयोग जल कटहरा है— कुण्डं वासं विष्णुं वासतोऽन्धनं तेन्यं वासं यज्ञिकं (श्रौ. १.३४.१)। वासित सोमन वसते मे ही सुशोभित होता है—अथर्वश्रुत रथमन्त्राय यज्ञ रथ मन्त्रिण रथमन्त्रम् । अथर्वश्रुत रथमन्त्रोऽभिमतोवाङ्मुन्यं कृण्वे इत्यथर्थां तन्मन्त्रो मूलमन्त्रि (यजु. २९.४५ मही. ५७)।
५६. **शकट** — शकट नाम वेदों में अनेक बार प्रयुक्त हुआ है— अथर्वश्रुत रथमन्त्राय यज्ञ रथ मन्त्रिण रथमन्त्रम् । अथर्वश्रुत रथमन्त्रोऽभिमतोवाङ्मुन्यं कृण्वे इत्यथर्थां तन्मन्त्रो मूलमन्त्रि (यजु. २९.४५ मही. ५७)।
५७. **सप्तमान** —एक सौ रत्ती सर्व यज्ञों में नुकी माता को सप्तमान कहते हैं। सप्तमान स्पर्शदक्षिणा देने का विधान यज्ञों में किया जाता है— लौक्यं सप्तमानं दक्षिणा- (श्रौ. ५. १. १५)। ये सुवर्ण रत्नमय सप्तमान पदों से भक्त सप्तमान व दक्षिणा (श्रौ. १.४.२.२)।
५८. **शम्भार** — शम्भार यज्ञीय कर्मक वस्त्र है जो का हीर और पीपले के लवण तिल के मध्य अग्नित्त काल के अर्थ में तथा गुर के दोनों दोनों पर दोनों को नियोजित करने वाले कर्मक वस्त्र के अर्थ में इसका प्रयोग किया गया है— कुले कर्मणः शिरोऽभिधा शम्भारं गौरवस्य यज्ञमन्त्रम् (श्रौ. १.०.३.१.२०)। यह शकट जंगल लवण और आगे से नुकीली होती है।
५९. **शुक्रपात्र** —जिस पात्र में विशुद्ध व निर्मल सोम रखा जाता है उसे शुक्रपात्र कहते हैं। निर्मल सोम देवों को अतिथि कृषिकार है— शुक्र (निर्मल) सोम (श्रौ. ५. ४. ६.१)। शुक्र देवो मूलमन्त्रि (श्रौ. ५. ४. ६.१)। विधान के अनुसार इसमें गंध, दधि, दुग्ध आदि मिलाकर यज्ञोपयोगी करके रखा जाता है। शुक्रपात्र का प्रयोग ब्रह्मादि कारक है— शुक्रपात्रमन्त्रम् मनुष्या प्रजापते (श्रौ. ५. ४. ५.१)। शुक्रपात्र मनुष्योऽभिधा शम्भारं गौरवस्य यज्ञमन्त्रम् (श्रौ. ५. ४. ६.१)।
६०. **शूर्प** —कटे गये हविर्द्रव्य के अनिच्छित अंश को निष्कसने हेतु शूर्प का प्रयोग किया जाता है। यज्ञीय द्रव्यों में अपद्रव्य को शूर्प से हटा करके साफ किया जाता है। यह बरिस वा रस्सक का कर्म हुआ होता है। ब्राह्मण ग्रन्थ में इसे विवेचित किया गया है— इन्द्रो यज्ञमन्त्रोऽभिधा शम्भारं गौरवस्य यज्ञमन्त्रम् (श्रौ. ५. ४. ६.१)। अथर्वश्रुत रथमन्त्राय यज्ञ रथ मन्त्रिण रथमन्त्रम् । अथर्वश्रुत रथमन्त्रोऽभिमतोवाङ्मुन्यं कृण्वे इत्यथर्थां तन्मन्त्रो मूलमन्त्रि (यजु. २९.४५ मही. ५७)।
६१. **सधित**— यज्ञ में हवि ईधन कर्मक वस्तुओं को सधित वा सधिया कहा जाता है। यज्ञ, वेदिक में इन कर्मक वस्तुओं को प्रत्यक्षतया विधिपूर्वक रखा जाता है— यज्ञे सधितं सधितं सधितम् (तैत्ति. ५. ४. ६.१)। इसकी लम्बाई बाहुमात्र तथा मोटाई अंगुली के समान होती है। इसे सड़ी वा धुई नहीं होना चाहिए— यज्ञे सधितं सधितं सधितम् (श्रौ. ५. ४. ६.१)।

६२. **सुराग्रह** —सौराग्रणी यज्ञ में जिस अग्रपत्र में सुराग्र का इव्यन होता है वह सुराग्रह पात्र है। सुराग्रह का इव्यन प्रतिप्रस्थाता की दक्षिण वेदि में आहवनीय अग्नि में किया जाता है। सुराग्र आभरण में लम्बा गुड़ गन्धुर्ज (दालचीनी त्रिफला, सोंठ, पुनर्नवा इत्यादि) और दृग्वि दालकर चार दिन रख रखे दिया जाता है पुनः उसका आस्नन किया जाता है— अर्थात् वा एष ओम्बीन् च रतो कस्मिन् (का० श्रौ० १२.८.१४)। सुराग्रह से देवों के निमित्त सुरा की आहुति दी जाती है— सुराग्रहन् श्रीयन्ति (का० श्रौ० १९.२.२५)। यज्ञ के उपरान्त सुराग्रह में अर्पित सुरा के पान का विधान अथवा निषेध प्रतिप्रस्थाता द्वारा प्राप्य होता है। सामान्यतया सुरा अन्नादित करने वाली थी अतएव आसनों के लिए उसके पान का निषेध किया गया है— तस्मात् सुरां पीत्वा रक्षिषन् (श्रौ० का० १२.७.३.२०)। अथवा अथवा सुरां न पिबेत् कथं कथं देवैस्तु अग्निं (श्रौ० का० २४.२)।
६३. **सोमग्रह** —सोमरस का संग्रह जिस पात्र में किया जाता है वह सोमग्रह पात्र कहलाता है। सोमग्रह देवस्यैक विजय का प्रतीक है— देवस्यैकमेव सोमवर्गैर्यजन्ति (का० श्रौ० १४.५)। अग्निहोत्र यज्ञ में सोमग्रह का संग्रहण वज्रपात स्वयं करता है तथा पत्नी सुराग्रह का स्पर्श करती है— अथवाग्नेयं सोमवर्गैस्तु यजन्ति कथं सुराग्रहैः (का० श्रौ० १४.६)। अथवा सोम की आहुति अर्पणु यह से देवा है।
६४. **स्यम्** - यह खादिर काष्ठ का एक द्रव्य लम्बा चतुर्दश और आने में नुकीला बड़ा होता है जिसे आग्नीष नामक खादित्व ग्रहण करते हैं— खादिरः स्यम् (का० श्रौ० १.३.३३-३४)। स्यम् अथवा खादित्व नामक खादित्व (का० श्रौ० १.३.४०)। स्यम् की चर का प्रतीक माना गया है— स्यम् अथवा खादित्व। कर्त्तव्य खादित्व धृक्वा चतुर्दशवर्ग (का० श्रौ० १.२.४.४)। यह उपपात्र के रूप में भी उल्लिखित हुआ है— अथवा निमित्त अग्नेयं खादित्वं स्यम् खादित्वम्। खादित्वं खादित्वं (श्रौ० श्रौ० २५.८)।
६५. **सुम्** (सुधी या सुध) —वृत्ताहुति मुक्त से प्रदान की जाती है। सुध का संग्रह भी इसी पात्र में किया जाता है— सुधं नै देवैः कथं कथम् सोमवर्गैस्तु यजन्ति (का० श्रौ० १.८.२)। सुध अथवा सुध एक अथवा देवैः सुधं नै देवैः कथं कथम् (का० श्रौ० १.४.१)। सुध आग्निहोत्र विधान पात्र होता है— अग्निहोत्रं सुधं यजन्ति (का० श्रौ० १.१)। सुध में सुध द्रव्य के प्रयोग का विधान है— सुधी इ खादित्वं सुधं यजन्ति (का० श्रौ० १.८.३.२०)। दो सुध, दो उपसुध और एक सुधा इन चार सुधों को सुधं यजन्ति कहते हैं।
६६. **सुध** —जिस पात्र में अग्नि में आस्य की आहुति दी जाती है उसे सुध कहते हैं। यह अग्नि पात्र लम्बा और आने में आस्य लेने हेतु अंगुष्ठ पर्यं पात्र गर्त वाला होता है। यह खादिर काष्ठ का बना है— खादिरः सुधः (का० श्रौ० १.३.३३)।
६७. **होता** —ये अग्निहोत्र और सोमयज्ञ के एक अथवा अथवा हैं। ये आग्नेय के अनुष्ठान देवों का आवाहन और स्तुति-आदि करते हैं। दूसरे शब्दों में इन्हें प्रवचन करने वाले अथवा और देवों के आवाहन कहा गया है— खादित्वं नै देवैः कथं कथम् देवैः कथं कथम् (का० श्रौ० १.१)। वेदों के अधिपति में उपरान्तों के निकट इनके बैठने का स्थान होता है जिसे होत्रासन कहते हैं। अधिपति सदैव प्रवचन करने वाला होता है— एष स इति होताः (का० श्रौ० १.५.२)। होता के अथवा तीन महत्त्व होते हैं— होता नै देवैः कथं कथम् देवैः कथं कथम् (आस्य० श्रौ० ४.२.१)। इन्हें यज्ञ का नाभि (केन्द्र) भी कहा गया है— खादित्वं स्यम् खादित्वं (का० श्रौ० २५.१)।





खाली तलवा



खी



कुंदा



खोच



खोच



खोच



खोच (२)



खोच



खोच (१०)



खोच



खोच



खोच



खोच



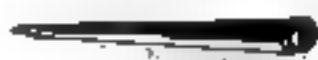
खोच (२)



खोच



खोच



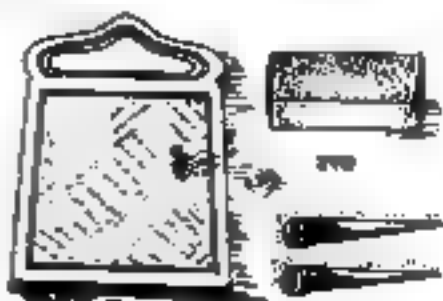
खोच



खोच



खोच



खोच

खोच



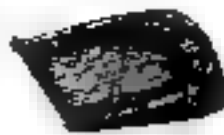
उपकु

कु

कुंजकुंजकुंज



कुंजकुंज



कुंज



कुंजकुंज



कुंज



कुंजकुंज



कुंज



कुंज



कुंज (कुंज)



कुंजकुंज



कुंजकुंज - कुंज



कुंजकुंज



कुंजकुंज



कुंजकुंज



कुंजकुंज कुंज



कुंजकुंज



कुंजकुंज



कुंजकुंज



कुंजकुंज - कुंजकुंज



कुंजकुंज - कुंजकुंज



कुंजकुंज - कुंजकुंज



कुंज (2)



कुंज (पुनःपुनः)



कुंज



कुंज



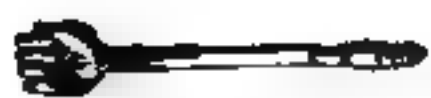
कुंजकुंज



कल



कल



कल



कल



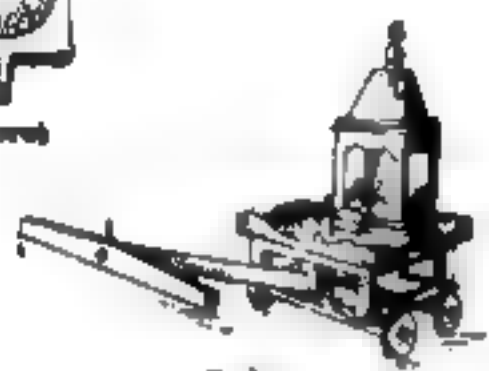
कल



कल



कल



कल (श्रीकल)



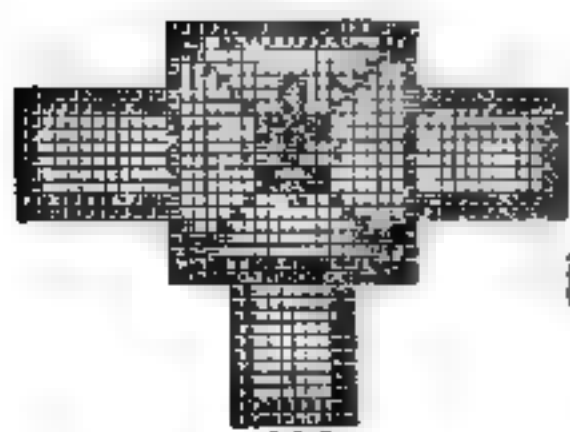
कल (श्रीकल)



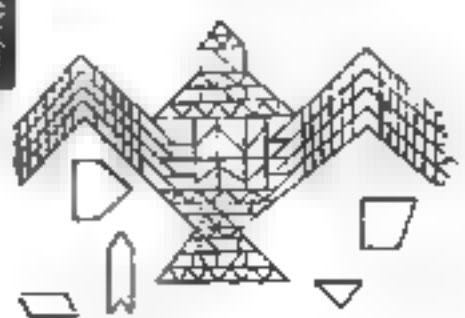
कल



कल



कल



कल

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं च शान्तिः  
 पृथिवी शान्तिराप्तिः शान्तिरोषधयः  
 शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः  
 शान्तिर्ब्रह्मा शान्तिः सर्वं च शान्तिः  
 शान्तिरेव शान्तिः सा मा  
 शान्तिरेधि ॥

\*

\*

स्वर्ग लोक, अन्तरिक्षलोक तथा पृथिवीलोक हमें  
 शांति प्रदान करें। जल शांति प्रदायक हो, ओषधियाँ  
 तथा वनस्पतियाँ शांति प्रदान करने वाली हों। सभी  
 देवगण शांति प्रदान करें। सर्व व्यापी परमात्मा सम्पूर्ण  
 जगत् में शांति स्थापित करे। शांति भी हमें परमशांति  
 प्रदान करे।

—यजु० ३६.१७

\*

\*



असुन्दन्तमवज्जानम् १२.६२  
 असुर्वी नाम ते ५०.३  
 असौ यस्तस्यो अस्म १६.६  
 असौ या सेना मरुतः १७.४७  
 असौ योऽपसर्पति १६.१७  
 अस्कन्मया देवेभ्यः न ८  
 अस्ताष्वाग्निर्नराह १२.२९  
 अस्यात्कभित्तः समुत्तेषु १५.४३  
 अस्यात्वमपि जातो ३५.२२  
 अस्मिन् महन्त्यर्थये १६.५५  
 अस्मे रुद्रा मेहना ३३.५०  
 अस्मे यो अस्मिन्मियम् ९.२२  
 अस्व मल्लमनु द्युतये ३.२३  
 अस्याकमसो द्या ३३.३  
 अत्येदित्रो वायुधे ३३.५७  
 अहः केतुना युवता ३३.३१  
 अहतरजमार्थ ११.४५  
 अहानि न भवन्तु ३६.३१  
 अहान्यन्ते इतिरास्ते १०.४९  
 अहिरिष भौगीः पर्वेति ३९.५१  
 अहो परावतान् २४.२५  
 अहृतमपि इतिर्योनम् २.३  
 अकृतिमग्निं प्रयुज ३३.२६  
 अकृतैः वसुधेऽग्नये ४४  
 आ कुल्येन वसता ३३.४३, ३४.३९  
 आ क्रन्दय वसभोजो २९.५६  
 आक्रम्य काजिन् पुषिषीम् ११.२९  
 आगत्य वाग्यध्वानदेक १२.३८  
 आ गन्म विश्ववेदसन् ३.३८  
 आग्नेयः कुलमीय ३९.५८  
 आग्रयणस्य मे १८.१०  
 आ मा ये अग्निमिन्वते ७.३२  
 आप्सा जानु दक्षिणतो १९.६२  
 आप्ताच्छन्दः प्रच्छच्छन्दः १५.५  
 आ जहन्ति सन्नेषां २९.५०  
 आ विष कलसं ८.४२  
 आभुजान् इक्ष्मो वनारस्य २९.३८  
 आभुजान् भुभ्रवीकः १७.४७  
 आभुजाना सरस्वती २०.५८  
 अ वत इन्द्रायवः ३३.२८  
 अ वं भज सौमवता १२.२७  
 अतिथ्यर्क्य मसर् १९.२४  
 अतिथ्यन्तं परि ३३.२२  
 अ तिष्ठ पुत्रहन् रथं ८.३३

आ तु न इदं ३३.६५  
 आ ते वसते मने १२.११५  
 आत्मनुपस्ये न वृक्षस्य १९.२२  
 आत्मने मे वयोरा ७.२८  
 आत्मने ते मनसा २९.२७  
 आ त्वं किमपि मनसा १२.२३  
 आ त्वाऽहर्गमन्तपुः १२.३१  
 आदित्यं गर्भं पयसा १३.४१  
 आदित्येनैष्यमसी २९.८  
 आचर पित्रो गर्भं २.३३  
 आ न इन्द्राभिर्दित्ये ३३.३४  
 आ न इन्द्रो द्युतय २०.४८  
 आ न इन्द्रो इतिभिः २०.४९  
 आ न एतु वरः ३.५४  
 आ नसत्यं विधिः ३४.४७  
 आ ने विपुलिः रविनी २७.३८  
 आ ने यताः प्रत्यो २५.२४  
 आ ने विश्ववसता २९.८  
 आ ने यदं दिविज्जसं ३३.८५  
 आ ने यदं काली २९.३३  
 आन्नापि स्वासीर्यु १९.८६  
 अपरमे स्वासी ५.५  
 अपये स्वास स्वाये ९.२०  
 आ परस्य विरग्यस्य ८.६३  
 अपरिच्छिन्नम् २७.३८  
 अपो वसन्मन्तः ४२  
 अपो देवीः गतिं पुच्छीत १२.३५  
 अपो ह कद्वस्तुः २७.२५  
 अपो हि यत ११.५०, २६.२४  
 आ प्यासस्य मरिच्यम् १२.११४  
 आ प्यासस्य समेषु १२.११२  
 आ वाम् वाम्नी २२.३२  
 आ मर्दीन्द्र इतिभिः २०.५३  
 आ मा कालस्य अस्यो ९.२९  
 अव्यून प्रसक्त्यर्थ २९.५७  
 अवर्ष यैः पुषिमक्षीम् ३.६  
 आ वदिषे नृपति ३३.११  
 आ वन्तु नृपतिः १९.५८  
 आ वायुपुत्रं वृषं ३३.८८  
 आ वातिन्नोऽमस २०.४७  
 आवासाय स्वाहा ३९.२१  
 अव्युने पतिः सन्ने मे १४.१७  
 आवर्षयेन कस्तु ९.२१, १८.३९  
 आवर्षयेन कस्तु ३३.३३

आयुमानने इतिष ३५.१७  
 आयुष्यं वर्षस्येक ३४.५०  
 आयोहवा सन्दे सादयामि १५.६३  
 आ रात्रि पार्थिव ३३.३२  
 आ रोदसीः अपुमदा ३३.७५  
 आ वाचो मयमहाद् १५.५१  
 आ वाचो पूषं द्युषिषा ७.४७  
 आविर्मर्षा आविरो १०.१  
 आ विश्वतः प्रत्यक्ष ११.२४  
 आ यो देवास ईमहे ४.५  
 आतुः शिताने वृषो १७.३३  
 आतुमिषुद्वयन्तः १४.२३  
 आ आचयेति १९.२४  
 आसन्ती रूपेणरावा १९.२६  
 आसीनास्ते असीनाम् १९.६३  
 आ सुमे सिञ्जत ३३.२१  
 आ सुव्ययन्ती वसते २९.३१  
 आऽहं पिद्वस्तुभि १९.५६  
 ह्यकन्ति त्वा सोम्यासः ३४.३८  
 इह एहदित एहि १.२७, ३८.२  
 इहाभिरागतीह्यः ११.२४  
 इहाभिर्यधानान्जो १९.१९  
 इहामाने वसुधेऽसन् ११.५१  
 इहावास्ता पदे ३४.२५  
 इते रणे इमे वसन्ते ८.४३  
 इदं विष्पुर्षि चक्ष्मे ५.२५  
 इदं देवविधिः प्रजयन् २९.४८  
 इदमाप भं वसते ३.२७  
 इदमुत्तपय स्वस्तस्य २३.५७  
 इदं विपुष्यो गन्ते २९.६८  
 इदं मे वसता ३२.२६  
 इन्दुर्दशः स्येन वसता १८.५३  
 इन्दं विस्वा २२.५३, २५.६२, २७.६३  
 इन्द्रः सुवामा स्वर्षा २०.५१  
 इन्द्रः सुवामा इदयेन २९.८५  
 इन्द्र आसां नेत्रं १७.४०  
 इन्द्र गोमनिहा वाहि २६.४  
 इन्द्रपोषस्ता वसुभिः ५.२१  
 इन्द्रं दुर कयन्तो २०.४०  
 इन्द्रं देवीर्विरो १७.८६  
 इन्द्र मरुत इह पति ७.३५  
 इन्द्रमिद्वी वसतो ८.३५  
 इन्द्रवान् इमे सुख ७.८, २३.५६  
 इन्द्रवान् वृहस्पति ३३.४५

इन्द्राय सुसन्दृशा ३३ ८६  
 इन्द्रस्य मरुतश्च ८५५  
 इन्द्रस्य सभाद वरुणश्च ८३७  
 इन्द्रस्य क्रोडोऽदित्यै २५ ८  
 इन्द्रस्य यज्ञो मरुताम् २९५४  
 इन्द्रस्य यज्ञोऽग्नि ९५ १० २१  
 इन्द्रस्य यज्ञो वरुणस्य १७५९  
 इन्द्रस्य यज्ञोऽग्नि १९५१  
 इन्द्रस्य स्मृतिसि ५३०  
 इन्द्रस्यैव स्य ३७३  
 इन्द्राग्नी अवादिषं ३३५३  
 इन्द्राग्नी अन्वेषमात्र १४११  
 इन्द्राग्नी आ गतं सुतं ७३९  
 इन्द्राग्नी मित्रावरुणा ३३५९  
 इन्द्राग्नी पशतिः २५५  
 इन्द्राय स्वा वसुमते ६३२, ३८ ८  
 इन्द्रा याहि विश्वामो २० ८७  
 इन्द्रा याहि वसुमान् २० ८९  
 इन्द्रा याहि धियोविशो २० ८८  
 इन्द्रा याहि वृषान् २५५  
 इन्द्रायेन्दु ई सारस्वती २० ५७  
 इन्द्रेण वसतां यज १७५९  
 इन्द्रेहि मत्स्यन्वसो ३३२५  
 इन्द्रो विश्वस्य राजति ३६ ८  
 इन्द्रो वृषमवुजो ३६२५  
 इन्द्राभास्तका सतं ईहिमां ३३८  
 इन्द्रो साकल्यं सतधारम् १३७९  
 इन्द्रो सतमूर्जस्वतो १७ ८७  
 इन्द्रं योषेभ्यः परिधि ३५१५  
 इन्द्रं देवा अक्षयं ९४०, १० १८  
 इन्द्रं नो देव सधितः ११ ८  
 इन्द्रं मा हिंसा सीरेकशकं १३४८  
 इन्द्रं मा हिंसा सीर्हिपारं १३४७  
 इन्द्रं मे वरुण भुवी २१ ३  
 इन्द्रमूर्ताय वरुणस्य १३५०  
 इन्द्रा व स्वा वृषमो २३ ८१  
 इन्द्रा गिर आदित्येभ्यो ३४५४  
 इन्द्रा वे वानिन्वम ५९ १६  
 इन्द्रा नु कं भुवना ५५४६  
 इन्द्रां वे धियं प्र भरे ३३ २९  
 इन्द्रामृष्यान् रत्ना २२ २  
 इन्द्रा मे अग्न इष्टा १७२  
 इन्द्रा उद्राय वससे १६४८  
 इन्द्रो वे पश्चाजरी १८५२

इन्द्रं वेदिः पशे अन्तः २३५२  
 इन्द्रस्य आसीत् ३०५  
 इन्द्रस्य मरुसि १०२५  
 इन्द्रं वे यात्रिया तन् ४१३  
 इन्द्रमुपरि मतिस्तस्यै १३५८  
 इन्द्रमन्त्रान् प्रवचस्य १२३०९  
 इन्द्राग्नी धेनुकरो ५२६  
 इन्द्रमूर्जमपि १२३०५  
 इन्द्रकोटेश्वर सारथी १४१६  
 इन्द्रो विश्वमन्त्रा १८५९  
 इन्द्रे त्वोमे स्वा ११  
 इन्द्रे मित्स्वातो ३८१४  
 इन्द्रे त्वे वसस्य १३३५  
 इन्द्रोत्पत्त्यस्य १२३१०  
 इन्द्रविनाश को मन्त्र १२ ८३  
 इन्द्रो अग्निराहुः १८५७  
 इन्द्रो यज्ञो यगुभिः १८५६  
 इन्द्र रतिरिदं सत्यम् ८५१  
 इन्द्रेयान् आहि वारवा २७४  
 इन्द्रो देवैर्हिनां २० ३८  
 इन्द्रो यज्ञाभिः अन्तरा २९ ३  
 इन्द्राय स्वादुःखम् १७ ८४  
 इन्द्रं चान्द्रादुःखं च १७ ८१  
 इन्द्रान्तःस्थः शिखि २९ २१  
 इन्द्राय परावत् २४२८  
 इन्द्रा वासविरिदं ३४० ३  
 इन्द्राः सखा एताः २४१५, १७  
 इन्द्राः सखा एताः शुभ २४१९  
 इन्द्रोर्भिर्गुह्यन्ता ३३७६  
 इन्द्रां सपुत्रो अरुणः १७३०  
 इन्द्रा कृषो वृ सत्त्वा ११५७  
 इन्द्रोत्सोदिनेन मित्र ३९ ९  
 इन्द्रस्य यौमन्त्र मन्त्रः ३९ ७  
 इन्द्रा विधिमि ३३५१  
 इन्द्रा वे वातमन्त्रो २६ २६  
 इन्द्राय ओषधीनां १२ ८२  
 इन्द्रा नोऽग्निर्भुजः ३४५३  
 इन्द्रा स्यास्य इन्द्रः ९३५  
 इन्द्रो नो भगवन्तः ३४३७  
 इन्द्राय मन्त्रे सौमन्त्र ११ २१  
 इन्द्रावाप्त्यय मया ३४१४  
 इन्द्रोत्सोदिनेना सह ८३९  
 इन्द्रोत्सोदिनेना सह ३४५६  
 इन्द्राय सुहृदो यज ११३४

उत्सवस्या अथ गुदं २३३१  
 उत्सवेभ्यः कुम्भं प्रमुदे ३० १०  
 उत्सवोद् दिविषादो ११३२  
 उत्सवे विष्ट वरुण १३ १२  
 उत्सवीमा रोह १० १५  
 उत्सवावर्त १९ ४९  
 उत्सु विष्ट स्वधरावा ११४१  
 उत्सवं वरुण याताम् १२३२  
 उत्सवं ७४१ ८४१, ३३ ३१  
 उत्सु स्वा विष्टे देवा १२३१, १७ ५३  
 उत्सवोत्सवा यज्ञान् १७ ५०  
 उत्सव वाहू अति ११ ८२  
 उत्सवं च मित्रां १७ ६४  
 उत्सवं सप्तमानवर्ति ५ २७  
 उत्सवं मयवन् १७ ४२  
 उत्सवस्याग्ने यति १५ ५४, १८ ६१  
 उत्सवं २० २१ ५७ १० ३५ १४ ३८ २४  
 उत्सव यज्ञो वासनः २४ ७  
 उत्सव अन्नुप वेतसे १७ ६  
 उत्सव स्वाग्ने हविष्यतो १ ४  
 उत्सव नः सुनयो गिरः ३३ ७७  
 उत्सवन्तो अन्तः ३ ११  
 उत्सव आगाच्छसन् २९ २३  
 उत्सव आगात्पर्य २९ २४  
 उत्सव आगात्सुमन्त्रे १५ ३०  
 उत्सवामगृहीतोऽग्नि भुवो ७ २५  
 उत्सवामगृहीतोऽग्नि मयापतये २३ २ ४  
 उत्सवामगृहीतोऽग्नि कुहस्पति ८ ५  
 उत्सवामगृहीतोऽग्नि मयवे ७ ३०  
 उत्सवामगृहीतोऽग्नि साधियो ८ ७  
 उत्सवामगृहीतोऽग्नि सुतर्मा ८ ८  
 उत्सवामगृहीतोऽग्नि हि ८ ११  
 उत्सवामगृहीतोऽग्नि सौमन्त्र ७ २२  
 उत्सवामगृहीतोऽग्नि सत्यन्त्रे ८ ४७  
 उत्सवामगृहीतोऽग्नि सत्यन्त्रः ७ ४७  
 उत्सवामगृहीतोऽग्नि सविष्यां २० ३३  
 उत्सवामगृहीतोऽग्नि सप्तमो ७ २०  
 उत्सवामगृहीतोऽग्नि साधित्येभ्यः ८ १  
 उत्सवामगृहीतोऽग्नि सत्यन्त्र १९ ८  
 उत्सव स्वास्य पृथिवीम् २९ ५५  
 उत्सवा उह गाव ३ ४३  
 उत्सवाः पिता १९ ५७  
 उत्सवो सौमित्रो २ २१  
 उत्सवे गिरीणां २६ १५

[illegible][illegible]

कः दिग्देवतामी कथित २३.१. ४५  
 ककुपुत्र कर्ष वृषकस्य ८.४९  
 कल्पस्य किलः कल्पवृक्षे २३.५७  
 कदा चन म युष्मसि ८.३  
 कदा चन हरीरसि ३.३४; ८.२  
 कदा इव वक्षुम् १७.१७  
 कदा त्वं न कल्पसि ३६.३  
 कदा नरिष्व आ २७.३९, ३६.४  
 कल्पन्तो हे दितः ३५.६  
 कल्पो न व्यचक्षतीः २०.६०  
 कल्पस्य कथं कल्प २३.३९  
 कल्पस्य पुनक्ति स त्वा १.६  
 कल्पस्य विमुक्तसि २.२३  
 कल्पस्य सत्यो मदान् २७.४०, ३६.५  
 का ईषो विशागिमा २३.५५  
 काष्ठात्काष्ठात् प्रोहन्ति १३.२०  
 कर्म कल्पदुषे भुक् ११.५९  
 कस्य स्वाहा कस्मै २२.२०  
 काचित्सि समुद्रस्य ६.२८  
 कल्पयोरायामे ३.३७  
 कस्य सिंहासीत् पूर्वपथिः २३.११. ५३  
 किं १३.३५सूर्यसमै २३.३७  
 किं १३.३५सिंहासीदधि १७.२८  
 किं १३.३५हन् क ठ स १७.२०  
 कुम्भकुटीरसि मधुमिह १.१६  
 कुतसमिह मर्गिनः ३६.२७  
 कुम्भो बलिष्ठुर्बलिष्ठ १९. ८७  
 कुर्वन्नेके कर्माणि ४०.१  
 कुलायिनी श्रवणी १४.२  
 कुविद्व १०.३२, १९.६, २३.१८  
 कुम्भ पात्रः कसिं १३.१  
 कुम्भानीवा आनेपाः २४.६  
 कुम्भानीवा आनेपा मयः २४.१४  
 कुम्भा भोग्य भूमा २४.१०  
 कुम्भोऽस्याखरेभ्यो २.१  
 केतु कुम्भन्नेभ्यो २९.३७  
 केचनः पुत्र आ २३.५६  
 को अयं वेद २३.५९  
 कोऽदारकस्मा अदात् ७.४८  
 कोऽसि कलमोऽसि ७.२९, १०.४ -  
 कल्पयामिना १७.६५  
 कल्पयामिनि म ३५.१९  
 कस्य त्वा परस्यान् ३८.१९  
 कस्य योनिरसि २०.१



[illegible]

१. १५  
 २. २०  
 ३. २५  
 ४. ३०  
 ५. ३५  
 ६. ४०  
 ७. ४५  
 ८. ५०  
 ९. ५५  
 १०. ६०  
 ११. ६५  
 १२. ७०  
 १३. ७५  
 १४. ८०  
 १५. ८५  
 १६. ९०  
 १७. ९५  
 १८. १००  
 १९. १०५  
 २०. ११०  
 २१. ११५  
 २२. १२०  
 २३. १२५  
 २४. १३०  
 २५. १३५  
 २६. १४०  
 २७. १४५  
 २८. १५०  
 २९. १५५  
 ३०. १६०  
 ३१. १६५  
 ३२. १७०  
 ३३. १७५  
 ३४. १८०  
 ३५. १८५  
 ३६. १९०  
 ३७. १९५  
 ३८. २००  
 ३९. २०५  
 ४०. २१०  
 ४१. २१५  
 ४२. २२०  
 ४३. २२५  
 ४४. २३०  
 ४५. २३५  
 ४६. २४०  
 ४७. २४५  
 ४८. २५०  
 ४९. २५५  
 ५०. २६०  
 ५१. २६५  
 ५२. २७०  
 ५३. २७५  
 ५४. २८०  
 ५५. २८५  
 ५६. २९०  
 ५७. २९५  
 ५८. ३००  
 ५९. ३०५  
 ६०. ३१०  
 ६१. ३१५  
 ६२. ३२०  
 ६३. ३२५  
 ६४. ३३०  
 ६५. ३३५  
 ६६. ३४०  
 ६७. ३४५  
 ६८. ३५०  
 ६९. ३५५  
 ७०. ३६०  
 ७१. ३६५  
 ७२. ३७०  
 ७३. ३७५  
 ७४. ३८०  
 ७५. ३८५  
 ७६. ३९०  
 ७७. ३९५  
 ७८. ४००  
 ७९. ४०५  
 ८०. ४१०  
 ८१. ४१५  
 ८२. ४२०  
 ८३. ४२५  
 ८४. ४३०  
 ८५. ४३५  
 ८६. ४४०  
 ८७. ४४५  
 ८८. ४५०  
 ८९. ४५५  
 ९०. ४६०  
 ९१. ४६५  
 ९२. ४७०  
 ९३. ४७५  
 ९४. ४८०  
 ९५. ४८५  
 ९६. ४९०  
 ९७. ४९५  
 ९८. ५००  
 ९९. ५०५  
 १००. ५१०

तत्र चामाल आमुया १३.३०  
 तत्र वाभबुलस्यते २७.३४  
 तत्र जटिरे फुतपिचु २९.२२  
 तत्राथ ६३ सोमस्तवम् २६.२३  
 तस्या आ गम्भय ११.५२: ३६.२६  
 तस्यप्रदस्या अजामन्त ३१.८  
 तस्यप्रज्ञात्सर्गुत ३९.६, ७  
 तस्य नयसंक्षुम्भो २०.५२  
 तस्यासे सत्यसवसि: ४३.८  
 ता ६३: सविस्तुबिरमस्य १७.७४  
 ता आस्य सुददोहस: १२.५५, १५.३०  
 ता ठपी चतुर: पद: २७.२०  
 ता य आ योवम् २०.८३  
 ता माधव्या सुपेरासा २०.७४  
 तान्मुर्धया निविदा १५.२६  
 ता विपत्ता सुकर्माणा ३०.७५  
 निरयोवो विततो ३४.७४  
 निष्ठा इका सारस्वती २१.२९  
 निष्कसेवा सारस्वती ३०.३४  
 निष्को देवीर्वाहरेद ६३.१७.१९  
 निष्को देवीर्वाहिवा ३०.४१  
 सोपान्मोवापुन्यते ३९.४४  
 युष्म ता अग्निस्त्वय १२.२.१६  
 ये अस्य योगेने २७.१७  
 ये आधरन्तो सपनेव २९.४१  
 मेवा पशुना ६३ इति: १९.१५  
 तेनोऽभि तेनो धमि १९.९  
 तेनोऽभि शुक्रमभुतम् २२.१  
 ते नो अर्चन्तो हवन ९.१७  
 ते कि पुत्रासो अदिते: ३.३३  
 तया देवा एकदस: २०.२१  
 तायामिन्द्रमविश्राम् २०.५०  
 त्रि ६३ सदाय विपजति ३.८  
 त्रिका द्विरे पणिभि: १७.१२  
 त्रिपादूर्ध्व उदैस्तुम्: ३१.४  
 त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा १५.९  
 त्रीभि व आहुदिति २९.१५  
 त्रीभि पदा वि चक्रमे २४.४३  
 त्रीभि सता त्रौ सहस्राणि ३३.७  
 त्रौन्समुद्रान्तामसुपत् १३.३१  
 त्र्यम्बके ब्रह्मादेते ३.६०  
 त्र्यवयो गावयै पञ्च २४.९२  
 त्र्यविश्वमे ते त्र्यवी च १८.३६  
 त्र्यायुर्व जपदग्ने: ३.६२

भुवाऽसि धरुवास्तुता १३.१६  
 भुवाऽसि धरुमेतो १३.३४  
 भुवासि धुवोऽयं ५.२८  
 धुवोऽसि पृथिवीं दृष्ट्वा ५.१३  
 नक्तनेवासा समनेसा १२.२१, १३.१३०  
 नक्षत्रेभ्यः स्वाहा २२.२८  
 न तं विनाथ न इना १७.३१  
 न वरुणश्चासि न उरु ३४.५१  
 न तस्य वसिना ३२.३  
 न ते दूरे परया चित् ३४.११  
 न त्वार्थो अन्वो दिव्यो २७.३६  
 मदीयः पौष्पिकम् ३०.८  
 मवरस्य नमस्त्यस्य १४.१५  
 मयः कपदिने च १६.१९  
 मयः कुन्दाय च १६.३८  
 मयः कस्तुराय च १६.१०  
 मयः पद्मिने च १६.२६  
 मयः पर्णाय च १६.४९  
 मयः राज्ञे च १६.४०  
 मयः शम्भवाय च १६.४९  
 मयः शुकपाय च १६.४५  
 मयः श्वभ्यः वज्रपतिभ्यः १६.१८  
 मयः शोभाय १६.२४  
 मयः शिखरपाय च १६.४६  
 मयः सु ते निश्चिती १२.३३  
 मया सेनाभ्यः १६.२६  
 मयः सोभ्याय च १६.३३  
 मयः सुत्वाय च १६.१७  
 मय आरुणे च १६.३९  
 मय उन्मीलिने १६.२२  
 ममस्त आचुक्ष्व १६.१४  
 ममस्तक्ष्मो १६.२७  
 ममस्तो अस्तु विधुतो १६.२१  
 ममस्तो ह्य मन्त्र्य १६.१  
 ममस्तो हरसे शोभिने १७.११, ३६.२०  
 ममो ग्लेष्मो १६.२५  
 ममो ज्येष्ठा च १६.३२  
 ममो कृष्णे च १६.३६  
 ममो च सुजाय १६.१८  
 ममो शिथिलो च १६.३५  
 ममो शिवस्य वज्रपाय ४.३५  
 ममो रोहिताय १६.१९  
 ममो चः शिखरो २.३२  
 ममो वज्रो धरि १६.२१

[illegible]

परं मृत्योः अनुपरेति ३५.१३  
 परस्माद्विधि संवत्सो ११.३०१  
 परिते दे दुःकृत्यो रम्यो ३.३६  
 परिते दे भव्यो नो हेतिः १६.३२  
 परिते त्वा गिर्यो ५.२९  
 परिते त्वाऽग्ने मुं खयं ११.२६  
 परिते ब्राह्मणमित्री ३२.३२  
 परिते नो रुद्रस्य हेतिः ११.५०  
 परिते माऽग्ने दुःखरित्वात् ४.२८  
 परिते वायव्यः कविः ११.२५  
 परितोऽपि परिते त्वा ६.६  
 परितो विज्ञाता सुत ११.२९  
 परितो भूतानि परितो ११.३१  
 परितो गावो नो १५.३८  
 परो दिवा परं द्या १७.२९  
 पयमानः सो अय १९.६२  
 पयमेव पुनीति मा १९.४०  
 पयमेव रम्यो वैद्यमयो ११.२२, १०.६  
 पयसिः पयस्योऽपि ११.२२  
 पयस्य ४ परितो १८.२७  
 पयस्यो विद्या २४.३३  
 पयसो अविद्या २०.६२  
 पयस्योऽपि विद्यामय १७.३०  
 पयस्योऽपि सुतस्य १२.३०  
 पयस्यो नः सरस्वती २०.८४  
 पयसि नो अय एकस्य २७.२३  
 पयसो नो अय पयसो ३७.२०  
 पयसु नु स्तोत्रं मयो ३४.३३  
 पयस्योऽपि विद्यामयः १९.३६  
 पयसो अय विद्यामयः २७.२३  
 पयस्य पयसो ११.३४, २०.७७  
 पुनस्तु मा देवक्याः १९.३९  
 पुनस्तु मा पितरः १९.३७  
 पुनस्तु सत्यं सत्यम् १२.३९  
 पुनस्तु नो अयस्य १२.९, ४०  
 पुनस्तुः पितरो नो ३.५५  
 पुनस्तुः पुनस्तु ४.१५  
 पुनस्तुऽपि अयस्य रुद्र १२.४४  
 पुनस्तु दे परितु १९.४  
 पुनस्तु अयस्य विद्यामयः १२.८  
 पुनस्तुऽपि अयस्य १२.५०  
 पुनस्तुऽपि अयस्य ११.३२  
 पुनस्तुऽपि विद्यामयः ८.३०  
 पुनस्तुऽपि अयस्य ११.३२

पुरुषमृगस्वन्नमसो २४.३५

पुर्वा दधि पठ पठ ३.२९

पुष्यं मनिष्कुना २५.३३

पुष्यं पठे कथं ३४.४१

पुष्या पञ्चाशरेण ९.३२

पुष्यमि त्वा पितये २३.४९

पुष्यमि त्वा परमन्तं २३.५१

पुषिषि देवपुत्रिणि १.२५

पुषिषी च म इन्द्रश्च १८.१८

पुषिषी छन्दोऽन्तरिक्षं १४.१९

पुषिष्य अहमुदन्तरिकम् १७.५७

पुषिष्यः पुरीषमसि १४.४

पुषिष्यः सप्तस्वादसि ११.१६

पुषिष्यो स्वाहाऽन्तरिक्षाय २२.३९

पुष्पिलितरुचीनपुष्पिः २४.३४

पुष्यदत्ता मरुतः २५.२०

पुष्टो दिधि पुष्टो १८.३७

पुष्प्यै रक्षुमुदरम् २०.८

प्रपासिनो कृषामहे ३.४४

प्रपापयथे च वायवे २४.३०

प्रपापयथे त्वा बुधं २२.५

प्रपापयथे पुष्यम् २४.२९

प्रपापतिः सन्धिप्रमाणः ३९.५

प्रपापतिर्विश्वकर्मा १८.४३

प्रपापतिरवापि ३९.१९

प्रपापतिष्वा सप्तवतु १४.१७

प्रपापते न त्वदेवानि १०.२०, २४.५५

प्रपापतेस्तपसा २९.११

प्रपापती त्वा देवताम्यै ३५.३

प्र तद्विष्णु सायते ५.२०

प्र सद्रोषेदमृतं नु ३२.१

प्रति कप्रे प्रति २०.३०

प्रतिपदसि प्रतिपदे ८५.८

प्रति पन्थामपसहि ४.२९

प्रतिश्रुत्वाया सर्वान् १०.१९

प्रति स्पशो मि स्व १३.११

प्रतीचीमा रोह १०.१२

प्रतूर्तं वद्विन्नत्र प्र ११.१२

प्रतूर्वनेष्टव्यम् ११.१५

प्रत्युष्टश्चरथः प्राबुहा १७.२९

प्रथमा द्वितीयैः २०.१२

प्रथमा यादवस्यधिन २९.३७

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिः ३४.५७

प्र नो वधन्तवर्मा ९.१९

प्र पर्वतस्य कृषमस्य १०.१९

प्र-अकम्प्यन्तर्गतस्य १२.३४

प्र वाहया सिद्धं २१.१

प्र मन्त्रो सप्तस्य ३४.३५

प्रमुञ्च वन्दनस्यम् १६.१

प्र यविर्वापि दारुणाऽऽस्य २०.२७

प्र न इन्द्राय भूते ३३.१६

प्र वायुपथ्यं बृहती ३३.५५

प्र वायुने सुप्रथ ३३.४४

प्र वीरका सुप्रथे ३३.५०

प्र यो यो मन्दकानय ३३.२३

प्र यो यो वीर्ये यो ३४.१७

प्रस्य वस्यन्त मोर्यम् १२.३८

प्रस्यते चरिषिण १८.५३

प्रागन्नामुदगपठ्यस्वर्गः ६.३६

प्राचोनं वीर्यः वीर्यस्य २९.२९

प्राचीयन् अस्ति १७.५६

प्राची रितो स्वाहा २३.३४

प्राज्ञं मे पञ्चपानं १४.८

प्राजया अजयन्त १७.१५

प्राजया मे अजयन्त २०.३४

प्राजयन् मेऽप्यजयन् १८.१

प्राजयन् मे अर्धोऽह ७.२७

प्राजयन् स्वाहाऽप्यजयन् २२.३३, २३.२८

प्राजयन्त प्राजयन्त ३४.३४

प्राजयन्तं वस्यन्त ३४.३५

प्रेक्ष्य कस्य नर १७.४६

प्रेक्ष्ये ज्योतिष्यन्तं यवि १२.३२

प्रेक्ष्ये अग्ने दीप्तिदि १७.३५

प्रेतु ब्रह्मणस्पतिः ३३.८९, ३७.३७

प्रेतु जयी कनिष्ठदत् ११.४६

प्रेष्ये प्रेष्यन्तोऽपि १९.१९

प्रोष्यदस्यो न वसते १५.५२

प्रोष्यन्तः सोम आगन्ते ८.५६

प्रद सूर्यं सप्तस्य ३३.४०

प्रमदो अस्ति सूर्यं ३३.३९

प्रमिष्यः पित्रः १९.५५

प्रमिष्यन्तं यविः १७.३७

प्रमिष्यो पित्रा बहुरस्य २९.४२

प्रम्य मे वसन् २०.३७

प्रोक्षन्तं प्रोक्षन्तं ३०.१७

प्रोक्षन्तं प्रोक्षन्तं २०.३०

प्रोक्षन्तं प्रोक्षन्तं ३३.२४

प्रोक्षन्तं यवि वदन्ते २६.३

प्रोक्षन्तं परि दीप्य १७.३६

प्रोक्षन्तं वाजं यय ९.११

प्रोक्षन्तं सवितर्वीर्य २७.८

प्रोक्षन्तं मे अग्ने ववसो १२.४२

प्रोक्षन्तं ववसो १९.५

प्रोक्षन्तं ववसो १३.३

प्रोक्षन्तं ववसो ३४.५८

प्रोक्षन्तं ववसो ३०.५

प्रोक्षन्तं ववसो २३.४८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः २९.४७

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

प्रोक्षन्तं मे ववसः ३३.५८

मन्त्रोऽप्यस्तापं श्रोत्राव ३०.१४  
 मणि गुल्फाम्भये १३.१  
 मणि त्वदिन्द्रिभं ३८.३७  
 मयीदमिन्द्र ३३.३०  
 मयुः प्राणापत्य तसो २४.३१  
 मरुताऽऽ स्फन्वा विरवेर्वा २५.३  
 मरुतो यथै वि सये ८.३१  
 मरुत्वन्तं वृषभं ७.३५  
 मरुतोऽन्न वृषभो ७.३८  
 मर्मभि वि कर्षणा १७.३९  
 महाकन्तु केतौरिन्द्र २५.३  
 महा इन्द्रो नृपदा ७.३९  
 महा इन्द्रो य ओजसा ७.४०  
 महा इन्द्रो नमस्तः २६.१०  
 महान्मान्मो रेवातो ३३.३५  
 महि शीमाभयोऽस्तु ३.३१  
 मही क्षी पृथिवी च ८.३२.१३.३२  
 महीना पथोऽभि ४.३  
 महीन् नु मातर ६.२१.५  
 महो अग्नेः समिधानस्य ३३.१७  
 महो अर्जः सरस्वती १०.८६  
 मा छन्दः त्रया छन्दः १४.३८  
 मा त इन्द्र मे वर्ष १०.२२  
 माता च वे पित्र च २३.३४-२५  
 मातोष पुत्रं पृथिवी १२.३१  
 मा त्वाऽग्निर्वीर्यवीर २५.३७  
 मा त्वा तपस्विभ २५.४७  
 मा चः शर्वीर्यो अरुको ३.३०  
 मा नक्षोको तमये १६.१६  
 मा नो महान्तमुत् १६.१५  
 मा नो मित्रो वरुणो २५.१४  
 माऽपो मौषवीर्हिर्वासी ३.२२  
 मा मेर्मा संविख्या १.२३.३.३५  
 मा मा हिर्वासीन्मनिता १२.१०.२  
 मा यो रिषत्मानिता १२.१५  
 मा सु भित्वा मा सु १६.६८  
 माहिर्भूमौ पुदास्तुः ६.१२.८.२३  
 मित्रं हि दुषे पुतदर्थं ३३.५७  
 मित्रः सर्वेऽसृज्य पृथिवी ११.५३  
 मित्रस्य म इन्द्रस्य १८.१७  
 मित्रस्य वर्षाणीभूतो ११.६२  
 मित्रस्य मा चक्षुष ५.३४  
 मित्रावरुणाभ्यां त्वा ७.२३  
 मित्रो न एहि ४.२७

मित्रो नमस्तरेण १.३३  
 मीढुत्प सिमन्तम १६.५१  
 मुक्त ६७ सदस्य सित १९.८८  
 मुक्तन्तु मा तपस्वदयो १२.३०  
 मूर्धनि सिन्धो अरुति ७.३४.३३.८  
 मूर्धो वयः प्रसन्नाभिः १४.११  
 मूर्धोऽसि सह वृक्षस्य १४.२१  
 मृगो न पीयः कुप्यो १८.३१  
 मेधो ये वरुणो ३२.१५  
 मो नु म इन्द्राय ३.४६  
 म जगन्ना कस्त २५.१३  
 म इन्द्र इन्द्रियं दन्तुः २०.३०  
 म इवा भिरवा १७.१७  
 म इमे दान्तापृथिवी २९.३४  
 म दान्तकन्तर्य भुपाऽऽसः १६.६३  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ २३.२२  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ २३.२३  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.३०  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.३१  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.३२  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.३३  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.३४  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.३५  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.३६  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.३७  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.३८  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.३९  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.४०  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.४१  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.४२  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.४३  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.४४  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.४५  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.४६  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.४७  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.४८  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.४९  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.५०  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.५१  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.५२  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.५३  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.५४  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.५५  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.५६  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.५७  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.५८  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.५९  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.६०  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.६१  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.६२  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.६३  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.६४  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.६५  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.६६  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.६७  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.६८  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.६९  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.७०  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.७१  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.७२  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.७३  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.७४  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.७५  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.७६  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.७७  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.७८  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.७९  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.८०  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.८१  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.८२  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.८३  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.८४  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.८५  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.८६  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.८७  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.८८  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.८९  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.९०  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.९१  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.९२  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.९३  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.९४  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.९५  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.९६  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.९७  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.९८  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३२.९९  
 म दान्तोऽस्यो सन्निधौ ३३.००

मदत्पुलिङ्गिका ११.३४  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.३५  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.३६  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.३७  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.३८  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.३९  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.४०  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.४१  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.४२  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.४३  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.४४  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.४५  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.४६  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.४७  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.४८  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.४९  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.५०  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.५१  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.५२  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.५३  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.५४  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.५५  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.५६  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.५७  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.५८  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.५९  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.६०  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.६१  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.६२  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.६३  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.६४  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.६५  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.६६  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.६७  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.६८  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.६९  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.७०  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.७१  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.७२  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.७३  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.७४  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.७५  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.७६  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.७७  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.७८  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.७९  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.८०  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.८१  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.८२  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.८३  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.८४  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.८५  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.८६  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.८७  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.८८  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.८९  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.९०  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.९१  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.९२  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.९३  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.९४  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.९५  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.९६  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.९७  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.९८  
 मदत्पुलिङ्गिका ११.९९  
 मदत्पुलिङ्गिका १२.००

वस्ते अस्वसनिर्षधी ८.१२  
 वस्ते इत्यस्वस्कन्दावि ७.२६  
 वस्ते रसः सम्पुवः १९.३३  
 वस्ते स्तनः तस्यो ३८.५  
 यस्माज्जातं न पुरा ३२.५  
 यस्मान् जातः परो ८.३६  
 यस्मिन्सर्पाणि भूतानि ४०.७  
 यस्मिन्स्वाप्तः प्रथमाय २०.७८  
 यस्मिन्नुजः साम ३४.५  
 यस्य कुर्मो गृहे १७.५२  
 यस्य प्रयापन्यस्य २१.५  
 यस्वार्थं विरथ आर्यो ३३.८२  
 यस्वास्ते शेर आसन् १९.६४  
 यस्वमे हिमवन्तो २५.१९  
 यस्वै ते भद्रियो गर्भो ८.१९  
 यस्वीरधीः प्रसर्पथ १९.८६  
 यो आऽवध उवातो देव ८.१९  
 या इमो यावुमाना १७.३७  
 या ओषधीः पूर्वा जाता १२.३५  
 या ओषधीः सोमराज्ञी १२.१९-१३  
 याः फलिनीर्वा अफसा ११.८९  
 याः सेवा अजीवरीः ११.७७  
 या ते अग्नेऽयः शब्दा ५.८  
 या ते धर्मं दिव्या ३८.१८  
 या ते धामानि परमाणि १७.३२  
 या ते धामानि इतिषा ४.३७  
 या ते धामान्युपमसि ६.३  
 या ते वद शिषा १६.२.४९  
 या ते हेतिर्वाबुद्धम १६.१२  
 यामिषु गिरिशन्त १६.३  
 यां मेधां देवगणाः ३२.१४  
 यावती छायापृथिवी ३८.१६  
 या वां कता मधुमती ७.११  
 या यो देवाः सूर्ये १३.२३; १८.४७  
 या व्याधं विपृथिव्योर्वा १९.१०  
 या रातेन प्रतनोति १३.२१  
 यास्वेदमुपमुष्यन्ति १२.१४  
 यास्ते अग्ने सूर्ये रुषो १३.२२; १८.४६  
 युक्तेन मनसा वर्ष १२.१  
 युक्ताय सविता देवान् १२.३  
 युक्ता हि केतिना हरी ८.३४  
 युक्ता हि देवहृत्मा २३.३७; ३३.४  
 युगे वां ब्रह्मा पूर्वा ११.५  
 युज्यते मन उत्त ५.१४; ११.४; ३७.३

युज्यन्ति ब्रह्मण्यम् २३.५  
 युज्यन्त्यस्य काम्य २३.५  
 युज्यन्ते चैव वसन् १२.१३  
 युज्यन्तः प्रथमं मनः ११.१  
 युज्यन्त सीरा वि १२.६८  
 युगं तस्मिन्नागर्षा ८.५३  
 युगं सुतज्जगत्सिन्ध १०.३३; २०.७८  
 युक्ता इतोऽनुवीर्य १.२३  
 युक्तास्मा उत्त ये २५.१९  
 ये अग्निष्वा १९.५०  
 ये चेह पितरो १९.५७  
 ये अनेषु परितस्तथ ११.३९  
 ये तीर्त्तानि प्रथमं १६.६१  
 ये ते यन्त्राः सविताः ३४.३७  
 ये त्वाऽहिदन्ते मयन् ३३.६३  
 ये देवा अग्निनेत्राः ९.३६  
 ये देवा देवासां १७.२३  
 ये देवा देवेभ्यो १७.१४  
 ये देवास्तो दिव्येभ्यस्त ७.१९  
 ये नः पूर्वो पितरः १९.५१  
 ये नः सप्तमः अप ये ३४.४६  
 येन प्रथमस्तपसा १५.४९  
 येन कर्त्तव्यमसौ ३४.१  
 येन द्यौश्चा पृथिवी ३२.५  
 येन कर्त्तुं सतां १५.१५; २८.३२  
 येना पाथक कस्तथ ३३.३२  
 येना सप्तसु सप्ततो १५.४०  
 येनेदं पूर्वं युनः ३४.४  
 येऽनेषु विविधैर्वा २६.६२  
 ये पक्षां पथिरथ १६.५०  
 ये भूतान्त्वधिपततो १६.५९  
 ये रुपाणि प्रति २.३०  
 ये धामिन् परिपथन्ति २५.३५  
 ये कानी रोषने दिवो १३.८  
 ये कुक्षेण सन्निध १६.५८  
 येनामस्येति प्रथमेषु ३.४२  
 ये सप्तमः सप्तमः ११.४५-४६  
 यो अग्निः कर्मकाङ्क्षः १९.५५  
 यो अग्निरग्नेरध्वकाका १३.४५  
 यो असम्यक्कातो ११.८०  
 योगे-योगे त्वस्तद ११.१४  
 यो देवेभ्य आतपति ३१.२०  
 यो नः पिता भक्ति १७.३७  
 यो पूज्यतपतिरतिः २०.३२

यो देवान्मो अमोवत् ३.१९  
 यो नः शिवतमो रसः ११.५१; ३६.१५  
 यक्षसां चागोसि ६.१६  
 यक्षोहणं वसगहनं ५.१३  
 यक्षोहणो यो वसगहनः ५.१५  
 यक्षोह विष्वचर्षिः २६.२६  
 यक्षता इतिषीः सीसा २३.३७  
 यथाहणं चैव इतिरस्य २९.४५  
 यथे तिष्ठन्वति २९.४७  
 यथिरथ ये रावत्य १८.१०  
 यथिना साधाय सार्य १५.६  
 यथानामध्वराणां गोषाम् ३.२३  
 यथ्यति माधी दिग् १४.१३; १५.१०  
 यथिचैवसायति मते २२.१३  
 यथा यथैवससां चैव सो ७.१०  
 यथे नु यं वक्षन् २४.१४  
 यथं यो वेति १८.४८  
 यथं वातं वनयन्तो ३१.११  
 यथाः स र्वां धृज्य पृथिवी ११.५४  
 यथेय यो ज्यमध्वारां ७.४५  
 यथे मूर्धं वि ब्रह्मा १९.३५  
 यथी रमध्वम् ४.११; ६.८  
 यथिहो भूतोऽहितः १४.१  
 यथान्नं पथीरथ १२.७१  
 यथे पुन शिर्वा १२.५४; १५.५९  
 यथेभ्यः स्वाहा ३९.१०  
 यथेभ्यः सप्तधर्मम् २०.१३  
 यथेभ्योवेदा गनीगानि २९.४०  
 यथेभ्योवसुतो २०.४५  
 यथेभ्योऽयं सूना २७.११  
 यथेभ्यो वीक्षन्तो २९.५२  
 यनेषु गन्तारिषं ४.३१  
 यथे ते अद्य १८.३५  
 यथं नाम प्र ब्रह्मा १७.१०  
 यथं चैव सोम वते ३.५६  
 यथं चैव हि त्वा प्रथति ८.३०  
 यथः ब्रह्मिन्द्रियं २०.७२  
 यथः प्राविश भुवत् ३३.४५  
 यथस्वोऽस्यमन्मसि ४.३६  
 यथी त्वहर्षरुणस्य २३.४४  
 यथीर्वातुनाऽऽदिता २१.२५  
 यथीर्वातुनाऽऽदिता २४.३८  
 यथस्तस्य कर्मफलान् २४.२०  
 यथेन ब्रह्मना देवा २१.२३



श्रीजामुदारो धरुजो १२.२२  
 श्रीरुच वे लक्ष्मीरुच ३१.२२  
 शुभि शुक्लार्ण वाङ्मिथिः ३३.१५  
 स्वाहाः पीता भवत ४.१२  
 स्वाहा स्व वृत्रतुरो ६.३४  
 शिवत्र आदित्यनाम् २४.३९  
 षडस्म विष्णुः सताम् २३.५८  
 षोडशी स्तोम ओजो १५.३  
 संवत्सरोऽसि परि २७.३५  
 सं वर्षसा पयसा २.१४, ८.१४, १६  
 सं वसावाऽर्थे स्वविदा ११.३१  
 सं वा मनाऽर्थे १२.५८  
 सऽर्थे सितं मे वस ११.८१  
 सऽर्थे शिवो रक्षिणा रवः २३.१४  
 सऽर्थे सभिषुवतो वृषन् १५.३०  
 सऽर्थे सोदत्त मर्षा असि ११.३७  
 सऽर्थे सुहा वसुधी वरैः ११.५५  
 सऽर्थे सवधारा श्वेषा २.२८  
 सऽर्थे शितासि विष्वक्पुष्पा १.२२  
 सऽर्थे शितो विष्वक्पुष्पा १८.३९  
 स इधानो वसुधकविः १५.३६  
 स इषुहसीः १७.३५  
 संप्रज्जनेनानिमिषेय १७.३४  
 सखायाः सं वः सम्पन्नम् १५.३९  
 स खातो गर्भो असि ११.३६  
 सज्जुहो अयवोधिः १२.३७  
 सज्जुहो धुभिः सज्जुः १४.३७  
 सज्जुहो देवेन सवित्र ३.१०  
 सज्जोषा इन्द्र सगर्भो ७.३७  
 सं वेध्यास्याने व २७.३  
 संज्ञानमसि कामकरणं १२.३६  
 सत्यं च मे श्रद्धा १८.५  
 स त्वं नरिष्व वज्रहस्त २७.३८  
 स त्वं नो आने २१.३  
 सप्रस्य ऋक्षिरसि ८.५२  
 सदसस्पतिमदभुतं ३२.१३  
 स दुद्रवत्प्राहुः १५.३४  
 सद्यो जातो ज्येष्ठीय २९.३६  
 सधमादो धुभिनीराय १०.३७  
 स न इन्द्राय सन्धवे २६.१७  
 स नः पावक सीदिवो १७.१  
 स नः पितेव सूनवे ३.३४  
 स नो कम्बुर्धनिवा ३२.१०  
 स नो धुवनस्या १८.३४

सं ते पक्वऽर्थे सि समु १२.११३  
 सं ते यनो मनसा ६.१८  
 सं ते वानुर्मातरिस्वा ११.३९  
 सन्धवे जारं मेहाय ३०.१  
 सन्नः सिन्धुवल्गु ८.५९  
 सं त्यक्त्वे सुर्वस्व ३.१९  
 स पर्वन्तवल्गु ४०.८  
 सप्त ऋषयः वसि ३४.५५  
 सप्त ते आने सवित्रः २७.३९  
 सप्तास्वसन् परि ३१.१५  
 स प्रकरो वृहस्पतिः ७.१५  
 स ओधि धुभिर्मेका १२.३३  
 सप्तलो देव्य विष्वा ४.२३  
 सप्तभिन्निन्ना गत ३०.१५  
 सप्तपराकोपयो ३४.३९  
 सप्तास्तान् जलतो २७.३  
 सवित्रऽर्थे संकल्पेवार्थे १२.५७  
 सविदसि सुर्वस्वा २.५  
 सविद इन्द्र उपसाम् २०.३६  
 सविदो मन्वायि १७.५५  
 सविदो अग्निः सविता २१.१२  
 सविदो अग्निरक्षिणा २०.५५  
 सविदो अन्धकृद् २९.१  
 सविदो अय मनुषो २९.३५  
 सविताऽग्निं दुवन्त ३.१, १२.३०  
 समिन्द्र वो मनसा ८.१५  
 समुद्रं गच्छ स्वाहा ६.२१  
 समुद्राय त्वं प्रकथ्याये १७.३४  
 समुद्रादूर्ध्विर्धुर्धुर्धु १७.८९  
 समुद्राय त्वं कावाय ३८.७  
 समुद्राय सिन्धुमयान् २४.३१  
 समुद्रे वे हृदसम् ८.२५, २०.१९  
 समुद्रे त्वं नृणा १२.२०  
 समुद्रोऽसि नक्षत्रा १८.३५  
 समुद्रोऽसि विश्वकथ्या ५.३३  
 सम्पत्कथ्यम्भुय समु १५.५३  
 संवर्द्धित्वकथ्याऽर्थे सवित्र २.३२  
 सम्पुंसि च सिन्धुतं ४०.११  
 सं मा सुज्यमि पयसा १८.३५  
 सम्पत् सप्तभि सप्तो १३.३८, १७.१४  
 सप्तार्हसि मतीको दिग् १५.१२  
 स सप्तदस्य मरिच २७.१५  
 सरस्वती पयसा २९.८३  
 सरस्वती योन्ता १९.५४

सरोभ्यो घैवरमुपस्था ३०.१६  
 सर्वे निमेष जज्ञिरे ३२.२  
 सवित्र वे शरीराणि ३५.५  
 सवित्र वे शरीरिभ्यः ३५.२  
 सवित्रा त्वं सवाना १३.९, ३९  
 सवित्रा प्रकमेऽहन् ३९.१  
 सवित्रा वरुजो दध २०.३९  
 सवित्रुस्वा प्रसवः १.११  
 सवित्रा प्रसवित्रा १०.३०  
 सहदानु पुक्कृत १८.३९  
 सह रथ्या नि वर्तस्य १२.१०, ३१  
 स इन्धवाऽर्थे मर्षः २२.१६  
 सहस्य सहस्यरथ १४.२७  
 सहसा कालान् वृ मुदा १५.२  
 सहस्रोन्नाः सहस्रान्दसः ३४.३९  
 सहस्रशीर्षा पुक्कः ३१.१  
 सहस्रस्य मनाऽसि १५.३५  
 सहस्रानि सहस्रो १६.५३  
 सहस्य वे अरातीः १२.१९  
 साकं वक्त्र व पत १२.८७  
 सा विस्वामुः सा विश्व १.४  
 सितंऽर्थे सति सप्तलसाही ५.१०  
 सितंऽर्थे सति स्वाहा ५.१२  
 सितानि परि विज्ञानि २०.३८  
 सिनीवाति पक्कृते ३४.१०  
 सिनीवासी कुक्कपरा ११.५६  
 सिन्धोरिव प्राण्ये १७.१५  
 सीद त्वं मातुरस्या १२.१५  
 सीद श्वेतः स्व त लोके ११.३५  
 सीर बुज्जति कवयो १२.६७  
 सीसेन वत्सं मनसा १९.८०  
 सुगन्धं मे वावी स्वस्व २५.३५  
 सुगा वो देवाः सदा ८.१८  
 सुवातो ज्योतिषा सह ११.४०  
 सुवामानं पृथिवीं २१.६  
 सुनाक्यं श्रेयम् २१.३७  
 सुपर्ण वस्ते मृगो २९.४८  
 सुपर्णः पार्थिव्य अति २४.३४  
 सुपर्णोऽसि गहस्ता १२.४, १७.३२  
 सुप्रवाः प्रवाः प्रकथयन् ७.१८  
 सुवर्हिनिः पूषन्तान् २१.१५  
 सुपुः स्वयम्भुः प्रकरो २३.६३  
 सुभिषिवा व ३५.१२, ३६.२३, ३८.२३  
 सुप्रकृतं वर्हिषदर्थे १९.३२

सुवीरो वीरान् प्रकनमन् ७५३  
 सुवारधिरत्थानिय ३४५  
 सुवृणः सूर्यरश्मिः १८५०  
 सुहृतिर्धनसुभतीवृधो २२३२  
 सुसन्दर्शं त्वा वयं ३५२  
 सुसमिद्धाय सोविषे ३२  
 सुवस्था मय देवो २१५०  
 सूर्य एककी चरति २३१०, ५६  
 सूर्यत्वचस स्व राहूदा १०५  
 सूर्यरश्मिर्हीनैः १७५८  
 सूर्यस्य चक्रुरारोह ५३२  
 सो जनिषीं वसुगृधे १५५२  
 सोमर्धराजानमवसे ९२६  
 सोमः पयते सोमः ७२१  
 सोममन्त्रो व्यभिचत् १९५४  
 सोम रात्रिं विस्वासां ६२६  
 सोमस्य त्वा सुमेन १०१७  
 सोमस्य त्विधिरसि १०५, १५  
 सोमस्य कर्षं ह्येतस्य १९३५  
 सोमानर्धस्वर्षं कृणुहि ३९८  
 सोमाय कुसुमं जारण्ये २४३२  
 सोमाय लवानासमते २४३४  
 सोमाय हर्षं सानासमते २४३२  
 सोमो वेणुर्ध सोमो ३४३१  
 सोमो शक्राभूतर्ध १९७२  
 सोमो कलाका रात्रिः २४३३  
 स्तोत्रं बर्हिः सुहृदीम् २९५  
 स्तोत्रनाभिन्दुं अति ५०५६  
 त्विधो यध वीदवत् ११५४  
 स्थोन पृथिवि नो ३५३१, ३६३३  
 स्थोनर्धसि सुषदासि १०३६  
 सुवस्व मे यमसाय १८३१  
 स्वग्न त्वा देवेभ्यः २२४  
 स्वतर्वीरच प्रधासी १७८५

स्वर्षं त्वीर्वैतन् २३१५  
 स्वर्षं चुरसि श्रेष्ठे २३६  
 स्वराहसि कनकन ५३४  
 स्वराहस्तुदीची दिन् १५३३  
 स्वर्षं यमः स्वका १८५०  
 स्वर्षान्ते जपेक्षन् १७५८  
 स्वस्ति न ऽ इन्द्रो २५३९  
 स्वाह्नुजोऽसि विश्वेभ्यः ७३, ६  
 स्वादिप्यस्य मदिप्यस्य २६३५  
 स्वाह्नुजोऽसि विश्वे २९५६  
 स्वाह्नी त्वा स्वाह्नुज १९३  
 स्वाहा पूज्ये सारसे ३८३५  
 स्वाहा शानेभ्यः त्विधि ३९३  
 स्वाहा मदिप्यः त्वि ३७३३  
 स्वाहा यज्ञं यमः ४३  
 स्वाहा यज्ञं यमः २९३२  
 स्वाहा यज्ञाय सः ३८३६  
 स्वैर्द्वैर्द्वैर्द्वैर्द्वैर्द्वै १४३  
 स्वर्धसः सुविपदसुः १०३४, १२३४  
 स्वर्धो वृष्णेऽस्यो ३३३  
 स्वर्धर्धं यद्विपदसु १९३८  
 स्वर्धर्धर्धर्धो आसो ६३३  
 स्वस्त आवाय सविता ११३१  
 हिमराज स्वका २२७  
 हिमस्य त्वा यद्विपदसु १७५  
 हिमस्येन पारेण ४०३७  
 हिमस्यर्धः १३५, २३३, २५१०  
 हिमस्यर्धः सविता ३४३५  
 हिमस्यर्धर्धर्धो २२३०  
 हिमस्यर्धर्धर्धो १०३६  
 हिमस्यर्धर्धो असुः ३४३६  
 इदे त्वा मनसे त्वा ६३५, ३७३९  
 हेमनेन कृणुत देवा २१३७

होताऽव्यवृतात्मना २५३८  
 होता यक्षजनूनपातमुतिथिः २८३  
 होता यक्षजनूनपातमुदिपदं २८३५  
 होता यक्षजनूनपातम् २९३०  
 होता व्यधित्तो देवीः २१३७, २८८  
 होता यक्षपट्टम् २८३  
 होता यक्षपेशस्योः २८३१  
 होता यक्षपेशस्योः २८३०  
 होता यक्षपेशस्योः २८३५  
 होता यक्षपेशस्योः २९३९  
 होता यक्षपेशस्योः २८३४  
 होता यक्षपेशस्योः २८३५  
 होता यक्षपेशस्योः २९३५, २८३९  
 होता यक्षपेशस्योः २८३७  
 होता यक्षपेशस्योः २९३८, २८३२  
 होता यक्षपेशस्योः २८३४  
 होता यक्षपेशस्योः २९३०  
 होता यक्षपेशस्योः २९३७  
 होता यक्षपेशस्योः २९३९-४३  
 होता यक्षपेशस्योः २८३  
 होता यक्षपेशस्योः २९३२  
 होता यक्षपेशस्योः २९३५, २८३९  
 होता यक्षपेशस्योः २८३६  
 होता यक्षपेशस्योः २८३५  
 होता यक्षपेशस्योः २९३४  
 होता यक्षपेशस्योः २९३६, २८३७  
 होता यक्षपेशस्योः २९३३  
 होता यक्षपेशस्योः २८३  
 होता यक्षपेशस्योः २९३९, ४६, २८३०, ३३  
 होता यक्षपेशस्योः २८३८  
 होता यक्षपेशस्योः २९३१